॥ श्रीः ॥

रघुवंशमहाकाव्य ।

महाकवि कालिदासप्रणीत.

मुरादाबादनिवासि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत

अन्वय–वाच्यपरिवर्तन–सरलार्थ–और

भावार्थ भाषाटीका समेत,

जिसको

विद्यार्थियोंके लाभार्थ,
खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९६४, शके १८२९.

सरकारी कानूनके मुताबिक् पुनर्मुद्रणाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर"
यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

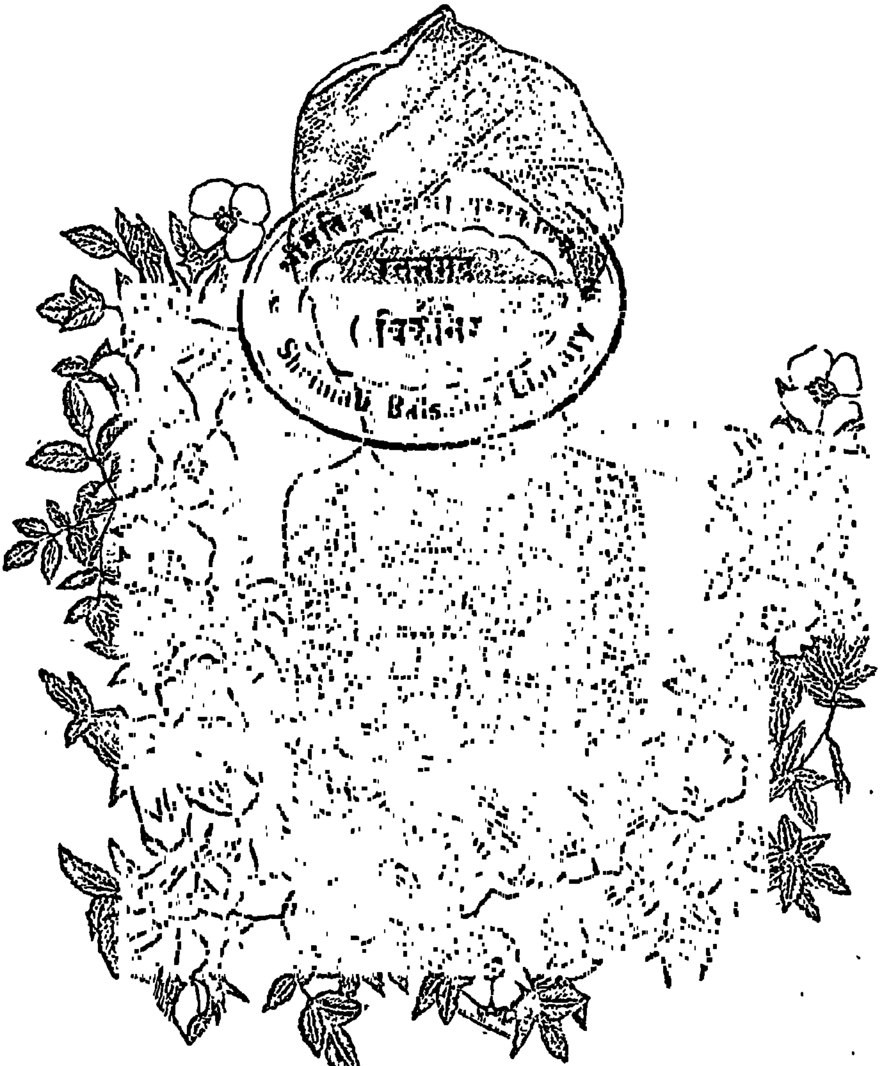

विद्वद्वर पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रजी.

श्री १०८ श्रीमान् राजाप्रतापबहादुरसिंहजी

सी. आई. ई.

Most Respectfully Dedicated

TO

THE HON'BLE RAJA

PARTAB BAHADUR SINGH C. I. E.

TALUQDAR FORT PRATABGARH (Oudh)

BY

PANDIT JWALAPRASAD MISRA MAHOPDESHAK

Moradabad

श्रीयुत

श्री १०८ श्रीमान् राजाप्रतापबहादुरसिंहजी सी. आई. ई.

प्रतापगढाधीश्वर

महोदयके करकमलमें सादर समर्पित

श्रीमान् प्रतापगढ (अवध) के अधीश्वर और शासकहैं और इस ग्रंथमें अवधनरेश्वरों और मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रके चरित्रोंका वर्णन है हमारा धर्म है कि अपूर्व और अलभ्य पदार्थ श्रीमान्के अर्पण करें इसकारण इस " रघुवंश " के तिलकका अधिकारी नरदेवको समझकर आदर सन्मानके सहित इस ग्रंथको श्रीमान्के करसरोजमें समर्पण करताहूं यदि श्रीमान् इसे अंगीकार करेंगे तो मैं अपने परिश्रमको सफल मानूंगा.

श्रीमान्का शुभाकांक्षी-

ज्वालाप्रसादमिश्र,

मुरादाबाद.

भूमिका ।

कविशिरोमणि श्रीकालिदासके बनाये हुए अनेक काव्य और नाटक संसारमें विख्यात हैं, उक्त कविने जिस लालित्यतासे अपने ग्रंथोंको निर्माण किया है उसको सहृदय पंडितगण जान्ते हैं, इनके श्लोकोंमें पदपदपर ध्वनि और रसकी वर्षा होती है अलंकार रचनाभी अलौकिक है और उपमाकी तौ क्या कहें संसारभरमें यह ध्वनि गूंज रही है कि (उपमा कालिदासस्य) अर्थात् उपमा कालिदासके बांटमें आई है इनके बनाये ग्रंथोंमें रघुवंश महाकाव्य महाप्रसिद्ध सबसे बढ चढ कर है कालिज और पाठशालाओंमें संस्कृत पढनेवाले विद्यार्थी इसको पढते हैं, और परीक्षा देते हैं इसके पढनेसे शब्दबोध होकर दूसरे काव्योंके लगानेकी भी शक्ति हो जाती है, केवल इसी कारण इसका गौरव नहीं है कि इसे विद्यार्थी पढते हैं, नहीं; इसकी रचना ऐसी चमत्कारिणी मनोहारिणी है कि प्रत्येक बुद्धिमान् इसके श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं महाकवि बाणभट्टने कहा है.

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु । प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

अर्थात् विना अर्थ जाने भी उच्चारणमात्रसे तत्कालकी नवीन खिली हुई सघन सुगन्धियुक्त मकरन्दभरी मञ्जरीकी समान कालिदासकी श्रेष्ठकवितामें किसकी प्रीति नहीं होती किन्तु सबहीकी होती है उन्हीं कालिदासकी सूक्ति यह सर्व गुण सम्पन्न रघुवंशमहाकाव्य है.

रघुवंशके ऊपर संस्कृतके बुद्धिमानोंने अनेक टीकाएं की हैं, उनमें मल्लिनाथकी टीकाका अधिक प्रचार है, परन्तु वह भी संस्कृत ही टीका है, इस कारण भाषावाले इसके स्वादसे वंचित रहते हैं, यह विचारकर हमने भाषाके ज्ञाता तथा परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियोंके निमित्त इसमें बहुतसी उपयोगी बातोंको लिखा है, जिससे भाषा और संस्कृत जान्नेवाले दोनोंको बोध हो सक्ता है, वह इस प्रकारसे लिखा है कि—

श्लोकान्वय १ वाच्यपरिवर्त्तन २ पदपरिवर्त्तन अर्थात् सरलार्थ ३ अन्वयानुसार भाषार्थ ४ व्याकरणप्रक्रिया अर्थात् शब्दोंकी सिद्धि ५ श्लोकसम्बन्धी कथा ६ और रघुवंशका संक्षेपभी लिखा है, बहुधा परीक्षाओंमें रघुवंशके सातसर्ग होते हैं, और विद्यार्थी भी प्राय: सात ही सर्गतक पढते हैं, इस कारण व्याकरणप्रक्रिया सातसर्ग तक ही की है शेष अन्वयादि उन्नीसों सर्गोंका है, और भाषाटीका इस प्रकारसे की है कि अन्वयके अनुसार उसे पढनेसे भाषा जान्नेवालोंको भी पदार्थका ज्ञान पूरा हो सक्ता है, और कविका आशय लोप न हो जाय इस कारण थोडे ही शब्दोंमें पदार्थको पूरा दिखला दिया है, विभक्तिका अर्थ भी ठीक रक्खा है, पदपरिवर्त्तनमें मल्लिनाथकी सञ्जीवनी टीकाकाभी आशय नहीं जाने दिया है, और उचितस्थानोंपर भावार्थभी लिखदिया है, और जहां कहीं कुछ अधिक लिखा है वहां ( ) इस प्रकार कोष्ठके अन्तर्गत करदिया है समासान्तपदोंकी भाषाटीका करनेमें वैसे पद नहीं आसक्ते इस कारण वारंवार ' वाला ' शब्द लाना पडा.

काव्यके पठनपाठनसे केवल लौकिक कार्य संपादन ही नहीं होते किन्तु चतुर्वर्गकी प्राप्ति भी होती है जैसा साहित्यदर्पणमें लिखा है " चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि । काव्यादेवेति " अर्थात् काव्यसे सुकुमार बुद्धिवालोंको भी सहजमें धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होती है जैसा लिखा है कि. " बुद्धिमानोंको रामकी समान आचरण करने चाहिये रावणकी समान नहीं " इस प्रकारके उपदेश काव्योंमें होते हैं कहा भी है.

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥ अर्थात् श्रेष्ठ काव्यके पठनपाठनसे धर्मार्थकाममोक्षका ज्ञान नृत्यगीतादि चौंसठकलाओंमें निपुणता कीर्ति और हरिचरणोंकी प्रीति प्राप्त होती है, नारायणके अवतारकी कथा और स्तुतिसे धर्मकी प्राप्ति होती है, जैसा वेदादि सत् शास्त्रोंमें लिखा है.

" एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवतीति " अर्थात् अच्छीप्रकारसे जाना हुआ अच्छा प्रयोग किया हुआ एक शब्दभी स्वर्गलोकमें अभीष्ट फलका देनेहारा होता है, अर्थप्राप्ति तो प्रत्यक्ष ही है, अर्थसे काम और उससे उत्पन्न हुए धर्मफलसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है, विष्णुपुराणमें लिखा है.

काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतिकान्यखिलानि च । शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः अर्थात् जो कुछ काव्यालाप और गीति हैं यह सब कुछ शब्दमूर्ति धारण करनेवाले विष्णुभगवान्के अंश हैं । इसप्रमाणसे बालकोंसे वृद्धपर्यन्त सबको ही काव्यका अनुशीलन करना उचित है, सर्व साधारणको लाभ पहुंचानाही हमारा टीका करनेका प्रयोजन है.

इसकी टीका करनेका विचार कुछ दिनोंसे हुआ ही था कि अकस्मात् वैश्यवंशावतंस सज्जनमानसहंस परोपकारनिरत गुणग्राहक सत्प्रतिपालक जगद्विख्यात श्रीवेंकटेश्वरयंत्रालयाधिपति सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयने इसकी टीका निर्माण करनेकी इच्छा प्रगट की उनकी अनुमतिसे यह टीका निर्माणकर इसका सब प्रकार स्वत्व उक्त सेठजीको समर्पण करदिया है.

उक्त सर्वगुणसम्पन्न सेठजी महाशयने जिस प्रकार अनेक विधि सन्मानादिसे हमारे निर्माण किये ग्रंथोंको छापकर हमारा उत्साह बढाया है इसी प्रकार उनके धनधान्य पुत्र संपदा सुखकी वृद्धि हो यही ईश्वरसे हमारी प्रार्थना है.

शेषमें पाठकमहाशयोंसे प्रार्थना है कि यदि कहीं टीकामें कुछ त्रुटि रहगई हो तो अपनी उदारतासे क्षमाकर हंसके समान गुणग्राही होंगे यदि विद्यार्थियोंको इससे कुछ लाभ होगा तो मैं अपना परिश्रम सफल जानूंगा.

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र,

मुहल्ला दिनदारपुरा. मुरादाबाद.

कविकालिदास ।

साधारणको विश्वास है कि राजा विक्रमादित्यकी सभामें नौ जन अद्वितीय पंडित थे इन्हीं नौ मनुष्योंको नवरत्न कहतेहैं कालिदास उसीमेंके एक रत्नहैं । इनके सम्बन्धमें अनेक स्थानोंमें अनेक प्रकारके प्रवाद हैं उन्मेंसे केवल एक प्रवाद उद्धृत करते हैं 'किसी विदुषीकन्याने वडे वडे विद्वान पंडितोंको जीतकर यह प्रतिज्ञा की कि जो कोई मुझे परास्त करदेगा मैं उसीके संग विवाह करूंगी उसकी यह प्रतिज्ञा सुन वहुतसे स्थानोंसे पंडित आये किन्तु कोई भी उस कन्याको पराजित न करसका यह देखकर उसका पिता अत्यन्त विरक्त हुआ और उसने विचार किया कि इसका विवाह किसी मूर्खके साथ करना चाहिये यह विचार उसने वहुतसे मनुष्योंको मूर्खकी खोजमें नियुक्त किया एक स्थान में उन्होंने एक पुरुषको देखा कि वह जिस वृक्षकी शाखापर वैठा है उसीको काट रहाहै वे उसे देख वहुत प्रसन्न हुए और विचारने लगे कि इससे अधिक कौन मूर्ख होगा इससे यही उपयुक्त पात्र है यह विचार उसे कन्याके निकट लाये और कहा यह महापंडित है, पर किसी विशेष नियमसे संकेत द्वारा उत्तर देंगे कन्याने यह स्वीकार कर एक अंगुली दिखाई वरने वडी शीघ्रतासे दो अंगुली दिखाई तव कन्याने तीन अंगुली दिखाई वरने चार दिखाई, तव कन्याने पांच अंगुली दिखाई वरने प्रहारकी शंकासे उसको मुष्टि दिखाई वरका उद्देश्य जो कुछभी हो परंतु कन्याने अपने को पराजित मान लिया उस समय वहुत आनन्द मान कर कन्याके पिताने उस वरके साथ कन्याका विवाह करादिया..

विवाह होनेपर अन्तर्गृहमें जाकर जव स्त्रीपुरुषोंने वार्ता आरम्भ की तव स्वामीके मुखसे ग्राम्य शब्द सुनकर कन्या अत्यन्त चमत्कृत हुई और अत्यन्त तिरस्कार कर स्वामीको घरसे वाहर निकाल दिया. कहते हैं कि वह यही मूर्ख कालिदास थे यह इस प्रकार स्त्रीसे तिरस्कृत हो प्राणत्यागकी इच्छासे सरस्वती कुंडमें कूद पडे । उसमें इनका प्राणत्याग न हुआ परन्तु मूर्खकालिदास कविकालिदास रूपसे परिणत होगये सरस्वती कुंडके माहात्म्यके अनुसार अवगाहनमात्रसेही सरस्वतीने इनके निकट उपस्थित हो वरप्रदान किया कालिदास वरदान पाय पुनर्वार स्त्रीके निकट गये उससमय गृहद्वार वंद देख इन्होंने खोलनेका अनुरोधकिया स्त्रीने स्वर सुनकर स्वामीका आगमन जानकर द्वार न खोला किन्तु गृहमध्यसे ही अस्तिकश्चिद्वाग्विशेषः प्रत्यागमनका कारण पूछा कालिदासने उसे उत्तर दियो स्त्रीने औरभी विशेष कथा पूछी और वृत्तान्त सुनकर द्वार

१ मिथिलामें प्रवाद है कि कालिदास मिथिलाके निवासी थे Journal Asiatic Society Of Bengal Vol XLVII. 1879 pt I P 33 इसी प्रकार दक्षिण देशमें भी प्रवाद है (Indian Antiquary 1879) इसप्रकार अनेक स्थानके प्रवाद पाठ करनेसे वोध होताहै कि वहांपर किसी समयमें विख्यात पंडित लोग रहते थे वहांके मनुष्य ही महाकवि कालिदासको अपने देशका और एक ही ग्रामका रहनेवाला कहते हैं । वंगालेके अन्तर्गत रंगपुरमें इसी प्रकार प्रवाद है Martin's Eastern India III P. 513

२ कपाटमुद्घाट्य चारुलोचने ! कन्दर्पशत्रुर्मम पृष्ठलग्नः । तस्यैव शान्त्यर्थं मिहागतोहं चन्द्रानने ! त्वां शरणं प्रपद्य.

खोलदिया कालिदासने 'अस्ति' 'कश्चित्' 'वाक्' इन्हीं तीन पदोंपर एक एक पद उच्चारण करके तीन काव्य स्त्रीको सुनाये! आस्तिपदके अनुसार "अस्तुत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" इस प्रथम श्लोकसे प्रारम्भकर सत्रह सर्ग कुमारसम्भव। कश्चित् शब्दके अनुसार "कश्चित्कांताविरह गुरुणा" इसश्लोकसे आरम्भकर मेघदूत काव्य और वाग्विशेष पदका वाक् पद अनुसरणकर "वागर्थाविव संपृक्तौ" इस प्रथम श्लोकसे आरम्भकर रघुवंश निर्माण किया.

इन्होंने रघुवंश कुमारसंभव यह दो महाकाव्य और मेघदूत नामक खण्डकाव्य, अभिज्ञानशाकुन्तल विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र; यह तीन नाटक प्रणयनकिये, इस समय विशेष प्रमाणसे यह बात सिद्ध है कि विक्रमादित्यकी सभामें जिन नवरत्नोंका नाम कथित है, वे पंडित एक समय नहीं थे शिलालिपी और प्राचीन ग्रन्थोंसे एकसे अधिक विक्रमादित्योंका नाम सुना जाताहै किस विक्रमादित्यके समय कालिदासथे यह निश्चय होना कठिन है, एवं उपरोक्त ग्रन्थोंके छन्दोबन्ध भाषा और कविताकी मनोहरता मिलानेसे प्रथम कहे छःग्रन्थोंके अतिरिक्त और ग्रंथ इन महाकवि कालिदासके निर्माणकिये प्रतीत नहीं होते, इन्हीं सब कारणोंसे केवल प्रवादके ऊपर निर्भरकर कालिदासकी जीवनी नहीं लिखी जा सकी.

कालिदासकी जीवनी लिखना और अन्धकारसागरमें गोता मारना एकही बात है कालिदासके सम्बन्धमेंभी भिन्न लोकोंके भिन्न २ मत हैं, बल्लाल सेनके भोजप्रबन्धके अनुसार बोध होता है कि कालिंदास उज्जयनीनिवासी भोजराजाके सभासद थे, इन भोजराजका राजत्वकाल ११०० खिस्ताब्दमें निश्चय किया है.

भोजप्रबन्धमें कालिदासके समय इन पंडितोंका नाम पाया जाता है, कर्पूर, कालिंग, कामदेव कोकिल, गोपाल देव, तारेन्द्र, दामोदर, धनपाल, प्रसन्नराघव ग्रंथकार जयदेव, बाणभट्ट, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुचुकुन्द, रामेश्वरादि, वेदान्ताचार्यकृत विश्वगुणादर्शसे जाना जाता है कि कालिदास, श्रीहर्ष और भवभूति यह भोजराजके समयमें वर्तमान थे, किन्तु विशेष प्रमाण पायागया है कि यह सवही पंडित कालिदासके समयमें नहीं थे।

ज्योतिर्विदाभरण नाम एक ज्योतिषका ग्रंथ कालिदासके नामसे प्रसिद्ध है, ग्रंथमें लिखा है कि धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह; शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, सुविख्यात वराहमिहर, और वररुचि विक्रमके नवरत्नोंमेंसे थे "शकराजाओंमेंसे पिचानवेंको मारकर विक्रमने कलियुगमें अपना सम्वत् स्थापन किया, मुझ कालिदासने कलियुगके ३०६८ वर्ष वीतनेपर वैशाखमासमें इस ग्रंथको प्रारम्भ कर कार्तिक मासमें परिपूर्ण किया" इसके सिवाय २० अध्यायके ४६ वें श्लोकमें लिखा है इस समयभी काम्बोज गौड अन्ध मालव और सौराष्ट्र देशीय गण विख्यात वदान्यवर विक्रमके गुण वर्णन करते है.

१ बुद्धगया के १००५ विक्रम सम्वत्की खोदी हुई अमरदेवकी शिलालिपिमें इन नवरत्नोंका नाम है
२ कालिदास और बाण यह श्रीहर्षसे बहुत पूर्व थे यह बाणभट्टका हर्षचरित्र पाठ करनेसे जानाजाताहै
३ Weber's Sanskrit Literature P 204

भिन्नविषयोंके होनेसे भोजप्रबन्ध और ज्योतिर्विदाभरणको प्रमाणिक ग्रंथ नहीं मानसक्ते, क्योंकि प्रथम तो पहले लिखे नवरत्न एकसमयमें नहीं हुए, द्वितीय ज्योतिर्विदाभरणकी रचनाका प्रकार देखनेसे वह किसी प्रकार इन कालिदासका बनाया विदित नहीं होता, ज्योतिर्विदाभरणका अन्तिम वर्णन जो अभी बीसवें अध्यायसे उद्धृत करचुके हैं, उसके पढनेसे विदित होता है कि ज्योतिर्विदाभरण बनाये जानेसे बहुत पहले राजा विक्रमादित्य वर्तमान थे, और ज्योतिर्विदाभरणके समयमें राजा विक्रमादित्यका सम्वत् और यश चारोंओर फैल गया था.

जर्मनदेशीय पंडित लासनका कथन है कि कालिदास खिष्टाब्दकी दूसरी शताब्दीमें समुद्रगुप्तकी सभामें विद्यमान थे[१] विलफोर्ड और प्रिन्सेप साहेब कालिदासको १४०० चौदहसौ वर्ष हुए बताते हैं, जर्मनपंडित वेबरने ईसाकी दूसरी शताब्दीसे लेकर चौथी शताब्दीके बीचमें कालिदासका होना लिखा है, जेकोबिसाहबने कालिदासके ग्रंथमेंसे 'ज्योतिषिक' शब्द ग्रहण करके निर्णय किया है कि कालिदास ग्रीकदेशके ज्योतिषको जान्ते थे, और इसके अनुसार ३५० खिष्टाब्दसे पहले उनका होना उपपन्न नहीं हो सक्ता ज्योतिषी कैर्न एव्म भाउदाजी व मैक्समूलर इत्यादि कालिदासका होना ईसाकी छठीं शताब्दीमें मान्ते हैं.

इस देशके पंडित अक्षयकुमार ईसाकी चौथी शताब्दीके मध्यभागके पश्चात् छठवीं शताब्दीके शेष भागसे पहले और ऐतिहासिकरहस्यके बनानेवाले श्रीयुत डाक्टर रामदास छठी शताब्दीमें कालिदासका होना मान्ते हैं, वह कहते हैं कि उज्जयनीके राजा हर्ष विक्रमादित्यने मातृगुप्त कविपर प्रसन्न होकर उसे काश्मीरका राज्य देदिया, वरन ऐसाभी सुनेमें आता है कि विक्रमादित्यने कालिदासको आधाराज्य देदियाथा, राजतरंगिणीमें कल्हन पंडितने राजा मातृगुप्तको कवि लिखा है हर्षचरित्रके प्रारंभमें प्रवरसेन और कालिदासका नाम पाया जाता है । वितस्तानदीके ऊपर प्रवरसेनने एक बडाभारी पुल बनायाथा, कालिदासने उसही पुलके वर्णनमें 'सेतुकाव्य' लिखा, सेतुप्रबन्धके टीकाकार रामदासनेभी कालिदासको सेतुबन्धका बनानेवाला कहा है, प्रवरसेनको काश्मीरका राज्य देकर मातृगुप्त काशीको चलागया राघवभट्टने शकुन्तलाकी टीकामें मातृगुप्ताचार्यके ग्रंथमेंसे कितने एक अलंकारके श्लोक निकाले हैं उनके पढनेसे वह किसी बडेभारी कविके बनाये पाये जाते हैं, वरन कालिदासकोभी उनका कर्ता कहा जा सकता है, तोरमानका पुत्र प्रवरसेन, वज्रेन्द्रकी बेटी अंजनाके गर्भसे उत्पन्न हुआथा, पहले तोरमानका भ्राता हिरण्य काश्मीरमें राज्य करताथा, उसने तोरमानको बन्दी

१ Journal Asiatique Sept 1844 P 250)

२ Indische ALterthumskunde II 457, 1158—60

३ Monats berichte der Koniglcek Preussischen Akademie der Wissenchaften Zu Berlin 1873 P 554-558.

४ Kern's Brihat-Sanhita p. 20 Bhau Daji in the journal of the Bombay Branch Roy. As. Soc. 1861 P. 19, 30, 200, 207, Max Muller's India, What can it teach us. P. 320

करलिया, तोरमान और हिरण्यके मरनेपर पहले तो प्रवरसेनने उत्तराधिकार नहीं पाया, वरन इस बातका बहुतही झगडा किया कि यथार्थ कौन इस राज्यके पानेका अधिकारी है, उस समय उज्जयनीका राजा विक्रमादित्य (दूसरा नाम हर्ष) भारतवर्षमें एकछत्र राज करता था, उसनेही मातृगुप्तको काश्मीरका राज्य देदिया, यही मातृगुप्त कालिदास हुवा मेक्समूलरके मतसे तोरमान खिष्टाब्द सन् ५०० और प्रवरसेन ५५० खिष्टाब्दमें विद्यमानथो इस कारण कालिदास और विक्रमादित्यका उस समयमें वर्तमान होना संभव नहीं.

ऊपर की कोईभी सम्मति सत्य नहीं जान पडती, मातृगुप्त और कालिदासको एक पुरुष नहीं माना जासक्ता, प्रथम तो किसी प्राचीन पुस्तकमें कालिदास और मातृगुप्तका एक होना नहीं लिखा है, राजतरंगिणीमें कविने मातृगुप्तके वर्णनमें बहुतसी बातें लिखी हैं, परन्तु कल्हन पंडितने एकबारभी उसको कालिदास नहीं कहा, यदि मातृगुप्तका कालिदास होना पंडित कल्हनको विदित होता तो वह अवश्य लिखजाता, बस जो बात कल्हन पंडितको विदित न थी, उसबातका अनुमान करके हम कैसे विश्वास करलें, क्षेमेन्द्रके बनाये औचित्य विचार चर्चा सुभाषितावली और सूक्तिकर्णामृत ग्रंथमें कालिदास और मातृगुप्तके श्लोक पृथक् २ लिखे हैं, जो श्लोक मातृगुप्तके नामसे इन ग्रंथोंमें लिखे हैं, उनमें किसीमें भी कालिदासके नामका चिह्न नहीं है, परन्तु जो श्लोक कालिदासके नामसे उतारे गये हैं वह सब कालिदासके बनाये काव्य नाटकादिमें पाये जाते है, उक्त पुस्तकोंसेभी कालिदास और मातृगुप्तका पृथक् पृथक् होना निश्चित है.

कर्पूरमंजरीके बनानेवाले वासुदेवने अपने ग्रंथमें मातृगुप्तको अलंकार बनानेवाला कहा है, सुन्दर मिश्रके नाट्य प्रदीप पढनेसे विदित होता है कि मातृगुप्तने भरत मुनिके बनाये नाट्य शास्त्रकी विवृत्ति बनाईथी, परन्तु कालिदासही जो मातृगुप्त होता तो प्रवादके बीच अवश्यही उसका नाम इन ग्रंथोंकी रचनामें पाया जाता.

इतने प्रमाणोंसे विदित हुआ कि मातृगुप्त अलगही कोई कवि था, अब यह देखा जाता है कि कालिदास, प्रवरसेन, हर्ष विक्रमादित्य और मातृगुप्त एकही समयमें हुएथे, इसी कारण जो कालिदासकोभी इसही समयका मानलिया जाय तो उन पंडितोंकेभी अनुमानमें विवश होकर कुछ कुछ सत्य मानना पडेगा.

डा० भाऊदाजी इत्यादि पुरावृत्त जाननेवालोंने हर्षचरित्रमें प्रवरसेन और कालिदासका नाम देखकर इन दोनोंका एकही समयमें होना माना है वह श्लोक यह है—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ १४ ॥

---

१ Dr. Bhao Daji in Journal of the Royal Asiatic Society Bombay Vol VIII P 249-50

२ Max Muller's India What can it Teach us P. 319. परन्तु शिलालिपिसे तोरमान सन् ई० ५०० के कुछ पहले और उसका पुत्र मिहरकुल ई० ५३३।५३४ से कुछ पहले हुआ जान पडता है. Elect's inscription indiear Vol III.

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव + ॥ १६ ॥
निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ॥
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ १७ ॥

इन श्लोकोंसे प्रवरसेन और कालिदासका प्रसिद्ध कवि होना विदित होता है, परन्तु स्फुट इनका एक समयमें होना बुद्धिमें नहीं आता, राजा रामदासरचित रामसेतुप्रदीप नामक सेतुबन्धकी व्याख्याकी सूचनामें लिखाहै—

"इह तावन्महाराजप्रवरसेननिर्मितं महाराजाधिराजविक्रमादित्येनाज्ञप्तो निखिलकविचक्रचूडामणिः कालिदासमहाशयः सेतुप्रबन्धंचिकीर्षुः"

अर्थात् राजा प्रवरसेनके निमित्त राजा विक्रमादित्यकी आज्ञासे कालिदासने सेतुबन्ध नामक ग्रंथ बनाया।

राजतरंगिणीमें लिखाहै कि जब प्रवरसेन काश्मीरका राजा हुआ तबसे बहुत पहलेही हर्ष विक्रमादित्यकी मृत्यु होगई थी।

राजतरंगिणी (३ । ३८९ । ३९० । इसकारण विक्रमादित्यकी आज्ञासे प्रवरसेनके लिये कालिदासका प्राकृत भाषामें सेतुबन्ध बनाना संभव नहीं होसक्ता, रामदास खिष्टाब्दकी सोलहवीं शताब्दीमें हुआथा,उससे पहले हुए कुलनाथने अपने बनाये रावणवधके टीकाकी सूचनामें लिखाहै.

'श्रीचन्द्रचूडचरणाम्बुरुहं प्रणम्य, देवीं प्रसाद्य च गिरं कुलनाथनाम्ना ॥ व्याख्यायते प्रवरसेननृपस्य सूक्तं सन्देहनिर्भरदशास्यवधप्रबन्धम्'

यहांपर कुलनाथने राजा प्रवरसेनकोही सेतुबन्धका बनानेवाला कहा है.

औचित्य विचारचर्चा, सूक्तिकर्णामृतादि ग्रंथोंके पढनेसे प्रवरसेनका प्रसिद्ध कवि होना प्रमाणित होताहै, हर्षचरितके दो श्लोक मनलगाकर पढनेसे विदित होताहै कि बाणभट्टके पहले राजा प्रवरसेन सेतुकाव्य और कालिदास काव्य और नाटक बनाकर प्रसिद्ध हुए थे.

अब जानागया कि कालिदास और मातृगुप्त पृथक् पृथक् थे, कालिदासने सेतुबन्ध नहीं बनाया, और वह प्रवरसेन अथवा हर्षविक्रमादित्यके समय में थे या नहीं इसबातका कोई पूरा प्रमाण नहीं मिलता, अब फिरभी प्रश्न उठा कि कालिदास किस समयमें वर्तमान थे.

प्राचीन कवि बाणभट्ट, वाक्पति, खण्डनखाद्यके बनानेवाले श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, वामनादि अनेक प्राचीन कवियोंने कलिदासका नाम लिखाहै, वरन शकाब्द ५५६ में दियेहुए चौलुक्य राज्य पुलिकेशीके ताम्रशासनमें कालिदास और भारविका नाम पाया जाता है.

येनायोजित वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ॥

+ भाऊदाजीने मेक्समूलरादिके हर्षचरित्रसे जहांपर यह श्लोक उतारे हैं वहांपर यह श्लोक नहीं लिखा॥

१ त्रिगर्तानाम्भुवं जित्वा सत्रजन्नथ भूपतिः। विक्रमादित्यमश्रृणोत् कालधर्ममुपागतम्

२ राजतरंगिणीमें ३ । ३९०

३ सेतुबंधका दूसरा नाम रावणवध या दशास्य प्रबन्ध है,

सुप्रसिद्ध कुमारिल भट्टने अपने किये तन्त्रवार्तिक में कालिदासकी शकुन्तलाका 'सत्यं हि सन्देहपदेषु' यह वचन उद्धृत कियाहै इसके सिवाय भोटदेशके तञ्जौर ग्रंथमें कालिदासका नाम एवं यव और वलिद्वीपकी कविभाषामें रघुवंश और कुमारसंभवका अनुवाद पाया जाताहै.

पाश्चात्यपंडितों का मत है कि हिन्दुओंने ६०० खिष्टाब्दमें यवद्वीपमें जाकर वासकिया, इससे यह बात कुछ असंभव नहीं ज्ञातहोती, कि उनके यैवद्वीप में जानेसे पहले कालिदास विद्यमानथे.

विलायतवाले और कोई कोई देशी लोगभी लिखतेहैं कि कालिदास के ग्रंथोंमें होरा शास्त्रीय ग्रीक शब्दका वर्णन है; ग्रीकलोगोंका होराशास्त्र ईसाकी तीसरी शताब्दीमें बनकर पूर्ण हो गया, इसकारण इस शताब्दीके उपरान्त भारतवासियोंने यह शास्त्रग्रहण किया है जिसशास्त्र में जातक यात्रिक, और विवाह लग्नादिकही हैं, वराहमिहिरने उस शास्त्रकाही होरा नाम रक्खा है.

यद्यपि होरा शब्द किसी प्राचीन ग्रंथमें नहीं पाया जाता, परन्तु इस शब्दका प्रतिपादन करनेवाले अनेक मूल विषय रामायण महाभारतादि अतिप्राचीन ग्रथो में पाये जाते हैं, बस होरा शास्त्रका प्रतिपादन करने वाले मूलतत्त्वको ग्रीक होरा शास्त्र बनाये जाने के बहुत पहले भारतवासी जान्तेथे. इसमें कोईभी सन्देहनहीहै, वराहमिहिरने यवनाचार्यके ग्रन्थसे होरा शास्त्रकी अनेक बातोंका संग्रह कियां है.

यवनाचार्य वा यवनेश्वर प्रणीत अष्टक वर्ग, विन्दुफल, ताजक, शास्त्र नक्षत्र चूडामणि मीनराज जातक, यवनसार, यवनहोरा, रमलामृत, लग्नचन्द्रिका, वृद्धयवनजातक, स्त्रीजातकादि कितने एक ग्रंथ मिलतेहैं, वराहमिहर कृत बृहज्जातक भट्टोत्पल केशवार्क और मार्तण्डचिन्तामणिकी टीकामें विश्वनाथ ने यवनाचार्य के संस्कृत वचन लिखे हैं, इनके सिवाय रोमक सिद्धान्त नामक संस्कृत भाषामें ज्योतिषका ग्रंथ पायाजाता है शाकल्य संहिता हायनरत्न ज्ञानभास्करादि ग्रंथोंमें और वराहमिहरादि ज्योतिषियोंनेभी रोमाचार्य के संस्कृत वचन अपने २ ग्रंथोंमें लिखे हैं।

ऊपरके प्रमाणों से विदित होतां है कि भारतवर्षीय ज्योतिषियों ने होराशास्त्रकी किसी २ बातमें संस्कृत भाषामें लिखेहुए यवन और रोमाचार्य के ग्रथों से सहायता लीहै,परन्तु यह बात नहीं पाई जाती कि उन्होंने ग्रीक वालों के ग्रंथ पढकर होरा शास्त्र लिखाथा पहले तो यह देखनाचाहिये कि कालिदासने यवन शब्दसे किसदेशके मनुष्य वा किसजातिका वर्णनकिया है रघुवंशमें लिखाहै—

पारसीकांस्ततोजेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना । यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ॥
संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः, शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधेरजस्यभूत् ॥
भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् । अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ॥

रघुने पारसियोंके जीतनेके निमित्त थलके मार्गसे गमन किया, वे यवनियोंके मुखकमलका मधु न सहसके, उस काल उन घुडसवार (पारसी) यवन मनुष्योंके साथ उसका घोर संग्राम

---

१ Webers Sanskrit Literature P. 208.

२ जो यवनाचार्यके इन ग्रंथोंका ग्रीकभाषामें अनुवाद होता तो अवश्य ही कोई २ मूल ग्रंथभी ग्रीकवालोंके यहां मिलता परन्तु अबतक वहां कोई मूलग्रंथ नहीं मिलता.

३ 'पाश्चात्यैर्यवनैः सह, इति मल्लिनाथः ।

हुआ, धूरिसें रणभूमि छा गई, उस समय धनुषकी टकारके शब्दसेके योधाओंका ज्ञान हाताथा महावीर रघुने यवनोंके डाढीमूछोंसे शोभित शिर भल्लास्त्रसे काट कर रणभूमिको ढक दिया तब बच हुय यवनोंने माथेकी टोपी उतार कर रघुको शरण ली.

कालिदासने पारसियोंको यवन और उनकी स्त्रियोंको यवनी लिखा है, कालिदासके सिवाय महाभारतमें भी फारसके निकट रहनेवाले बाल्हीक लोगोंकी स्त्रियोंको मदिरा पीनेमें आसक्त बताया है, यास्क निरुक्त पढनेसे यह विदित होता है, कि वाल्हीकसे पूर्वकी ओर रहनेवाले प्राचीन कम्बोज देशके मनुष्य संस्कृतभाषामें बात चीत करते थे, सब पुराणोंकी सम्मतिसे भारतवर्षकी पश्चिमसीमा पर यवन और महाभारतमें रोमनामक देश भारतवर्षके अन्तर्गत कहा गया है, सभापर्व भीष्म प० अ० ९ इन प्रमाणोंसे यवनाचार्य और रोमकाचार्यको रोम या ग्रीस देशका रहनेवाला नहीं कहा जा सक्ता.

प्राचीन पारसीलोगोंकी व्यवहार की हुई प्राचीन जन्दभाषा वैदिक छान्दस भाषाका दूसरारूप और अपभ्रंश है पुराने समयके पारसीलोग होराशास्त्रका मूल तत्त्वजान्ते थ, इस बातका अनुमान प्राचीन अवस्था और यवनादि ग्रंथोंके पढनेसे मिलता हैं.

सूर्यसिद्धान्तके मतसे सूर्यके अंशसे उत्पन्नहुये मयनामक असुरने ज्योतिश्शास्त्रका प्रचार किया, विलायतके पंडितोंने मयको ग्रीक ज्योतिषी तुरमय (Ptolemaios) माना है (३) परन्तु हमारे विचारसे पारसियोंके अवस्ताशास्त्रमें कहा हुआ ज्योतिःप्रकाशक सूर्यांश ' अहुर सयद ' संस्कृतमें कहा हुआ " असुर मय " विदित होता है:

यदि असुरमयसेही प्रथम ज्योतिःशास्त्रको निकाला हो तो यह बात असंगत नहीं होगी कि भारतवासियोंनें कोई२ बात ज्योतिषकी प्राचीन पारसी अथवा उनके निकट रहनेवाले यवनोंसे सीखीथी इस्से ग्रीक होराशास्त्रके प्रमाणोंसे कालिदास ४०० चारसौ खिष्टाब्दके उपरान्त हुए थे यह नहीं कहा जा सक्ता

---

१ यूरोपीय रोमदेश ' रोमूलस ' (Romulus) नाम एक एक आदमीके नामसे बसा है (७५३ पू:) ट्रैययुद्धसे आये हुए इनियससेभी पीछे (रोमूलस) हुआथा, परन्तु उस इनियसकेभी ब त पहले महाभारतमें रोमक और रोमनदेशका वर्णन रहनेसे उसको वर्तमान रोमका नाम नहींदे सक्ते.

२ See Edicst Of Asok Inscriptionum Lndicarum Vol I and Weber's Sanskrit Literature P. 253.

३ संस्कृत असुर पारसीमें ' अहुर ' और ' मय ' स्थानमें ' मयद ' हुआ है जिस प्रकार सिंधुके स्थानमें हिंदु और सप्तस्थानमें हफ पद सिद्ध हुआ है वैसे ही संस्कृत सौरं स्थानमें पारसिक ' होर (पुं. सूर्य) पद सिद्ध होता है ' प्राचीन पारसी सूर्यको पुलिंग ' कहुत ' परन्तु हेराशास्त्रमें इसका व्यवहार ग्रीकलोग स्त्रीलिंगसे करते हैं इस भांति हेरा शब्द ग्रीक भाषामें स्त्रीलिंगरूपको प्राप्त हुआ है See English Cyclopadia Science Vol I. P. 657

४ कालिदासके कुमारसम्भवमें जामित्र शब्द रहनेसे अनेक लोग उस शब्दको ग्रीक हारा शास्त्रमें कहा हुआ (डियामिट्रस वा डियामिट्रन) शब्दका अपभ्रंश कहते हैं, परन्तु हमने ग्रीक होरा शास्त्रके पूर्ण होने और ईशाके जन्मसे बहुत पहलेके बने हुए (होमरू) आदि ग्रंथोंमें ' डियामिट्रन ' शब्द दखा है फिर इस शब्दके ऊपर भरोस. रखकर कालिदासको तीसरी शताब्दीका मनुष्य नहीं कहा जा सक्ता.

कालिदासकी शकुन्तलामें धनुष और वनके फूलोंकी माला धारण करनेवाली यवनियें मृगया प्रेमी हिन्दुराजाके साथ रहनेवाली कही गई हैं, यथा "एसो बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमाला धारिणीहिं पडि वुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो (अभि० श० २ अं०)

इतिहासजाननेवालोंने इन स्त्रियोंको वाल्हीक लोगोंकी स्त्रियें बताया है, इस प्राचीन कालसे वाल्हीक लोगोंके साथ भारतवर्षका सम्बन्ध रहनेके बहुतसे प्रमाण मिलते हैं परन्तु ईसाकी पहली शताब्दीसे यह सम्बन्ध टूटगया ऐसे अवसर पर जब कि वाल्हीकदेशीय पुरुषोंके साथ भारतवर्षके रहनेवाले आर्योंको सम्बन्ध था, तब उस समय कालिदासका होना कुछ असम्भव विदित नहीं होता

खिष्टाब्दकी पहली शताब्दीका एक पत्थर नासिकसे निकला है इसमें शकारि नाम खुदा है विक्रमादित्यका एक नाम शकारिभी था, भारतवर्षमें बहुत लोग कहते हैं कि कालिदासभी इसी राजा विक्रमादित्यके समयमें हुये, यदि लोगोंके कहने में कुछ सत्यता हो तो पहली शताब्दीके भी पहले शकारिके समयमें कालिदासका होना बहुत ठीक है, मेघदूतमें २९ से लेकर ४३ श्लोकतक मन देकर पढनेसे कुछ २ अनुमान होता है कि कालिदास उज्जयनीके निवासी थे.

बहुतसी पुस्तकोंमें कालिदासका नाम चल रहा है, परन्तु यह सबही महाकवि कालिदासकी बनाई विदित नहीं होतीं, प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथने रघुवंश, कुमारसम्भव, और मेघदूत महाकाव्यकोही महाकवि कालिदासका बनाया हुआ लिखा है, नाटकोंके बीचमें शकुन्तला और विक्रमोर्वशीही महाकविजीके करकमलसे निकली हैं, कोई कोई मालविकाग्निमित्र नाटक और ऋतुसंहार खण्डकाव्यको कालिदासका बनाया हुआ मान्ते हैं, परंन्तु शकुन्तला और मालविकाग्निमित्रकी रचनामें बहुत भेद है, इस कारण मालविकाग्निमित्रको इन कालिदासरचित कहनेमें सन्देह है. यह औरोंका मतहै पर हमारीसमझमें इन्हींकालिदासके अनेक ग्रंथहैं पर बहुतसे औरोंके भी हैं.

संस्कृतके साहित्यमें संसारमें कालिदास एक महाकवि हुए, मनुष्यका चित्र खेंचने, स्वभाव वर्णन करने, और मधुरछन्द गूथनेमें कालिदासकी बराबर काव्य संसारमें वाल्मीकिजीके सिवाय और किसीने जन्म नहीं लिया, कालिदासने अपने बनाये प्रत्येक ग्रंथमें अपनी अनुपम कवित्वशक्तिका प्रमाण दिया है.

---

१ और किसी संस्कृत काव्य नाटकमें हिन्दु राजाके साथ रहनेवाली धनुषबाण धारण किये हुए यवनियोंका ऐसा चित्र अंकित नहीं हुआ यह बातभी ऊपरके मतको पुष्ट करती है।

२ मल्लिनाथकविः सोयं मन्दात्मानुजिघृक्षया । व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम् ॥ कालिदासगिरांसारं कालिदासः सरस्वती । चतुर्मुखो यथा साक्षाद्विदुर्नान्येतु मादृशाः ॥

रघु० मल्लिनाथ कृत संजीविनी टीका ।

उपरोक्त ग्रंथोंके सिवाय अम्बास्तव, कालीस्तोत्र, काव्यनाटकालंकार, घटखर्पर, चण्डिकादण्डस्तोत्र, दुर्घटकाव्य, नलोदय, नवरत्नमाला, नानार्थकोष, पुष्पवाणविलास,प्रश्नोत्तरमाला, राक्षसकाव्य, लघुस्तव, विद्वद्विनोदकाव्य, वृत्तरत्नावली, वृन्दावनकाव्य, शृंगारतिलक, शृंगारसार, श्यामलादण्डक, श्रुतबोध इत्यादि यद्यपि कालिदासके बनाये कहे जाते हैं, परन्तु निःसन्देह यह पुस्तकें पृथक् २ पंडितोंने समय २ पर बनाई हैं, बहुत मनुष्योंका विश्वास है कि नलोदय महाकविकालिदासने बनाया है परन्तु हमने विशेष प्रमाण पाया है कि यह ग्रंथ नारायणके पुत्र रविदेवने निर्माण किया है, इस ग्रंथकी रामऋषिकृत प्राचीन टीकामें इसका प्रमाण पाया जाता है.

देवभूरचित कविकल्पलता, और राजशेखरके प्रबन्धकोषमें तीन कालिदास पाये जाते हैं बलभद्रके पुत्र कालिदासका बनाया कुण्डप्रबन्ध और रामगोपालके पुत्र कालिदासकी बनायी त्रिपुरसुन्दरीस्तुति टीका प्रचलित हो रही है.

ज्योतिर्विदाभरण, रत्नकोश, शुद्धिचन्द्रिका, गंगाष्टक, और मंगलाष्टक इत्यादि ग्रंथ कालिदास नामधारी पृथक् पृथक् मनुष्योंके लिखेहुए हैं, इसके सिवाय कालिदास गणकनामक एक मनुष्य था, उसका बनाया हुआ शत्रुपराजय, शास्त्रसार, अभिनव कालिदासका बनाया हुआ अभिनव भारतचम्पू और भागवत चम्पू, अभिनवकाश्यप कालिदासकृत शृङ्गारकोष, भाण नवकालिदास रचित सारसंग्रहकाव्य पाया गया है.

"पिछले वर्ष नेपालसे रघुवंशकी एक पुस्तक पाई गई थी उसमें पहलेको दो पृष्ठ नहीं शेष सब हैं पुस्तकके पीछे लेखकने सम्वत् भी दिया है"

"इति मिश्रकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये एकोनविंशः सर्गः समाप्तः।

लसम ४१७ माघी पूर्णिमायां तिथौ कुजे ए दीने वीरपुरग्रामे लिखितमिदं पुस्तकं श्रीविश्वनाथ शर्मभिरिति"

लसम लक्ष्मण सम्वत् का चिह्न है लक्ष्मणाब्दके आरम्भ होनेके विषयमें पंडित लोगोंका मतभेद है पं० किल हरणाने Endiau Antiquary इण्डियन एनटीक्वायरी नामक पत्रिकाके उन्नीसवें खण्डमें लिखा है कि सातवीं अक्टूबर १११९ खिष्टाब्दमें कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा अतीत शकाब्द १०४१ लक्ष्मणाब्द आरम्भ हुआ इस हिसाबसे यह पुस्तक १५३० खिष्टाब्दके प्रारंभमें लिखी गई थी, अर्थात् वह पुस्तक ३५८ वर्षकी पुरानी है.

यह पोथी तिरहुत बंगाला अक्षरमें लिखी है र के नीचे—ऐसा चिह्न है व ब में कोई भेद नहीं है, पोथीमें पाठभेद अधिक हैं,स्याही कहीं कहीं अधिक फीकी पडगई है कोई२स्थल नहीं पढा जाता.

इस पुस्तकके अन्तमें मिश्र कालिदास यह शब्द होनेसे कालिदासके ब्राह्मण होनेमें कोई सन्देह नहीं, हम जहांतक जान्ते हैं वहांतक मालूम होता है कि उडीसा और विहारके ब्राह्मणोंकी

१ R. G. Bhandarkar's Reports Sanskrit Miss For 1883-4) P. 16
२ Prof, Petersom's Brd Report on the Search For sans. Miss P. 337
३ यह ग्रंथ सन् १७५१ ईस्वीमें बना.
४ माध्वाचार्यने अपने संक्षेप शंकरजयमें अपना नाम अभिनव कालिदास लिखा है.

मिश्र उपाधि है उडीसाके मिश्र बाजपेयी शतपथी इत्यादि ब्राह्मणलोग अपनेको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं, इसी प्रमाणसे कालिदासको भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा जा सक्ता है,न वह महाराष्ट्रीय थे न बंगाली; काशी या कोशलामें कहीं उनका जन्म हुआथा, फिर वे उज्जयनीके सभासद हुए. इधर एक और दूसरा प्रमाण देखनेसे इनके समयका प्रौढ निश्चय दूसरी प्रकारसे होता है साधारण और पुष्ट प्रमाण इस विषयका यह है कि कुमारिलभट्टने अपने बनाये तंत्रवार्तिक नामक ग्रंथके एक पद्यार्धको पूर्ण करनेके लिये "सतांहि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः" इस कालिदासकृत शकुन्तलाके पद्योत्तरार्धको उद्धृत कियाहै, और कुमारिलभट्टका होना शंकराचार्यके समकालीन निर्विवाद है जिनका आविर्भाव युधिष्ठिर सम्वत् २६३१ में हुआ है इस समय युधिष्ठिर सम्वत् ५००९ होनेसे इतना तो स्पष्टही है कि उक्त महाकवि अबसे २३७८ वर्ष पूर्व अवश्य थे, उक्त समयमें आदि शंकराचार्यके होनेमें प्रमाणरूपसे इतना ही बहुत है कि श्रीमान् आदि शंकराचार्यजी महाराजको दिये हुए राजा सुधन्वाके ताम्रपत्रमें युधिष्ठिरका सम्वत् २६६३ है इससे यह स्पष्ट है कि यह पत्र शंकराचार्यकी ३२ वर्षकी अवस्थामें लिखा-गया, ऐसे शंकराचार्यका समय निर्णय होनेसे उनके समकालिक कुमारिलभट्टका भी समय निर्णय होगया, ऊपरकहे हुए हेतुके अनुसार निःसन्देह यह सिद्ध है कि कालिदास कुमारिलभट्टसे पूर्व हुए परन्तु विशेष निश्चय ऐसे होसकता है कि कालिदासकृत मालविकाग्नि मित्र नाटकके अन्तमें कविके 'सम्पत्स्यते न खलुगोप्तरिनाग्निमित्रे' इस पदमें गोप्तरि इस वर्तमानताबोधक सप्तम्यन्त प्रयोगसे जाना जाताहै कि उक्त कवि अग्निमित्रके शासन कालहीमें उत्पन्न हुए और अग्निमित्र शुंगवंशका द्वितीय राजा था, अग्निमित्रकी समयव्यवस्था यह है.

पाण्डवाके उपरान्त १००० वर्षतक बार्हद्रथ, फिर १३८ वर्षतक प्रद्योत, पश्चात् ३०० वर्ष तक शिशुनाग, फिर १०० वर्षतक नन्द पश्चात् १३७ वर्षतक मौर्य और पीछे शुंगवंशी राजा हुए जिनमें यह दूसरे थे इन वर्षोका जोड १६७५ होताहै और वर्तमान युधिष्ठिर सम्वत् ५००९ मेंसे इसको निकालनेसे ३३३४ वर्ष अवशिष्ट रहतेहैं यही शुंगवंशकी स्थितिका समयहै इसी अवसरमें कालिदासभी थे इससे स्पष्ट है कि महाकविकालिदासने ईसवी सन् से पन्द्रहवीं शताब्दी पूर्व इस भारतवर्षको शोभित कियाथा.

यह हिसाब निर्भ्रान्तहै यदि किसीप्रकारसे इस गणितको कोई उलंघनभी करसके तो भी कालिदासका समय महाराज विक्रम वा भोजके समयसे पीछे किसी प्रकारभी प्राचीन प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता, इसका अविकल इतिहास न मिलनेसे ही हमको इतना अनुमान और प्रमाण संग्रहकरना पडाहै आशा है कि पाठक इस निबन्धको देखकर प्रसन्न होंगे

सज्जनोंका अनुगृहीत.

२१।१२।०७ ज्वालाप्रसाद मिश्र,

दिनदारपुरा–मुरादाबाद.

रघुवंशका संक्षेप

प्रथमसर्ग.

शिवपार्वतीकी वन्दना, रघुवंशके गुण कथन, राजा दिलीपकी मनुवंशमें उत्पत्ति, उसकी कीर्तिका वर्णन, पुत्र न होनेके कारण पृथ्वीकी पालना रक्षामें मंत्रियोंको नियुक्त कर राजाका गुरुवशिष्ठके आश्रममें रानीसहित जाना, और अपना दुःख कहना, वशिष्ठका ध्यानसे राजाके सन्तान न होनेके कारण जान कर राजासे कहना कि इन्द्रलोकसे लौटते हुये तुमने कामधेनुकी प्रदक्षिणा नहीं की, इस कारण उसने शाप दिया है कि मेरी सन्तानके आराधन विना राजाके सन्तान न होगी, आकाशगंगामें दिग्गजोंके स्नान करनेके शब्दसे तुमने वह शाप न सुना, इस समय वह गौ वरुणके यहां यज्ञमें है, उसकी पुत्री नन्दिनी हमारे यहां है, इसकी तुम विधिपूर्वक टहल करो, जब यह चले तो चलो बैठने पर बैठो, जल पीनेपर पिओ संध्याको इसके पीछे आओ, इसके सोजाने पर शयन करो, और आते जाते समय रानी इसकी पूजा करे, इस प्रकार करनेसे यह प्रसन्न हो सर्व मनोरथ पूर्णकरदेगी राजाने यह स्वीकार किया और रात्रिको गुरुकी बताई पर्णशालामें दोनों सोरहे ॥ १ ॥

दूसरासर्ग.

प्रातःकाल होतेही रानीसहित राजाने गौका पूजन कर बछडेको दूध पिलाय गौको वनजानेके निमित्त छोडा, और आप उसकी सेवा करनेको साथ चला, थोडी दूर चलकर रानीको लौटादिया, और गुरुके कहे अनुसार सेवा करने लगा, डांस उडाता, सुन्दर घास लाकर खवाता, खडी होने पर खडा होता, बैठने पर बैठता, बहुत क्या छायाकी समान राजा उसके पीछे चलने लगा, संध्याको आश्रममें आता, उस समय रानीभी गौकी पूजा करती, दूध दुहजाने पर राजा फिर उसकी सेवा करता, इस प्रकार सेवा करते २ इक्कीस दिन बीतगये, तब गऊ राजाकी परीक्षा लेनेकी इच्छासे हिमालयपर्वतकी गंगाकिनारेवाली गुफामें प्रवेश कर गई, वहां उसे एक सिंहने पकडलिया, राजाने यह देख धनुपपर वाण चढाया, परन्तु राजाका हाथ वैसेही स्थित रहगया, तब सिंहने कहा राजा मैं कुम्भोदर नाम शिवजीका गण हूं, तुह्मारे आगे जो यह देवदारूका वृक्ष है, इसे पार्वतीने सींच कर पुत्रवत् पालाहै, एक समय बनैले हाथियोंने आनकर शिर खुजाकर इसकी छाल छुटा दी, तब पार्वतीके शोचकरने पर शिवजीने मुझे सिंह बनाकर इस वृक्षकी रक्षाको यहां रखदिया है,

और कह दिया है जो कोई जीव इस गुफामें आजाय, उसे भक्षण करो, सो आज परमेश्वरकी दी हुई यह गौ आगई है सो मै इसे नहीं छोडूंगा, तेरा पराक्रम मुझपर नहीं चलेगा, तब राजाने कहा शिवभी मेरे मान्य है, परन्तु यह गुरुका धनभी नेत्रोंके सामने नष्ट नहीं किया जा सक्ता, इस्से इसके बदलेमें तू मुझे खा ले और गुरूकी गौको त्यागन कर, सिंहने कहा राजा तू बडा मूर्ख है, जो एक गौके पीछे सुंदरशरीर और चक्रवर्तीराजको नष्ट करता है, तेरे भक्षणसे केवल एक गौ ही बचैगी, और जो तू बचरहा तो अनेक विघ्नोंसे प्रजाकी रक्षा करसकेगा, और इसमें तेरा वश नहीं चलता, इससे तेरा यशभी नष्ट नहीं होगा, परन्तु राजाने यही हठ की कि इसे छोड मुझे खा ले, तब सिंहने कहा यही हो, आओ! ज्यों ही राजा शेरके आगे जाकर गिरा, और सिंहके खानेकी बाट देखने लगा, कि राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा विद्याधरोंने की, और गौने राजासे कहा पुत्र उठ, और वर मांग ! मैं तुझसे, प्रसन्न हूं, मैंने तेरी परीक्षा ली थी, ऋषिके प्रतापसे मुझे कालकाभी भय नहीं है, राजा उठकर देखे तो सिंह नहीं है, केवल माताकी समान गौ स्थित है, तब राजाने हाथ जोड कर कहा सुदक्षिणामें कुलबढाने वाला कीर्तिमान पुत्र हो, गौ बोली अभी मेरा दूध दुहकर पी ले; राजाने कहा, गुरुके कार्यसे बचा दूध पिऊंगा, इससे गौ बहुत प्रसन्न हुई, और आश्रममें आ गुरुसे समाचार सुनाय राजाने यज्ञसे बचा दूध पिया, फिर गुरु गुरुपत्नी और गौकी प्रदक्षिणा कर राजा अपने नगरमें आया, और रानी गर्भवती हुई. ॥ २ ॥

तीसरासर्ग.

दशवें महीने रानीके पुत्र हुआ, राजाने उसका नाम रघु रक्खा, और बडे होने पर स्वयं राजाने उसे विद्या पढाई, और दिलीपके ९९ निन्यानवें यज्ञ करनेपर सौवे यज्ञका घोडा छोडने पर इन्द्रने मायासे गुप्तकर घोडा हरण किया, तब नन्दिनी गौके पसीनेके जलको रघुने आंखोमें लगाकर इन्द्रको देखा, और कहा जब तुम ही ऐसा काम करते हो फिर श्रेष्ठमार्गमें कौन चलेगा, इन्द्रने कहा सत्य है, परन्तु यशकी रक्षा करनी सबको उचित है, मैंने सौ यज्ञ किये हैं, मेरे सामने कोई सौ यज्ञ नहीं करसक्ता, इससे मैं घोडा नहीं दूंगा, इस बातके ऊपर रघु और इन्द्रका घोर युद्ध हुआ, तब रघुने इन्द्रके धनुषकी ज्या छेदन करदी, इस पर क्रोध कर इन्द्रने रघुके वज्र मारा, और रघु गिरपडा परन्तु पलमात्रमें उस व्यथाको सहन कर फिर उठ बैठा, इस पर इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा. तैंने मेरे वज्रकी चोटसही, इससे घोडेके सिवाय जो इच्छा हो सो मांग, तब रघुने कहा कि यही वर दो कि विना इस घोडेके भी पिताको सौ यज्ञका फल प्राप्तहो, और यह वृत्तान्त तुम्हारा दूत हमारे पितासे कहे, इन्द्रने स्वीकार किया तब इन्द्र स्वर्गको और रघु अपने स्थानको लौट गया, दिलीपने पहले ही वृत्तान्त सुनलिया था, पुत्रके आनेपर प्रसन्न हुआ और कुछ दिन पीछे उसे राज्य दे आप वनको चलागया.

चौथासर्ग.

शरदऋतुमें रघु दिग्विजयको गया पूर्वदिशा जीत कर सुह्मदेश वंगदेश जीता गंगाके द्वीपमें जैतखम्भ गाडे, कपिशा नदी तर कर कालिंगदेशके राजाको जीता, फिर समुद्रके किनारे किनारे दक्षिणमें पहुंचा, कावेरी पार हो मलयागिरिके निकट डेरा कर पाण्डुदेशके राजासे मोती भेट ले मलय दर्दुरपर्वतोंको लांघ पश्चिममें आया, केरलदेशको जीत त्रिकूटपर्वतको देखता पारसीक देशमें आकर यवनोंको जीता, फिर उत्तर दिशामें जाकर हूण और काम्बोजोंसे भेंट ले हिमालय वासियोंसे कर ले कैलाससे लौटा, लौहित्या नदी उतर प्राग्ज्योतिष और कामरूपदेशके राजासे भेंटले सब दिशाजीत अपनी राजधानीमें आया और विश्वजित् यज्ञकर सब धन ब्राह्मणोंको दे दिया..

पाँचवाँ सर्ग.

जिस समय राजा सबधन दानकर चुका तब कौत्सनाम ब्रह्मचारी. वरतन्तुऋषिका शिष्य गुरुदक्षिणाकी इच्छासे राजाके पास आया, राजा जब मट्टीके पात्रमें अर्घ ले उसके निकट आया, तब उसने राजाको निर्धन देख अन्यत्र जानेकी इच्छा की, राजाने आगमनका कारण पूछा, तब ऋषिने कहा मुझे गुरुदक्षिणाके निमित्त चौदहकरोड अशरफी चाहिये, और तुम्हारे पास कुछ है नहीं, इससे मैं अन्य स्थान में जाताहूं, राजाने कहा दो तीन दिन ठहरो, ब्राह्मण ठहरगया, राजाने अपने रथमें शस्त्र रखवाये, और प्रातःकाल कुबेरपर चढनेकी इच्छा की, प्रातःकालही सेवकोंने कहा, महाराज रात आपके कोषमें सुवर्णकी वर्षा हुई है, राजाने कहा वह सब इस ब्राह्मणको देदो, ऋषिने कहा मैं गुरुदक्षिणासे अधिक नहीं लूंगा, और चौदहकरोड धन लेकर चला, राजाको आशीर्वाद दिया, कि तेरे तुझसाही गुणी पुत्र होगा; यह कहकर गया, रघुके अज पुत्र हुआ, वडे होनेपर विदर्भ देशके राजाने उसे अपनी बहनके स्वयंवरमें बुलाया, वह सेनासहित चला, मार्गमें नर्मदाके तटपर डेरा हुआ, वहां नदीसे एक हाथी निकला, जिसे देख सब सेना व्याकुल हुई, अजने एक साधारण बाण मारा जिसके लगतेही वह हाथी शरीर छोंड गंधर्व होगया, और बोला मैं प्रियम्वद नाम गंधर्वोंके राजाका पुत्र हूं मैं मतंगमुनिके शापसे हाथी होगया था, प्रार्थनाकरने पर उन्होंने कहा था कि अजके बाणप्रहारसे फिर तू अपने शरीरको प्राप्तहोगा, आज मनोरथ पूर्ण हुआ, इसके बदले मैं अपना सम्मोहन नाम अस्त्र देताहूं, इसके प्रयोगसे शत्रुओंकी हिंसा बिनाही जीत होतीहै, अज वह अस्त्र ले विदर्भदेशको गया, राजाने वडा सत्कार किया, अजको पहली रातमें कन्या मिलनेके विचारके कारण देरमें निद्रा आईथी, इससे प्रातःकाल वन्दियोंने उसे स्तुति कर जगाया.

छठा सर्ग.

प्रातःकाल अज राजवेष धारणकर सभामे गया, इसका रूप देख सब राजा इन्दुमतीके मिलनेसे निराश हुए अजभी राजोंके बीचमें सिंहासनपर बैठा, शंखध्वनि होनेके उपरान्त इन्दुमति

सुखपालमें बैठकर आई, और जयमाला हाथमें लिये सुनन्दा दासीके संग राजोंको क्रमसे देखने लगी, सुनन्दाने राजोंका वंशगुणकहना प्रारंभ किया. मगधदेशके राजा परन्तपका बखानकर कहा इसके संग विवाहकर पटने नगरकी शोभा देख, इन्दुमतीके मनमें वह राजा न भाया, तब अंगदेशके राजा, उज्जैनके राजा, अनूपदेशके राजा, प्रतीप शूरसेनदेशके राजा सुषेण कलिंगदेशके राजा, हेमांगद नागपुरके देवस्वरूप आदिराजाओंके सामने लेगई, और उनका कुल गुण वर्णन किया, परन्तु इन्दुमतीके मनमें कोई न भाया, अन्तमें जब अजके निकट गई तब उसका गुणवंशसुनकर मोहित हो उसके गलेमें जयमाला डालदी, और सब राजा यह देख उदास होगये.

सातवाँ सर्ग.

इन्दुमतीको विवाहकर जब राजा अज अयोध्याको चला, तब मार्गमें स्वयम्बरके राजोंसे उसका महा संग्राम हुआ, अजने गन्धर्वके दिये अस्त्रका उनपर प्रयोग किया, जिससे सब राजोंकी सेनाको नींद आगई, उन्हें जीता छोड अज आनन्दपूर्वक अयोध्यामें आया, तब रघुने उसे राजदे आप वन जानेकी इच्छा की.

आठवाँ सर्ग.

रघुने संन्यास लिया परन्तु पुत्रके विनय करनेपर वनको न गया, और कुटी बनाकर नगरके बाहर रहा, और कुछ दिनोंमें योग समाधिसे शरीर त्यागन किया, अजके राज्य करनेपर प्रजा रघुको भूलगई, अजके इन्दुमतीमें दशरथ पुत्र उत्पन्न हुआ, एकदिन इन्दुमती सहित राजा वनविहार करनेगया, उसी समय गोकर्ण नाथजीको वीना सुनानेके निमित्त नारदजी आकाशमार्गमें जाते थे, कि पवनके लगनेसे उनकी वीनाके ऊपरसे फूलोंकी माला उडकर इन्दुमतीके हृदयपर गिरी, और रानी उसके लगतेही मरगई, राजाने महाविलाप किया, जब उसके मृतककर्मकर चुकने परभी राजाके शोककी शान्ति न हुई, तब वशिष्ठजीका शिष्य आनकर राजाको समझाकर कहने लगा कि गुरुजीने कहा है आगे तृणविन्दु राजाने बडा जप कियाथा, उसके तपसे शंकित हो इन्द्रने हारिणी नाम अप्सरा उसका तप डिगानेको भेजी, राजाने उस अवसरकी चेष्टा जानकर उसे शाप दिया कि तू मानुषी हो, तब वह अप्सरा चरणोंमें गिर प्रार्थना करने लगी, कि भगवन् मैं पराधीन हूं, आप मेरा अपराध क्षमा कर शापानुग्रह कीजिये, तब राजऋषिने कहा जब स्वर्गके पुष्पका स्पर्श करेगी, तब अपने स्थानपर आजायगी सो उसीने विदर्भ देशमें आकर जन्म

लिया, और तुम्हारी रानी हुई, अब सुरपुष्प स्पर्श कर अपने स्थानको गई, इत्यादि गुरुका संदेशा कहकर शिष्य चलागया, तथापि राजाका शोक दूर न हुआ, और दशरथके वालक होनेके कारण ज्यों त्यों आठ वर्ष विताकर अन्तमें पुत्रको राज्यदे गंगासरयू संगममें देह त्याग स्वर्गमें इन्दुमतीसे जा मिला.

नववाँ सर्ग.

राजादशरथने उत्तमप्रकारसे प्रजापालनकी, और कौशल्या सुमित्रा कैकेईसे विवाह कर अनेकप्रकार विहार किया—एकसमय राजा मृगयाको गया, रातमें तमसानदीके किनारे उसे हाथीके जल पीनेका शब्द सुनाई दिया, राजाने शब्दवेधी वाण छोडा, ज्योंही वह वाण लगा त्योंहीं हाय पिता यह शब्द सुनाई पडा, राजा तत्काल शीघ्रतासे जाकर देखै तो एकतपस्वी कुमारके वाण लगाहै, पूछनेपर कहा मैं करण जाति तपस्वीका पुत्र हूं, अंधे पितामाताके निमित्त जल लेने आयाथा, मुझे मातापिताके निकट पहुंचादो, राजाने पहुंचादिया, और अपना वृत्तान्त उनसे कहा, ज्योंही कुमारकी छातीसे वाण निकाला कि, वह तत्काल मरगया, अंधे मातापिताने काठ मंगाय चिता वनाय अपना शरीर त्यागते समय राजाको शाप दिया कि जिसप्रकार हम पुत्रवियोगमें शरीर त्यागन करते हैं, इसीप्रकार तूभी मृत्युको प्राप्त होगा, यह कह वे स्वर्गको गये और राजा उदासहो राजधानीमें आया.

दशवाँ सर्ग.

वृद्धावस्था प्राप्त होनेपरभी दशरथके सन्तान न हुई, तव शृंगीऋषिको वुलाय राजाने पुत्रेष्टी यज्ञ किया, इसी समय विष्णुके निकट रावणसे दुःख पाये हुए देवता प्रार्थना करने लगे, कि भगवन् आप इस दुष्ट रावणको मार हमारा दुःख दूर करो, भगवानने कहा मैं दशरथके यहां जन्म लूंगा, तुम भय मत करो, यहां यह वार्ता होरहीथी कि इसी समय दशरथके यज्ञमें अग्निदेवता खीर लेकर प्रगटहुए, और कहा यह रानियोंको वांटदो, राजाने आधा भाग कौशल्याको, आधेका आधा कैकेईको शेष चौथाईके दोभाग कर कैकेई कौशल्याके हाथमें देकर सुमित्राको दिवाये, दशवें महीने कौशल्यासे रामचंद्र, कैकेईके भरत, सुमित्राके लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए.

ग्यारहवाँ सर्ग।

यज्ञकी रक्षाके निमित्त विश्वामित्रने कुमार राम और लक्ष्मणको मांगलिया, और अपने स्थानको ले चले, मार्गमें रामचन्द्रने ताडका का वध किया, आगे चलकर ऋषिने उन्हें वंला

और अतिबला विद्या सिखाई, पीछे आश्रममें जाकर ऋषिने यज्ञ किया वहां रामचन्द्रने सुबाहुका प्राण संहारकर मारीचको सागरपार फेंक दिया, यज्ञ पूर्णहोनेपर जनकजीके यहांसे बुलावा आया, विश्वामित्रजी ऋषि और रामलक्ष्मणको साथ लेकर जनकपुर चले, मार्गमें गौतमकी स्त्रीको जो शापसे शिला होगईथी तारकर जनक पुर गये, वहां और राजोंसे उठानेको अशक्य धनुष रामचन्द्रने उठाकर तोडदिया, जनकने प्रसन्नहो अयोध्यासे दशरथको बुलाया, रामके संग सीता लक्ष्मणके संग उर्मिलाका, और भरतशत्रुघ्नका जनककी भतीजी कुशध्वजकी कन्या मांडवी श्रुतिकीर्तिके संग विवाह हुआ, जब दशरथ अयोध्याको चले, मार्गमें परशुरामने उनको रोकलिया तब रामने उनके धनुषको चढाकर उनका तेज हरण किया, और स्वर्ग प्राप्तिभी रोकदी.

बारहवाँ सर्ग.

रामचंद्रके युवा होनेपर दशरथने रामको युवराजदेनेकी इच्छा की, उस समय कैकेईने राजासे दो वरदान मांगे, एकसे रामचंद्रको वनवास दूसरेसे भरतको राज्य, सीता लक्ष्मण सहित राम चौदह वर्षको वनवासी हुए, यहां रामकेवियोगमें राजा दशरथने शरीर त्यागन किया, तब वशिष्ठजीने भरतको ननसालसे बुलवाया, उन्होंने आकर राजाकी मृतक क्रिया की, और राजको स्वीकार न करके रामचंद्रको मनाने चित्रकूटपर गये; रामने अपनी पादुका देकर भरतजीको लौटादिया, वे खडाऊं गद्दीपर स्थापितकर नन्दिग्राममें तप करने लगे, रामचंद्र चित्रकूटसे चल ऋषियोंके आश्रममें रहे, जयन्तको एक आंखसे हीनकर रामचंद्र पंचवटीमें जारहे वहां लक्ष्मणने शूर्पणखाकी नासिका, कानो सहित काटली, जिस्से चौदह सहस्र राक्षसोंकेसंग रामचंद्रका युद्धहुआ; उनके मरनेपर रावणने मारीचके साथ आय छलकर जानकीको हरण किया; और मार्गमें जटायुको मार जानकीको लंकामें लेगया, रामचंद्र जानकीकी खोजमें चले, जटायु मार्गमें रामचंद्रको मिला, उसने जानकीहरणका वृत्तान्त रामचन्द्रसे कह प्राणत्याग दिये, रामने अपने हाथसे उसका संस्कार किया, पीछे कबन्धको मार, सुग्रीवसे मिल वालीको मारा, सुग्रीवकी आज्ञासे हनुमानादि वानर सीताकी खोजमें गये, और संपातीसे समाचार पाय हनुमानजी ४०० कोश सागर लांवगये, वहां जानकीको देख उनसे समाचार कह लंकाजलाय फिर लौट आये, रामचन्द्र समाचारसुन वानरोंकी सेना लेचले, समुद्रके उस पारही रामचन्द्रसे विभीषण आमिला, पीछे सागरका पुल बांध उसपार उतरकर वानर राक्षसोंका संग्राम हुआ, मेघनाद कुम्भकर्णने महायुद्ध किया, पीछे वे रामलक्ष्मणके हाथसे मृतक हुए. रामचन्द्रने रावणका वध किया, पीछे विभीषणको राज्यदे सीतासे अग्निपरीक्षाले पुष्पकमें बैठ मुख्यवानरोंसहित अयोध्याको चले.

तेरहवाँ सर्ग.

पुष्पकमें चलते हुए रामचन्द्रने जानकीको सागर दिखाया, उसकी महा महिमा वर्णन कर जहां जानकीको ढूंढते फिरेथे वह सब स्थान दिखाये, एकस्थानका वर्णन किया कि यहां मुझे तुह्मारा चरणसे गिराहुआ नूपुर मिलाथा, यहां हरणियोंने मुझे दुखी देख दक्षिणकीओर मुखकर तुम्हारा दक्षिणगमन बतायाथा, यह माल्यवान है यहां तुम्हारे विना महा व्याकुलता हुई थी, इसी प्रकार पंपासर, पंचवटी, गोदावरी, अगस्त्याश्रम दिखाया, शातकर्णि मुनिका पांच अप्सराओं सहित जहां निवास था वह सरोवर दिखाया, फिर सुतीक्ष्ण, ऊर्ध्वबाहु, और शरभंगका आश्रम दिखाया, मन्दाकिनीके निकट अत्रिका आश्रम दिखाकर कहा चित्रकूटमें यह वही वटवृक्ष है जिसकी तुम पूजा करती थीं यह गंगा यमुनाका संगम है, जहां स्नानसे मुक्ति होती है. यह निषाद राजका गांव है यहां मुझे जटा बांधते देखकर सुमंतने रोकर कहाथा 'केकई अब तेरे मनोरथ सिद्ध हुए' यह सरयू वहती है, वह देखो हमारे मिलनेको भरत आते हैं भरतके आनेपर रामचन्द्रने पृथ्वीपर विमान उतारा और भरतशत्रुघ्न गुरुमंत्रियोंसे मिल अयोध्याके उपवनोंमें डेरा किया.

चौदहवाँ सर्ग.

रामचन्द्रके नगरमें प्रवेश करने पर वडा आनन्द हुआ, रामने रनवासमें जाकर कौशल्या केकई सुमित्राके पग वन्दन किये, फिर रामचन्द्रको राजतिलक दिया गया, सब ऋषि और सुग्रीव विभीषणादिको रामचन्द्रने विदा किया, रामचन्द्र धर्मराज करने लगे, इसी अवसरमें सीता गर्भवती हुई, रामके मनोरथ पूछने पर उन्होंने गंगा किनारे तपस्विनियोंसे भेंट करनेकी इच्छा प्रगटकी, रामने स्वीकार किया, फिर भद्र नामक सेवकके सहित रामचन्द्र अयोध्या देखनेको महलकी छतपर चढे, वहां रामने उससे पूछा लोग हमारे विषयमें क्या चरचा करते हैं, उसने कहा आपकी सब प्रकार वडाई करते हैं, परन्तु रावणके घरमें रही जानकीको घरमें फिर रखलेनेके विषयमें अच्छा नहीं कहते, इसपर रामचन्द्र महाक्लेशित हुए और जानकीका त्यागनाही उचित जान लक्ष्मणसे कहा, तुम वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट जानकीको त्याग आओ, लक्ष्मण रथमें बैठाकरले चले, जानकी वन देखकर प्रसन्नहो बोली, रघुनाथ हमारी सब इच्छा पूरी करते हैं, जब गंगा पार हुई तब लक्ष्मणजीने उन्हें त्यागका समाचार सुनाया, जानकी सुन्तेही मूर्छित हुई चैतन्य होनेपर रामको कोईभी कुवचन न कहा केवल अपने भागकी ही निन्दा करने लगीं, लक्ष्मण हाथ जोड लौट आये, जानकी ऊंचे स्वरसे रोदन करने लगीं, वाल्मीकिजी वनमें कुशालेने आयेथे वह जानकीजीके

ढाढस बंधा अपने आश्रममें लेगये, मुनिकन्याओंके साथ जानकी रहने लगीं, रामनेभी दूसरा विवाह न किया, सोनेकी सीता बनाकर यज्ञ क्रिया करते रहे.

पन्द्रहवाँ सर्ग.

एक समय यमुनातीरवासी ऋषि रामचन्द्रके पास आये, और उन्होंने लवणासुरसे कष्ट पानेका वृत्तान्त कहा, रामचन्द्रने शत्रुघ्नको सेना लेकर भेजा, शत्रुघ्नजी चले, और वाल्मीकिजीके आश्रममें मार्गवश प्राप्त हुए, उसीरातमें जानकीके लव और कुश दो पुत्र हुए, शत्रुघ्नजीने मधुवनमें पहुंच शूलहीन लवणासुरको मारडाला, और वहां मधुपुरी बसाकर रहने लगे, वाल्मीकिजीने बालकोंके संस्कार कर उन्हें रामायण पढाई, दो दो पुत्र शेष तीनों भाइयोंके हुए शत्रुघ्नजीने अपने पुत्र शत्रुघातीको मथुराका, और सुबाहुको विदिशाका राज्य दे रामचन्द्रके निकट प्रस्थान किया, और लव कुशके वृत्तान्तके अतिरिक्त सब वृत्तान्त रामचंद्रसे सुनाया, लव कुशका वृत्तान्त सुनानेको वाल्मीकिजीने निषेध कर दियाथा, कुछ दिनोंके उपरान्त एक ब्राह्मण मृतक हुए बालकको लेकर रामचंद्रके द्वारे रखकर कहने लगा, कि तुम्हारे अपराधसे मेरा पुत्र मर गया, रामचंद्रने उसे ढाढस बंधाय पुष्पकविमानको स्मरण किया, उसके आतेही रामचंद्र चढकर यमराजको जीतनेकी इच्छासे चले उस समय गूढवाणी हुई, हे राजन्! तुम्हारे राज्यमें कुछ धर्ममें विपरीतता हुई है, उसे खोजकर कृतकार्य होगे, रामचंद्र ढूंढने लगे, दक्षिणमें एक पुरुषको तप करते देखकर रामचन्द्रने उसका कुल नाम पूछा, उसने कहा मैं शम्बूक नाम शूद्र स्वर्गजानेकी इच्छासे तप करताहूं, शूद्रका तपमें अधिकार न देख रामचंद्रने खड्गसे उसका शिर काटलिया, उसके मरतेही ब्राह्मणका पुत्र जीगया, वहांसे राम अगस्त्यजीके दर्शनको गये, उन्होंने एक आभूषण दिया वह लेकर रामचन्द्र आये, और फिर अश्वमेध यज्ञ किया, वाल्मीकिके साथ लवकुश आये, उनके गानेकी प्रशंसा सुन रामचंद्रने उन्हें बुलाया, और रामायण सुनकर कर्ताका नाम पूछा, उन्होंने वाल्मीकिजीको बताया, रामचन्द्रने वाल्मीकिजीको अपनेको छोड शेष सब राज्य भेंटमें दिया, वाल्मीकिजीने राज्य न ले जानकीके स्वीकारको कहा, रामचन्द्रने कहा प्रजाको जानकीके विषयमें संदेह है, वे उनके सन्मुख परीक्षा दें तो मैं उन्हें ग्रहण करूंगा यह सुन वाल्मीकिजीने जानकीजीको बुलाया, और दूसरे दिन सभामें जानकीजीने आचमन कर कहा हे पृथ्वी देवी! जो मन वचन कर्मसे रामचन्द्रके सिवाय मैंने अन्य पुरुषका स्मरण नहीं कियाहै तो तुम फटजाओ और मैं उसमें समाजाऊं जानकीके यह कहतेही पृथ्वी फटगई, और जानकी उसमें समागई, रामचन्द्रने पुत्रोंको अपनेपास रक्खा सिन्धु देशका राज्य भरतको दिया, और तक्ष पुष्कल नाम अपने दो पुत्रोंको उन्हीके नामोंसे

दो राजधानियोंको बसाय भरतजीने उन्हें वहांका राजदिया, लक्ष्मणने अपने अंगद और चन्द्रकेतु बेटेको कारापथ देशका राज्य दिया, एकसमय मुनिके वेषमें कालपुरुषने आकर रामचन्द्रसे कहा जबतक हम तुम वार्ता करें तबतक कोई न आवे, और जो आवे वह वधके योग्य है, रामने स्वीकार किया तब कालपुरुषने कहा मुझे ब्रह्माजीने भेजा है और कहा है स्वर्गको जानेका समय होगया, इसी समय दुर्वासा द्वारे पर आये और लक्ष्मणसे रामके दर्शनको आनकर कहा, लक्ष्मणने शापके डरसे भीतर जा रामसे दुर्वासाका आना निवेदन किया, रामने कालपुरुषको बिदाकर बाहर आय दुर्वासाका दर्शन किया, और लक्ष्मणको त्याग दिया, उन्होंने सरयूतीर जाकर योगविधिसे शरीर त्यागदिया फिर कुशावतीका कुशको और शरावतीका लवको राज्यदे महावीर और विभीषणको पृथ्वीपर रहनेकी आज्ञादे तीनोंभाई वानर और पुरवासियों सहित वैकुंठको पधारे.

सोलहवाँ सर्ग.

रामके साकेत लोकमें पधारने पर वह राज उनके पुत्र और भतीजे भोग करने लगे, कुश कुशावतीमें राज्य करता था. एक समय रात्रिमें अयोध्याके अधिदेवताने किवाड लगे मन्दिरमें प्रवेश कर प्रार्थना की, रामचन्द्रके स्वर्गजानेसे मेरा स्थान शून्य पडाहै, आप चलकर फिर अयोध्याको बसाइये, कुशने यह स्वीकार कर कुशावतीपुरोहितोंको सौंप प्रातः कालही अयोध्याको प्रस्थान किया, और अयोध्या वसाकर उसमें रहने लगा, ग्रीष्म ऋतुमें एकवार कुश जलविहार करने लगा रामचन्द्रको अगस्त्यजीने जो बाजूबंद दियाथा और रामचन्द्रने कुशको दियाथा वही उससमय जलमें गिरगया कुशने धीवरोंको उसके खोजनेकी आज्ञादी. उन्होंने खोजा परन्तु न मिला, तब उन्होंने कहा महाराज नदीमें वह भूषण नहीं मिलता, इससे सन्देह होताहै कि कदाचित् दहमें रहने वाले कुमुद नाम नागने लेलियाहै कुशने यह सुनकर धनुष पर गरुडास्त्र चढाया, तब डरकर नाग कुमुद्वती बहनको संग ले वह भूषण लिये निकला और हाथ जोड कहने लगा कि मेरी बहन गेंद खेलतीथी उससमय तुम्हारा भुजबन्द गिरा सो इसने गेंदजानकर उठालिया, सो यह आप भूषण लीजिये और मेरी बहन कुमुद्वतीका अपराध क्षमाकर इसे व्याहिये, कुशने यह वचन सुन भूषण ले नागकन्यासे विवाह किया.

सत्रहवाँ सर्ग.

कुशका पुत्र उस कुमुद्वतीमें अतिथि उत्पन्न हुआ, यह बालकही था कि कुशने इन्द्रकी सहायताके निमित्त एकदानवसे युद्ध किया, और उसे मार कर आपभी उसीके हाथसे मृतक हुआ, मंत्रियोंने अतिथिको अभिषेक किया, यह राजा महा प्रतापी ज्ञानी और चक्रवर्ती हुआ.

अठारहवाँ सर्ग.

इस सर्गमें अतिथिके पुत्रपौत्रोंका थोडा थोडा वर्णन है, अतिथिका पुत्र निषध हुआ, उसको राज दे अतिथि वनको गया. निषधका पुत्र नल, उसका नभ, उसका पुंडरीक, उसका क्षेमधन्वा उसका देवानीक, उसका अहीनगु, उसका पारियात्र, उसका शिल, उसका उन्नाभ, उसका वज्रनाभ, उसका शंखन, उसका व्युषिताश्व,उसका विश्वसह, उसका हिरण्यनाभ,उसका कौशल्य, उसका ब्रह्मिष्ठ, उसका पुष्प, उसका ध्रुवसन्धि हुआ, यह राजा आखेटको गयाथा वहां सिंहसे मारागया, मंत्रियोंने इसके बालक बेटे सुदर्शनको गद्दीपर बैठाया यह राजा बडा प्रतापी हुआ.

उन्नीसवाँ सर्ग.

अपने पुत्र अग्निवर्णको राज दे. सुदर्शन नैमिषारण्यमें तप करने चला गया, अग्निवर्ण महा कामी हुआ दिन रात स्त्रियोंके संग विहार करतारहा, राजकाज सब भूल गया, मंत्रियोंके कहनेसे कभी प्रजाको दर्शन देता तो बाहर खिडकीसे अपना चरण लटकादेता अन्तमें बहुत विषय करनेसे क्षयरोगी हो मृतक हुआ, तब मंत्रियोंने उसकी गर्भवती पटरानीको राजपर बैठाया वह यथायोग्य राज करने लगी.

सम्पूर्णम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

प्रस्तावना ।

रघुवंशं महाकाव्यम् ।

रघुवंशं रघुकुलोद्भवानां नृपाणां वंशः तद्विषयकः प्रबन्ध इति यावत्, अस्ति अस्मिन्महाकाव्ये इति रघुवंशम् सूर्यकुलोत्पन्नभूपतिचरितकथनात्मकं महाकाव्यमित्यर्थः दिलीपपुत्रस्य रघोर्नाम्ना सकल एव सूर्यवंशो रघुवंश इति ख्यातिं गतः, सूर्यवंशस्य रघुनाम्ना प्रसिद्धिकारणं कथितमेव कालिदासेन द्वितीयसर्गे ६४ श्लोके " ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः । वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्त्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे" । अत एव रघुकुलमिति प्रसिद्धिः । अस्मिन् ग्रन्थे कविना दिलीपरघ्वजदशरथरामकुशातिथिनिषधनलनभशब्दपुण्डरीकक्षेमधन्वदेवानीकाहीनगुपारियात्रशीलोन्नाभवज्रनाभशंखणव्युषिताश्वविश्वसहहिरण्यनाभकौशल्यब्रह्मिष्ठपुत्रपौष्यध्रुवसन्धिसुदर्शनाग्निवर्णा ऊनत्रिंशद्भूप वर्णिताः । महाकविकालिदासरचितमिदं रघुवंशं सर्वैरेव महाकाव्यलक्षणैः समलंकृतम् । महाकाव्यलक्षणं यथा साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे कथितम् । तथाहि—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥ १ ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥ २ ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक इष्यते ॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥ ३ ॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥ ४ ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥ ५ ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥ ६ ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरः ॥ ७ ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥ ८ ॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥ ९ ॥

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥ १० ॥

अस्मिन् रघुवंशे एककुलोत्पन्ना बहवः पृथ्वीपालाः वर्णिताः । अस्मिन्नङ्गी वीरो रसः । शृंगार-करुणाशान्तादयश्चांगानि नाटकसन्ध्यंगान्यपि यथायोगं विहितानि । इदं च रामायणादिरूपमितिहासकथामाश्रित्य प्रणीतम् । विहिताश्चात्र परमानन्ददायका धर्मार्थकाममोक्षरूपाश्चत्वारो वर्गाः । प्रारम्भेऽस्मिन्पार्वतीपरमेश्वरयोर्नमस्कारात्मकं मंगलमत्रापि सर्गाणामादिमध्येषु एकविधमन्तेष्वन्यविधं वृत्तम् । नातिस्वल्पा नातिदीर्घाश्चात्र ऊनविंशतिः सर्गाः । नवमसर्गे चान्यत्र क्वचित् क्वचित् नानावृत्तमयान्यपि पद्यानि सन्ति, प्रत्येकं सर्गान्ते भाविसर्गकथा सूचिता । महाकाव्ये कथनीयाश्च सन्ध्यासूर्येन्दुरात्रिप्रदोषादयः सर्वे एव विषया यथास्थानं वर्णिताः, सर्वाण्येव महाकाव्यलक्षणान्यस्मिन् रघुवंशे सन्ति । सकलकविशिरोमणिः कालिदासो बहुविधानि काव्यानि कृत्वा महतीं कीर्तिं लब्धवान् तस्येदं काव्यं सर्वोत्तमं वरीवर्ति शिशूनां सम्यग्बोधायालमतोऽस्य विवरणं सम्यक्प्रकारेण क्रियते ॥

प्रथमसर्गस्य कथा संक्षेपेण कथ्यते ।

प्रथमतः शिवाशिवयोःनमस्क्रिया। प्रबन्धगौरवख्यापनम् । स्वसामर्थ्यस्य लाघवताकथनम् । वैवस्वत-मनुकुले दिलीपस्य जन्म तस्याप्रमेयगुणप्रशंसा । बहुकाले गतेपि तस्य गृहे पुत्रालाभः । सुतार्थं सचिवोपरि राज्यभारं निक्षिप्य जायासमेतं वसिष्ठाश्रमे रथेन गमनम् । मार्गे बहुविधमनोरमवस्तूनां दर्शनम् । ग्राम्यवासिनामाशीरुपायनप्राप्तिश्च । सन्ध्यायां वसिष्ठाश्रमप्राप्तिः तात्कालिकतपोवनरम्यतादिवर्णनं च । रथावतीर्णयोः सुदक्षिणादिलीपयोः ऋषिजनसकाशात् सत्कारलाभः । अरुन्धत्या सह वसिष्ठदर्शनम् । वसिष्ठादाशीर्वादलाभः । यदा गुरुणा कुशलप्रश्नः कृतस्तदा राष्ट्रकुशलकथनानन्तरं दिलीपेनापुत्रतादुःखनिवेदनम् । मुनिना योगबलात् तस्य पुत्रजन्मप्रतिबंधकं दृष्टम् । पश्चात् राज्ञे तत्कथनम् । पूजाव्यतिक्रमेण क्रोधितायाः सुरभेः शापादेव सुतो न जायत इति राजानं प्रबोध्य तस्याः कन्याया नन्दिन्याः सेवार्थमुपदेशः । तत्क्षणे च नन्दिन्या उपस्थितिः, तस्याः मूर्त्तिपवित्रत्वादिवर्णनं च । तदागमनशुभलक्षणम् दिलीपाय विज्ञाप्य दम्पत्योः शयनाय मुनेः पर्णशालाकुशशय्यादिविधानम् । तत्र सुदक्षिणादिलीपयो रात्रियापनं मुनिशिष्याणां वेदाध्ययनशब्देन च जागरणमिति ॥

॥ श्रीः ॥

रघुवंशमहाकाव्यम् ।

पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमेतम् ।

मल्लिनाथटीकामुखम् ॥

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्द्धजानये ।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये ॥ १ ॥

अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥ २ ॥
शरणं करवाणि शर्म्मदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥ ३ ॥
वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षिपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ॥ ४ ॥
मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया ।
व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम् ॥ ५ ॥

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथ वा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥ ६ ॥
तथापि दक्षिणावर्तनाथाद्यैः क्षुण्णवर्त्मसु ।
वयं च कालिदासोक्तिष्ववकाशं लभेमहि ॥ ७ ॥
भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्याविषमूर्च्छिता ।
एषा सञ्जीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ॥ ८ ॥
इहान्वयमुखेनैव सर्व्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥ ९ ॥

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ॥
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ १ ॥

अन्वयः । (अहम्) वागर्थप्रतिपत्तये वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वन्दे ॥ १ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । (मया) वागर्थप्रतिपत्तये वागर्थाविव संपृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वन्द्येते ॥ १ ॥

अहं विशिष्टशब्दार्थयोः सम्यग्ज्ञानार्थं शब्दार्थाविव नित्यसम्मिश्रौ संसारस्य मातापितरौ शिवाशिवौ भक्त्या नमस्करोमि इति सरलार्थः । पार्वतीपरमेश्वरौ प्रसन्नौ भूत्वा मयि काव्यरचनाशक्तिं देदीयेतामिति भावः ॥ १ ॥

भा०-मैं वाणी और अर्थ की सिद्धिके निमित्त वाणी और अर्थ की समान मिले-हुए जगत्के माता पिता पार्वतीशिवको प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥

सम्पृक्तः=सम्+पृच्+क्त । पृच् सम्पर्के । लट् पृणक्ति । लिट् पपर्च । लङ् अपृणक् । लुङ् अपर्चीत् । भावे पृच्यते । अनीयर् पर्चनीयम् । घिनुण् सम्पर्की । तुमुन् पर्चितुम् । तव्यत् पर्चितव्यम् । ल्यप् सम्पृच्य । शतृ पृचन् ।

प्रतिपत्तिः=प्रति+पद्+क्तिन् । पद गतौ । लट् पद्यते । लिट् पेदे । लङ् अपद्यत । लुङ् अपादि । कर्मणि पद्यते । अनीयर् पदनीयम् । तुमन् पत्तुम् । क्त्वा पत्त्वा । तव्यत् पत्तव्यम् । शानच् पद्यमानः ।

वदि अभिवादनस्तुत्योः । लट् वन्दते । लिट् ववन्दे । लङ् अवन्दत । लुङ् अवन्दिष्ट । कर्मणि वन्द्यते । अनीयर् वन्दनीयम् । तुमुन् वान्दितुम् । तव्यत् वन्दितव्यम् । ल्यप् अभिवन्द्य । शानच् वन्द्यमानः ।

क्व सूर्य्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ॥
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ २ ॥

अन्वयः । सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया (मम) मतिः च क्व, (अहम्) मोहात् उडुपेन दुस्तरं सागरं तितीर्षुः अस्मि ॥ २ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । सूर्यप्रभवेण वंशेन क्व (भूयते) अल्पविषयया (मम) मत्या च क्व (भूयते) (मया) तितीर्षुणा भूयते ॥ २ ॥

यथा हि कश्चित् मन्दधीः लघुतृणादिनिर्मितस्य प्लवस्य साहाय्येन महासागरतरणे प्रवर्तते तथैव मन्दबुद्धिरहमपि क्षुद्राशयग्राहिणो निजज्ञानस्य साहाय्येन सुविस्तृतसूर्यकुलवर्णने प्रवृत्तोस्मीति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०-कहां तौ सूर्यसे उत्पन्न हुआ वंश और कहां थोडे बुद्धिव्यवहारवाला मैं मूर्खतासे कठिनतासे तरने योग्य समुद्रको फूंसकी नावके सहारे उतरना चाहताहूं ॥ २ ॥

प्रभवः=प्र+भू+अप् ॥ दुस्तरः=दुर्+तॄ+खल् । लट् तरति । लिट् ततार । लङ् अतरत् । लुङ् अतारीत् । तरणीयम् । तरितुम् तरीतुम् । तॄ सन् तितरीषति तितरिषति तितीर्षति ।

मंदः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ॥
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥ ३ ॥

अन्वयः । मंदः (तथापि) कवियशःप्रार्थी (अहम्) प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुः वामन इव उपहास्यतां गमिष्यामि ॥ ३ ॥

वाच्यपरिवर्तनम् । मन्देन कवियशःप्रार्थिना (मया) प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुना वामनेन इव उपहास्यता गंस्यते ॥ ३ ॥

उन्नतपुरुषलभ्यं फलं ग्रहीतुम् उच्छ्रितहस्तस्य खर्वस्य चेष्टा यथा उपहसनीया भवति तथैव महाकविलभ्यां कीर्तिम् लब्धुं प्रवृत्तस्य हीनबुद्धेः ममापि चेष्टा उपहसनीया भविष्यती ति सरलार्थः।अहो मे मूढता यदहमसमर्थोऽपि महाकाव्यविरचने प्रवृत्तोऽस्मीति भावः ॥ ३ ॥

भा०–कवीश्वरोंके यशका चाहनेवाला मैं क्षुद्रबुद्धि हंसीको प्राप्त हूंगा. जैसे लंबे (पुरुष) के हाथ लगने योग्य फलकी ओर लोभसे ऊंची बाहैं उठानेवाला बौना॥३॥

उपहास्य=उप+हस+ण्यत् । हस हसने हसति । जहास । अहसत् । अहसीत् । भावे हस्यते । णिचि हासयति–ते । हसनीयम् । हासः । हसितव्यम् । हसितुम् । हसित्वा । उपहस्य । हसन् ।

अथ वा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ॥
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥ ४ ॥

अन्वयः । अथ वा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे, वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति ॥ ४ ॥

वाच्यप० । अथ वा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे, वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव, मे गत्या भूयते ॥ ४ ॥

यथा अतिकोमलमपि सूत्रं हीरकसूचीकृतेन छिद्रमार्गेण कठिनेपि मणौ विशति तथा हीनापि मे बुद्धिः वाल्मीकिकविकृतेन रामायणाख्यकाव्यद्वारेणातिदुर्गमेपि रघुवंशे प्रवेक्ष्यतीति सरलार्थः । पूर्वकवीनां रामायणादिप्रबन्धसाहाय्येनाहं दुर्वचनेपि रघुवंशवर्णने समर्थः स्यामिति भावः ॥ ४ ॥

भा०–थ वा पहले पंडितोंके वाग्द्वारा (वचनरूपीदरवाजा) किये हुए इस रघुवंशमें मेरी गति हीरेसे छेदन की हुई मणिमें डोरे की समान है ॥ ४ ॥

समुत्कीर्ण=सम्+उत्+कॄ+क्त । कॄ विक्षेपे।किरति । चकार । अकिरत् । अकारीत् । कर्मणि कीर्य्यते । णिचि कारयति । करणीयम् । कीर्णः । करीतव्यः करितव्यः । करितुम् करीतुम् । किरन् । कीर्य्यमाणः ।

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ॥
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः । सः अहं तनुवाग्विभवः अपि तद्गुणैः कर्णम् आगत्य चापलाय प्रचोदितः सन् आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवर्त्मनाम् ॥ ५ ॥

वाच्यपरि०—तेन मया तनुवाग्विभवेन प्रणोदितेन सता ......अन्वयः वक्ष्यते ॥ ९ ॥

यद्यपि मे रचनाशक्तिरल्पविषयग्राहिणी तथाप्यहं रघुकुलोद्भवानां राज्ञामलौकिकीं गुणमालामवगम्य दुष्करेपि विषये प्रवृत्तोस्मि । कीदृशानां रघुवंशोद्भवनृपाणां गुणकथने बद्धपरिकरोस्मि । जन्मनः आरभ्य शुद्धचरित्राणाम् । यावत् प्रारब्धकर्मणः फलसिद्धिं न दृष्टवन्तः तावत् तस्मात् विरता नैव बभूवुः तादृशानां रघूणाम् । ये भुजबलेन समुद्रवलयवेष्टितस्य धरामंडलस्येश्वरा आसन् येषां रथस्य गतिः सुरलोकेपि अन्याहता आसीत् तादृशानामिति सरलार्थः । उदाहरणानि क्रमेण तृतीयसर्गे दशमः । अष्टमे २२ द्वाविंशः । प्रथमसर्गे ३० शः । पंचमसर्गे २७ शः । श्लोकः ॥ ५ ॥

भा०—सो मैं जन्मसे लेकर शुद्धोंका फलके प्राप्त होनेतक कर्मके करनेवालोंका समुद्रतक पृथ्वीके अधिकारियोंका स्वर्गतक रथके मार्गवालोंका ॥ ५ ॥

आजन्म=आ+जन्+मनिन् । शुद्ध=शुध+क्त । वर्त्मन्=वृत+मनिन् । जनी प्रादुर्भावे जायते । जज्ञे । अजनि । अजनिष्ट । भावे जायते । जननीयम् । जनः । जनयितुम् । जनयितव्यम् । जनयित्वा प्रजन्य । जन्यमानः ।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ॥
यथाऽपराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः । यथाविधिहुताग्नीनाम् यथाकामार्चितार्थिनाम यथापराधदंडानाम् यथाकालप्रबोधिनाम् ॥ ६ ॥

ये सायं प्रातः गार्हपत्याहवनीयदक्षिणनामकेषु अग्निषु वेदानुसारेण होमं कृतवंतः तादृशानाम् । येऽभिलषितवस्तुदानेनार्थिनः सत्कृतवन्तः तादृशानाम् । ये दंडार्हेषु अपराधानुरूपं न्याय्यं दण्डं प्रणीतवन्तः तादृशानाम् । ये ब्राह्मे मुहूर्ते शयनादुत्थाय सर्वाणि कर्माणि क्रमानुसारेण सम्पादितवन्तः तादृशानामिति सरलार्थः । क्रमेणोदाहरणानि पंचमसर्गे १९ श्लोकः । एकादशसर्गे द्वितीयश्लोकः । चतुर्थसर्गे अष्टमः श्लोकः । प्रथमसर्गे ९५—श्लोकः ॥ ६ ॥

भा०—विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देनेवालोंका कामनाअनुसार याचकोंको (द्रव्यादिसे) पूजन करने वालोंका अपराधके अनुसार दण्ड देनेवालोंका उचित समय (ऊषा कालमें) जागनेवालोंका ॥ ६ ॥

हुतः=हु+क्त । आर्चित=अर्च+क्त । अर्थिन्=अर्थ+इनि । प्रबोधिन्=बुध+णिनि । हु—दानादनयोः जुहोति । जुहाव । अजुहोत् । अहौषीत् । जुहुत् । कर्मणि हूयते । अहावि । हूयमानः । हवनीयम् । हूत्न् होत्रम् । हुतः । भावे हुतिः । होतव्यम् । हुत्वा । प्रहुत्य ।

त्यागाय संभृतार्थाना सत्याय मितभाषिणाम् ॥
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः । त्यागाय सम्भृतार्थानाम् सत्याय मितभाषिणाम् यशसे विजिगीषूणाम् प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥ ७ ॥

ये सत्पात्रेभ्यो दातुमेवार्थसञ्चयं कृतवन्तः तादृशानाम् । बहुभाषणे अनृतमपि स्यादिति हेतोर्मितमेव भाषन्ते स्म तादृशानाम् । ये धर्मविजयेन पुण्ययशोलाभाय दिग्विजयं कृतवन्तः तादृशानाम् । ये सुतार्थमेव स्त्रीपरिणयं कृतवन्तः तादृशानाम् । क्रमेणोदाहरणानि—चतुर्थसर्गे ८६ श्लोकः । द्वादशसर्गे सत्याय प्राणांस्त्यजता नृपदशरथेन सत्यस्य परा काष्ठा दर्शिता । चतुर्थसर्गे ४३ श्लोकः । प्रथमसर्गे ४३ श्लोकः ॥ ७ ॥

भा०—दान करनेकेवास्ते धन इकट्ठा करनेवालोंका, सत्य बोलनेके निमित्त थोडा बोलने वालोंका, कीर्तिके निमित्त जीत चाहने वालोंका, पुत्रके वास्ते विवाह करने वालोंका ॥ ७ ॥

त्यागः=त्यज+घञ् । सम्भृतः सम्+भृ+क्त। मित=माङ्+क्त। भाषिन्=भाष+णिनि। विजिगीषुः=वि+जि+सन् । प्रजा=प्र+जन्+ड+टाप् । गृहमेधिन्=गृह+मेधृ+णिनि । त्यज—वयोहानौ त्यजति । तत्याज। अत्यजत् अत्याक्षीत् । त्यजन् । घिनुण् त्यागी । कर्मणि त्यज्यते, अत्याजि, त्यजनीयम् । त्यागः । त्यक्तम् । त्यक्तव्यम् भावे त्यक्त्वा । संत्यज्य । त्यज्यमानः ।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ॥
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः । शैशवे अभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम् वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम् अन्ते योगेन तनुत्यजाम् ॥ ८ ॥

ये बाल्यावस्थायां सर्वा विद्याः अधीतवन्तः तादृशानाम् । विद्याश्च चतुर्दश यथाह मनुः 'अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।' ये युवावस्थायां धर्मानुसारेण भोग्यसुखं सेवितवन्तः तादृशानाम् । वृद्धवयसि सर्वभोगनिवृत्ताः ऋषिव्रतमाश्रितवन्तः तादृशानाम् । अन्तकाले योगमार्गेण देहं त्यक्त्वा मुक्तिं लब्धवन्तः तादृशानाम् ॥ क्रमेणोदाहरणानि । तृतीयसर्गे २८–२९ श्लोकौ । प्रथमसर्गे २१ श्लोकः । तृतीयसर्गे ७० श्लोकः । अष्टमसर्गे २४ श्लोकः ॥ ८ ॥

भा०—लडकपनमें विद्या पढनेवालोंका, युवा अवस्थामें भोगकी इच्छा करनेवालोंका, बुढापेमें मुनिवृत्ति होनेवालोंका, अन्तमें योगद्वारा शरीरत्याग करनेवालोंका॥ ८॥

शैशवम्=शिशु+अञ् । यौवनं=युवन्+अण । विषयैषिणाम्=विषय+इष्+णिनि । वार्द्धकं=वृद्ध+वुञ्+। योगेन=युज+घञ् ।

इषु इच्छायाम् । इच्छति । इयेष । ऐच्छत् । कर्मणि इष्यते । एषणीयम् । एषी । एषितव्यः । इच्छा । एषित्वा । इष्ट्वा इच्छन् । इष्यमाणः ।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ॥
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रणोदितः ॥ ९ ॥

अन्वयः । रघूणाम् अन्वयम् वक्ष्ये ॥ ९ ॥

अहमल्पवाणीसम्पत्तिः सन् तेषाम् रघूणां गुणैः कर्णं प्राप्य धाष्टर्याय प्रेरितः रघुवंशचरित्रं वक्ष्य इति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-(इसप्रकारसे) रघुवंशियोंका वंश वाणीका प्रताप थोडा होनेसेभी कानमें प्राप्त हुए उनके गुणोंसे चपलताकी ओर प्रेरणा कियाहुआ मैं वर्णन करताहूं ॥ ९ ॥

चापलम्=चपल+अण् । प्रणोदितः=प्र+नुद+णिच्+क्त ।

नुद प्रेरणे नुदति नुदते । नुनोद नुनुदे । अनुदत् अनुदत।अनात्सीत् अनुत्त । कर्मणि नुद्यते अनोदि। णिचि नोदयति नोदयते ।नोत्तव्यम् । नोदनीयम् । नुत्तिः । नुन्नः । नोत्तुम् । नुत्वा । संनुद्य । नुदन् । नुदमानः । नुद्यमानः ।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ॥
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥ १० ॥

अन्वयः । सदसद्व्यक्तिहेतवः सन्तः तं श्रोतुम् अर्हन्ति । हि (यतः) हेम्नः विशुद्धिः वा श्यामिका अपि अग्नौ संलक्ष्यते ॥ १० ॥

वाच्यप० । सदसद्व्यक्तिहेतुभिः सद्भिः स श्रोतुं अर्ह्यते । हि हेम्नः विशुद्धि वा श्यामिकाम् अपि अग्नौ (जनाः) संलक्षयन्ति ॥ १० ॥

यथा हि सुवर्णस्योत्कृष्टता वह्नितापेन निर्णीयते तथा काव्यस्य गुणो दोषो वा सहृदयानां पंडितानां विचारेणैव निर्णीयते । अत एव मदीयं काव्यमिदं सहृदयैः सद्भिरेव श्रोतव्यमिति सरलार्थः ॥ हेमतुल्यं काव्यं वह्नितुल्ये सहृदयहृदये परीक्षणीयमिति भावः ॥ १० ॥

भा०-उस (वंश) को सुननेको सत्य असत्य का निर्णय करनेवालेसन्तही योग्य हैं सोनेकी पवित्रता और कलौंच अग्निहीमें देखी जाती है ॥ १० ॥

श्रोतुम्=श्रु+तुम् । विशुद्धिः=वि+शुध्+क्तिन् । श्यामिका=श्याम+ठन्+टाप् । संलक्ष्यते=सम्+लक्ष-कर्मणि । श्रु श्रवणे । शृणोति । शुश्राव । अशृणोत् । अश्रौषीत् । कर्मणि श्रूयते । णिचि श्रावयति-ते । सनि शुश्रूषते । श्रवणीयम् । श्रवणम् । श्रुतः । श्रुतिः । श्रोतव्यम् । श्रोतुम् । श्रुत्वा । उपश्रुत्य । शृण्वन् । श्रूयमाणः ।

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ॥
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥ ११ ॥

अन्वयः । मनीषिणां माननीयः वैवस्वतः नाम मनुः छन्दसां प्रणव इव महीक्षिताम् आद्यः आसीत् ॥ ११ ॥

वाच्यप० । मनीषिणां माननीयेन वैवस्वतेन नाम्ना मनुना छन्दसां प्रणवेन इव महीक्षिताम् आद्येन अभूयत ॥ ११ ॥

ॐकारो यथा सर्वैः विद्वद्भिः पूज्यते सर्ववेदानामग्रे कथ्यते तथैव वसुधायां नृपवंशस्य प्रवर्तयिता स श्रीमान् वैवस्वतो मनुरेवास्य सुमहतो रघुवंशस्य प्रथमः पुरुष आसीदिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—वैवस्वत नाम मनु विद्वानोंका पूजनीय राजाओंमें प्रथम हुआ, जैसे छन्दोंमें ओंकार ॥ ११ ॥

मनीषिणः=मनस्+इष्+णिनि । वा मनीषा इति निपात्यते । माननीयः=मान्+अनीयर् । प्रणवः=प्र+नु+अच् । महीक्षितः=मही+क्षि+क्विप्+तुक् च । आद्यः=आदि+यत् । वैवस्वतः=विवस्वत्+अण् ।

क्षि क्षये क्षयति । चिक्षाय । अक्षयत् । अक्षैषीत् । भावे क्षीयते । क्षयणीयम् । क्षितः । क्षीणः । क्षयः । संक्षीय । क्षयन् ।

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ॥
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ॥ १२ ॥

अन्वयः । शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीपः इति राजेन्दुः क्षीरनिधौ इंदुरिव प्रसूतः ॥ १२ ॥

वाच्यप० । शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरेण राजेन्दुना दिलीपेन क्षीरनिधौ इन्दुना इव प्रसूतम् ॥ १२ ॥

यथा हि उज्ज्वले क्षीरसागरे लोकसुखदायकश्चन्द्रो जातः तथा पवित्रे वैवस्वतवंशे अतिपवित्रः जगदानंदकर्त्ता दिलीपनामा नृपश्रेष्ठो जातः इति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भारते यथा—ततः शतसहस्रांशुर्मथ्यमानात्तु सागरात् ।
प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥

भा०—उसके पवित्र वंशमें दिलीपनाम अतिपवित्र राजेन्द्रने जन्म लिया जैसे क्षीरसागरमेंसे चन्द्रमाने ॥ १२ ॥

शुद्धिमति=शुद्धि+मतुप् । शुद्धिमत्तरः=शुद्धिमत्+तरप् । इन्दुः=उन्दी क्लेदने उः । उन्देरिच्चादेः । प्रसूतः प्र+सू+क्त ।

षू प्राणिप्रसवे । सूते । सुषुवे । असूत । असविष्ट । असोष्ट । कर्मणि सूयते, असावि । सवनीयः । सूनः । सूतिः । सवितव्यम् सोतव्यम् । सवितुम् सोतुम् । सूत्वा । प्रसूय । सुवानः । सूयमानः । कर्मणि साविष्यमाणश्च ।

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ॥
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ॥ १३ ॥

अन्वयः । (कथम्भूतः दिलीपः) व्यूढोरस्कः वृषस्कंधः शालप्रांशुः महाभुजः (अस्मादेव आत्मकर्मक्षमं देहम् आश्रितः क्षात्रः धर्म इव स्थितः ॥ १३ ॥

वाच्यप० । व्यूढोरस्केन वृषस्कन्धेन शालप्रांशुना महाभुजेन आत्मकर्मक्षमं देहं आश्रितेन (तेन) क्षात्रेण धर्मेण इव स्थितम् ॥ १३ ॥

तस्य नृपस्य शरीरोत्कर्षः लोकोत्तरः आसीत् सः सर्वजगद्रक्षणक्षमां मानुषीं तनुं परिगृह्य अवस्थितः प्रत्यक्षं क्षत्रियधर्म इव दिदीपे इति सरलार्थः । वीरधर्म एवायं दिलीपस्य रूपं कृत्वा वर्तते इति भावः ॥ १३ ॥

भा०—बडी चौंडी छातीवाला बैलकेसे (ऊंचे) कंधौंवाला शालकी समान लम्बी बडी बाहौंवाला अपने कार्यमें समर्थ मानो क्षत्रियोंका धर्म देह धारण किये हुए है ॥ १३ ॥

व्यूढः=वि+वह+क्त । उरस्कः=उरस्+कप् । आश्रितः=आ+श्रि+क्त । क्षात्रः=क्षत्र+अण् । श्रिञ् सेवायाम् । श्रयति । श्रयते । शिश्राय।शिश्रिये । श्रयिता ।अशिश्रियत् । आशिश्रियत । कर्मणि श्रीयते। अश्रायि। णिचि श्राययति-ते । श्रयणीयम् ।संश्रयी । श्रितः।श्रयितव्यम् । श्रयित्वा । आश्रित्य । श्रयन् । श्रयमाणः । श्रीयमाणः ।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना ॥
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ॥ १४ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतः सः) सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुरिव उर्वीं क्रांत्वा स्थितः ॥ १४ ॥

वाच्यप० । सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना उर्वीं क्रान्त्वा मेरुणा इव (तेन) स्थितम् ॥ १४ ॥

सुमेरुः यथा निजास्थिरांशेन सर्व्वान् संघातकठिनान् पदार्थान् परिभवति कान्त्या च सर्वान् ज्वलितपदार्थान् तिरस्करोति औन्नत्येन सर्व्वान् उन्नतपदार्थान् निराकरोति आयतत्वेन सम्पूर्णां वसुधां व्याप्य सुतिष्ठति तथा सोपि दिलीपः विक्रमेण शूरान्, तेजसा तेजस्विनः देहमनसोः औन्नत्येन महापुरुषान् बलेन धरां समाक्रम्य तस्थाविति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—सबसे अधिक बलवान् सबसे अधिक तेजस्वी सबसे ऊंचे शरीरसे पृथ्वीको दबाकर सुमेरुकी नाईं आक्रमणकर बैठा ॥ १४ ॥

अभिभाविना=अभि+भू+णिनि । आत्मना=अत्+मनिण् । उर्वीम्=उरु+ङीप् । क्रान्त्वा=क्रम्+क्त्वा । क्रमु पादविक्षेपे, क्राम्यति । क्रामति । चक्राम । अक्राम्यत् । अक्रमीत् । कर्मणि क्रम्यते । क्रमणीयम् । क्रान्तिः । क्रमितुम् । संक्रम्य । क्राम्यन् । क्रामन् ।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ॥
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥ १५ ॥

अन्वयः । (पुनः कीदृशः सः) आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः आगमैः सदृशारम्भः आरंभसदृशोदयः ॥ १५ ॥

वाच्यप० । आकारसदृशप्रज्ञेन प्रज्ञया सदृशागमेन आगमैः सदृशारम्भेण आरम्भसदृशोदयेन (तेन अभूयत) ॥ १५ ॥

तस्य आकृतिः महती धीरपि महती विद्यापि महती क्रियापि महती कार्यसिद्धिरपि महती एवं सर्वप्रकारेण तस्मिन् भूपतौ महत्त्वं स्थितमिति सरलार्थः । सर्वमाहात्म्यसागर इति भावः ॥ १५ ॥

भा०–सूरतकी समान बुद्धिवाला बुद्धिकी समान शास्त्रका अभ्यास करनेवाला शास्त्र अभ्यासके समान उद्योग करनेवाला आरम्भकी समान उदयवाला ॥ १५ ॥

।आकार=आ+कृ+घञ् । प्रज्ञा=प्र+ज्ञा+अङ् । आगमः=आ+गम्+अप् । आरम्भ=आरभ्+घञ् । उदयः=उत्+इ+अच् ।

इ गतौ एति । इयाय । ऐत् । अगात् । कर्मणि ईयते । णिचि गमयति–ते । अयनीयम् । अयः प्रत्ययः । एतव्यः इतः । एतुम् । इतिः । इत्वा । उपेत्य । यन् । ईयमानः ।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ॥
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥ १६ ॥

अन्वयः । सः यादोरत्नैः अर्णव इव भीमकान्तैः नृपगुणैः उपजीविनाम् अधृष्यः अभिगम्यः च बभूव ॥ १६ ॥

वाच्यप० । यादोरत्नैः अर्णवेन इव भीमकान्तैः नृपगुणैः उपजीविनाम् अधृष्येण अभिगम्येन च बभूवे ॥ १६ ॥

यथा सागरः परममनोहरैः मुक्तादिभिः जनानामाश्रयणीयो भवति भयंकरैस्तिमिमकरादिभिश्च दुर्गमनीयो भवति तथैव सोपि नृपतिः जनमनोहरैः करुणाचतुरतादिभिः प्रजानामाश्रयणीयः दुस्सहैस्तेजःप्रतापादिभिश्च तासामतिगहनो बभूवेति सरलार्थः । स राजा जलधिवत् अतिगम्भीर-सत्त्वः मुक्ता इव सज्जनानां प्रियदर्शनः मत्स्यादिरिव क्रूरपुरुषाणां भीमदर्शनश्चासीदिति भावः॥१६॥

भा०–वह भयंकर और मनोहर राजगुणोंसे कर्मचारियों (सेवकादि) को दूर रखनेवाला और धोरे बुलानेवालाभी हुआ जैसे (नाके आदि) जंतुओंसे और रत्नोंसे समुद्र । अर्थात समुद्रमें मगरमच्छादिकोंके डरसे कोई नहीं घुस सक्ता और रत्नोंके लालचसे घुसतेभी हैं ऐसेही राजाके पास जानेसे लोग डरतेभीथे और जातेभीथे॥१६॥

भीमः=भी+मक् (उणादिः) । कान्तः=कम्+क्त । उपजीविनाम्=उप+जीव+णिन् । यादः=या+सुन्+दुक्+यादस् । अर्णवः=अर्णस्+व । अधृष्यः=न+धृष्+यत् । अभिगम्यः=अभि+गम्+यत् । भू सत्तायाम् भवति । बभूव । अभवत् । अभूत्।भावे भूयते ।.अच् भवः । अनीयर् भवनीयम् । प्र+भू+घञ्=प्रभावः । क्त भूतः । क्तिन् भूतिः।क्त्वा भूत्वा ।डु विभुः । णमुल् भावम् । ल्यप परिभूय । शतृ भवन्। शानच् अनुभूयमानः ।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम् ॥
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः ॥ १७ ॥

अन्वयः। नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तयः प्रजाः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परं रेखामात्रम् अपि न व्यतीयुः ॥ १७ ॥

वाच्यप०। नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तिभिः प्रजाभिः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परं रेखामात्रमपि न व्यतीये ॥ १७ ॥

यथा हि सारथेः कौशलेन रथस्य पश्चाद्वार्तिन्यः चक्रधाराः अग्रे वर्तनीभिः चक्रधाराभिः महतः पथः इतस्ततः रेखामात्रमपि नैव अतिक्रामन्ति तथा दिलीपस्य प्रजापालनकौशलेन सर्वाः प्रजाः पूर्वजनैः अभ्यस्ताः मनुकथितात् मार्गात् इतस्ततः रेखामात्रमपि न व्यतीयुः सर्व्वे ब्राह्मणक्षत्रिय-शूद्रादयः स्वस्वधर्मे सर्वथा आरूढा आसन् इति भावः ॥ १७ ॥

भा०-उस शिक्षाकरनेवालेकी प्रजा मनुके मार्ग अभ्यास कीहुई रथके पहियेकी भांति चलनेवाली रेखामात्रभी वाहर नहीं गई ॥ १७ ॥

नियन्तुः=नि+यम+तृच्। क्षुण्णात्क्षुद्+क्त। रेखामात्रम्=रेखा+मात्रच्। यम् उपरमे। यच्छति। ययाम। अयच्छत्। अयंसीत्। भावे यम्यते। णिचि यमयति। यमनीयम्। यमनम्। यामः यमः। यन्तुम्। यान्त्वा। यन्ता। संयम्य। यच्छन्। यम्यमानः॥

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ॥
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ १८ ॥

अन्वयः। सः प्रजानाम् एव भूत्यर्थं ताभ्यः (प्रजाभ्यः) बलिं अग्रहीत् हि (यतः) रविः सहस्रगुणम् (यथा तथा) उत्स्रष्टुं रसम् आदत्ते ॥ १८ ॥

वाच्यप०। तेन प्रजानाम् एव भूत्यर्थं ताभ्यः बलिः अग्राहि हि रविणा सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुं रसः आदीयते ॥ १८ ॥

यथा रविः स्वकिरणैः धराया रसं गृह्णाति समये च पुनः सहस्रगुणं जलं दत्त्वा वसुधाया धान्य-सम्पदं वर्द्धयति तथा स दिलीपोपि प्रकृतिभ्यः करं गृह्णाति स्म समये तत्सहस्रगुणं सुखं दत्त्वा प्रकृतीनां सत्त्वान् वर्धयति स्म, इति सरलार्थः। स परिमितं करं गृह्णाति स्म प्रजानां सुखसाधनमपरिमितमासीत् ॥ १८ ॥

भा०-प्रजाओंके कल्याण करनेके निमित्तही उनसे उसने करलिया जैसें सूर्य हजार गुणा वरसानेही को (पृथ्वीसे) जल लेता है ॥ १८ ॥

रविः=रु+इ (उणादिः)। उत्स्रष्टुम्=उत्+सृज्+तुम्। आदत्ते।आ+दा+लट्। ग्रह उपादाने गृह्णाति गृह्णीते। जग्राह जगृहे। अगृह्णात् अगृह्णीत। अग्रहीत्, अग्रहिष्ट। कर्मणि गृह्यते। णिचि ग्राहयति-ते। ग्रहणीयम्। ग्रहः। ग्रहीतव्यम्। गृहीत्वा। संगृह्य। गृह्णन्।

सेनापरिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ॥
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता ॥ १९ ॥

अन्वयः । तस्य सेनापरिच्छदः (आसीत्) शास्त्रेषु अकुंठिता बुद्धिः धनुषि आतता मौर्वी च (एतत्) द्वयम् एव अर्थसाधनम् (बभूव) ॥ १९ ॥

वाच्यप० । तस्य सेनापरिच्छदेन अभूयत शास्त्रेषु अकुंठितया बुद्ध्या धनुषि आततया मौर्व्या च द्वयेन एव अर्थसाधनेन (अभूयत) ॥ १९ ॥

नृपेण छत्रचामरादिवत् सैन्यमपि अवश्यमेव रक्षणीयमिति स चतुरंगिणीं सेनां रक्षितवान् शत्रु-पराजयराज्यपालनादिकं तु सम्पूर्णं स्वेनैव पराक्रमेण अकरोत् इति सरलार्थः स्वयं समर्थस्य दिलीपस्य क्वचिदपि कार्ये अन्यपुरुषस्यापेक्षा नासीदिति भावः ॥ १९ ॥

भा०—सेनासे घिरेहुए उसके प्रयोजनके साधन दोहीथे शास्त्रमें तीक्ष्ण बुद्धि और धनुषमें चढीहुई प्रत्यंचा (रोदा) ॥ १९ ॥

सेना=षि+नक्+टाप् । वा स+इन । परिच्छदः=परि+छद+घ । अकुंठिता=अ+कुठि+क्त+टाप् । बुद्धिः=बुध+क्तिन् । आतता=आ+तन्+क्त+टाप् । मौर्वी=मूर्वा+अण्+ङीप् ।

बुध अवगमने । बुध्यते । बुबुधे । अबुध्यत । अबोधि । अबुद्ध । कर्मणि बुध्यते । अबोधि । बोधनीयम् । बोद्धुम् । बोद्धव्यम् । संबुध्य । बुध्यमानः । सनि बुभुत्सते । यङि बोबुध्यते ।

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च ॥
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥ २० ॥

अन्वयः । संवृतमंत्रस्य गूढाकारेंगितस्य च तस्य प्रारंभाः प्राक्तनाः संस्काराः इव फलानुमेयाः (बभूवुः) ॥ २० ॥

वाच्यप० । संवृतमंत्रस्य गूढाकारेंगितस्य च तस्य प्रारंभैः प्राक्तनैः संस्कारैः इव फलानुमेयैः (बभूवे) ॥ २० ॥

यथा हि पूर्वजन्मोपार्जितं कर्म इह जन्मनि फलदर्शनेन ज्ञायते तथैव दिलीपस्य गूढम-न्त्रकार्यमपि फलदर्शनेन अन्यैः जनैः अनुमीयते स्म फलसिद्धेः प्राँक् दिलीपस्य कार्यसाधनोपायान् ज्ञातुं कोपि समर्थो न बभूवेति भावः ॥ २० ॥

भा०—उस गुप्त भेद रखनेवाले तथा बाहर भीतरके (इंद्रियोंके) भावों के चिह्न छिपाने वालेके काम पूर्वजन्मके संस्कारकी तरह फलोंसे जाने जाते थे ॥ २० ॥

इङ्गितम्=इगि+क्त । गूढः=गुहू+क्त । प्राक्तनाः=प्राक्+ट्युल् । संस्काराः=सम्+कृ+घञ् । अनु-मेयाः=अनु मा+यत् ।

गुह संवरणे । गूहति गूहते । जुगूह जुगुहे । अगुहत्, अगुहत । अगूहीत्, अघुक्षत् । अगूढ अघुक्षत । कर्मणि गुह्यते अगूहि । गूहनीयम् । गूहकः । गूढः । गूहितुम् । गूहितव्यम् । गुहित्वा, संगुह्य । गूहन् । गूहमानः ।

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः ॥
अगृध्नुराददे सोर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥ २१ ॥

अन्वयः । स अत्रस्तः (सन्) आत्मानं जुगोप अनातुरः सन् धर्मं भेजे अगृध्नुः (सन्) अर्थम् आददे असक्तः (सन्) सुखम् अन्वभूत् ॥ २१ ॥

वाच्यप० । तेन अत्रस्तेन (सता) आत्मा जुगुपे आनातुरेण (सता) धर्मः भेजे अगृध्नुना (सता) अर्थः आददे असक्तेन (सता) सुखम् अन्वभावि ॥ २१ ॥

प्रायेण जनः भयभीत एव शरीरं रक्षति रोगग्रस्त एव धर्मानुष्ठानं करोति लोभान्ध एव धनाय यत्नं करोति अत्यासक्त एव विषयान् सेवते । अयं तु दिलीपः निष्कामः कर्तव्यधिया आत्मरक्षणधर्माचरणधनग्रहणसुखसेवनान्यकरोत् इति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०–वह (राजा) निर्भय हो अपनी रक्षा करता अरोगी हो धर्म को भजता लोभको त्याग धनको ग्रहण करता आसक्तिरहित हो सुखका भोग करतताथा ॥२१॥

अत्रस्तः=न+त्रस्+क्त । अगृध्नुः=न+गृध्+क्नु । असक्तः=न+सञ्ज+क्त ।

गुप रक्षणे गोपायति । जुगोप गोपायांचकार । अगोपायत् । अगोपायीत् अगोपीत् अगौप्सीत् । कर्मणि गोपाय्यते गुप्यते । सनि जुगोपायिषति । गोपायनीयम् । गोपनीयम् । गोपायकः गोपकः । गोपायिता गोपिता गोप्ता । गोपायितुम् गोपितुम् गोप्तुम् । गोपायितव्यम् गोपितव्यम् गोप्तव्यम् । सङ्गोपाय्य संगुप्य गोपायन् । गोपाय्यमानः ।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः ॥
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ॥ २२ ॥

अन्वयः । तस्य ज्ञाने (सति) मौनं शक्तौ (सत्याम्) क्षमा त्यागे (सति) श्लाघाविपर्ययः (अत एव तस्य) गुणाः गुणानुबंधित्वात् सप्रसवाः इव आसन् ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तस्य ज्ञाने (सति) मौनेन शक्तौ (सत्यां) क्षमया त्यागे (सति) श्लाघाविपर्ययेण (अभूयत) (अत एव) गुणैः सप्रसवैः इव अभूयत ॥ २२ ॥

विद्वत्सु वाक्पटुता चपलता, प्रभुषु अक्षमा, दानशीलेषु आत्मश्लाघा प्रायेण दृश्यते, अयन्तु राजा पण्डितोपि मितवाक् स्वाम्यपि क्षमावान् दानशीलोपि श्लाघाशून्यो बभूवेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०–ज्ञान में मौन सामर्थ्य होनेमें क्षमा दान करने में वडाई की इच्छा न करना गुणोंके सम्बन्धसे उसके गुण सहोदर (साथके जन्मे) सेथे ॥ २२ ॥

मौनम्=मुनि+अण् । शक्तौ=शक्+क्तिन् । क्षमा=क्षम्+अङ् । त्यागः=त्यज्+घञ् । अनुबन्धित्वात्=अनु+बन्ध+णिनि+त्व । शक् शक्तौ शक्नोति । शशाक । अशकत् । भावे शक्यते । अशाकि । शकनीयम् शकितव्यम् शक्यम् । शक्त्वा शक्नुवन् । शक्यमानः ।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः ॥
तस्य धर्मरतेरासीद्वृद्धत्वं जरसा विना ॥ २३ ॥

अन्वयः । विषयैः अनाकृष्टस्य विद्यानां पारदृश्वनः धर्मरतेः तस्य (दिलीपस्य) जरसा विना वृद्धत्वम् आसीत् ॥ २३ ॥

वाच्यप० । विषयैः अनाकृष्टस्य विद्यानां पारदृश्वनः धर्मरतेः तस्य (राज्ञः) जरसा विना वृद्धत्वेन अभूयत ॥ २३ ॥

यूनोऽपि तस्य दिलीपस्य विषयवैराग्ये वेदवेदाङ्गज्ञाने धर्मानुष्ठाने च बुद्धेः अधिका परिणतिः जाता इति सरलार्थः। युवावस्थायामपि स चतुष्पदार्थेषु अधिकतरां चतुरतां लेभे। इति भावः॥२३॥

भा०–उसे जिस विषयोंने अपनी ओर न खैंचा, विद्याओंके पार दीखनेवाले को धर्ममें रुचिरखनेवालेको विना वृद्धावस्था प्राप्त हुए बुढाई हुई॥ २३॥

अनाकृष्टस्य=अन्+आ+कृष्+क्त।६। पारदृश्वनः=पार+दृश्+क्वनिप्।जरसा=जॄ+अङ्+टाप्।जरसादेशः। दृश प्रेक्षणे पश्यति। ददर्श। अपश्यत्। अदर्शत्। अद्राक्षीत्। कर्मणि दृश्यते। अदर्शि। णिचि दर्शयति दर्श्यते। सनि दिदृक्षते। दर्शनीयम्। दर्शः। दर्शी। दृष्टिः। ण्यन्तस्य दर्शितः। द्रष्टव्यम्। दर्शयितव्यम्। दृष्ट्वा दर्शयित्वा। पश्यन्। दर्शयन्। दृश्यमानः। दर्श्यमानः।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि॥
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ २४॥

अन्वयः। विनयाधानात् रक्षणात् भरणात् अपि सः प्रजानां पिता (आसीत्) तासां (प्रजानाम्) पितरः केवलं जन्महेतवः (आसन्)॥ २४॥

वाच्यप०। विनयाधानात् रक्षणात् भरणात् अपि तेन प्रजानां पित्रा (अभूयत) तासां पितृभिर्जन्महेतुभिः (अभूयत)॥ २४॥

स शिक्षाप्रदानेन सर्वान् जनान् सतां मार्गे प्रवर्तयामास भयाद्ररक्ष जीविकाविधानेन वभार अस्मात् स प्रजानां प्रकृतपितृपदवाच्यः आसीत् तासां प्रकृतीनां पितरस्तु केवलं जन्महेतवः आसन् सर्वेषां जनानां सर्वाणि पित्रुचितकर्तव्यानि कृत्वा स सर्वलोकप्रियोभूत् इति सरलार्थः॥ २४॥

भा०–वह नीति सिखलाने, रक्षा करने और पालनेसे प्रजाओंका पिता था उनके माता पिता केवल जन्म देनेकेही कारण थे॥ २४॥

रक्षणात्=रक्ष+ल्युट्। भरणात्=भृ+ल्युट्। पिता=पा+तृच् पातीति पिता। रक्ष पालने रक्षति। ररक्ष। अरक्षत्। अरक्षीत्। कर्मणि रक्ष्यते। णिचि रक्षयति रक्षयते। रक्षणीयम्। रक्षितव्यम्। रक्षितुम्। रक्षित्वा। संरक्ष्य। रक्षन्।

स्थित्यै दण्डयतो दंड्यान्परिणेतुः प्रसूतये॥
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः॥ २५॥

अन्वयः। स्थित्यै दंड्यान् दंडयतः प्रसूतये परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामौ अपि धर्म एव आस्ताम्॥ २५॥

वाच्यप०। स्थित्यै दंड्यान् दंडयतः प्रसूतये परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामाभ्याम् अभूयत॥ २५॥

अपराधसदृशं दण्डदानं विना जगत्स्थितिरूपो धर्मो न स्यात् अतः स दण्डार्हेषु ताडनादि दण्डं प्रयुक्तवान् संतानोत्पादनं विना कुलस्थितिरूपो धर्मो न स्यात् अस्मात् सः विवाहं कृतवान् अत

एव तस्य दिलीपस्य धर्मार्थकामरूपस्य त्रिवर्गस्य अर्थकामावपि धर्ममूलकौ एव अभूताम् इति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—उस अपराधियोंको मर्यादा में रखनेके निमित्त दण्ड देनेवाले के और सन्तानके निमित्त व्याह करनेवाले बुद्धिमानके अर्थ और कामभी धर्मही थे ॥ २५ ॥

दण्ड्याः=दण्ड+यत् । स्थित्यै=स्था+क्तिन् ४ । प्रसूतये=प्र+सू+क्तिन् ४ । परिणेतुः=परि+नी+तृच् ६ । स्था गतिनिवृत्तौ तिष्ठति । तस्थौ । अतिष्ठत् । अस्थात् । भावे स्थीयते अस्थायि । णिचि स्थापयति-ते । सनि तिष्ठासति । यङि तेष्ठीयते । स्थानीयम् । स्थायी । स्थितिः । स्थातव्यम् । स्थातुम् । स्थित्वा । तिष्ठन् ।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ॥
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥ २६ ॥

अन्वयः । सः यज्ञाय गां दुदोह मघवा सस्याय दिवं (दुदोह) (एवम्) उभौ (इन्द्रदिलीपौ) संपद्विनिमयेन भुवनद्वयं दधतुः ॥ २६ ॥

वाच्यप० । तेन यज्ञाय गौः दुदुहे मघोना सस्याय द्यौः (दुदुहे) उभाभ्यां सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयं दधे ॥ २६ ॥

लोकेश्वरः दिलीपः वसुधायाः समुपार्जितैः करैः इन्द्रलोकप्रीतिसाधनं यज्ञं कृत्वा शचीपतिं सन्तोषयामास स्वर्गपतिः सहस्रलोचनोपि प्रीतः सन् स्वर्गात् पातितैः मेघसलिलैः वसुधायाः धान्यसम्पदं संवर्द्धयं पृथ्वीपतिं सन्तोषयामास एवमिन्द्रदिलीपौ उपकारविनिमयेन मर्त्यं स्वर्गं पालयामासतुः इति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—उसने यज्ञके निमित्त पृथ्वीको दुहा और इन्द्रने धान्यके निमित्त आकाशको दुहा (अर्थात् वह यज्ञ करता इन्द्र जल बरसाते) एक दूसरेको बदला देकर दोनोंने दोनों लोकोंको पाला ॥ २६ ॥

यज्ञाय=यज्+नङ् । गाम्=गम्+डोस् । दुदोह=दुह+लिट् । मघवा=मह+कनिन्+वुक् । सस्यम्=षस् क्यप् । दिवम्=दिव्+डिवि । दुह प्रपूरणे दोग्धि दुग्धे । दुदोह दुदुहे । अधोक् अदुग्ध । अधुक्षत् अदुग्ध । अधुक्षत । कर्मणि दुह्यते । अदोहि । णिचि दोहयति-ते । सनि दुधुक्षति । यङि दोदुह्यते । दोहनम् । दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । दुग्ध्वा । संदुह्य । दुहन् । दुह्यमानः ।

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ॥
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ॥ २७ ॥

अन्वयः । (अन्ये) राजानः रक्षितुः तस्य यशः न अनुययुः किल यत् (यस्मात्) तस्करता परस्वेभ्यः व्यावृत्ता (सती) श्रुतौ स्थिता ॥ २७ ॥

वाच्यप० । (अन्यैः) राजभिः रक्षितुः तस्य यशः न अनुयये किल तस्करतया परस्वेभ्यः व्यावृत्तया (सत्या) श्रुतौ स्थितम् ॥ २७ ॥

दिलीपसदृशः कोपि अन्यः राजा प्रजाः पालयितुं न समर्थो बभूव यतः तस्य प्रभावात् राज्ये तस्करा नैव आसन् अस्मात् चौर्य्यं स्वरूपतः केनापि कदापि न दृष्टम् खपुष्पवत् नाममात्रेणैव स्थितमिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०-उस रक्षा करनेवालेके यशको और राजा न पहुंचसके क्योंकि दूसरेके धनसे निकलीहुई चोरी नाममें अथवा कानमें रही ॥ २७ ॥

अनुययुः=अनु+या+लिट् । तस्करता=तत् कृ अच् सुट् । तस्करस्य भावः इति तल् प्रत्ययः । व्यावृत्ता=वि आ वृत् क्त । श्रुतिः श्रु+क्तिन् । या प्रापणे याति । ययुः । अयात् । अयासीत् । कर्मणि यायते । अयायि । णिचि यापयति-ते । सनि यियासति । यानीयम् । यानम् । यातिः । यातव्यम् । यातुम् । यात्वा। प्रयाय । यान् । यायमानः ।

द्वेष्योपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम् ॥
त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदंगुलीवोरगक्षता ॥ २८ ॥

अन्वयः । शिष्टः (मनुष्यः) द्वेष्यः अपि आर्त्तस्य औषधं यथा तस्य सम्मतः आसीत् दुष्टः (नरः) प्रियः अपि उरगक्षता अंगुली इव (तस्य) त्याज्यः (आसीत्) ॥ २८ ॥

वाच्यप० । शिष्टेन (मनुष्येण) द्वेष्येण अपि आर्त्तस्य औषधेन यथा तस्य सम्मतेन अभूयत दुष्टेन (नरेण) प्रियेण अपि उरगक्षतया अंगुल्या इव (तस्य) त्याज्येन (अभूयत) ॥ २८ ॥

यथा हि कटुकामपि औषधीं हितत्वात् व्याधिग्रस्तः सानुरागं सेवते तथैव द्वेष्यमपि गुणयुक्तं दिलीपः सप्रेम सेवितवान् यथा प्रियामपि उरगदष्टां निजांगुलीं चतुरः तत्क्षणं छिनत्ति तथा सोपि प्रियमपि दुष्टतायुक्तं जनं तत्क्षणं ताडयामास इति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-रोगी को (कडवी) औषधी की समान सज्जनवैरी भी उसको प्रिय था सांपकी काटी उंगलीकीतरह दुष्ट प्यारा भी त्यागने योग्य था ॥ २८ ॥

शिष्टः=शास्+क्त । द्वेष्यः=द्विष् यत् । आर्तस्य=आ ऋ क्त । सम्मतः=सम् मन् क्त । दुष्ट=दुष् क्त । प्रियः=प्री कः । उरगः=उरस् गम् । शास् अनुशिष्टौ शास्ति । शशास । अशात् । अशिषत् । कर्मणि शिष्यते । अशासि । णिचि शासयति-ते । शिष्यः । शिष्ट्वा । शासत् ।

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ॥
तथा हि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः ॥ २९ ॥

अन्वयः । नूनं वेधाः महाभूतसमाधिना तं विदधे तथाहि तस्य सर्वे गुणाः परार्थैकफलाः आसन् ॥ २९ ॥

वाच्यप० । नूनं वेधसा महाभूतसमाधिना सः विदधे, तथाहि तस्य सर्वैः गुणैः परार्थैकफलैः अभूयत ॥ २९ ॥

प्रजापतिः यया कारणसामग्र्या प्रकृत्या पंच महाभूतानि निर्ममे तया एव सामग्र्या स दिलीपमपि

रचितवान् यथा महाभूतानां रूपरसादयः गुणाः जगद्धिताय प्रवर्तन्ते तथा दिलीपस्यापि सर्वे गुणाः परार्थाय प्रवर्तन्ते स्म न तु स्वार्थसाधनाय इति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—मानों उसको विधाताने पंचमहाभूतों (पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश) की समाधिसे बनाया था इसी कारण उसके सब गुण केवल पराये अर्थका फल देनेवाले हुए ॥ २९ ॥

समाधिः=सम्+आ+धा+कि । आसन्=अस् लङ्।धा धारणपोषणयोः । दधाति—धत्ते । दधौ—दधे अदधात्—अधत्त । अधात्—अधित । कर्मणि धीयते । अधायि । णिचि धापयति—ते । सनि धित्सति—ते । धानीयम् । धानम् । कि उदधिः । धाता । हितः । अन्तर्द्धा । श्रद्धा । धातुम् । धातव्यम् । हित्वा । सन्धाय । धेयम् । दधत् । दधानः । धीयमानः ।

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ॥
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव ॥ ३० ॥

अन्वयः । सः (दिलीपः) वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् अनन्यशासनाम् उर्वीम् एकपुरीम् इव शशास ॥ ३० ॥

वाच्यप० । तेन (दिलीपेन) वेलावप्रवलया परिखीकृतसागरा अनन्यशासना उर्वी एकपुरी इव शशासे ॥ ३० ॥

यथा कोपि पुरुषः प्राकारयुक्ताम् एकां नगरीं श्रमरहितः पालयति तथासौ दिलीपः सम्पूर्णां वसुधाम् अनायासेन शशासेति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—वह समुद्रके किनारे के परकोटेवाली समुद्र की खांईवाली जिसमें दूसरेका शासन नहीं ऐसी पृथ्वीको एक पुरी की समान मर्यादामें रखताथा ॥ ३० ॥

परिखीकृताः=परि+खन्+ड । शास् अनुशिष्टौ । खन् अवदारणे खनति । खनते । चखान चख्ने । अखनत् अखनत । अखनीत्—अखानीत् । कर्मणि खन्यते-खायते । अखानि । णिचि खानयति-ते। सनि चिखनिषति-ते । खननीयम् । खननम् । खातिः । खनितुम् । खनित्वा खात्वा । संखाय—संखन्य । खनन् । खनमानः ।

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा ॥
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ॥ ३१ ॥

अन्वयः । तस्य मगधवंशजा दाक्षिण्यरूढेन सुदक्षिणा इति नाम्ना पत्नी अध्वरस्य दक्षिणा (पत्नी) इव आसीत् ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । तस्य मगधवंशजया दाक्षिण्यरूढेन सुदक्षिणा इति नाम्ना पत्न्या अध्वरस्य दक्षिणया (पत्न्या) इव अभूयत ॥ ३१ ॥

पवित्रा यज्ञस्य पत्नी दक्षिणेव अतिनिर्मला मगधराजकन्या सुदक्षिणा नाम तस्य महिषी आसीत् इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—चतुरतामें आरूढ मगधवंशकी उत्पन्न हुई सुदक्षिणा नामवाली यज्ञकी दक्षिणाकी समान उसकी पत्नी थी ॥ ३१ ॥

दाक्षिण्य=दक्ष+इनन्–ष्यञ् । रूढ=रुह् क्त । अध्वरस्य=अ ध्वृ अच् । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च रोहति । रुरोह । अरोहत् । अरुक्षत् । कर्मणि रुह्यते । अरोहि । णिचि रोहयति-ते । रोहणीयम्-रोहणम् । रूढिः । रोढव्यम् । रोढुम् । रूढ्वा । आरुह्य । रोहन् । रुह्यमाणः ।

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ॥
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः ॥ ३२ ॥

अन्वयः । वसुधाधिपः महति अवरोधे (सति) अपि मनस्विन्या तया (सुदक्षिणया) लक्ष्म्या च आत्मानं कलत्रवन्तं मेने ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । वसुधाधिपेन महति अवरोधे (सति) अपि मनस्विन्या तया (सुदक्षिणया) लक्ष्म्या च आत्मा कलत्रवान् मेने ॥ ३२ ॥

दिलीपः महति अवरोधेपि सुदक्षिणालाभेन वसुधालाभेन च आत्मानं स्त्रीसौभाग्ययुक्तं मन्यते स्म इति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०–अधिक रानियोंके रहतेभी वह पृथ्वीपति अपने को उस बुद्धिमती रानी और लक्ष्मीसे स्त्रीवाला मान्ताथा ॥ ३२ ॥

अवरोध=अव+रुह घञ् । मनस्विनी=मन्असि विनि-ङीप् । मन ज्ञाने मन्यते । मेने। अमन्यत। अमस्त। कर्मणि मन्यते । अमानि । णिचि मानयति-ते । मननीयम् । मननम् । मानः । अभिमानः । मतिः । मन्तुम् । मन्तव्यम् । मत्वा । विमन्य । मान्यम् । अभि-अभिमाने अभिमन्यते । सम्-सम्मतौ सम्मानः अप-अपमाने अपमानः ।

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः ॥
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः ॥ ३३ ॥

अन्वयः । सः आत्मानुरूपायां तस्यां (सुदक्षिणायाम्) आत्मजन्मसमुत्सुकः (सन्) विलंबितफलैः मनोरथैः कालं निनाय ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । तेन आत्मानुरूपायां तस्याम् आत्मजन्मसमुत्सुकेन (सता) विलंबितफलैः कालः निन्ये ॥ ३३ ॥

स दिलीपः तस्यां सुदक्षिणायां निजानुरूपस्य पुत्रस्योत्पत्तौ नितरामुत्कंठितचित्तः सन् मनोरथैः समयं निनाय मनोरथसिद्धौ तु महान् विलम्बोभूत् इति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–अपनी उस मनोहारिणी में पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छा करनेवाले राजाने देरमें फलनेवाले मनोरथोंसे समयको विताया ॥ ३३ ॥

समुत्सुकः=सम्+उत्+सु+क्विन् । विलम्बित=विलम्ब+इतच् । नी प्रापणे नयति--नयते । निनाय-निन्ये । अनयत्-अनयत । आनैषीत्-अनेष्ट । कर्मणि नीयते । अनायि । णिचि नाययति-ते । सनि निनीषति-ते । यङ नेनीयते । नयनीयम् ।नयनम् । नयः ।उपनयः । नेता । नेतव्यम् । नीत्वा । विनीय । नेयम् । नयन् । नयमानः । नीयमानः ।

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ॥
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ ३४ ॥

अन्वयः । तेन (दिलीपेन) संतानार्थाय विधये स्वभुजात् अवतारिता जगतः गुर्वी धूः सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । सः (दिलीपः) संतानार्थाय विधये स्वभुजात् अवतारितां जगतः गुर्वीं धुरं सचिवेषु निचिक्षेप ॥ ३४ ॥

सस्त्रीकः सः सन्तानार्थं गुरोर्वशिष्ठस्याश्रमे गन्तुं मतिं कृत्वा विश्वस्तेषु अमात्येषु राज्यभारं समर्पितवान् इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—सन्तान होनेके विधानके वास्ते उसने पृथ्वीके (पालने का) भारी बोझ अपनी भुजाओंसे उतारकर मंत्रियोंपर डाला ॥ ३४ ॥

विधये=वि+धा+कि । अवतारितः=अव तॄ णिच् क्त । धूः=धूर्व्+क्विप् । सचिवः=सच्+इवन्+क । क्षिप प्रेरणे । क्षिपति-क्षिपते । चिक्षेप—चिक्षिपे । अक्षिपत्-अक्षिपत । अक्षैप्सीत्-अक्षिप्त । कर्मणि क्षिप्यते । अक्षेपि । णिचि क्षेपयति-ते । क्षेपणीयम् । क्षेपणम् । क्षेपकः क्षिप्तम् । क्षिप्त्वा । संक्षिप्य । क्षेप्यम् । क्षिपन् । क्षिप्यमाणः ।

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया ॥
तौ दंपती वशिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । अथ प्रयतौ तौ दम्पती पुत्रकाम्यया विधातारम् अभ्यर्च्य गुरोः वशिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । अथ प्रयताभ्यां ताभ्यां दंपतिभ्यां पुत्रकाम्यया विधातारम् अभ्यर्च्य गुरोः वशिष्ठस्य आश्रमः जग्मे ॥ ३५ ॥

तौ सुदक्षिणादिलीपौ सन्तानलाभाय प्रथमं ब्रह्माणं प्रेमभक्त्या आराध्य पश्चात् सुतजन्मोपायं विधातुं कुलगुरोर्वशिष्ठस्य आश्रमं गतौ इति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—प्रजापतिका पूजन कर वे दोनो स्त्री पुरुष पवित्र नियम धारणकर पुत्रकी कामनासे गुरु वशिष्ठजीके आश्रमको चले ॥ ३५ ॥

पुत्रकाम्यया=पुत्र+काम्यच्+अ+टाप् । प्रयतौ=प्र+यम् क्त । विधातारं=वि धा तृच् । अभ्यर्च्य=अभि अर्च+ल्यप् । अर्च पूजने अर्चति । आनर्च । आर्चत् । आर्चीत् । कर्मणि अर्च्यते । अर्चनीयम् । अर्चनम् । अर्चितुम् । अर्चित्वा । अर्चितव्यः । समर्च्य । अर्चन् । अर्च्यमानः ।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ ॥
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ॥ ३६ ॥

अन्वयः ।(कीदृशौ तौ दंपती) स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम् एकं स्यंदनम् आस्थितौ (अत एव) प्रावृषेण्यं (एकम्) पयोवाहं (आस्थितौ) विद्युदैरावतौ इव स्थितौ) (जग्मतुः) ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । स्निग्धगंभीरनिर्घोषम् एकं स्यंदनम् आस्थिताभ्यां (ताभ्याम्) प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताभ्यामिव (जग्मे) ॥ ३६ ॥

यथा अभ्रमुमातङ्गः तत्प्रिया चपला च उभौ वर्षाकाले मनोरमध्वनियुक्ते वारिवाहे प्रकाशेते तथा दिलीपः सुदक्षिणा चोभौ घर्घरध्वनियुक्ते एकस्मिन् स्यन्दने प्रकाशेते स्म इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—वे दोनो मनोहर और गम्भीर शब्दवाले रथपर बैठेहुए वर्षाके मेघोंपर विजली और ऐरावतकी समान (शोभित हुए) ॥ ३६ ॥

स्निग्धः=स्निह+क्त । गम्भीरः=गम्+ईरन् । निर्घोषः=निर्+घुष्+घञ् । स्यंदनम्=स्यन्द+युच् । प्रावृषेण्यम्=प्रावृष्+एण्य । पयोवाहः=पयस्+वह्+अण् । वह प्रापणे-वहति-वहते । उवाह-ऊहे । अवहत्-अवहत । अवाक्षीत्-अवोढ अवक्षत । कर्मणि उह्यते । अवाहि । वहनीयम् । वहनम् । वाहः । वोढा । ऊढः । वोढव्यम् । वोढुम् । ऊढ्वा । प्रोह्य । वहन्-वहमानः । उह्यमानः ।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ॥
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ॥ ३७ ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतौ तौ) आश्रमपीडा मा भूत् इति (हेतोः) परिमेयपुरःसरौ तु (किंतु) अनुभावविशेषात् सेनापरिवृतौ इव (स्थितौ जग्मतुः) ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । आश्रमपीडया मा भावि इति (हेतोः) परिमेयपुरःसराभ्यां तु (किंतु) अनुभावविशेषात् सेनापरिवृताभ्यमिव (ताभ्यां (स्थिताभ्यां जग्मे) ॥ ३७ ॥

तौ सुदक्षिणादिलीपौ गुरोर्वशिष्ठस्याश्रमदुःखपरिहाराय यद्यपि न्यूनैरेव सेवकैस्सार्द्धं गतौ तथापि तौ दुस्सहेन केनापि प्रतापेन असंख्यसैन्यावृताविव शत्रुदुर्द्धर्षौ जाताविति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—आश्रमको दुःख न हो इसकारण थोडेसे सेवक साथमें लिये और प्रभावकी अधिकतासे तो मानो सेनासे घिरेहुए थे ॥ ३७ ॥

परिमेय=परिमा+यत् । पुरःसर=पुरस्+सृ+अच् ।

सृ गतौ । सरति । शीघ्रगतौ धावति । ससार । असरत् । असार्षीत् । कर्मणि स्रियते । असारि । णिचि सारयति-ते । सानि । सुसूर्षति । सरणीयम् । सरणम् । सरः । सर्तव्यम् । सर्तुम् । उपसृत्य । सरन् । स्रियमाणः ।

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः ॥
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतौ दंपती) सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगंधिभिः पुष्परेणूत्किरैः आधूतवनराजिभिः वातैः सेव्यमानौ (तौ जग्मतुः) ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । शालनिर्यासगन्धिनः पुष्परेणूत्किरान् आधूतवनराजीन् सुखस्पर्शान् वातान् सेवमानाभ्यां (ताभ्याम् जग्मे) ॥ ३८ ॥

सर्जतरुनिष्यन्दगन्धं समाहरन् नानाविधपुष्पपरागान् विकिरन् वनवृक्षांश्च कम्पयन् शीतलः सुरभिः सुमन्दः गन्धवहः पवनः पथि सुदक्षिणादिलीपौ सिषेवे इति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—छूनेसे सुखदेनेवाली शालवृक्षके गोंदकी गंधवाली फूलोंके परागको उडानेवाली वनके वृक्षोंकी लंगारको किंचित् कंपानेवाली पवनोंसे वे दोनो सेवित हुए ॥ ३८ ॥

गन्धि=गन्ध+इनि । उत्किराः=उत्+कॄ+क । आधूत=आ+धू+क्त । धूञ् कंपने । धुनाति धुनीते । दुधाव दुधुवे । अधुनात् अधुनीत । अधावीत् अधोष्ट । कर्मणि धूयते अधावि । णिचि धूनयति । सनि दुधूषति-ते । धवनीयम् । धवनम् । धूनः । धवितुम् । धोतुम् । धवित्वा । धूत्वा । सन्धूय । धुनन् । धुनानः । धूयमानः ।

मनोभिरामाः शृण्वन्तो रथनेमिस्वनोन्मुखैः ॥
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः ॥ ३९ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतौ तौ) रथनेमिस्वनोन्मुखैः शिखंडिभिः द्विधा भिन्नाः मनोऽभिरामाः षड्जसंवादिनीः केकाः शृण्वन्तौ (तौ जग्मतुः) ॥ ३९ ॥

वाच्यान्तरम् । शृण्वद्भ्यां जग्मे ॥ ३९ ॥

स्निग्धगम्भिररथशब्दं श्रुत्वा घनशब्दशङ्कया तद्वनवासिनो मयूराः प्रसन्नाः षड्जस्वरानुरूपं केकाशब्दं त्यजन्ति स्म सुदक्षिणादिलीपौ तं केकारवं शृण्वन्तौ जग्मतुः इति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०—रथके पहियोंके शब्दसे ऊंचे मुख उठाये मोरोंसे दोप्रकार मनोहर षड्ज शब्द सुन्ते हुए " नाक, कंठ, हृदय, तलुआ, जीभ, दांत इनसे निकलनेवाले शब्द को षड्ज कहते हैं " ॥ ३९ ॥

शिखण्डिनः=शिखण्ड+इनि । भिन्नः=भिद्+क्त । संवादिनी=सम्+वद+णिनि । मनोभिरामः=मनस्+अभि+रम्+घञ् । केका=के+कै+डः ।

वद-व्यक्तायां वाचि वदति । उवाद । अवदत् । अवादीत् । कर्मणि उद्यते । अवादि । णिचि वादयाते-ते । सनि विवदिषति । यङि वावद्यते । वदनीयम् । वदनम् । वादः । वशंवदः । कद्वदः । उदितिः । वदितुम् । वदितव्यम् । उदित्वा । अनूद्य । वदन् । उद्यमानः ।

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु ॥
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु ॥ ४० ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतौ दंपती) अदूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वंद्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यं पश्यंतौ (जग्मतुः) ॥ ४० ॥

वाच्यप० । अदूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वंद्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यं पश्यद्भ्यां (दंपतिभ्यां जग्मे) ॥ ४० ॥

तयोः दयायुक्तं प्रशान्तं निर्मलं रूपं विलोक्य भयं त्यक्त्वा हरिणाः हरिण्यश्च स्यन्दनमार्गं त्यक्त्वा निकटे एव स्थितास्तम् अलौकिकं स्यन्दनं लीलया निर्निमेषं विलोकयामासुः । तस्मिन्समये नृपः मृगीषु सुदक्षिणानेत्रतुल्यतां सा च मृगेषु पतिनयनसादृश्यं ददर्शेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-थोरे मार्गको छोडनेवाले जिनकी दृष्टि रथमें बंधरहीहै ऐसे मृगोंके जोडोंमें एक दूसरेकी आंखकी समानता देखते हुए ॥ ४० ॥

उज्झितः=उज्झ+क्त । उज्झति । उज्झाञ्चकार । औज्झत् । औज्झीत् । उज्झ्यते । उज्झनीयम् । उज्झितुम् । उज्झित्वा । उज्झितः । उज्झन् ।

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ॥
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥ ४१ ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतौ तौ) श्रेणीबंधात् अस्तंभाम् तोरणस्रजं वितन्वद्भिः कलनिर्ह्रादैः सारसैः क्वचित् उन्नमिताननौ (जग्मतुः) ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । श्रेणीबंधात् अस्तंभाम् तोरणस्रजं वितन्वाद्भिः कलनिर्ह्रादैः सारसैः क्वचित् उन्नमि-ताननाभ्याम् (ताभ्यां जग्मे) ॥ ४१ ॥

मालाकारेण खे उड्डीयमानामत एव आधाररहितां तोरणमालामिव दृश्यमानां कलं कूजन्तीं सारसततिं तौ सुदक्षिणादिलीपौ मुखमुपरि कृत्वा विलोकयन्तौ जग्मतुः इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-कहीं कहीं लंधार बांधकर विना थंभके वन्दनवारौंकी माला वनेहुए सुन्दर शब्द करनेवाले सारसौंको (देखने को) मुख उठाते हुए ॥ ४१ ॥

वितन्वत्=वि+तन्+शतृ । निर्ह्रादैः=निर्+ह्राद्+अच् ३ । सारसैः=सरस्+अण् ३ । उन्नमितः=उत्+नम्+णिच्+क्त । तनु विस्तारे । तनोति-तनुते । ततान-तेने । अतनोत्-अतनुत । अतानीत्-अतनीत् । अतत -अतनिष्ट । कर्मणि तायते तन्यते । अतानि । णिचि तानयति-ते । सनि तितानिषति । तितांसति । तितंसति । तननीयम् । तननम् । तानः । ततिः । तनितुम् । तनितव्यम् । तनित्वा-तत्वा । तन्वन् । तन्वानः । क्विपि पुरीतत् । क्तवौ तेनिवान् ।

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः ॥
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ॥ ४२ ॥

अन्वयः । (पुनः कीदृशौ तौ दंपती) प्रार्थनासिद्धिशंसिनः पवनस्य अनुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णैः रजोभिः अस्पृष्टालकवेष्टनौ (जग्मतुः) ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । प्रार्थनासिद्धिशंसिनः पवनस्य अनुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णैः रजोभिः अस्पृष्टालकवे-ष्टनाभ्याम् (दंपतिभ्यां जग्मे) ॥ ४२ ॥

सुदक्षिणादिलीपयोः गन्तव्यदिक्संमुखः अनुकूलः पवनः वाति स्म अत एव हयखुरोत्थितं पांसुजालं महिष्याः केशान् दिलीपस्य शिरोवेष्टनं च न स्पृष्टवान् इत्थं पवनस्य आनुकूल्यं तयोः निकटवर्तिनीं सिद्धिं कथयामासेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-मनोरथकी सफलता जतानेवाली पवनकी अनुकूलतासे घोडों की उठाई हुई धूरिसे उनके पगडी और वाल न छुएगए ॥ ४२ ॥

प्रार्थना=प्र+अर्थ+युच् । शंसिनः=शंस+णिनि । पवनस्य=पू+युच् । उत्कीर्णः=उत्+कृ+क्त । शंसु-स्तुतौ शंसति । । शशंस । अशंसत् । अशंसीत् । कर्मणि शस्यते । अशंसि । णिचि शंसयति-ते । शंसनीयम् । शंसनम् । शस्तः । शंसितुम् । शंसितव्यम् । शंसित्वा । शस्त्वा । प्रशस्य । शंसन् । शस्यमानः ।

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम् ॥
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः । (पुनः किम्भूतौ तौ) सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलं स्वनिःश्वासानुकारिणम् अरविन्दानाम् आमोदम् उपजिघ्रन्तौ (जग्मतुः) ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलं स्वनिःश्वासानुकारिणम् अरविन्दानाम् आमोदम् उपजिघ्रद्भ्याम् (ताभ्यां जग्मे) ॥ ४३ ॥

तौ सरसीषु तरङ्गविक्षोभशीतलं निजनिःश्वासपवनानुरूपं मनोरममुत्पलगंधं सेवमानौ सुखेनैव प्रजतः इति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-सरोवरमें लहरके झकोरसे उठीहुई ठंढी कमलोंकी सुगन्धिको जो अपने स्वांसकी बराबरी करती थी सूंघते हुए ॥ ४३ ॥

सरसीषु=सृ+असिः+ङीप् । निश्वासः=निर्+श्वस्+घञ् । अनुकारिणम्=अनु+कृ+णिनि । अरविन्दानाम्=अर+विन्द+श ६ । आमोदम्=आमुद+घञ् । उपजिघ्रन्तौ=उप+घ्रा+शतृ । घ्रा गन्धोपादाने जिघ्रति। जघ्रौ । अजिघ्रत् । अघ्रात् । अघ्रासीत् । कर्मणि घ्रायते । अघ्रायि । णिचि घ्रापयति-ते । सनि जिघ्रासति । यङि जेघ्रीयते । घ्राणीयम् । घ्राणम् । जिघ्रः । व्याघ्रः । घ्रातिः । घ्रातुम् । घ्रातव्यम् । घ्रात्वा । संघ्राय । जिघ्रन् ।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम् ॥
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः ॥ ४४ ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतौ तौ) आत्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु ग्रामेषु यज्वनाम् अमोघाः आशिषः अर्घ्यानुपदं प्रतिगृह्णन्तौ (जग्मतुः) ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । आत्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु ग्रामेषु अर्घ्यानुपदं यज्वनाम् अमोघाः आशिषः प्रतिगृह्णद्भ्याम् (ताभ्यां जग्मे) ॥ ४४ ॥

तौ पूर्वं यान् ग्रामान् याज्ञिकेभ्यो दत्तवन्तौ यूपचिह्नैः प्रकाशितेषु ग्रामेषु प्रयाणकाले याज्ञिकाः तत्रागत्य अर्घ्यादिदानेन तयोरर्चां चक्रुः सुदक्षिणादिलीपौ प्रथमं तेषां यज्वनामर्घ्यान् पश्चादमोघानाशीर्वादान् प्रतिगृह्णन्ताविति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-यज्ञखंभके चिह्नवाले अपने दान किये ग्रामोंमें ब्राह्मणोंके पूण होनेवाले आशीर्वाद अर्घके उपरान्त लेत हुए ॥ ४४ ॥

विसृष्टः=वि+सृज्+क्त । यज्वन्=यज् ङ्वनिप् । अर्घ्य=अर्घ+ण्यत् । सृज् विसर्गे । सृजति । ससर्ज । असृजत् । असाक्षीत् । कर्मणि सृज्यते । असर्जि । णिचि सर्जयति । सनि सिसृक्षति । सर्जनीयम् । सर्जनम् । सर्गः । घिनुण् संसर्गी । स्रष्टा । स्रष्टव्यम् । स्रष्टुम् । सृष्ट्वा । विसृज्य । सृजन् । सृज्यमानः ।

हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ॥
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः । पुनः किंभूतौ (दंपती) हैयंगवीनम् आदाय उपस्थितान् घोषवृद्धान् वन्यानां मार्गशाखिनां नामधेयानि पृच्छन्तौ (जग्मतुः) ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । हैयंगवीनम् आदाय उपस्थितान् घोषवृद्धान् वन्यानां मार्गशाखिनां नामधेयानि पृच्छद्भ्याम् (दंपतिभ्यां जग्मे) ॥ ४५ ॥

वृद्धाः घोषाः नवनीतं नीत्वा मार्गे ताभ्यां दत्तवन्तः तौ घोषानां सकाशात् मार्गपार्श्ववर्त्तिनां विविधवन्यवृक्षाणां नामानि पृच्छन्तौ इति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–गायका तुरतका निकाला मक्खन लेकर सन्मुख आये हुए बूढे घोंसोंसे मार्गके वनवृक्षोंके नाम पूछते हुए ॥ ४५ ॥

हैयंगवीनम् ह्यः+गो+खञ् । वन्यः वन+ यत् । पृच्छन् प्रच्छ+शतृ । प्रच्छ—ज्ञीप्सायाम् । पृच्छति पप्रच्छ । अपृच्छत् । अप्राक्षीत् । कर्मणि पृच्छयते अप्रच्छि । णिचि प्रच्छयति-ते । सनि पिपृच्छिषति । प्रच्छनीयम् । प्रच्छनम् । प्रश्नः । प्रच्छकः । प्रच्छी । पृष्टम् । क्विप् प्राट् । प्रष्टव्यम् । प्रष्टा । पृष्ट्वा। आपृच्छय । पृच्छन् । पृच्छयमानः ।

काप्यभिख्या तयोरसीद्व्रजतोः शुद्धवेषयोः ॥
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ ४६ ॥

अन्वयः । व्रजतोः शुद्धवेषयोः तयोः (सुदक्षिणादिलीपयोः) योगे हिमनिर्मुक्तयोः चित्राचन्द्रमसोः इव का अपि (अकथनीया) अभिख्या आसीत् ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । व्रजतोः शुद्धवेषयोः तयोः योगे हिमनिर्मुक्तयोः चित्राचंद्रमसोः इव कया अपि अभिख्यया अभूयत ॥ ४६ ॥

चैत्रे पौर्णमास्यां निर्मलकान्तया चित्रया सह युक्तस्य हिमनिर्गमात् उज्ज्वलस्य चंद्रस्य यादृशी अकथनीया शोभा जायते सुदक्षिणया सह युक्तस्य उज्ज्वलवेषस्य दिलीपस्यापि प्रयाणसमये तादृशी अनिर्वचनीया शोभा अभवदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–उन शुद्ध वेष किये जाते हुओंकी कोई अपूर्व शोभा थी जैसे योग पाकर शीतसे छुटेहुए चित्रा और चंद्रमा की (शोभा होती है) ॥ ४६ ॥

व्रजतोः=व्रज्+शतृ । अभिख्या=अभि+ख्या+अङ् । व्रज गतौ । व्रजति । वव्राज । अव्रजत् । अव्राजीत् कर्मणि व्रज्यते । अव्राजि । व्रजनीयम् । व्रजनम् । व्रजः–व्राजः । परिव्राजकः । क्यप् व्रज्या । व्राजितव्यम् । व्रजितुम् । व्रजित्वा । प्रव्रज्य । व्रजन् । व्रज्यमानः ।

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः ॥
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । प्रियदर्शनः बुधोपमः भूमिपतिः तत् तत् पत्न्यै दर्शयन् लंघितम् अपि अध्वानं न बुबुधे ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । प्रियदर्शनेन बुधोपमेन भूमिपतिना तत् तत् पत्न्यै दर्शयता लंघितः अपि अध्वा न बुबुधे ॥ ४७ ॥

मनोहरमूर्त्तिः कुशलः स दिलीपः मार्गे तानि तानि विचित्राणि वस्तूनि सलीलं पत्न्यै दर्शयन् तद्गतचित्ततया विलंघितमपि अध्वानं न ज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०—पंडितोंकी उपमावाले मनोहर दर्शनवाले राजाने, रानीको मार्गकी वह २ (वस्तु) दिखाते हुए बीते हुए मार्गको भी न जाना ॥ ४७ ॥

दर्शयन् दृश्+णिच्+शतृ । बुध ज्ञाने । बुध्यते । बुबुधे ।

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः ॥
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः ॥ ४८ ॥

अन्वयः । दुष्प्रापयशाः श्रान्तवाहनः महिषीसखः सः (दिलीपः) सायं संयमिनः तस्य महर्षेः (स्वगुरुवशिष्ठस्य) आश्रमं प्रापत् ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । दुष्प्रापयशसा श्रान्तवाहनेन महिषीसखेन तेन (दिलीपेन) सायं संयमिनः तस्य महर्षेः (वसिष्ठस्य) आश्रमः प्रापि ॥ ४८ ॥

दुर्लभयशःसम्पन्नः सस्त्रीकः स दिलीपः सायंकाले तपोधनस्य वशिष्ठस्याश्रमं आससाद तदा च सुदूरगमनेन तदीयाः रथाश्वाः परिक्लान्ता अभवन् इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—वह अपनी रानीका साथी दुर्लभयशवाला जिसके वाहन थकगयेहैं संध्यासमय नियमवाले महर्षिके आश्रममें पहुंचा ॥ ४८ ॥

दुष्प्रापम्=दुस्+प्र+आप्+खल् । संयमिनः=संयम्+इनि ६ । आप् प्राप्तौ । आप्नोति । आप । आप्नोत् आपत् । कर्मणि आप्यते । आपि । आपनीयम् । आपकः।आप्तम् । आप्तिः । आप्तव्यः । आप्त्वा । आप्य । आप्यम् । आप्नुवन् । आप्यमानः । णिचि आपयति–ते । सनि ईप्सति । ऐप्सीत् । कर्मणि ईप्सि ।

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः ॥
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ॥ ४९ ॥

अन्वयः । (कथंभूतम् आश्रमम् ?) वनान्तरात् उपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः तपस्विभिः पूर्यमाणम् (प्रापत्) ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । वनान्तरात् उपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः तपस्विभिः पूर्यमाणः (आश्रमः प्रापि) ॥ ४९ ॥

सायंकाले सर्वे वनवासिनः अन्यस्मात् वनात् समिधः कुशान् फलानि च गृहीत्वा तस्मिन्नाश्रमे प्रविशन्ति यथा बालाः प्रवासात् समागतान् पितॄन् मिष्टान्नादिलोभात् प्रत्युद्गच्छन्ति तथा तेषां तपस्विनां पुत्रभूताः यज्ञवह्नयोपि अन्यैः अलक्ष्याः सन्तः यज्ञकाष्ठादिभोज्यपदार्थलोभात् तान् वनवासिनः प्रत्युद्गच्छन्ति इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-(उस आश्रम की शोभा वर्णन करते हैं कि) समिधा कुश और फल लिये हुए अदृश्य अग्निका आदर कियेहुए वनोंसे लौटते हुए तपस्वियोंसे परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ (अग्निहोत्रकी अग्नि गुप्त रखते हैं इससे अदृश्य कहलाती है)

उपावृत्तैः=उप+आ+वृत्+क्त ३। पूर्य्यमाणम्=पूर्+कर्म्मणि शानच्। वृत् वर्तने। वर्त्तते। ववृते। अवर्तत। अवृतत्-अवर्तिष्ट। भावे वृत्यते। अवर्ति। णिचि वर्तयति-ते। सनि विवृत्सति विवर्तिषते। वर्तनीयम्। वर्तनम्। वर्ती। वृत्तः। वर्तितव्यम्। वर्तितुम्। वृत्वा। प्रवृत्य। वृत्यम्। वर्तमानः।

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ॥
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः ॥ ५० ॥

अन्वयः। (पुनः किंभूतम् आश्रमम्) उटजद्वाररोधिभिः नीवारभागधेयोचितैः (अत एव) ऋषिपत्नीनाम् अपत्यैः इव मृगैः आकीर्णम् (प्रापत्) ॥ ५० ॥

वाच्यप० । उटजद्वाररोधिभिः नीवारभागधेयोचितैः ऋषिपत्नीनाम् अपत्यैः इव मृगैः आकीर्णः (आश्रमः, प्रापि) ॥ ५० ॥

तदा च ऋषिपत्नीनां परमस्नेहास्पदसुतसदृशाः तपोवनमृगाः ऋषिपत्नीभ्यः सकाशात् निजान् चिरपरिचितान् नीवारधान्यभागान् ग्रहीतुं लोलुपाः सन्तः शतशः पर्णशालाद्वाराणि परिवारयन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०-पत्तोंकी कुटीका द्वार रोकनेवाले ऋषिपत्नियोंकी सन्तानकी भांति धान्यके भाग पानेवाले मृगोंसे भराहुआ ॥ ५० ॥

नीवारः=नि+वृ+घञ्। उटजः=उट+जन+ड। द्वाररोधिभिः=द्वार+रुध्+णिनि ३। अपत्यैः=अ+पत्+यत् ३। आकीर्णम्=आकॄ+क्त। रुध-आवरणे रुणद्धि-रुन्धे। रुरोध-रुरुधे। अरुणत्-अरुन्ध। अरुधत्-अरौत्सीत्। अरुद्ध। कर्मणि रुध्यते। अरोधि। णिचि रोधयति-ते। रोधनीयम्। रोधनम्। रोधः। रुद्धः। रोद्धव्यम्। रोद्धुम्। रुद्ध्वा। संरुध्य। रुन्धन्। रुन्धानः।

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ॥
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः। (पुनः किंभूतम् आश्रम) आलवालाम्बुपायिनाम् विहंगानां विश्वासाय मुनिकन्याभिः सेकान्ते तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् (प्रापत्) ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । आलवालाम्बुपायिनां विहंगानां विश्वासाय मुनिकन्याभिः सेकान्ते तत्क्षणोज्झितवृक्षकः (आश्रमः, प्रापि) ॥ ५१ ॥

पक्षिणो विश्वस्तचित्तेन आगत्य जलावापदेशस्थितं जलं पास्यन्ति इति हेतोः मुनिकन्यकाः जलसेकान्ते बालवृक्षेभ्यः अपसरन्ति स्म तेषां निर्भयजलपानायेति भावः ॥ ५१ ॥

भा०-थांवलोंका जलपान करनेवाले पक्षियोंके विश्वासके निमित्त मुनिकन्याओंके तत्कालके सींचकर छोडे हुए छोटे वृक्षोंवाला ॥ ५१ ॥

आलवालेषु=आ+लव+आ+ला+क ७ । विहंगानाम्=विह+विहायस्+गम्+खच् । विश्वासाय=विश्वस्+घञ् ४ । ला दानग्रहणयोः । श्वस् प्राणने । श्वसिति । शश्वास । अश्वसत् । अश्वसीत् । अश्वासीत् । भावे श्वस्यते । अश्वासि । णिचि श्वासयति-ते । श्वसनीयम् । श्वसनम् । श्वासः । श्वसितव्यम् । श्वसितुम् । श्वसित्वा । विश्वस्य । श्वसन् ।

आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः ॥
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु ॥ ५२ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम् आश्रमम्) आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु उटजांगणभूमिषु निषादिभिः मृगैः वर्तितरोमंथम् (प्रापत्) ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु उटजांगनभूमिषु निषादिभिः मृगैः वर्त्तितरोमंथः (आश्रमः प्रापि) ॥ ५२ ॥

रवेरातपे शोषणाय यानि धान्यानि प्रसारितानि आसन् अधुना संध्याकाले घर्माभावात् मुनिसुताभिः तानि पर्णशालाङ्गणभूमिषु राशीकृत्य स्थापितानि हरिणाः तन्निकटेषु निषण्णाः सुखेन चर्वित चर्वणं कुर्वन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—पर्णशालाओंके आंगनकी भूमिमें जहां कि गरमीके बीतनेसे मुनिअन्न इकट्ठा कर धरा है बैठे हुए हरिणोंके त्यागेहुए जुगालोंवाला ॥ ५२ ॥

निषादिभिः=नि+सद्+णिनि ३ । वर्तित=वृत्+णिच्+क्त । रोमन्थः=रोम्+मन्थ+अच् ।

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ॥
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ॥ ५३ ॥

अन्वयः ।(पुनः कथंभूतम् आश्रमम्) अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः आहुतिगंधिभिः पवनोद्धूतैः धूमैः आश्रमोन्मुखान् अतिथीन् पुनानं (प्रापत्) ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः आहुतिगंधिभिः पवनोद्धूतैः धूमैः आश्रमोन्मुखान् अतिथीन् पुनानः (आश्रमः प्रापि) ॥ ५३ ॥

स आश्रमः सर्पिर्गन्धपूर्णैः निर्मलैः प्रज्वलितहोमाग्निधूमैः तत्र समागच्छतः अतिथीन् दूरादेव निर्मलीकुरुते स्म इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—जलती हुई आगके बतानेवाले वायु के उठाये हुए आहुतिकी गन्धसे मिले हुए धुओंसे आश्रम की ओर आते हुए अतिथियोंके पवित्र करनेवाला ॥ ५३ ॥

आहुति=आ+हु+क्ति । गन्धिः=गन्ध+इनि । अतिथि=अत्+इथिन् । पुनानम् पू+शानच् । पू पवने पुनाति-पुनीते।पुपाव-पुपुवे । अपुनात्-अपुनीत । अपावीत्-अपाविष्ट । कर्मणि पूयते अपावि । णिचि पावयति। सनि पुपूषति । पुपूषते । पवनीयम् । पुनन् । पुनानः ।

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः ॥
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च ॥ ५४ ॥

अन्वयः। अथ सः (दिलीपः) धुर्यान् विश्रामय इति यन्तारम् आदिश्य तां पत्नीं रथात् अवारोहयत् (स्वयमेव) अवततार च ॥ ५४ ॥

वाच्यप०। (त्वया) धुर्याः विश्राम्यन्ताम्। तेन सा पत्नी अवारोह्यत (स्वयम्) अवतेरे च ॥ ५४ ॥

श्रमयुक्तान् रथहयान् विश्रामय इति स दिलीपः सारथिम् आदिश्य प्रथमं स यत्नेन देवीं स्यन्दनात् अवतारितवान् स्वयमपि रथादवततार इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०–तब उसने सारथीको आज्ञा दी कि घोडोंको रोको और उसने रथ से उस रानीको उतारा और आप उतरा ॥ ५४ ॥

यन्तारं=यम्+तृच्। विश्रामय=वि+श्रम्+णिच्। आदिश्य=आ+दिश्+ल्यप्। अवारोहयत्=अव+आ+रुह्+णिच्। दिश अतिसर्जने। दिशति+दिशते। दिदेश–दिदिशे। अदिशत्–अदिशत। अदिक्षत्–अदिक्षत। कर्मणि दिश्यते। अदेशि। णिचि देशयति–ते। सनि दिदिक्षति। यङि=देदिश्यते। देशनीयम्। देशनम्। दिष्टः। ण्यन्तस्य देशना। देष्टुम्। देष्टव्यम्। दिष्ट्वा। उपदिश्य। देश्यन्। दिशन्। दिशमानः।

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ॥
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे ॥ ५५ ॥

अन्वयः। सभ्याः गुप्ततमेन्द्रियाः मुनयः सभार्याय गोप्त्रे अर्हते नयचक्षुषे तस्मै (दिलीपाय) अर्हणां चक्रुः ॥ ५५ ॥

वाच्यप०। सभ्यैः गुप्ततमेन्द्रियैः मुनिभिः सभार्याय गोप्त्रे अर्हते नयचक्षुषे तस्मै (दिलीपाय) अर्हणां चक्रे ॥ ५५ ॥

सदाचारसम्पन्नाः जितेन्द्रियाः वशिष्ठाश्रमतपस्विनः सर्वगुणसम्पन्नं दिलीपं यथाविधि अर्घ्यादिप्रदानेन अर्चयामासुः इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०–उस नीतिके नेत्रवाले स्त्रीसहित पूज्य और मानरक्षकको सभामें बैठनेवाले इन्द्रियजित मुनियोंने सत्कार किया ॥ ५५ ॥

गोप्त्रे=गुप्+तृच्। अर्हते=अर्ह+शतृ ४। अर्ह पूजायाम् अर्हति। आनर्ह। आर्हत्। आर्हीत्। कर्मणि अर्ह्यते। आर्हत। अर्हणीयम्। अर्हणम्। अर्हकः। अर्हितः। आर्हित्वा। आर्हितव्यम्। अर्हः। अर्हन्।

विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ॥
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः। सः (राजा) सायन्तनस्य विधेः अन्ते स्वाहया (अन्वासितम्) हविर्भुजम् इव अरुन्धत्या अन्वासितं तपोनिधिम् (वशिष्ठम्) ददर्श ॥ ५६ ॥

वाच्यप०। सायंतनस्य विधेः अन्ते स्वाहया (अन्वासितः) हविर्भुक् इव अरुंधत्या अन्वासितः तपोनिधिः (वशिष्ठः) ददृशे ॥ ५६ ॥

महामुनेः वशिष्ठस्य संध्याकाले कर्तव्ये जपहोमादौ अवसाने सति दिलीपः तेजसा ज्वलन्तम् इव स्वभार्यया अरुन्धत्या सह स्थितम् अत एव स्वपत्न्या स्वाहया सह आसीनं साक्षादग्निमिव तम् ऋषिं वीक्षांचक्रे इति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०–उसने संध्याविधिके अन्तमें पीछे वैठी हुई अरुन्धतीसमेत स्वाहासहित अग्नि की समान तपके धनी (वशिष्ठ) को देखा ॥ ५६ ॥

अन्वासितम्=अनु+आस्+कर्मणि क्तः । हविर्भुजम्=हविः+भुज् क्विप् । आस=उपवेशने आस्ते । आसाम्बभूव । आस्त । आसिष्ट । भावे आस्यते । आसि । णिचि आसयति–ते । सनि आसिसिषति । आसनीयम् । अधिकरणे आसनम् । आसितव्यम् । आसित्वा । उपास्य । शानचि आसीनः ।

तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी ॥
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ॥ ५७ ॥

अन्वयः । राजा मागधी राज्ञी च (द्वौ) तयोः (अरुंधतीवशिष्ठयोः) पादान् जगृहतुः । गुरुः गुरुपत्नी च (द्वौ) प्रीत्या तौ (सुदक्षिणादिलीपौ) प्रतिननन्दतुः ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । राज्ञा मागध्या राज्ञ्या च (द्वाभ्याम्) तयोः पादाः जगृहिरे । गुरुणा गुरुपत्न्या च (द्वाभ्याम्) प्रीत्या तौ प्रतिननंदाते ॥ ५७ ॥

सुदक्षिणादिलीपौ अरुन्धतीवशिष्ठयोः चरणान् जगृहतुः तौ वशिष्ठः वशिष्ठस्त्री च प्रसन्नतया यथाक्रमम् आशीर्वादादिना नम्रयोः सुदक्षिणादिलीपयोः सम्मानं चक्रतुः इति सरलार्थः । शोभने वीरसूर्भवेति आशीर्वादेन तयोः आनन्दं विदधाते स्मेति भावः ॥ ५७ ॥

भा०–राजा और मगधदेशवाली रानीने उन दोनोंके चरण छुए गुरु और गुरुपत्नी ने उनको प्रसन्नतासे आशीर्वाद देकर सत्कार किया ॥ ५७ ॥

मागधी=मगध+अण्+ङीप् । नन्द–समृद्धौ । नन्दति । ननन्द । अनन्दत् । अनन्दीत् । भावे नन्द्यते । णिचि नन्दयति–ते । नन्दनीयम् । नन्दनम् । नन्दः। नन्दितुम । नन्दितव्यम् । नन्दित्वा । संनन्द्य । नन्दन् ।

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ॥
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥ ५८ ॥

अन्वयः । मुनिः आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् राज्याश्रममुनिं तम् (दिलीपम्) राज्ये कुशलं पप्रच्छ ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । मुनिना आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमः राज्याश्रममुनिः सः राज्ये कुशलं पप्रच्छे ॥ ५८ ॥

वशिष्ठऋषिः प्रथमं फलादिप्रदानेन अध्वखेदखिन्नस्य दिलीपस्य श्रमं विनीय पश्चात् प्रजात्रशालिनं तं राजर्षिं सप्ताङ्गराजसम्बन्धिनीं कुशलवार्ताम् अपृच्छत् इति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–जब अतिथिसत्कारसे रथके हिलनेकी थकावट जाती रही तब राज्य आश्रम के मुनिसे ऋषि वशिष्ठने राज्यमें की कुशल पूंछी ॥ ५८ ॥

राज्यम्=राजन्+यत् । कुशलम्=कु+शल्+अच् । क्षुभ् संचलने क्षोभते । चुक्षुभे । अक्षोभत।अक्षुभत् । अक्षोभिष्ट । भावे क्षुभ्यते । अक्षोभि णिचि क्षोभयति-ते । क्षोभणीयम् । क्षोभणम् । क्षोभी । क्षोभः । क्षोभितुम् । क्षोभितव्यम् । क्षुभित्वा । संक्षुभ्य । क्षोभ्यम् । क्षोभमाणः ।

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः ॥
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः ॥ ५९ ॥

अन्वयः । अथ विजितारिपुरः वदतां वरः अर्थपतिः अथर्वनिधेः तस्य (कुलगुरुवशिष्टस्य) पुरः अर्थ्याम् वाचम् आददे ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । अथ विजितारिपुरेण वदतां वरेण अर्थपतिना अथर्वनिधेः तस्य पुरः अर्थ्या वाक् आददे ॥ ५९ ॥

ततः शत्रुकुलहन्ता वाग्मिवरः श्रीपतिः स दिलीपः अथर्वमंत्रप्रभावस्य गुरोर्वशिष्टस्याग्रे सदर्थयुक्तं वक्ष्यमाणं वचनं वक्तुमारेभे इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०–तब वह बोलनेवालों में श्रेष्ठ वैरियोंके देशोंका जीतनेवाला राजा उस अथर्ववेदके समुद्रके सामने प्रयोजनकी बात कहने लगा ॥ ५९ ॥

अथर्व्वन्=अथ+ऋ+वनिप् । ऋ गतौ अर्च्छति । आर । आर्च्छत् । आरत्-आर्षीत् । कर्मणि अर्य्यते । आरि। णिचि अर्पयति-ते । सनि अरिरिषति । यङि अरार्य्यते । अरणीयम् । अरणम् । आरः । ऋतः । अर्तुम् । ऋत्वा । समृत्य । आर्य्यः । ऋच्छन् । अर्य्यमाणः ।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे ॥
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम् ॥ ६० ॥

अन्वयः । मे (मम) सप्तसु अंगेषु ननु शिवम् उपपन्नम्, यस्य (मम) दैवीनां मानुषीणां च आपदां त्वम् प्रतिहर्ता (असि) ॥ ६० ॥

वाच्यप० । मे सप्तसु अंगेषु ननु शिवमुपपन्नम् यस्य दैवीनां मानुषीणां च आपदां प्रतिहर्त्रा त्वया (भूयते) ॥ ६० ॥

हे ब्रह्मन् यदा मे त्वं देवमनुजघटितानां सर्वासामेव आपदां दूरीकरणे निरन्तरम् उद्युक्तोसि तदा मे राज्ये सर्वथा सिद्धमेव मंगलमिति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–मेरे राज्यके सातो अंगों में कुशल क्यों न हो जिसकी दैवी और मानुषी आपदाओंके हरनेवाले तुम हो ॥ ६० ॥

उपपन्नम्=उप+पद+क्त । पद् गतौ । पद्यते । पेदे । अपाद । कर्मणि पद्यते । अपादि । णिचि पादयति–ते । सनि पित्सते । यङि पनीपद्यते । पदनीयम् । पदनम् । पादी । पन्नः । पत्तिः । पत्त्वा।प्रपद्य पत्तव्यम् । पाद्यम् । पद्यमानः ।

तव मंत्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः ॥
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ॥ ६१ ॥

अन्वयः। मंत्रकृतः तव दूरात् प्रशमितारिभिः मंत्रैः दृष्टलक्ष्यभिदः मे शराः प्रत्यादिश्यन्ते इव॥६१॥

वाच्यप०—मंत्रकृतः तव दूरात् प्रशमितारयः मंत्राः दृष्टलक्ष्यभिदः मे शरान् प्रत्यादिशन्ति इव ॥ ६१ ॥

अहो ते मन्त्राणां प्रतापः यैः मंत्रैस्त्वं मदीयानरीन् परोक्ष एव नाशयसि अतः अरीणाम् अभावात् मे वाणाः निष्प्रयोजना आसन् त्वन्मंत्रसामर्थ्येनैव मे सर्वारिशान्तिरिति सरलार्थः ॥६१॥

भा०—मंत्र वनानेवाले तुम्हारे मंत्रोंके वलसे शत्रु तो दूरसेही शान्त हैं और लक्ष्यवेधी (निशानेको वेधनेवाले) मेरे वाण तौ व्यथस हैं ॥ ६१ ॥

लक्ष्य=लक्ष्+ण्यत् । प्रत्यादिश्यन्त=प्रति+आ+दिश् । दृष्टः=दृश्+क्त । लक्ष=दर्शने । लक्षयते । लक्षयांचक्रे । अललक्षत । हेतुमण्णिचि । लक्षयति—ते । कर्मणि लक्ष्यते । अलक्षि । लक्षणीयम् । लक्षणम् । लक्षः । लक्षी । लक्षणा । लक्षयितव्यम्।लक्षयितुम् । लक्षयित्वा । संलक्ष्य । लक्ष्यम्।लक्षयन् । लक्ष्यमाणः।

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु ॥
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः । हे होतः त्वया विधिवत् अग्निषु आवर्जितम् हविः अवग्रहविशोषिणाम् सस्यानाम् वृष्टिः भवति ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । हे होतः त्वया विधिवत् अग्निषु आवर्तितेन हविषा अवग्रहविशोषिणाम् सस्यानाम् वृष्ट्या भूयते ॥ ६२ ॥

भो हवनशील होमवह्नौ विधिपूर्वकं भवता या आहुतिः प्रदीयते सैव वर्षणरूपेण परिणता सती अवग्रहविशुष्कं मत्प्रजाजीवनसाधनं सस्यम् उज्जीवयति इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०—हे हवनकरनेवाले ! अग्निमें विधिपूर्वक दीहुई तुह्मारी आहुति अवर्षणसे सूखते हुए धानोको वर्षा होती है ॥ ६२ ॥

होतः हु+तृच् । आवर्जितम्=आ+वृज्+(णिच्) क्त । विशोषिणाम्=वि+शुष्+णिनि ६ । शुष्यति। शुशोष । अशुष्यत् । अशुषत् । भावे शुष्यते । अशोषि । शोषणीयम् । शोषणम् । शुष्यन् ।

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः ॥
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः । यत् पुरुषायुषजीविन्यः निरातंकाः निरीतयः मदीयाः प्रजाः (सन्ति) तस्य हेतुः त्वद्ब्रह्मवर्चसम् (अस्ति) ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । यत् पुरुषायुषजीविनीभिः निरातंकाभिः निरीतिभिः मदीयाभिः प्रजाभिः (भूयते) तस्य हेतुना त्वद्ब्रह्मवर्चसेन (भूयते) ६३ ॥

तवैव तपोनुष्ठानेन मे सर्वाः प्रजाः अकालमृत्युरहिताः निर्विघ्नाः भयरहिताश्च सुखेन तिष्ठन्ति इति सरलार्थः । तव प्रसादात् दैवो मानुषकृतो वा उपद्रवो न किमपि मां बाधते इति भावः ॥ ६३ ॥

भा०-पुरुष की उमरतक जीनेवाली भयरहित ईतियोंसे बचीहुई जो मेरी प्रजा हैं सो इसका कारण तुम्हारा ब्रह्मतेज है ॥ ६३ ॥ (अतिवर्षा, सूखापडजाना, चूहा, टीडी, तोता सेनाका बिगाड, वैरी की चढाई, सात प्रकार की आपदा ईति कहलाती है.)

पुरुषायुष=पुरुष+आयुः+अच् । जीविन्यः=जीव+णिनि । निरीतयः=निर्+ई+क्तिन् । ब्रह्मवर्चस=ब्रह्मन्+वर्चस्+अच् । जीव प्राणने । जीवति । जिजीव । अजीवत् । अजीवीत् । भावे जीव्यते । अजीवि । णिचि जीवयति-ते । जीवनीयम् । जीवनम् । जीवः । जीवी । जीवितुम् । जीवितव्यम् । जीवित्वा । संजीव्य । जीव्यः । जीवन् ।

त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना ॥
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः ॥ ६४ ॥

अन्वयः । ब्रह्मयोनिना त्वया गुरुणा एवं चिन्त्यमानस्य मे (मम) सानुबंधाः संपदः निरापदः कथं न स्युः ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । ब्रह्मयोनिना त्वया गुरुणा एवं चिन्त्यमानस्य मे निरापद्भिः संपद्भिः सानुबंधाभिः कथं न भूयेत ॥ ६४ ॥

यतः चतुर्मुखसुतः कुलपूज्यः त्वं मे कल्याणचिन्तने नियुक्तोसि तर्हि मे सम्पदः निरन्तरं निर्विघ्नाः कथं न स्युः इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-तुम्हारे ब्रह्मपुत्र गुरुके मेरी सुध लेनेवाले होने परभी मेरी दुःखरहित सम्पदा एकसी अर्थात् विच्छेदरहित क्यों न होगी ॥ ६४ ॥

चिन्त्यमानस्य=चिन्त्+कर्मणि शानच् । ६। सानुबन्धाः=स+अनु+बन्ध+घञ् । चिति स्मृत्याम् चिन्तयति चिन्तयते । चिचिन्त-अचिन्तत्-अचिन्तीत्-कर्मणि चिन्त्यते । आचिन्ति । चिन्तनीयम् । चिन्तनम् । चिन्तकः । चिन्ती । चिन्तयिता । चिन्तना । चिन्ता । चिन्तयितुम् । चिन्तयितव्यम् । चिन्तयित्वा । संचिन्त्य । चिन्त्यम् । चिन्तयन् । चिन्त्यमानः ।

किं तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ॥
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी ॥ ६५ ॥

अन्वयः । किन्तु तव एतस्यां वध्वाम् अदृष्टसदृशप्रजम् माम् सद्वीपा रत्नसूः अपि मेदिनी न अवति ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । किन्तु सद्वीपया रत्नस्वा मेदिन्या तव एतस्यां वध्वाम् अदृष्टसदृशप्रजः अहं न अव्ये ॥ ६५ ॥

हे गुरो इत्थं सत्यपि मे सर्वैश्वर्ये यदाहम् अस्याः देव्याः सुदक्षिणायाः गर्भजातं स्वानुरूपं सुतं नाद्यापि दृष्टवानस्मि तदा अनन्तरत्नसूरपि पृथ्वी मे सुखाय न भवतीति सरलार्थः। इदं वसुधाधिपत्यं न मह्यं रोचते इति भावः ॥ ६५ ॥

भा०-तौभी इस तुम्हारी वधू में अपनी समान सन्तान होती न देखकर मुझको रत्नोंकी उपजानेवाली द्वीपोंसहित पृथ्वी नहीं भाती है ॥ ६५ ॥

सद्वीपा+द्विर्गता आपोऽत्र अप् । अव रक्षणे । अवति । आव । आवत् । आवीत् । कर्मणि अव्यते।आवि । णिचि आवयति-ते । अवनीयम् । अवनम् । आवकः । अवितुम् । क्विप् ऊः । क्तिन् ऊतिः । आवित्वा । अवन् । अव्यमानः ।

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः ॥
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः ॥ ६६ ॥

अन्वयः । नूनं मत्तः परं पिंडविच्छेददर्शिनः स्वधासंग्रहतत्पराः (संतः) वंश्याः श्राद्धे प्रकामभुजः न (संति) ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । नूनं मत्तः परं पिंडविच्छेददर्शिभिः स्वधासंग्रहतत्परैः (सद्भिः) वंश्यैः श्राद्धे प्रकामभुग्भिः न (भूयते) ॥ ६६ ॥

मयि परलोकगते सति सुताभावात् पिण्डलोपमवलोक्य मे पितरः मद्दत्तं श्राद्धान्नं नैव उदरपूर्णं भुञ्जते, यस्मात्ते तद्भविष्यदर्थं अर्जितुं व्यग्राः भवन्ति, अहो शोचनीयम् इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०-निश्चयही मेरे पीछे सन्तान का लोप देखकर स्वधा इकट्ठी करनेमें लगे हुए मेरे पितर श्राद्धमें इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते हैं ॥ ६६ ॥

विच्छेद्=वि+छिद्+घञ् ।वंश्यः=वंश+यत् । श्राद्धे=श्रद्धा+अण् ७ । प्रकामभुजः=प्रकाम+भुज्+क्विप्। भुज पालनाभ्यवहारयोः । भुनक्ति-भुंक्ते । बुभोज=बुभुजे । अभुनक्-ग्-अभुंक्त । अभौक्षीत्=अभुक्त । कर्मणि भुज्यते । अभोजि । णिचि । भोजयति-ते । सनि बुभुक्षति बुभुक्षते । भोजनीयम् । भोजनम् । भोक्ता । भोक्तुम् । भोक्तव्यम् । भुक्त्वा । सम्भुज्य । भोज्यम् । भुञ्जन् । भुञ्जानः ।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया ॥
पयः पूर्वैः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते ॥ ६७ ॥

अन्वयः । नूनं मत्परं दुर्लभं मत्वा पूर्वैः मया आवर्जितं पयः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । नूनं मत्परं दुर्लभं मत्वा मया आवर्जितं पयः पूर्वे स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ ६७ ॥

यदा अपुत्रः दिलीपः मरिष्यति तदा कः पुनः अस्मभ्यं जलं प्रदास्यतीति ज्ञात्वा पितरः मद्दत्तं शीतलमपि तर्पणजलं दुःखनिःश्वासैः कवोष्णमेव पिबन्ति । अहो मे हतभाग्यस्य किमतः परं शोचनीयमस्ति इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०-मेरे पीछे जल मिलना दुर्लभ मान कर निश्चयही मेरे पितर मेरे दियेहुए जलको अपने श्वासोंसे कुछ गरम कर पीते हैं ॥ ६७ ॥

दुर्लभम्=दुर्+लभ्+खल् । लभ् प्राप्तौ लभते । लेभे । अलभत । अलब्ध । कर्मणि लभ्यते । अलाभि । णिचि लम्भयति-ते । सनि लिप्सते । लभनीयम् । लंभनम् । लाभः । लब्ध्वा । लब्धव्यम् । आलभ्य । लभ्यम् । दुर्लभः । लभमानः । लभ्यमानः ।

सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥ ६८ ॥

अन्वयः । सः अहम् इज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः (सन्) अचलः लोकालोक इव प्रकाशः अप्रकाशः च (अस्मि) ॥ ६८ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । तेन मया इज्याविशुद्धात्मना प्रजालोपानिमीलितेन (सता) अचलेन लोकालोकेन इव प्रकाशेन अप्रकाशेन च (भूयते) ॥ ६८ ॥

यथाहि लोकालोकनामा अद्रिः एकतः रविसम्पर्कात् प्रकाशितः अपरतश्च रविसम्पर्करहितत्वात् अन्धकाराच्छन्नस्तिष्ठति तथाहमपि एकतः यज्ञोत्पन्नेन धर्मप्रकाशेन प्रकाशितः पक्षे अपुत्रत्वेन शोकान्धकारेण आच्छन्न इव तिष्ठामि इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-सो मैं यज्ञ करनेसे शुद्धान्तःकरणवाला सन्तानके न होनेसे आधा प्रकाशवान् और आधा अप्रकाशवान् लोकालोक पर्वतकी समान हूं ॥ ६८ ॥

निमीलितः=नि+मील्+क्त । प्रकाशः=प्र+काश+अच् । काश प्रकाशे काशते । चकाशे । अकाशत । अकाशिष्ट । काश्यते । अकाशि । णिचि काशयाति-ते । काशनीयम् । काशनम् । प्रकाशः । काशी । काशितुम् । काशितव्यम् । काशित्वा । प्रकाश्य । प्रकाशमानः ।

लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ॥
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ ६९ ॥

अन्वयः । तपोदानसमुद्भवं पुण्यं लोकान्तरसुखं (भवति) हि शुद्धवंश्या संततिः परत्र इह च शर्मणे (भवति) ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । तपोदानसमुद्भवेन पुण्येन लोकान्तरसुखेन (भूयते) हि शुद्धवंश्यया संतत्या परत्र इह च शर्मणे (भूयते) ६९ ॥

अध्ययनतपोदानादिभिः यत्सुकृतं भवति तत्केवलं पारलौकिकसुखाय सुपुत्रस्तु इहलोके भक्तिशुश्रूषादिभिः परलोके नरकत्राणजलपिण्डदानादिभिः पितुः सुखं विदधातीति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-जो पुण्य तप दान से उत्पन्न होता है वह परलोकमें सुखकारी होता है और पवित्र वंशकी सन्तति इस लोक और परलोकमें कल्याणदायक होती है ॥६९॥

सुखम्=सुख+अच् । परत्र=पर+त्रल् । शर्मणे=शृ+मनिन् ४ । संततिः=सम्+तन्+क्ति । तनु विस्तारे-तनोति-तनुते । ततान-तेने । अतनोत्-अतनुत । अतानीत्-अतनीत्-अतनिष्ट । कर्मणि तायते-तन्यते । अतानि । णिचि तानयति । सनि तितनिषति-ते । तननीयम् । तननम् । तानी । ततिः । तनितुम् । तानितव्यम् । तनित्वा-तत्वा । तान्यम् । तन्वन् । तन्यमानः ।

तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे ॥
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम् ॥ ७० ॥

अन्वयः । विधातः स्नेहात् स्वयं सिक्तं वंध्यम् आश्रमवृक्षकम् इव तया (संतत्या) हीनं मां पश्यन् (सन्) कथं न दूयसे ॥ ७० ॥

वाच्यप० । हे विधातः स्नेहात् स्वयंसिक्तं वंध्यम् आश्रमवृक्षकम् इव तया (संतत्या) हीनं मां पश्यता (सता, त्वया) कथं न दूयते ॥ ७० ॥

स्वकरलालितं ते सुतप्रेमास्पदं तपोवनवृक्षं फलरहितं विलोक्य त्वं यथा व्यथसे तथैव सम्यक् पालितं सुतप्रेमास्पदं मामपि सुतहीनं दृष्ट्वा किं तथा न व्यथसे इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-इस कारण हे विधाता मुझे ऐसे सन्तानसे रहित प्रेमसे सींचेहुए आश्रमके निष्फल वृक्षकी समान देखकर तुम क्यों न दुःख मानोंगे ॥ ७० ॥

हीनम्=हा+क्त । वन्ध्यम्=वन्ध+यत् । दू खेदे । दूयते । दुदुवे । अदूयत । अदविष्ट । भावे दूयते । णिचि दावयति-ते । सनि दुदूषते । दवनीयम् । दवनम् । दावकः । दूतिः । दवितुम् । दवितव्यम् । दूत्वा । संदूय । दव्यम् । आवश्यके दाव्यम् । दूयमानः ।

असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे ॥
अरुंतुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः ॥ ७१ ॥

अन्वयः । भगवन् अनिर्वाणस्य दंतिनः अरुन्तुदम् आलानम् इव मे (मम) असह्यपीडम् अंत्यम् ऋणम् अवेहि ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । हे भगवन् अनिर्वाणस्य दन्तिनः अरुंतुदम् आलानम् इव मे असह्यपीडम् अन्त्यम् ऋणम् (त्वया) अवेयताम् ॥ ७१ ॥

यथा तोयस्नानाभावात् अत्यन्तदुखितः हस्ती निजालानं दुस्सहमर्मपीडाकरं जानाति तथा हे ब्रह्मन् अहमपि अपुत्रताकष्टं असह्यमर्मदुःखकरं मन्ये इति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-हे भगवन् मेरे ऊपर पितरोंका दुस्सह ऋण जानों जैसे बंधेहुए हाथीके मर्म छेदनेवाला खम्भ होता है ॥ ७१ ॥

अन्त्यतम्=अन्त+यत् । दन्तिनः=दन्त+इनि । अरुन्तुदम्=अरुष्+तुद+खश् । आलानम्=आ+ली+ ल्युट् । तुद व्यथने । तुदति-तुदते । तुतोद-तुतुदे । अतुदत् अतुदत । अतौत्सीत् अतुत्त । कर्मणि तुद्यते अतोदि । णिचि तोदयति-ते । सनि तुतुत्सति-ते । तोदनीयम् । तोदनम् । तोत्ता । तोत्तुम् । तोत्तव्यम् । तुत्त्वा । संतुद्य । तोद्यम् । तुदन् । तुदमानः । तुद्यमानः ।

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि ॥
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । हे तात यथा तस्मात् (ऋणात्) (अहं) मुच्ये तथा संविधातुं (त्वम्) अर्हसि हि इक्ष्वाकूणां दुरापे अर्थे सिद्धयः त्वदधीनाः (भवंति) ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । तात यथा तस्मात् (मया) मुच्यते तथा संविधातुं (त्वया) अर्ह्यते हि इक्ष्वाकूणां दुरापे अर्थे सिद्धिभिः त्वदधीनाभिः (भूयते) ॥ ७२ ॥

हे तात येन विधानेन अहं पितॄणाम् ऋणनिर्मोक्षसाधनं सुतं लभेय तादृशं विधानं कृपया विधेहि यस्मात् इक्ष्वाकुवंश्यानां दुर्लभेषु अपि अर्थेषु सिद्धयः त्वदायत्ताः सन्ति तवैव प्रतापात् ते सिद्धिं लभन्ते इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०–हे तात जिस प्रकार मैं इस (दुःख) से छूटूं सो तुम करनेके योग्य हो इक्ष्वाकुवंशियोंके कठिनकार्योंमें सिद्धि तुम्हारे ही अधीन है ॥ ७२ ॥

दुरापः=दुर्+आप+खल् । मुच मोचने । मुञ्चति–मुञ्चते । मुमोच-मुमुचे । अमुञ्चत्-अमुञ्चत । अमुचत्-अमुक्त । कर्मणि मुच्यते । अमोचि । णिचि मोचयति-ते । सनि मोक्षति-ते । यङि मोमुच्यते । मोचनीयम् । मोचनम् । मोचकः । मोक्ता । मुक्तः । मुक्तिः । मोक्तुम् । मोक्तव्यः । मुक्त्वा । विमुच्य । मोच्यः । मुञ्चन्-मुञ्चमानः । मुच्यमानः ।

इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः ॥
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः ॥ ७३ ॥

अन्वयः । इति राज्ञा विज्ञापितः ऋषिः (वशिष्ठः) ध्यानस्तिमितलोचनः (सन्) सुप्तमीनः ह्रदः इव क्षणमात्रं तस्थौ ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । इति राज्ञा विज्ञापितेन ऋषिणा (वशिष्ठेन) ध्यानास्तिमितलोचनेन (सता) सुप्तमीनेन ह्रदेन इव क्षणमात्रं तस्थे ॥ ७३ ॥

इत्थम् सन्तानाभावदुःखं कथितवति राजनि स महर्षिः वशिष्ठः समाधिना निमीलितनयनः सन् प्रशान्तमीनसञ्चारो महासरोवर इव अचलगम्भीरभावेन क्षणकालं तस्थौ इति सरलार्थः॥७३॥

भा०–जब राजाने इस भाँति निवेदन किया तब वशिष्ठ ऋषि ध्यानसे आँखमीचे क्षणमात्र ऐसे मौनी हुए कि जैसे सोई मछलियोंवाला सरोवर ॥ ७३ ॥

विज्ञापितः=वि+ज्ञा+णिच्+क्त । सुप्तः=स्वप् शयने । स्वपिति । सुष्वाप । अस्वपत् । अस्वपीत् । अस्वाप्सीत् । भावे सुप्यते । अस्वापि । णिचि स्वापयति=ते ।सनि सुषुप्सति। णिचः सनि सुष्वापयिषति-ते । स्वपनीयम् । स्वपनम् । स्वापः । सुप्तः । स्वप्तव्यम् । स्वप्तम् । सुप्त्वा । विसुप्य। स्वप्यम् । स्वपन् । न स्वप्नः । वुञ स्वप्नकः ।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणम् ॥
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत् ॥ ७४ ॥

अन्वयः । भावितात्मा सः (वशिष्ठः) भुवो भर्तुः (दिलीपस्य) सन्ततेः स्तंभकारणं प्रणिधानेन अपश्यत् अथ एनं (दिलीपं) प्रत्यबोधयत् ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । भावितात्मना तेन भुवः भर्तुः संततेः स्तंभकारणं प्रणिधानेन अदृश्यत अथ एषः प्रत्यबोध्यत ॥ ७४ ॥

जितेन्द्रियः वशिष्ठः योगमार्गेण दिलीपस्य सुतोत्पत्तेः प्रतिबन्धकारणं ज्ञात्वा दिलीपं तत् ज्ञापितवान् इति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०–उस शुद्धात्मा (ऋषि) ने वसुधानाथ के सन्तान रुकनेका कारण ध्यान धरके देखा और फिर उसको बतानेलगा ॥ ७४ ॥

प्रणिधानेन=प्र+नि+धा+ल्युट् । स्तंभः=स्तम्भ स्तम्भने । स्तभ्नाति-स्तभ्नोति । तस्तम्भ । अस्तभ्नोत्-अस्तभ्नात् । अस्तभत्-अस्तम्भीत् । कर्मणि स्तभ्यते । अस्तम्भि । णिचि स्तम्भयति-ते । स्तम्भनीयम् । स्तम्भनम् । स्तम्भः । स्तम्भितव्यम् । स्तम्भितुम् । स्तम्भित्वा । स्तब्ध्वा । स्तभ्नन् । स्तभ्नुवन् । स्तभ्यमानः ।

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः ॥
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि ॥ ७५ ॥

अन्वयः । पुरा शक्रम् उपस्थाय उर्वीं प्राति यास्यतः तव पथि सुरभिः (कामधेनुः) कल्पतरुच्छायाम् आश्रिता (सती) आसीत् ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । पुरा शक्रम् उपस्थाय उर्वीं प्रति यास्यतः तव पथि सुरभ्या कल्पतरुच्छायाम् आश्रितया (सत्या) अभूयत ॥ ७५ ॥

हे नृप पूर्वं त्वमेकदा इन्द्रलोके गत्वा भगवन्तं वज्रपाणिं समुपास्य यदा नरलोकं प्रत्यागमनाय प्रवृत्तः तदा तें मार्गे सुरभिः नाम कामधेनुः पारिजातकच्छायायां स्थिता आसीत् इति सरलार्थः ७५

भा०–पहले जब तुम इन्द्र की सेवा करके पृथ्वीकी ओर लौटे तुम्हारे मार्गमें कल्पवृक्षकी छायामें सुरभी बैठीथी ॥ ७५ ॥

शक्रः=शक्+रक् । उपस्थाय=उप्+स्था+ल्यप् । यास्यतः=या+स्य+तृ । या गतौ । याति । ययौ । अयात् । अयासीत् । कर्मणि यायते । अयायि । णिचि यापयति-ते । सनि यियासति । यवनीयम् । यवनम् । यवः । यवितव्यम् । यवितुम् । युत्वा । संयुत्य । यव्यम् । युवन् । यूयमानः ।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन् ॥
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः ॥ ७६ ॥

अन्वयः । (तदा) धर्मलोपभयात् ऋतुस्नाताम् इमां राज्ञीं स्मरन् (सन्) त्वं प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां (धेन्वां) साधु न आचरः ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । धर्मलोपभयात् ऋतुस्नाताम् इमां राज्ञीं स्मरता (सता) त्वया प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां साधु न आचर्य्यत ॥ ७६ ॥

तदा इयं तव महिषी सुदक्षिणा ऋतुस्नानं कृत्वा त्वत्समागमं प्रेक्षणमाणा तस्थौ त्वमपि ऋतुसमयस्य अननुष्ठाने पापं स्यादिति सुदक्षिणामेव चेतसा स्मरन् प्रदक्षिणार्हां तां कामधेनुं प्रदक्षिणादिभिः सम्मानयितुं विस्मृतवान् तच्च न शोभनं कृतम् इति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०–ऋतुस्नान की हुई रानी की याद कर धर्मलोपके डरसे तुमने उस परिक्रमा करने योग्यका सत्कार नहीं किया ॥ ७६ ॥

स्नाता=स्ना+क्त+टाप्। स्मरन्=स्मृ+शतृ। आचरः चर गतौ लङ्। स्मृ स्मरणे। स्मरति। सस्मार। अस्मरत्। अस्मार्षीत्। कर्मणि स्मर्य्यते। अस्मारि। णिचि स्मारयति–ते। स्मरणीयम्। स्मरणम्। स्मरः। स्मारकः। स्मृतिः। स्मर्तव्यम्। स्मर्तुम्। विस्मृत्य। स्मार्य्यम्। स्मरन्। स्मार्य्यमाणः।

अवजानासि मां यस्माद्तस्ते न भविष्यति ॥
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ॥ ७७ ॥

अन्वयः। यस्मात् माम् (त्वम्) अवजानासि अतः मत्प्रसूतिम् अनाराध्य ते प्रजा न भविष्यति इति सा त्वां शशाप ॥ ७७ ॥

वाच्यप०। यस्मात् (त्वया) अहम् अवज्ञाये अतः मत्प्रसूतिं अनाराध्य ते प्रजया न भूयिष्यते, इति तया त्वं शेपे ॥ ७७ ॥

प्रदक्षिणादिमानव्यतिक्रमात् त्वयि रुष्टा सती सा धेनुः त्वामेवं शप्तवती यतस्त्वं मां तिरस्कृत्य चलितोसि ततः मत्सुताराधनं विना न ते सुतो भविष्यतीति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०–तैंने मेरा निरादर किया इस कारण मेरी सन्तान की सेवा किये विना तेरे सन्तान न होगी ऐसा उसने तुमको शाप दिया ॥ ७७ ॥

अवजानासि=अव+ज्ञा+लट्। शप शापे। शपति–शपते। शशाप–शेपे। अशपत्–अशपत। अशाप्सीत्। अशप्त। कर्मणि शप्यते। अशापि। णिचि शापयति–ते। शपनीयम्। शपनम्। शापः। शप्तः शप्तव्यम्। शप्तम्। शप्त्वा। अभिशाप्य। शप्यम्। शपन्। शपमानः। शप्यमानः।

स शापो न त्वया राजन्न च सारथिना श्रुतः ॥
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे ॥ ७८ ॥

अन्वयः। राजन्! आकाशगंगायाः उद्दामदिग्गजे स्रोतसि नदति (सति) सः शापः त्वया न श्रुतः सारथिना च न (श्रुतः) ॥ ७८ ॥

वाच्यप०। आकाशगंगायाः उद्दामदिग्गजे स्रोतसि नदति (सति) तं शापं त्वं न श्रुतवान् सारथिः च न (श्रुतवान्) ॥ ७८ ॥

तदा च सुरनदीस्रोतसि क्रीडन्तो मत्तैरावताः भयंकरं शब्दं त्यजन्ति स्म आकाशगंगाकलकलशब्देन तेषां च बृंहितेन तिरस्कृतान्यशब्दतया धेनोः शापवाक्यं न तव न च तव सारथेः कर्णगोचरमभूत् इति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०–हे राजन् आकाशगंगाके प्रवाहमें खुले दिग्गजोंका शब्द होनेसे उस शापको तुमने और तुम्हारे सारथिने न सुना ॥ ७८ ॥

नदति नद+शतृ ७। नद शब्दे। नदति। ननाद। अनदत्। अनादीत्। अनदीत्। भावे नद्यते। अनादि। णिचि नादयति-ते। नदनीयम्। नदनम्। नादः। नदितुम्। नदितव्यम्। नदित्वा। संनद्य। नाद्यम्। नदन्।

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः ॥
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥ ७९ ॥

अन्वयः । तदवज्ञानात् (त्वम्) आत्मनः ईप्सितं सार्गलं विद्धि हि यस्मात् पूज्यपूजाव्यतिक्रमः श्रेयः प्रतिबध्नाति ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । तदवज्ञानात् (त्वया) आत्मनः ईप्सितं सार्गलं विद्यताम्, हि पूज्यपूजाव्यतिक्रमेण श्रेयः प्रतिबध्यते ॥ ७९ ॥

कामधेनोः तिरस्कारात् ते सुतोत्पत्तौ विघ्नो जातः यतः यो हि पूज्यतमान् न अर्चति तस्य मंगलकार्ये प्रतिबन्धो भवतीति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—उसके निरादरसे तुम अपने मनोरथको रुकाहुआ जानों पूज्यकी पूजाका उल्लंघन करना कल्याणोंको रोकता ही है ॥ ७९ ॥

प्रतिबध्नाति बन्ध् लट् । विद्धि विद् लोट् । विद ज्ञाने । वेत्ति—वेद । विवेद—विदाञ्चकार । अवेत्—अवेद् । अवेदीत् । कर्मणि विद्यते । अवेदि । णिचि वेदयति-ते । सनि विविदिषति । वेदनीयम् । वेदनम् । वेदः । वेदितव्यम् । वेदितुम् । विदित्वा । संविद्य । वेद्यम् । विदन् । विद्यमानः ।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ॥
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति ॥ ८० ॥

अन्वयः । सा च (कामधेनुः) इदानीं दीर्घसत्रस्य प्रचेतसः हविषे भुजंगपिहितद्वारं पातालम् अधितिष्ठति ॥ ८० ॥

वाच्यप० । तया च इदानीं दीर्घसत्रस्य प्रचेतसः हविषे भुजंगपिहितद्वारं पातालम् अधिष्ठीयते ॥ ८० ॥

यादसां पतिः वरुणः पाताले महासत्रम् आरब्धवान् तस्य आहुतिसाधनं हविरादिकं दातुं स धेनुः अस्मिन्समये पाताललोके वसति दुर्जयाश्च सर्पाः निरन्तरं पातालद्वारं पालयन्ति इति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—वह (सुरभी) तौ इस समय वहुत समयके यज्ञ करनेवाले वरुणकी हवि देनेके निमित्त सर्पोंसे रुकेहुए द्वारवाले पातालमें गई है ॥ ८० ॥

पिहित=अपि+धा+क्त ।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः ॥
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा ॥ ८१ ॥

अन्वयः । सपत्नीकः (त्वं) शुचिः (सन्) तदीयां सुतां (नन्दिनीं) सुरभेः (कामधेनोः) प्रतिनिधिं कृत्वा आराधय, हि सा प्रीता (सती) कामदुघा (भवति) ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । सपत्नीकेन (त्वया) शुचिना (सता) तदीयां सुतां सुरभेः प्रतिनिधिं कृत्वा (सैव) आराध्यताम् हि तया प्रीतया (सत्या) कामदुघया (भूयते) ॥ ८१ ॥

त्वयि रुष्टायाः धेनोरेव प्रसादने प्रथमं कर्तव्येपि अस्मिन्समये धेनुदर्शनस्य दुर्लभत्वात् तत्कन्यामेव तस्याः प्रतिनिधिं प्रकल्प्य त्वं सपत्नीकः निर्मलचेतसा प्रसादय यतः सुरभितुल्या सुरभिकन्यापि प्रसन्ना सती तव मनोवांछितम्पूरयितुं शक्नोति इति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—उसके स्थानमें उसकी बेटीको मानकर तुम रानीसमेत शुद्ध मनसे उसकी आराधना करो यह निश्चय प्रसन्न होनेपर कामना पूर्ण करनेवाली है ॥ ८१ ॥

तदीया=तत्+छ+टाप्। आराधय=आ+राध+णिच् लोट्। राध सिद्धौ। राध्यति। रराध। अराध्यत्। अरात्सीत्। भावे राध्यते। अराधि। णिचि राधयति—ते। सनि आरिरात्सति। राधनीयम्। राधनम्। राधकः। राद्धव्यम्। राद्धुम्। राद्धा। अवराध्य। राध्यम्। राध्यन्।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम् ॥
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात् ॥ ८२ ॥

अन्वयः। इति वादिनः एव अस्य होतुः (वशिष्ठस्य) आहुतिसाधनं नन्दिनी (इति) नाम अनिन्द्या धेनुः वनात् आववृते ॥ ८२ ॥

वाच्यप०। इति वादिनः एव अस्य होतुः आहुतिसाधनेन नंदिन्या (इति) नाम्ना अनिन्द्यया धेन्वा वनात् आववृते ॥ ८२ ॥

एवं कथयत्येव गुरौ होमप्रियस्य तस्य होमघृतादिदायिनी पूज्या नन्दिनीनाम्नी सुरभिकन्या वनात् तस्मिन्नेव समये तत्र प्रत्यागता इति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०—उस हवन करनेवालेके इतना कहते ही उसकी आहुतिकी सिद्ध करने वाली निन्दारहित नन्दिनी नाम गऊ बनसे लौटकर आई ॥ ८२ ॥

वादिन्=वद+णिनि। आववृते=आ+वृत्+लिट्।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ॥
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः। (कीदृशी धेनुः) पल्लवस्निग्धपाटला (किं कुर्वती सती) ललाटोदयम् आभुग्नं श्वेतरोमांकं नवं शशिनं संध्या इव बिभ्रती सती (आववृते) ॥ ८३ ॥

वाच्यप०। पल्लवस्निग्धपाटलया (किं कुर्वत्या सत्या) ललाटोदयम् आभुग्नं श्वेतरोमांकं नवं शशिनं संध्यया इव बिभ्रत्या (सत्या आववृते) ॥ ८३ ॥

श्लोकत्रयेण नन्दिनीं वर्णयन्नाह—यथा नूतनदलस्निग्धेन रक्तवर्णेन प्रकाशमानायाः सन्ध्यायाः आकाशरूपे मस्तके निर्मला सूक्ष्मा नवा चन्द्रकला दीप्यते तथा नवपल्लवकोमलेन रक्तवर्णेन प्रकाशमानायाः तस्या नन्दिन्याः पूज्ये ललाटे निर्मला तन्वी रोमराजिर्दिदीपे इति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०—(पत्तोंकी) कोंपल समान कोमल लाल रंगवाली माथेपर सफेदबालोंका कुछ टेढा टीका (चंदा) धारण किये हुए जैसे नये चंद्रमाको संध्या धारण करती है ॥ ८३ ॥

आभुग्नम्=आ+भुज+क्त । बिभ्रती=भृ+शतृ+ङीप् । भृ=भरणे । बिभर्ति । बिभृते । बभार । अबिभः अभार्षीत् । अभृत । कर्मणि भ्रियते । अभारि । णिचि भारयति-ते । सनि बभूर्षति । भरणीयम् । भरणम् । भरः । भर्तुम् । भर्तव्यम् । भृत्वा । अवभृत्य । बिभ्रत् । सामर्थ्ये-कवचं बिभ्राणः ।

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि ॥
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना ॥ ८४ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूता धेनुः) कुंडोध्नी (पुनः किं कुर्वती सती) कोष्णेन अवभृथात् अपि मेध्येन वत्सालोकप्रवर्तिना प्रस्नवेन भुवम् अभिवर्षती (सती, आववृते) ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । कुंडोध्न्या कोष्णेन अवभृथात् अपि मेध्येन वत्सालोकप्रवर्त्तिना प्रस्नवेन भुवम् अभिवर्षंत्या (सत्या, धेन्वा, आववृते) ॥ ८४ ॥

बृहत्कुम्भवत् पवित्रेण आपीनेन युक्ता सा सुरभिकन्या पुत्रदर्शनात् उच्छलितवेगं प्रसरता ईषदुष्णेन यज्ञान्तस्नानादपि मेध्यतमेन स्तनदुग्धेन धरातलम् अभिवर्षन्ती आजगाम इति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०-कुंडकी समान ऐनवाली यज्ञके जलसेभी पावन दूधसे जो बछडेको देखकर उतरा है और कुछ गरमसे पृथ्वीको भिगोती हुई ॥ ८४ ॥

अवभृथात्=अव+भृ+कथन् । ५ । मेध्येन=मेध+यत् । ३ । प्रस्नवेन=प्र+स्नु+अप् । ३ । अभिवर्षन्ती=अभि+वृष+शतृ+ङीप् । स्नु=क्षरणे-स्नौति । पारिस्नौति । सुष्णाव । अस्नौत् । अस्नावीत् । भावे स्नूयते । अस्नावि । णिचि स्नावयति-ते । स्नवितव्यम् । स्नवनीयम् । स्नवनम् । स्नुतः । स्नवितुम् । अपस्नुत्य । स्नव्यम् । णि स्नाव्यम् । स्नुवन् ।

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात् ॥
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः ॥ ८५ ॥

अन्वयः । (पुनः किं कुर्वती सती) खुरोद्धूतैः अंतिकात् गात्रं स्पृशद्भिः रजःकणैः महीक्षितः तीर्थाभिषेकजां शुद्धिम् आदधाना (सती आववृते) ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । खुरोद्धूतैः अंतिकात् गात्रं स्पृशद्भिः रजःकणैः महीक्षितः तीर्थाभिषेकजां शुद्धिम् आदधानया (सत्या, तया, आववृते) ॥ ८५ ॥

नंदिन्याः शफोत्थिताः शोधनाः रजःकणाः सन्निहितस्य दिलीपस्य देहे निपत्य तस्य भागीरथीस्नानतुल्यां कामपि निर्मलतां विदधिरे इति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०-खुरोंसे उठे हुए और धोरे होनेके कारण शरीरका छूते हुए रजके कनकास राजाका तीर्थस्नानकी पवित्रता देती हुई ॥ ८५ ॥

स्पृशद्भिः=स्पृश्+शतृ । ३ । आदधाना=आ+धा+शानच्+टाप् । स्पृश=स्पर्शने स्पृशति । पस्पर्श । अस्प्राक्षीत् । अस्पार्क्षीत् । अस्पृक्षत् । कर्मणि स्पृश्यते । अस्पर्शि । णिचि स्पर्शयति-ते । स्पर्शनीयम् । स्पर्शनम् । स्पर्शकः । स्प्रष्टव्यम्-स्पर्ष्टव्यम् । स्पर्ष्टुम्-स्प्रष्टुम् । उपस्पृश्य स्पृश्यम् । स्पृशन् । उप आचमने उपस्पृशति ।

तां पुण्यदर्शना दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः ॥
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत् ॥ ८६ ॥

अन्वयः । निमित्तज्ञः तपोनिधिः पुण्यदर्शनां तां दृष्ट्वा आशंसितावंध्यप्रार्थनं याज्यं पुनः अब्रवीत् ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । निमित्तज्ञेन तपोनिधिना पुण्यदर्शनां तां दृष्ट्वा आशंसितावंध्यप्रार्थनः याज्यः पुनः औच्यत ॥ ८६ ॥

शकुनज्ञः वसिष्ठः दर्शनेनैव सर्वमंगलकर्त्रीं तां नन्दिनीं नामोच्चारणमात्रेणैव समुपस्थितां विलोक्य तत् अवन्ध्यं सुलक्षणं दिलीपं बोधयासमास इति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०–उस पवित्र दर्शनवालीको देखकर शकुन जाननेवाले तपके धनी (वसिष्ठजी) मनोरथके सफल होनेकी इच्छा करनेवाले यजमानसे फिर बोले ॥ ८६ ॥

निमित्तज्ञः=निमित्त+ज्ञा+क । आशंसितम्=आ+शंस्+भावे क्त । याज्यं=यज्+ण्यत् । यज=पूजादाने । यजति यजते । इयाज ईजे । अयजत् अयजत । अयाक्षीत् अयष्ट । कर्मणि इज्यते । अयाजि । णिचि याजयति–ते । सनि यियक्षति–ते । यजनीयम् । यजनम् । यागः । इष्टः । क्यप् इज्या । वनिप् यज्वा । यष्टव्यम् । यष्टुम् । इष्ट्वा । समिज्य । याज्यम् । यजन् । यजमानः । इज्यमानः ॥

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ॥
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥ ८७ ॥

अन्वयः । राजन् (त्वम्) आत्मनः सिद्धिम् अदूरवर्त्तिनीं विगणय यत् नाम्नि कीर्तिते एव इयं कल्याणी उपस्थिता (अस्ति) ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । हे राजन् (त्वया) आत्मनः सिद्धिः अदूरवर्तिनी विगण्यताम् यत् नाम्नि कीर्तिते एव अनया कल्याण्या उपस्थितया (भूयते) ॥ ८७ ॥

हे नृप तव मनोरथः शीघ्रमेव सफलो भविता इति नूनम् अवगच्छ यतः तव अन्वेष्टव्या इयं नन्दिनी नामोच्चारणमात्रमेव तव निकटे स्वयमेवागता इति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०–हे राजन् तुम अपनी सिद्धको धोरे आई जानो क्योंकि नामलेते ही यह कल्याणी सन्मुख आई है ॥ ८७ ॥

गणय=गण+लोट् । गण संख्याने=गणयति–गणयते । गणयां–चकार (चक्रे–बभूव–आस) अगणयत्–अगणयत । अजीगणत्-त । अजगणत्–त । कर्मणि गण्यते । अगणि । सनि जिगणयिषति-ते । गणनीयम् । गणनम् । गणकः । गणयितुम् । गणयित्वा । विगणय्य । गणयन् । गणयमानः । गण्यमानः ।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम् ॥
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ॥ ८८ ॥

अन्वयः । (त्वं) वन्यवृत्तिः (सन्) शश्वत् आत्मानुगमनेन इमां गाम् अभ्यसनेन विद्याम् इव प्रसादयितुम् अर्हसि ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । (त्वया) वन्यवृत्तिना (सता) शश्वत् आत्मानुगमनेन इयं गौः अभ्यसनेन विद्या इव प्रसादयितुम् अर्हति ॥ ८८ ॥

अधुना चतुर्भिः श्लोकैः गोसेवाव्रतमुपदिशति यथाहि—विज्ञानार्थी शिष्यः सर्वान् कामान् विहाय मनसा वाचा नित्यमभ्यासेन सर्वकामदात्रीं वाणीमेव अनुकूलयति तथा सुतार्थी त्वमपि सर्वान् भोगान् त्यक्त्वा ऋषिव्रतं स्वीकृत्य छायेव नित्यमनुगच्छन् तत्र मनोरथदुघाम् इमां नन्दिनीम् अनुकुलय इति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०—तुम वनके कन्दमूलादि भक्षण करते हुए इस गऊक निरंतर पीछे चल कर अभ्यास करने से विद्या की समान इसे प्रसन्न करने को योग्य हो ॥ ८८ ॥

वन्य=वन+यत् । अभ्यसनेन=अभि+अस्+ल्युट् । प्रसादयितुम्=प्र+सद्+णिच्+तुमुन् । सद् सीदति ससाद । असीदत् । असदत् । कर्मणि भावे च सद्यते । असादि । णिचि सादयति—ते । सदनीयम् । सदनम् । सत्तव्यम् । सत्तुम् । सत्त्वा । प्रसद्य । सीदन् । सद्यमानः ।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः ॥
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः ॥ ८९ ॥

अन्वयः । अस्यां (धेन्वां) प्रस्थितायां (सत्यां) (त्वं) प्रतिष्ठेथाः, स्थितायां (सत्यां) स्थितिं (त्वम्) आचरेः, निषण्णायां (सत्यां) (त्वं) निषीद, पीतांभसि (सत्यां) (त्वम्) अपः पिबेः ॥ ८९ ॥

वाच्यप० । अस्यां प्रस्थितायां (सत्यां) (त्वया) प्रतिष्ठीयेत, स्थितायां स्थितिः (त्वया) आचर्य्येत, निषण्णायां (त्वया) निषद्यतां, पीतांभसि (त्वया) आपः पीयेरन् ॥ ८९ ॥

यदा इयं गौः गच्छेत् तदा त्वम् अनुगमनं कुरु यदा इयं तिष्ठेत् तदा त्वं मा गच्छ यदा इयम् उपविशेत् तदा त्वम् उपविश यावच्च इयं तोयं पिबेत् तदा त्वं जलपानं कुरु इति सरलार्थः ॥

भा०—जब यह चले तब तुम चलो खडी हो तो खडे हो बैठे तो बैठो पानी पीवै तो तुम भी पानी पियो ॥ ८९ ॥

आचरेः विधिलिङ् । चर गतौ चरति । चचार । अचरत् । अचारीत् । कर्मणि चर्य्यते । अचारि । णिचि चारयति—ते । यङि चंचूर्य्यते । चरणीयम् । चरणम् । चरः । सञ्चारः । चरितुम् । चरित्वा । संचर्य । चरन् । चर्य्यमाणः ।

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामा तपोवनात् ॥
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि ॥ ९० ॥

अन्वयः । भक्तिमती वधूः प्रयता च (सती) अर्चिताम् एनाम् आ तपोवनात् प्रातः अन्वेतु सायम् अपि प्रत्युद्व्रजेत् ॥ ९० ॥

वाच्यप० । भक्तिमत्या वध्वा प्रयतया च (सत्या) अर्चिता एव आ तपोवनात् प्रातः अन्वीयतां सायम् अपि प्रत्युद्व्रज्येत ॥ ९० ॥

अथ सुदक्षिणाकर्तव्यमाह—तव स्त्री शुद्धान्तःकरणेन भक्तिभावेन अनुदिनं प्रातःकाले गन्धमाल्यादिभिः इमाम् अर्चयित्वा आश्रमपर्यन्तम् अनुव्रजेत् संध्यासमये पुनरपि आश्रमनिकटपर्यन्तं गत्वा इमां नमस्कृत्य आनयेत् इति सरलार्थः ॥ ९० ॥

भा०—और इस पूजी हुईके पीछे भक्ति करनेवाली वधू शुद्धमन होकर प्रातःकाल तपोवनके अन्ततक जाय और सांझको सन्मुख मिलै ॥ ९० ॥

प्रत्युद्व्रजेत् व्रज् गतौ विधिलिङ्।

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव ॥
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम् ॥ ९१ ॥

अन्वयः। त्वम् इति अस्याः आप्रसादात् परिचर्यापरः भव, ते (तव) अविघ्नम् अस्तु (त्वं) पुत्रिणां धुरि पिता इव स्थेयाः ॥ ९१ ॥

वाच्यप०। त्वया इति अस्या आप्रसादात् परिचर्यापरेण भूयताम्, ते अविघ्नेन (भूयताम्) (त्वया) पुत्रिणां धुरि पित्रा इव स्थीयताम् ॥ ९१ ॥

यावदियं गौः त्वयि प्रसन्ना न भवति तावत्त्वं मत्कथनानुसारेण एनां परिचर तव पिता यथा सुतरत्नेन त्वया पुत्रसौभाग्यशालिनाम् अग्रगण्योभूत् त्वमपि तथा सदृशसुतरत्नलाभेन सुतसौभाग्यशालिनाम् अग्रगण्यो भव इति सरलार्थः ॥ ९१ ॥

भा०—इस प्रकारसे जबतक यह प्रसन्न हो तबतक तुम इसकी सेवा करते रहो तुमको कोई विघ्न न हो पिताकी समान पुत्रवालोंमें तुम मुख्य ठहरो ॥ ९१ ॥

परिचर्या=परि+चर+यक्। स्थेयाः=स्था+आशीर्लिङ्। अस्तु=अस+लोट्। अस भुवि। अस्ति। बभूव। आसीत्। अभूत्। शतृ सन्। शेषं भूधातुवत्।

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ॥
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥ ९२ ॥

अन्वयः। प्रीतिमान् सपरिग्रहः देशकालज्ञः शिष्यः आनतः (सन्) शासितुः आदेशं तथा इति प्रतिजग्राह ॥ ९२ ॥

वाच्यप०। प्रीतिमता सपरिग्रहेण देशकालज्ञेन शिष्येण आनतेन (सता) शासितुः आदेशः तथा इति प्रतिजगृहे ॥ ९२ ॥

निर्मले हवनानलसन्निधौ पवित्रे च होमावसानसमये ब्रह्मसुतेन तेन वशिष्ठेन यत् उक्तं तन्निश्चयमेव फलिष्यतीति ज्ञात्वा सपत्नीको दिलीपः परमप्रसन्नोऽभवत् विनयनम्रः सन् तस्य गुरुदेववशिष्ठस्य आज्ञां सबहुमानं स्वीचकार इति सरलार्थः ॥ ९२ ॥

भा०—उस प्रीतिमान देश कालके जाननेवाले शिष्यने "बहुत अच्छा" यह कहकर स्त्रीसहित गुरुकी आज्ञा ग्रहण की ॥ ९२ ॥

प्रीतिमान्=प्रीति+मतुप् । आनतः=आ+नम्+क्त । शिष्यः शास्+क्यप् । नम् नमने नमति । ननाम । अनमत् । अनंसीत् । कर्मणि नम्यते । अनामि । णिचि नमयति-ते । सनि निनंसति । यङि नंनम्यते । नमनीयम् । नमनम् । नमः । नतिः । नतः । नन्तुम् । नन्तव्यम् । नत्वा । संनम्य । नम्रः । नमन् । दिभ्यो णत्वम् प्रणमति ।

अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम् ॥
सूनुः सूनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोदितश्रियम् ॥ ९३ ॥

अन्वयः । अथ प्रदोषे दोषज्ञः सूनृतवाक् स्रष्टुः सूनुः उदितश्रियं विशांपतिं संवेशाय विससर्ज ॥ ९३ ॥

वाच्यप० । अथ प्रदोषे दोषज्ञेन सूनृतवाचा स्रष्टुः सूनुना उदितश्रीः विशांपतिः संवेशाय विससृजे ॥ ९३ ॥

ततः हितमनोहारिसत्यभाषी गुणदोषदर्शी स वशिष्टः राजलक्ष्म्या प्रकाशमानं तं दिलीपं निशायां निद्रायै आज्ञापयामास इति सरलार्थः ॥ ९३ ॥

भा०–ब्रह्माजीके सत्यवादी ज्ञानी पुत्रने रात्रिको लक्ष्मीवान् राजाको सोनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ९३ ॥

दोषज्ञः=दोष+ज्ञा+क । स्रष्टुः=सृज्+तृच् । ६ । संवेशाय=सम् विश+घञ् । ४ । विश प्रवेशने । विशति । विवेश । अविशत् । अविक्षत् । भावे विश्यते । अवेशि । णिचि वेशयति-ते । सनि विविक्षति । वेशनीयम् । वेशनम् । वेशः । वेष्टव्यम् । वेष्टुम् । विष्ट्वा । उपविश्य । विशन् । नि आत्मने । निविशते ।

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः ॥
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः । कल्पवित् मुनिः तपःसिद्धौ सत्याम् अपि नियमापेक्षया अस्य (नृपस्य) वन्याम् एव संविधां कल्पयामास ॥ ९४ ॥

वाच्यप० । कल्पविदा मुनिना तपःसिद्धौ सत्याम् अपि नियमापेक्षया अस्य वन्या एव संविधा कल्पयांचक्रे ॥ ९४ ॥

स्वतपःप्रतापात् राजयोग्यभोक्ष्यशय्यादिविधानसामर्थ्ये सति अपि व्रतप्रयोगाभिज्ञः वशिष्ठः तदा प्रभृति दिलीपस्य व्रतपालनानुरोधादेव तदर्थे वन्यकन्दमूलफलादिभोजनं दर्भशय्यां च संपादयामास इति सरलार्थः ॥ ९४ ॥

भा०–तपकी सिद्धि होनेमें भी व्रतके व्यवहार जाननेवाले मुनिने नियमके कारण उसको वनवासही की सामग्री बतलाई ॥ ९४ ॥

कल्पवित्=कल्प+विद्+क्विप् । कल्पते । चक्लृपे । अकल्पत् । अक्लृप्त–अकल्पिष्ट । अक्लृप्त । भावे कल्प्यते । अकल्पि । णिचि कल्पयति-ते । कल्पनीयम् । कल्पनम् । आकल्पः । कल्पः । कल्पितुम्–कल्प्तुम् । कल्पितव्यम् । कल्पित्वा–क्लृप्त्वा । प्रकल्प्य । कल्प्यमानः ।

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशाला-
मध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ॥
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां
संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ॥ ९५ ॥

अन्वयः । प्रयतपरिग्रहद्वितीयः सः (राजा) कुलपतिना (वशिष्ठेन) निर्दिष्टां पर्णशालाम् अध्यास्य कुशशयने संविष्टः (सन्) तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां निशां निनाय ॥ ९५ ॥

वाच्यप० । प्रयतपरिग्रहद्वितीयेन तेन (राज्ञा) कुलपतिना निर्दिष्टां पर्णशालाम् अध्यास्य कुशशयने संविष्टेन (सता) तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसाना निशा निन्ये ॥ ९५ ॥

ऋषिकुलाचार्य्येण ब्रह्मर्षिणा वशिष्ठेन निर्दिष्टे पर्णकुटीरे स दिलीपः जितेन्द्रियया सुदक्षिणया सह दर्भशय्यायां सुष्वाप वशिष्ठशिष्याणां वेदाध्ययनशब्देन क्षपावसानं ज्ञात्वा शयनात् उत्तस्थौ इति सरलार्थः । " मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात् । अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः । " इति कुलपतेः पुराणोक्तलक्षणम् ॥ ९५ ॥

भा०—कुलपतिकी दिखलाई हुई पर्णकुटीमें जाकर उस पतिव्रताके साथी कुशासनपर सोनेवालेने उनके शिष्योंके वेद पढनेसे जानेहुए सवेरेवाली रात्रि बिताई । जो दश हजार विद्यार्थियोंको भोजन देकर वेद पढावै उसे कुलपति कहते हैं ॥ ९५ ॥

निर्दिष्टां=निर्+दिश्+क्त+टाप् । संविष्टः=सम्+विश्+क्त । अवसानम् । अव+सा+ल्युट् । षो नाशे स्यति । ससौ । अस्यत् । असासीत् । भावे सीयते । असायि । णिचि साययति–ते । सानीयम् सानम् । सायकः । सातव्यम् । सातुम् । सित्वा सेयम् । स्यन् । अव समाप्तौ अवस्यति । अवसायः । अवसानम् । वि अव उद्यमे बोधे च व्यवस्यति । निनाय नी लिट् । शं भवतु ।

इति श्रीज्वालाप्रसादमिश्रविरचितायां रघुवंशव्याख्यायां भावार्थदीपिका-
समाख्यायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

हरिः ॐ

द्वितीयः सर्गः ।

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ॥
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ प्रभाते यशोधनः प्रजानाम् अधिपः जायाप्रतिग्राहितगंधमाल्यां पीतप्रतिबद्धवत्सांम् ऋषेः धेनुं वनाय मुमोच ॥ १ ॥

वाच्यपरि० । अथ प्रभाते यशोधनेन प्रजानाम् अधिपेन जायाप्रतिग्राहितगंधमाल्या पीतप्रतिबद्धवत्सा ऋषेः धेनुः वनाय मुमुचे ॥ १ ॥

प्रभातसमये नृपमहिषी सुदक्षिणा मालाचन्दनादिभिः नन्दिनीं सम्यक्तया अर्चयामास वत्सं च प्रथमं स्तन्यं पाययित्वा पश्चात् बबन्ध ततश्च यशःपरायणः स दिलीपः वने स्वच्छन्दगमनाय तां नन्दिनीं मुक्तवान् इति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०–रात बीतने पर प्रजाओंके रक्षा करनेवाले यशके धनीने सुदक्षिणाकी दीहुई सुगंध और माला धारण करनेवाली दूध पीकर बांधेहुए बछडेवाली मुनिकी गाय वनके जानेको खोली ॥ १ ॥

अधिपः=अधि+पा+क । पा रक्षणे । पाति । पापौ । अपात् । अपासीत् । कर्मणि पायते । अपायि । णिचि पालयति ते । पानीयम् । पानम् । पातः । पात्वा । पातुम् । पातव्यम् । पानम् ।

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ॥
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥ २ ॥

अन्वयः । अपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया मनुष्येश्वरधर्म्मपत्नी खुरन्यासपवित्रपांसु तस्याः मार्गं श्रुतेः अर्थं स्मृतिः इव अन्वगच्छत् ॥ २ ॥

वाच्यप० । अपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीयया मनुष्येश्वरधर्म्मपत्न्या खुरन्यासपवित्रपांसुः तस्याः मार्गः श्रुतेः अर्थः स्मृत्या इव अन्वगम्यत ॥ २ ॥

पावनैः खुरक्षेपैः नन्दिनी मार्गरजो निर्मलीकुर्वाणा जगाम यथा हि स्मृतिः वेदार्थमेव सर्वदा अनुगच्छति तथा पतिव्रताग्रगण्या दिलीपपत्नी सुदक्षिणा तं नन्दिनीमार्गम् अनुससार इति सरलार्थः २

भा०–राजाकी धर्मपत्नी पतिव्रताओंमें पहले नाम लेने योग्य उसके खुरके स्पर्शसे पवित्र धूलिवाले मार्गमें पीछे २ श्रुतिके अर्थके अनुसार स्मृतिके समान चली ॥ २ ॥

कीर्तनीया=कृत् (कर्मणि) अनीयर+टाप् । स्मृति=स्मृ+क्तिन् । कृत कीर्तने । कीर्तयति–कीर्तयते कीर्तयाम्बभूव–आस–चकार । अकीर्तयत्–अकीर्तयत । अचिकीर्तत् । अचिकीर्तत । कर्मणि कीर्त्यते । अकीर्ति । कीर्तनीयम् । कीर्तनम् । कीर्ती । कीर्तिः । कीर्तयितुम् । कीर्तयितव्यः । कीर्तयित्वा । संकीर्त्य । कीर्तयन् । कीर्तयमानः । कीर्त्यमानः ।

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ॥
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥ ३ ॥

अन्वयः । यशोभिः सुरभिः दयालुः राजा दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां गोरूपधराम् उर्वीम् इव तां सौरभेयीं (नंदिनीं) जुगोप ॥ ३ ॥

वाच्यप० । यशोभिः सुरभिणा दयालुना राज्ञा दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्रा गोरूपधरा उर्वी इव सा सौरभेयी जुगुपे ॥ ३ ॥

परमदयालुः राजा प्रियतमां सुदक्षिणां सुदूरगमनात् निवर्तयामास स्वयं च तां नन्दिनीं सर्वभावेन गोप्तुमारेभे मन्ये नन्दिनीरूपेण प्राप्तां चतुर्भिः स्तनैरिव चतुर्भिः जलधिभिः युक्तां साक्षात् धरां देवीमिव स जुगोप इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–दयावान् कीर्तिसे शोभायमान उस राजाने रानीको लौटाकर चार सागररूपी चारथनोंवाली सुरभीकी कन्याको मानों गऊरूपमें पृथ्वीको रक्षा किया ॥ ३ ॥

सुरभिः=सु+रभ्+इन् । दयितां=दय+क्त+टाप् । सौरभेयीं=सुरभि+ढक्+ङीप् । दय दयने दयते । देये । अदयत । अदयिष्ट । कर्मणि अदय्यते । अदायि । दयनीयम् । दयनम् । दायः । दयिता । दायितः । दायितुम् । दयितव्यम् । दयित्वा । दयमानः ।

व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ॥
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः॥ ४ ॥

अन्वयः । व्रताय धेनोः अनुचरेण तेन (राज्ञा) शेषः अपि अनुयायिवर्गः न्यषेधि अस्य (नृपस्य) शरीररक्षा च अन्यतः न हि मनोः प्रसूतिः स्ववीर्यगुप्ता (भवति) ॥ ४ ॥

वाच्यप० । व्रताय धेनोः अनुचरः सः शेषम् अपि अनुयायिवर्गं न्यषेधीत् अस्य शरीररक्षया च अन्यतः न (भूयते) हि मनोः प्रसूत्या स्ववीर्यगुप्तया (भूयते) ॥ ४ ॥

व्रतपालनार्थमेव अरण्ये गामनुगच्छन् नृपतिः प्राक् महिषीं निवर्तयामास पश्चात् अन्यानपि सेवकान् अनुचलनात् निवारितवान् एकाकिनोपि तस्य दिलीपस्य निजरक्षणविधौ कापि चिन्ता न बभूव यतः मनोः कुलधराः नृपाः स्वबाहुबलेनैव सर्वत्र निजरक्षां कुर्वन्ति इति सरलार्थः ॥४॥

भा०–व्रतके निमित्त धेनुके अनुचर उस राजा करके शेष अनुचरोंका समूह निषेधकिया गया, इस राजाकी शरीररक्षा दूसरेसे नहीं. कारण कि मनुकी संतान अपने पराक्रमसेही रक्षित हैं ॥ ४ ॥

न्यषेधि=नि+सिध+लुङ् । प्रसूतिः प्र+सू+क्तिन् ।

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ॥
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥५॥

अन्वयः । सः सम्राट् आस्वादवद्भिः तृणानां कवलैः कंडूयनैः दंशनिवारणैः अव्याहतैः स्वैरगतैः च तस्याः (नंदिन्याः) समाराधनतत्परः अभूत् ॥ ५ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । तेन सम्राजा आस्वादवद्भिः तृणानां कवलैः कंडूयनैः दंशनिवारणैः अव्याहतैः स्वैरगतैः च तस्याः (नन्दिन्याः) समाराधनतत्परेण अभावि ॥ ५ ॥

तस्याः भोजनार्थं सुघासमुष्टिं प्रयच्छन् तस्याः गात्रखर्जनम् अपनयन् दुःखकरान् दंशमशकादीन् निवारयन् तस्याः स्वेच्छाविहारं च अनुवर्तमानः सन् सः (दिलीपः) सर्वप्रकारेण नन्दिनीं सिषेवे इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०-वह राजा स्वादिष्ठ तृणोंके ग्रास, खुजलाने, डांसोंके निवारण करने और अप्रतिहत स्वच्छन्दगतियों करके उस नन्दिनीकी सेवामें तत्पर होताहुआ ॥ ५ ॥

सम्राट्=सम्+राज्+क्विप् । कवलैः=क+वल+अच् । कण्डूयनैः कंडू+यक्+ल्युट्च । दंश=दंश्+अच् । अव्याहतैः=अ+वि+आ+हन्+क्त ।

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ॥
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥६॥

अन्वयः भूपतिः तां स्थितां (दृष्ट्वा) स्थितः (सन्) प्रयातां दृष्ट्वा । उच्चलितः (सन्) निषेदुषीं (दृष्ट्वा) आसनबंधधीरः (सन्) जलम् आददानां (दृष्ट्वा) जलाभिलाषी (सन्) तां छाया इव अन्वगच्छत् ॥ ६ ॥

वाच्यप० । भूपतिना स्थिता स्थितेन प्रयाता उच्चलितेन निषेदुषी आसनबन्धधीरेण जलम् आददाना जलाभिलाषिणा (सता) सा छयया इव अन्वगम्यत ॥ ६ ॥

नन्दिनी यदा चलितुमारेभे तदा दिलीपोऽपि तामनुजगाम, यदा सा चलनात् विरराम नृपोऽपि तदा विरराम, सा यदा निषसाद तदा राजापि निषसाद, सा प्रथमं जलं पपौ नृपः पश्चात् सलिलमपिबत् किं बहुना स भूपतिः सदा छायेव तामनुजगामेति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०-राजा उसको खडी देख खडी होता हुआ चलने पर चलता बैठी को देख आसन बाँधने में धीर, जलकी इच्छा करनेपर जलका अभिलाषी हो छायाकी नाईं उसके पीछे जाताहुआ ॥ ६ ॥

निषेदुषीम्=नि+सद+क्वसु+ङीप् । २ । आददानाम्=आ+दा=शानच्+टाप् ।

स न्यस्तचिह्नामपि राज्यलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः ॥
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥ ७ ॥

अन्वयः । सः (राजा) न्यस्तचिह्नाम् अपि तेजोविशेषानुमितां राज्यलक्ष्मीं दधानः (सन्) अनाविष्कृतदानराजिः अंतर्मदावस्थः द्विपेन्द्रः इव आसीत् ॥ ७ ॥

वाच्यप० । तेन (राज्ञा) न्यस्तचिह्नाम् अपि तेजोविशेषानुमितां राज्यलक्ष्मीं दधानेन (सता) अनाविष्कृतदानराजिना अंतर्मदावस्थेन द्विपेन्द्रेण इव अभूयत ॥ ७ ॥

समदभद्रजातीयो गजपतिः यद्यपि मदवारिभिः अन्तर्गतां निजां मदावस्थां न प्रकटीकरोति तथापि तस्य तेजःशालिना मूर्तिविशेषेण यथा मनुष्यस्तां मदावस्थां निश्चेतुं समर्थो भवति तथा स दिलीपः व्रतबन्धात् यद्यपि छत्रचामरालंकारादिभिः निजां राज्यलक्ष्मीं न आविश्चकार तथापि तस्य प्रभावशालिना मूर्तिविशेषेणैव जनस्तस्य राज्यश्रियं अनुमातुं शशाक इति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०–वह राजा चिह्न त्याग करनेपर भी विशेष तेजसे जान्ने योग्य राज्यलक्ष्मी" को धारण करता हुआ नहीं प्रगटमदरेखावाले भीतर स्थित मदवाले हाथीकी समान हुआ ॥ ७ ॥

अनुमिता=अनु+मा+क्त+टाप् ।

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ॥
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् ॥ ८ ॥

अन्वयः । लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः (उपलक्षितः) अधिज्यधन्वा सः (दिलीपः) मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यन्निव, दावं विचचार ॥ ८ ॥

वाच्यप० । लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः (उपलक्षितेन) अधिज्यधन्वना तेन (दिलीपेन मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यता इव, दावः विचेरे ॥ ८ ॥

स दिलीपः लम्बायमानं स्वकेशकलापं वल्लरीतन्तुभिः उन्नमय्य बद्ध्वा चापे ज्यामारोप्य तां होमधेनुं ररक्ष अत्रोत्प्रेक्षते मन्ये खलान्तकोसौ दिलीपः धेनुरक्षणव्याजेनागत्य तत्र वने सिंहादीन् दुष्टजन्तून् विनाशितुं तथा सज्जीभूतो विचचार इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०–बेलोंके झुण्डमें गुथे केश धनुष चढाये वह राजा मुनिकी होमधेनुके रक्षाव्याजसे वनके दुष्ट जीवोंको शिक्षा देताहुआसा वनमें विचरताथा ॥ ८ ॥

उद्ग्रथिताः=उत्+ग्रथ्+क्त । अधिज्यधन्वा=अधि+ज्या+धनुष्+अनङ् । विनेष्यन्=वि+नी+स्य+शतृ । दावं=दु+ण ।

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ॥
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥ ९ ॥

अन्वयः । पार्श्वद्रुमाः उन्मदानां वयसां विरावैः विसृष्टपार्श्वानुचरस्य पाशभृता समस्य तस्य आलोकशब्दम् उदीरयामासुः इव ॥ ९ ॥

वाच्यप० । पार्श्वद्रुमैः उन्मदानां वयसां विरावैः विसृष्टपार्श्वानुचरस्य पाशभृता समस्य तस्य आलोकशब्दः उदीर्यांचक्रे इव ॥ ९ ॥

षड्भिः श्लोकैः कुलकेनाह—यथा राजमन्दिरे सेवकाः मंगलध्वनिभिः तं संवर्द्धयन्ति स्म तथाऽरण्येपि तन्निकटवर्त्तिनः तरवः पार्श्वचरविहीनं वरुणवत् प्रभावशालिनं तं नृपं मत्तखगकुलकूजितरूपेण जयशब्देन संवर्द्धयामासुः इति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०—इधर उधरके वृक्ष उन्मत्तपक्षियोंके शब्दोंसे त्यागन किये हुए अनुचरवाले वरुणकी तुल्य उस राजाके जयशब्दको कहतेहुए ॥ ९ ॥

पाशभृता=पाश+भृ+क्विप् । वयसां=अज्+असुन् ।विरावैः=वि+रु+घञ् ।३।उदीरयामासुः=उत्+ईर् ।

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम् ॥
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥ १० ॥

अन्वयः । मरुत्प्रयुक्ताः बाललताश्च, मरुत्सखाभम् अर्च्यम् आरात् अभिवर्त्तमानं तं (नृपम्) आचारलाजैः पौरकन्याः इव, प्रसूनैः अवाकिरन् ॥ १० ॥

वाच्यप० । मरुत्प्रयुक्ताभिः बाललताभिः च, मरुत्सखाभः अर्च्यः आरात् अभिवर्तमानः सः (नृपः) आचारलाजैः पौरकन्याभिः इव प्रसूनैः अवाकीर्यत ॥ १० ॥

यथा हि तस्य नगरप्रवेशे पुरकन्यकाः तस्योपरि मंगलार्थान् निर्मलान् लाजान् वर्षन्ति तथा वने वल्ल्यः मारुतान्दोलितैः शाखाकरैः पावकवत्तेजसः तस्योपरि निर्मलानि पुष्पाणि समन्तात् किरन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—पवनसे प्रेरित छोटी लता; अग्निकी समान कान्तिवाले, पूजनीय, समीपमें वर्तमान उस राजापर; खीलोंसे नगरकी कन्याओंकी समान फूलोंद्वारा वर्षा करतीहुई ॥ १० ॥

अर्च्यम्=अर्च+ण्यत् । प्रसूनैः=प्र+सू+क्त । अवाकिरन्=अव+कृ+लङ् ।

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशंकैः ॥
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥ ११ ॥

अन्वयः । धनुर्भृतः अपि अस्य दयार्द्रभावं (हरिणीनां) विशंकैः अंतःकरणैः आख्यातम् (अस्य) वपुः विलोकयन्त्यः हरिण्यः अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम् आपुः ॥ ११ ॥

वाच्यप० । धनुर्भृतः अपि अस्य दयार्द्रभावं (हारिणीनां) विशंकैः अंतःकरणैः आख्यातं (अस्य) वपुः विलोकयन्तीभिः हारिणीभिः अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम् आपे ॥ ११ ॥

धनुर्धारिणमपि तमायान्तं विलोक्य यतो भीतानामपि हारिणीनां मनसि भयमात्रमपि न जज्ञे अत एव ताः बुबुधिरे यदयं नृपः यद्यपि सिंहवत् भीषणं चापं धत्ते तथापि अस्य अन्तरात्मा हिंसालेशरहितः सर्वजीवेषु कृपया द्रवीभूत इव अत एव ताः नृपस्य परममनोहरां मूर्तिम् आकर्णविस्फारितैः स्वनेत्रैः निर्भयात् बहुकालं निर्भरं ददृशुः तेन च स्वनेत्राणाम् अति विशालतां सफलां चक्रुरिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—धनुष धारण कियेहुए भी इस राजाकी दयासे द्रवीभूत भाव हरिणियोंके भयरहित अन्तःकरणसे जानागया इसके शरीर देखतीहुई हरिणी नेत्रोंके अधिकविस्तारके फलको प्राप्त होती हुई ॥ ११ ॥

विलोकयन्त्यः=वि+लोक (स्वार्थे णिच्) शतृ+ङीप् ।

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ॥
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥ १२ ॥

अन्वयः । सः (दिलीपः) मारुतपूर्णरन्ध्रैः (अत एव) कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यं कुंजेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानं स्वं यशः शुश्राव ॥ १२ ॥

वाच्यप० । तेन (दिलीपेन) मारुतपूर्णरंध्रैः (अत एव) कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यं वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानं स्वं यशः शुश्रुवे ॥ १२ ॥

तस्मिन्वने एकान्तशीतलेषु वल्लरीकुञ्जेषु सुखासीनाः वनदेवताः मंगलगायिका इव मनोहरेण गान्धारस्वरेण तस्य नृपतेः आश्चर्यकर्म्माणि गायन्त्यः तस्य कर्णसुखं चक्रिरे वनजातैः कीचकैश्च (सच्छिद्रवंशैश्च) पवनपूर्णरन्ध्रतया मधुरं ध्वनिभिः तासां गानस्य अनुरञ्जकं वंशीवाद्यकार्य्यं सम्पादितमिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—वह राजा पवनपूर्णछिद्रवाले शब्दायमान वाँसोंसे संपादन किये वंश चरित्रको कुंजामें वनदेवताओंसे ऊंचे गाये हुए अपने यशको सुनता हुआ ॥ १२ ॥

कूजद्भिः=कूज्+शतृ । ३ । कीचकैः=चीक्+आद्यंतविपर्ययश्चेति वुन् । उद्गीयमानं=उत्+गै+शानच् ।

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ॥
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे ॥ १३ ॥

अन्वयः । गिरिनिर्झराणां तुषारैः पृक्तः अनोकहाकंपितपुष्पगंधी पवनः अनातपत्रम् (अत एव आतपक्लान्तम् आचारपूतं (नृपं) सिषेवे ॥ १३ ॥

वाच्यपरि० । गिरिनिर्झराणां तुषारैः पृक्तेन अनोकहाकंपितपुष्पगंधिना पवनेन, अनातपत्र अत एव) आतपक्लान्तः आचारपूतः सः (नृपः) सिषेवे ॥ १३ ॥

पर्वतसरित्प्रवाहाणां शीतलान् वारिकणान् वहन् ईषत्कम्पितानां तरुपुष्पाणां गन्धं हरन् मन्दो गन्धवहस्तस्मिन्वने छत्ररहितम् आतपतापितं सदाचारपवित्रं तं दिलीपं सेवितवान् इतिसरलार्थः॥ १३॥

भाषार्थः—पर्वतके झरनौंके कणोंसे मिला हुआ, वृक्षोंके कँपानेसे पुष्पगंधवाला वायु; छत्ररहित होनेसे धूपसे क्लांत, आचारव्रतादिसे पवित्र उस राजाको सेवन करत हुआ ॥ १३ ॥

निर्झराणां=निर्+झृ+अप् । तुषारैः=तुष+आरन् । अनोकहानां=अनस्+अक+हन्+ड ।

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ॥
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने ॥१४॥

अन्वयः । गोप्तरि तस्मिन् (राजनि) वनं गाहमाने (सति) दवाग्निः वृष्ट्या अपि विना शशाम, फलपुष्पवृद्धिः विशेषा आसीत्, सत्त्वेषु अधिकः ऊनं न बबाधे ॥ १४ ॥

वाच्यपरि० । गोप्तरि तस्मिन् (राजनि) वनं गाहमाने (सति) दवाग्निना वृष्ट्या अपि विना शेमे, फलपुष्पवृद्धया विशेषया अभूयत, सत्त्वेषु अधिकेन ऊनं (सत्त्वं) न बबाधे ॥ १४ ॥

अहो महिमा तस्य राजर्षेः यस्मिन् प्रविष्टमात्र एव तस्मिन् महावने वृष्टया विनापि वनाग्निः शशाम वृक्षलतादयोपि अपूर्वया फलपुष्पश्रिया चकाशिरे प्रबलाश्च जीवाः निर्बलहिंसनात् विरेमुः इति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—रक्षा करनेवाले उस राजाके वनमें फिरनेपर वनकी अग्नि, विनाही वर्षाके शान्त होगई फल फूलोंकी वृद्धि बहुत हुई जीवोंमें बलवान् निर्बलको नहीं बाधा देताहुआ ॥ १४ ॥

गाहमाने=गाह्+शानच् । ७ । विशेषा=वि+शिष+घञ् ।

संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ॥
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥ १५ ॥

अन्वयः । पल्लवरागताम्रा पतंगस्य प्रभा मुनेः (वसिष्ठस्य) धेनुः च दिगंतराणि संचारपूतानि कृत्वा दिनान्ते (स्वकीयाय) निलयाय गन्तुं प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

वाच्यप० । पल्लवरागताम्रया पतंगस्य प्रभया मुनेः धेन्वा च दिगंतराणि संचारपूतानि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुं प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

सन्ध्यासमये नवपल्लवरक्ता सूर्य्याकृतिः यावत्स्वकिरणस्पर्शेन दिक्चक्रं निर्म्मलीकुर्व्वाणा अस्ताचलं चलितुं प्रववृते तावत् नवपल्लवारुणा सा नन्दिनी निजशफस्पर्शेन मार्गं पवित्रीकुर्व्वन्ती तपोवनं गन्तुं प्रववृते इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—नवीन पत्तोंके समान रंगवाली सूर्यकी प्रभा और वसिष्ठकी धेनु दिशाओंके अन्तको अपने संचारसे पवित्र करके सन्ध्यासमय अपने स्थानमें जानेकी इच्छा करती हुई ॥ १५ ॥

पतंगस्य=पत्+गम+खच् । अथवा पत्+अंगच् उणादि । ६ । सञ्चारेण=सम्+चर्+घञ् ।३। निलयाय नि+ली+च ।

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः ॥
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ॥ १६ ॥

अन्वयः । मध्यमलोकपालः देवतापित्रतिथिक्रियार्थां तां (धेनुं) अन्वक् ययौ विधिनोपपन्ना साक्षात् श्रद्धा इव सा सतां मतेन तेन (राज्ञा) बभौ ॥ १६ ॥

वाच्यप० । मध्यमलोकपालेन देवतापित्रतिथिक्रियार्था सा अन्वक् यये विधिनोपपन्नया साक्षात् श्रद्धया इव तया सतां मतेन तेन बभे ॥ १६ ॥

दुग्धादिप्रदानेन वसिष्ठस्य यागश्राद्धदानादीनाम् उपकर्त्री तां गामनुसृत्य नरलोकपालः चलितुमारेभे तथाहि श्रद्धां (धर्मे दृढविश्वासः) सज्जनसमादृतेन सदाचारेण युक्ता एव शोभते तथा मूर्त्तिमती श्रद्धेव परमपवित्रा सा धेनुरपि साधुजनसेवितेन (मूर्त्तिमता सदाचारेणेव परमानिर्मलेन) तेन दिलीपेन युक्ता सती चकाशे इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०–पृथ्वीपालक; देवता पितृ और अतिथिके सत्कारमें योग्य उस धेनुके पीछे २ गया। विधिसे उत्पन्न हुई साक्षात् श्रद्धाकी तरह वह गौ सत्पुरुषोंके संमत उस राजासे शोभित हुई ॥ १६ ॥

अन्वक्=अनु+अञ्च+क्विन् । श्रद्धा=श्रत्+धा+अङ्+टाप् ।

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ॥
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥ १७ ॥

अन्वयः । सः पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् (सन्) ययौ ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तेन पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यता (सता) यये ॥ १७ ॥

स दिलीपः प्रत्यावर्तमानो ददर्श सन्ध्यागमे सूकराः पल्वलेभ्यः शतशो निर्गत्य विचरन्ति बर्हिणाश्च निशायापनार्थं वासवृक्षाभिमुखं गच्छन्ति हरिणाश्च शष्पश्यामेषु स्थलेषु सुखं स्थिताः विश्राम्यन्ति वनस्थली च क्रमेण प्रदोषान्धकारेणश्यामीभवतीति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–राजा; छोटे सरोवरोंमें से उठे हुए सूकर समूहोंवाले. घोंसलेकी ओर मुखउठाये मोरोंवाले, मृगोंके बैठनेकी हरी घासवाले, श्यामवर्ण वनोंको देखता हुआगया १७

अध्यासितः=अधि+आस्+क्त । शाद्वलाः=शाद+ड्वलच् ।

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः ॥
उभावलंचक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥ १८ ॥

अन्वयः । आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् गृष्टिः वपुषः गुरुत्वात् नरेन्द्रः (च) उभौ (नन्दिनीनृपौ) अंचिताभ्यां गाताभ्यां तपोवनावृत्तिपथम् अलञ्चक्रतुः ॥ १८ ॥

वाच्यप० । आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् गृष्ट्या, वपुषः गुरुत्वात् नरेन्द्रेण (च) उभाभ्य अंचिताभ्यां गताभ्यां तपोनवनावृत्तिपथः अलंचक्रे ॥ १८ ॥

सा नन्दिनी महोधोभारात् दिलीपः च विपुलशरीरभारात् द्वौ मृदुपदं जग्मतुः तेन च मनोहरेण चरणक्षेपेण उभौ आगमनपन्थानं भूषितवन्ताविति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—पुष्ट ऐनके बोझ उठानेके प्रयत्नसे नन्दिनी और शरीरके भारी होनेसे राजा दोनो ही शोभनगतियोंसे तपोवनसे लौटनेके मार्गको शोभित करते हुए ॥ १८ ॥

गृष्टिः=ग्रह्+क्तिच् । आपीनम्=आप्याय+क्त । अञ्चिताभ्यां=अञ्च+क्त ।

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्त्तमानं वनिता वनान्तात् ॥
पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥१९॥

अन्वयः । वनिता (सुदक्षिणा) निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः (सती) वसिष्ठधेनोः अनुयायिनं वनान्तात् आवर्त्तमानं तं (नृपम्) उपोषिताभ्याम् इव, लोचनाभ्यां पपौ ॥ १९ ॥

वाच्यप० । वनितया (सुदक्षिणया) निमेषालसपक्ष्मपंक्त्या (सत्या) वसिष्ठधेनोः अनुयायी वनान्तात् आवर्त्तमानः सः (नृपः) उपोषिताभ्याम् इव लोचनाभ्यां पपे ॥ १९ ॥

वल्लभस्यादर्शनेनाधीरा सुदक्षिणा नन्दिन्या सह दयितं वनात् प्रत्यागच्छन्तं विलोक्य तृष्णाविस्फारितेन स्वनेत्रद्वयेन प्रियं पतिं निर्भरं ददर्श यथा कश्चिदुपोषितः पिपासया मधुरं जलं मुहुः पीत्वापि न शान्तिं प्राप्नोति तथा सुदक्षिणायाः प्रियतमदर्शनवियोगतापितं नेत्रयुगलमपि सुधावत् प्रियतमरूपं मुहुः दृष्ट्वापि न तृप्तिं लेभे इति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—सुदक्षिणा मूंदनेमें अलसाते पलकोंवाली रानी वसिष्ठकी धेनुके पीछे चलन हारे, वनान्तसे लौटे हुए उस राजाको उपासे हुओंकी समान नेत्रोंसे पीती हुई ॥१९॥

उपोषिताभ्याम्=उप्+वस्+क्त ।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ॥
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव संध्या ॥ २० ॥

अन्वयः । वर्त्मनि पार्थिवेन पुरस्कृता पार्थिवधर्मपत्न्या (च, वर्त्मनि) प्रत्युद्गता सा धेनुः तदन्तरे (सुदक्षिणादिलीपान्तरे) दिनक्षपामध्यगता संध्या इव विरराज ॥ २० ॥

वाच्यप० । वर्त्मनि पार्थिवेन पुरस्कृतया पार्थिवधर्मपत्न्या (च वर्त्मनि) प्रत्युद्गतया तया धेन्वा तदन्तरे दिनक्षपामध्यगतया संध्यया इव विरेजे ॥ २० ॥

मार्गे महिषी धेनोरग्रतः दिलीपः च पश्चाद् ययौ यथाहि दिनरात्रयोः मध्ये स्थिता किसलयरागारुणा सन्ध्या चकास्ते तथा तयोरन्तरे सा धेनुरपि दिदीपे इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—मार्गमें राजासे आगे की हुई राजाकी धर्मपत्नीसे सन्मुख लीहुई वह धेनु उन दोनोंके बीचमें दिनरातके बीचमें प्राप्त हुई सन्ध्याकी नाईं शोभित हुई ॥ २० ॥

पुरस्कृता=पुरस्+कृ+क्त+टाप् ।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ॥
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥ २१ ॥

अन्वयः । साक्षतपात्रहस्ता सुदक्षिणा तां पयस्विनीं (धेनुं) प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च, अस्याः (नन्दिन्याः) विशालम् अर्थसिद्धेः द्वारम् इव शृंगान्तरम् आनर्च ॥ २१ ॥

वाच्यप० । साक्षतपात्रहस्तया सुदक्षिणया तां पयस्विनीं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च अस्याः विशालं शृंगान्तरम् अर्थसिद्धेः द्वारम् इव आनर्चे ॥ २१ ॥

ततः सुदक्षिणा तंदुलादिरचितम् अर्घभाजनमादाय शुभ्रक्षीरां तां गां प्रथमं प्रदक्षिणक्रियया सम्मानितां चकार पश्चात्तां प्रणम्य अर्थसिद्धेः प्रवेशमार्गमिव तस्याः शृंगयोर्मध्यस्थानम् अर्घ्यदानेन पूजितवती इति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—अक्षत सहित पात्र हाथमें लिये सुदक्षिणा उस गऊकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके इसके बृहत् मनोरथसिद्धिके द्वारकी समान शृंगके मध्यभागकी पूजा करती हुई ॥ २१ ॥

पयस्विनीम्=पयस्+विनि+ङीप् । आनर्च=अर्च्+लिट् ।

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ ॥
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥ २२ ॥

अन्वयः । सा (धेनुः) वत्सोत्सुका अपि स्तिमिता (सती) (सुदक्षिणायाः) सपर्यां प्रत्यग्रहीत्, इति (हेतोः) तौ (सुदक्षिणादिलीपौ) ननन्दतुः, हि (यस्मात्) भक्त्या उपपन्नेषु (प्राणिषु) तद्विधानां (नंदिनीसदृशानां) प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (भवन्ति) ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तया वत्सोत्सुकया अपि स्तिमितया (सत्या) सपर्या प्रत्यग्राहि, इति ताभ्यां ननन्दे, हि भक्त्या उपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिह्नैः पुरःफलैः (भूयते) ॥ २२ ॥

सुरभिः यद्यपि सायंकाले निजवत्सालोकनार्थम् अत्यन्तम् विह्वला आसीत् तथापि सा राज्ञीविहितां पूजां स्तब्धीभावेन स्वीचकार, तत्तस्याः प्रसन्नताचिह्नं विलोक्य सुदक्षिणादिलीपौ परमसुखं प्राप्तवन्तौ, यतो भक्तजनान्प्रति तादृशीनां कामदुघानां प्रसादः अल्पकालेनैव इष्टसिद्धिं कथयति इति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भावार्थः—उस बछडेमें उत्कंठावालीनेभी ठहरकर (सुदक्षिणा) की पूजाको ग्रहण किया इस कारण वे दोनों प्रसन्न हुए जिस कारणसे कि भक्तिवालोंमें, ऐसों की प्रसन्नताके चिह्न फलके निमित्त होते हैं ॥ २२ ॥

स्तिमिता=स्तिम्+क्त+टाप् । सपर्या=सपर्+ (कण्ड्वादि) यक्+टाप् ।

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सांध्यं च विधिं दिलीपः ॥
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥ २३॥

अन्वयः । भुजोच्छिन्नरिपुः दिलीपः सदारस्य गुरोः पादौ निपीड्य सांध्यं विधिं च समाप्य, दोहावसाने निषण्णां दोग्ध्रीं (धेनुं) पुनः एव भेजे ॥ २३ ॥

वाच्यप० । भुजोच्छिन्नरिपुणा दिलीपेन सदारस्य गुरोः पादौ निपीड्य सांध्यं विधिं च समाप्य दोहावसाने निषण्णा दोग्ध्री पुनः एव भेजे ॥ २३ ॥

आरिक्षयकर्ता दिलीपः आश्रमं समागत्य पूर्वं वसिष्ठम् अरुन्धतीं च भक्त्या ववन्दे ततश्च निजं सायमनुष्ठानं परिसमाप्य दोहावसाने सुखासीनां तां नन्दिनीमेव पुनः सेवितवानिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भाषार्थः—भुजाओंसे शत्रुओंके मारनेवाले राजाने स्त्रीसहित गुरुके चरणोंकी वन्दना कर और संध्याविधिको समाप्त करके दुहनेके अन्तमें बैठी हुई गऊको फिरभी सेवन किया ॥ २३ ॥

निपीड्य=नि+पीड्+ल्यप् । सान्ध्यं+सन्ध्या=अण् । समाप्य=सम् आप्+ल्यप् । दोग्ध्री=दुह्+तृन्+ङीप्।

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ॥
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

अन्वयः । गोप्ता (दिलीपः) गृहिणीसहायः (सन्) अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां तां (धेनुम्) अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनु संविवेश, प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

वाच्यप० । गोप्त्रा गृहिणीसहायेन (सता) अंतिकन्यस्तबलिप्रदीपां ताम् अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम अनु संविविशे, प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदस्थीयत ॥ २४ ॥

तस्याः निकटे अर्चासामग्रीं निधाय स्थितायाः तस्याः पृष्ठतः सुदक्षिणादिलीपौ स्थितवन्तौ क्रमेण निद्रायुक्तायां तस्यां तावपि निद्रां प्राप्तवन्तौ प्रातःकाले सुप्तोत्थितायां तस्यां तावपि उदतिष्ठतामिति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भाषार्थः—वह रक्षक स्त्रीसहायवाला पूजा और दीपक सामने रक्खीहुई उस गौको सेवन कर क्रमसे सोईहुईके पीछे सोया और प्रातःकाल जागीहुईके पीछे उठ बैठा ॥ २४ ॥

अन्तिकम्=अन्त+ठन् । न्यस्त=नि+अस्+क्त ।

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः ॥
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥ २५॥

अन्वयः । इत्थं प्रजार्थं महिष्या समं व्रतं धारयतः महनीयकीर्तेः दीनोद्धरणोचितस्य (दिलीपस्य) सप्त त्रिगुणानि (२१) दिनानि व्यतीयुः ॥ २५ ॥

वाच्यप० । इत्थं प्रजार्थं महिष्या समं व्रतं धारयतः महनीयकीर्तेः दीनोद्धरणोचितस्य तस्य सप्तभिः त्रिगुणैः दिनैः व्यतीये ॥ २५ ॥

इत्थं सन्तानाय पत्न्या समं व्रतं धारयतः पूजितकीर्तेः दीनरक्षणोचितस्य तस्य नृपस्य एकविंशतिदिनानि गतानीति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भाषार्थः-इस प्रकार सन्तानके निमित्त स्त्रीसहित व्रत धारण करनेवाले महाकीर्तिमान् दीनोंके उद्धार करने वाले उस राजाको तिगुने सात (इक्कीस) दिन बीतगये ॥ २५ ॥

उद्धरण=उद्+हृ+ल्युट्। हरति-ते। जहार-जह्रे। अहरत्-त। अहार्षीत्-अहृत। कर्मणि ह्रियते। सनि जिहीर्षति-ते।

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ॥
गङ्गाप्रपातान्तनिरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥ २६ ॥

अन्वयः। अन्येद्युः मुनिहोमधेनुः आत्मानुचरस्य (नृपस्य) भावं जिज्ञासमाना (सती) गंगाप्रपातान्तनिरूढशष्पं गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश ॥ २६ ॥

वाच्यपा०। अन्येद्युः मुनिहोमधेन्वा आत्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमानया (सत्या) गंगाप्रपातान्तनिरूढशष्पः गौरीगुरोः गह्वरः अविविशे ॥ २६ ॥

द्वाविंशे दिने धेनुः निजसेवकस्याभिप्रायं ज्ञातुमिच्छंती सुरसरित्प्रपातान्तविरूढनवांकुरां हिमालयगुहामाविवेशेति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भाषार्थः-दूसरे (बाइसवें) दिन वशिष्ठकी होमधेनुने अपने सेवकके भाव जाननेकी इच्छा करके गंगाद्वारपर बढी हुई घासवाली हिमालयकी गुफामें प्रवेश किया ॥२६॥

जिज्ञासमाना=ज्ञा+सनि+शानच्। जानाति। जज्ञौ। अज्ञासीत्। कर्मणि ज्ञायते।

सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन ॥
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥२७॥

अन्वयः। सा (धेनुः) हिंस्रैः (सिंहादिभिः) मनसा अपि दुष्प्रधर्षा (अस्ति) इति (हेतोः) अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन नृपेण अलक्षिताभ्युत्पतनः सिंहः किल प्रसह्य तां चकर्ष ॥२७॥

वाच्यप०। तया हिंस्रैः मनसा अपि दुष्प्रधर्षया (भूयते) इति अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन नृपेण अलक्षिताभ्युत्पतनेन सिंहेन किल प्रसह्य सा चकृषे ॥ २७ ॥

धेनुः व्याघ्रादिभिः मनसाप्यगम्येति हेतोः पर्वतशोभायां दत्तदृष्टिना दिलीपेन सिंहस्याभ्युत्पतनं न दृष्टम् सिंहः हठात् तां धेनुं चकर्षेति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भाषार्थः-यह धेनु "हिंसकोंको मनसेभी दुर्लभ है" इस कारण पर्वतकी शोभामें दृष्टि लगाये हुए राजाके विनादेखे एक कूदतेहुए सिंहने उसपर अकस्मात् आक्रमण किया ॥ २७ ॥

दुष्प्रधर्षा=दुः+प्र+धृष्+यप् । धर्षति । दधर्ष । अधर्षीत् । क० धृष्यते । णिचि धर्षयति-ते । कृत्सु । धर्षणीयम् । धर्षणम् । धर्षः । धर्षितुम् । धर्षित्वा । धृष्ट्वा ॥

तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ॥
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८॥

अन्वयः । गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घं तदीयम् आक्रंदितम् आर्त्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं रश्मिषु आदाय इव निवर्त्तयामास ॥ २८ ॥

वाच्यप० । गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घेण तदीयेन आक्रंदितेन आर्तसाधोः नृपस्य नगेंद्रसक्ता दृष्टिः निवर्त्तयाञ्चक्रे ॥ २८ ॥

यदा दीनरक्षणशीलेन राज्ञा तस्याः गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घः शब्दः श्रुतः तदा स पर्वतलग्न-दृष्टिं प्रग्रहेष्वादायेव निवर्त्तयामासेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भाषार्थः-गुफामें रुकनेके कारण वडे शब्दवाले उसके डकरानेने दुखियों-पर दया करनेहारे राजाकी पर्वतमें लगीहुई दृष्टिको मानों रस्सोंमें पकड़कर निवृत्त किया ॥ २८ ॥

आक्रन्दितम्=आ+क्रन्द+क्त । क्रन्दति । चक्रन्द । अक्रन्दत् । अक्रन्दीत् । भावे क्रन्द्यते । कृ० क्रन्दनम् । क्रन्दकः । क्रन्दी । क्रन्दितुम् । संक्रन्द्य ।

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ॥
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥२९॥

अन्वयः । धनुर्धरः सः (राजा) पाटलायां गवि तस्थिवांसं केसरिणं धातुमय्याम् अधित्य-कायां सानुमतः प्रफुल्लं लोध्रद्रुमम् इव ददर्श ॥ २९ ॥

वाच्यप० । धनुर्धरेण तेन (राज्ञा) पाटलायां गवि तस्थिवान् केसरी धातुमय्याम् अधित्य-कायां सानुमतः प्रफुल्लः लोध्रद्रुमः इव ददृशे ॥ २९ ॥

धनुर्धरः स दिलीपः रक्तवर्णायां गवि स्थितं सिंहमद्रेः गैरिकविकारयुक्तमासन्नभूमौ विकासितं लोध्राख्यं वृक्षमिव ददर्शेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भाषार्थः-धनुषधारी वह राजा लाल वर्णवाली गायपर स्थित सिंहको गेरूके पर्वतकी कुक्षिमें फूले हुए लोधके वृक्षकी समान देखता हुआ ॥ २९ ॥

अधित्यका=अधि+त्यकन् ।

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ॥
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषंगादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः ॥ ३० ॥

अन्वयः । ततः मृगेन्द्रगामी शरण्यः जाताभिषंगः सन् प्रसभोद्धृतारिः नृपतिः वध्यस्य मृगे-न्द्रस्य वधाय निषंगात् शरम् उद्धर्तुम् ऐच्छत् ॥ ३० ॥

वाच्यप० । ततः मृगेन्द्रगामिना शरण्येन जाताभिषंगेण प्रसभोद्धृतारिणा नृपतिना वध्यस्य मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात् शरः उद्धर्तुम् ऐष्यत ॥ ३० ॥

केसरिदर्शनानन्तरं सिंहगामी शरणशीलः बलोद्धृतशत्रुः स दिलीपः प्राप्तपराभवः सन् वधार्हस्य सिंहस्य मारणाय तूणीराद्बाणमुद्धर्तुमैच्छदिति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भाषार्थः—तब सिंहसमान चलनेहारे दुखियोंको शरण देनेवाले वैरियोंको बलसे मारनेवाले उस राजाने पराभवको प्राप्त हो वधकरने योग्य सिंहके मारनेको तरकससे बाण निकालनेकी इच्छा की ॥ ३० ॥

अभिषङ्गः=अभि+षंज्+घञ् ।

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्तांगुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥ ३१ ॥

अन्वयः । प्रहर्तुः तस्य (दिलीपस्य) वामेतरः करः नखप्रभाभूषितकंकपत्रे सायकपुंखे एव सक्तांगुलिः (सन्) चित्रार्पितारंभ इव अवतस्थे ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । प्रहर्तुः तस्य वामेतरेण करेण नखप्रभाभूषितकंकपत्रे सायकपुंखे एव सक्तांगुलिना (सता) चित्रार्पितारंभेण इव अवतस्थे ॥ ३१ ॥

प्रहर्तुस्तस्य दाक्षिणः करः नखकान्तिभूपितकर्कटपत्रे बाणमूलप्रदेशे निहितांगुलिः सन् शरोद्धरणोद्योगे चित्रलिखित इवावतस्थे इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—प्रहार करते हुए उसका दहना हाथ बाणकी पूंछहींमें नखोंकी प्रभासे मनोहर कंकपंखवालीमें ऐसे लगारहगया मानों चित्रमें लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥

सायकः=षो+ण्वुल् ।

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ॥
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥ ३२ ॥

अन्वयः । बाहुप्रतिष्टंभविवृद्धमन्युः राजा अभ्यर्णम् आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः स्वतेजोभिः अंतः मंत्रौषधिरुद्धवीर्यः भोगी इव अदह्यत ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युं राजानं मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यं भोगिनम् इव अस्पृशन्ति स्वतेजांसि अदहन् ॥ ३२ ॥

भुजप्रतिबंधेन प्रवृद्धक्रोधो राजा मंत्रौषधीभ्यां प्रतिबद्धशक्तिः सर्प इवान्तिकमपराधकारिणमस्पृशद्भिः स्वतेजोभिरंतरदह्यतेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०—बाहुके रुकनेसे क्रोध बढा हुआ राजा सन्मुख उपस्थित अपराधीको स्पर्श करनेकी शक्ति न रखनेवाले अपने तेजोंसे अन्तःकरणमें मंत्र और औषधियोंसे कीले हुए पराक्रमवाले सांपकी तरह जला ॥ ३२ ॥

अभ्यर्णम्=अभि+अर्द् कर्मणि क्तः । अविदूर्ये इडभावः दस्य नत्वम् । दह दाहे दहति । ददाह अधाक्षीत् । कर्मणि दह्यते । सनि दिधक्षति । यङि दन्दह्यते । कृ० दहनीयम् । दाहकः । दाही । दग्धः । दग्धुम् । संदह्य । दहन् । दह्यमानः ।

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम् ॥
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः॥३३॥

अन्वयः । निगृहीतधेनुः सिंहः आर्यगृह्यं मनुवंशकेतुम् आत्मवृत्तौ विस्मितं सिंहोरुसत्त्वं तं (प्रजेश्वरं) मनुष्यवाचा विस्माययन् निजगाद ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । निगृहीतधेनुना सिंहेन आर्यगृह्यः मनुवंशकेतुः आत्मवृत्तौ विस्मितः सिंहोरुसत्त्वः सः मनुष्यवाचा विस्माययता निजगदे ॥ ३३ ॥

सिंहः गां निपीडयन् सतां संमतं मनुकुलकेतुभूतं भुजस्तंभरूपे व्यापारे आश्चर्यान्वितं महाबलिष्ठं दिलीपं मनुष्यभाषयाऽश्चर्य्यं प्रापयन्नुवाचेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-गौ पकडनेवाला सिंह उस आर्यसखा, मनुवंशकी ध्वजा, अपनी दशापर चकित, सिंहसमान बलवान्को मनुष्यकी बोलीसे अचंभा कराते हुए बोला ॥३३॥

निजगाद=नि+गद+लिट् गदति । जगाद। अगदत् । अगादीत् । अगदीत् । क०गद्यते । सनि जिगदिषति । कृ० गदनीयम् । गादकः । गादः । गाद्यम् । गदन् ।

अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ॥
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥३४॥

अन्वयः । महीपाल ! तव श्रमेण अलम् इतः (अस्मिन् मयि) प्रयुक्तम् अपि अस्त्रं वृथा स्यात् (हि) पादपोन्मूलनशक्ति मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । हे महीपाल ! तव श्रमेण अलम् इतः प्रयुक्तेन अपि अस्त्रेण वृथा भूयेत पादपोन्मूलनशक्तिना मारुतस्य रंहसा शिलोच्चये न मूर्च्छ्यते ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! तव श्रमेण किमपि न भविष्यति किन्तु मयि प्रेरितमप्यस्त्रं वृथा स्यात् वृक्षनाशनशक्तिः पवनस्य वेगः पर्वते न प्रसरतीति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भाषार्थः-हे राजन् श्रम मतकरो यह तेरा चलाया हुआ भी अस्त्र वृथा होगा वृक्ष उखाडनेमें समर्थ वायुका वेग पहाडमें नहीं चलता है ॥ ३४ ॥

रंहस=रहि+असुन् ।

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ॥
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्॥३५॥

अन्वयः । कैलासगौरं वृषम् आरुरुक्षोः अष्टमूर्त्तेः पदार्पणानुग्रहपूतपृष्ठं कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रं मां किंकरं (त्वम्) अवेहि ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठः किंकरः अहं कुम्भोदरो नाम निकुम्भमित्रं (त्वया) अवेयै॥ ३५॥

राजन् त्वं मां निकुंभमित्रं कुमोदरं नाम धूर्जटेः किंकरम् अवेहि, यदा शिवः कैलासमिव, शुभ्रवर्णं वृषमारोढुमिच्छति तदा मत्पृष्ठोपरि चरणं निधाय वृषमारोहतीति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—कैलास पर्वतकी समान श्वेतवर्ण बैल पर चढनेकी इच्छा करनेवाले अष्टमूर्ति (महादेव) के चरण धरनेके प्रतापसे मुझ पवित्र पीठवालेको तू निकुंभका मित्र कुम्भोदर नामवाला किंकर जान ॥ ३५ ॥

किंकरम्=किम्+कृ+अच् ।

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ॥
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥३६॥

अन्वयः । (यम्) अमुं देवदारुं पुरः (त्वं) पश्यसि, असौ (वृक्षः) वृषभध्वजेन पुत्रीकृतः यः (असौ देवदारुः) स्कन्दस्य मातुः हेमकुंभस्तननिःसृतानां पयसां रसज्ञः (अस्ति) ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । (यः) असौ देवदारुः पुरः (त्वया) दृश्यते, अमुं (वृक्षं) वृषभध्वजः पुत्रीकृतवान्, येन देवदारुणा स्कन्दस्य मातुः हेमकुंभस्तननिःसृतानां पयसां रसज्ञेन (भूयते)॥३६॥

योऽसौ देवदारुः वृक्षस्तवाग्रे वर्ततेऽसौ शिवेन पुत्रत्वेन स्वीकृतः भवान्यायं तरुः सुवर्णघटस्तननिर्गतेन जलेन संवर्द्धितः इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—इस देवदारुवृक्षको कि जो तू आगे देखता है शिवजीने पुत्र मानाहै यह स्वामिकातककी माताके सोनेके कुंभरूपी स्तनोंसे निकले हुए जलोंका स्वाद जाने-वाला है ॥ ३६ ॥

पयसाम्=पी+असुन् ।

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य ॥
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । कदाचित् कटं कंडूयमानेन वन्यद्विपेन अस्य (देवदारोः) त्वक् उन्मथिता, अथ अद्रेः तनया असुरास्त्रैः आलीढं सेनान्यम् इव एनं शुशोच ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । कदाचित् कटं कंडूयमानः वन्यद्विपः अस्य त्वचम् उन्मथितवान्, अथ अद्रेः, तनयया असुरास्त्रैः आलीढः सेनानीः इव एषः शुशुचे ॥ ३७ ॥

एकदा वन्यद्विपेन समागत्य कपोलं कर्षतास्य त्वक् उन्माथिता तदा गौरी दैत्यायुधैः क्षतम् शरीरं पुत्रं स्कंदमिवैनं शुशोचेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—कभी कनपटी खुजाते हुए वनैले हाथीने इसकी छाल रगड डाली तब पार्वती असुरोंके अस्त्रोंसे छिदे हुए स्वामिकार्तिककी समान इसका शोच करने लगी ॥ ३७ ॥

शुशोच=शुच+लिट् । शोचति । अशोचत् । अशोचीत् । क० शुच्यते । सनि शुशोचिषति । कृ० शोचनीयम् । शोकः । शोचितव्यम् । शोचनीयम् । शोच्यम् । शोचन् ।

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ ॥
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमंकागतसत्त्ववृत्ति ॥ ३८ ॥

अन्वयः । तदाप्रभृति एव वनद्विपानां त्रासार्थं शूलभृता अंकागतसत्त्ववृत्ति सिंहत्वं विधाय, अहं अस्मिन् अद्रिकुक्षौ व्यापारितः ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । तदाप्रभृति एव वनद्विपानां त्रासार्थं शूलभृत् अंकागतसत्त्ववृत्ति सिंहत्वं विधाय, माम् अस्मिन् अद्रिकुक्षौ व्यापारितवान् ॥ ३८ ॥

तदालोच्य शिवेन वनहस्तिनां त्रासाथमहमस्मिन् गह्वरे समीपागतजीवभोजनं सिंहत्वं विधाय नियुक्तः । इति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-उसी दिनसे वनैले हाथियोंके डरानेके निमित्त महादेवजीने गोदमें आये पशुकी वृत्तिवाली सिंहता देकर मुझे इस पहाडकी गुफामें टिका दिया ॥ ३८ ॥

व्यापारितः=वि+आ+पृ+क्त । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्याप्रियेत । व्यापृत । क०व्याप्रियते । कृ० व्यापरणीयम् । व्यापारी । व्यापृत्य । व्याप्रियमाणः ।

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण ॥
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥ ३९ ॥

अन्वयः । परमेश्वरेण प्रदिष्टकाला उपस्थिता शोणितपारणा एषा चान्द्रमसी सुधा सुरद्विपः इव क्षुधितस्य तस्य मे तृप्त्यै अलम् (अस्ति) ॥ ३९ ॥

वाच्यपरि० । परमेश्वरेण प्रदिष्टकालया उपस्थितया शोणितपारणया एतया, चान्द्रमस्या सुधया सुरद्विषः इव, क्षुधितस्य मे तस्य तृप्त्यै अलं (भूयते) ॥ ३९ ॥

परमेश्वरेणानिर्दिष्टवेलैषा गौः रुधिरस्य पारणा उपस्थिता, राहोश्चांद्रमसी सुधेव बुभुक्षितस्य मे तृप्त्यै परिपूर्णमिति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-परमेश्वरकरके कालकी बाँधी उपस्थित हुई लोहूकी पारणा यह राहुको चंद्रमासंबंधी अमृतकी समान मुझभूखेको तृप्तिके निमित्त पूर्ण है ॥ ३९ ॥

पारणा=पृ+णिच्+ल्युट् ।

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः ॥
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥ ४० ॥

अन्वयः। सः त्वं (राजा) लज्जां विहाय निवर्त्तस्व, भवान् गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिः, (अस्ति) यत् शस्त्रेण रक्ष्यम्, अशक्यरक्षम् (अस्ति) तत् शस्त्रभृतां यशः न क्षिणोति ॥ ४० ॥

वाच्यपरि०। तेन त्वया लज्जां विहाय निवृत्यताम् भवता गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिना (भूयते) येन शस्त्रेण रक्ष्येण अशक्यरक्षेण (भूयते) तेन शस्त्रभृतां यशः न क्षीयते ॥ ४० ॥

उपायान्तरशून्यस्त्वं लज्जां त्यक्त्वा निवर्तस्व, त्वया गुरोः शिष्यभक्तिः दर्शिता, यद्रक्ष्यं धनमायुधेन रक्षितुमशक्यन्तद्रक्ष्यं नष्टमपि शस्त्रधारिणां यशो न हिनस्ति इति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-सो तू लज्जाको त्यागकर निवृत्त हो, तैने गुरुमें शिष्यभक्ति दिखादी कारण कि जो रक्षणीय (वस्तु) शस्त्रोंसे रक्षित न होसके तो शस्त्रधारणकरनेवालोंका यश क्षीण नहीं होताहै ॥ ४० ॥

निवर्तस्व=नि+वृत्+लोट्।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य ॥
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥ ४१ ॥

अन्वयः। पुरुषाधिराजः मृगाधिराजस्य इति प्रगल्भं वचः निशम्य (अहं) गिरिशप्रभावात् प्रत्याहतास्त्रः (अस्मि, इति मत्वा) आत्मनि अवज्ञां शिथिलीचकार ॥ ४१ ॥

वाच्यपरि०। पुरुषाधिराजेन मृगाधिराजस्य इति प्रगल्भं वचः निशम्य (मया) गिरिशप्रभावात् प्रत्याहतास्त्रेण (भूयते इति मत्वा) आत्मनि अवज्ञा शिथिलीचक्रे ॥ ४१ ॥

यदा दिलीपेनैतत् सर्वं वृत्तं श्रुतं तदा शिवप्रभावादस्त्रस्तंभनेनात्मनि विषयेऽपमानं शिथिलीचकारेति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-नरपतिने सिंहके इस प्रकार गर्वित वचन सुनकर मैं शिवजीके प्रभावसे अस्त्रकी गतिसे हीन हुआ हूं ऐसा मानकर अपनेमें अवज्ञा ढीली की ॥ ४१ ॥

प्रगल्भम्=प्र+गल्भ+अच्।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः ॥
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः ॥ ४२ ॥

अन्वयः। तत्पूर्वभंगे इषुप्रयोगे वितथप्रयत्नः (सः राजा) एनं प्रत्यब्रवीच्च। त्र्यंबकवीक्षणेन जडीकृतः वज्रं मुमुक्षन् वज्रपाणिः इव (राजा) (तस्थौ) ॥ ४२ ॥

वाच्यपरि०। तत्पूर्वभंगे इषुप्रयोगे वितथप्रयत्नेन (तेन राज्ञा) एषः प्रत्यौच्यत, त्र्यंबकवीक्षणेन जडीकृतेन वज्रं मुमुक्षता वज्रपाणिना इव (राज्ञा) (तस्थे) ॥ ४२ ॥

तत्प्रथमभंगे शरप्रयोगे विफलप्रयासः त्रिनेत्रवीक्षणेन निष्पंदीकृतः शक्र इव स्थितः नृपः एनं सिंहं प्रत्यब्रवीचेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-बाण चलानेमें प्रथमही निष्फल यत्नवाला (राजा) इससे बोला भी, महा-

देवके देखनेसे रुद्ध शक्ति होकर वज्रप्रहार करनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रकी नाई (स्थित हुआ) ॥ ४२ ॥

प्रयत्न=प्र+यत्+नङ् ।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः ॥
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये ॥ ४३ ॥

अन्वयः । मृगेंद्र ! यत् (वचः) अहं विवक्षुः (अस्मि) संरुद्धचेष्टस्य मे तद्वचः कामं हास्यम् (अस्ति) हि (यस्मात्) भवान् प्राणभृताम् अन्तर्गतं सर्वं भावं वेद, (जानाति) अतः (कारणात्) (अहम्) अभिधास्ये ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । मृगेन्द्र ! यत् (वचः) मया विवक्षुणा (भूयते) संरुद्धचेष्टस्य मे तेन वचसा कामं हास्येन (भूयते) हि भवता प्राणभृताम् अन्तर्गतः सर्वः भावः विद्यते, अतः (मया) अभिधास्यते ॥ ४३ ॥

हे सिंह ! यद्वचोहं वक्तुमिच्छामि तद्वचः प्रतिवद्धव्यापारस्य मे कामं परिहसनीयम्, परन्तु यतो भवान् प्राणधारिणां हृद्गतं सर्वं भावं वेत्ति । अतोऽहं वक्ष्यामीति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-हे मृगेंद्र ! जो वचन में कहनेकी इच्छा करता हूं वह चेष्टारुकेहुएका अवश्य हास्यके योग्य होताहै, जो कि आप प्राणियोंके हृदयके सब भाव जानते हो इससे मैं कहता हूं ॥ ४३ ॥

प्राणभृतां ६ प्राण=प्र+अन्+घञ् । भृ+क्विप् ।

मान्यः स मे स्थावरजंगमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ॥
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः । स्थावरजंगमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः सः (भूतेश्वरः) मे मान्यः (अस्ति) आहिताग्नेः गुरोः अपि इदं (गोरूप) धनं पुरस्तात् नश्यत् अनुपेक्षणीयम् (अस्ति)॥ ४४ ॥

वाच्य० । स्थावरजंगमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुना तेन मे मान्येन (भूयते) आहिताग्नेः गुरोः अपि अनेन धनेन पुरस्तात् नश्यता अनुपेक्षणीयेन (भूयते) ॥ ४४ ॥

जडचेतनानामुत्पत्तिप्रलयसंहारहेतुः स शिवः मे माननीयः आहिताग्नेः गुरोः वसिष्ठस्याप्यग्रे नश्यदिदं गोरूपधनमनुपेक्षणीयमिति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-स्थावरजंगमोंकी उत्पत्ति प्रलय नाशके हेतु वह शिव मेरे माननीय हैं परन्तु अग्निमें आहुति देनेवाले गुरुका भी यह धन सन्मुख नष्ट होता हुआ देखनेके अयोग्य है ॥ ४४ ॥

उपेक्षणीयम्-उप+ईक्ष+अनीयर् ।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद ॥
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । सः त्वं (सिंहः) मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसीद, दिनावसानोत्सुकबालवत्सा इयं महर्षेः (वसिष्ठस्य) धेनुः (त्वया) विसृज्यताम् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । तेन त्वया मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसद्यताम्, दिनावसानोत्सुकबालवत्साम् इमां महर्षेः धेनुं (त्वम्) विसृज ॥ ४५ ॥

समीपागतजीववृत्तिस्त्वं मदीयेन देहेन शरीरस्य जीवनं संपादयितुं प्रसन्नो भव, दिनान्ते उत्सुकबालवत्सां वसिष्ठस्येमां धेनुं त्यजेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–हे सिंह ! सो तू मेरे देहसे अपनी क्षुधा निवृत्त करनेको प्रसन्न हो, दिन बीतनेपर छोटे बछडेमें उत्कंठा करनेवाली इस महर्षिकी गौको त्याग दे ॥ ४५ ॥

अवसान=अव+सो+भावे ल्युट् ।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् ॥
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किंचिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे ॥ ४६ ॥

अन्वयः । अथ सः भूतेश्वरपार्श्ववर्ती (मृगेन्द्रः) दंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणाम् अन्धकारं शकलानि कुर्वन् किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिं बभाषे ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । अथानेन भूतेश्वरपार्श्ववर्तिना दंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणाम् अन्धकारं शकलानि कुर्वता किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिः बभाषे ॥ ४६ ॥

अथ शिवस्य निकटवर्त्यनुचरः पर्वतबिलतमो दंष्ट्राकान्तिभिर्निरस्यन् किंचिद्धास्यं कृत्वा भूयः नृपमुवाचेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–इसके उपरान्त वह शिवजीके निकट रहनेवाला (सिंह) डाढोंकी कान्तिसे पर्वतकी गुफाके अंधकारको टुकडे करता हुआ कुछएक हँसकर राजासे बोला॥४६॥

गह्वराणां=गाहू+वरच्+ ६ ।

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ॥
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥४७॥

अन्वयः । एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः इदं कान्तं वपुश्च, (इत्येतत्सर्वम्) बहु अल्पस्य हेतोः हातुम् इच्छन् (सन्) त्वं मे विचारमूढः प्रतिभासि ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । एकातपत्रं×+×+ हातुम् इच्छता त्वया विचारमूढेन प्रतिभास्यते ॥ ४७ ॥

राजन् ! त्वं मे कार्याकार्यविचारे मूर्खः प्रतिभासि, कुतः ? एकच्छत्रं संसारस्य स्वामित्वं नवयौवनमिदं मनोहरं वपुश्चेत्येतं बह्वल्पस्य गोर्हेतोस्त्यक्तुमिच्छसीति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–एकछत्र जगतका स्वामीपन नई उमर यह कान्तिमान् शरीर यह सब बहुत थोडेके निमित्त त्यागनेकी इच्छा करताहुआ तू मुझे विचारमूढ विदित होताहै॥४७॥

इच्छन्+इष्+शतृ । इच्छति । इयेष । ऐच्छत् । ऐषीत् । क० इष्यते । सनि इषिषिषति । एषणीयम् । एषः । एष्टव्यः । एषितव्यः । इष्टः । इष्टिः । इच्छा ।

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते ॥
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ॥४८॥

अन्वयः । तव चेत् भूतानुकंपा (अस्ति, तदा) त्वदन्ते एका (एव) इयं गौः स्वस्तिमती भवेत्, प्रजानाथ ! पुनः (पक्षान्तरे) (त्वं) जीवन् (सन्) शश्वत् पिता इव उपप्लवेभ्यः प्रजाः पासि ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । तव चेत् भूतानुकंपया (भूयते) त्वदन्ते एकया अनया गवा स्वस्तिमत्या भूयेत, प्रजानाथ ! पुनः (त्वया) जीवता (सता) शश्वत् पित्रा इव उपप्लवेभ्यः प्रजाः पायन्ते ॥ ४८ ॥

तव प्राणिजातेषु दयैव वर्तते चेत्तर्हि तव शरीरान्ते इयमेका धेनुः कल्याणवती भविष्यति हे प्रजानाथ ! यदि त्वं मह्यं निजशरीरं न दास्यसि तर्हि निरन्तरं विघ्नेभ्यः प्रजाः पितेव रक्षसीति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—जो तेरी प्राणियोंपर दया है तौ तेरे अन्तमें यह एक गौ ही कल्याणवाली होगी हे प्रजानाथ ! जो तू जीता रहेगा तौ निरन्तर पिताकी तरहसे विघ्नोंसे प्रजाकी रक्षा करेगा ॥ ४८ ॥

स्वस्तिमती=सु+अस्+क्तिच्+मतुप् ।

अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि ॥
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोध्नीः॥४९॥

अन्वयः । अथ एकधेनोः कृशानुप्रतिमात् अपराधचंडात् गुरोः (त्वं) बिभेषि, (तर्हि) घटोध्नीः कोटिशः गाः स्पर्शयता भवता अस्य (गुरोः) मन्युः विनेतुं शक्यः ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । अथ एकधेनोः कृशानुप्रतिमात् अपराधचंडात् गुरोः (त्वया) भीयते, घटोध्नीः कोटिशः गाः स्पर्शयन् भवान् अस्य मन्युं विनेतुं शक्नुयात् ॥ ४९ ॥

अथ वैकधेनोरग्नितुल्यादपराधचंडाद्गुरोः त्वं बिभेषि तर्हि अस्य ऋषेः रोषं घटवदूध्नीः बहुशः गाः दत्त्वा त्वं दूरीकर्तुं समर्थोसीति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—और जो एकधेनुवाले अग्निकी मूर्ति अपराधमें कोपित गुरुसे तू डरता है तो घडेसे ऐनवाली करोड गऊ देकर तू इसके क्रोध दूरकरनेको समर्थ है ॥ ४९ ॥

बिभेषि=भी+लट् । बिभेति । बिभयाम्बभूव । अबिभेत् । अभैषीत् । सनि बिभीषति । यङि बेभीयते । भावे भीयते । भयनीयम् । भयम् । आनक—भयानकः । सम्भीय । भेयम् । बिभ्यत् ।

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम् ॥
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥ ५० ॥

अन्वयः । तत् कल्याणपरंपराणां भोक्तारम् ऊर्जस्वलम् आत्मदेहं (त्वं) रक्ष, हि (यतः) ऋद्धं राज्यं महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम् ऐन्द्रं पदं (नराः) आहुः ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तत्, कल्याणपरंपराणां भोक्ता ऊर्जस्वलः आत्मदेहः (त्वया) रक्ष्यताम्, हि ऋद्धं राज्यं महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम् ऐन्द्रं पदं (नरैः) उच्यते ॥ ५० ॥

तस्मात् सुकृतपरंपराणां भोक्तारं महाबलिष्ठं निजशरीरं रक्ष, हि सम्यक् प्रकारेण वृद्धिं गतं राज्यं पृथ्वीतलसम्बंधमात्रेण भिन्नं शक्रसम्बन्धिस्थानं विद्वांस आहुः ॥ ५० ॥

भा०–इस कारण तू कल्याणपरंपराकी भोगनेवाली अपनी बडी बलवान् देहकी रक्षा कर क्योंकि ऋद्धिसहित राज्यहीको पृथ्वीके संबंध मात्रसे भिन्न इन्द्रका पद (स्वर्ग) कहते हैं ॥ ५० ॥

ऊर्जस्वलम्=ऊर्जस्+वलच् । भोक्तारम्=भुज्+तृच् । ऋद्धम्=ऋध्+क्त ।

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन ॥
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ॥ ५१ ॥

अन्वयः । एतावत् उक्त्वा मृगेन्द्रे विरते (सति) शिलोच्चयः अपि अस्य (सिंहस्य) गुहागतेन प्रतिस्वनेन उच्चैः क्षितिपालं प्रीत्या इव तम् एव अर्थम् अभाषत ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । एतावत् उक्त्वा मृगेन्द्रे विरते (सति) शिलोच्चयेन अपि अस्य गुहागतेन प्रतिस्वनेन उच्चैः क्षितिपालः प्रीत्या इव तम् एव अर्थम् अभाष्यत ॥ ५१ ॥

एतावत्पर्यन्तमुक्त्वा सिंहे विरामं गते सति गह्वरप्राप्तेनास्य मृगेन्द्रस्य प्रतिध्वनिना पर्वतोऽपि प्रसन्नतया तमेवार्थं नृपम् उच्चैः कथितवान् एवेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०–इतना कहकर सिंहके चुप होनेपर पर्वतनेभी गुफामें उठे हुए उसके प्रतिशब्दके ऊंचे स्वरसे राजाको प्रीतिसे मानों यही बात कही ॥ ५१ ॥

क्षितिपाल+अण् ।

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच ॥
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥ ५२ ॥

अन्वयः । मनुष्यदेवः देवानुचरस्य वाचं निशम्य, तदध्यासितकातराक्ष्या धेन्वा निरीक्ष्यमाणः (अतस्तु) सुतरां (एव) दयालुः पुनः अपि उवाच ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । मनुष्यदेवेन देवानुचरस्य वाचं निशम्य, तदध्यासितकातराक्ष्या धेन्वा निरीक्ष्यमाणेन सुतरां दयालुना पुनः अपि ऊचे ॥ ५२ ॥

शिवानुचरस्य वाक्यं निशम्य सिंहाक्रमणेन व्याकुलाक्ष्या गवा निरीक्ष्यमाणः दयार्द्रान्तःकरणः नृपः पुनरब्रवीत् ॥ ५२ ॥

भा०–राजा दिलीप शिवजीके अनुचरकी यह बात सुनकर उसके आक्रमणसे डरे हुए नेत्रोंवाली गायको देखता हुआ (वह) दयालु फिरभी बोला ॥ ५२ ॥

अध्यासितम्=अधि+आस्+क्त । निरीक्ष्यमाणः=निर्+ईक्ष्+शानच् ।

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ॥
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥ ५३ ॥

अन्वयः । किल, क्षतात् त्रायते इति उदग्रः क्षत्रस्य शब्दः भुवनेषु रूढः (अस्ति) तद्विपरीत-वृत्तेः (क्षत्रस्य, मम वा) राज्येन किम् (अस्ति) वा उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किम् (अस्ति) ५३

वाच्यप० । किल क्षतात् त्रायते इति उदग्रेण क्षत्रस्य शब्देन भुवनेषु रूढेन (भूयते) तद्विपरी-तवृत्तेः (मम) राज्येन किं (भूयते) वा उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किं (भूयते) ॥ ५३ ॥

किल नाशात्त्रायत इति क्षत्रवर्णस्य उन्नतः क्षत्रशब्दः लोकेषु प्रसिद्धिं गतः तस्मात् विरुद्धव्यापारस्य पुंसः शासनेन किम् ? जुगुप्सामलिनैः प्राणैर्वा किम् ? ॥ ५३ ॥

भा०-निश्चय जो नाशसे रक्षाकरताहै यह क्षत्रीका बडा शब्द (चौदहों) भुवनोंमें विख्यातहै तिस्से विपरीतकर्म करने वालेके राज्यसे अथवा अपयशसे मलीन हुए प्राणोंसे क्या है ॥ ५३ ॥

त्रैङ् पालने=त्रायते । तत्रे । अत्रायत । त्रातुम् । त्रात्वा । त्राणः-त्रातः । परित्राणम् । रूढः=रुह+क । उपक्रोश=उप्+क्रुश्+घञ् । मलीमस=मल+ईमसच् ।

कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम् ॥
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः । तु, अन्यपयस्विनीनां विश्राणनात् च महर्षेः अनुनयः कथं शक्यः (अस्ति)(हि) इमां (धेनुं) सुरभेः (कामधेनोः) अनूनाम् अवेहि, त्वया अस्यां प्रहृतं रुद्रौजसा तु (अस्ति, न तु स्वयम्) ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । तु, अन्यपयस्विनीनां विश्राणनात् च महर्षेः अनुनयेन कथं शक्येन (भूयते) प्रहृतेन (अभूयत) ॥ ५४ ॥

अन्यघटोध्नीनां दानात् महर्षेः क्रोधापनयः कथं नु शक्यः ? हि इमां नन्दिनीं कामधेनोस्तुल्यां जानीहि, महेश्वरसामर्थ्येन त्वयास्यां नन्दिन्यामाक्रमणं कृतम् ॥ ५४ ॥

भा०-और दूसरी गउओंके देनेसे मुनिकी शान्ति किसप्रकार हो सक्ती है ? जिस्से कि इस गऊको तू कामधेनुसे कमती मत जान तेरा इसमें आक्रमण शिवजीके प्रताप्से हुआ है ॥ ५४ ॥

अनुनयः=अनु+नी+अच् । अनूनाम्=अन्+ऊन । अच्+टाप् ।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ॥
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥ ५५ ॥

अन्वयः । मया स्वदेहार्पणनिष्क्रियेण सा इयं (गौः) भवत्तः मोचयितुं न्याय्या (अस्ति) एवम् (अमुना, प्रकारेण) तव पारणा विहता न स्यात्, मुनेः क्रियार्थः च अलुप्तः भवेत् ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । मया स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण तया अनया (गवा) भवत्तः मोचयितुं न्याय्यया (भूयते) एवं तव पारणया विहतया न भूयेत, मुनेः क्रियार्थेन च अलुप्तेन भूयेत ॥ ९९ ॥

सेयं धेनुर्मया स्वदेहदानविनिमयेन त्वत्तः मोचयितुं न्याय्या । एवं कृते सति तव पारणा विहता न स्यात् वसिष्ठस्य होमादिप्रयोजनं चालुप्तं भवेदिति सरलार्थः ॥ ९९ ॥

भा०—मुझे अपने देहके अर्पणके बदलेसे प्रसिद्ध इस गऊको तुझसे छुडाना उचित है इसप्रकार तेरी पारणाभी नहीं रुकैगी और मुनिकी क्रियाभी लुप्त न होगी ॥ ९९ ॥

विहता=वि+हन्+क्त+टाप् । अलुप्तः=अ+लुप्+क्त ।

भवानपीदं परवानवैति महान्हि यत्नस्तव देवदारौ ॥
स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥५६॥

अन्वयः । हि देवदारौ तव महान् यत्नः (अतः) परवान् भवान् अपि इदम् अवैति (यत्) रक्ष्यं विनाश्य स्वयं अक्षतेन (सता) नियोक्तुः अग्रे स्थातुं हि न शक्यम् ॥ ९६ ॥

वाच्यप० । महता यत्नेन (भूयते) परवता भवता अवेयते स्वयम् अक्षतः (कोपि न) स्थातुं शक्नोति ॥ ९६ ॥

किं बहुना स्वामिपरतन्त्रो भवानपि इदं वक्ष्यमाणवचनं जानाति यस्मात्तव देवदारुरक्षणे महान्प्रयासः । रक्षणीयं वस्तु विनाशं प्रापय्य स्वयमव्रणेन सेवकेन प्रभोरग्रे स्थितिं कर्तुं शक्यं न हीति सरलार्थः ॥ ९६ ॥

भा०—पराधीन तु भी इसको जान्ताहै कारण कि देवदारुकी रक्षामें तेरा अधिक यत्नहै कि रक्षा करनेकी वस्तुको आप व्रणरहित हो नष्ट कराकर स्वामीके सामने खडा नहीं हुआ जाता ॥ ९६ ॥

नियोक्तुः=नि+युज्+तृच् । शक्यम्=शक्+भावे यत् ।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः ॥
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥ ५७॥

अन्वयः । किम् अपि अहं चेत् तव अहिंस्यः मतः (अस्मि) (तर्हि) (त्वं) मे यशः-शरीरे दयालुः भव, (कुतः) एकान्तविध्वंसिषु भौतिकेषु पिंडेषु खलु मद्विधानाम् अनास्था (भवति) ॥ ९७ ॥

वाच्यप० । किम् अपि मया चेत् तव अहिंस्येन मतेन (भूयते) (त्वया) मे यशःशरीरे दयालुना भूयताम्, (कुतः) एकान्तविध्वंसिषु भौतिकेषु पिंडेषु खलु मद्विधानाम् अनास्थया (भूयते) ॥ ९७ ॥

केनापि कारणेन चेत्तव दयनीयोहं तर्हि त्वं मे यशःशरीरे कृपालुः भव, हि मादृशानां ज्ञानिनां क्षणविनाशिषु पंचभूतविकारेषु शरीरेष्वपेक्षा नेति सरलार्थः ॥ ९७ ॥

भा०—और जो मैं तेरे मतमें मारनेके अयोग्य हूं तो तू मेरे यशरूपी शरीर विषे

दयालु हो (कारण कि) निश्चय विनाश होनेवाले इन पंचभूतोंके शरीरोंमें मुझ सरीखोंकी इच्छा नहीं होती ॥ ५७ ॥

विध्वंसिषु=वि+ध्वंस्+णिनि । ७ । भौतिकेषु=भूत+ठक् । ७ ।

संबन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते ॥
तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं संबन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥५८॥

अन्वयः । आभाषणपूर्वं संबंधं (जनाः) आहुः, सः (संबंधः) वनान्ते संगतयोः नौ (आवयोः) वृत्तः, तत् (संबंधित्वात्) भूतनाथानुग ! त्वं मे संबंधिनः प्रणयं विहंतुं न अर्हसि ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । आभाषणपूर्वः संबंधः (जनैः) उच्यते, तेन वनान्ते संगतयोः नौ वृत्तम्, तत् हे भूतनाथानुग ! त्वया मे संबंधिनः प्रणयः विहंतुं न अर्ह्यते ॥ ५८ ॥

सख्यस्य आलापं पूर्वकारणमाहुः स सम्बन्धः वनान्ते आवयोर्जातः, तस्माद्धे महादेवकिंकर ! मित्रस्य मे प्रार्थनां विनाशयितुं न योग्योसीति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०-पहले आलापकोही सम्बंध कहतेहैं सो वह (सम्बंध) हम दोनोंको वनमें मिलनेसे हुआ, इस कारण हे शिवानुचर तू मुझ सम्बंधीकी प्रार्थनाको उल्लंघन करनेके योग्य नहीं है ॥ ५८ ॥

वृत्तः=वृत्+क्त । प्रणयं=प्र+नि+अच् ।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः ॥
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ॥ ५९ ॥

अन्वयः । सद्यः प्रतिष्टंभविमुक्तबाहुः सः दिलीपः 'तथा इति' (तथास्तु) गाम् उक्तवते हरये न्यस्तशस्त्रः (सन्) आमिषस्य पिंडम् इव स्वदेहम् उपानयत् ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । सद्यः प्रतिष्टंभविमुक्तबाहुना तेन दिलीपेन 'तथा इति' गाम् उक्तवते हरये न्यस्तशस्त्रेण (सता) आमिषस्य पिंडः इव स्वदेहः उपानीयत ॥ ५९ ॥

एवम्भवत्वित्युक्तवते मृगेन्द्राय तत्कालप्रतिबंधाद्विमुक्तभुजो नरेन्द्रः मुक्तायुधः सन् स्वशरीरं मांसस्य कवलमिव तस्मै समर्पितवानिति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०-तत्काल बंधनसे खुलीबांहवाले राजा दिलीपने 'ऐसाही हो' यह वचन कहते हुए सिंहके निमित्त हाथियार त्यागन कर मांसके पिंडके समान अपना शरीर अर्पण किया ॥ ५९ ॥

आमिषस्य=आ+मिष्+क । ६ ।

तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम् ॥
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ॥ ६० ॥

अन्वयः। तस्मिन् क्षणे उग्रं सिंहनिपातम् उत्पश्यतः अवाङ्मुखस्य प्रजानां पालयितुः उपरि विद्याधरहस्तमुक्ता पुष्पवृष्टिः पपात ॥ ६० ॥

वाच्यपरि०। तस्मिन् क्षणे उग्रं सिंहनिपातम् उत्पश्यतः अवाङ्मुखस्य प्रजानां पालयितुः उपरि विद्याधरहस्तमुक्तया पुष्पवृष्ट्या पेते ॥ ६० ॥

तस्मिन्नवसरे तीव्रं सिंहनिपातमुत्प्रेक्षमाणस्य विचारयतोऽधोमुखस्य प्रजापतेर्दिलीपस्योपरि विद्याधराणां हस्तैर्मुक्ता कुसुमवृष्टिरपतदिति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–उसी समय सिंहके महाकूदनेकी प्रतीक्षा करते नीचेको शिर झुकाये प्रजाओंके पालन करनेवाले (राजा) के ऊपर विद्याधरोंके हाथसे छोडीहुई फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ६० ॥

उपरि=ऊर्ध्व+रिल्।

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन् ॥
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्॥६१॥

अन्वयः। (हे) वत्स ! उत्तिष्ठ इति अमृतायमानम् उत्थितं वचः निशम्य, उत्थितः (सन्) राजा अग्रतः स्वां जननीम् इव प्रस्रविणीं गां ददर्श सिंहम् न (ददर्श) ॥ ६१ ॥

वाच्यप०। हे वत्स उत्तिष्ठ इति अमृतायमानम् उत्थितं वचः निशम्य, उत्थितेन (सता) राज्ञा अग्रतः स्वा जननी इव, प्रस्रविनी गौः ददृशे, सिंहः न (ददृशे) ॥ ६१ ॥

हे पुत्र उत्तिष्ठ, इत्यमृतरसपूर्णं वचो निशम्य राजा दिलीपः यदोत्थितः सन् पश्यति ततोऽग्रे स्वां मातरमिव कामदुघां ददर्श सिंहं न ददर्शेति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०–हे वत्स उठ ऐसा कहाहुआ अमृतमिला वचन सुन उठकर वह राजाने आगे अपनी माताकी तरह दूध टपकानेवाली गायको देखा सिंहको न देखा ॥ ६१ ॥

अग्रतः=अग्र+तसिल्। प्रस्रविणीं=प्र+स्नु+अप्+इनि+ङीप्।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि ॥
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः॥६२॥

अन्वयः। धेनुः विस्मितं तम् उवाच, साधो ! मया मायाम् उद्भाव्य (त्वं) परीक्षितः असि ऋषिप्रभावात् मयि अन्तकः अपि प्रहर्तुं प्रभुः न (अस्ति) उत अन्यहिंस्राः किं (स्युः) ॥६२॥

वाच्यप०। धेन्वा विस्मितः सः ऊचे, हे साधो ! अहं त्वां परीक्षितवती अन्तकेनापि प्रभुणा न भूयते ॥ ६२ ॥

नन्दिनी आश्चर्यान्वितं नृपमुवाच साधो ! मया मायामुद्भाव्य त्वं परीक्षितोऽसि वसिष्ठप्रतापान्मयि कालोऽपि प्रहर्तुं न समर्थः अन्ये हिंसकाः जीवाः किमुतेति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–नन्दिनी आश्चर्यको प्राप्तहुए राजासे बोली हे साधो ! मैंने मायाको रचकर

तेरी परीक्षा ली है ऋषिके प्रभावसे मुझमें प्रहार करनेको कालका भी सामर्थ्य नहीं है और हिंसकोंकी तो कैसे हो ॥ ६२ ॥

माया=मा+य उणादि । उद्भाव्य=उत्+भू+णिच्+ल्यप् । अन्तकः=अन्त+ण्वुल् ।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते पुत्र वरं वृणीष्व ॥
न केवलाना पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः । पुत्र गुरौ भक्त्या, मयि अनुकंपया च, (अहम्) ते प्रीता अस्मि, (त्वम्) वरं वृणीष्व, (त्वम्)मां केवलानां पयसां प्रसूतिं न अवेहि, (किं तु) प्रसन्नां (मां) कामदुघां (अवेहि) ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । हे पुत्र ! गुरौ भक्त्या, मयि अनुकंपया च, (मया) ते प्रीतया भूयते, (त्वया) वरः व्रियताम्, (त्वया) अहं केवलानां पयसां प्रसूतिः न अवेये, (किन्तु) प्रसन्ना (अहं)कामदुघा (अवेये) ॥ ६३ ॥

वत्स ! गुरौ भक्त्या, मयि दयया च तुभ्यं प्रसन्नास्मि देवेभ्यो वरणीयमर्थं स्वीकुरु, मां केवलानां दुग्धानां दात्रीं न विद्धि, किन्तु यदा प्रसन्ना भवामि तदा मनोभिलषितमर्थं ददामीति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-हे वत्स गुरुमें भक्ति और मेरेमें दया करनेसे मैं तुझपर प्रसन्न हूं तू वर मांग; मुझे केवल दूधकी ही देनेवाली मत जान किंतु प्रसन्न हुई मुझको कामनाओंकी देनेवाली जान ॥ ६३ ॥

वरं=वृ+अच् । वृणीष्व=वृ भजने । वृणीते । वव्रे । अवृणीत । अवरिष्ट-अवरीष्ट-अवृत । कर्मणि व्रियते । सनि विवरिषते । कृ० वरणीयम् । वरणम् । वृतिः । वारितव्यम्-वरीतव्यम् । प्रवृत्य । वार्य्यम् । व्रियमाणः ।

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः ॥
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥ ६४ ॥

अन्वयः । ततः मानितार्थी स्वहस्तार्जितवीरशब्दः सः (भूवल्लभः) हस्तौ समानीय वंशस्य कर्त्तारम् अनंतकीर्तिं तनयं सुदक्षिणायां ययाचे ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । ततः मानितार्थिना स्वहस्तार्जितवीरशब्देन तेन, हस्तौ समानीय वंशस्यकर्त्ता अनन्तकीर्त्तिः तनयः सुदक्षिणायां ययाचे ॥ ६४ ॥

ततः संमानितयाचकः स्वभुजार्जितवीरशब्दः दिलीपोंजलिं बद्ध्वा कुलप्रवर्तयितारमनन्तकीर्तिमन्तं पुत्रं सुदक्षिणायां ययाचे इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-तब अर्थियोंके सत्कार करने और अपनी भुजाओंसे वीरपदवी पाने वाले उस दिलीपने हाथ जोडकर वंशविस्तार करनेवाले अनन्त कीर्तिमान् पुत्रकी सुदक्षिणामें होनेकी प्रार्थना की ॥ ६४ ॥

समानीय=सम्+आ+नी+ल्यप्। ययाचे=याच्+लिट्। याचति-ते। अयाचीत्-अयाचीद्-अयाचिष्ट। कर्म. याच्यते। णिचि याचयति-ते। याचनीयम्। याचकः। याच्यम्। याचन्-याचमानः।

संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा॥
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश॥ ६५॥

अन्वयः। सा पयस्विनी (गौः) संतानकामाय राज्ञे कामं तथा इति प्रतिश्रुत्य, हे पुत्र! मदीयं पयः पत्रपुटे दुग्ध्वा (त्वम्) उपभुंक्ष्व, इति तं (दिलीपम्) आदिदेश॥ ६५॥

वाच्यप०। तया पयस्विन्या संतानकामाय राज्ञे कामं तथा इति प्रतिश्रुत्य, हे पुत्र! मदीयं पयः पत्रपुटे दुग्ध्वा, (त्वया) उपभुज्यताम्, इति (तया) सः आदिदिशे॥ ६५॥

सा नन्दिनी पुत्रकामाय तस्मै दिलीपाय तथास्त्विति तं प्रतिज्ञाय, हे वत्स! मदीयं दुग्धं पलाशनिर्मिते पात्रे दुग्ध्वा पिबेति आदिदेशेति सरलार्थः॥ ६५॥

भा०-वह दुधारी गायनें संतान चाहनेवाले राजाके निमित्त ऐसा ही होगा यह प्रतिज्ञा कर हे पुत्र मेरा दूध पत्तेके दौनेमें दुहकर पी ले इस प्रकार उस राजाको आज्ञा दी॥ ६५॥

पयस्विनी=पयस्+विनि+ङीप्। दुग्ध्वा=दुह्+क्त्वा।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः॥
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः॥६६॥

अन्वयः। मातः! वत्सस्य, होमार्थविधेः च, शेषम् तव औधस्यम् ऋषेः अनुज्ञाम् अधिगम्य, रक्षितायाः उर्व्याः षष्ठांशम् इव, उपभोक्तुम् इच्छामि॥ ६६॥

वाच्यप०। (मया) + + + इष्यते॥ ६६॥

तदा नृपः कथयति-हे मातः! वत्सपानस्य शेषभूतमग्निहोत्रावशिष्टञ्च तव पयः पृथिव्याः षष्ठभागमिव गुरोराज्ञां प्राप्य पातुमिच्छामि॥ ६६॥

भा०-हे मातः! वत्सके पी चुकने और होमक्रियासे बचा हुआ तेरा दूध ऋषिकी आज्ञाको लेकर रक्षा कीहुई पृथ्वीके षष्ठांशकी तरह भोगनेकी इच्छा करता हूं॥६६॥

अनुज्ञाम्=अनु+ज्ञा+अङ्।

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव॥
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण॥ ६७॥

अन्वयः॥ क्षितीशेन इत्थं विज्ञापिता वसिष्ठधेनुः प्रीततरा बभूव, तदन्विता (सती) हैमवतात् कुक्षेः अश्रमेण आश्रमं च प्रत्याययौ॥ ६७॥

वाच्यप०। क्षितीशेन इत्थं विज्ञापितया वसिष्ठधेन्वा प्रीततरया बभूवे, तदन्वितया (सत्या) हैमवतात् कुक्षेः अश्रमेण आश्रमः च प्रत्यायये॥ ६७॥

एवं दिलीपेन प्रार्थिता वसिष्ठस्य गौः भृशं संतुष्टा बभूव पश्चात्तेन च अनुगम्यमाना नगेन्द्रकन्दरात् सुखेन आश्रममाजगामेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–राजासे इस प्रकार कहीहुई वसिष्ठकी धेनु अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसके साथ हिमालयकी गुफासे श्रमरहित आश्रमको लौटी ॥ ६७ ॥

विज्ञापिता=वि+ज्ञा+ (णिच्) क्त टाप् च ।

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ॥
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ ६८ ॥

अन्वयः । प्रसन्नेन्दुमुखः नृपाणां गुरुः (दिलीपः) प्रहर्षचिह्नानुमितं तस्याः प्रसादं पुनरुक्तया इव वाचा गुरवे निवेद्य प्रियायै शशंस ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । प्रसन्नेन्दुमुखेन नृपाणां गुरुणा प्रसादचिह्नानुमितं तस्याः प्रसादं पुनरुक्तया इव वाचा गुरवे निवेद्य, प्रियायै शशंसे ॥ ६८ ॥

प्रसन्नचंद्राननः महीपतीनां गुरुर्दिलीपः यदा गुरुसमीपमागतस्तदा वसिष्ठेन मुखरागादिभिस्तस्या धनोः वरम् अनुग्रहं ज्ञातं पश्चाद्राजा गुरवे विज्ञाप्य सुदक्षिणायै वृत्तं कथितवानिति सरलार्थः॥६८॥

भा०–पूर्णचन्द्रमाकी समान मुखवाले राजोंके गुरु दिलीप हर्षके चिह्नोंसे अनुमान होनेवाली उसकी प्रसन्नताको पुनरुक्तिकी वाणीसे गुरुको निवेदन कर प्रियासे कहता हुआ ॥ ६८ ॥

निवेद्य=नि+विद्+ल्यप् ।

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम् ॥
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः ॥ ६९ ॥

अन्वयः । अनिन्दितात्मा सद्वत्सलः सः (भूपतिः) वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः अतितृष्णः (इव) वत्सहुतावशेषम्, नंदिनीस्तन्यं मूर्त्तं शुभ्रं यश इव पपौ ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । अनिन्दितात्मना सद्वत्सलेन तेन वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञेन अतितृष्णेन (इव) वत्सहुतावशेषं नंदिनीस्तन्यं मूर्त्तं शुभ्रं यशः इव पपे ॥ ६९ ॥

प्रशंसितात्मा साधुवत्सलः नृपः वसिष्ठस्याज्ञामवाप्य वत्सपानस्य हवनस्य चावशिष्टं धेनोर्दुग्धं मूर्तिमत् शुभ्रं यश इवातितृष्णः सन्पपाविति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०–निन्दारहित आत्मावाले उस राजाने वशिष्ठकी आज्ञा ले बहुत प्यासे की समान बछडे और होम विधिसे बचे हुए नंदिनीके दूधको मूर्तिमान् शुभ्र यशकी समान पिया ॥ ६९ ॥

हुतस्य=हु+भावे क्त । अवशेष=अव+शिष+घञ् । स्तन्यं=स्तन+यत् ।

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य ॥
तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः॥७०॥

अन्वयः । वशी वसिष्ठः प्रातः यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य, तौ दम्पती स्वां राजधानीं प्रति प्रस्थापयामास ॥ ७० ॥

वाच्यप० । वशिना वसिष्ठेन प्रातः यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य, तौ दम्पती स्वां राजधानीं प्रति प्रस्थापयाञ्चक्राते ॥ ७० ॥

गुरुः प्रातर्यथोक्तस्य गोसेवारूपव्रतस्य, पारणान्ते यात्रासम्बन्धिकल्याणयुक्तमाशीर्वचनं विधाय सुदक्षिणादिलीपौ स्वां पुरीम् अयोध्यां प्रति प्रस्थापयामासेति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०—जितेन्द्रिय वशिष्ठजी प्रातःकाल विधिपूर्वक व्रत समाप्त करनेके उपरान्त मंगल मार्गका आशीर्वाद देकर उन दोनों स्त्री पुरुषोंको उनकी राजधानीको विदा करते हुए ॥ ७० ॥

वशी=वश्+इनि ।

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च ॥
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मगंलोदग्रतरप्रभावः ॥ ७१ ॥

अन्वयः । नृपः हुतं हुताशम् भर्तुः अनंतरम् अरुन्धतीञ्च, सवत्सां धेनुं च, प्रदक्षिणीकृत्य सन्मंगलोदग्रतरप्रभावः (सन्) प्रतस्थे ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । नृपेण हुतं हुताशं भर्तुः अनंतरम् अरुन्धतीं च, सवत्सां धेनुं च, प्रदक्षिणीकृत्य, सन्मंगलोदग्रतरप्रभावेण (सता) प्रतस्थे ॥ ७१ ॥

नरेन्द्रः तं हुताग्निं वसिष्ठस्य परिक्रमानन्तरमरुन्धतीं मुनिपत्नीञ्च सवत्सां गाञ्च परिक्रम्य यात्रा-सम्बन्धिस्वस्तिवाचनमंगलाचारैरुदग्रतरप्रतापः सन् निजराजधानीम्प्रति जगामेति सरलार्थः ॥७१॥

भा०—राजाने आहुतियुक्त अग्नि, वशिष्ठ, अरुन्धती तथा बछडे सहित गायकी प्रदक्षिणा करके अच्छे मंगलोंसे अधिक प्रतापवान् हो प्रस्थान किया ॥ ७१ ॥

भर्तुः=भृ+तृच् । ६ ।

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः ॥
ययावनुद्धातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन ॥ ७२ ॥

अन्वयः । धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः सः (भूमिपः) श्रोत्राभिरामध्वनिना अनुद्धातसुखेन रथेन स्वेन पूर्णेन मनोरथेन इव, मार्गं ययौ ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । धर्मपत्नीसहितेन सहिष्णुना तेन श्रोत्राभिरामध्वनिना अनुतद्धासुखेन रथेन स्वेन पूर्णेन मनोरथेन इव, मार्गः यये ॥ ७२ ॥

व्रतादिकष्टसहनशीलः स नृपः सुदक्षिणासहितः श्रवणसुखकरशब्देन पाषाणकंटकादिप्रतिघातरहितेनानन्ददायकेन रथेन मार्गमलंघयत् मन्ये असौ स्वमेव पूर्णम् अव्याहतं मनोरथमारुह्य ययाविति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०—धर्मपत्नीके सहित सहनशील वह राजा कानोंको प्रिय ध्वनिवाले, बेरोक-टोक चलनेसे सुखके देनेवाले रथपर अपने पूर्ण मनोरथकी समान मार्गमें चला॥७२॥

सहिष्णुः=सह्+इष्णुच् । अनुद्घातः=न+उत्+हन्+घञ् ।

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शितांगम् ॥
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ॥ ७३ ॥

अन्वयः । प्रजाः अदर्शनेन आहितौत्सुक्यम् प्रजार्थव्रतकर्शितांगं तं तृप्तिम् अनाप्नुवद्भिः नेत्रैः नवोदयम् औषधीनां नाथम् इव पपुः ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । प्रजाभिः अदर्शनेन आहितौत्सुक्यः प्रजार्थव्रतकर्शितांगः सः तृप्तिम् अनाप्नुवद्भिः नेत्रैः नवोदयः औषधीनां नाथः इव पपे ॥ ७३ ॥

प्रवासहेतुनानवलोकनेन प्राप्तौत्कण्ठ्यं पुत्रार्थेन व्रतेन कृशीकृतशरीरं तं नृपं प्रकृतयः पिपासितैर्नेत्रैरोषधीनां पतिं चंद्रमिव पपुः इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०—प्रजाके लोगोंने न देखनेसे उत्कंठा करानेवाले संतानके व्रतसे कर्शित शरीर उस राजाको अतृप्तनेत्रोंसे नये उदय हुए चंद्रमाकी समान पीया ॥ ७३ ॥

कार्शितं=कृश्+ (णिच्) क्त । अनाप्नुवद्भिः=अन्+आप्+शतृ । ३ ।

पुरंदरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः ॥
भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ॥ ७४ ॥

अन्वयः । पुरंदरश्रीः पौरैः अभिनन्द्यमानः सः (नृपः) उत्पताकं पुरं प्रविश्य, भुजंगेन्द्रसमानसारे भुजे भूमेः धुरं भूयः आससंज ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । पुरंदरश्रिया पौरैः अभिनद्यमानेन तेन, उत्पताकं पुरं प्रविश्य, भुजंगेन्द्रसमानसारे भुजे भूमेः धूः भूयः आससंजे ॥ ७४ ॥

शक्रतुल्यलक्ष्मीकः स राजा प्रजाभिः प्रसादितः सन्नुच्छ्रितध्वजम्पुरं प्रविश्य शेषतुल्यबले भुजे पुनरपि पृथिव्याः धुरं धृतवानिति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०—इन्द्रसी संपत्तिवाला नगरवासियोंसे सत्कृत हो वह राजा उठी झंडियोंवाले पुरमें प्रवेश करके सर्पराजकी समान बलवाली भुजाओंमें फिर पृथ्वीका बोझ धारण करताहुआ ॥ ७४ ॥

अभिनन्द्यमानः=अभि+नन्द्+शानच् । आससञ्ज=आ+सञ्ज लिट् । सज्जति । ससञ्ज । असञ्जत्—असांक्षीत् । भावे सज्यते । कृ० सञ्जनीयम् । संगः । सक्तः । प्रसज्य । सजन् । सङ्क्ष्यन् ।

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् ॥
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥ ७५ ॥

अन्वयः । अथ अत्रेः नयनसमुत्थं ज्योतिः द्यौः इव, वह्निनिष्ठ्यूतम् ऐशं तेजः सुरसरित् इव, नरपतिकुलभूत्यै राज्ञी गुरुभिः लोकपालानुभावैः अभिनिविष्टं गर्भम् आधत्त ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । दिवा इव सुरसरिता इव राज्ञ्या अभिनिविष्टः गर्भः आधीयत ॥ ७९ ॥

यथा द्यौः अत्रेर्मुनेर्नेत्रोत्पन्नं सोमं धृतवती, यथा गंगा हुताशनप्रक्षिप्तं स्कंदस्य उत्पादकं शैवं तेजः दधार, तथैव सुदक्षिणा दिलीपकुलप्रतिष्ठायै महद्भिरष्टलोकपालानां तेजोभिरनुप्रविष्टं गर्भं धृतवतीति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—अत्रिके नेत्रसे उत्पन्न हुए चंद्रमाको आकाशकी समान, अग्निके त्यागन किये रुद्रतेजको गंगाजीकी समान, लोकपालोंके महाप्रतापसे पूर्ण गर्भको रानीनें राजाके वंशकी प्रतिष्ठाके निमित्त धारण किया ॥ ७९ ॥

द्यौः=द्युत्+डोस् । ज्योतिः=द्युत्+इसिन् । निष्ठ्यूतं=नि+ष्ठिव्+ क्त ।

इति श्रीमज्ज्वालाप्रसादमिश्रविरचितायां रघुवंशव्याख्यायां भावार्थदीपिका-
समाख्यायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ।

अथेप्सितं भर्तुरुपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् ॥
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य संततेः सुदक्षिणा दौर्हृदलक्षणं दधौ ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ सुदक्षिणा भर्तुः ईप्सितम् उपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् इक्ष्वाकुकुलस्य संततेः निदानं दौर्हृदलक्षणं दधौ ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ सुदक्षिणया दधे ॥ १ ॥

अथ राज्ञी नृपस्य मनोभिलषितं प्राप्तोदयं सखीजनदृष्टीनां चंद्रिकाप्रादुर्भावमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेर्मूलकारणं दौर्हृदलक्षणं धृतवतीति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—तब पतिके इच्छित प्राप्तउदयवाले सखीजनोंकी नेत्रोंके चांदनी मुखवाले इक्ष्वाकुकुलकी संततिके मुख्य कारण गर्भ लक्षणको सुदक्षिणाने धारण किया ॥ १ ॥

कौमुदी=कुमुद+अण्+ङीप् । दौर्हृद+दुर+हृद्+अण् ।

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ॥
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥ २ ॥

अन्वयः । (जनैः) शरीरसादात् असमग्रभूषणा लोध्रपांडुना मुखेन सा (सुदक्षिणा) शशिना तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शर्वरी इव अलक्ष्यत ॥ २ ॥

वाच्यप० । असमग्रभूषणां तां प्रभातकल्पां विचेयतारकां शर्वरीम् इव (जनाः) अलक्षयन् ॥ २ ॥

तदा सा शरीरकार्श्यात् परिमिताभूषणा बभूव, पाण्डुवर्णं मुखं संजातं, यथा प्रभातकल्पा रात्रिरल्पकान्तिना सोमेन विरलनक्षत्रा भवति तथैव सा बभूवेति सरलार्थः ॥ २ ॥'

भा०-शरीरके दुबला होनेसे थोडे भूषण पहरनेवाली लोध्रकी समान पीले मुख होजानेसे वह सुदक्षिणा चंद्रमाके न्यून प्रकाशसे थोडे तारोंवाली प्रातःकालकी रात्रिकी समान देखी गई ॥ २ ॥

सादात्-सद=घञ् ५ ।

तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ॥
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः । क्षितीश्वरः मृत्सुरभि तदाननं रहसि उपाघ्राय, शुचिव्यपाये पयोमुचां पृषतैः सिक्तं वनराजिपल्वलं करी इव, तृप्तिं न आययौ ॥ ३ ॥

वाच्यप० । क्षितीश्वरेण मृत्सुरभि तदाननं रहसि उपाघ्राय, शुचिव्यपाये पयोमुचां पृषतैः सिक्तं वनराजिपल्वलं करिणा इव, तृप्तिः न आयये ॥ ३ ॥

यथा हि ग्रीष्मावसाने मेघानां विंदुभिः सिक्तं वनभूमेः अल्पसरोवरं घ्रात्वा गजः तृप्तिं न समधिगच्छति, तथा नृपोप्येकान्ते मृदा सुगंधियुक्तं तस्या मुखं समाघ्राय तृप्तिं न ययाविति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०-राजा मिट्टीकी गन्धिवाले उसके मुखको एकान्तमें सूंघकर ग्रीष्मके बीतनेपर बादलोंकी बूंदोंके छिडके हुए वनके उथले कुंडोंको हाथीकी समान (सूंघकर तृप्तिको न प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥

उपाघ्राय=उप+आ, घ्रा+ल्यप् । पृषतैः=पृष्+अतन् । सिक्तम्=सिच्+क्त । पल्वलम्=पल्+वल् (उणादि)

दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं दिगन्तविश्रान्तरथो हि तत्सुतः ॥
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे मनो बबन्धान्यरसान्विलङ्घ्य सा ॥ ४ ॥

अन्वयः । हि (यस्मात्) दिगंतविश्रांतरथः तत्सुतः, मरुत्वान् दिवम् इव, भुवं भोक्ष्यते अतः (एव) सा (सुदक्षिणा) अन्यरसान् विलंघ्य प्रथमं तथाविधे अभिलाषे मनः बबन्ध ॥ ४ ॥

वाच्यप० । हि दिगन्तविश्रान्तरथेन तत्सुतेन, मरुत्वता द्यौः इव भूः भोक्ष्यते, अतः तया अन्यरसान् विलंघ्य प्रथमं तथाविधे अभिलाषे मनः बबन्धे ॥ ४ ॥

यस्मात् चक्रवर्ती तस्याः पुत्रः मघवा स्वर्गमिव सम्पूर्णां वसुधां भोक्ष्यते । अतः प्रथमं सा राज्ञी ताथविधे मृद्भक्षणरूपाभिलाषेऽन्यरसान् विहाय मनो विदधाविति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०–जिस कारणसे कि चक्रवर्ती उसका पुत्र जैसे इन्द्र स्वर्गको भोगता है ऐसे पृथ्वीको भोगेगा इस कारण वह रानी और रसोंको छोडकर प्रथम उस प्रकारके अभिलाष (मट्टीखाने) में मनको बांधती हुई ॥ ४ ॥

मरुत्वान्=मरुत्+मतुप् ।

न मे ह्रिया शंसति किंचिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी॥
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोशलेश्वरः ॥५॥

अन्वयः । मागधी ह्रिया मे किंचित् (अपि) ईप्सितं न शंसति, (सा) केषु वस्तुषु स्पृहावती (अस्ति) इति उत्तरकोशलेश्वरः आदृतः (सन्) अनुवेलं प्रियासखीः पृच्छति स्म ॥ ५ ॥

वाच्यप० । मागध्या ह्रिया मे किंचित् न शस्यते, (तया) केषु वस्तुषु स्पृहावत्या (भूयते) इति उत्तरकोशलेश्वरेण आदृतेन (सता) अनुवेलं प्रियासख्यः पृच्छयन्ते स्म ॥ ५ ॥

राज्ञी लज्जया मह्यं किंचदपि मनोरथं न कथयति न जाने तस्या अभिलाषा केषु वस्तुषु वर्तत इत्युत्तरकोशलेश्वरः नृपः प्रियायाः सखीजनान् निर्वन्धेन पृच्छति स्म इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०–रानी सुदक्षिणा मुझसे लज्जाके कारण कुछभी नहीं कहती और किन वस्तुओंमें अभिलाषावाली है, इस प्रकार उत्तरकोशलका राजा आदरपूर्वक क्षणक्षण में प्यारीकी सखियोंसे पूछता था ॥ ५ ॥

मागधी=मगध+अण्+ङीप् । स्पृहावती=स्पृहा+मतुप्+ङीप् ।

उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ॥
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ॥६॥

अन्वयः । सा (सुदक्षिणा) दोहददुःखशीलताम् उपेत्य यत् एव वव्रे, तत् (एव) आहृतम् अपश्यत्, हि (यतः) अधिज्यधन्वनः अस्य भूपतेः त्रिदिवे अपि इष्टं (वस्तु) अनासाद्यं न अभूत् ॥६॥

वाच्यप० । तया दोहददुःखशीलतां उपेत्य, यत् एव वव्रे, तत् आहृतम् अदृश्यत, हि अधिज्यधन्वनः अस्य भूपतेः त्रिदिवे अपि इष्टेन अनासाद्येन न अभावि ॥ ६ ॥

तां कष्टां गर्भावस्थाम् आसाद्य, सुदक्षिणा सखीमुखेन यदेवाभिलषितं प्रकाशयामास, स्वर्लोकलभ्यमपि तत् भर्तुः प्रभावात् तत्क्षणमेव उपनीतं ददर्श, का कथा मनुष्येषु दिवौकसोपि तत्पत्युः पराक्रमभीताः सपदि तस्याः दोहदं सम्पादयामासुः इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०-वह सुदक्षिणा गर्भवतीकी चाहसे दुःखवाले भावको प्राप्त हो जो जो कहती हुई सो सो आया हुआ देखती हुई, जिस कारणसे कि धनुषधारी राजाकी अभिलषित वस्तु स्वर्गमेंभी दुर्लभ न थी ॥ ६ ॥

दोहदं=दोह+दा+क । अनासाद्यम्=अन्+आ+सद्+यत् ।

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा रराज सा ॥
पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव संनद्धमनोज्ञपल्लवा ॥ ७ ॥

अन्वयः । सा (सुदक्षिणा) क्रमेण दोहदव्यथां निस्तीर्य च प्रचीयमानावयवा (सती) पुराणपत्रापगमात् अनंतरं सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा लता इव, रराज ॥ ७ ॥

वाच्यप० । तया क्रमेण दोहदव्यथां निस्तीर्य च, प्रचीयमानावयवया (सत्या) पुराणपत्रापगमात् अनंतरं सन्नद्धमनोज्ञपल्लवया लतया इव, रेजे ॥ ७ ॥

यथा हि वसन्तकाले लता जीर्णपर्णानि त्यक्त्वा मनोरमैः नवपल्लवैः परिशोभते, तथा राज्ञी क्रमेण तां कष्टकरीं गर्भावस्थाम् अतिक्रम्य, अपूर्वरूपां पुष्टिमापद्यमानैः अवयवैः दिदीपे । इति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-वह सुदक्षिणा क्रमसे दोहददुःखको बिताकर पुष्टअंगोंसे पुराने पत्ते गिर जानेपर नये आये हुए पत्तोंवाली लताकी समान शोभित हुई ॥ ७ ॥

निस्तीर्य=निर्+तॄ+ल्यप् । सन्नद्धाः=सम्+नह्+क्त ।

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम् ॥
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियम् ॥ ८ ॥

अन्वयः । दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरम् आनीलमुखं तदीयं स्तनद्वयं भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पंकजकोशयोः श्रियं तिरश्चकार ॥ ८ ॥

वाच्यप० । दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरेण आनीलमुखेन तदीयेन स्तनद्वयेन भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पंकजकोशयोः श्रीः तिरश्चक्रे ॥ ८ ॥

सुन्दरे पद्मकोशद्वये कृष्णवर्णभ्रमरसंयोगात् यादृशी शोभा भवति, तस्याः पीवरोन्नतकुचद्वयेपि कृष्णवर्णसंयोगात् कापि अनिर्वचनीया शोभा आजायतेति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-कुछ दिन बीतने पर उसके बृहत् और नीलेमुखवाले दोनों स्तन भौंरोंसे सेवित कमलकलीकी शोभाको तिरस्कार करते हुए ॥ ८ ॥

अभिलीनयोः=अभि+ली+क्त ।

निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम् ॥
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्त्वां महिषीममन्यत ॥ ९ ॥

अन्वयः। निधानगर्भां सागरांबराम् इव, अभ्यन्तरलीनपावकां शमीम् इव, अन्तःसलिलां सरस्वतीं नदीम् इव, नृपः ससत्त्वां महिषीम् अमन्यत ॥ ९ ॥

वाच्यप०। निधानगर्भा सागरांबरा इव, अभ्यन्तरलीनपावका शमी इव, अंतःसलिला सरस्वती नदी इव, नृपेण महिषी ससत्त्वा अमन्यत ॥ ९ ॥

दिलीपः राज्ञीगर्भनिहितं सुतं धरागर्भनिहितम् अमूल्यं रत्नमिव, शमीगर्भनिहितं तेजोमयं वह्निमिव, सरस्वतीगर्भनिहितं निर्मलं प्रवाहमिव मन्यते स्म ॥ ९ ॥

भा०–गर्भमें ऋद्धि रखनेवाली पृथ्वीकी समान, भीतर अग्नि रखनेवाली शमीकी समान, भीतर जलवाली सरस्वतीकी समान, राजाने गर्भवती रानीका सन्मान किया ॥ ९ ॥

सरस्वती=सृ+असुन्+मतुप्+ङीप्।

प्रियानुरागस्य मनःसमुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसंपदाम्॥
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः॥१०॥

अन्वयः। धीरः सः (प्रजेश्वरः) प्रियानुरागस्य, मनःसमुन्नतेः, भुजार्जितानां दिगंतसंपदां च, धृतेः च सदृशीः यथाक्रमम् पुंसवनादिकाः क्रियाः व्यधत्त ॥ १० ॥

वाच्यप०। धीरेण तेन प्रियानुरागस्य, मनःसमुन्नतेः, भुजार्जितानां दिगंतसम्पदां, धृतेः च सदृश्यः यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रियाः व्यधीयन्त ॥ १० ॥

सुदक्षिणायां यावान् प्रेमा मनसः यावत् औदार्य्यम् संसारविजयप्राप्तानामैश्वर्याणां यावान् प्रभावः चिरात् सुतदर्शनतृष्णया च यावती आनंदप्राप्तिः तावता एव विभवेन दिलीपः तस्याः पुंसवनादिकान् गर्भसंस्कारान् चकारेति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०–धैर्यवान् उस राजाने प्रियाके अनुराग, मनकी उन्नति, और भुजाके प्राप्त किये हुए पृथ्वीके ऐश्वर्योंके अनुसार, तथा धैर्यके अनुसार, यथाक्रम पुंसवनादि संस्कारों को किया ॥ १० ॥

पुंसवनम्=पुमस्+सू+ल्युट्।

सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात्प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः॥
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः॥ ११॥

अन्वयः। गृहागतः नृपः सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया उपचारांजलिखिन्नहस्तया पारिप्लवनेत्रया तया (सुदक्षिणया) ननन्द ॥ ११ ॥

वाच्यप०। गृहागतेन नृपेण सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया उपचारांजलिखिन्न-हस्तया पारिप्लवनेत्रया तया ननन्दे ॥ ११ ॥

लोकपालानुभावैः युक्तः स गर्भः क्रमेण तथा गुरुभारो जातः यथा गृहप्राप्तस्य दिलीपस्य आदरार्थं पर्यंकात् उत्थानेपि राज्ञी प्रयासं लब्धवती, नृपस्य अभिवादनार्थं अंजलिबंधनेपि करौ

शिथिलौ बभूवतुः चक्षुषी निमीलनात् अस्थैर्यं प्रापतुः तद्दर्शनेन नृपः ननन्द इति सरलार्थः ॥११॥

भा०—घरमें प्राप्त हुए राजाको लोकपालोंके अंश धारण किये गर्भके भारसे यत्नपूर्वक आसन छोडनेकी इच्छा तथा सन्मान की अंजलीसे शिथिल हाथ, और चंचलनेत्रवालीसे आनंदहुआ ॥ ११ ॥

गौरव=गुरु+अण् ।

कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि ॥
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ददर्श काले दिवमभ्रितामिव॥१२॥

अन्वयः । अथ कुमारभृत्याकुशलैः आप्तैः भिषग्भिः गर्भभर्मणि अनुष्ठिते, प्रतीतः पतिः काले प्रसवोन्मुखीं प्रियाम् अभ्रितां दिवम् इव, ददर्श ॥ १२ ॥

वाच्यप० । अथ कुमारभृत्याकुशलैः आप्तैः भिषग्भिः गर्भभर्मणि अनुष्ठिते, प्रतीतेन पत्या काले प्रसवोन्मुखी प्रिया अभ्रिता द्यौः इव, ददृशे ॥ १२ ॥

यैः यैः उपायैः गर्भिणी क्षेमेण सुतं प्रसूते, चिकित्सानिपुणाः सद्वैद्याः तांस्तान् उपयान् चक्रुः, राजा दशमे मासि आसन्नप्रसवां प्रियां वर्षणोन्मुखीं नभस्थलीमिव ददर्शेति सरलार्थः ॥१२॥

भा०—बालचिकित्सामें चतुर सम्यक् यत्न करनेवाले वैद्योंसे गर्भ पुष्ट होता देख प्रसन्न हुए राजाने शीघ्र पुत्र जननेवाली रानीको समयपर बादलोंवाले आकाशकी समना देखा ॥ १२ ॥

कुमारभृत्या=कुमार+भृ+क्यप् । भिषग्भिः= । भिषज्—क्विप् ।

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसंपदम् ॥
असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्॥१३॥

अन्वयः । ततः शचीसमा (सुदक्षिणा) समये उच्चसंश्रयैः असूर्यगैः पंचभिः ग्रहैः सूचितभाग्यसंपदम् पुत्रं, त्रिसाधना शक्तिः अक्षयम् अर्थम् इव, असूत ॥ १३ ॥

वाच्यप० । ततः शचीसमया समये उच्चसंश्रयैः असूर्यगैः पंचभिः ग्रहैः सूचितभाग्यसम्पत् पुत्रः, त्रिसाधनया शक्त्या अक्षयः अर्थः इव, असूयत ॥ १३ ॥

यथा प्रभावोत्साहमन्त्रोत्पन्ना राजशक्तिः नृपस्य अविनश्वरमैश्वर्यं प्रसूते तथा इन्द्राणीसदृशी सुदक्षिणापि कीर्तिसम्पन्नं सुतम् असूत, तस्मिन् समये पञ्चग्रहाः उच्चस्थानस्थाः रवेः दूरवर्तितया प्राप्तोदयाश्च तस्य सौभाग्यं कथयामासुः इति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—तब इन्द्राणीकी समान सुदक्षिणाने समयपर सूर्यके साथ स्थितिको प्राप्त न हुए उच्चस्थानमें स्थित पांच ग्रहोंसे युक्त भाग्यकी सम्पत्ति दिखानेवाले पुत्रको (प्रभावमन्त्र और उत्साह) त्रिसाधना शक्तिसे उत्पन्नहुए अक्षय अर्थकी समान उत्पन्न किया ॥ १३ ॥

सूचिता=सूच+क्त । अक्षयम्=न+क्षि+अच् ।

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निरादरे ॥
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥१४॥

अन्वयः । दिशः प्रसेदुः मरुतः सुखाः ववुः, अग्निः प्रदक्षिणार्चिः (सन्) हविः आददे, (इत्थम्) सर्वं तत्क्षणं शुभशंसि बभूव, हि (यतः) तादृशां भवः लोकाभ्युदयाय (भवति) ॥ १४ ॥

वाच्यप० । दिग्भिः प्रसेदे, मरुद्भिः सुखैः ववे, अग्निना प्रदक्षिणार्चिषा (सता) हविः आददे सर्वेण तत्क्षणं शुभशंसिना बभूवे, हि तादृशां भवेन लोकाभ्युदयाय (भूयते)॥ १४ ॥

तदा सर्वा दिशः निर्मलभावं दधुः सुमधुराः वायवः वहन्ति स्म होमाग्निः प्रद०घृताहुतिं जग्राह तस्मिन्काले जगत् मंगललक्षणानि आविश्चकार, तथाविधाः जगन्मंगलाय एव जायन्ते इति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०–उस समय दिशा निर्मल हुईं, सुखदायक पवन चलने लगी, प्रदक्षिणकी शिखावाली अग्निने हवि ग्रहण की, इस प्रकार उस समय सवही शुभनिमित्त हुए, कारण कि ऐसोंका जन्म लोकके कल्याणके निमित्त होताहै ॥ १४ ॥

शुभशंसि=शुभ+शंस्+णिनि । प्रसेदुः=प्रसद्+लिट् ।

अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा ॥
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥ १५ ॥

अन्वयः । सुजन्मनः तस्य (बालकस्य) अरिष्टशय्यां परितः विसारिणा निजेन तेजसा सहसा निशीथदीपाः हतत्विषः (सन्तः) आलेख्यसमर्पिताः इव, बभूवुः ॥ १५ ॥

वाच्यप० । सुजन्मनः तस्य अरिष्टशय्यां परितः विसारिणा निजेन तेजसा सहसा निशीथदीपैः हतत्विड्भिः (सद्भिः) आलेख्यसमर्पितैः इव, बभूवे ॥ १५ ॥

तत्कालोत्पन्नस्य दिव्यतेजसः तस्य शिशोः देहकान्तिमण्डलेन सूतिकागृहस्थिताः अर्धरात्रे निष्पन्दोज्ज्वला दीपाः प्रभाहीनाः चित्रलिखिता इव जाता इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०–सुन्दर जन्मवाले उस बालकके सूतिकाघरके चारोंओर फैले हुए तेजसे एकसाथ ही अर्द्धरात्रिके समय दीप मंदज्योति होगये मानों चित्रकें लिखे हों ॥१५॥

अरिष्ट=अ+रिष+क्त । शय्या=शी+क्यप् । विसारिणा=वि+सृ+णिनि । आलेख्य=आ+लिख्+यत् । समर्पिताः=सम्+ऋ+ (णिचि) क्त ।

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम् ॥
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥ १६ ॥

अन्वयः । कुमारजन्म (इति) अमृतसंमिताक्षरं शंसते शुद्धान्तचराय जनाय भूपतेः त्रयम् एव अदेयम् आसीत्, शशिप्रभं छत्रम् (अदेयम् आसीत्) उभे चामरे च (अदेये, आस्ताम्) ॥ १६ ॥

वाच्यप० । शुद्धान्तचराय कुमारजन्म अमृतसंमिताक्षरं शंसते जनाय भूपतेः त्रयेण एव अदेयेन अभूयत, शशिप्रभेण छत्रेण (अदेयेन, अभूयत) उभाभ्यां चामराभ्यां च (अदेयाभ्यां, अभूयत) ॥ १६ ॥

यदा विश्वस्तः परिचारकः आगत्य कुमारजन्मवार्ता राज्ञे न्यवेदयत्, तदा राजा अमृतमिव वचनमाकर्ण्य आत्मनः सर्वाण्येव भूषणानि तस्मै प्रादात्, केवलमत्युज्ज्वलं राजच्छत्रं चामरद्वयं च अदेयतया तस्मै न ददाविति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—कुमारका जन्म हुआ इस प्रकार अमृतसमान अक्षर सुनानेवाले, अन्तः-पुरमें फिरने वाले सेवकके निमित्त राजाको तीनही वस्तु अदेय हुईं, चंद्रमाकी समान छत्र और दोनों चामर ॥ १६ ॥

चामरः=चमर+अण् ।

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ॥
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्गुरुप्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥ १७ ॥

अन्वयः । निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा कान्तं सुताननं पिबतः नृपस्य आत्मनि गुरुप्रहर्षः, इन्दुदर्शनात् महोदधेः पूरः इव, न प्रबभूव ॥ १७ ॥

वाच्यप० । निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा कान्तं सुताननं पिबतः नृपस्य आत्मनि गुरुप्रहर्षेण, इन्दुदर्शनात् महोदधेः पूरेण इव, न प्रबभूवे ॥ १७ ॥

दिलीपः आत्मनः सुविशालं नेत्रयुगलं स्थिरीकृत्य बहुकालपर्य्यन्तं यदा सुतमुखं ददर्श, तदा तस्य परमानन्दराशिः शशिदर्शनात् समुद्रस्य जलराशिरिव उच्छलित आसीदिति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—पवनरहित कमलके समान निश्चल नेत्रोंसे पुत्रके मुखको पान करते हुए राजाके अन्तःकरणमें महाआनन्द न समाया, जिस प्रकार चन्द्रमाके दर्शनसे समुद्रका समूह अपनेमें नहीं समाता ॥ १७ ॥

कान्तं=कम्+क । पूरः=+पूर+अच् ।

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ॥
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ॥ १८ ॥

अन्वयः । सः दिलीपसूनुः तपस्विना पुरोधसा तपोवनात् एत्य अखिले जातकर्मणि कृते (सति) आकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कारः मणिः इव, अधिकं बभौ ॥ १८ ॥

वाच्यप० । तेन दिलीपसूनुना, तपस्विना पुरोधसा तपोवनात् एत्य अखिले जातकर्मणि कृते (सति) आकरोद्भवेन प्रयुक्तसंस्कारेण मणिना इव, अधिकं बभे ॥ १८ ॥

स्वभावसुन्दरः स राजपुत्रः प्रभावयुक्तेन वशिष्ठेन जातकर्मरूपसंस्कारेण शोधितः सन् तथा अधिकतरं शुशुभे यथा आकरोत्थितः हीरकमणिः शाणशोधितः सन् अधिकतरां कान्तिं लभते इति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—वह दिलीपकुमार तपस्वी पुरोहित वशिष्ठजीके तपोवनसे आकर संस्कार करनेसे, खानसे निकलने पर संस्कार किये हुए रत्नकी समान अधिक शोभित हुआ ॥ १८ ॥

पुरोहितेन=पुरस्+धा+क्त+ । ३ । एत्य=आ+इ+ल्यप् ।

सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ॥
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि॥१९॥

अन्वयः । सुखश्रवाः मंगलतूर्यनिस्वनाः वारयोषितां प्रमोदनृत्यैः सह केवलं मागधीपतेः(दिलीपस्य) सद्मनि न, (किन्तु) दिवौकसाम् पथि अपि व्यजृंभन्त ॥ १९ ॥

वाच्यप० । सुखश्रवैः मंगलतूर्यनिस्वनैः वारयोषितां प्रमोदनृत्यैः सह केवलं मागधीपतेः सद्मनि न, दिवौकसां पथि अपि व्यजृम्भ्यत ॥ १९ ॥

लोकहितस्य तस्य राजपुत्रस्य जन्ममहोत्सवात् यथा राजमन्दिरे तथा देवभवनेपि गीतमङ्गलवाद्यध्वनयः उच्चरन्ति स्म वेश्याश्च प्रहर्षात् नृत्यन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—कानोंको सुखदायक, मंगलके वाजोंकी ध्वनि, वेश्याओंके प्रसन्नताके नृत्योंसहित, केवल दिलीपकेही घरमें नहीं हुई, किन्तु देवताओंके मार्ग (आकाश) मेंभी हुई ॥ १९ ॥

वि+जृम्भ=लङ् । जृम्भते । जजृम्भे । अजृम्भत । अजृम्भिष्ट । भावे जृम्भ्यते । यङि जरीजृम्भ्यते । कृ० जृम्भणीयम् । जृम्भकः । जृम्भी । जृम्भित्वा । जृम्भमाणः ।

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः ॥
ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात्॥२०॥

अन्वयः । रक्षितुः तस्य (दिलीपस्य) संयतः न बभूव, (सः) यं सुतजन्महर्षितः (सन्) विसर्जयेत्, सः केवलं स्वयम् एव ऋणाभिधानात् पितॄणां बंधनात् तदा मुमुचे ॥ २० ॥

वाच्यप० । रक्षितुः तस्य संयतेन न बभूवे, (तेन) यः सुतजन्महर्षितेन (सता) विसृज्येत, तेन केवलं स्वयम् एव ऋणाभिधानात् पितॄणां बंधनात् तदा मुमुचे ॥ २० ॥

नृपस्य प्रजारक्षणे तद्देशे तस्कराभावात् कोपि कारावद्ध एव नासीत्, अतोऽसौ नृपः पुत्रजन्मानन्दात् केवलमात्मानमेव पितॄणां ऋणरूपात् बन्धनात् विमोचयामास इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—रक्षा करनेवाले उस दिलीपके कोई बंधुआ नहीं था, जिसे पुत्रजन्मके उत्सवमें छोडता, तब वह केवल आप ही पितृऋणके बंधनसे मुक्त हुआ ॥२० ॥

संयत=सम्+यम्+क्त ।

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः ॥
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्॥२१॥

अन्वयः । अयम् अर्भकः श्रुतस्य अन्तं यायात्, तथा युधि परेषां च (अंतं, यायात्) इति अर्थवित् पार्थिवः धातोः गमनार्थम् अवेक्ष्य, आत्मसंभवं नाम्ना रघुं चकार ॥ २१ ॥

वाच्यप० । अनेन अर्भकेण श्रुतस्य अन्तः यायेत, तथा युधि परेषां च (अंतः, यायेत) इति अर्थविदा पार्थिवेन धातोः गमनार्थम् अवेक्ष्य, आत्मसंभवः नाम्ना रघुः चक्रे ॥ २१ ॥

पुत्रोयं मे स्वशक्त्या अशेषशास्त्रसागरस्य पारं गमिष्यति, सम्पूर्णशत्रुसैन्यव्यूहं च भित्त्वा गमिष्यति इति तस्य गमनशीलत्वं निश्चित्य स राजा स्वपुत्रस्य रघुः इति नामधेयं चक्रे इति सरलार्थः॥२१ ॥

भा०-यह बालक शास्त्रके अन्तको प्राप्त होगा और युद्धमें शत्रुओंके अन्तको (प्राप्त होगा) इस प्रकार अर्थके जाननेवाले राजाने (रघि) धातुको गमन अर्थमें समझ कर पुत्रका नाम रघु रक्खा ॥ २१ ॥

अर्भकः=ऋध्+वुन् । उणा० ।

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसंपदः शुभैः शरीरावयवैर्दिनेदिने ॥
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥ २२ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) समग्रसंपदः पितुः प्रयत्नात् हरिदश्वदीधितेः अनुप्रवेशात् बालचन्द्रमाः इव, शुभैः शरीरावयवैः दिनेदिने वृद्धिं पुपोष ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) समग्रसंपदः पितुः प्रयत्नात्, हरिदश्वदीधितेः अनुप्रवेशात् बालचन्द्रमसा इव, शुभैः शरीरावयवैः दिनेदिने वृद्धिः पुपुषे ॥ २२ ॥

यथा हि शुक्लपक्षे प्रतिपच्चन्द्रः तेजोनिधेः सूर्यस्य किरणसम्पर्केण कलाभिः दिनेदिने वर्द्धते तथा स कुमारोपि पितुः प्रयत्नेन मनोहरैरंगैः दिनेदिने ववृधे ॥ २२ ॥

भा०-वह रघु सम्पूर्ण सम्पत्तिमान् पिताके यत्नोंसे सूर्यकी किरणके प्रवेशकरनेसे बालचन्द्रमाकी समान सुन्दर शरीरके अवयवोंसे दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होनेलगा ॥२२॥

हरिदश्वदीधितेः=हरित्+अश्व+दीधीङ्+क्तिच् । पुष्=पुष्णाति । पुपोष । अपुषत् । कृ० दिवादि पोषणियम् । पोष्यम् । पुष्णन् । पुष्यन् ।

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरंदरौ ॥
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ२३

अन्वयः । यथा शरजन्मना उमावृषांकौ, यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ननन्दतुः, तथा तत्सदृशेन सुतेन तत्समौ नृपः सा मागधी च (उभौ) (ननन्दतुः) ॥ २३ ॥

वाच्यप० । यथा शरजन्मना उमावृषाङ्काभ्यां, यथा जयन्तेन शचीपुरन्दराभ्यां ननन्दे, तथा तत्सदृशेन सुतेन तत्समाभ्यां नृपेण तया मागध्या च (उभाभ्यां) (ननन्दे) ॥ २३ ॥

यथा कार्तिकेयं पुत्रं लब्ध्वा पार्वतीपरमेश्वरयोः परमानन्दो जातः जयन्तं सुतं लब्ध्वा शचीमहेन्द्रयोः परमानन्दो जातः, तथा रघुं लब्ध्वा सुदक्षिणादिलीपयोरपि कोऽपि परमानन्दो बभूवेति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०–जैसे स्वामिकार्तिकके जन्मसे शिवपार्वती, जयन्तके जन्मसे इन्द्र और शची प्रसन्न हुए थ, इसी प्रकार उन्हींके समान पुत्रसे उन्हींके समान राजा दिलीप और रानी प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

शरजन्मा=शर+जन्मन् ।

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ॥
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥ २४ ॥

अन्वयः । तयोः (सुदक्षिणादिलीपयोः) रथांगनाम्नोः इव, भावबंधनं परस्पराश्रयं यत् प्रेम बभूव, तत् तयोः एकसुतेन विभक्तम् अपि परस्परस्य उपरि पर्य्यचीयत ॥ २४ ॥

वाच्यप० । तयोः रथांगनाम्नोः इव, भावबन्धनेन परस्पराश्रयेण येन प्रेम्णा बभूवे, तेन तयोः एकसुतेन विभक्तेन अपि परस्परस्य उपरि पर्य्यचीयत ॥ २४ ॥

चक्रवाकयोरिव तयोः सुदक्षिणादिलीपयोः परस्परस्य हृदयसंयोजनं यत् अखण्डितं प्रेम स्थितं, तत् एकेन सुतेन विभक्तमपि न परिहीयते स्म प्रत्युत वर्द्धते स्म इति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०–उन दोनो (राजारानी) का चकवाचकवीकी समान भावका बंधन करनेवाला परस्पर जो प्रेम था, सो एक मात्र पुत्रमें बटजानेसेभी परस्पर एक दूसरेके ऊपर बढता हुआ ॥ २४ ॥

चि=चिनोति–चिनुते । चिकाय–चिचाय । अचिनोत्–अचिनुत । अचैषीत् । कर्मणि चीयते । कृ० चयनीयम् । चयः । चितः । सञ्चित्य । चेयम् । चिन्वन् ।

उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो, ययौ तदीयामवलम्ब्य चांगुलिम् ॥
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया, पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः ॥२५॥

अन्वयः । सः अर्भकः धात्र्या प्रथमोदितं वचः उवाच, तदीयाम् अंगुलिं च अवलंब्य ययौ प्रणिपातशिक्षया च नम्रः अभूत्, तेन पितुः मुदं ततान ॥ २५ ॥

वाच्यप० । तेन अर्भकेण धात्र्या प्रथमोदितं वचः ऊचे, तदीयाम् अंगुलिं च अवलंब्य यये, प्रणिपातशिक्षया च नम्रेण अभावि, तेन पितुः मुत् तेने ॥ २५ ॥

स दिलीपकुमारः धात्र्या शिक्षितः सन् (पितेति) मनोहरं वचनं प्रथमम् उच्चारयामास धात्र्या अंगुलिं धृत्वा चलितुमारब्धवान्, शिरसा प्रणामं कर्तुं आशिक्षत, तस्य पुत्रस्य तास्ता चेष्टा अवलोक्य दिलीपः अधिकतरं सुखं लब्धवान् इति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०–वह बालक धायका सिखाया हुआ (पित यह) वचन बोला और उसकी अंगुली पकडकर चला, प्रणाम करनेमें नम्र हुआ इससे उसने पिताके आनन्दको विस्तार किया ॥ २५ ॥

धात्र्या=धा+ष्ट्रन्+ङीष् ।

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि ॥
उपान्तसंमीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥ २६ ॥

अन्वयः । शरीरयोगजैः सुखैः त्वचि अमृतं निषिंचन्तम् इव तं (सुतम्) अंकम् आरोप्य उपान्तसंमीलितलोचनः नृपः चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥ २६ ॥

वाच्यप० । उपान्तसम्मीलितलोचनेन नृपेण शरीरयोगजैः सुखैः त्वचि अमृतं निषिंचन्तम् इव-तम् अंकम् आरोप्य चिरात् सुतस्पर्शरतज्ञता ययै ॥ २६ ॥

सर्वाङ्गेषु अमृतमिव संचारयन्तं तं सुतम् अङ्के निधाय तदङ्गेषु स्वाङ्गानि गाढं निवेशयन् आनन्दाच्च नेत्रे निमीलयन् स नृपः चिराभिलाषितं पुत्रस्पर्शसुखास्वादं लेभे इति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०–शरीरके मिलनेसे उत्पन्न हुए सुखोंसे त्वचापर अमृत वरसातेहुए उस पुत्रको गोदीमें वैठा कर आंख मीचे हुए राजा बहुत काल तक पुत्रके स्पर्शसुखकी रसज्ञताको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥

निषिञ्चन्तम्=नि+सिच्+शतृ । आरोप्य=आ+रुह्+ (णिच्) ल्यप् ।

अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ॥
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ॥२७॥

अन्वयः । स्थितेः अभेत्ता प्रजानां पतिः परार्ध्यजन्मना गुणाग्र्यवर्त्तिना स्वमूर्त्तिभेदेन आत्मनः सर्गम् इव, अन्वयं स्थितिमंतम् अमंस्त ॥ २७ ॥

वाच्यपरि० । स्थितेः अभेत्त्रा, परार्ध्यजन्मना अनेन अन्वयः स्थितिमान्, प्रजानां पत्या, गुणाग्र्यवर्त्तिना स्वमूर्त्तिभेदेन आत्मनः सर्गः इव, अमानि ॥ २७ ॥

यथा विश्वनियन्ता ब्रह्मा सत्त्वगुणस्य आधारेण स्वरूपभेदेन विष्णुना आत्मसृष्टं ब्रह्माण्डं स्थितिशीलं मेने, तथा लोकाधिपः दिलीपः तेन पुत्रेण स्वकीयं वंशं स्थितिशीलं मेने, इति सरलार्थः॥२७॥

भा०–मर्यादाके पालन करनेवाले राजाने उत्कृष्ट जन्म वाले इस पुत्रसे अपने वंशकी सत्त्वगुणी विष्णुके अवतारसे ब्रह्माकी समान सृष्टिको स्थितिवाला माना ॥ २७ ॥

सर्ग=सृज्=घञ् । अमंस्त=मन्+लुङ् ।

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ॥
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥ २८ ॥

अन्वयः। वृत्तचूलः चलकाकपक्षकैः सवयोभिः अमात्यपुत्रैः अन्वितः सः (रघुः) लिपेः यथावत् ग्रहणेन नदीमुखेन समुद्रमिव वङ्मयम् आविशत् ॥ २८ ॥

वाच्यप०। वृत्तचूलेन चलकाकपक्षकैः सवयोभिः अमात्यपुत्रैः अन्वितेन तेन, लिपेर्यथावत् ग्रहणेन नदीमुखेन समुद्र इव वाङ्मयम् आविश्यत ॥ २८ ॥

यथा मकरादिजलजन्तुः नदीमाश्रित्य तेनैव पथा अनन्तसागरं गच्छति, तथा कृतचूडाकरणः रघुरपि समवयस्कैः मनोहरैः सचिवसुतैः सह वर्णमालां यथाविधि अभ्यस्य क्रमेण अनन्तशब्दशास्त्रस्य पारं गतवानिति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—चूडाकर्मको प्राप्त हुए चलायमान अलकोंवाले, समान अवस्थाके मंत्रिपुत्रोंसे युक्त वह रघु नदीद्वारसे समुद्रमें प्रवेश करनेकी समान अक्षरोंको यथावत् ग्रहण कर शब्दशास्त्रमें प्रविष्ट हुआ ॥ २८ ॥

वाङ्मयम्=वाच्+मयट्।

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम् ॥
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति॥२९॥

अन्वयः। अथ विपश्चितः गुरवः विधिवत् उपनीतं गुरुप्रियम् एनं (रघुं) विनिन्युः अत्र (रघौ) ते (गुरवः) अवन्ध्ययत्नाः बभूवुः हि वस्तूपहिता क्रिया प्रसीदति ॥ २९ ॥

वाच्यप०। अथ विपश्चिद्भिः गुरुभिः विधिवत् उपनीतः गुरुप्रियः एषः विनिन्ये, अत्र तैः अवन्ध्ययत्नैः बभूवे, हि वस्तूपहितया क्रियया प्रसद्यते ॥ २९ ॥

अथ गर्भैकादशे वर्षे रघोरुपनयनसंस्कारे कृते सति निपुणाः आचार्याः गुरुसेवकं तं रघुं विद्याः शिक्षितवन्तः ते सत्पात्रं कुमारम् उपदिश्य सफलप्रयत्नाः जाताः यतः सत्पात्रे शिक्षा सफला भवतीति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—इसके उपरान्त निपुण गुरुजन विधिपूर्वक यज्ञोपवीतको प्राप्त हुए पिताके प्यारे इस रघुको सिखाते हुए, और इस रघुमें उनका परिश्रम सफल हुआ, कारण कि सुपात्रमें कीहुई शिक्षा फलीभूत होती है ॥ २९ ॥

उपहिता=उप+धा+क्त+टाप्।

धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः ॥
ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः ॥ ३० ॥

अन्वयः। उदारधीः सः (रघुः) धियः समग्रैः गुणैः क्रमात् चतुरर्णवोपमाः, चतस्रः विद्याः, हरिताम् ईश्वरः पवनातिपातिभिः हरिद्भिः दिशः इव, ततार ॥ ३० ॥

वाच्यप०। उदारधिया तेन धियः समग्रैः गुणैः क्रमात् चतुरर्णवोपमाः चतस्रः विद्याः हरिताम् ईश्वरेण इव ततारिरे ॥ ३० ॥

यथा रविः वेगवत्तरैः स्वकीयैः वाजिभिः सागरचतुष्टयवत् अपारस्य दिक्चतुष्टयस्य पारम् अनायासेनैव याति, तथा स रघुरपि स्वकीयैः बुद्धिगुणैः अनन्तस्य विद्याचतुष्टयस्य पारं परिश्रमेण विना ययौ, इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—उदार बुद्धिवाला वह रघु बुद्धिके सम्पूर्ण गुणोंसे क्रमसे चारसमुद्रोंकी समान चारों विद्याओंका पवनकी समान वेगवान् घोडोंसे दिशाओंके पार जानेवाले सूर्यकी समान पारगामी हुआ ॥ ३० ॥

अर्णवाः=अर्णस्+व । हरिद्भिः=हृ+इतन् ।

त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ॥
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । स (रघुः) मेध्यां रौरवीं त्वचं परिधाय पितुः एव मंत्रवत् अस्त्रम् अशिक्षत त[द्गु]रुः क्षितौ केवलम् एकपार्थिवः न (अभूत्) (किं तु) सः एकधनुर्धरः अपि अभूत् ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । तेन मेध्यां रौरवीं त्वचं परिधाय, पितुः एव मंत्रवत् अस्त्रम् अशिक्ष्यत, तद्गुरुणा क्षितौ केवलम् एकपार्थिवेन न (अभूयत) तेन एकधनुर्धरेण अपि अभूयत ॥ ३१ ॥

स राजा संसारे यथा एकः चक्रवर्ती बभूव तथा अद्वितीयः धनुर्वेदपण्डितोप्यासीत् अतः स्वयमेव स्वपुत्रं धनुर्वेदमध्यापयामास, सोपि कुमारः मृगचर्म परिधाय सरहस्यं दिव्यास्त्रसमूहं यथाविधि अधिकृतवान्, इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—वह रघु पवित्रमृगचर्म ओढकर पितासे ही मन्त्रसहित अस्त्रविद्या सीखता-हुआ, उसका पिता केवल चक्रवर्ती राजाही नहीं था, किन्तु पृथ्वीमें एक धनुषधारी भी वही था ॥ ३१ ॥

मेध्यां=मेध्+यत् । रौरवीम्=रुरु+अण्+ङीप् । शिक्ष्=शिक्षते । शिशिक्षे । अशिक्षत । अशिक्षिष्ट । क० शिक्ष्यते । शिक्षणीयम् । शिक्षितुम् । शिक्षित्वा । शिक्ष्यन् । शिक्ष्यमाणः ।

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव ॥
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः॥३२॥

अन्वयः । रघुः क्रमात् यौवनभिन्नशैशवः महोक्षतां स्पृशन् वत्सतरः इव, द्विपेंद्रभावं श्रयन् कलभः इव, गाम्भीर्यमनोहरं वपुः पुपोष ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । रघुणा क्रमात् यौवनभिन्नशैशवेन (सता) महोक्षतां स्पृशता वत्सतरेण इव द्विपेन्द्रभावं श्रयता कलभेन इव, गाम्भीर्यमनोहरं वपुः पुपुषे ॥ ३२ ॥

यथा वत्सतरः पूर्णयौवनः सन् महोक्षः भवति, यथा च करिशावकः पूर्णयौवनः सन् महागजो भवति, तथा रघुरपि क्रमेण पूर्णयौवनः सन् पुष्टावयवः महापुरुषाकृतिः जात इति सरलार्थः॥३२॥

भा०-रघु क्रमसे बालपनसे यौवन अवस्थामें बैलपनको प्राप्त होते हुए बछडे और गजेन्द्रताको प्राप्त होते हुए पाढेकी समान, प्राप्त होता हुआ गंभीरता सहित मनोहर शरीर पुष्ट करता हुआ ॥ ३२ ॥

स्पृशन्=स्पृश्+शतृ। श्रयन्+श्रि+शतृ। कलभः=कल+अभच्।

अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः ॥
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः ॥३३॥

अन्वयः। अथ गुरुः (दिलीपः) गोदानविधेः अनन्तरम् अस्य विवाहदीक्षां निरवर्त्तयत्, दक्षसुताः तमोनुदम् इव, नरेन्द्रकन्याः तं सत्पतिम् अवाप्य आबभुः ॥ ३३ ॥

वाच्यप०। अथ गुरुणा गोदानविधेः अनंतरम् अस्य विवाहदीक्षा निरवर्त्यत, नरेन्द्रकन्याभिः दक्षासुताभिः इव आबभे ॥ ३३ ॥

नृपः प्रथमं रघोः गोदानसंस्कारं विधाय पश्चात्तस्य विवाहसंस्कारं कारितवान् यथा अश्विन्यादयः दक्षकन्याः चंद्रं पतिं लब्ध्वा शुशुभिरे तथा कुमारपरिणीताः राजकन्या अपि तं पतिं लब्ध्वा शोभन्ते स्म इति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-तब दिलीपने गोदानकर्म करनेके उपरांत उसका विवाहकार्य किया चंद्रमाको पाकर दक्षकन्याओंकी समान राजाओंकी कन्या उस सत्पतिको पाकर शोभित हुईं ॥ ३३ ॥

तमोनुदं=तमस्+नुद्+क।

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकंधरः ॥
वपुःप्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत ॥ ३४ ॥

अन्वयः। युवा युगव्यायतबाहुः अंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः रघुः वपुःप्रकर्षात् गुरुम् अजयत्, तथापि विनयात् नीचैः अदृश्यत ॥ ३४ ॥

वाच्यप०। यूना युगव्यायतबाहुना अंसलेन कपाटवक्षसा परिणद्धकन्धरेण रघुणा वपुः-प्रकर्षात् गुरुः अजीयत, तथापि विनयात् नीचैः (जनाः) तं ददृशुः ॥ ३४ ॥

रघुः पूर्णयौवनतया व्यूढोरस्कः वृषस्कंधः जातः तत्पिता च वयोवृद्ध्या क्रमेण क्षीणतां प्रपद्यते स्म यद्यपि कुमारः देहसौभाग्येन नृपं तिरस्कृतवान् तथापि पितृसमीपे विनयात् पितुः क्षुद्रतर एव लक्ष्यते स्म इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-तरुण जुएकी समान महाभुजवाला बली चौडी छाती और विशाल ग्रीवावाला रघु शरीरकी अधिकतासे पिताको जीतता हुआ तथापि नम्रताके कारण नीचाही दीखता था ॥ ३४ ॥

व्यायतौ=वि+आ+यम्+क्त। असंल=अंस+लच्। जि=जयति। जिगाय। अजैषीत्। जीयते-जयनीयम्। जेतुम्। जेतव्यम्। विजित्य। जयन्। जेयम्।

ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम् ॥
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक् ॥३५॥

अन्वयः । ततः चिरम् आत्मना धृतां नितांतगुर्वीं प्रजानां धुरं लघयिष्यता नृपेण निसर्गसंस्कारविनीतः इति (हेतोः) असौ (रघुः) युवराजशब्दभाक् चक्रे ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । नृपः लघयिष्यन् अमुं युवराजशब्दभाजं चकार ॥ ३५ ॥

कुमारं शिक्षागुणेन सर्वथा योग्यमवेक्ष्य राजा तं यौवराज्ये अभ्यषिंचत् तेन च आत्मनः गुरुतरं प्रजापालनभारं लघूकृत्य महाशान्तिमगच्छत् इति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—तब बहुत कालसे अपनेमें धारण किये अत्यंत भारी प्रजापालनके भारको थोडा करनेकी इच्छा करके राजाने स्वभाव और संस्कारसे नम्र रघुको युवराज पद भोगनेवाला किया ॥ ३५ ॥

संस्कारेण+सम्=कृ+घञ् ।

नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम् ॥
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम् ॥३६॥

अन्वयः । गुणाभिलाषिणी श्रीः नरेन्द्रमूलायतनात् अनंतरं युवराजसंज्ञितं तदास्पदम् अंशेन कमलात् नवावतारम् उत्पलम् इव अगच्छत् ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । गुणाभिलाषिण्या श्रिया×××× अगम्यत ॥ ३६ ॥

यथा लक्ष्मीः जीर्णपत्रं पद्मं परिहरन्ती नवोद्भूतं कमलं क्रमेण आश्रयते, तथा राजलक्ष्मीः वृद्धं महाराजं दिलीपं त्यक्त्वा तत्सन्निहितं युवराजं रघुं क्रमेण आश्रयते स्म इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—गुणोंकी अभिलाषा करनेवाली लक्ष्मी राजारूपी मुख्य स्थानसे (निर्गत हो) अनन्तर युवराज संज्ञावाले उस रघुके स्थानको अंशद्वारा (पुराने) कमल से नये कमल की समान प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥

गुणाभिलाषिणी=गुण+अभि+लष्+णिनि+ङीप् ।आयतनम्=आ+यत्+ल्युट् ।उत्पलम्=उत्पल्+अच् ।

विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव ॥
बभूव तेनातितरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । सारथिना वायुना विभावसुः इव, घनव्यपायेन गभस्तिमान् इव, कटप्रभेदेन करी इव, पार्थिवः तेन अतितरां सुदुःसहः बभूव ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । विभावसुना इव, गभस्तिमता इव करिणा इव पार्थिवेन सुदुःसहेन बभूवे ॥ ३७ ॥

अग्निर्यथा वायोः साहाय्येन, रविः यथा गतमेघस्य शरत्कालस्य साहाय्येन, करी यथा उन्मादकरस्य गण्डनिर्गतमदजलस्य साहाय्येन दुःसहतरो जायते, तथा दिलीपोपि रघोः साहाय्येन संसारे सर्वथा दुःसहतरो जातः इति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—पवनरूपी सारथीसे अग्निजैसे बादलोंके चलेजानेसे सूर्यजैसे गण्डस्थलक मदसे हाथीजैसे तैसे राजा दिलीप उस रघुकी सहयासे अत्यन्त दुस्सह होगया॥३७॥

सारथिना=सृ+णथिन्। गभस्तिमान्=गभस्ति+मतुप्।

नियुज्य तं होमतुरंगरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम्॥
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः॥ ३८॥

अन्वयः। शतक्रतूपमः सः (दिलीपः) धनुर्धरम् राजसुतैः अनुद्रुतम् तम् (रघुम्) होम-तुरङ्गरक्षणे नियुज्य, एकेन अपूर्णम् क्रतूनाम् शतम् अपविघ्नम् आप॥ ३८॥

वाच्यप०। शतक्रतूपमेन तेन धनुर्धरं राजसुतैः अनुद्रुतं तं होमतुरंगरक्षणे नियुज्य ×××××. आपे॥ ३८॥

पुरन्दरतुल्यप्रभावो दिलीपः सेवकैस्सामन्तराजकुमारैः समन्वितं रघुम् आश्वमेधिकानाम् अश्वानां रक्षणे नियुज्य, क्रमेण नवनवतिसंख्याकान् अश्वमेधान् निर्विघ्नं समाप्तिमनयत् इति सरलार्थः॥ ३८॥

भा०—इन्द्रकी समान राजा दिलीप धनुर्धारी राजकुमारोंसे युक्त रघुको होमके घोडेकी रक्षामें नियुक्त कर एककम सौ यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण करता हुआ॥ ३८॥

अनुद्रुतम्=अनु+द्रु+क्त।

ततः परं तेन मखाय यज्वना तुरंगमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः॥
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः॥३९॥

अन्वयः। ततः यज्वना तेन (दिलीपेन) पुनः मखाय उत्सृष्टम् अनर्गलं तुरंगं शक्रः गूढविग्रहः (सन्) धनुर्भृतां रक्षिणाम् अग्रतः एव जहार किल॥ ३९॥

वाच्यप०। उत्सृष्टः अनर्गलः तुरंगः गूढविग्रहेण शक्रेण जह्रे॥ ३९॥

अथ दिलीपः पुनरेव यज्ञाश्वं मुमोच, तस्मिन् समये किल इन्द्रः अदृश्यरूपो भूत्वा धनुर्भृतां रक्षिणाम् अग्रतः एव तम् अश्वम् अपहृत्य प्रचलितः इति सरलार्थः॥ ३९॥

भा०—इसके उपरान्त फिर उस यज्ञ करनेवाले राजा दिलीपके यज्ञ करनेके निमित्त छोडे हुए बंधनरहित घोडेको इन्द्रने गुप्तशरीर होकर धनुषधारी रक्षा करनेवालोंके सामनेसेही हरण किया॥ ३९॥

यज्वना=यज्+वनिप्। मखाय=मख+घ। ४।

विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत्॥
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी॥४०॥

अन्वयः । विषादलुप्तप्रतिपत्ति तत् कुमारसैन्यम् सपदि विस्मितं स्थितं च, अथ यदृच्छया आगता श्रुतप्रभावा वसिष्ठधेनुः नन्दिनी च ददृशे ॥ ४० ॥

वाच्यपरि० । तेन कुमारसैन्येन विषादलुप्तप्रतिपत्तिना विस्मितेन स्थितम्, आगतां श्रुतप्रभावां वसिष्ठधेनुं नन्दिनीं (जनाः) ददृशुः ॥ ४० ॥

यावदेव रघुसैनिकाः तस्य अश्वस्य आकस्मिकतिरोधानात् लुप्तचेतनाः विस्मयविमूढाः तस्थुः तावदेव विख्यातप्रतापा वसिष्ठहोमधेनुः नन्दिनी स्वेच्छया तत्र आजगामेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०—वह कुमारकी सेना तत्काल विषादको प्राप्त हो मनोरथ भंग होने के कारण विस्मित हो स्थित हुई उसी समय अपनी इच्छासे आई हुई विख्यात प्रभाववाली वसिष्ठकी नन्दिनी गौ दृष्टिगोचर हुई ॥ ४० ॥

विषादः=वि+सद्+घञ् ।

तदङ्गनिष्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम् ॥
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः॥ ४१ ॥

अन्वयः । सताम् पुरस्कृतः दिलीपनन्दनः पुण्येन तदंगनिष्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य, अतींद्रियेषु अपि भावेषु उपपन्नदर्शनः बभूव ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । सतां पुरस्कृतेन दिलीपन्दनेन, पुण्येन तदंगनिष्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य अतीन्द्रियेषु अपि भावेषु उपपन्नदर्शनेन बभूवे ॥ ४१ ॥

साधुसत्कृतः स रघुः नन्दिन्याः अङ्गनिष्यंदजलेन स्वनेत्रे प्रक्षाल्य, तत्कालमेव परोक्षाणामपि पदार्थानामवलोकने सामर्थ्यं लेभे । इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—सत्पुरुषोंसे पूजित दिलीपपुत्र रघुने पवित्र उसके अंगसे निकलेहुए जल (मूत्र) को नेत्रोंमें लगाकर इन्द्रियअतीत पदार्थोंमेंभी देखनेकी शक्ति प्राप्त की॥ ४१॥

प्रमृज्य=प्र+मृज+ल्यप् ।

स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसंभवः ॥
पुनःपुनःसूतनिषिद्धचापलं हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः । सः नरदेवसम्भवः (रघुः) पुनःपुनःसूतनिषिद्धचापलं रथरश्मिसंयतम् अश्वं हरन्तं पर्वतपक्षशातनं देवं पूर्वतः ददर्श ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । तेन नरदेवसम्भवेन पूर्वतः पर्वतपक्षशातनः देवः पुनःपुनःसूतनिषिद्धचापलं रथरश्मिसंयतम् अश्वं हरन् देवः ददृशे ॥ ४२ ॥

एवं प्राप्तदिव्यचक्षुः स रघुः पूर्वस्यां दिशि यावत् दृष्टिं ससर्ज, तावत् ददर्श यत् पर्वतपक्षभेदी इन्द्रः अश्वमपहृत्य गच्छति, अश्वश्च तदीयरथरश्मिबद्धः परां चंचलतां प्रकटयति, सारथिः तं स्थिरीकर्तुं भूयोभूयो यत्नं करोतीति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-वह नरदेवसे उत्पन्न हुआ रघु वारंवार सारथिसे चपलता रोकेजाते हुए रथकी रस्सीसे बंधे हुए घोडेको हरते हुए पर्वतोंके पंख काटनेवाले इन्द्रको पूर्वदिशामें देखता हुआ ॥ ४२ ॥

शातनम्-शद् (णिच्) यु ।

शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः॥
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव ॥ ४३ ॥

अन्वयः । रघुः अनिमेषवृत्तिभिः अक्ष्णां शतैः हरिभिः वाजिभिः च तं हरिं विदित्वा, गगनस्पृशा धीरेण स्वरेण एनं (हरिम्) निवर्त्तयन् इव, अवोचत् ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । रघुणा+-+×निवर्तयता इव एषः अवाचि ॥ ४३ ॥

रघुः तस्य अश्वापहारिणो निमेषशून्यं नेत्रसहस्रं हरिद्वर्णांश्च रथाश्वानवलोक्य इन्द्रोयमिति ज्ञात्वा निर्भयः मेघगम्भीरेण शब्देन सम्बोधयामास इन्द्रोपि तस्य स्वरेण निरुद्धरथवेग इव आसीत् । इति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-रघु विनापलक चलानेवाले सैंकडों नेत्र और हरे घोडोंसे उसे इन्द्र जानकर आकाशके छूने वाले धीरशब्दसे इसको लौटाते हुए की समान बोला ॥ ४३ ॥

वाजिभिः=वाज+इनि । स्पृशा=स्पृश्+क्विप् ।

मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे ॥
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्तसे ॥ ४४ ॥

अन्वयः । देवेन्द्र ! मनीषिभिः सदा त्वम् एव मखांशभाजां प्रथमः निगद्यसे, (त्वम्) अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्त्तसे ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । हे देवेन्द्र ! मनीषिणः सदा त्वाम् एव मखांशभाजां प्रथमं निगदन्ति, (त्वया) अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवृत्यते ॥ ४४ ॥

अये देवेन्द्र ! त्वमेव यज्ञभागभुजां निर्जराणाम् अग्रगण्योसीति पण्डिता आहुः पिता च मे भवतामेव प्रीणनाय नित्यं यज्ञेषु दीक्षितः वर्तते तत् कथं तस्यैव यज्ञकर्मणि विघ्नं करोषि इति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-हे देवराज ! विद्वानोंने तुमको सदा यज्ञका भाग लेनेवालोंमें प्रथम कहा है सो निरन्तर यक्षदीक्षामें लगे हुए मेरे पिताका कार्य विगाडनेको तुम कैसे प्रवृत्त होतेहो ॥ ४४ ॥

निगद्यसे=नि+गद्+यक्-लट् ।

त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षषा ॥
स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः ४५

अन्वयः । दिव्यचक्षुषा त्रिलोकनाथेन त्वया ननु मखद्विषः सदा नियम्याः खलु, चेत् सः (एव) त्वं स्वयं धर्मचारिणां कर्मसु अन्तरायः भवसि (तदा) विधिः च्युतः (स्यात्) ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । दिव्यचक्षुः त्रिलोकनाथः त्वं मखद्विषः नियच्छेः तेन त्वया+++अन्तरायेण भूयते विधिना च्युतेन भूयते ॥ ४९ ॥

यदि कोपि त्रिलोकीमध्ये धर्मकार्येषु विघातं करोति तदा तस्य दमनं त्रिलोकीशासकेन सर्वसाक्षिणा त्वया एव करणीयम् यदि स्वयं धर्मरक्षको भूत्वा त्वमेव सत्क्रियाः विहंसि तदा धर्मानुष्ठानस्य लोपः स्यात् । इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-दिव्यनेत्र तुम त्रिलोकीके नाथको तो यज्ञके शत्रुओंका नाश करना उचित है और जो तुम स्वयंही धर्मचारियोंके कर्ममें विघ्न करोगे तो विधि नष्ट हो जायगी ॥ ४९ ॥

मखद्विषः=मख+द्विष्+क्विप् ।

तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरंगं प्रतिमोक्तुमर्हसि ॥
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्॥४६॥

अन्वयः । तत् (तस्मात् कारणात्) मघवन् ! महाक्रतोः अग्र्यम् अंगम् अमुं तुरंगं प्रतिमोक्तुं (त्वम्) अर्हसि, श्रुतेः पथः दर्शयितारः ईश्वराः मलीमसां पद्धतिं न आददते ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । तत् हे मघवन् ! महाक्रतोः अग्र्यम् अंगम् अमुं तुरंगं प्रतिमोक्तुं (त्वया) अर्ह्यते, श्रुतेः पथः दर्शयितृभिः ईश्वरैः मलीमसा पद्धतिः न आदीयते ॥ ४६ ॥

अत एव हे मघवन् ! मम पितुः अश्वमेधयज्ञस्य प्रधानसाधनम् अश्वं मे देहि, भवादृशाः धर्ममार्ग प्रचारकाः स्वयमेव कुत्सितमार्गे न खलु प्रवर्तन्ते इति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-इस कारण हे देवराज ! इस महायज्ञके मुख्य अंग इस घोडेको छोडनेको आप योग्य हो वेदमार्गके दिखानेवाले महापुरुष असत्मार्गोंको नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ४६ ॥

पद्धति-पद-हन्-क्तिन् ।

इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम् ॥
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः । दिवौकसाम् अधिपतिः प्रगल्भं रघुणा समीरितम् इति वचः निशम्य, सविस्मयः (सन्) रथं निवर्त्तयामास, उत्तरं च प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । दिवौकसाम् अधिपतिना प्रगल्भं रघुणा समीरितम् इति वचः निशम्य, सविस्मयन (सता) रथः निवर्त्तयांचक्रे, उत्तरं च प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४७ ॥

रघोर्मुखात् तादृशं स्पर्धापूर्णं वचनं श्रुत्वा इन्द्रः अधिकतरमाश्चर्यमगमत् रथं निवर्त्य तस्मै उत्तरं ददाविति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–देवताओंके स्वामी इन्द्रने इस प्रकार गर्वयुक्त रघुके कहे वचन सुनकर विस्मयको प्राप्त हो रथको लौटाया, और उत्तर देने लगा ॥ ४७ ॥

समीरितं=सम्+ईर्+क्त ।

यदात्थ राजन्यकुमार ! तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः ॥
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः॥ ४८ ॥

अन्वयः । राजन्यकुमार ! (त्वम्) यत् आत्थ, तत् तथा, यशोधनैः यशः तु परतः रक्ष्यम् एव भवद्गुरुः मम अशेषं जगत्प्रकाशं तत् (यशः) इज्यया लंघयितुम् उद्यतः (अस्ति) ॥४८॥

वाच्यप० । राजन्यकुमार ! (त्वया) यत् उक्तं तत् तथा, यशोधनाः यशः तु परतः रक्षंति एव भवद्गुरुणा मम अशेषं जगत्प्रकाशं तत् (यशः) इज्यया लंघयितुम् उद्यतेन (भूयते) ॥ ४८ ॥

अये राजकुमार ! सत्यमुक्तं त्वया किन्तु मादृशानां यश एव सर्वस्वं तव पिता यदि क्रतुशतं समापयेत् तदा मे त्रिलोकीप्रख्यातं यशः विलुप्तं स्यात्, अतो येन केन प्रकारेण आत्मनो यशः रक्षणीयम् इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–हे राजकुमार ! जो तू कहता है यह ऐसेही है परन्तु यशस्वी पुरुषोंको शत्रुसे यशरक्षा करनाही उचित है, तेरा पिता मेरे सम्पूर्ण जगत्विख्यात उस यशको उल्लंघन करनेको उद्यत हुआ है ॥ ४८ ॥

लंघयितुम्=लघि+ (णिच्) तुम् ।

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः ॥
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः॥४९॥

अन्वयः । यथा हरिः एकः पुरुषोत्तमः स्मृतः यथा त्र्यम्बक एव महेश्वरः अपरः न तथा मुनयः मां शतक्रतुं विदुः हि एषः नः शब्दः द्वितीयगामी न (भवति) ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । हरिणा त्र्यम्बकेण स्मृतेन (भूयते) एतेन शब्देन द्वितीयगामिना न (भूयते) ४९

अस्मिन् संसारे यथा पुरुषोत्तमशब्दः नारायणमेव बोधयति, यथा च महेश्वरशब्दः त्रिनेत्रं शंकरमेव बोधयति, तथा शतक्रतुशब्दः मामेव बोधयति, एष नः शब्दः द्वितीयगामी न अस्ति, इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०–जैसे नारायण एक ही पुरुषोत्तम कहाते हैं जैसे महेश्वर शिवही हैं दूसरा नहीं इसी प्रकार मुनि मुझहीको सौयज्ञवाला जान्तेहैं, हमारे तीनोंके यह शब्द दूसरेको मिलनेवाले नहीं हैं ॥ ४९ ॥

हरिः=हृ+इन् । गामी=गम्+णिनि ।

अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः ॥
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य संततेः ॥५०॥

अन्वयः । अतः (एव) कपिलानुकारिणा मया त्वदीयस्य पितुः अयम् अश्वः अपहारितः, अत्र तव प्रयत्नेन अलम्, (त्वम्) सगरस्य सन्ततेः पदव्यां पदं मा निधाः ॥ ५० ॥

वाच्यप० । अतः कपिलानुकारी अहं त्वदीयस्य पितुः इमम् अश्वम् अपहृतवान्, अत्र तव प्रयत्नेन अलम्, (त्वया) सगरस्य सन्ततेः पदव्यां पदं मा निधायि ॥ ५० ॥

यथा पुरा कपिलो महर्षिः सगरस्य अश्वमेधीयम् अश्वं जहार, तथा स्वयशोलोपभयात् अहमपि तव पितुः इममश्वम् अपहृतवानस्मि, यथा सगरसुताः कपिलदेवस्य कोपानलेन भस्मीभूता आसन्, तथा त्वमपि मदीयक्रोधाग्निना भस्मीभविष्यसि, इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०–इसी कारण कपिलदेवजीकेसा कर्म करनेवाले मैंने तेरे पिताका यह घोडा हरण किया है, बस यहां तुम्हारा उपाय नहीं चलेगा सगरसन्तानोंके मार्गमें तू चरण मत रख ॥ ५० ॥

त्वदीयस्य=युष्मद्+छ । ६ ।

ततः प्रहस्यापभयः पुरंदरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता ॥
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ५१

अन्वयः । ततः अपभयः तुरगस्य रक्षिता प्रहस्य पुनः पुरंदरं बभाषे, यदि ते एषः सर्गः (अस्ति) (तर्हि) शस्त्रं (त्वम्) गृहाण, खलु भवान् रघुम् अनिर्जित्य कृती न (भविष्यति)

वाच्यप० । ततः अपभयेन तुरगस्य रक्षित्रा प्रहस्य पुनः पुरन्दरः बभाषे, यदि ते एतेन सर्गेण (भूयते) (तर्हि) शस्त्रं (त्वया) गृह्यताम्, खलु भवता रघुम् अनिर्जित्य कृतिना न (भविष्यते) ॥ ५१ ॥

तदा निर्भीको रघुः सोपहासं सदर्पं तमूचे हे पुरन्दर ! यदि एवं ते संकल्पः तदा युद्धाय सज्जो भव, यावत् मां जेतुं न शक्नोषि तावत् कृतकार्यः न भविष्यसि इति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०–इसके उपरान्त भयरहित हो घोडेका रक्षक हँसकर फिर इन्द्रसे बोला जो तेरी ऐसी इच्छा है तो शस्त्र ग्रहणकर, निश्चय तू मेरे जीते विना कृतकार्य न होगा ॥ ५१ ॥

कृती+कृत+इनि ।

स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् ॥
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥ ५२ ॥

अन्वयः । उन्मुखः (रघुः) मघवन्तम् एवम् उक्त्वा शरासनं सशरं करिष्यमाणः, आलीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण, विडंबितेश्वरः (सन्) अतिष्ठत् ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । उन्मुखेन, शरासनं सशरं करिष्यमाणेन, आलीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण, विडंबितेश्वरेण तेन मघवन्तम् एवम् उक्त्वा अस्थीयत ॥ ५२ ॥

रघुः ऊर्द्धदृष्टिः सन् पुरन्दरं तथा अभिधाय दक्षिणं पादम् अग्रतः कृत्वा वामं च पश्चादाकृष्य, धनुषि शरसन्धानं कृत्वा युद्धार्थी तस्थौ, तदानीं रघुः महादेव इव ददृशे इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—उन्मुख वह रघु इन्द्रसे इस प्रकार कहकर धनुषपर बाण चढाता हुआ पैंतरे बदलनेसे विशेष शोभायमान शरीरकी सुघडतासे शंकरकी होड करनेवाला स्थित हुआ ॥ ५२ ॥ [एक चरण आगे एक पीछेकर खडे होनेको आलीढ कहते हैं] ।

आलीढम्=आ+लिह्+क्त ।

रघोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः ॥
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम् ॥ ५३ ॥

अन्वयः । रघोः अवष्टम्भमयेन पत्रिणा हृदि क्षतः अमर्षणः गोत्रभित् अपि, नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुषि अमोघं सायकं समधत्त ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । रघोः अवष्टम्भमयेन पत्रिणा हृदि क्षतेन अमर्षणेन गोत्रभिदा अपि, नवाम्बुदानीकमुहूर्तलांछने धनुषि अमोघः सायकः समधीयत ॥ ५३ ॥

रघोः तादृशेन स्तंभवत् सुविशालेन शरेण वक्षसि ताडितः सन्, पुरन्दरः क्रोधात् अधीरो बभूव धनुषि अमोघं शरं संहितवात्, तच्च तस्य दिव्यकान्तिमण्डलभासुरं धनुः नवपयोदपटले इव शुशुभे इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—रघुके स्तम्भ बाणसे हृदयमें घाव होनेके कारण क्रोधको प्राप्त हो इन्द्रनेभी नवीनमेघोंके समूहको क्षणमात्र शोभित करनेवाले अपने धनुषपर सफल बाण चढाया ॥ ५३ ॥

पत्रिणा=पत्र+इनि । अमर्षणः=अ+मृष्+युच् ।

दिलीपसूनोः स बृहद्भुजांतरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः ॥
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः । भीमासुरशोणितोचितः सः आशुगः दिलीपसूनोः बृहत् भुजान्तरं प्रविश्य, अनास्वादितपूर्वं मनुष्यशोणितं कुतूहलेन इव, पपौ ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । भीमासुरशोणितोचितेन तेन आशुगेन दिलीपसूनोः बृहत् भुजान्तरं प्रविश्य, × × × × पपे ॥ ५४ ॥

भीषणदानवानां रुधिरपाने चिरमभ्यस्तः सः खलु इन्द्रशरः रघुवक्षसि प्रविश्य कुतूहलादिव अननुभूतपूर्वं मनुष्यशोणितं पपौ इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—भयंकर असुरोंके रुधिर पीने योग्य उस बाणने दिलीपपुत्रके बडे हृदयमें प्रवेश कर खेलसेही पहिले न स्वाद लियेहुए मनुष्यके रुधिरको पान किया ॥ ५४ ॥

आशुगः=आशु+गम्+ड । पा=पाने । पिबति । पपौ । अपिबत् । अपात् । कर्मणि पीयते । पानीयम् । पातुम् । पेयम् । पिबन् ।

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ ॥
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ॥५५॥

अन्वयः । कुमारविक्रमः कुमारः (रघुः) अपि, सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुलौ शचीपत्रविशेषकांकिते, हरेः भुजे, स्वनामचिह्नं सायकं निचखान ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । कुमारविक्रमेण कुमारेण अपि, सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुलौ शचीपत्रविशेषकांकिते हरेः भुजे, स्वनामचिह्नः सायकः निचख्ने ॥ ५५ ॥

यत्र इन्द्राणी स्नेहेन कुंकुमादिभिः मनोहराः पत्रलेखाः विन्यस्तवती ऐरावतस्य आस्फालनेन कर्कशाङ्गुलौ इन्द्रस्य तत्र बाहौ स्कंदतुल्यपराक्रमं रघुरपि स्वनामाङ्कितशरं निखातवान् इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—स्वामिकार्तिककी समान पराक्रमी रघुने भी ऐरावतके थपकारनेसे कठिन उंगलीवाली शचीके पत्ररचनासे अंकित इन्द्रकी भुजामें अपने नामके चिह्नका बाण गाड दिया ॥ ५५ ॥

निचखान=नि+खन्+लिट् ।

जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ॥
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव ॥ ५६ ॥

अन्वय० । सः (रघुः) मयूरपत्रिणा अन्येन शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजं जहार, सः(इन्द्रः) च सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणात् इव, तस्मै भृशं चुकोप ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) मयूरपत्रिणा अन्येन शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजः जह्रे, तेन च सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणात् इव, तस्मै भृशं चुकुपे ॥ ५६ ॥

रघुणा तस्य रथस्य वज्रध्वजे छिन्ने रघोः उपरि इन्द्रस्य तथा महान् क्रोधो जातः यथा कोपि बलादागत्य सुरश्रियः केशपाशं छिनत्ति, तदा तस्योपरि इन्द्रस्य रोषो जायते इति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०—उस रघुनें फिर मोरपंखवाले दूसरे बाणसे इन्द्रका वज्रसदृश ध्वज हरण किया तब वह इन्द्र देवताओंकी लक्ष्मीके बाल बलसे काटनेवालेकी समान उसपर क्रोधित हुआ ॥ ५६ ॥

शक्रः=शक्+रक् । कुप्=कुप्यति । चुकोप । अकुप्यत् । अकुपत् । भावे कुप्यते। सनि चुकोपिषति । कृ० कोपनीयम् । कोपनम् । कोपः । कोपितुम् । संकुप्य । कुप्यन् ।

तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः ॥
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः ॥५७॥

अन्वयः । जयैषिणोः तयोः (रघ्विन्द्रयोः) गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः अधोमुखैः ऊर्ध्वमुखैः च पत्रिभिः उपान्तस्थितसिद्धसैनिकं तुमुलं युद्धं बभूव ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । जयैषिणोः तयोः, गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः अधोमुखैः ऊर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः उपान्तस्थितासिद्धसैनिकेन तुमुलेन युद्धेन बभूवे ॥ ५७ ॥

तयोः पक्षयुक्तपुंखाः शराः पक्षवन्तः सर्पाः इव भयम् विस्तारयन्तः महावेगेन प्रचलन्ति स्म, इत्थं तयोः रोमहर्षणं युद्धं प्रवृत्ते देवाः रघुसैनिकाश्च तत् आश्चर्यजनकं समरं ददृशुः। इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–जीतनेकी इच्छा करनेवाले उन दोनोंका पंखवाले सर्पोकी नाइ भयानक ऊपर और नीचे जानेवाले बाणोंसे सिद्ध और सेनाओंसे घिरी सीमावाला युद्ध हुआ ॥ ५७ ॥

गरुत्मन्तः=गरुत्+मतुप् । तुमुलं=तु+मुलक् ।

अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः ॥
शशाक निर्वापयितुं न वासवः स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः॥

अन्वयः । अम्बुदः अद्भिः वह्निम् इव वासवः आतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः दुष्प्रसहस्य तेजसः आश्रयं स्वतश्च्युतं तं रघुं निर्वापयितुं न शशाक ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । अंबुदेन इव वासवेन××××न शेके ॥ ५८ ॥

तोयदः यथा स्वतश्च्युतं तेजःप्रदीप्तं वज्रं निरन्तरजलधारासंपातैः शमयितुं नैव समर्थो भवति तथा पुरन्दरोपि आत्मनः अंशसम्भूतमपि तं रघुं शस्त्रसम्पातैः शमयितुं न शशाकेति सरलार्थः॥५८॥

भा०–जिसप्रकार मेघ जलद्वारा अपनेसे उत्पन्न हुई अग्निको नहीं बुझासक्ता इसी प्रकार इन्द्र निरन्तर अस्त्रोंकी वर्षाकरके महादुस्सह तेजके आश्रय अपने अंशसे उत्पन्न हुए उस रघुको निवारण करनेको समर्थ न हुआ ॥ ५८ ॥

वासवः=वसु+अण् । आश्रयम्=आ+श्रि+अच् । निर्वापयितुम्=निर्+वा+ (णिच्) तुम् ।

ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ॥
रघुः शशाङ्कार्धमुखेन पत्रिणा शरासनज्यामलुनाद्विडौजसः ॥५९॥

अन्वयः । ततः रघुः हरिचन्दनांकिते बिडौजसः प्रकोष्ठे प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीं शरासनज्यां शशांकार्धमुखेन पत्रिणा अलुनात् ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । ततः रघुणा हरिचन्दनांकिते बिडौजसः प्रकोष्ठे प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनी शरासनज्या शशांकार्धमुखेन पत्रिणा अलूयत ॥ ५९ ॥

निरन्तरं कर्षणात् पुरन्दरस्य प्रकोष्ठभागे सागरमथनोत्पन्नं भीमं घर्घरं शब्दमिव तीव्रं ज्यानिर्घोषं मुहुः उत्थापयतः तस्य इन्द्रधनुषः ज्यां रघुः अर्धचन्द्रमुखेन शरेण चिच्छेद, इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—तब रघुने हरिचंदनयुक्त इन्द्रके पहुंचेपर मथते हुए सागरकी समान घोर शब्दायमान धनुषकी प्रत्यञ्चाको अर्धचंद्रमुखवाले बाणसे छेदन करदिया ॥ ५९ ॥

प्रकोष्ठे=प्र+कुष्+स्थन् । बिडौजसः=विड् वा विश्+क । लू=छेदने । लुनाति–लुनीते । लुलाव लुलुवे । अलुनात्–अलुनीत । अलावीत्–अलविष्ट । क० लूयते । कृ० लवनीयम् । लवः । लवितुम् । संलूय । लव्यम् । लुनन् । लूयमानः ।

स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः ॥
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे ॥ ६० ॥

अन्वयः । विवृद्धमत्सरः सः (इन्द्रः) चापम् उत्सृज्य प्रबलस्य विद्विषः प्रणाशनाय महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामंडलम् अस्त्रम् आददे ॥ ६० ॥

वाच्यप० । विवृद्धमत्सरेण तेन चापम् उत्सृज्य प्रबलस्य विद्विषः प्रणाशनाय××× आददे ॥ ६० ॥

धनुर्ज्याछेदनात् इन्द्रः प्रदीप्ततररोषो बभूव, तत् छिन्नमौर्वीकं धनुः त्यक्त्वा तं दुर्जयं शत्रुं प्रणाशयितुं ज्वालामंडलभासुरमत्यर्थं वज्रं जग्राह इति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—क्रोध बढनेसे उस इन्द्रने धनुषको त्याग प्रबलशत्रुके नाश करनेके निमित्त पर्वतोंके पंख उखाडनेमें समर्थ चमकते हुए कान्तिमण्डलवाले वज्रको ग्रहण किया ॥ ६० ॥

महीध्राः=मही+धृ+क ।

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ॥
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः ॥ ६१ ॥

अन्वयः । तेन (वज्रेण) वक्षसि भृशं ताडितः रघुः सैनिकाश्रुभिः सह भूमौ पपात, (सः-एव) निमेषमात्रात् तद्व्यथाम् अवधूय, सैनिकहर्षनिःस्वनैः सह उत्थितः ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तेन वक्षसि भृशं ताडितेन रघुणा सैनिकाश्रुभिः सह भूमौ पेते, (तेन एव) निमेषमात्रात् तद्व्यथाम् अवधूय, सैनिकहर्षनिःस्वनैः सह उत्थितम् ॥ ६१ ॥

तेन वज्रेण वक्षसि आहतो रघुः यदा पृथिव्यां पपात तदा तत्सैनिकाः उच्चै रुरुदुः, निमेषमात्रेणैव तां वज्रवेदनां विहाय यदा रघुः पृथ्वीतलादुदतिष्ठत् तदा तत्सैनिकाः हर्षात् सिंहघोषं चक्रुः इति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—उस वज्रसे हृदयमें अत्यन्त ताडित हुआ रघु सेनाके आँसुओंके साथ पृथ्वीमें गिरा फिर एक निमेषमेंही उस पीडाको बिताकर वीरोंके हर्षशब्दके साथ उठखडा हुआ ॥ ६१ ॥

पत्–पतने । पतति । पपात । अपतत् । अपप्तत् । भावे । पत्यते । कृ०पतनीयम् । पतनम् । पतितुम् । पतितव्यम् । सम्पत्य । पतन् । ण्यन्तस्य पातनीयमित्यादि ।

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः ॥
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥ ६२ ॥

अन्वयः । वृत्रहा तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरं तस्थुषः अस्य वीर्यातिशयेन तुतोष हि गुणैः सर्वत्र पदं निधीयते ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । वृत्रघ्ना×+तुतुषे, गुणाः पदं निदधति ॥ ६२ ॥

तां वज्रवेदनामपि क्षणेनैव दूरीकृत्य पुनरेव रघुः तीक्ष्णैः शस्त्रैः भीषणाय युद्धाय समुद्योगं चकार, पुरन्दरस्तस्य लोकोत्तरं तत्पराक्रममवलोक्य तस्मिन् प्रीतो बभूव हि सर्वत्र गुणिनः स्वमाहिम्ना प्रतिष्ठां लभन्ते, इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०--इन्द्र इस प्रकार शस्त्र चलानेमें कठोर बहुत कालतक युद्धमें स्थित रहनेवाले इस (रघुके) अत्यन्त पराक्रमसे संतुष्ट हुआ, कारण कि गुण सभी स्थानमें प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ ६२ ॥

निष्ठुरे=नि+स्था+उरच् । तुष=तुष्यति । तुतोष । अतुषत् । (भावे) तुष्यते । कृ० तोषणीयम् । तोषः । तोष्टुम् । तोष्टव्यम् । संतुष्य । तुष्यन् ।

असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम् ॥
अवेहि मां प्रीतमृते तुरंगमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः॥६३॥

अन्वयः । सारवत्तया अद्रिषु अपि असंगं मे आयुधं त्वदन्येन न विसोढम्, मां प्रीतम् अवेहि तुरङ्गमात् ऋते किम् इच्छसि इति वासवः स्फुटमाह ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । त्वदन्यः न विसोढवान् अहं प्रीतः (त्वया) अवेयै (त्वया) इष्यते, वासवेन उच्यते ॥ ६३ ॥

हे राजन्यकुमार ! यतः पर्वतपक्षानपि विभेद यच्च त्रिलोकीमध्ये न कोपि सोढुं शशाक तत् अमोघमपि मे वज्रं त्वयि व्यर्थतां यातम् अतस्ते पराक्रमातिशयेन प्रसन्नोस्मि इमञ्च तुरङ्गमं वर्जयित्वा त्वं किमिच्छसि इति देवराजो रघुं स्पष्टमाहेति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०--बलसे पर्वतोंपरभी न रुकनेवाला मेरा वज्र तेरे सिवाय औरने नहीं सहा इस्से मैं प्रसन्न हूं घोडेको छोडकर तेरी क्या इच्छा है सो मांग यह इन्द्रने प्रगट कहा ॥ ६३ ॥

सारवत्तया--सार+मतुप्+तल् । तुरंगमः=तुर+ गम्+खच् ।

ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम् ॥
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः । ततः निषंगात् असमग्रम् उद्धृतं सुवर्णपुंखद्युतिरंजितांगुलिम् इषुं प्रतिसंहरन् प्रियंवदः नरेन्द्रसूनुः (रघुः) सुरेश्वरं प्रति अवदत् ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । प्रियंवदेन नरेन्द्रसूनुना××××प्रतिसंहर्ता सुरेश्वरः प्रत्यौचत ॥ ६४ ॥

त्यक्तयुद्धस्य इन्द्रस्य तथा सान्त्ववचनं श्रुत्वा रघुः निषङ्गात् अर्द्धनिस्सारितं सुवर्णपुंखप्रभाभास्वरं वाणं पुनरेव तूणीरे स्थापयन् विनीतं पुरन्दरं प्रियवचनैः प्रत्युवाचेति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—तव तरकसमें से आधे निकाले हुए वाणको जो कि सुवर्णके पुंखोंकी कान्तिसे अंगुलियोंको कान्तिमान् करता था फिर (तरकसमें) रखकर मनोहर वाणीयुक्त राजपुत्र देवेन्द्रसे बोला ॥ ६४ ॥

इषुः=इष+उ ।

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि ॥
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः । प्रभो ! यदि (त्वम्) अश्वम् अमोच्यं मन्यसे ततः(तर्हि)(त्वया) अजस्रदीक्षाप्रयतः सः मद्गुरुः विधिना एव कर्मणि समाप्ते (सति) क्रतोः अशेषेण फलेन युज्यताम् ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । हे प्रभो यदि त्वया अश्वः अमोच्यः मन्यते, ततः अजस्रदीक्षाप्रयतेन मद्गुरुणा++ युज्यताम् ॥ ६५ ॥

हे इन्द्र ! यदि अश्वप्रत्यर्पणं नैव बुध्यसे तर्हि यथा मे पिता इमम् अश्वं विनापि अस्य अश्वमेधयज्ञस्य सम्पूर्णं फलं लभेत तथा विधीयतामिति कृते द्वयोरेव कार्यसिद्धिः भवेदिति सरलार्थः॥६५॥

भा०—हे प्रभो ! यदि तुम घोडा देना नहीं चाहते तो यज्ञदीक्षामें निरन्तर उद्योगी हमारे पिता विधिपूर्वकही पूर्ण किये हुए इस यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त हों॥ ६५ ॥

युज्=युज्यते । युयुजे । अयुज्यत । अयुक्त । भावे युज्यते । कृ० योजनीयम् । योगः । योक्तुम् । संयुज्य । योज्यम् । युज्यमानः ।

यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ॥
तवैव संदेशहराद्विशां पतिः शृणोति लोकेश ! तथा विधीयताम् ॥६६॥

अन्वयः । सदोगतः त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः विशां पतिः (दिलीपः) यथा तव एव सन्देशहरात् इमं वृत्तान्तं शृणोति, लोकेश ! (त्वया) तथा च विधीयताम् ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । सदोगतेन त्रिलोचनैकांशतया दुरासदेन विशां पत्या यथा तव एव सन्देशहरात् अयं वृत्तान्तः श्रूयते, हे लोकेश ! (त्वम्) तथा च विधेहि ॥ ६६ ॥

पिता मे दिलीपः यज्ञदीक्षिततया अष्टमूर्तेः शिवस्य यजमानमूर्तिरूपेण स्थितिं करोति, अधुना तत्समीपे अन्यः कोपि गन्तुं न शक्नोति, अतः तवैव चरो गत्वा मम पित्रे सर्वमिमं चरित्रं कथयतु इति मे त्वयि विज्ञप्तिः इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०—और सभामें बैठे शिवजीके एक अंशसे दुस्सह महाराज दिलीप जिसप्रकार तुम्हारेही दूतसे यह वृत्तान्त सुने हे इन्द्र तुम वही करो ॥ ६६ ॥

सन्देशहरः=सन्देश+हृ+अच् ।

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान्रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ ॥
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

अन्वयः । मातलिसारथिः (इन्द्रः) रघोः कामं तथा इति प्रतिशुश्रुवान्, यथागतं ययौ सुदक्षिणासूनुः अपि नातिप्रमनाः नृपस्य सदोगृहं न्यवर्तत ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । मातलिसारथिना प्रतिशुश्रुवे, सुदक्षिणासूनुना नातिप्रमनसा (सता) न्यवृत्यत ॥ ६७ ॥

"एवं भवतु" इति वचनेन रघोः विज्ञप्तिमंगीकृत्य यथास्थानं गते इन्द्रे रघुरपि नातिप्रसन्नहृदयः नृपस्य सदोगृहमभ्यगच्छत्, इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०—मातलिसारथिवाला इन्द्र रघुसे "ऐसेही होगा" यह प्रतिज्ञा कर यथास्थान को गया, सुदक्षिणाका पुत्रभी अतिप्रसन्नचित्त न होकर राजाके सभामन्दिरको फिरा ॥ ६७ ॥

प्रतिशुश्रुवान्=प्रति+श्रु+क्वसु ।

तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः ॥
परामृशन्हर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणांकितम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः । हरेः शासनहारिणा प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः हर्षजडेन पाणिना, कुलिशव्रणांकितम् तदीयम् अंगं परामृशन् तं (रघुम्) अभ्यनन्दत् ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । हरेः शासनहारिणा प्रथमं प्रबोधितेन, हर्षजडेन पाणिना, कुलिशव्रणांकितं तदीयम् अंगं, परामृशता (सता) प्रजेश्वरेण सः अभ्यनन्द्यत ॥ ६८ ॥

रघोरागमनात् पूर्वमेव दिलीपः पुरन्दरदूतमुखात् सर्वं वृत्तान्तं ज्ञातवान् अधुना समीपमागतं तं सुतमालिंगनादिभिः अभिनन्दितवान् वज्रप्रहारव्रणयुक्तं सुतस्य शरीरं करतलेन सदयं स्पृशन् आनन्दयुक्तो बभूवेति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०—इन्द्रके दूतसे प्रथमही जनाया हुआ, प्रजापति (राजा) हर्षसे जडीभूत हुए हाथसे वज्रके घावसे चिह्नित उस (रघु) के अङ्गको छूता हुआ उसे सराहनेलगा ॥ ६८ ॥

प्रबोधितः=प्र+बुध् (णिच्) क्त । अभ्यनन्दत्=अभि+नन्द् +लङ् ।

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ॥
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ॥ ६९ ॥

अन्वयः । महनीयशासनः आयुषः क्षये दिवं समारुरुक्षुः क्षितीशः, सोपानपरंपराम् इव, इति महाक्रतूनां नवाधिकां नवतिं ततान ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । महनीयशासनेन आयुषः क्षये दिवं समारुरुक्षुणा क्षितीशेन, सोपानपरंपरा इव, इति महाक्रतूनां नवाधिका नवतिः तेने ॥ ६९ ॥

पूजनीयाज्ञः स राजा एवं नवनवतिसंख्यकानश्वमेधयज्ञान् यथाविधि कृत्वा देहांते तेषां स्वर्गारोहणस्य सोपानपङ्क्तीः अकरोत् इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०—इस प्रकार माननीयआज्ञावाले अवस्थाके अन्तमें स्वर्गजानेकी इच्छावाले राजाने सीढियोंकी पंक्तियोंकी समान महायज्ञोंकी निन्यानवें पंक्ति पूरी की ॥ ६९ ॥

महनीय=मह+अनीयर् ।

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ॥
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ ७० ॥

अन्वयः । अथ विषयव्यावृत्तात्मा सः (दिलीपः) यूने सूनवे यथाविधि सितातपवारणं नृपतिककुदं दत्त्वा तया देव्या (सुदक्षिणया) सह मुनिवनतरुच्छायां शिश्रिये, हि (यतः) गलितवयसाम् इक्ष्वाकूणाम् इदं हि कुलव्रतम् (अस्ति) ॥ ७० ॥

वाच्यप० । अथ विषयव्यावृत्तात्मना तेन यूने सूनवे यथाविधि सितातपवारणं नृपतिककुदं दत्त्वा, तया देव्या सह मुनिवनतरुच्छाया शिश्रिये, हि गलितवयसाम् इक्ष्वाकूणाम् अनेन कुलव्रतेन (भूयते) ॥ ७० ॥

अथ स वृद्धो राजा सुयोग्यं पुत्रं रघुं साम्राज्ये अभिषिच्य सर्वांश्च विषयान् सन्त्यज्य परमपुरुषार्थलाभाय सस्त्रीकः तपोवने वासमकरोत् यतः वार्द्धके वयसि इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां स एव कुलाचारः इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०—अन्तको विषयोंसे विरक्तचित्तवाले उस राजाने युवा पुत्रको विधिपूर्वक राज चिह्न (श्वेत छत्र) देकर रानी सुदक्षिणा सहित मुनिवनके वृक्षोंकी छायाका सेवन किया, कारण कि वृद्धावस्थामें इक्ष्वाकुके वंशका यही कुलव्रत है ॥ ७० ॥

व्यावृत्तः=वि+आ+वृत्+क्त । शिश्रिये=श्रि+लिट् ।

इति श्रीकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः।

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ ॥
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ॥ १ ॥

अन्वयः। सः (रघुः) गुरुणा दत्तं राज्यं प्रतिपद्य, दिनान्ते सवित्रा निहितं तेजः (प्रतिपद्य) हुताशनः इव अधिकं बभौ ॥ १ ॥

वाच्यप०। तेन (रघुणा) गुरुणा दत्तं राज्यं प्रतिपद्य, दिनान्ते सवित्रा निहितं तेजः (प्रतिपद्य) हुताशनेन इव, अधिकं बभे ॥ १ ॥

सायं च वह्निः यथा स्वतेजसा रविनिक्षिप्तया च प्रभया दीप्यते, रघुरपि तथा स्वतेजसा पितृदत्तया राजलक्ष्म्या च अत्यर्थं शुशुभे इति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०–वह रघु पिताके दिये हुए राज्यको प्राप्त हो; सायंकालमें सूर्यके तेजको धारण किये अग्निकी समान शोभित हुआ ॥ १ ॥

सवित्रा=सू+तृच्।

दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम् ॥
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ॥ २ ॥

अन्वयः। दिलीपानन्तरं राज्ये तं (रघुं) प्रतिष्ठितं निशम्य, पूर्वं राज्ञां हृदये प्रधूमितः (अग्निः) उत्थितः इव, (अभूत्) ॥ २ ॥

वाच्यप०। दिलीपानन्तरं राज्ये तं प्रतिष्ठितं निशम्य, पूर्वं राज्ञां हृदये प्रधूमितेन अग्निना उत्थितेन इव (अभावि) ॥ २ ॥

दिलीपसमये वैरिनृपतीनां हृदयेषु दुःखाग्निः ज्वलनोन्मुख इव आसीत, अथ रघौ सिंहासनारूढे तु प्रज्वलित इव अभवत् इति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०–दिलीपके अनन्तर राज्यसिंहासनमें रघुको स्थित सुनकर राजाओंके हृदयमें प्रथमकी धधकी हुई सधूम अग्नि मानो प्रज्वलित हुई ॥ २ ॥

प्रधूमितः=प्र+धूम+इतच्।

पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपङ्क्तयः ॥
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः ॥ ३ ॥

अन्वयः। सप्रजाः प्रजाः पुरुहूतध्वजस्य इव, तस्य (रघोः) नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः (अत एव) उन्नयनपंक्तयः (सत्यः) ननन्दुः ॥ ३ ॥

वाच्यप० । सप्रजाभिः प्रजाभिः पुरुहूतध्वजस्य इव, तस्य नवाभ्युत्थानदर्शनीभिः (अत एव) उन्नयनपंक्तिभिः (सतीभिः) ननन्दे ॥ ३ ॥

यथा राजद्वारि इन्द्रध्वजे समुत्थापिते सति मनुष्याः नेत्रैः तं पश्यन्तः परमानन्दं लभन्ते एवं तस्मिन् अभिनवे महाराजे सिंहासनारूढे सति, सर्व्वाः प्रजाः तं पश्यन्त्यः परमानन्दमापुः । इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—संतानवती प्रजा इन्द्रके ध्वजाकी समान उस रघुका नवीन ऐश्वर्य देखती हुई ऊंचे नेत्रोंकी पंक्तिवाली हो प्रसन्न हुई ॥ ३ ॥

पुरुहूतः=पुरु+हूत=ह्वे+क्त ।

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ॥
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम् ॥ ४ ॥

अन्वयः । द्विरदगामिना तेन (रघुणा) पित्र्यं सिंहासनम् अखिलम् आरिमंडलं च(एतत् द्वयं) समम् एव समाक्रान्तम् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । द्विरदगामी स पित्र्यं सिंहासनम् अखिलम् आरिमंडलं च समम् एव समाक्रान्तवान् ॥ ४ ॥

नागेन्द्र इव धीरोद्धतगमनशीलः स रघुः यावदेव पितृसिंहासनम् अधिष्ठितवान् तावदेव शत्रुराष्ट्रमपि आक्रान्तवानिति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—सिंहकी समान चलनेवाले उस रघुने पिताका सिंहासन और संपूर्ण शत्रुमंडल एकसाथ आक्रमण किया ॥ ४ ॥

द्वयम्=द्वि+तयप् । समाक्रान्तम्=सम्+आ+क्रम्+क्त ।

छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम् ॥
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम् ॥ ५ ॥

अन्वयः । किल पद्मा स्वयं अदृश्या (सती) साम्राज्यदीक्षितं तम् छायामंडललक्ष्येण पद्मातपत्रेण भेजे ॥ ५ ॥

वाच्यप० । किल पद्मया स्वयम् अदृश्यया (सत्या) साम्राज्यदीक्षितः सः छायामंडललक्ष्येण पद्मातपत्रेण भेजे ॥ ५ ॥

विष्णुप्रिया लक्ष्मीः अदृश्यभावेन दिव्यप्रभापुञ्जदर्शनेन सिंहासनाधिष्ठितस्य तस्य शिरसि दिव्यकमलमयम् छत्रं धृतवती इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—लक्ष्मीने आप अप्रगट भावसे सम्राट्पनमें दीक्षित उस रघुको प्रभामण्डलसे अनुभव होनेवाले कमलछत्रसे सेवन किया ॥ ५ ॥

साम्राज्य=सम्+राज्+क्विप् । ष्यञ् ।दीक्षितम्=दीक्ष्+क्त ।

परिकल्पितसांनिध्या कालेकाले च बन्दिषु ॥
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ॥ ६ ॥

अन्वयः । कालेकाले बन्दिषु परिकल्पितसान्निध्या सरस्वती च स्तुत्यं (तं, रघुम्) अर्थ्याभिः स्तुतिभिः उपतस्थे ॥ ६ ॥

वाच्यपरि० । कालेकाले बन्दिषु परिकल्पितसान्निध्यया सरस्वत्या च स्तुत्यः (सः रघुः) स्तुतिभिः अर्थ्याभिः उपतस्थे ॥ ६ ॥

तद्गुणाकृष्टा देवी सरस्वती यथाकालं तदीयवंदीजनकंठे आविर्भूता सती सदर्थयुक्तैः स्तुतिवाक्यैः तं नृपं सेवयामासेति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—समय समयमें बन्दिजनोंके निकट प्राप्त होकर सरस्वती स्तुतियोग्य उस रघुको अर्थवान् स्तुतियोंसे सेवन करती हुई ॥ ६ ॥

वन्दिषु=वदि+इन् । परिकल्पित=परि+क्लृप्+(णिच्) क्त ।

मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः ॥
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुंधरा ॥ ७ ॥

अन्वयः । यद्यपि वसुन्धरा मान्यैः मनुप्रभृतिभिः राजभिः भुक्ता (बभूव) तथापि तस्मिन् (रघौ) अनन्यपूर्वा इव आसीत् ॥ ७ ॥

वाच्यपरि० । यद्यपि मान्यैः मनुप्रभृतिभिः राजभिः भुक्तया अपि वसुन्धरया (बभूवे) तथापि तस्मिन् अनन्यपूर्वया इव, अभूयत ॥ ७ ॥

यद्यपि वैवस्वतमनोः आरभ्य दिलीपपर्य्यन्ताः बहवो नृपतयः वसुधां भुक्तवन्तः तथापि सा रघुं पतिं लब्ध्वा अनन्यभुक्ता नवकामिनीव अधिकां शोभां दधाविति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—यद्यपि पृथ्वी मनु आदि राजाओंसे भोगीहुईभी थी, परन्तु तिस रघुके शासन कालमें मानों पहले किसीने नहीं भोगी ऐसी हुई ॥ ७ ॥

वसुंधरा=वसु+धृ+खच्+टाप् ।

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः ॥
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः ॥ ८ ॥

अन्वयः । हि सः (रघुः) युक्तदंडतया, न अतिशीतोष्णः दक्षिणः नभस्वान् इव, सर्वस्य लोकस्य मनः आददे ॥ ८ ॥

वाच्यप० । हि तेन युक्तदंडतया, न अतिशीतोष्णेन दक्षिणेन नभस्वता इव, सर्वस्य लोकस्य मनः आददे ॥ ८ ॥

यथाहि नातिशीतः नात्युष्णश्च सुभगो वसन्तवायुः सर्वेषामेव मनांसि विकाशयति तथा रघुः दण्डयेषु यथापराधं दण्डं प्रणयन् प्रजानां मनांसि आह्लादयामास इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-जिस कारण कि नीति पूर्वक वह रघु यथोचित दंडदेनेसे न अतिशीत न अति गरम दक्षिणपवनकी समान सबका मन हरता हुआ ॥ ८ ॥

नभस्वान्=नभस्+मतुप् ।

मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ ॥
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः ॥ ९ ॥

अन्वयः । तेन (रघुणा) गुणाधिकतया, सहकारस्य फलेन पुष्पोद्गमे इव, गुरौ प्रजाः मंदोत्कंठाः कृताः (आसन्) ॥ ९ ॥

वाच्यप० । तेन गुणाधिकतया, सहकारस्य फलेन पुष्पोद्गमे इव, गुरौ प्रजाभिः मंदोत्कंठाभिः कृताभिः (अभूयत) ॥ ९ ॥

यथा लोकः आम्रफलं लब्ध्वा रसालमुकुलस्य अभावोत्पन्नदुःखं न गणयति, तथा सर्वाः प्रकृतयः पितृतोपि गुणाधिकं रघुं लब्ध्वा दिलीपविरहदुःखं न गणयामासुरिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-रघुने गुणोंकी अधिकतासे पितामें प्रजाको मन्द उत्साहवाली कर दिया जिसप्रकार आमका फल मौलमें (मन्दउत्साह कर देता है) ॥ ९ ॥

उत्कंठा=उत्+कठि+अ ।

नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम् ॥
पूर्व एवाभवत्पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः ॥ १० ॥

अन्वयः । नयविद्भिः नवे राज्ञि सत् असत् च उपदर्शितम्, तस्मिन् (रवौ) पूर्वः एव पक्षः अभवत्, उत्तरः (पक्षः) न (अभवत्) ॥ १० ॥

वाच्यप० । नवे राज्ञि नयविदः सदसच्च उपदर्शितवंतः तस्मिन् पूर्वेण एव पक्षेण (अभूयत) उत्तरेण न (अभूयत) ॥ १० ॥

सम्पूर्णनीतिशास्त्रतत्त्वज्ञाः वृद्धाः सचिवाः तं नवनृपतिं रघुं सरलं कुटिलं च नीतिमार्गं सम्यक् बोधयामासुः, रघुः कुटिलं मार्गं तिरस्कृत्य सरलमेव नीतिमार्गं स्वीकृतवान्, इति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-नीति जानने वालोंने नये राजाको सत और असत दोनों (मार्ग) दिखाये उस रघुने पहला पक्ष स्वीकार किया दूसरा नहीं ॥ १० ॥

नयविद=नय+विद्+क्विप् ।

पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः ॥
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत् ॥ ११ ॥

अन्वयः । पञ्चानाम् अपि भूतानां गुणाः उत्कर्षं पुपुषुः, तस्मिन् (रवौ) नवे महीपाले (सति) सर्वम् (एव, वस्तु) नवम् इव, अभवत् ॥ ११ ॥

वाच्यपरि० । पञ्चानाम् अपि भूतानां गुणैः उत्कर्षः पुपुषे, तस्मिन् नवे महीपाले (सति) सर्वेण (एव, वस्तुना) नवेन इव, अभूयत ॥ ११ ॥

यत्प्रभावात् क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमरूपं भूतजातमपि अपूर्वां गुणसमृद्धिं लेभे, एवञ्च तदा सम्पूर्णमेव वस्तु समन्तात् अनिर्वचनीयमाहात्म्यपरम्परया शुशुभे, इति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०-पांच भूतोंके गुणभी उत्कर्षताको प्राप्त हुए, उस नये राजामें सब वस्तु नईकी समान होती हुई ॥ ११ ॥

महीपाले=मही+पाल+अण् ।

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ॥
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥ १२ ॥

अन्वयः । यथा प्रह्लादनात् चन्द्रः (भवति) यथा प्रतापात् तपनः (भवति) तथा एव प्रकृतिरंजनात् सः राजा (रघुः) अन्वर्थः अभूत् ॥ १२ ॥

वाच्यप० । यथा प्रह्लादनात् चन्द्रेण (भूयते) यथा प्रतापात् तपनेन (भूयते) तथा एव प्रकृतिरंजनात् तेन राज्ञा अन्वर्थेन अभावि ॥ १२ ॥

यथा चंद्रः मधुरैः करैः सर्वान् लोकान् प्रसादयन् सार्थकं नाम धत्ते, यथा तेजोनिधिः रविः स्वतेजसा लोकान् तापयन् यथार्थं नाम धत्ते, तथा रघुरपि सर्व्वाः प्रकृतीः रञ्जयन् राजा इति सार्थकं नाम दधावििति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०-जैसे आनन्द देनेसे चंद्रमा, तपानेसे सूर्य, इसी प्रकार प्रजारंजन करनेसे वह यथार्थ राजा (नाम) हुआ ॥ १२ ॥

चन्द्रः=चदि+रक् । प्रह्लादनात्=प्र+ह्लाद्+णिच्+ल्युट् । तपनः=तप+ल्युट् ।

कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने ॥
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥ १३ ॥

अन्वयः । तस्य लोचने कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले (आस्ताम्) (तस्य) चक्षुष्मत्ता तु सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना शास्त्रेण (आसीत्) ॥ १३ ॥

वाच्यप० । तस्य लोचनाभ्यां कामं कर्णान्तविश्रान्ताभ्यां विशालाभ्यां (अभूयत) (तस्य) चक्षुष्मत्तया तु सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना शास्त्रेण (अभूयत) ॥ १३ ॥

यद्यपि रघोः दीर्घे नेत्रे कर्णायते आस्तां तथापि स ताभ्यां नेत्राभ्यां प्रकृतनेत्रशाली न बभूव प्रकृतनेत्रशालिता तु अतीन्द्रियार्थदर्शिना ज्ञानरूपेण चक्षुषा अभवत्, इति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०-उसके दोनों नेत्र कान तक फैले हुए निश्चय थे, परन्तु उसकी नेत्रवत्ता तो सूक्ष्म कार्यकी विधि दिखानेवाले शास्त्रसेही थी ॥ १३ ॥

दर्शिना=दृश्+णिनि ।

लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता ॥
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥ १४ ॥

अन्वयः । लब्धप्रशमनस्वस्थम् एनं पंकजलक्षणा शरत् द्वितीया पार्थिवश्रीः इव समुपस्थिता ॥ १४ ॥

वाच्यप० । पंकजलक्षणया शरदा द्वितीयया पार्थिवश्रिया इव, लब्धप्रशमनस्वस्थः एषः (रघुः) उपतस्थे ॥ १४ ॥

राज्ये शत्रुनिराकरणेन सर्वथा शांतिं संस्थाप्य यदा स रघुः स्वस्थचित्तस्सन् अवतस्थे तदा शरत् प्रफुल्लकमलरूपैर्लक्षणैः अपरा राजलक्ष्मीरिव तं सेवितुमुपस्थिता इति, सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-प्राप्त किये राज्यकी रक्षासे स्वथ हुए इस रघुको कमलके लक्षणोंवाली शरद ऋतु दूसरी राज्यलक्ष्मीकी समान प्राप्त हुई ॥ १४ ॥

शरत्=शॄ+अदि ।

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः ॥
प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद्व्यानशे दिशः ॥ १५ ॥

अन्वयः । निर्वृष्टलघुभिः मेघैः मुक्तवर्त्मा (अत एव) सुदुःसहः तस्य (रघोः) प्रतापः भानोः च (प्रतापः) युगपत् दिशः व्यानशे ॥ १५ ॥

वाच्यपरि० । निर्वृष्टलघुभिः मेघैः मुक्तवर्त्मना सुदुःसहेन तस्य प्रतापेन भानोः च (प्रतापेन) युगपत् दिशः व्यानशिरे ॥ १५ ॥

शरत्काले जलशून्यतया मेघाः रविमार्गात् तिरोदधुः, ततश्च प्रचण्डतरस्य सूर्यस्य तेजोभिः सम्पूर्णमेव गगनमण्डलमापूरितं, तदा दिग्विजयप्रवृत्तो रघुरपि प्रतापैः सकलमेवादिग्मण्डलमापूरयामास, इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-वर्षजानेसे हलके हुए मेघोंसे मार्ग छोडा हुआ दुस्सह उस रघुका और सूर्यका प्रताप एक साथ दिशाओंमें फैल गया ॥ १५ ॥

वार्षिकं संजहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ ॥
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ ॥ १६ ॥

अन्वयः । इन्द्रः वार्षिकं धनुः संजहार, रघुः जैत्रं (धनुः) दधौ, हि तौ (इन्द्ररघू) प्रजार्थसाधने पर्यायोद्यतकार्मुकौ (आस्ताम्) ॥ १६ ॥

वाच्यपरि० । इन्द्रेण वार्षिकं धनुः संजह्रे, रघुणा जैत्रं (धनुः) दधे, हि ताभ्यां प्रजार्थसाधने पर्यायोद्यतकार्मुकाभ्यां (अभूयत) ॥ १६ ॥

शरदि इन्द्रः स्वकीयं दिव्यं धनुः अपसारितवान्, रघुः दिग्विजयाय स्वकीयं जयशीलं धनुः प्रकटीचकार यतः तौ क्रमेण स्वस्वं धनुः उद्यम्य लोकहितव्रतं विदधाते, इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—इन्द्र वर्षाका धनुष रखता हुआ रघुने जीतका धनुष धारण किया यह दोनो प्रजाके अर्थ साधनेमें क्रम क्रमसे धनुष उठानेवाले हुए ॥ १६ ॥

वार्षिकँ=वर्षा+ठक् ।

पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः ॥
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ॥ १७ ॥

अन्वयः । पुंडरीकातपत्रः विकसत्काशचामरः (शरत्) ऋतुः तं (रघुं) विडंबयामास, पुनः अपि) तच्छ्रियं न प्राप ॥ १७ ॥

वाच्यप० । पुंडरीकातपत्रेण विकसत्काशचामरेण ऋतुना सः (रघुः) विडंबयांचक्रे, पुनः तच्छ्रीः न प्रापे ॥ १७ ॥

महाराजो रघुर्यथा राजचिह्नेन शुशुभे, तथा शरत्कालोपि श्वेतकमलरूपेण राजच्छत्रेण प्रफुल्ल-काशरूपेण चामरकलापेन शोभते स्म इत्थं शरत्कालः रघोः राजलक्षणानि अनुकृतवान्, तथापि तस्य अलौकिकीं राज्यलक्ष्मीं लब्धुं न समर्थो बभूव, इति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—कमलके छत्र और खिली काशके चामरवाली शरद्ऋतुने राजाकी होड की परन्तु उसकी शोभाको प्राप्त न हुई ॥ १७ ॥

विडम्बयामास=वि+डम्ब=डम्बयति । डम्बयामास । अडम्बयत । अडम्बत् ।

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे ॥
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः ॥ १८ ॥

अन्वयः । तदा चक्षुष्मतां प्रसादसुमुख तस्मिन् (रघौ) विशदप्रभे चन्द्रे च द्वयोः चक्षुष्मतां प्रीतिः समरसा आसीत् ॥ १८ ॥

वाच्यप० । तदा चक्षुष्मतां प्रीत्या प्रसादसुमुखे तस्मिन् (रघौ) विशदप्रभे चन्द्रे च द्वयोः (मध्ये) समरसया अभूयत ॥ १८ ॥

नभसि मेघानां तिरोधानात् सुधाकरं दृष्ट्वा दर्शकानां मनःसु कोपि परमानन्दरसो जायते राज्ये उपद्रवाणां तिरोधानात् तं रघुं दृष्ट्वा दर्शकानां मनःसु तथैव कोपि परमानन्दरसो जातः, इति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—उस समय प्रसन्नतासे सुंदर मुखवाले उस रघुमें और स्वच्छ प्रभावाले चंद्रमा इन दोनोंमें नेत्रधारियोंकी प्रीति समान रसास्वाद लेनेवाली हुई ॥ १८ ॥

प्रीतिः=प्री+क्तिन् ।

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ॥
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥ १९ ॥

अन्वयः । तदीयानां विभूतयः हंसश्रेणीषु, तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु पर्य्यस्ता इव (आसन्) ॥ १९ ॥

वाच्यप० । तदीयानां यशसां विभूतिभिः हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु वारिषु च पर्य्यस्ताभिः इव, (अभूयत) ॥ १९ ॥

दिग्विजयाय प्रवृत्तस्य रघोः शुभ्रोज्ज्वलाः यशोराशयः सदृशाकारेषु हंसतारकासलिलकुमुदेषु विकीर्णा इव विलसन्ति स्म, इति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०--हंसोंकी श्रेणी तारागण और कुमुदवाले सरोवरोंमें उसके यशकी विभूतिसी फैली ॥ १९ ॥

तारासु=तृ+अङ्+टाप् । विभूतयः=वि+भू+क्तिन् ।

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ॥
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥ २० ॥

अन्वयः । इक्षुच्छायानिषादिन्यः शालिगोप्यः गोप्तुः तस्य (रघोः) गुणोदयम् आकुमारकथोद्घातं यशः जगुः ॥ २० ॥

वाच्यप० । इक्षुच्छायानिषादिनीभिः गोप्तुः तस्य (रघोः) गुणोदयम् आकुमारकथोद्घातं यशः जगे ॥ २० ॥

शरदि केदारेषु पक्वधान्यानां रक्षणे नियुक्ताः कृषकांगनाः इक्षूणां छायासु सुखोपविष्टाः सत्यः तस्य रघोः आकुमारकृत्यानि गीतिनिबद्धानि तानि तानि कर्माणि गायन्ति स्म, इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०--ईखकी छायामें बैठी हुई खेतकी रखानेवाली किसानियोंने रक्षाकरनेवाले उस रघुका गुणयुक्त चरित्र बालकपनकी कथातक गाया ॥ २० ॥

कथोद्घातं=कथा+उत्+हन्+घञ् । जगुः=गै+लट् । गायति । जगौ । गायेत् । अगासीत् । क०गीयते । गानम् । गीतिः । गेयम् । गायन् ।

प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः ॥
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः ॥ २१ ॥

अन्वयः । महौजसः कुम्भयोनेः उदयात् अम्भः प्रससाद, रघोः अभिभवाशंकि द्विषतां मनः चुक्षुभे ॥ २१ ॥

वाच्यप० । महौजसः कुंभयोनेः उदयात् अम्भसा प्रसेदे, रघोः अभिभवाशंकिना द्विषतां मनसा चुक्षुभे ॥ २१ ॥

एकतः अगस्त्ये नभसि समुदिते वर्षाकलुषितानि सलिलानि निर्मलानि जातानि अन्यतस्तु दिग्विजयाय समुदिते रघौ शत्रुनृपाणां मनांसि उद्वेगकलुषितानि अभूवन्, इति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—महाप्रतापी अगस्त्यके उदयसे जल निर्मल हुआ, और रघुसे तिरस्कार होनेकी शंकासे शत्रुओंका मन क्षुभित हुआ ॥ २१ ॥

प्रससाद=सद्+लिट्। चुक्षुभे+क्षुभ्+लिट्।

मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः ॥
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम् ॥ २२ ॥

अन्वयः। मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलम् उद्रुजाः महोक्षाः तस्य (रघोः) लीलाखेलं विक्रमम् अनुप्रापुः ॥ २२ ॥

वाच्यपरि०। मदोदग्रैः ककुद्मद्भिः सरितां कूलम् उद्रुजैः महोक्षैः तस्य (रघोः) लीलाखेलः विक्रमः अनुप्रापे ॥ २२ ॥

मदोन्मत्ताः प्रशस्तककुदः महाकायाः वलीवर्दाः लीलया नदीकूलानि विपाटयन्तः तस्य रघो, लीलाविलासम् अनुप्रापुः, इति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०—मदमत्त बडेकंधेवाले नदियोंके तट तोडनेवाले, बैलोंने उसके लीलाखेलवाले पराक्रमकी बराबरी की ॥ २२ ॥

ककुद्मान्=ककुद्+मतुप्।

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः ॥
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः ॥ २३ ॥

अन्वयः। तन्नागाः मदगन्धिभिः सप्तपर्णानां प्रसवैः आहताः (सन्तः) असूयया इव सप्तधा एव, प्रसुस्रुवुः ॥ २३ ॥

वाच्यपरि०। तन्नागैः मदगंधिभिः सप्तपर्णानां प्रसवैः आहतैः (सद्भिः) असूयया इव सप्तधा एव प्रसुस्रुवे ॥ २३ ॥

शरदि विकासितानां सप्तपर्णपुष्पाणाम् उग्रं गन्धम् आघ्राय रघुगजाः वन्यगजानां मदवारिगन्धं मन्यमाना असहनतया सप्तभ्यः अंगेभ्यः मदधाराः क्षरन्ति स्म, इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—उसके हाथियोंने सप्तपर्णवाले वृक्षोंके मदकी सुगंधिवाले फूलोंसे तिरस्कारको प्राप्त होकर ईर्षा करके मानों सात स्थानोंसे (मद) बहाया ॥ २३ ॥

आहताः=आ+हन्+क्त। प्रसुस्रुवुः=प्र+स्रु+लिट्।

सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान् ॥
यात्रायै नोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥ २४ ॥

अन्वयः। सरितः गाधाः, पथः च आश्यानकर्दमान् कुर्वती (सती) शरत् शक्तेः प्रथमं तं (रघुं) यात्रायै नोदयामास ॥ २४ ॥

वाच्यप० । सरितः गाधाः, पथः च आश्यानकर्दमान् कुर्वत्या शरदा शक्तेः प्रथमं सः (रघुः) यात्रायै नोदयाञ्चक्रे ॥ २४ ॥

शरदि तीक्ष्णमार्तण्डकरैः क्षीणसलिलतया नद्यः सुखेन तरणयोग्याः जाताः पंथानश्च सुखेन गमनयोग्या जाताः स च रमणीयः समयः मन्त्रप्रभावयुक्तस्य रघोः मनसि दिग्विजये उत्साहशक्तिमुद्दीपयामास, इति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—नदियोंको थाई और मार्गोंको कीचरहित करती शरद् ऋतुने उत्साह शक्ति से प्रथमही उसको यात्राके निमित्त प्रेरणा की ॥ २४ ॥

गाधाः=गाध्+अच्+टाप् । आश्यान=आ+श्यै+क्त । नोदयाञ्चक्रे=नुद+लिट् । नुदति-ते । नुनोद,नुनुदे। अनुदत्-त । अनौत्सीत्, अनुत्त । क० नुद्यते । नोदनीयम् । विनोदः । नुत्त्वा। वनुद्य । नुदन् ।नुदमानः।

तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ ॥
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ॥ २५ ॥

अन्वयः । वाजिनीराजनाविधौ सम्यक् हुतः वह्निः तस्मै प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेन इव जयं ददौ ॥ २५ ॥

वाच्यपरि० । वाजिनीराजनाविधौ सम्यक् हुतेन वह्निना तस्मै प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेन इव, जयः ददे ॥ २५ ॥

यदा रघुः अग्नौ विधिवत् आहुतिं प्रक्षिपन् अश्वादीनां नीराजनाख्यं कर्म्म विदधे, तदा होमाग्निः आहुतिं स्वीकृत्य स्वकीयशिखारूपहस्तं प्रसार्य्य तस्मै नृपाय स्वयमेव विजयं दत्तवानिति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—घोडापूजनकी विधिमें भले प्रकार हवन की हुई अग्नि दक्षिणकी ओर उठी-हुई ज्वालाके व्याजसे मानों उसको हाथसे जय देती हुई ॥ २५ ॥

नीराजना=निर्+राज+णिच्+युच् ।

स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः ॥
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥ २६ ॥

अन्वयः । गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिः अयान्वितः सः (रघुः) षड्विधं बलम् आदाय दिग्जिगीषया प्रतस्थे ॥ २६ ॥

वाच्यप० । गुप्तमूलप्रत्यन्तेन शुद्धपार्ष्णिना अयान्वितेन तेन (रघुणा) षड्विधं बलम् आदाय, दिग्जिगीषया प्रतस्थे ॥ २६ ॥

स रघुः प्रथमं स्वीयराष्ट्रदुर्गाणां पृष्ठदेशस्य च सर्वथा रक्षां कृत्वा यात्रकालोचितं सम्पूर्णं मंगलं विधाय, षड्विधं बलमादाय दिग्जिगीषया प्रस्थानं चकारेति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०-रक्षा किये हुए रनवासों और गढोंवाले पीछे वैरी न रहनेसे शुद्ध, भाग्यवाले उस रघुने छःप्रकार की सेना लेकर दिशाओंके जीतने की इच्छा से प्रस्थान किया ॥ २६ ॥

अयान्वितः=अय+अनु+इ+क्त ।

अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः ॥

पृषतैर्मन्दरोद्धतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम् ॥ २७ ॥

अन्वयः । वयोवृद्धाः पौरयोषितः लाजैः, क्षीरोर्मयः मंदरोद्धूतैः पृषतैः अच्युतम् इव, तम् अवाकिरन् ॥ २७ ॥

वाच्यप० । वयोवृद्धाभिः पौरयोषिद्भिः लाजैः, क्षीरोर्मिभिः मंदरोद्धूतैः पृषतैः अच्युतः इव, सः अवाकीर्यत ॥ २७ ॥

यथा समुद्रमन्थनसमये क्षीरसिन्धोः तरंगमाला मन्दरगिरिमन्थनोत्थितैः पयोबिन्दुभिरच्युतमवकीर्णवत्यः रघोः यात्रासमयेपि तथा पुरस्त्रियः मंगलाय लाजैः तमवकिरन्ति स्मेति सरलार्थः॥२७॥

भा०-अवस्थामें वृद्ध पुरकी स्त्री खीलोंद्वारा क्षीरसागरकी लहरें मन्दराचल पर्वतसे उठे हुए छींटोंसे अच्युतकी समान उस रघुको छादेती (बरसाती) हुई ॥ २७ ॥

अच्युतम्=अ+च्यु+क्त ।

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ॥

अहितानानिलोद्धतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ॥ २८ ॥

अन्वयः । प्राचीनबर्हिषा तुल्यः सः (रघुः) अनिलोद्धूतैः केतुभिः आहितान् तर्जयन् इव, प्रथमं प्राचीं (दिशं) ययौ ॥ २८ ॥

वाच्यप० । प्राचीनबर्हिषा तुल्येन तेन अनिलोद्धूतैः केतुभिः अहितान् तर्जयता इव, प्रथमं प्राची (दिक्) ययै ॥ २८ ॥

शक्रतुल्यप्रतापशाली रघुः प्रथमं पूर्वां दिशं जेतुं जगाम, अनुकूलवायुवेगेन तस्य युद्धकेतवः कम्पन्ते स्म, स पताकाछलेन शत्रून् तर्जयन् इव चचाल, इति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-प्राचीनबर्हि (इन्द्र) की समान वह रघु पवनसे उठाई हुई ध्वजाओंसे शत्रुओंको ताडना देता हुआसा प्रथम पूर्वदिशाको गया ॥ २८ ॥

केतुः = चाय पूजानिशामनयोः । चाय्+तु । तर्जयन्=तर्ज+शतृ । तर्जयति-ते । तर्जते । अततर्जत्-त। अतर्जिष्ट । क० तर्ज्यते । तर्जनियम् । तर्जनम् । तर्जयित्वा । तर्जित्वा । संतर्ज्य ।

रजोभिः स्यन्दनोद्धतैर्गजैश्च घनसंनिभैः ॥

भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन्व्योमेव भूतलम् ॥ २९ ॥

अन्वयः । (सः, रघुः) स्यंदनोद्भूतैः रजोभिः व्योम भुवः तलम् इव, घनसन्निभैः गजैः च भूतलं व्योम इव, कुर्वन् (ययौ) ॥ २९ ॥

वाच्यप० । (तेन रघुणा) स्यंदनोद्भूतैः रजोभिः व्योम भुवः तलम् इव, घनसन्निभैर्गजैः च भूतलं व्योम इव कुर्वता (यये) ॥ २९ ॥

तस्य चतुरंगबलोत्थितः धूलिः आकाशमण्डलं तथा आच्छादितवान्, यथा तत् मृन्मयं धूलिमिव अलक्ष्यत सघनघटेव करिघटा पृथ्वीतलं तथा व्यानशे यथा तत् भूतलं मेघाच्छन्नमाकाशमण्डलमिवालक्ष्यतेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—वह रघुघोडोंसे उठी हुई धूरिसे आकाशको पृथ्वीकी समान और मेघों की समान हाथियोंसे पृथ्वीको आकाश की समान करता हुआ ॥ २९ ॥

व्योम=व्येञ् संवरणे+मन्—उणादि ।

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम् ॥
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः ॥ ३० ॥

अन्वयः । अग्रे प्रतापः (ययौ) ततः शब्दः (ययौ) तदनन्तरं परागः (ययौ) (तत्—) पश्चात् रथादि (ययौ) इति सा चमूः चतुस्कंधा इव ययौ ॥ ३० ॥

वाच्यप० । अग्रे प्रतापेन (यये) ततः शब्देन (यये) तदनन्तरं परागेण (यये) (तत्—) पश्चात् रथादिना (यये) इति तया चम्वा चतुस्कंधया इव यये ॥ ३० ॥

दिग्विजये प्रस्थितस्य रघोः प्रतापकथा सर्वस्याग्रे विचचार, ततश्च सैन्यकलकलो ययौ, तदनु दिगन्तव्यापिनी धूलिः विससार, तदनु तस्य वाहिनी चचाल इत्थं सा सेना चतुर्धा विभक्तेव ययौ, इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०— आगे प्रताप तदनन्तर शब्द तदनन्तर रज उसके पीछे रथादि इस प्रकार वह सेना चतुरंगसी हुई अर्थात्—चारस्कंधकी समान जानपडी ॥ ३० ॥

चमूः=चम्+ऊ ।

मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः ॥
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) शक्तिमत्त्वात् मरुपृष्ठानि उदंभांसि, नदीः नाव्याः सुप्रतराः, विपिनानि प्रकाशानि चकार ॥ ३१ ॥

वाच्यपरि० । तेन (रघुणा) नद्यः × × × चक्रिरे ॥ ३१ ॥

तस्य रघोः प्रतापात् मरुदेशादपि सलिलमुदतिष्ठत् , अगाधजलाः नद्यश्च सुखेन तरणयोग्या बभूवुः, सुदुर्गमाणि वनानि सुगमनानि समभूवन्, इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०-वह रघु शक्तिमान् होनेसे मरुभूमिको जलवाली और नावोंसे उतरने योग्य नदियोंको सुखसे तरने योग्य (थाई) और वनोंको प्रकाश युक्त (विरलवृक्ष-वाला) करता हुआ ॥ ३१ ॥

सुप्रतराः=सु+प्र+तॄ+अप्+टाप्।

स सेना महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ॥
वभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥ ३२ ॥

अन्वयः। सः (रघुः) पूर्वसागरगामिनीम् महतीं सेनां कर्षन्, भगीरथः हरजटाभ्रष्टां गंगाम् इव वभौ ॥ ३२ ॥

वाच्यप०। तेन पूर्वसागरगामिनीं महतीं सेनां कर्षता, भगीरथेन हरजटाभ्रष्टां गंगाम् इव वभे ॥ ३२ ॥

प्रतापशाली भगीरथः यथा शिवजटाकलापात् निपपितं गङ्गाप्रवाहं पूर्वसमुद्राभिमुखं निनाय, तथा रघुरपि सेनाप्रवाहं पूर्वसागराभिमुखं नेतुमारेभे, इति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०-वह रघु पूर्वसागरकी ओर जानेवाली वडी सेनाको लिये जाते शिवजीकी जटासे निकली गंगाको (लियेजाते) भगीरथकी समान शोभित हुआ ॥ ३२ ॥

भ्रष्टाम्=भ्रंश+क्त+टाप्।

त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च वहुधा नृपैः ॥
तस्यासीदुल्वणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः ॥ ३३ ॥

अन्वयः। फलं त्याजितैः उत्खातैः वहुधा भग्नैः नृपैः च पादपैः दन्तिनः इव, तस्य (रघोः) मार्गः उल्वणः आसीत् ॥ ३३ ॥

वाच्यप०। फलं त्याजितैः उत्खातैः वहुधा भग्नैः नृपैः च पादपैः दंतिनः इव, तस्य मार्गेण उल्वणेन अभूयत ॥ ३३ ॥

महावलिष्टो वनगजो यथा गमनकाले मार्गस्थितान् वृक्षान् फलभ्रष्टान् स्वस्थानादुत्पाटितान् वहुप्रकारैश्छिन्नभिन्नांश्च कृत्वा मार्गं सर्वथा निष्कंटकं करोति, रघुरपि तथा शत्रून् स्वपदभ्रष्टान् स्वपदादुत्पाटितान् अनेकधा छिन्नभिन्नांश्च कृत्वा स्वस्य मार्गं सर्वथा निष्कंटकमकरोदिति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-फलोंसे रहित किये हुए उखाडे और वहुत प्रकारसे तोडे और (लडाईमें जीते हुए) राजाओंसे वृक्षोंसे हांथीकी समान उसका मार्ग स्पष्ट होता भया ॥ ३३ ॥

उत्खातैः=उत्+खन्+क्त। उल्वणः=उत्+व्रण+अच्।

पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ॥
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ॥ ३४ ॥

अन्वयः । (सः रघुः) जयी तान् तान् पौरस्त्यान् जनपदान् एवम् आक्रामन् (सन्) तालीवनश्यामं महोदधेः उपकंठं प्राप ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । (तेन) जयिना तान् तान् पौरस्त्यान् जनपदान् एवम् आक्रमता (सता) तालीवनश्यामं महोदधेः उपकंठं प्रापे ॥ ३४ ॥

जयी स रघुः सर्वान् पूर्वदिग्देशाञ्जयन् महासमुद्रस्य तालतरुपंक्तिभिर्नीलवर्णां वेलां प्रापेति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०–वह जयशील रघु उन उन देशोंको जीतताहुआ तालके वनसे श्याम हुए सागरके तटपर पहुंचा ॥ ३४ ॥

आक्रामन्=आ+क्रमु+शतृ ।

अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ॥
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । सुह्मैः वैतसीं वृत्तिम् आश्रित्य अनम्राणां समुद्धर्तुः तस्मात् (रघोः) सिन्धुरयात् इव आत्मा संरक्षितः ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । सुह्माः × × × आत्मानं संरक्षितवन्तः ॥ ३५ ॥

नदीस्रोतोभिमुखं प्रणतान् वेतसान् यथा भयङ्करोपि नदीप्रवाहो नैव समुन्मूलयति तथा रघुः प्रणतान् सुह्मदेशीयान् नृपानपि नैवोत्पाटयामासेति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०–अनम्रों (वैरियों) के नाश करनेवाले उससे सुह्मदेशवालोंने नदीके वेगसे वेतकीसी वृत्ति अंगीकार करके आत्माकी रक्षा की ॥ ३५ ॥

अनम्रोणाम्=न+नम्+रः ।

वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ॥
निचखान जयस्तम्भान्गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः ॥ ३६ ॥

अन्वयः । नेता सः (रघुः) नौसाधनोद्यतान् वंगान् तरसा उत्खाय गंगास्रोतोऽन्तरेषु जयस्तंभान् निचखान ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । नेत्रा तेन तरसा नौसाधनोद्यतान् वंगान् उत्खाय गंगास्रोतोऽन्तरेषु जयस्तंभाः निचख्निरे ॥ ३६ ॥

वंगदेशीयाः भूपाः रणतरीः सज्जीकृत्य युद्धे प्रवृत्ता बभूवुः, रघुरपि सर्वांस्तान्निर्जित्य गंगाप्रवाहमध्यगतेषु देशेषु विजयस्तंभान् निवेशयामासेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–नायक उस रघुने नावके द्वारा लडनेको उद्यत हुए वंगदेशियोंको बलसे उखाडकर गंगाजीके प्रवाहके मध्यदेशोंके बीचमें जीतके खंभे गाडे ॥ ३६ ॥

तरसा=तॄ+असुन् । निचखान=नि+खन्+लिट् ।

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम् ॥
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । आपादपद्मप्रणताः उत्खातप्रतिरोपिताः ते (वंगाः) कलमाः इव रघुं फलैः संवर्धयामासुः ॥ ३७ ॥

वाच्यपरि० । उत्खातप्रतिरोपितैः आपादपद्मप्रणतैः तैः (वंगैः) कलमैः इव रघुः फलैः संवर्द्धयाञ्चक्रे ॥ ३७ ॥

यथा धान्यविशेषाः कृषकेण स्वस्थानादुत्पाव्य पुनरपि स्थानान्तरे रोपिताः सन्तः फलभरेण नतशीर्षा भवन्ति, तथा वंगनृपा अपि प्रथमं रघुणा स्वपदादुत्पाटिताः पुनरपि स्वपदे स्थापिताः सन्तः तस्य रघोः चरणपर्य्यन्तं नतशीर्षा भूत्वा धनरत्नैः रघुं संवर्धयामासुरिति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—चरणकमलपर नम्रीभूत हुए (इसीकारण) उखाडकर फिर जमाये हुए वंगनिवासियोंने रघुका धानकी समान फलों (धनों) से सत्कार किया ॥ ३७ ॥

प्रतिरोपिताः=प्रति+रुह्+णिच+क्त । कलमाः=कल+अम । संवर्द्धयामासुः=सम्+वृध्+णिच्+लिट् । वर्द्धते । ववृधे । अवर्द्धत । अवर्धिष्ट । भावे—वृद्धयते । वर्द्धनीयम् । वृद्धिः । वर्द्धितुम् । संवृध्य । वर्धमानः

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ॥
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥ ३८ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) बद्धद्विरदसेतुभिः सैन्यैः कपिशां (नदीं) तीर्त्वा उत्कलादर्शितपथः (सन्) कलिंगाभिमुखः ययौ ॥ ३८ ॥

वाच्यपरि० । उत्कलादर्शितपथेन तेन (रघुणा) बद्धद्विरदसेतुभिः सैन्यैः कपिशां तीर्त्वा कलिंगाभिमुखेन (सता) यये ॥ ३८ ॥

ससैन्यो रघुः निजहस्तिपरंपराभिः कपिशां नदीं तीर्त्वा उत्कलैः राजभिः संदर्शितमार्गः सन् कलिङ्गदेशं जेतुं जगामेति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा—०वह रघु हाथियोंका पुल बांधकर सेना सहित कपिशा नदीके पारहो उत्कलदेशी राजाओंका मार्ग दिखाया हुआ कलिंगदेशके सन्मुख गया ॥ ३८ ॥

कपिशाम्=कपिश+टाप् ।

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत् ॥
अङ्कुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥ ३९ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं प्रतापं यन्ता गम्भीरवेदिनः द्विरदस्य (मूर्ध्नि) तीक्ष्णम् अकुशम् इव न्यवेशयत् ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । तेन महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णः प्रतापः, यन्त्रा गम्भीरवेदिनः द्विरदस्य (मूर्ध्नि तीक्ष्णः) अंकुशः इव, न्यवेश्यत ॥ ३९ ॥

यथा हस्तिपकः शिरसि गाढम् अङ्कुशं निवेशयन् मत्तं गजं दुःखेन दमयति तथा रघुरपि दुस्सहं पराक्रमं प्रकाशयन् दुःखेन महेन्द्रनाथं दमयामासेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-उस रघुने महेन्द्र पर्वतके ऊपर तीक्ष्ण प्रतापको जमाया, जैसे हाथीवान गंभीरवेदी हाथीके (मस्तकपर) अंकुश जमाता है ॥ ३९ ॥

तीक्ष्णम्=तिज+क्स्नः । अङ्कुशम्=अकि+उशच् । १-जो कठिन चोटको न समझे वह गम्भीरवेदी कहाता है ।

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः ॥
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ॥ ४० ॥

अन्वयः । गजसाधनः कालिंगः अस्त्रैः तं रघुम्, शिलावर्षी पर्वतः पक्षच्छेदोद्यतं शक्रम् इव प्रतिजग्राह ॥ ४० ॥

वाच्यप० । शिलावर्षिणा पर्वतेन पक्षच्छेदोद्यतः शक्रः इव, गजसाधनेन कालिंगेन अस्त्रैः सः (रघुः) प्रतिजगृहे ॥ ४० ॥

यथा गिरिः पक्षच्छेदोद्यतं पुरन्दरं शिलावर्षेण प्रतिरुरोध, तथा गजारूढः कलिंगनाथोपि उद्यतायुधं रघुमस्त्रवर्षेण प्रतिजग्राहेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-हाथीपर चढकर आये हुए कलिंगदेशके राजाने अस्त्रोंसे उस रघुको मानों शिलावर्षानेवाले पर्वतने पक्ष छेदन करनेको उद्यतहुए इन्द्रकी समान ग्रहण किया॥४०॥

शिलावर्षी=शिला+वृष्+णिनिः ।

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम् ॥
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः । तत्र काकुत्स्थः द्विषां नाराचदुर्दिनं विषह्य, सन्मंगलस्नातः इव, जयश्रियं प्रतिपेदे ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । तत्र काकुत्स्थेन द्विषां नाराचदुर्दिनं विषह्य, सन्मंगलस्नातेन इव, जयश्रीः प्रतिपेदे ॥ ४१ ॥

तत्र रघुः तथाविधारिपुशरधाराभिः अभिषिक्तो भूत्वा पश्चात् विजयलक्ष्मीं लेभे, यथा कश्चित् प्राक् तीर्थसलिलधाराभिः अभिषिक्तो भूत्वा पश्चाद्राज्यलक्ष्मीं परिगृह्णातीति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-तहां रघु शत्रुओंकी शरवृष्टिको सहन कर अच्छे मङ्गलसे स्नान कियेकी समान जयकी श्रीको प्राप्त होता भया ॥ ४१ ॥

विषह्य = वि+सह्+ल्यप् ।

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः ॥
नालिकेरासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । तत्र रचितापानभूमयः योधाः ताम्बूलीनां दलैः नालिकेरासवं, शात्रवं यशः च पपुः ॥ ४२ ॥

वाच्यपरि० । तत्र रचितापानभूमिभिः योधैः, ताम्बूलीनां दलैः नालिकेरासवः शात्रवं यशः च पपे ॥ ४२ ॥

वीराः विजयलाभानन्तरं तत्र महेन्द्रपर्वते पानयोग्यानि स्थानानि संविधाय ताम्बूलपर्णनिर्मितैः पात्रैः नालिकेरासवच्छलेन शुभ्रं रिपुयशः पीतवन्तः, इति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—तहां मदिरागोष्ठी बनानेवाले वीरोंने ताम्बूलके पत्तों द्वारा नारियलका आसव और शत्रु सम्बन्धी यशका पान किया ॥ ४२ ॥

आसवम्=आ+सु+अप् ।

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ॥
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः । धर्म्मविजयी सः नृपः गृहीतप्रतिमुक्तस्य महेन्द्रनाथस्य श्रियं जहार, मेदिनीं तु न (जहार) ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । धर्मविजयिना तेन नृपेण गृहीतप्रतिमुक्तस्य महेन्द्रनाथस्य श्रीः जह्रे, मेदिनी तु न (जह्रे) ॥ ४३ ॥

धर्मार्थविजयशीलः स रघुः प्रथमम् उद्धतभावेन युद्धाय प्रवृत्तं तं कलिङ्गनाथं बन्दीकृत्य पश्चात् तं मोचयित्वा तस्य श्रियमेव व्यपनयत्, राज्याधिकारं तु न जहारेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०—धर्मविजयी वह राजा पकड कर छोडे हुए महेन्द्रनाथकी लक्ष्मीको हरण करता हुआ, पृथ्वीको नहीं ॥ ४३ ॥

विजयी=वि+जि+णिनिः ।

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ॥
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥ ४४ ॥

अन्वयः । ततः अनाशास्यजयः (रघुः) फलवत्पूगमालिना वेलातटेन एव अगस्त्याचरिताम् आशां ययौ ॥ ४४ ॥

वाच्यपरि० । अनाशास्यजयेन (रघुणा) फलवत्पूगमालिना वेलातटेन एव अगस्त्याचरिता आशा यये ॥ ४४ ॥

अयत्नसिद्धविजयी रघुः पूर्वदिशां निर्जित्य, फलभरनताभिः पूगवृक्षपंक्तिभिः परिशोभितेन सागरतटेन दक्षिणां दिशं जगामेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०—इसके उपरान्त विना यत्न जय पाने वाला रघु सुपारीके फले वृक्षोंसे भरे समुद्रके किनारे २ दक्षिण दिशाको गया ॥ ४४ ॥

अगस्त्येन=अग+स्त्यै+कः ।

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना ॥
कावेरीं सरितां पत्युः शंकनीयामिवाकरोत् ॥ ४५ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) गजदानसुगंधिना सैन्यपरिभोगेण कावेरीं सरितां पत्युः (समुद्रस्य) शंकनीयाम् इव, अकरोत् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) गजदानसुगंधिना सैन्यपरिभोगेण कावेरी सरितां पत्युः शङ्कनीया इव, अक्रियत ॥ ४५ ॥

कावेरी नाम नदी रघुसैनिकानां जलविहारादिभिः विक्षोभितजला रघुगजानां मदजलैः सुरभीकृता सती स्वभर्तुः सागरस्य अविश्वसनीया इव जातेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–वह रघु हाथीके मदकी सुगन्धिवाली सेनाके अवगाहनसे कावेरी नदीको मानों समुद्रकी शङ्काके योग्य करता हुआ ॥ ४५ ॥

कावेरी=क+वेर+अण्+ङीप् ।

बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ॥
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । विजिगीषोः गताध्वनः तस्य (रघोः) बलैः मारीचोद्भ्रान्तहारीताः मलयाद्रेः उपत्यकाः अध्युषिताः ॥ ४६ ॥

वाच्य० । बलानि ××× अध्युषितवन्ति ॥ ४६ ॥

अथ सुन्दरं मार्गम् अतिक्रान्तवतः तस्य रघोः सैनिकाः मनोहरेषु मलयोपकण्ठेषु ऊषुः, तत्र मारीचवनानि संचलद्भिः मनोहरैः हारीतपक्षिभिः शुशुभिरे, इति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–जीतकी इच्छा करनेवाले उतार पर प्राप्त हुए उस रघुकी सेनाने हारियल पक्षियोंसे व्याप्त मिरचके वृक्षोंवाली मलयाचलकी तराईमें वास किया ॥ ४६ ॥

मारीचः=मरीच+अण् ।

ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः ॥
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । अश्वक्षुण्णानाम् एलानाम् उत्पतिष्णवः फलरेणवः तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु ससंजुः ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । अश्वक्षुण्णानाम् एलानाम् उत्पतिष्णुभिः फलरेणुभिः तुल्यगंधिषु मत्तेभकटेषु ससंजे ॥ ४७ ॥

भूमिपतितानि एलालतानां बीजानि अश्वखुरैः संचूर्णितानि पवनेन च उत्क्षिप्तानि स्वसदृशसद्गन्धोद्गारिषु मत्तनागानां गण्डेषु संसक्तानि बभूवुः, इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०—घोडोंसे खूंदी हुई इलायचियोंकी उठी हुई रज तुल्यगंधिवाले मतवाले हाथियोंके गंडस्थलमें लगी ॥ ४७ ॥

उत्पतिष्णवः=उत्+पत्+इष्णुच् । ससंजुः=संज+लिट् ।

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ॥
नास्त्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीछेदिनामपि ॥ ४८ ॥

अन्वयः । चन्दनानां भोगिवेष्टनमार्गेषु समर्पितं त्रिपदीछेदिनामपि करिणां ग्रैवं न अस्रसत् ४८

वाच्यप० । त्रिपदीछेदिनाम् अपि करिणां चन्दनानां भोगिवेष्टनमार्गेषु समर्पितेन ग्रैवेण न अस्रंसि ॥ ४८ ॥

चंदनप्रियाणां सर्पाणां निरन्तरवेष्टनात् तरुषु यत्र गम्भीरा रेखा जाताः तत्र रघुनागानां ग्रीवारज्जुबंधनात् तानि बंधनानि तत्र तथा दृढसंसक्तानि बभूवुः; यथा पादबंधनच्छेदनसमर्था अपि ते गजाः तानि ग्रीवाबंधनानि भ्रंशयितुं न समर्थाः बभूवुरिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—चन्दनके वृक्षोंमें सर्पोंके लिपटनेके मार्गोंमें डाले हुए, पैरकी श्रृंखला तोडनेवाले हाथियोंके गलेके रस्सेतकभी वहांसे न खिसके ॥ ४८ ॥

अस्रसत्=स्रंस+लुङ् । स्रंसते । सस्रंसे । अस्रसत् , अस्रंसिष्ट । स्रंसिषीष्ट । भावे—स्रस्यते । स्रंसनीयम् । स्रंसी । स्रंसितुम् । स्रंसितव्यम् । स्रंसित्वा । स्रंस्यम् । स्रंसमानः ।

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ॥
तस्यामेव रघोः पांड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥ ४९ ॥

अन्वयः । दक्षिणस्यां दिशि (तु) रवेः अपि तेजः मन्दायते, (परंतु) पांड्याः तस्याम् (दक्षिणस्यां दिशि) एव रघोः प्रतापं न विषेहिरे ॥ ४९ ॥

वाच्यपरि० । दक्षिणस्यां दिशि रवेः अपि तेजसा मन्दाय्यते (परन्तु) पांड्यैः तस्याम् एव रघोः प्रतापः न विषेहे ॥ ४९ ॥

तेजोनिधिः सूर्योपि यदा दक्षिणस्यां दिशि प्रयाति, तदा तस्यापि प्रभावः परिहीयते किन्तु दक्षिणस्यां दिशि प्रयातस्य रघोः प्रतापः पाण्डुदेशीयाः नृपाः सोढुमसमर्थाः बभूवुरिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—दक्षिणदिशामें सूर्यका भी तेज मंद होजाताहै, परन्तु पांड्यदेशवासी उस दिशामेंभी रघुका तेज न सहसके ॥ ४९ ॥

मन्दायते=मन्द+क्यङ्+लट् ।

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ॥
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । ते (पांड्याः) निपत्य तस्मै संचितं स्वं यशः इव, ताम्रपर्णीसमेतस्य महोदधेः (संचितं) मुक्तासारं ददुः ॥ ५० ॥

वाच्यपरि० । तैः (पांड्यैः) निपत्य तस्मै संचितं स्वं यशः इव, ताम्रपर्णीसमेतस्य महोदधेः मुक्तासारः ददे ॥ ५० ॥

ते पाण्ड्यमहीपाः रघोः प्रतापम् असहमानाः तच्चरणकमले प्रणताः वभूवुः ताम्रपर्णीसागरयोः संमेलनात् संचितानि मुक्ताफलानि च स्वानि यशांसि इव तस्मै ददुरिति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—वे पांड्य देशवासी प्रणाम करके उस रघुके निमित्त संचय कियेहुए अपने यशकी समान ताम्रपर्णीके संगमवाले महासमुद्रके मोती उसे देते हुए ॥ ५० ॥

समेतस्य=सम्+आ+इ+क्तः ।

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ॥
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ॥ ५१ ॥
असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ॥
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ॥ ५२ ॥ युग्मम् ।

अन्वयः । असह्यविक्रमः सः (रघुः) तटेषु आलीनचंदनौ तस्याः दिशः स्तनौ इव (स्थितौ) मलयदर्दुरौ शैलौ यथाकामं निर्विश्य दूरात् उदन्वता मुक्तं स्रस्तांशुकं मेदिन्याः नितम्बम् इव सह्यम् अलंघयत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । असह्यविक्रमेण तेन मुक्तः स्रस्तांशुकः नितम्ब इव सह्यः अलंघ्यत ॥५१॥५२॥

यथा कश्चिन्महाकामुकः पीनस्तनजघनायाः नायिकायाः चंदनभूषितौ समुन्नतौ स्तनौ यथेष्टमुपभुज्य वस्त्रावरणरहितं तस्याः नितम्बमुपभुज्य परितृप्तः सन् तत्सकाशाद् गच्छति, तथा रघुरपि तस्याः भूमेः चन्दनयुक्तदेशौ अत्युन्नतौ मलयदर्दुरौ पर्वतौ यथेष्टमुपभुज्य सागरजलविमुक्तं सह्यपर्वतं यथेष्टमुपभुज्य तृप्तः सन् तत्सकाशाज्जगामेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

भा०—वह महाप्रतापी रघु किनारेपर चंदन लगेहुए मलय और दर्दुर दो पर्वतोंको उस दिशाके दो स्तनोंके समान भोगकर ॥ ५१ ॥ सागरके दूर त्यागे हुए सह्य पर्वतको वस्त्र त्यागे हुए पृथ्वीके नितम्बके समान उलंघन कर गया ॥ ५२ ॥

उदन्वता=उदक+मतुप् । नितम्बम्=नि+तम्ब+अच् । अलङ्घयत्=लघि+लङ् ।

तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः ॥
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः ॥ ५३ ॥

अन्वयः । अपरान्तजयोद्यतैः विसर्पद्भिः तस्य (रघोः) अनीकैः रामास्त्रोत्सारितः अपि अर्णवः सह्यलग्न इव आसीत् ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । विसर्पद्भिः अपरान्तजयोद्यतैः तस्य अनीकैः रामास्त्रोत्सारितेन अपि अर्णवेन सह्यलग्नेन इव अभूयत ॥ ५३ ॥

परशुरामस्य शरैः उत्सारितः सन्नपि सागरः समुद्रवत् अपरिच्छिन्नेन प्रचलता रघुसैन्यप्रवाहेण पुनरपि सह्यलग्न इव अलक्ष्यत इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—पश्चिम दिशाकी ओर जीतनेको जातीहुई उस रघुकी सेनासे परशुरामके अस्त्रसे हटायाहुआभी समुद्र सह्यपर्वतसे मिलाहुआसा होगया । परशुरामके अस्त्रप्रहारसे समुद्रने वहां भूमि छोड दी थी, ॥ ५३ ॥

विसर्पद्भिः=वि+सृप्+शतृ । अनीकैः=अन्+ईकन् ।

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम् ॥
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥ ५४ ॥

अन्वयः । तेन (रघुणा) भयोत्सृष्टविभूषाणां केरलयोषिताम् अलकेषु चमूरेणुः चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । स चमूरेणुं चूर्णप्रतिनिधीकृतवान् ॥ ५४ ॥

केरलदेशवासिन्यः कामिन्यः रघुभयेन अङ्गभूषणानि विसृज्य द्रुतं पलायन्ते स्म, तत्सैन्यसमुत्थिता च धूलिः तासां चूर्णकुन्तलेषु निपत्य कुंकुमादिचूर्णमिव दिदीपे इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—उस रघुने भयसे भूषण त्यागनेवाली केरलदेशकी स्त्रियोंके अलकोंमें सेनाकी रज कुंकुमके स्थानमें दी ॥ ५४ ॥

चूर्णम्=चूर्ण+अच् । प्रतिनिधिः=प्रति+नि+धा+किः ।

मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रजः ॥
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः । मुरलामारुतोद्धूतं कैतकं रजः तद्योधवारबाणानाम् अयत्नपटवासताम् अगमत् ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । मुरलामारुतोद्धूतेन कैतकेन रजसा तद्योधवारबाणानाम् अयत्नपटवासता अगामि ॥ ५५ ॥

मुरलायाः नद्याः शीतलपवनेन उत्थापितानि केतकीपुष्परजांसि रघुसैनिकानां कंचुकेषु निपत्य अयत्नेन पटवासनाकार्य्यं विदधिरे इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—मुरलानदीके पवनसे उडाईहुई केतकीके फूलोंकी रज उसके योधाओंके कवचोंको विनायत्नही सुगन्धका चूर्ण बनगई ॥ ५५ ॥

कैतकम्=किंत+वुं+ङीप्+अण् ।

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः ॥
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । चरतां वाहानां गात्रशिंजितैः वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः अभ्यभूयत ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । चरतां वाहानां गात्रशिंजितानि वर्म्माणि पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिम् अभ्यभवन् ॥ ५६ ॥

रघुसैन्यवाजिनां चलनात् तेषां शरीरनिबद्धलोहमयकवचेभ्यः समुत्थितः भयंकरशब्दः वायुसंचालितानां तालवनानां पत्रोत्पन्नं घोरं मर्मरध्वनिमपि पराभूतवान् इति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०—चलते हुए घोडोंके शरीरपर शब्दकरते हुए कवचोंने पवनकी उठाई हुई राजतालीवनकी ध्वनिको तिरस्कार किया ॥ ५६ ॥

गात्रशिञ्जितम्=गात्र+शिंज+क्तः ।

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ॥
कटेषु करिणां पेतुः पुंनागेभ्यः शिलीमुखाः ॥ ५७ ॥

अन्वयः । शिलीमुखाः पुन्नागेभ्यः खर्जूरीस्कंधनद्धानां करिणां मदोद्गारसुगंधिषु कटेषु पेतुः ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । शिलीमुखैः पुन्नागेभ्यः खर्जूरीस्कंधनद्धानां करिणां मदोद्गारसुगंधिषु कटेषु पेते ॥ ५७ ॥

खर्जूरवृक्षेषु बद्धानां रघुनागानां मदवारिगन्धेन विमोहिताः भ्रमराः सुरभीणि पुन्नागपुष्पाणि त्यक्त्वा तेषां गजानां गण्डेषु पेतुः इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०—खजूरके स्कंधोंमें बंधेहुए हाथियोंके मद निकलनेके सुगन्धिवाले गण्डस्थलोंमें पुन्नागवृक्षोंसे भौंरे टूटपडे ॥ ५७ ॥

नद्धानाम्=नह+क्तः । उद्गारेण=उत्+गॄ+घञ् ।

अवकाशं किलोदन्वान्रामायाभ्यर्थितो ददौ ॥
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥ ५८ ॥

अन्वयः । किल उदन्वान् अभ्यर्थितः (सन्) रामाय अवकाशं ददौ, रघवे (तु) अपरान्तमहीपालव्याजेन करं (ददौ) ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । किल उदन्वता अभ्यर्थितेन (सता) रामाय अवकाशः ददे रघवे (तु) अपरान्तमहीपालव्याजेन करः (ददे) ॥ ५८ ॥

यस्य सकाशात् परशुरामोपि याच्ञां कृत्वा स्थानं लब्धवान् सोपि सागरः पाश्चात्यमहीपालच्छलेन भयादागत्य रघवे नम्रतासूचकं करं दत्तवानिति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–विख्यात है कि सागरने मांगनेपर परशुरामको स्थान दियाथा, रघुके निमित्त तो पश्चिमदेशके राजाओंके मिससे भेट दी ॥ ५८ ॥

अभ्यर्थितः=अभि+अर्थ+क्तः । अवकाशम्=अव+काश+अच् ।

मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम् ॥
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः ॥ ५९ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) तत्र मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणं त्रिकूटम् एव उच्चैः जयस्तंभं चकार ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) तत्र उच्चैः मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणः त्रिकूटः एव जयस्तंभः चक्रे ॥ ५९ ॥

तत्र त्रिकूटाचलः मदोद्धतानां रघुनागानां गाढदन्तप्रहारचिह्नैः अङ्कितः सन् रघोर्नामाक्षरैः अङ्कितः अश्ममयः महान् तस्य जयस्तंभ इव दिदीपे इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०–तहां रघुने मतवाले हाथियोंके दांतोंसे अंकित हुए बलके लक्षणवाला त्रिकूट पर्वतही ऊंचा जयका स्तंभ किया ॥ ५९ ॥

रदनोत्कीर्णानि=रदन+उत्+कॄ+क्तः ।

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ॥
इंद्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥ ६० ॥

अन्वयः । ततः (स रघुः) संयमी तत्त्वज्ञानेन इन्द्रियाख्यान् रिपून् (जेतुम्) इव, स्थलवर्त्मना पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे ॥ ६० ॥

वाच्यप० । ततः (तेन रघुणा) संयमिना तत्त्वज्ञानेन इंद्रियाख्यान् रिपून् (जेतुम्) इव, स्थलवर्त्मना पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे ॥ ६० ॥

यथा हि नियमी कामादीन् महाशत्रून् जेतुं ज्ञानोपायेन प्रवर्तते, तथा रघुरपि वलिष्ठान् पारसीकान् यवनान् जेतुं स्थलमार्गेणं जगामेति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–इसके उपरान्त रघु योगी जिस प्रकार तत्त्वज्ञानसे इंद्रिय नामक शत्रुओंको जीतताहै उस प्रकार स्थलमार्गसे पारसीक देशोंके जीतनेको गया ॥ ६० ॥

संयमी=संयम+इनिः ।

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ॥
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥ ६१ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) अकालजलदोदयः अब्जानां बालातपम् इव, यवनीमुखपद्मानां मधुमदं न सेहे ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) अकालजलदोदयः अब्जानां बालातपः इव यवनीमुखपद्मानां मधुमदः न सेहे ॥ ६१ ॥

यथा अकाले घोरो मेघाडम्बरः कमलानां प्रफुल्लां कान्तिम् अपहरति, तथा अकस्मात् उपस्थितो रघुरपि तत्र यवनवधूमुखानां प्रफुल्लां कान्तिम् अपहृतवानिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—वह रघु उस समयमें बादलोंके उदय होनेसे कमलोंके बालातपकी समान यवनीस्त्रियोंके मधुमदको न सहता हुआ ॥ ६१ ॥

अब्जानाम्=अप्+जन्+डः ।

सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्त्यैरश्वसाधनैः ॥
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः । तस्य (रघोः) अश्वसाधनैः पाश्चात्त्यैः (सह) शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजसि (उत्थिते सति) तुमुलः संग्रामः अभूत् ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । तस्य (रघोः) अश्वसाधनैः पाश्चात्त्यैः (सह) शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजसि तुमुलेन संग्रामेण अभावि ॥ ६२ ॥

तत्र अश्वसैन्यसहायैः यवननृपतिभिः सार्द्धं रघोः घोरः संग्रामः प्रवृत्ते, तत्सैन्योत्थितश्च रजस्समूहः तथा समन्तात् व्यानशे, यथा कोपि स्वकीयं प्रतिपक्षं स्वरूपतो द्रष्टुं न समर्थो बभूव केवलधनुष्टङ्कारेणैव कथञ्चित् अभिज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०—उस रघुका घोडोंपर चढकर लडनेवाले, पश्चिमदेशवासियोंके साथ धनुषके शब्दसे दोनो ओरके योधा जनानेवाली धूरिमें महासंग्राम हुआ ॥ ६२ ॥

शार्ङ्गाणि+शृङ्ग+अण् । कूजितम्=कूज+क्तः ।

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् ॥
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ॥ ६३ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) सरघाव्याप्तैः क्षौद्रपटलैः इव (लक्ष्यमाणैः) भल्लापवर्जितैः श्मश्रुलैः तेषां शिरोभिः महीम् तस्तार ॥ ६३ ॥

वाच्यपरि० । तेन (रघुणा) सरघाव्याप्तैः क्षौद्रपटलैः इव (लक्ष्यमाणैः) भल्लापवर्जितैः श्मश्रुलैः तेषां शिरोभिः मही तस्तरे ॥ ६३ ॥

रघुणा भल्लास्त्रैः खण्डशः कृतानि श्मश्रुमण्डितानि यवनशिरांसि मधुमक्षिकायुक्तानि क्षौद्रपटलानाव समरभूमिम् आच्छादयामासुः इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०—वह रघु मक्खियोंसे भरेहुए मुहालके छत्तोंकी समान भालोंसे काटेहुए डाढी मूछवाले उनके शिरोंसे पृथ्वीको ढकदेता हुआ ॥ ६३ ॥

श्मश्रुलैः=श्मश्रु+लच् । तस्तार=स्तृ+लिट् ।

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ॥
प्रणिपातप्रतीकारः संरंभो हि महात्मनाम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः । शेषाः (यवनाः पाश्चात्त्याः) अपनीतशिरस्त्राणाः (सन्तः) तं (रघुं) शरणं ययुः, हि (यतः) महात्मनां संरम्भः प्रणिपातप्रतीकारः (भवति) ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । शेषैः (यवनैः) अपनीतशिरस्त्राणैः (सद्भिः) सः (रघुः) शरणं ययै, हि (यतः) महात्मनां संरम्भेण प्रणिपातप्रतीकारेण (भूयते) ॥ ६४ ॥

शेषाः यवनाः प्रार्थनादर्शनार्थं स्वमस्तकेभ्यः उष्णीषान् दूरीकृत्य शरणं प्रपेदिरे, यतः महानुभावानां रोषः प्रणत्या एव शाम्यति इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—शेष यवन अपनी पगडी उतारकर रघुकी शरण गये, कारण कि महात्माओंका क्रोध नम्रतासेही निवारण होजाताहै ॥ ६४ ॥

शेषाः=शिष्+घञ् ।

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ॥
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ ६५ ॥

अन्वयः । तद्योधाः आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु मधुभिः विजयश्रमं विनयन्ते स्म ६५ ॥

वाच्यप० । तद्योधैः आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु मधुभिः विजयश्रमः विनीयते स्म ॥ ६५ ॥

अथ रघुसैनिकाः द्राक्षालतापरिमण्डितेषु स्थलेषु चर्मासनानि आस्तीर्य सुखोपविष्टाः सुरापानेन समरखेदं जहुः इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—उसके योधा अच्छे चर्मोंसे बिछीहुई, दाखोंसे घिरीहुई पृथिवियोंमें मधु-(मदिरा) द्वारा विजयके श्रमको मिटाते हुए ॥ ६५ ॥

विनयन्ते=वि+नी+लट् ।

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ॥
शरैरुस्त्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव ॥ ६६ ॥

अन्वयः । भास्वान् इव रघुः उस्रैः इव शरैः रसान् इव उदीच्यान् उद्धरिष्यन् कौबेरीं दिशं प्रतस्थे ॥ ६६ ॥

वाच्य० । भास्वता इव रघुणा××उद्धरिष्यता कौबेरी दिक् प्रतस्थे ॥ ६६ ॥

रविर्यथा स्वस्य तीक्ष्णकरसमूहैः रसानाम् आकर्षणाय उत्तरदिशं गच्छति, तथा रघुरपि शरसमूहैः उत्तरीयनृपाणाम् उन्मूलनाय उत्तरदिशं जगाम इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०-इसके उपरान्त रघु सूर्यके समान किरणरूपी बाणोंसे उत्तरदेशवासियोंको उखाडता हुआ कुबेरकी दिशा (उत्तर) को चला ॥ ६६ ॥

उस्रैः=वस्+रक् । उदीच्यान्=उदच्+यत् । उद्धरिष्यन्=उत्+धृ+स्य+शतृ ।

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ॥
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकुमकेसरान् ॥ ६७ ॥

अन्वयः । तस्य (रघोः) सिन्धुतीरविचेष्टनैः विनीताध्वश्रमाः वाजिनः लग्नकुंकुमकेसरान् स्कंधान् दुधुवुः ॥ ६७ ॥

वाच्यपरि० । तस्य (रघोः) सिन्धुतीरविचेष्टनैः, विनीताध्वश्रमैः वाजिभिः लग्नकुंकुमकेसराः स्कन्धाः दुधुविरे ॥ ६७ ॥

तस्य रघोः क्लान्ताः अश्वाः सिन्धुनदस्य तीरे अंगपरिवर्तनैः श्रमं त्यक्तवन्तः, तस्मिन् समये अंगपरिवर्तनेन कुंकुमरजांसि तेषां केसरेषु ससञ्जुः, पुनः ते उत्थाय कुंकुमलग्नान् देहान् कम्पयन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०-उस रघुके सिंधुनदके किनारे लोटनेसे श्रमरहित हुए घोडे कुंकुम केसर लगे हुए कंधोंको झाडते हुए ॥ ६७ ॥

विचेष्टनैः=वि+चेष्ट+ल्युट्+३ । चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट । भावे-चेष्ट्यते । चेष्टनीयम् । चेष्टितुम् । चेष्टितव्यम् । चेष्टमानः । दुधुवुः= धू+लिट् ।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ॥
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः । तत्र भर्तृषु व्यक्तविक्रमं रघुचेष्टितं हूणावरोधानां कपोलपाटलादेशि बभूव ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । तत्र भर्तृषु व्यक्तविक्रमेण रघुचेष्टितेन हूणावरोधानां कपोलपाटलादेशिना बभूवे ॥ ६८ ॥

हूणजातीयम्लेच्छानां नाशने रघुः घोरं पराक्रमं दर्शितवान्, यथा पतिमरणशोकात् तेषां वध्वः करताडनैः कपोलान् रक्तवर्णान् चक्रुः इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-उसदिशामें उनके पतियोंमें बल दिखाकर रघुके कर्मने हूणदेशकी ललनाओंके कपोलोंमें लाली लखाई, अर्थात् पतियोंके विनाश होनेके कारण रोनेसे उनके कपोल लाल होगये ॥ ६८ ॥

कपोल=कपि+ओलच् ।

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः॥
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः॥ ६९॥

अन्वयः। काम्बोजाः समरे तस्य (रघोः) विक्रमं सोढुम् अनीश्वराः (सन्तः) गजालानपरिक्लिष्टैः अक्षोटैः सार्द्धम् आनताः (बभूवुः)॥ ६९॥

वाच्यप०। काम्बोजैः समरे तस्य (रघोः) विक्रमं सोढुम् अनीश्वरैः (सद्भिः) गजालानपरिक्लिष्टैः अक्षोटैः सार्द्धम् आनतैः (बभूवे)॥ ६९॥

काम्बोजदेशीयाः म्लेच्छाः समरे घोरं रघुप्रतापं न विषेहिरे, तत्र अक्षोटवृक्षेषु बद्धानां रघुहस्तिनां शृङ्खलाकर्षणवेगेन पृथिव्यां ते वृक्षाः अवनताः बभूवुः, तथा काम्बोजा अपि रघुचरणे अवनताः जाताः इति सरलार्थः॥ ६९॥

भा०–कांबोज (काबुल) देशवासी संग्राममें उस रघुका पराक्रम सहनेको समर्थ न होकर हाथियोंके बंधनोंसे रगडे हुए अखरोटोंके संगही नम्र हुए॥ ६९॥

परिक्लिष्टैः=परि+क्लिश्+क्तः। अक्षोटैः=अक्ष्+ओटः ३।

तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः॥
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्॥ ७०॥

अन्वयः। तेषां (काम्बोजानाम्) सदश्वभूयिष्ठाः तुंगाः द्रविणराशयः उपदाः शश्वत् कोशलेश्वरं (रघुं) विविशुः, (तथापि) उत्सेकाः न॥ ७०॥

वाच्यप०। तेषां सदश्वभूयिष्ठैः तुंगैः द्रविणराशिभिः उपदाभिः शश्वत् कोशलेश्वरः (रघुः) विविशे, (तथापि) उत्सेकैः न (विविशे)॥ ७०॥

पराजिताः काम्बोजनृपाः स्वदेशजान् अश्वान् सुवर्णराशींश्च रघवे उपहृतवन्तः, तादृशवैभवप्राप्तेपि रघोर्मनसि न किंचिदपि अहंकारो जातः इति सरलार्थः॥ ७०॥

भा०–उन काम्बोजदेशवालोंकी अच्छे घोडोंसे बढीहुई सोनेके बडे ढेरोंवाली भेंट निरन्तर कोशलेश्वर रघुको प्राप्त हुई परन्तु अभिमान नहीं प्राप्त हुआ॥ ७०॥

भूयिष्ठाः=बहु+इष्ठन्। द्रविणं=द्रु+इनन् ६। तुङ्गाः=तुजि+घञ्। उत्सेकाः=उत्+सिच्+घञ्।

ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः॥
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः॥ ७१॥

अन्वयः। ततः अश्वसाधनः (सः रघुः) उद्धूतैः धातुरेणुभिः तत्कूटान् वर्धयन् इव, गौरीगुरुं शैलम् आरुरोह॥ ७१॥

वाच्यप०। ततः अश्वसाधनेन (तेन रघुणा) उद्धूतैः धातुरेणुभिः तत्कूटान् वर्धयता इव, गौरीगुरुः शैलः आरुरुहे॥ ७१॥

ततोनन्तरम् अश्वसैन्यसहायः सन् रघुः पर्वतीयगणान् जेतुं हिमालयमारुरोह, तदा अश्वखुरोत्थिताः रक्तवर्णा गैरिकादिधातुधूलिरूपाः धातुरागरञ्जिताः हिमालयस्य शिखरा इव संलक्ष्यन्ते स्म, इति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०–तदुपरान्त अश्वारोही वह रघु उठी हुई धातुकी रजोंसे उसके शिखरोंको बढाताहुआ हिमालयपर्वत पर चढा ॥ ७१ ॥

वर्धयन्=वृध्+णिच्+शतृ ।

शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम् ॥
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम् ॥ ७२ ॥

अन्वयः । तुल्यसत्त्वानां गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्य अवलोकितं सैन्यघोषे अपि असम्भ्रमम् शशंस ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । तुल्यसत्त्वानां गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्य अवलोकितेन सैन्यघोषे अपि असम्भ्रमः शशंसे ॥ ७२ ॥

महाबलाः गुहाशयाः अकुतोभयाः सिंहाः रघुसैन्यानां भयंकरं शब्दं श्रुत्वापि स्वस्थानेभ्यः न विचेलुः, सुखशयिता एव ग्रीवाभङ्गेन सैन्यशब्दसम्मुखं निर्भयां दृष्टिं निवेशयामासुः इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०–समान बलवाले गुफाओंमें सोते हुए सिंहोंका गरदन फेरकर देखना सेनाके कोलाहलमेंभी निडरता जनाता हुआ ॥ ७२ ॥

अवलोकितम् = अव+लोक+क्तः । शशंस = शंस+लिट् ।

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः ॥
गङ्गाशीकारिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥ ७३ ॥

अन्वयः । मार्गे भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः गंगाशीकारिणः मरुतः तं (रघुं) सिषेविरे ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । मार्गे भूर्जेषु मर्मरीभूतैः कीचकध्वनिहेतुभिः गंगाशीकारिभिः मरुद्भिः सः (रघुः) सिषेवे ॥ ७३ ॥

शुष्कभूर्जपत्राणाम् मर्मरशब्दं कारयन्तः कीचकवंशविवरेषु मधुरशब्दम् उत्पादयन्तः गंगाशीकरांश्च सञ्चारयन्तः निर्मलाः हिमाचलपवनाः तस्य रघोः मार्गश्रमं शमयामासुः इति सरलार्थः॥७३॥

भा०–मार्गमें भोजपत्रोंमें मर्मर शब्द करनेवाला, वांसोंमें शब्द करनेहारा, गंगाके कणोंसे युक्त पवन उस रघुको सेवन करता हुआ ॥ ७३ ॥

मर्मरीभूताः=मर्मर+च्विः+भू+क्तः ।

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ॥
दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ॥ ७४ ॥

अन्वयः । सैनिकाः नमेरूणाम् छायासु निषण्णमृगनाभिभिः वासितोत्संगाः दृषदः अध्यास्य विशश्रमुः ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । सैनिकैः नमेरूणां छायासु निषण्णमृगनाभिभिः + + + विशश्रमे ॥ ७४ ॥

तत्र हिमालये रघुयोधाः नमेरुवृक्षाणां छायासु कस्तूरिकासुवासितानि शिलातलानि अधिष्ठाय मार्गखेदं शमयामासुः इति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०—सेनाके लोग सुरपुन्नागवृक्षोंकी छायामें वैठनेवाले हरिणोंकी नाभिसे सुगन्धित शिलाओंपर वैठकर विश्राम लेतेहुए ॥ ७४ ॥

वासितः=वस्+णिच्+क्तः । अध्यास्य=अधि+आस्+ल्यप् । विशश्रमुः=वि+श्रम+लिट् । श्राम्यति । अश्राम्यत् । अश्रमत् । अश्रमीत् । भा० श्रम्यते ।

सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ॥
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ॥ ७५ ॥

अन्वयः । सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः ओषधयः नेतुः (रघोः) नक्तम् अस्नेहदीपिकाः आसन् ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विड्भिः ओषधिभिः नेतुः (रघोः) नक्तम् अस्नेहदीपिकाभिः अभूयत ॥ ७५ ॥

तत्र रात्रौ स्वतः प्रज्वलिताः ओषधयः देवदारुस्कंधबद्धानां रघुनागानां कण्ठशृंखलेषु प्रतिस्फुरितदीप्तयः सत्यः रघोः दीपावलीकार्यं कुर्वन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०—देवदारुवृक्षोंसे वंधेहुए गज वेलोंमें प्रतिबिम्ब पडनेसे अधिक कान्तिमान् ओषधी रात्रिमें उस नायकके विना तेलके दीपककी समान हुई ॥ ७५ ॥

ओषधयः=ओष+धा+किः । नक्तम्=नज्+तन् ।

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ॥
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥ ७६ ॥

अन्वयः । तस्य (रघोः) उत्सृष्टनिवासेषु कंठरज्जुक्षतत्वचः देवदारवः किरातेभ्यः गजवर्ष्म शशंसुः ॥ ७६ ॥

वाच्यपारि० । तस्य (रघोः) उत्सृष्टनिवासेषु कंठरज्जुक्षतत्वग्भिः देवदारुभिः किरातेभ्यः गजवर्ष्म शशंसे ॥ ७६ ॥

किराताः रघुगजानां देहोन्नत्यं रघुणा विसृष्टेषु सेनानिवेशस्थानेषु स्थितानां देवदारुवृक्षाणां स्कंधेषु नागानां कण्ठरज्जुघर्षणचिह्नानि दृष्ट्वा बुबुधिरे इति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०-उस रघुके छोडे हुए पडाओंमें गलेकी रस्सीसे छिली हुई छालवाले देवदारुके वृक्ष किरातोंसे उसके हाथियोंकी ऊंचाई कहतेहुए ॥ ७६ ॥

किरातः=किर+कृ+कः । अत+अत्+अच् ।

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ॥
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः । तत्र रघोः पर्वतीयैः गणैः (सह) नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् घोरं जन्यम् अभूत् ॥ ७७ ॥

वाच्यपरि० । तत्र रघोः पर्वतीयैः गणैः (सह) नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलेन घोरेण जन्येन अभावि ॥ ७७ ॥

हिमाचलवासिभिस्सह रघोः घोरं समरं प्रवृत्ते, रघुसैन्यनिक्षिप्तानां नाराचादीनां पार्वतीयगणनिक्षिप्तानाम् अश्मनां च परस्परसंघर्षणात् युद्धक्षेत्रे असकृत् अग्निराशयः उत्पतन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०-उस रघुका पहाडियोंके समूहसे, शर और गोफनोंके पत्थरोंकी रगडसे निकली अग्निवाला घोर संग्राम हुआ ॥ ७७ ॥

नाराचानाम्=नार+आ+चम+डः । जन्यम्=जन+यक् ।

शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान् ॥
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ ७८ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) शरैः उत्सवसंकेतान् विरतोत्सवान् कृत्वा किन्नरान् बाह्वोः जयोदाहरणं गापयामास ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । तेन (रघुणा) शरैः उत्सवसंकेतान् विरतोत्सवान् कृत्वा किन्नराः बाह्वोः जयोदाहरणं गापयाञ्चक्रिरे ॥ ७८ ॥

तत्र उत्सवसंकेताख्या असभ्यगणाः रघुशरैः समुत्खाताः चिरमहोत्सवात् विरेमुः, किन्नराः तस्य रघोः भुजप्रतापं मनोहरपदैः उद्घोषयन्ति स्म इति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०-वहां रघुने बाणोंसे उत्सवसंकेत नामवाले पहाडियोंको उत्सवहीन करके किन्नरोंसे अपने बाहोंके जयकी कथा गवाई ॥ ७८ ॥

गापयामास=गै+णिच्+लिट् ।

परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ॥
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ॥ ७९ ॥

अन्वयः। तेषु उपायनपाणिषु (सत्सु) परस्परेण राज्ञा (रघुणा) हिमवतः सारः, हिमाद्रिणा (च) राज्ञः सारः विज्ञातः ॥ ७९ ॥

वाच्यप०। राजा हिमाद्रिश्च ××××× सारं विज्ञातवान् ॥ ७९ ॥

ते पर्वतीयगणाः मणिरत्नानि रघवे उपहृतवन्तः, रघुः तानि बहुमूल्यानि रत्नानि दृष्ट्वा गिरिराजस्य हिमाद्रेः कीदृक् प्रभावः तत् ज्ञातवान्, गिरिराजोपि रघोः पराक्रमं ज्ञातवान् इति सरलार्थः ७९

भा०–उनके भेंट सहित हाथोंसे परस्पर राजाने तो हिमालयका धन और हिमालयने राजाका बल जाना ॥ ७९ ॥

उपायनपाणिषु=उप+अय्+ल्युः।

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ॥
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ॥ ८० ॥

अन्वयः। सः (रघुः) तत्र (हिमाद्रौ) अक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्य, पौलस्त्यतुलितस्य अद्रेः (कैलासस्य) ह्रियम् आदधान इव अवरुरोह ॥ ८० ॥

वाच्यपरि०। तेन तत्र अक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्य, पौलस्त्यतुलितस्य अद्रेः ह्रियम् आदधानेन इव, अवरुरुहे ॥ ८० ॥

स रघुः इत्थं हिमाचले अक्षयां कीर्तिं निधाय रावणतुलितस्य कैलासस्य लज्जाम् आदधान इव तस्मात् पर्वतात् अवततारेति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०–वह रघु उस हिमालयमें निश्चल कीर्तिसमूहको स्थित करके रावणके उठाये हुए पर्वत (कैलास) को लज्जा उत्पन्न कराताहुआ सा उतरा ॥ ८० ॥

पौलस्त्यः=पुलस्ति+यञ्।

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः ॥
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥ ८१ ॥

अन्वयः। तस्मिन् (रघौ) तीर्णलौहित्ये (सति) प्राग्ज्योतिषेश्वरः तद्गजालानतां प्राप्तैः कालागुरुद्रुमैः सह चकम्पे ॥ ८१ ॥

वाच्यप०। तस्मिन् (रघौ) तीर्णलौहित्ये (सति) प्राग्ज्योतिषेश्वरेण तद्गजालानतां प्राप्तैः कालागुरुद्रुमैः सह चकम्पे ॥ ८१ ॥

ब्रह्मपुत्रनदम् उत्तीर्य्य प्राग्ज्योतिषं देशं सम्प्राप्ते रघौ कालागुरुतरुषु बद्धानां रघुनागानां ग्रीवाशृंखलाकर्षणात् ते वृक्षाः यथा कम्पन्ते स्म, तद्देशनायकोपि तथा चकम्पे इति सरलार्थः ॥८१॥

भा०–उस रघुके लौहित्यानदीके पार उतरतेही प्राग्ज्योतिष देशका राजा उसके हाथी बांधनेके स्तंभरूप हुए कालागुरु वृक्षोंके साथही काँपा ॥ ८१ ॥

चकम्पे=कम्प+लिट्। कम्पते। अकम्पत। अकम्पिष्ट। भा० कम्प्यते। कम्पनीयम्। कम्पकः कम्पितुम्। कम्पित्वा। कम्पमानः।

न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम् ॥
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः । सः (प्राग्ज्योतिषेश्वरः) अस्य (रघोः) अधारावर्षदुर्दिनं रुद्धार्कं रथवर्त्मरजः अपि न प्रसेहे, पताकिनीं (तु) कुत एव (प्रसेहे) ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । तेन प्रसेहे ×××× पताकिनी तु कुत एव (प्रसेहे) ॥ ८२ ॥

घनं मेघसमूहमिव रविमण्डलाच्छादकं रघुसैन्यरथोत्थितं धूलिसमूहं दृष्ट्वैव प्राग्ज्योतिषेश्वरः व्याकुलोभूत्, रघुसैन्येन सह तस्य समरः कुतः इति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०—वह राजा तो उस रघुके धाराकी वर्षाके विना दुर्दिन करनेवाली (सूर्यको रोकनेवाली) रथसे उठी धूरकोभी न सह सका फिर सेनाको तो कहां (सहता) ॥८२॥

पताकिनीम्=पताका+इनिः ।

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ॥
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ॥ ८३ ॥

अन्वयः । कामरूपाणाम् ईशः यैः (गजैः) अन्यान् (राज्ञः) उपरुरोध, भिन्नकटैः तैः नागैः अत्याखंडलविक्रमं तं (रघुम्) भेजे ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । कामरूपाणाम् ईशेन यैः अन्ये उपरुरुधिरे, भिन्नकटैः तैः नागैः अत्याखंडलविक्रमः सः (रघुः) भेजे ॥ ८३ ॥

कामरूपेश्वरः युद्धे महाबलैः मत्तगजैः बहुशः शत्रुपक्षान् निराचकार, तानेव मत्तगजान् उपहृत्य तं रघुं शरणं प्राप्तवानिति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०—कामरूप देशका राजा जिन हाथियोंसे दूसरे राजोंको रोकता हुआ, मदके चुआनेवाले उन्हीं हाथियों द्वारा बडे पराक्रमी रघुको भजताहुआ, अर्थात् उनको वे हाथी भेंटमें दिये ॥ ८३ ॥

ईशः=ईश+कः । उपरुरोध=उप+रुध्+लिट् ।

कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ॥
रत्नपुष्पोपहारेणच्छायामानर्च पादयोः ॥ ८४ ॥

अन्वयः । कामरूपेश्वरः हेमपीठाधिदेवतां तस्य (रघोः) पादयोः छायां रत्नपुष्पोपहारेण आनर्च ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । कामरूपेश्वरेण रत्नपुष्पोपहारेण हेमपीठाधिदेवता तस्य पादयोः छाया आनर्चे॥८४॥

यथा हि कश्चित् परमदेवतां प्रसादयितुं कुसुमाञ्जलिना तां यत्नतः पूजयति, तथा कामरूपेश्वरोपि निर्मले सुवर्णमये पादपीठे तस्य अधिष्ठात्रीं देवतामिव रघोः चरणच्छायां कुसुमाञ्जलिना पूजयामासेति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०—कामरूपदेशका राजा सोनेके छोटे सिंहासन (पीढी) के अधिदेवता उस रघुके चरणोंकी छायाको रत्नरूपी फूलोंकी भेंटसे पूजता हुआ ॥ ८४ ॥

आनर्च=अर्च+लिट् ।

इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ॥
रजो विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ॥ ८५ ॥

अन्वयः । जिष्णुः (सः रघुः) इति दिशः जित्वा छत्रशून्येषु राज्ञां मौलिषु रथोद्धतं रजः विश्रामयन् (सन्) न्यवर्तत ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । जिष्णुना (तेन रघुणा) इति दिशः जित्वा छत्रशून्येषु राज्ञां मौलिषु रथोद्धतं रजः विश्रामयता (सता) न्यवृत्यत ॥ ८५ ॥

इत्थं विजयी रघुः सम्पूर्णां पृथिवीं निर्जित्य जगतः एकाधिपत्यं लब्ध्वा निजराजधानीमाजगाम । तस्य रथोत्कीर्णानि रजांसि पराभूतस्य भूपतिमण्डलस्य छत्ररहितेषु मुकुटेषु ससञ्जुः इति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०—जयशील वह रघु इस प्रकार दिशाओंको जीतकर छत्रसे रहित हुए राजाओंके मस्तकमें रथसे उठी हुई धूरिको विश्राम देता हुआ लौटा ॥ ८५ ॥

जित्वा=जि+क्त्वा । उद्धतम्=उत्+हन्+क्तः । न्यवर्त्तत=नि+वृत्+लङ् ।

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ॥
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥ ८६ ॥

अन्वयः । सः (रघुः) सर्वस्वदक्षिणं विश्वजितं यज्ञम् आजह्रे, हि (यतः) वारिमुचाम् इव सताम् आदानं विसर्गाय (भवति) ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । तेन सर्वस्वदक्षिणः विश्वजित् यज्ञः आजह्रे, हि (यतः) वारिमुचाम् इव सताम् आदानेन विसर्गाय (भूयते) ॥ ८६ ॥

स रघुः पश्चात् विश्वजिन्नामकं महायज्ञं कृतवान् यस्मिंश्च स्वभुजोपार्जितं सम्पूर्णमैश्वर्यं दक्षिणारूपेण दत्तवान्, मेघा यथा जलदानाय सलिलानि आददते, एवं महात्मानोपि दानाय धनानि आददते, न स्वप्रयोजनायेति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—वह रघु सर्वस्व दक्षिणावाला विश्वजित यज्ञ करता हुआ, कारण कि मेघोंके समान श्रेष्ठ पुरुषोंका संचय त्यागनेहीके निमित्त होता है ॥ ८६ ॥

विश्वजित्=विश्व+जि+क्विप् । वारिमुचाम्=वारि+मुच्+क्विप् । विसर्गाय—वि+सृज+घञ् ४ ।

सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभि-
र्गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलीकान् ॥

काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधा-
न्राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने ॥ ८७ ॥

अन्वयः । सचिवसखः काकुत्स्थः सत्रान्ते गुर्वीभिः पुरस्क्रियाभिः शमितपराजयव्यलीकान् चिरविरहोत्सुकावरोधान् राजन्यान् स्वपुरनिवृत्तये अनुमेने ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । सचिवसखेन काकुत्स्थेन सत्रान्ते गुर्वीभिः पुरस्क्रियाभिः शमितपराजयव्यलीकाः चिरविरहोत्सुकावरोधाः राजन्या स्वपुरनिवृत्तये अनुमेनिरे ॥ ८७ ॥

समाप्ते च यज्ञे मन्त्रिसहितो रघुः बहुतरैः दानमानैः सत्कारं कृत्वा, पराभवप्राप्तानां नृपतीनां पराभवक्षोभं निवारयामास, प्रियाभ्यः चिरविरहितांश्च तान्नृपतीन् स्वराष्ट्रगमनाय अनुज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०-मंत्रियोंके सखा रघुने यज्ञान्तमें बडे सत्कारसे पराजयका दुःख दूर किये राजाओंको जिन्हें बहुत दिनके छोडे रनवासमें अभिलाषाथी (उन्हें) उनके नगरमें जानेको विदा दी ॥ ८७ ॥

व्यलीकान्=वि+अल्+ईकान् । अनुमेने-अनु+मन्+लिट् ।

ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं
सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ॥
प्रस्थानप्रणतिभिरंगुलीषु चक्रु-
र्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः । ते (राजन्याः) रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं प्रसादलभ्यं सम्राजः (रघोः) चरणयुगम् अंगुलीषु प्रस्थानप्रणतिभिः मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरं चक्रुः ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । तैः ××× चक्रे ॥ ८८ ॥

प्रयाणकाले ते सर्वे भूपाः चक्रवर्तिलक्षणोपेते रघोः चरणद्वन्द्वे निपत्य प्रणेमुः, तदा तेषां शिरोमाल्यविगलिताः पुष्परसाः परागाश्च रघोः चरणद्वयम् अलंचक्रुः इति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०-वे राजा रेखाहीसे ध्वज वज्र और छत्रके चिह्नवाले, प्रसन्नतासे प्राप्तहोने योग्य, चक्रवर्ती उस रघुके चरणयुगलकी अंगुलियोंमें प्रस्थान समयके प्रणामसे शिरकी मालासे गिरे हुए परागोंसे श्वेतवर्ण करते हुए ॥ ८८ ॥

कुलिशः=कुलिन्+शो+कः । मकरन्दः=मकर+दो+कः+पृषोदरादिः ।

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसाद-
मिश्रविरचितभावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते
चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ।

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम् ॥
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥ १ ॥

अन्वयः । उपात्तविद्यः वरतन्तुशिष्यः कौत्सः गुरुदक्षिणार्थी सन् विश्वजिति अध्वरे निःशेषविश्राणितकोशजातं तं क्षितीशं (रघुम्) प्रपेदे ॥ १ ॥

वाच्यप० । उपात्तविद्येन वरतन्तुशिष्येण कौत्सेन गुरुदक्षिणार्थिना (सता) विश्वजिति अध्वरे निःशेषविश्राणितकोशजातः स क्षितीशः (रघुः) प्रपेदे ॥ १ ॥

अथ रघुणा विश्वजिति यज्ञे निःशेषिते सर्वस्वे, वरतन्तुनाम्नः कस्यचिन्महर्षेः कौत्सनामा शिष्यः गुरुसकाशात् वेदान् यथावदधीत्य गुरुदक्षिणां प्रार्थयितुं रघुसमीपमाजगामेति सरलार्थः॥१॥

भा०—विश्वजित् नाम यज्ञमें समस्त धन दान कर स्थित उस रघुके पास, विद्या पढकर वरतन्तुका शिष्य कौत्सऋषि गुरुदक्षिणाके निमित्त आया ॥ १ ॥

उपात्त=उप+आ+दा+क्तः । कौत्सः=कुत्स+अण् ।

स मृन्मये वीतहिरण्मयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः ॥
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥ २ ॥

अन्वयः । अनर्घशीलः यशसा प्रकाशः आतिथेयः सः (रघुः) वीतहिरण्मयत्वात् मृन्मये पात्रे अर्घ्यं निधाय श्रुतप्रकाशम् अतिथिम् प्रत्युज्जगाम ॥ २ ॥

वाच्यपरि० । अनर्घशीलेन यशसा प्रकाशेन आतिथेयेन तेन (रघुणा) वीतहिरण्मयत्वात् मृन्मये पात्रे अर्घ्यं निधाय श्रुतप्रकाशः अतिथिः प्रत्युज्जग्मे ॥ २ ॥

दिव्यप्रभावः शरणागतरक्षकः रघुः यज्ञे सर्वस्वदानात् धातुपात्राभावात् मृन्मये पात्रे पूजार्थम् उपकरणं समादाय विद्यासम्पन्नम् अभ्यागतं तं कौत्सं प्रत्युज्जगामेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—अमूल्य स्वभाववाला यशसे प्रकाशित अतिथिसंत्कार करनेवाला वह रघु सुवर्णके पात्र न रहनेके कारण मृत्तिकाके पात्रमें अर्घ्य रखकर उस वेदपाठ करनेवाले अतिथिके निकट गया ॥ २ ॥

हिरण्मयम्=हिरण्य+मयट् । मृन्मयम्=मृद्+मयट् ।

तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी ॥
विशां पतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच ॥ ३ ॥

अन्वयः । विधिज्ञः मानधनाग्रयायी कृत्यवित् विशां पतिः तपोधनम् आरात् विष्टरभाजं तं (कौत्सं) विधिवत् अर्चयित्वा कृताञ्जलिः सन् इति उवाच ॥ ३ ॥

वाच्यप० । विधिज्ञेन मानधनाग्रयायिना कृत्यविदा विशांपत्या कृतांजलिना (सता) तपोधनः आरात् विष्टरभाक् सः विधिवत् अर्चयित्वा इति ऊचे ॥ ३ ॥

यशोधनानां धुरीणः श्रुतशीलसम्पन्नः नरपतिः वेदशास्त्रसम्पन्नं तं कौत्सं श्रौतेन विधिना सत्कृतवान्, पश्चात् समीपे सुखासीने तस्मिन् बद्धाञ्जलिः (सन्) आगमनप्रयोजनं पप्रच्छ इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०-शास्त्रका जाननेवाला मानके, धनियोंमें अग्रणी विधिवेत्ता राजा तपोधन समीपमें आसनपर बैठे हुए उस ऋषिको विधिपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़ इस प्रकार बोला ॥ ३ ॥

विधिज्ञः=विधि+ज्ञा+कः । कृत्यवित्=कृत्य+विद्+क्विप् ।

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे ! कुशली गुरुस्ते ॥
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥ ४ ॥

अन्वयः । हे कुशाग्रबुद्धे ! मन्त्रकृताम् ऋषीणां अग्रणीः ते गुरुः कुशली अपि ? लोकेन उष्णरश्मेः चैतन्यम् इव त्वया यतः अशेषं ज्ञानम् आप्तम् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । अग्रण्या गुरुणा कुशलिना लोकः चैतन्यम् इव त्वम् आप्तवान् ॥ ४ ॥

हे सूक्ष्मबुद्धे ब्रह्मन् ! रविर्यथा अन्धकारान्धं लोकं प्रकाशेन उद्बोधयति, तथा अज्ञानतिमिरान्धं त्वां यः ज्ञानप्रकाशेन उद्बोधितवान् स वेदनिधिः ते गुरुः कुशली अस्ति ? इति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा० हे (तीक्ष्णबुद्धिमान्) कुशाग्रकी समान बुद्धिवाले, तुम्हारे गुरु मंत्र करनेवाले ऋषियोंमें मुख्य कुशलपूर्वक हैं ? जिनसे तुमने लोकमें तप्तकिरणवाले सूर्यसे चैतन्यताके समान पूर्णज्ञान पाया है ॥ ४ ॥

अग्रणीः=अग्र+नी+क्विप् । मन्त्रकृत्=मन्त्र+कृ+क्विप् ।

कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि ॥
आपाद्यते न व्ययमंतरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥ ५ ॥

अन्वयः । कायेन वाचा मनसा अपि वासवधैर्य्यलोपि यत् तपः शश्वत् सम्भृतम् महर्षेः त्रिविधं तत् तपः अन्तरायैः व्ययं न आपाद्यते कच्चित् ? ॥ ५ ॥

वाच्यप० । (महर्षिः) यत् तपः सम्भृतवान् अन्तरायाः तत् तपः व्ययं न आपादयन्ति ? ॥ ५ ॥

भवद्गुरुः स वरतन्तुः निरन्तरं कायमनोवचनैः यद् दुश्चरं तपः कृतवान्, यस्मात् पुरंदरोऽपि न धैर्य्यमवलम्बते तत्तपः अन्तरायाभावात् निष्कंटकम् ? इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०-काय मन और वचनसे निरन्तर इकट्ठा किया हुआ ऋषिका तीनप्रकारका तप, जो इन्द्रका धैर्य दूरकरनेवाला है वह कहीं विघ्नोंसे नष्ट तो नहीं हुआ ॥ ५ ॥

धैर्य्य=धीर+ष्यञ ।

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ॥
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः । आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः सुतनिर्विशेषं (यथा तथा) संवर्धितानां श्रमच्छिदां वः आश्रमपादपानां वाय्वादिः उपप्लवः न (भवति) कच्चित् ? ॥ ६ ॥

वाच्यप० । आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः सुतनिर्विशेषं संवर्धितानां श्रमच्छिदां वः आश्रमपादपानां वाय्वादिना उपप्लवेन न (भूयते) ॥ ६ ॥

भवद्भिः आलवालबंधनजलसेचनादिभिः उपायैः सुतसदृशप्रेम्णा संवर्द्धिताः ये आश्रमवृक्षाः फलच्छायादानेन श्रान्तानां सकलसन्तापम् अपहरन्ति, तान् दावानलवात्यादिः उपद्रवः न बाधते कच्चित् ? इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०–थांवले बांधनेआदि प्रयत्नोंसे पुत्रकी समान बढाये हुए श्रमके दूर करनेवाले तुह्मारे आश्रमके वृक्षोंको पवनआदिका विघ्न तो नहीं है ॥ ६ ॥

श्रमच्छिदाम्=श्रम+छिद्+क्विप् । उपप्लवः=उप+प्लु+अप् ।

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु ॥
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ॥ ७ ॥

अन्वयः । मुनिभिः वत्सलत्वात् क्रियानिमित्तेषु अपि कुशेषु अभग्नकामा तदंकशय्याच्युतनाभिनाला मृगीणां प्रसूतिः अनघा कच्चित् ॥ ७ ॥

वाच्यप० । मुनिभिः वत्सलत्वात् क्रियानिमित्तेषु अपि कुशेषु अभग्नकामया तदंकशय्याच्युतनाभिनालया मृगीणां प्रसूत्या अनघया कच्चित् (भूयते) ॥ ७ ॥

तत्कालप्रसूतान् यान् मृगान् ऋषयः अङ्के परिगृह्य रक्षन्ति, येषां नाभिनालानि मुनीनाम् अङ्केषु स्खलन्ति, होमनिमित्तेषु अपि कुशेषु येषां भक्षणेच्छा ऋषिभिः नैव व्याहन्यते, कुशलिनस्ते मृगशावकाः तपोवने कच्चित् ? इति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०–मुनियोंसे क्रियाके निमित्त कुशों में भी प्रीतिकरनेके कारण चरनेसे निषेध न की हुई, और उनकी गोदीरूपी शय्यामें नाभिनालकी गिरानेवाली मृगियोंकी संतान कुशल तो है ॥ ७ ॥

अभग्नः=न+भञ्ज+क्तः । प्रसूतिः=प्र+सू+क्तिन् ।

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम् ॥
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ॥ ८ ॥

अन्वयः । यैः नियमाभिषेकः निर्वर्त्यते, येभ्यः पितॄणां निवापाञ्जलयः (निर्वर्त्यन्ते) उञ्छषष्ठांकितसैकतानि तानि वः तीर्थजलानि शिवानि कच्चित् ? ॥ ८ ॥

वाच्यप० । यैः (यूयं) नियमाभिषेकं निर्वर्तयथ, ++ उञ्छषष्ठांकितसैकतैः तैः तीर्थजलैः शिवैः (भूयते) ॥ ८ ॥

येषां तटेषु भवद्दत्ताः धान्यानां राजग्राह्याः बलिषड्भागाः शोभन्ते, यैश्च नित्यकर्तव्यं स्नानपानादिकं पितृतर्पणादिकं सम्पाद्यन्ति, तानि भवतामाश्रमे नदीसलिलानि शिवानि कच्चित् ? इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०–जिन तीर्थजलोंमें नित्य स्नान किया जाताहै, जिनसे पितरोंको अंजली दी जातीहै वे तुम्हारे उंछके छठे भागसे चिह्नित किनारोंवाले तीर्थोंके जल कल्याणयुक्त तो हैं ॥ ८ ॥

सैकतानि=सिकता+अण् ।

नीवारपाकादि कडंगरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित् ॥
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ॥ ९ ॥

अन्वयः । कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं वः शरीरस्थितिसाधनं नीवारपाकादि जानपदैः कडंगरीयैः न आमृश्यते कच्चित् ॥ ९ ॥

वाच्यप० । कडङ्गरीयाः न आमृशन्ति ॥ ९ ॥

भवतां निर्वाहकारणम् अतिथिसेवासम्पादकं स्वच्छन्दवनजातं नीवारादिधान्यं ग्राम्याः महिषादयो न भक्षयन्ति कच्चित् ? इति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०–योग्यसमय पर प्राप्त हुये अतिथियोंको भागमें मिलनेवाले, वनमें उत्पन्न हुए तुम्हारे शरीरस्थितिके कारण अन्नादि, ग्रामके तृणभक्षण करनेवाले पशुओंसे तो नहीं नाश किये जाते ॥ ९ ॥

कडंगरीयाः=कडंगर+छः । आमृश्यते=आ+मृश+लट् । मृशति । ममर्श । अम्राक्षीत् । आमार्क्षीत् । अमृक्षत् । क०–मृश्यते । शर्मनीयम् । मर्ष्टुम् । म्रष्टुम् । मृश्यम् । मृशन् ।

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय ॥
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥ १० ॥

अन्वयः । महर्षिणा प्रसन्नेन सता सम्यक् विनीय त्वं गृहाय अनुमतः अपि ? । सर्वोपकारक्षमं द्वितीयम् आश्रमं संक्रमितुम् अयं ते कालः ॥ १० ॥

वाच्यप० । महर्षिः प्रसन्नः सन् त्वामनुमतवान्××अनेन कालेन (भूयते) १० ॥

भवद्गुरुः प्रसन्नेन मनसा त्वां वेदान् यथावदध्याप्य गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुम् अनुमेने किम् ? अधुना ते कालः सर्वोपकारसमर्थे गृहस्थाश्रमे प्रवेशस्य वर्तते इति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०–अथवा प्रसन्न हुए ऋषि ने तुमको अच्छीप्रकार अध्ययन कराकर घर जानेको आज्ञा दी है, कारण कि तुम्हारा यह समय सब के उपकार करने में समर्थ गृहस्थाश्रममें जानेका है ॥ १० ॥

द्वितीयः=द्वि+तीयः ।

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे ॥
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम् ॥११॥

अन्वयः । मे मनः अर्हतः तव अभिगमेन तृप्तं न (अस्ति) (किं तु) नियोगक्रियया उत्सुकम् (अस्ति) (त्वम्) अपि शासितुः आज्ञया वा आत्मना मां सम्भावयितुं वनात् प्राप्तः असि ॥ ११ ॥

वाच्यप० । मे मनसा अर्हतः तव अभिगमेन तृप्तेन न (भूयते) नियोगक्रियया उत्सुकेन (भूयते) (त्वया) अपि शासितुः आज्ञया वा आत्मना मां सम्भावयितुं वनात् प्राप्तेन भूयते ॥ ११ ॥

भवतोऽत्रागमनकारणेन न तावत्परितोषमापद्यते मे मनः, किन्तु भवतः आज्ञां किञ्चित् कर्तुमुत्कण्ठते, किमु भवान् गुरुशासनात् वा स्वप्रयोजनात् वनादागत्य दर्शनेन मामनुगृह्णाति इति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०–मेरा मन पूजनीय तुम्हारे आगमनसे तृप्त नहीं होता किन्तु आज्ञा पाने में उत्कंठित है, क्या अब तुम गुरु की आज्ञासे वा स्वयं ही वनसे मुझे कृतार्थ करनेको आये हो ॥ ११ ॥

नियोगः=नि+युज्+घञ् ।

इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य ॥
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥ १२ ॥

अन्वयः । वरतन्तुशिष्यः (कौत्सः) अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोः इति उदाराम् अपि गां निशम्य, स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशः (सन्) तं (रघुम्) इति अवोचत् ॥ १२ ॥

वाच्यपरि० । वरतन्तुशिष्येण अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोः इति उदाराम् अपि गां निशम्य, स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशेन (सता) सः इति अवाचि ॥ १२ ॥

कौत्सः तस्य एवम् उदारां वाचं श्रुत्वा मृन्मयम् अर्घ्यपात्रं दृष्ट्वा तं निःस्वं मेने, स्वार्थलाभे च हताशः सन् तं प्रत्यवोचत् इति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–वरतन्तुका शिष्य अर्घ्यपात्रसे ही निर्धनता अनुमान करानेवाले रघुकी ऐसी उदारवाणी सुनकर, अपनी अर्थप्राप्तिमें निराश होकर, इसप्रकार रघुसे बोला ॥ १२ ॥

शिष्यः=शास+क्यप् ।

सर्वत्र नो वार्त्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ॥
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥ १३ ॥

अन्वयः । राजन् ! (त्वं) नः (अस्माकं) सर्वत्र वार्तम् अवेहि, त्वयि नाथे (सति) प्रजानाम् अशुभं कुतः (अस्ति) (यतः) सूर्ये तपति (सति) लोकस्य दृष्टेः आवरणाय तमिस्रा कथं कल्पेत ॥ १३ ॥

वाच्यपरि० । हे राजन् ! (त्वया) नः सर्वत्र वार्तम् अवेयताम् त्वयि नाथे (सति) प्रजानाम् अशुभेन कुतः (भूयते) सूर्ये तपति (सति लोकस्य दृष्टेः) आवरणाय तमिस्रया कथं कल्प्येत ॥ १३ ॥

राजन् ! त्वयि नाथे सति सर्वथैव सुखिनो वयं सूर्योदये अन्धकारस्य कथा न भवति, एवं भवदुदये प्रतिहतं नः सकलममङ्गलम् इति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०-हे राजन् ! आप सर्वथा हमारे कुशल जानिये, आपके स्वामी होनेपर प्रजामें अकुशल कहां । कारण कि सूर्यके तपनेपर लोकों की दृष्टिको रोकनेवास्ते अन्धकार कैसे समर्थ हो सक्ता है ॥ १३ ॥

तमिस्रा=तमस्+र+इ+टाप् । कल्पेत-कृप्+विधिलिङ् । कल्पते । चक्लृपे । अकल्पत । अक्लृपत् । अकल्पिष्ट । अक्लृप्त । भा०-कल्प्यते । कृ० कल्पनीयम् । कल्पितुम् । क्लृप्तुम् । कल्पितव्यम् । कल्पमानः ।

भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग ! तयातिशेषे ॥
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः॥१४॥

अन्वयः । महाभाग ! ते भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता (अस्ति) तया (भक्त्या) (त्वं) पूर्वान् अतिशेषे, अहं तु अर्थिभावात् व्यतीतकालः (सन्) त्वाम् अभ्युपेतः (अस्मि) इति मे विषादः (अस्ति) ॥ १४ ॥

वाच्यप० । हे महाभाग ! ते भक्त्या प्रतीक्ष्येषु कुलोचितया (भूयते) तया (त्वया) पूर्वे अतिशय्यन्ते, मया तु अर्थिभावात् व्यतीतकालेन (सता) त्वाम् अभ्युपेतेन (भूयते) इति मे विषादेन (भूयते) ॥ १४ ॥

हे महाभाग ! पूजनीयेषु ईदृशी प्रीतिः तव कुलव्रतमेव त्वं तु उत्कृष्टभक्तिगुणेन आत्मनः पूर्वजानपि अतिवर्तसे, यदहमनवसरे गुरुदक्षिणार्थं त्वाम् प्राप्तः, इदं तु मे कष्टम् इति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-हे महाभाग ! पूज्योंमें भक्ति करनी यह तुम्हारे कुलकी रीतिहै, उस भक्तिसे तुमने पूर्वपुरुषाओंको भी अतिक्रमणकिया है; मैं तो याचक बनकर कुसमय तुम्हारे पास आया यही मुझे विषाद है ॥ १४ ॥

प्रतीक्ष्येषु=प्रति+ईक्ष+ण्यत् । अतिशेषे=अति+शी+लट् । शेते । शेषे । शिश्ये । अशेत । अशेरत । अशयिष्ट । भा० शय्यते । शयनीयम् । शयितव्यम् । शयितुम् । उपशय्य । शेयम् । शयानः ।

शरीरमात्रेण नरेन्द्र ! तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः ॥
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥१५॥

अन्वयः । नरेन्द्र ! तीर्थप्रतिपादितार्द्धिः (त्वं) शरीरमात्रेण तिष्ठन् (सन्) आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तंबेन अवशिष्टः नीवारः इव आभासि ॥ १५ ॥

वाच्यप० । हे नरेन्द्र ! तीर्थप्रतिपादितार्द्धिना (त्वया) शरीरमात्रेण तिष्ठता (सता) आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिना स्तंबेन अवशिष्टेन नीवारेण इव, आभायते ॥ १५ ॥

राजन् ! सर्वस्वमेव त्वया दत्तम् अधुना देहमात्रेणैव ध्रियसे अत एव वनजनैः सम्पूर्णे गृहीते सस्यफले नीवारो यथा स्तम्बमात्रेणैव प्रकाशते, एवं त्वमपि शोभसे इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—हे राजन् ! सत्पात्रमें समस्त धनदेकर आप शरीरमात्रसे स्थितहुये वनवासियोंके फल तोडनेसे स्तम्बमात्र शेषरहे नीवारके समान शोभित होतेहो ॥ १५ ॥

ऋद्धिः=ऋधु+क्तिन् ।

स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिंचनत्वं मखजं व्यनक्ति ॥
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः॥१६॥

अन्वयः । भवान् एकनराधिपः सन् मखजम् अकिंचनत्वं व्यनक्ति, (इति) स्थाने, हि (यतः) सुरैः पर्य्यायपीतस्य हिमांशोः कलाक्षयः वृद्धेः श्लाघ्यतरः (भवति) ॥ १६ ॥

वाच्यप० । भवता एकनराधिपेन सता मखजम् अकिंचनत्वं व्यज्यते, स्थाने हि, सुरैः पर्य्यायपीतस्य हिमांशोः कलाक्षयेण वृद्धेः श्लाघ्यतरेण (भूयते) ॥ १६ ॥

यथा हि सुरैः यथाक्रमं परिपीतस्य रेखामात्रावशिष्टस्य शशिनस्तादृक् क्षीणत्वमपि किमपि गौरवमावहति तथा सर्वदानतया त्वमपि किमपि गौरवं धारयसि इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—आप चक्रवर्ती होकर यज्ञसे उत्पन्न हुई निर्धनताको प्रगट करते हो यह योग्यही है, क्योंकि देवताओंसे क्रमानुसार पियेहुये चन्द्रमाकी कलाका क्षय भी वृद्धिसे अधिक बडाई के योग्य होताहै ॥ १६ ॥

मखजम्=मख=जन्+डः । व्यनक्ति=वि+अञ्ज+लट् । अनक्ति । आनञ्ज । आनक् । आञ्जीत् । अज्यते । अञ्जनीयम् । अञ्जितुम् । अङ्क्तुम् । आञ्जितव्यः ।अङ्क्तव्यः । व्यक्तिः । अञ्जन् ।

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये ॥
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥१७॥

अन्वयः । तत् (तस्मात्) अनन्यकार्यः अहं तावत् अन्यतः गुर्वर्थम् आहर्तुं यतिष्ये, ते स्वस्ति अस्तु, चातकः अपि निर्गलितांबुगर्भं शरद्घनं न अर्दति ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तत् अनन्यकार्येण मया तावत् अन्यतः गुर्वर्थम् आहर्तुं यतिष्यते, ते स्वस्ति भूयताम् चातकेन अपि निर्गलिताम्बुगर्भः शरद्घनः न अर्द्यते ॥ १७ ॥

यतस्त्वम् अकिञ्चनोसि अतोहम् अन्यस्मात् वदान्यात् धनम् आदातुम् उद्योक्ष्ये चातकोऽपि वारिशून्यं मेघं नैव याचते का कथा मनुष्येषु इति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–इस कारण दूसरा कार्य न रखनेवाला मैं औरसे गुरुके प्रयोजन सिद्ध करनेका यत्न करूंगा, तुम्हारा कल्याण हो, चातकभी शरद्के जलरहित वादलकी याचना नहीं करता ॥ १७ ॥

यतिष्ये=यत्+लृट् । अर्दति=अर्द+लट् ।

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य ॥
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥१८॥

अन्वयः । नृपतिः (रघुः) एतावत् उक्त्वा प्रतियातुकामं महर्षेः शिष्यं निषिध्य, (हे) विद्वन् ! गुरवे किं वस्तु त्वया वा कियत् प्रदेयम् इति तम् अन्वयुंक्त ॥ १८ ॥

वाच्यप० । नृपतिना एतावत् उक्त्वा प्रतियातुकामः महर्षेः शिष्यः निषिध्य, हे विद्वन् ! त्वया गुरवे किं वस्तु वा कियत् प्रदेयम् इति सः अन्वयुज्यत ॥ १८ ॥

एवम् अभिधाय प्रस्थानोद्यते कौत्से राजा तं गमनात् निवार्य्य विनयपूर्वकमुवाच, अयि वेदविदांवर ! किंस्वरूपा ते गुरुदक्षिणा किं वा तस्याः मानामिति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०–इतना वचन कहकर जानेकी इच्छा करनेवाले महर्षि के शिष्य को राजाने रोककर हे भगवन् ! तुम्हें गुरुको क्या वस्तु और कितनी देनी है ऐसा पूछा ॥ १८ ॥

एतावत्=एतत्+वतुप् । कियत्=किम्+वतुप् । अन्वयुङ्क्त । अनु+युज्+लङ् । युनक्ति । युङ्क्ते । अयुनक् । अयुङ्क्त । अयुजत् । अयौक्षीत् । अयुक्त । कर्म० युज्यते । योजनीयम् । युञ्जन् ।

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ॥
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ १९ ॥

अन्वयः । ततः विचक्षणः सः वर्णी (कौत्सः) यथावत् विहिताध्वराय स्मयावेशविवर्जिताय वर्णाश्रमाणां गुरवे तस्मै प्रस्तुतम् आचचक्षे ॥ १९ ॥

वाच्यप० । ततः विचक्षणेन तेन वर्णिना (कौत्सेन) यथावत् विहिताध्वराय स्मयावेशविवर्जिताय वर्णाश्रमाणां गुरवे तस्मै (रघवे) प्रस्तुतः आचचक्षे ॥ १९ ॥

अनन्तरं ब्रह्मचारी कौत्सः कृतमहायज्ञमपि अभिमानस्पर्शरहितं तं रघुं प्रस्तुतविषयं कथयामासेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०–इसके उपरान्त यथावत् यज्ञानुष्ठान करनेवाले, अभिमानके आवेशसे हीन, वर्णाश्रमोंके रक्षक उस रघुके निमित्त वह चतुर ब्रह्मचारीने अपना प्रयोजन कहा ॥ १९ ॥

आचचक्षे=आ+चक्ष्+लिट् । चष्टे । चचक्षे । अचष्ट । अख्यत् । अख्यत । सनि चिख्यासति । ख्यानीयम् । ख्यातुम् । ख्यातव्यम् । संख्याय । चक्षाणः ।

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरुदक्षिणायै ॥
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् ॥२०॥

अन्वयः । समाप्तविद्येन मया महर्षिः गुरुदक्षिणायै विज्ञापितः अभूत्, सः मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिम् एव पुरस्तात् अगणयत् ॥ २० ॥

वाच्यप० । समाप्तविद्यः अहं महर्षिं विज्ञापितवान्, तेन अस्खलितोपचारा सा भक्तिः अगण्यत ॥ २० ॥

अहं महर्षेः सकाशात् विद्याः समधिगम्य दक्षिणार्थं गुरुम् अनुरुद्धवान्, महर्षिरपि स्नेहादुवाच वत्स ! ते दृढतया भक्त्या प्रीतोस्मि किं दक्षिणया इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०–विद्या समाप्त करनेपर वह ऋषि मुझसे गुरुदक्षिणाके निमित्त कहेगये, परन्तु उन्होंने प्रथम मेरी वह बहुत कालकी निरन्तर प्रीति ही दक्षिणा मानी ॥ २० ॥

अगणयत्=गण+लङ् ।

निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः ॥
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति ॥२१॥

अन्वयः । निर्बन्धसंजातरुषा गुरुणा (मम) अर्थकार्श्यम् अचिन्तयित्वा (एव) इति अहम् उक्तः, (त्वं) विद्यापरिसंख्यया वित्तस्य चतस्रः दश च कोटीः मे आहर ॥ २१ ॥

वाच्यप० । निर्बन्धसंजातरुट् गुरुः (मम) अर्थकार्श्यम् अचिन्तयित्वा इति माम् उक्तवान्, (त्वया) विद्यापरिसंख्यया वित्तस्य चतस्रः दश च कोटयः आह्रियंताम् ॥ २१ ॥

यदाहं तद्ग्रहणाय गुरुम् अत्यन्तम् उपरुद्धवान् तदा सः रोषादुवाच त्वया मत्तः चतुर्दश विद्याः अधीताः, अतः मे विद्यया परिसंख्यया चतुर्दशकोटिसुवर्णं दीयतामिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०–वारंवार पूछनेसे क्रोधको प्राप्तहुये गुरुने मेरी निर्धनताको न शोच कर कहा, कि विद्याकी संख्याके अनुसार धनके चौदह करोड ला ॥ २१ ॥

कार्श्यम्=कृश्+ष्यञ् ।

सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम् ॥
अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य ॥ २२ ॥

अन्वयः । सः अहम् सपर्याविधिभाजनेन प्रभुशब्दशेषं भवन्तं मत्वा, श्रुतनिष्क्रयस्य अल्पेतरत्वात् संप्रति उपरोद्धुं न अभ्युत्सहे ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तेन मया सपर्याविधिभाजनेन प्रभुशब्दशेषं भवन्तं मत्वा श्रुतनिष्क्रयस्य अल्पेतरत्वात् सम्प्रति उपरोद्धुं न अभ्युत्सह्यते ॥ २२ ॥

भवतोस्मिन् समये राजशब्द एव अवशिष्टः सम्पूर्णं धनागारं तु निःशेषतां यातम्, बहुला च मे गुरुदक्षिणा, अत एवास्मिन्नशक्यार्थे त्वयि उपरोधो मे नैव युज्यते इति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-सो मैं पूजाविधिके पात्रोंसे ही आपको नाममात्र रहा हुआ राजा जानकर, विद्याके मूल्यकी अधिकताके कारण इस समय कुछ कहनेको उत्साह नहीं करता हूं ॥ २२ ॥

श्रुतनिष्क्रयस्य=श्रु+क्तः । निष्क्रयस्य निष्क्रय् । अच् ।

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण ॥
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥ २३ ॥

अन्वयः । इत्थं वेदविदां वरेण द्विजेन (कौत्सेन) आवेदितः द्विजराजकान्तिः एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः जगदेकनाथः (रघुः) भूयः एनं (कौत्सं) जगाद ॥ २३ ॥

वाच्यप० । इत्थं वेदविदां वरेण द्विजेन आवेदितेन द्विजराजकान्तिना एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिना जगदेकनाथेन (रघुणा) भूयः एषः (कौत्सः) जगदे ॥ २३ ॥

शशीव लोकानन्ददायी परमधार्मिकः जगदेकस्वामी स रघुः श्रुतवतां श्रेष्ठेन कौत्सेन तथा विज्ञापितस्सन् पुनरेनमुवाचेति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-इस प्रकार वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषिसे कहा हुआ चंद्रमाके समान कांतिमान् पापसे हटीहुई इन्द्रियोंकी वृत्तिवाला जगत्पति वह रघु फिर कौत्ससे बोला ॥ २३ ॥

एनस्=इ+असुन्+नुट् । वेदविद्=वेद+विद्+क्विप् । जगाद=गद्+लिट् । गदति । जगाद । अगदत् । अगादीत् । अगदीत् । क० गद्यते । गदनीयम् । गदितुम् । गदित्वा । आगद्य । गद्यम् । गदन् ।

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम् ॥
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः ॥ २४ ॥

अन्वयः । श्रुतपारदृश्वा गुर्वर्थम् अर्थी (कौत्सः) रघोः सकाशात् कामम् अनवाप्य, वदान्यान्तरं गतः, इति अयं मे परीवादनवावतारः मा भूत् ॥ २४ ॥

वाच्यप० । श्रुतपारदृश्वना गुर्वर्थम् अर्थिना रघोः सकाशात् कामम् अनवाप्य वदान्यान्तरं गतम्, इति अनेन मे परीवादनवावतारेण मा भावि ॥ २४ ॥

वेदविद्यापारगामी सः ब्राह्मणः गुरुदक्षिणार्थं रघुं शरणम् आगत्य अप्राप्तमनोरथः सन् अन्यं दातारं प्रतिपेदे इति मे अपवादस्य नवावतारो मा भूदिति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०-वेदका पारगामी गुरुके अर्थकी इच्छा करनेवाला ऋषि रघुके समीपसे प्रयोजनको प्राप्त न होकर और देनेवालेके पास गया, इस प्रकार यह मेरे निमित्त निंदाका नया अवतार न हो ॥ २४ ॥

वदान्यः=वद+आन्यः । परीवादस्य=परि+वद+घञ् ।

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे ॥
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥२५॥

अन्वयः । अर्हन् ! सः त्वं प्रशस्ते महिते मदीये अग्न्यगारे चतुर्थः अग्निः इव, वसन् (सन्) द्वित्राणि अहानि सोढुम् अर्हसि, (अहं) यावत् त्वदर्थं साधयितुं यते ॥ २९ ॥

वाच्यप० । हे अर्हन् ! तेन त्वया प्रशस्ते महिते मदीये अग्न्यगारे चतुर्थेन अग्निना इव, वसता (सता) द्वित्राणि अहानि सोढुम् अर्ह्यते, (मया) यावत् त्वदर्थं साधयितुं यत्यते ॥ २९ ॥

हे भगवन् ! होमाग्नित्रयशोभिते मे निर्मले प्रशस्ते अग्न्यगारे त्वं साक्षात् चतुर्थः वह्निरिव निवसन् दिनद्वयं दिनत्रयं वा प्रतीक्षस्व, यावदहं ते कार्यसाधनाय यत्नं करोमि इति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०--सो तुम पूज्य पवित्र मेरी अग्निशालामें चौथे अग्निके समान वसते हुये दो तीन दिन सहनेको योग्य हो, जबतक मैं तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूं ॥ २९ ॥

मदीयः=अस्मत्+छः । प्रशस्ते=प्र+शंस+क्तः । चतुर्थः=चतुर्+डः । साधयितुम्=साध+णिच्+तुम् । यते=यत् लट् । यतते । येते । अयतत । अयतिष्ट । भावे । यत्यते । यतनीयम् । यतितव्यम् । यतितुम् । यतित्वा । यतमानः ।

तथेति तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा ॥
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥ २६ ॥

अन्वयः । प्रतीतः अग्रजन्मा तस्य (रघोः) अवितथं संगरं तथा इति प्रत्यग्रहीत्, रघुः अपि आत्तसारां गाम् अवेक्ष्य, कुबेरात् अर्थं निष्क्रष्टुं चकमे ॥ २६ ॥

वाच्यप० । प्रतीतेन अग्रजन्मना (कौत्सेन) तस्य (रघोः) अवितथः संगरः प्रत्यग्राहि, रघुणा अपि आत्तसारां गाम् अवेक्ष्य कुबेरात् अर्थं निष्क्रष्टुं चकमे ॥ २६ ॥

सत्यशीलस्य रघोः तथा वचनेन सः कौत्सः परां प्रीतिमगच्छत्, रघुरपि सकलधनसंग्रहात् वसुधां धनशून्यामवलोक्य कुबेरात् तद्देयं धनं बलादाहर्तुम् इयेष इतिसरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—प्रसन्नहुआ ब्राह्मण उस रघुकी अमोघप्रतिज्ञाको ऐसाही हो यह कहकर ग्रहण करताहुआ, रघुभी पृथ्वीको निर्धन देखकर कुबेरसे धन लानेकी इच्छा करता हुआ ॥ २६ ॥

प्रतीतः=प्रति+इ+क्तः । संगरम्=सम्+गॄ+अप् । निष्क्रष्टुम्=निर्+कृष्+तुम् । चकमे=कम+लिट् । कामयते । का०क्रे । चमके । अकामयत । अचीकमत । अचकमत । क० काम्यते । सनि चिकामयिषते । कृ० कमनीयः । कान्तिः । कामयितुम् । कमितुम् । कामयमानः ।

वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु ॥
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य ॥ २७ ॥

अन्वयः । मरुत्सखस्य बलाहकस्य इव तद्रथस्य गतिः वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात् प्रभावात् उदन्वदाकाशमहीधरेषु नहि विजघ्ने ॥ २७ ॥

वाच्यप० । तद्रथस्य गत्या न विजघ्ने ॥ २७ ॥

यथा हि जलधरः वायोः वेगेन सर्वत्रैव स्वच्छन्दगतिः विचरति, तथा वसिष्ठमन्त्रपूतस्य अभिषेकस्य प्रतापेन रघोः रथोपि समुद्रे वा पर्वते वा गगनमण्डले वा सर्वत्रैव अव्याहतगतिरासीदिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—वसिष्ठके मंत्रपढे जलके छिडक देनेके प्रभावसे समुद्र आकाश और पर्वतोंमें पवनके सखा मेघके समान उसके रथकी गति रुकनेवाली न थी ॥ २७ ॥

उक्षणम्=उक्ष+ल्युट् । उदन्वति=उदक+मतुप् । विजघ्ने=वि+हन्+लिट् ।

अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ॥
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः ॥ २८ ॥

अन्वयः । अथ प्रयतः धीरः रघुः सामंतसंभावनया एव, कैलासनाथं तरसा जीगीषुः सन् प्रदोषे कल्पितशस्त्रगर्भं रथम् अधिशिश्ये ॥ २८ ॥

वाच्यप० । धीरेण प्रयतेन रघुणा कल्पितशस्त्रगर्भः रथः अधिशिश्ये ॥ २८ ॥

रघुः दुर्जयम् कुबेरं क्षुद्राजवत् लीलयैव विजेतुं चकमे, स्वः प्रातश्च तस्य विजयाय गंतुं कृतमनोरथः संयतो भूत्वा सायं सशस्त्रं स्यन्दनम् अधिष्ठाय स्थितवान् इति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—इसके उपरान्त धैर्यवान् रघु सामन्तसम्भावना (अथवा राजमात्र) से ही उसको बलसे जीतनेकी इच्छा कर, शस्त्रोंसे भरेहुए रथमें रातको सोया ॥ २८ ॥

प्रयतः=प्रयम्+क्तः । जिगीषुः=जि+सन्+उः । अधिशिश्ये=अधि+शी+लिट् ।

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः ॥
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥ २९ ॥

अन्वयः । कोषगृहे नियुक्ताः (जनाः) सविस्मयाः (सन्तः) प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै (रघवे) कोषगृहस्य मध्ये हिरण्मयीं नभस्तः पतितां वृष्टिं शशंसुः ॥ २९ ॥

वाच्यप० । कोषगृहे नियुक्तैः (जनैः) सविस्मयैः (सद्भिः) प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै (रघवे) कोषगृहस्य मध्ये हिरण्मयी नभस्तः पतिता वृष्टिः शशंसे ॥ २९ ॥

अथ प्रातःकाले कुबेरविजयाय गन्तुं समुद्यते रघौ तस्य कोषाध्यक्षाः साश्चर्यं तस्मै कथयामासुः- स्वामिन् प्रभूता हिरण्यवृष्टिः आकाशात् कोषागारे न्यपतदिति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—कोषागारमें नियुक्त पुरुष लोग आश्चर्यको प्राप्त होकर प्रातःकाल जानेको तय्यार उस रघुके निमित्त कोषागारमें सुवर्णकी आकाशसे गिरी हुई वृष्टि को कहते हुए ॥ २९ ॥

---

१ कुबेरकी मिली सीमावाला अथवा राजा जानकर ।

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ॥
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ॥ ३० ॥

अन्वयः । भूपतिः अभियास्यमानात् कुबेरात् लब्धं वज्रभिन्नं सुमेरोः पादमिव भासुरं तं हेमराशिं समस्तम् एव कौत्साय दिदेश ॥ ३० ॥

वाच्यप० । भूपतिना लब्धः वज्रभिन्नः सुमेरोः पाद इव भासुरः स हेमराशिः समस्तः दिदिशे ३०-

रघोः संकल्पं ज्ञात्वा कुबेरः रात्रौ एव तद्गृहे सुवर्णराशिं ववर्ष, सुवर्णाचलस्य वज्रपातस्खलितं पादमिव प्रकाशमानं तं सम्पूर्णमेव सुवर्णराशिं रघुः कौत्साय प्रादादिति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०-राजाने चढाई करनेकी इच्छासे कुवेरसे प्राप्त की हुई वज्रसे काटे हुए सुमेरुके टुकडेके समान कान्तिमान् सुवर्णकी वह राशी सम्पूर्ण कौत्सके निमित्त दे दी ॥ ३० ॥

अभियास्यमानात्=अभि+या+स्य+आन । भासुरम्-भास्-घुरच् । दिदेश=दिश्+लिट् ।

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ॥
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥ ३१ ॥

अन्वयः । गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः अर्थी (कौत्सः) अर्थिकामात् अधिकप्रदश्च नृपः (रघुः (इति) साकेतनिवासिनः जनस्य तौ द्वौ अपि अभिनन्द्यसत्त्वौ अभूताम् ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहेण अर्थिना अर्थिकामात् अधिकप्रदेन च नृपेण (इति) साकेतनिवासिनः जनस्य ताभ्यां द्वाभ्याम् अपि अभिनन्द्यसत्त्वाभ्याम् अभावि ॥ ३१ ॥

कौत्सः नाहं गुरुदक्षिणातिरिक्तं धनं ग्रहीष्ये इति निर्बन्धं प्रकटीचकार । रघुरपि निर्बन्धातिशयेन सम्पूर्णमेव धनं तं ग्राहयामास, एवं ब्राह्मणस्य निःस्वार्थभावं रघोरौदार्य्यं दृष्ट्वा सर्वे अयोध्यावासिनः साश्चर्यम् उभयोरेव साधुवादं चक्रुः इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०-गुरुके देनेसे अधिकधनमें इच्छा न करनेवाला याचक कौत्स और मांगनेवालेके मनोरथसे अधिक देनेवाला राजा यह दोनों ही अयोध्यावासियोंको बडाई करनेके योग्य हुए ॥ ३१ ॥

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ॥
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ॥ ३२ ॥

अन्वयः । अथ प्रीतमनाः संप्रस्थितः महर्षिः कौत्सः उष्ट्रवामीशतवाहितार्थम् आनतपूर्वकायं प्रजेश्वरं (रघुं) करेण स्पृशन् वाचम् उवाच ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । अथ प्रीतमनसा संप्रस्थितेन महर्षिणा कौत्सेन उष्ट्रवामीशतवाहितार्थमानतपूर्वकायं प्रजेश्वरं करेण स्पृशता वाक् ऊचे ॥ ३२ ॥

अथ तम् अकलितं स्वर्णराशिं रघुः उष्ट्रअश्ववासहस्रैः प्रेषयामास, कौत्सोपि वाञ्छाधिकफललाभात् प्रहृष्टोभूत् प्रयाणकाले प्रणामानतशीर्षं तं नृपं करतलेन स्पृशन् वक्ष्यमाणं वचनमुवाचेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०-इसके उपरान्त प्रसन्नमन जातेहुए महर्षि कौत्सने सैकडों ऊंटो और खिच्चरोंपर लादे धन देनेवाले विनयसे नम्र हुए प्रजानाथ रघुको हाथसे छू कर यह वचन कहे ॥ ३२ ॥

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ॥
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥३३॥

अन्वयः । वृत्ते स्थितस्य प्रजानाम् अधिपतेः यदि भूः कामसूः (अस्ति) अत्र किं चित्रम् (अस्ति) अचिन्तनीयः तु तव प्रभावः (अस्ति) येन (त्वया) द्यौः अपि मनीषितं दुग्धा३३॥

वाच्यप० । वृत्ते स्थितस्य प्रजानाम् अधिपतेः यदि भुवा कामस्वा (भूयते) अत्र केन चित्रेण (भूयते) अचिन्तनीयेन तु तव प्रभावेण (भूयते) यः (त्वं) दिवम् अपि दुग्धवान् ॥ ३३ ॥

सदाचारप्रवृत्तो राजा यत् भूम्याः अभिमतार्थं लभते नैतत् आश्चर्यम् इदन्तु अत्यन्ताश्चर्यं यद् भवान् अभीष्टं स्वर्गादपि लब्धवानिति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-धर्ममें स्थित प्रजाओंके अधिपतिको यदि पृथ्वी कामधेनु हो तो इसमें क्या आश्चर्य है, तुम्हारा प्रभाव तो अचिन्तनीय है कि, जिसने स्वर्गको भी मन इच्छित दुहा ॥ ३३ ॥

मनीषितम्=मनस्+ईष+क्तः । दुग्धा=दुह्+क्तः ।

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते ॥
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव ॥ ३४ ॥

अन्वयः । सर्वाणि श्रेयांसि अधिजग्मुषः ते अन्यत् आशास्यं पुनः उक्तभूतं (अस्ति) भवतः पिता ईड्यं भवंतम् इव, (त्वमपि) आत्मगुणानुरूपं पुत्रं लभस्व ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । सर्वाणि श्रेयांसि अधिजग्मुषः ते अन्येन आशास्येन पुनः उक्तभूतेन (भूयते) भवतः पित्रा ईड्यः भवान् इव, (त्वयापि) आत्मगुणानुरूपः पुत्रः लभ्यताम् ॥ ३४ ॥

सर्वर्द्धिसम्पन्नस्य ते किञ्चित् अलब्धं नास्ति, अत एव लब्धलाभाय त्वयि आशीर्वचनं वृथैव, केवलमिदमेव आशास्महे वयं, यत् भवान् सर्वगुणसम्पन्नं सुतं लभतामिति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-सम्पूर्ण श्रेष्ठवस्तु प्राप्त होनेवालेको और आशीर्वाद देना अवश्य नहीं है (तथापि) अपने समान गुणवाले पुत्रको तुम प्राप्त करो, जैसे तुम्हारे पिताने तुमको प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

आशास्यम्=आ+शास+यत् । ईड्यम्=ईड्+ण्यत् ।

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम् ॥
राजापि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः ॥३५॥

अन्वयः। अग्रजन्मा (कौत्सः) इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्य, गुरोः सकाशं प्रतीयाय जीवलोकः अर्कात् आलोकम् इव राजा अपि तस्मात् (कौत्सात्) सुतम् आशु लेभे ॥ ३५ ॥

वाच्यप०। अग्रजन्मना इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्य, गुरोः सकाशं प्रतीये, जीवलोकेन अर्कात् आलोकः इव राज्ञा अपि तस्मात् सुतः आशु लेभे ॥ ३५ ॥

सः कौत्सः रघुम् आशीर्भिः तथा अभिनन्द्य स्वस्थानं ययौ. यथा मनुष्यलोकः सूर्य्य-प्रभावात् जगत्प्रकाशं प्रकाशं लब्ध्वा प्रसन्नो भवति तथा ब्राह्मणाशीर्वादप्रभावात् शीघ्रमेव सुतं लब्ध्वा राजा मुमुदे इति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०–ब्राह्मण कौत्स इस प्रकार राजाको आशीर्वाद देकर गुरुके पास गया. और सूर्यसे प्रकाशलेनेवाले जीवलोकके समान राजाने भी उसके आशीर्वादसे शीघ्र पुत्र पाया ॥ ३५ ॥

अर्कः=अर्क+घञ्।

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ॥
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ॥३६॥

अन्वयः। किल तस्य (रघोः) देवी ब्राह्मे मुहूर्ते कुमारकल्पं कुमारं सुषुवे, अतः (कारणात्) पिता ब्रह्मणः एव नाम्ना तम् आत्मजन्मानम् अजं चकार ॥ ३६ ॥

वाच्यप०। किल तस्य देव्या ब्राह्मे मुहूर्ते कुमारकल्पः कुमारः सुषुवे, अतः पित्रा ब्रह्मणः एव नाम्ना सः आत्मजन्मा अजः चक्रे ॥ ३६ ॥

रघुमहिषी परममाङ्गलिके ब्राह्मे मुहूर्ते स्कन्दतुल्यं सुतं जनयामास, अतः तत्पिता रघुः ब्रह्मनाम्ना एव तस्य पुत्रस्य अजनामधेयं चकारेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–उस रघुकी रानी ब्राह्ममुहूर्तमें स्वामिकार्तिकके समान पुत्र उत्पन्न करती हुई, इस कारण पिताने ब्रह्माही के नामसे पुत्रका अज नाम किया ॥ ३६ ॥

सुषुवे–सू+लिट्।

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ॥
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥३७॥

अन्वयः। तत् ओजस्वि रूपं वीर्य्यं तत् एव नैसर्गिकम् उन्नतत्वं तत् एव, प्रवर्तितः दीपः प्रदीपात् इव कुमारः स्वात् कारणात् न विभिदे ॥ ३७ ॥

वाच्यपरि० । प्रवर्तितेन दीपेन इव कुमारेण न विभिदे ॥ ३७ ॥

यथा दीपात् उत्पादितः अपरो दीपः स्वोत्पादकात् पूर्वदीपात् स्वरूपतो किञ्चिदपि न भिद्यते तथा स बालोपि गुणेन रूपेण स्वपितुः रघोः किंचिदपि न विभिदे इति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-वही रूप, वही बल, वही पराक्रम, वही स्वाभाविक उदारता (इस प्रकार) वह कुमार दीपकसे उत्पन्न हुए दीपकके समान अपने पितासे न्यूनाधिक न हुआ ॥ ३७ ॥

ओजस्वि=ओजस्+विनिः । नैसर्गिक=निसर्ग+ठक् । विभिदे=भिद्+लिट् ।

उपात्तविद्यं विधिवद्गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् ॥
श्रीः साभिलाषापि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष ॥३८॥

अन्वयः । गुरुभ्यः विधिवत् उपात्तविद्यं यौवनोद्भेदविशेषकान्तं तम् (अजं) साभिलाषा अपि श्रीः धीरा कन्या पितुः इव गुरोः (रघोः) अनुज्ञाम् आचकाङ्क्ष ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । श्रिया साभिलाषया धीरया कन्यया इव अनुज्ञा आचकाङ्क्षे ॥ ३८ ॥

यथा सुशीला कन्या अभिलषितं वरं वरयितुम् उत्सुकापि जनकपारतन्त्र्यात् तस्य अनुमतिं प्रतीक्षते, तथा राज्यश्रीः अपि यौवनसम्पन्नं कान्तियुक्तम् अजं वरयितुम् उत्कण्ठितापि स्वस्वामिनः रघोः अनुमतिं प्रतीक्षते स्म इति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-गुरुसे विधिपूर्वक विद्या पढेहुए युवा अवस्था आनेसे अधिक कान्तिमान् को अभिलाषा करनेवाली लक्ष्मीने राजाकी आज्ञाकी इच्छा करतीहुई, जैसे धीरा कन्या पिताकी ॥ ३८ ॥

आचकाङ्क्ष=आ+काङ्क्ष+लिट् । आकाङ्क्षति । आचकाङ्क्ष । अकाङ्क्षत् । अकाङ्क्षीत् । क० कांक्ष्यते । कांक्षणीयः । आकांक्षितुम् । कांक्षित्वा । कांक्षन् ।

अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः ॥
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः ॥३९॥

अन्वयः । अथ क्रथकैशिकानाम् ईश्वरेण स्वसुः इन्दुमत्याः स्वयंवरार्थम् कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन आप्तः दूतः रघवे विसृष्टः ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । ईश्वरः भोजः कुमारानयनोत्सुकः (सन्) आप्तदूतं विसृष्टवान् ॥ ३९ ॥

अथ विदर्भदेशाधिपतिः भोजः स्वभगिन्याः स्वयंवरार्थम् अजस्य आनयनाय स्वविश्वासपात्रं दूतं रघुसमीपे प्रेषितवानिति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-इसके उपरान्त विदर्भदेशके राजा भोजने बहन इन्दुमतीके स्वयंवरके निमित्त कुमारके बुलानेकी उत्कंठाकर अच्छा दूत रघुके पास भेजा ॥ ३९ ॥

तं श्लाघ्यसंबन्धमसौ विचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम्॥
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ॥ ४० ॥

अन्वयः। असौ (रघुः) श्लाघ्यसंबन्धं तं (भोजं) दारक्रियायोग्यदशं पुत्रं च विचिन्त्य ससैन्यम् एनम् (अजम्) ऋद्धां विदर्भाधिपराजधानीं प्रस्थापयामास ॥ ४० ॥

वाच्यप०। अनेन ससैन्यः एषः प्रस्थापयाञ्चक्रे ॥ ४० ॥

रघुरपि भोजवंशेन स्वकुलस्य वैवाहिकं सम्बन्धं श्लाघनीयं विचिन्त्य, कुमारं च विवाहयोग्यवयस्कं विचार्य, ससैन्यं तं भोजनगरीं प्रस्थापयामासेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-वह रघु श्लाघनीय सम्बन्धके योग्य उस भोजको और विवाह योग्य पुत्र को विचार कर, सेनासहित इस अज को ऋद्धियुक्त विदर्भकी राजधानीको भेजता हुआ ॥ ४० ॥

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः॥
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः॥ ४१ ॥

अन्वयः। उपकार्यारचितोपचाराः जानपदोपदाभिः वन्येतराः तस्य मनुजेन्द्रसूनोः (अजस्य) मार्गे निवासाः उद्यानविहारकल्पाः बभूवुः ॥ ४१ ॥

वाच्यप०। उपकार्यारचितोपचारैः जानपदोपदाभिः वन्येतरैः तस्य मनुजेन्द्रसूनोः मार्गे निवासैः उद्यानविहारकल्पैः बभूवे ॥ ४१ ॥

मार्गे विश्रमार्थं सम्पूर्णभोग्यवस्तुपरिकल्पितेषु पटमण्डपेषु निवसतः जनपदवासिभिः राजपुरुषैः उपहृतानि भक्ष्यभोज्यानि भुक्तवतः तस्य कुमारस्य सुदूरमार्गलंघनमपि उद्यानविहारतुल्यं सुखदायकमभूत् इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-राजोंके योग्य शय्या आदिसे सजेहुए वस्त्रोंके डेरे मार्गमें जनपदवासी प्रजाओंकी भेंटोंसे नगरके बगीचोंके विहार स्थानोंके तुल्य होगये ॥ ४१ ॥

उपकार्य्यासु=उप+कृ+ण्यत्+टाप्। उद्यान=उत्+या+ल्युट्।

स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले ॥
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः। विलंघिताध्वा सः (अजः) सीकरार्द्रैः मरुद्भिः आनर्तितनक्तमाले नर्मदारोधसि क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यं निवेशयामास ॥ ४२ ॥

वाच्यप०। विलंघिताध्वना तेन (अजेन) सीकरार्द्रैः मरुद्भिः आनर्तितनक्तमाले नर्मदारोधसि++निवेशयाञ्चक्रे ॥ ४२ ॥

क्रमेण रघुकुमारः दूरं मार्गम् अतिक्रम्य धूलिधूसरितध्वजं सैन्यं तरंगपवनशीतले वाय्वान्दोलितनक्तमालवृक्षशोभिते रेवारोधसि श्रमानपनेतुं न्यवेशयत् इति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-मार्ग चलकर वह रघु शीतल कणावाले पवनसे कम्पायेहुए नक्तमाल वृक्षोंवाले नर्मदाके किनारे में थकी और धूरसे मैली ध्वजावाली सेनाको ठहराता हुआ ॥ ४२ ॥

क्रान्तम्=क्रम्+क्तः ।

अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः ॥
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ॥४३॥

अन्वयः । अथ उपरिष्टात् भ्रमद्भिः भ्रमरैः प्राक् सूचितान्तःसलिलप्रवेशः निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः वन्यः गजः सरित्तः उन्ममज्ज ॥ ४३ ॥

वाच्यप० ।उपरिष्टात् भ्रमद्भिः भ्रमरैः प्राक सूचितान्तःसलिलप्रवेशेन निर्धौतदानामलगंडभित्तिना वन्येन गजेन सरित्तः उन्ममज्जे ॥ ४३ ॥

अस्मिन् एव काले एकः वन्यः करी नदीसलिलाभ्यन्तरात् उदतिष्ठत्, तस्य उन्मज्जनात् प्रागेव मदजलाकृष्टाः द्विरेफाः उपरिशब्दायमानाः तस्य स्थानं कथयामासुः, सलिलावगाहेन तस्य गण्डद्वयम् उज्ज्वलमभूदिति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-इसके उपरान्त ऊपर की ओर शब्दायमान भौंरोंसे प्रथम जलमें डूबाहुआ विदितहोनेवाला (तथा) मदके धू जानेसे निर्मल गण्डस्थलवाला, वनका हाथी नदीसे निकला ॥ ४३ ॥

उपरिष्टात्=ऊर्ध्व+रिष्टातिल् । उन्ममज्ज=उत्+मस्ज+लिट् । मज्जति । ममज्ज । अमाङ्क्षीत् ।अमज्जत् । सनि निमंक्षति । मज्जनीयम् । मंक्तुम् । मंक्तव्यम् । मंक्ता । संमज्य । मज्जन् ।

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु ॥
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥ ४४ ॥

अन्वयः । निश्शेषविक्षालितधातुना अपि नीलोर्ध्वरेखाशबलेन अश्मविकुंठितेन दंतद्वयेन ऋक्षवतः तटेषु वप्रक्रियां शंसन् (उन्ममज्ज) इति पूर्वेण अन्वयः ॥ ४४ ॥

तस्य दन्तद्वये पर्वततटाभिघातलग्नो धातुरागः सलिलावगाहनेन धौतः यद्यपि अदृश्यतां प्राप्तः, तथापि अश्माभिघातात् विकुंठितेन नीलरेखाङ्कितेन दन्तेन अनुमीयते स्म इति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-अत्यन्त धुई हुई धातुवाले नीली ऊर्ध्वरेखाओंसे कबरे पत्थरकी रगडसे विकुंठित दोनो दांतोंसे ऋक्षवान् पर्वतके किनारोंसे कीहुई वप्रक्रीडाको सूचन करता हुआ ॥ ४४ ॥

विकुंठितम्=वि+कुठि+क्तः । शंसन्-शंस+शतृ ।

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम् ॥
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । तीराभिमुखः सः (गजः) संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन सशब्दं बृहतः तरङ्गान् भिन्दन् (सन्) (अत एव) वार्य्यर्गलाभंगे प्रवृत्तः इव, बभौ ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । तीराभिमुखेन तेन, संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन सशब्दं बृहतः तरंगान् भिन्दता वार्य्यर्गलाभंगे प्रवृत्तेन इव, बभे ॥ ४५ ॥

स करी यदा कूलान्तिकमागन्तुमारेभे तदा शुण्डायाः संकोचनप्रसारणात् नदीवीचयः संचूर्णिताः बभूवुः, उदतिष्ठच्च तत्र सुमहान् कलकलः अत एवासौ अर्गलां भेत्तुं प्रवृत्त इव दृश्यते स्म इति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०-तीरको धाता हुआ वह हाथी फैलने और सकुडनेवाली सूंडसे वडी तरंगोंको शब्दसहित भग्नकरता हुआ बन्धनकी अर्गलाको तोडनेमें. उद्यत हुआसा शोभित हुआ ॥ ४५ ॥

बभौ=भा+लिट् । भाति । वभौ । अभात् । अभाधीत् । भावे—भायते । भानीयम् । भातुम् । भातव्यम् । भात्वा । भेयम् । भान् ।

शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात् ॥
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ॥ ४६ ॥

अन्वयः । शैलोपमः सः (गजः) उरसा शैवलमंजरीणां जालानि कर्षन्.पश्चात्, तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहः पूर्वं तटम् उत्ससर्प ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । शैलोपमेन तेन, उरसा शैवलमंजरीणां जालानि कर्षता पं. तटः उत्ससृपे, पूर्वम् तदुत्पीडितवारिराशिना सरित्प्रवाहेण तटः उत्ससृपे ॥ ४६ ॥

पर्वत इव स गजः वक्षस्थलसंघर्षेण स्रोतोलग्नशैवलजालानि आकर्षन् कूलम् आरुरोह तस्य आगमनात् प्रागेव क्षुभितं नदीसलिलं तटं प्लावयामासेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—पर्वतके समान वह हाथी हृदयसे सिवारकी मंजरीके समूहोंको खेंचता हुआ अपने हिलाये हुए जलसमूहवाले नदीके प्रवाहके पीछे किनारे पर पहुंचा अर्थात् हिलोरका जल किंनारेपर पहले आगया था ॥ ४६ ॥

कर्षन्=कृष+शतृ । ससर्प=सृप्+लिट् । सर्पति । ससर्प । असर्पत् । असृपत् । क०सृप्यते । सर्पणीयम् । सर्पितव्यम् । सप्तव्यम । सृप्त्वा । संसृप्य । सर्पन् ।

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता ॥
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । एकनागस्य तस्य कपोलभित्त्योः जलावगाहक्षणमात्रशान्ता मदुर्दिनश्रीः वन्येतराने॰कपदर्शनेन पुनः दिदीपे ॥ ४७ ॥

वाच्यप॰ । एकनागस्य तस्य कपोलभित्त्योः जलावगाहक्षणमात्रशान्तया मदुर्दिनश्रिया वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनः दिदीपे ॥ ४७ ॥

तस्य महाकरिणः गण्डस्थलसेक्तृमदधारा नद्यां निमज्जनेन क्षणं निवृत्तापि सेनागजानां दर्शनोत्पन्नक्रोधात् पुनरेव तत्क्षणे सुस्राव इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा॰-केवल उस एक ही हाथीके कपोलोंमें जलकी हिलोरसे क्षणमात्रको शान्त हुई मदके वर्षनेकी शोभा नगरके पलाऊ हाथियोंके देखनेसे फिर दीप्तिमान् होगई ॥ ४७ ॥

अनेकपानाम्=अनेक+पा+कः । दिदीपे=दीप्+लिट् । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि । अदीपिष्ट । दीप्यते दीपनीयम् । दीपितव्यम् । सन्दीप्य । दीप्यमानः ।

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम् ॥
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः॥४८॥

अन्वयः । सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहं तदीयं मदम् आघ्राय, विलंघिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः ॥ ४८ ॥

वाच्यप॰ । सेनागजेन्द्रैः विलंघिताधोरणतीव्रयत्नैः विमुखैः बभूवे ॥ ४८ ॥

सेनागजेन्द्रा अपि तस्य वन्यगजस्य सप्तक्षीरसदृशं मदगन्धम् आघ्राय उन्मत्ताः प्रचलन्ति स्म, हस्तिपकाः तान् महतापि प्रयत्नेन निवारयितुं न समर्थाः बभूवुः इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा॰-सप्तपर्णवृक्षके दूधके समान कटुप्रवाहवाले उसके मदकी गन्धिको ग्रहणकर महाव्रतोंके तीव्र यत्नोंको भी न गिनकर सेनाके हाथी पीछेको भागे ॥ ४८ ॥

आधोरणः=आङ्+धोर+ल्युट् । आघ्राय+आ+घ्रा+ल्यप् ।

स च्छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन ॥
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥ ४९ ॥

अन्वयः । सः (गजः) छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं क्षणेन तुमुलं चकार ॥ ४९ ॥

वाच्यप॰ । तेन (गजेन) छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः भग्नाक्षपर्य्यस्तरथः रामापरित्राणविहस्तयोधः सेनानिवेशः क्षणेन तुमुलः चक्रे ॥ ४९ ॥

भयदायकस्य तस्य वन्यगजस्य आपातभयात् वाहाः सर्वे निजबन्धनानि छित्त्वा पलायनं चक्रुः, भग्नयुगकीलकाः रथाः भग्नाः पृथिव्यां निपेतुः, सैनिकाः स्वस्त्रीरक्षणाय त्रस्ताः इतस्ततो प्रचलन्ति स्म, इत्थं स क्षणमात्रेण सेनानिवेशं तुमुलं चकारेति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—वह हाथी बन्धन तोडनेसे भागे हुये घोडोंसे शून्य, धुरी टूटनेसे टूटे हुये रथवाले तथा स्त्रियोंकी रक्षामें व्यग्र योधावाले, कटकको क्षणमात्रमें व्याकुल करता हुआ ॥ ४९ ॥

युग्याः=युग+यत्। तुमुलम्=तु+मुलक्।

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ॥
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥५०॥

अन्वयः। वन्यः करी नृपतेः अवध्यः इति श्रुतवान् कुमारः (अजः) विशिखेन आपतन्तं तं निवर्तयिष्यन् नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः (सन्) कुम्भे जघान ॥ ५० ॥

वाच्यप०। वन्येन करिणा नृपतेः अवध्येन (भूयते) इति श्रुतवता नात्यायतकृष्टशार्ङ्गेण कुमारेण, आपतन् सः जघ्ने ॥ ५० ॥

रघुः वन्यः गजः अवध्यः इति शास्त्रं बहु मन्यमानः अभ्यापतन्तमपि तं गजं न अवधीत् परन्तु शरासनमीषदाकृष्य तं निवर्तयितुम् अयोमुखेन बाणेन तस्य कुम्भस्थले विव्याध इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—वनका हाथी राजोंका अवध्य है इस प्रकार सुनेहुए राजकुमारने सन्मुख आते हुए उसके लौटानेकी इच्छासे थोडा धनुष खैंचकर बाण मस्तकमें मारा ॥५०॥

जघान=हन्+लिट्।

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः ॥
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे ॥ ५१ ॥

अन्वयः। सः (करी) किल विद्धमात्रः (एव) नागरूपम् उत्सृज्य, तद्विस्मितसैन्यदृष्टः (सन्) स्फुरत्प्रभामंडलमध्यवर्ति कान्तं व्योमचरं वपुः प्रपेदे ॥ ५१ ॥

वाच्यप०। तेन (करिणा) किल विद्धमात्रेण (एव) नागरूपम् उत्सृज्य, तद्विस्मितसैन्यदृष्टेन स्फुरत्प्रभामंडलमध्यवर्ति कान्तं व्योमचरं वपुः प्रपेदे ॥ ५१ ॥

अजबाणेन विद्धमात्रः स गजः नागदेहं विहाय गगनविहारि तेजःसम्पन्नं दिव्यरूपं प्राप्तवान् तद्दर्शनमात्रेण अजसैनिकाः आश्चर्ययुक्ताः बभूवुः इति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—वह हाथी विद्धमात्र ही हाथीके रूपको छोड़कर उसकी आश्चर्य पूर्वक सेनासे देखा हुवा प्रकाशमान प्रभामंडलके मध्यमें वर्तमान मनोहर आकाशमें फिरनेवाले (गंधर्व) के रूपको प्राप्त होता हुआ ॥ ५१ ॥

स्फुरतः=स्फुर+शतृ। व्योमचरम्=व्योमन्+चर+अच्।

अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः ॥
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः ॥५२॥

अन्वयः । अथ वाग्मी सः प्रभावोपनतैः कल्पद्रुमोत्थैः पुष्पैः कुमारम् (अजम्) अवकीर्य, दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः (सन्) उवाच ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । वाग्मिना तेन प्रभावोपनतैः कल्पद्रुमोत्थैः पुष्पैः कुमारम् अवकीर्य दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारेण (सता) ऊचे ॥ ५२ ॥

वाग्मी सः पुरुषः स्वप्रभावेण कल्पवृक्षपुष्पाणि आनीय तैः रघुमभिवृष्य मधुरया गिरा तमेवं वक्तुमारेभे तस्मिन् समये स्वदशनकिरणैः तस्य वक्षस्थलविलम्बी मौक्तिकहारः सुतरां दिदीपे इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—अपने प्रभावसे प्राप्त हुए कल्पवृक्षके फूलोंसे कुमार अज पर वर्षा करके दांतोंकी कांतिसे बढाते हुए हृदयके स्थूल मोतियोंके हारवाला वह विद्वान् बोला॥५२॥

अवकीर्य=अव+कृ+ल्यप् ।

मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम् ॥
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य ॥ ५३ ॥

अन्वयः । अवलेपमूलात् मतङ्गशापात् मतंगजत्वम् अवाप्तवान् अस्मि, (त्वम्) मां प्रियदर्शनस्य गन्धर्वपतेः तनूजं प्रियंवदम् (नाम) अवेहि ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । (मया) अवलेपमूलात् मतंगशापात् मतंगजत्वम् अवाप्तवता भूयते, (त्वया) अहं प्रियदर्शनस्य गन्धर्वपतेः तनूजः प्रियंवदः अवेयै ॥ ५३

पुराहम् अभिमानात् महर्षिं मतङ्गं तिरस्कृतवान्, ततश्च तस्य मुनेः शापात् गजत्वं प्राप्तवान्, अहं प्रियदर्शनस्य गन्धर्वराजस्य सुतः इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—अभिमानसे उत्पन्न हुए मतङ्ग ऋषिके शापसे मैं हाथीपनको प्राप्त हुआ हूं, तुम मुझे प्रियदर्शन नामवाले गन्धर्वपतिका पुत्र जानो ॥ ५३ ॥

तनूजः=तनू+जन्+डः ।

स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत् ॥
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥५४॥

अन्वयः । प्रणतेन मया अनुनीतः सः महर्षिः च पश्चात् मृदुताम् अगच्छत्, हि (यतः) जलस्य उष्णत्वम् अग्न्यातपसंप्रयोगात् (भवति) यत् शैत्यं सा (जलस्य) प्रकृतिः ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । अनुनीतेन तेन महर्षिणा मृदुता अगम्यत ॥ ५४ ॥

यदाहं करुणावचनैः तं प्रार्थितवान्, तदासौ मतङ्गः पुनरपि स्वभावसिद्धां करुणां भेजे, यथा जलानि स्वभावशीतलानि भवन्ति, अतिपाग्निसंयोगात् उष्णानि जायन्ते एवं महात्मनां चेतांसि स्वभावकरुणार्द्राणि भवन्ति, अपमानादिवशात् क्रोधयुक्तानि भवन्तीति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०–नम्र हुये मुझसे प्रसन्न किये हुए वह महर्षि पीछे मृदुताको प्राप्त हुये कारणकि जलका उष्णत्व अग्निकी उष्णतासे होताहै, जो शीतलता है वह जलका स्वाभाविक गुण है ॥ ५४ ॥

शैत्यम्=शीत+ष्यञ् ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन ॥
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम् ॥५५॥

अन्वयः । यदा इक्ष्वाकुवंशप्रभवः अजः अयोमुखेन ते कुम्भं भेत्स्यति, तदा (त्वं) स्वेन वपुर्महिम्ना संयोक्ष्यसे, इति सः तपोनिधिः माम् अवोचत् ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । यदा इक्ष्वाकुवंशप्रभवेण अजेन अयोमुखेन ते कुम्भः भेत्स्यते, तदा (त्वया) स्वेन वपुर्महिम्ना संयोक्ष्यते, इति तेन तपोनिधिना अहम् अवाचिषम् ॥ ५५ ॥

अथ मया प्रसादितः स महर्षिः उवाच, इक्ष्वाकुवंशोत्पन्नः अजः यदा लोहाग्रेण बाणेन ते गण्डस्थलं भेत्स्यति, तदा त्वं शापविमुक्तः पुनरपि स्वकीयं शरीरं लप्स्यसे इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०–जब इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ अज लोहके अग्रभागवाले बाणसे तेरा कुंभस्थल विदीर्ण करेगा तब तूं अपने शरीरकी महिमाको प्राप्त होगा इस प्रकार वह तपोनिधि मुझसे बोले ॥ ५५ ॥

भेत्स्यति=भिद्+लृट् । संयोक्ष्यसे=सम्+युज्+लृट् । अवोचत्=वच+लुङ् ।

संमोचितः सत्त्ववता त्वयाहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन ॥
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः॥५६॥

अन्वयः । सत्त्ववता चिरप्रार्थितदर्शनेन त्वया अहं शापात् सम्मोचितः (अस्मि) चेत् (अहं) भवतः प्रतिप्रियं न कुर्य्याम्, हि मे स्वपदोपलब्धिः वृथा स्यात् ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । संमोचितेन मया क्रियेत, स्वपदोपलब्ध्या भूयेत ॥ ५६ ॥

तदाप्रभृति सुचिरं भवदागमनं प्रतीक्षमाणोहमत्र स्थितः भाग्येनाद्य भवतः प्रसादात् निर्मुक्तोस्मि शापात्, एवमुपकृतः यदि अहं प्रत्युपकारं न करोमि तदा मे स्वस्थानप्राप्तिः वृथा स्यादिति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०–बलवान और बहुत कालसे प्रार्थनीयदर्शन आपने मुझे शापसे छुडाया यदि मैं तुह्मारा प्रत्युपकार न करूं तो मेरी स्वस्थानकी प्राप्ति वृथा होगी ॥ ५६ ॥

उपलब्धिः=उप+लभ्+क्तिः ।

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् ॥
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते॥५७॥

अन्वयः । सखे ! प्रयोगसंहारविभक्तमंत्रं गान्धर्वं सम्मोहनं नाम मम अस्त्रम् आदत्स्व, यतः (यस्मादस्त्रात्) प्रयोक्तुः । अरिहिंसा न (भवति) विजयः च हस्ते (भवति) ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । हे सखे ! आदीयताम् अरिहिंसया विजयेन भूयते ॥ ५७ ॥

हे मित्र ! सम्मोहनं नाम गन्धर्वास्त्रम् मे विद्यते तस्य विक्षेपे उपसंहारे च पृथक् पृथक् मंत्रोऽस्ति, त्वं तद्दुर्लभम् अस्त्रं गृहाण, अस्य प्रतापात् त्वं शत्रुवधं विनैव जयश्रियं नेतुं शक्नुयाः इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–हे सखे ! प्रयोग करने और हटालेनेमें पृथक् २ मंत्रवाले गंधर्वसम्बन्धी मेरे सम्मोहन नाम अस्त्रको ग्रहण करो, जिस्से प्रयोग करनेवालेको शत्रुकी हिंसा नहीं होती और जय हाथमें रहता है ॥ ५७ ॥

प्रयोक्तुः=प्र+युज्+तृच् ।

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ॥
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम् ॥५८॥

अन्वयः ह्रिया अलम्, त्वं यत् प्रहरन् अपि मुहूर्तं दयापरः अभूः तस्मात् उपच्छंदयति मयि त्वया प्रतिषेधरौक्ष्यं न प्रयोज्यम् ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । प्रहरता अपि त्वया दयापरेण अभावि ॥ ५८ ॥

यदि त्वं क्षणमात्रं मयि बाणप्रहारं कृतवान् तथापि तेन मा लज्जितो भव भवत्कृतोयं प्रहारः मे दयारूपेण परिणतः अधुनाहं संमोहनास्त्रस्वीकाराय प्रार्थये, त्वं मे प्रणयं विहन्तुं नार्हसि इति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–लाज मत करो; कारण कि तुम प्रहार करते हुए भी मेरे ऊपर क्षणमात्रको दयालु हुये, अब मुझ प्रार्थना करनेवालेपर निषेध करनेकी कठोरता करनी तुम्हें उचित नहीं ॥ ५८ ॥

उपच्छन्दयति=उप+छन्द+शतृ ।

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः ॥
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात् ॥५९॥

अन्वयः । अस्त्रवित् सः नृसोमः (अजः) तथा इति (उक्त्वा) सोमोद्भवायाः सरितः पवित्रं पयः उपस्पृश्य, उदङ्मुखः (सन्) निगृहीतशापात् तस्मात् अस्त्रमंत्रं जग्राह ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । अस्त्रविदा उदङ्मुखेन तेन नृसोमेन तथा इति (उक्त्वा) सोमोद्भवायाः सरितः पवित्रं पयः उपस्पृश्य, निगृहीतशापात् तस्मात् अस्त्रमंत्रः जगृहे ॥ ५९ ॥

शशीव मनोहरः `सः अजः 'एवमस्तु' इति वाक्येन तत्प्रार्थनाम् स्वीकृत्य नर्मदायाः पवित्रं जलमाचम्य, उदङ्मुखो भूत्वा तस्मात् प्रयोगसंहारसहितम् अस्त्रम् आददे इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—अस्त्रको जाननेवाले वह मनुष्योंमें चंद्रमाके समान श्रेष्ठ अजने 'ऐसाही हो' यह कहकर उत्तरकी ओर मुख कर चंद्रमासे उत्पन्न हुई (नर्मदा) नदीके पवित्र जलका आचमन कर शापसे मुक्त हुए उससे मंत्रसहित अस्त्रको ग्रहण किया ॥ ५९ ॥

उपस्पृश्य = उप+स्पृश्+ल्यप् ।

एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु ॥
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥ ६० ॥

अन्वयः । अध्वनि दैवयोगात् एवम् अचिंत्यहेतु सख्यम् आसेदुषोः तयोः एकः चैत्ररथप्रदेशान् ययौ, अपरः सौराज्यरम्यान् विदर्भान् (ययौ) ॥ ६० ॥

वाच्यप० । एकेन चैत्ररथप्रदेशाः ययिरे, अपरेण सौराज्यरम्याः विदर्भाः (ययिरे) ॥ ६० ॥

एवं तौ अजप्रियंवदौ मार्गे प्रारब्धवशात् अनिर्धार्यहेतुकं सौहृदं लब्धवन्तौ, प्रियंवदः कुबेरोद्यान प्रदेशं प्रति जगाम अजश्च सौराज्यरम्यान् विदर्भान् प्रति ययाविति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—मार्गमें दैवयोगसे इस प्रकार अकस्मात् मित्रताको प्राप्त होनेवाले उन दोनोंमें एक (गंधर्व) तो कुबेरके बागोंकी समीपवाली भूमियोंको गया और दूसरा (अज) अच्छे राज्यसे शोभायमान विदर्भ देशोंको (गया) ॥६०॥

चैत्ररथस्य = चित्ररथ+अण् ।

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ॥
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ ६१ ॥

अन्वयः । तदागमारूढगुरुप्रहर्षः क्रथकैशिकेन्द्रः नगरोपकंठे तस्थिवांसं तं (अजं) प्रवृद्धोर्मिः ऊर्मिमाली चन्द्रम् इव, प्रत्युज्जगाम ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तदागमारूढगुरुप्रहर्षेण क्रथकैशिकेन्द्रेण नगरोपकण्ठे तस्थिवान् सः (अजः) प्रवृद्धोर्मिणा ऊर्मिमालिना चन्द्रः इव प्रत्युज्जग्मे ॥ ६१ ॥

अजः विदर्भान् प्राप्य नगरसमीपे स्थितवान् यथा चंद्रमसि समुदिते सागरः तम् आलिङ्गितु-मिव उच्छलितो भवति, तथा समागते तस्मिन् प्रसन्नमुखः भोजराजः तं सम्भावयितुं स्वयं प्रत्युज्ज-गाम इति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०–उसके आनेसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ विदर्भदेशका राजा नगरके निकट ठहरे हुये उस अजको चंद्रमासे बढीहुई तरंगोंवाले समुद्रके समान आगे जाकर मिला ॥ ६१ ॥

माली = माला+इनिः ।

प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः ॥
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः । अग्रयायी (भोजः) एनं पुरं प्रवेश्य अर्पितश्रीः (सन्) नीचैः तथा उपाचरत् यथा तत्र समेतः जनः वैदर्भम् आगन्तुम् अजं गृहेशं मेने ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । अग्रयायिना अर्पितश्रिया एषः उपाचर्य्यत, समेतेन जनेन वैदर्भः आगन्तुः अजः गृहेशः मेने ॥ ६२ ॥

भोजराजः स्वयं पुरो गत्वा अजं नगराभ्यन्तरमानीय विनीतभावेन तं तथा सिषेवे, यथा तत्र समेताः जनाः अजं राजभवनस्य अधीश्वरम् अमन्यन्त भोजराजञ्च अतिथिं मन्यन्ते स्म इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–आगे चलने वाले विदर्भनाथने इसे पुरमें प्रवेश कराकर और लक्ष्मी अर्पणकर नम्रतासे ऐसा सत्कार किया जिससे वहां इकट्ठे हुए पुरुषोंने विदर्भराजाको पाहुना और अजको उसघरका स्वामी माना ॥ ६२ ॥

उपाचरत्=उप+चर+लङ् ।

तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां
प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम् ॥
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास ॥ ६३ ॥

अन्वयः । रघुप्रतिनिधिः सः (अजः) प्रणतैः तस्य (भोजस्य) अधिकारपुरुषैः प्रदिष्टां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भां रम्यां नवोपकार्यां मदनः बाल्यात् परा दशाम् इव अध्युवास ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । रघुप्रतिनिधिना तेन, प्रणतैः तस्य अधिकारपुरुषैः प्रदिष्टा प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भा रम्या नवोपकार्या मदनेन बाल्यात् परा दशा इव अध्यूषे ॥ ६३ ॥

अथ भोजराजस्य मनुष्याः सेवाधर्मेण प्रणताः सन्तः प्राग्द्वारस्य वेद्यां प्रतिष्ठापितैः मांगलिकैः कलशैः पुरस्कृतं मनोहरं राजभवनं तमजं निन्युः, यथा कामः, नवयौवनं स्वाधिष्ठानेन शोभायुक्तं करोति, तथा परमरमणीयः रघुतुल्यः सः अजोऽपि राजभवनं स्वाधिष्ठानेन प्रकाशयुक्तं कृतवान् । इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०—उसके चतुर अधिकारियोंकी नम्रतापूर्वक दिखाई हुई प्रथम द्वारकी वेदीपर भरे हुए घडों वाली नवीन सामग्रीसे शोभायमान विश्राम शालामें रघुके प्रतिनिधि उस युवराजने बालकपनसे यौवनअवस्थाको प्राप्त हुए कामदेवके समान वास किया ॥ ६३॥

मदनः=मद+ल्युट् ।

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं
कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः ॥
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥ ६४ ॥

अन्वयः । तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं कन्याललाम कमनीयं लिप्सोः अजस्य रात्रौ भावावबोधकलुषा दयिता इव, निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । तत्र भावावबोधकलुषया दयितया इव, निद्रया नयनाभिमुख्या बभूवे ॥ ६४ ॥

स्वयंवरे यस्य लाभाय शतशो भूपाः समवेताः तस्य अलौकिकरूपसम्पन्नस्य कन्यारत्नस्य प्राप्तये अजः समुत्सुकोऽभूत्, यथा मुग्धा नायिका पत्युः प्रयोजनविज्ञाने असमर्था सती रजन्यां विलम्बेन तस्य नेत्राभिमुखी भवति, तथा निद्रापि उत्कंठितस्य अजस्य नयनाभिमुखी चिरेण बभूवेति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—तहां स्वयंवरमें राजसमूहोंको इकट्ठा करनेवाली श्रेष्ठकन्याके पानेकी इच्छावाले अजके रात्रिमें निद्रा प्रयोजन न जाननेवाली स्त्रीके समान बहुत समयके पीछे नेत्रोंके सन्मुखहुई ॥ ६४ ॥

दयिता=दया+इतः। निद्रा=नि+द्रा+अङ् ।

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम् ॥
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः ॥ ६५ ॥

अन्वयः । सवयसः उदारवाचः सूतात्मजाः उषसि कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागं प्रथितप्रबोधं तं (अजं) वाग्भिः प्राबोधयन् ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । सवयोभिः उदारवाग्भिः सूतात्मजैः उषसि कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसः शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागः प्रथितप्रबोधः सः वाग्भिः प्राबोध्यत ॥ ६५ ॥

अथ सुप्तस्य अजस्य पुष्टमंसद्वयम् कर्णकुण्डलसंसर्गात् तद्रेखाङ्कितं जातं, शय्यायाः प्रच्छद-वस्त्रस्य संघर्षेण तस्य कुंकुमकस्तूरिकादिकृतः अंगरागः विमृष्टो बभूव, व्यतीतायां च रजन्यां मधुरकण्ठा युवकाः सूतपुत्राः बोधसम्पन्नं निद्रितं तं राजकुमारं स्तुतिमंगलैः प्रबोधयामासुः इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-समान उमरवाले उदारवचन बोलनेवाले सूतोंके बालक प्रातःकालमें कानोंके गहनेसे चिह्नपडेहुए कन्धेवाले शय्याके बिछौनेके मर्दनसे बिनअंगरागवाले विख्यात बुद्धिमान् उसअजको स्तुतियोंसे जगातेहुए ॥ ६९ ॥

प्राबोधयन्=प्र+बुध्+णिच्+लङ् ।

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्च शय्यां
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ॥
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्र-
स्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥ ६६ ॥

अन्वयः । मतिमतां वर ! रात्रिः गता (त्वं) शय्यां मुंच, ननु धात्रा जगतः धूः द्विधा एव विभक्ता, ताम् एकतः विनिद्रः तव गुरुः बिभर्त्ति, तस्याः अपरधुर्यपदावलंबी भवान् अस्ति ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । हे मतिमतां वर ! रात्र्या गतया (अभूयत) शय्या मुच्यतां, धाता धुरं विभक्तवान्. गुरुणा विनिद्रेण सा भ्रियते, भवता अपरधुर्य्यपदावलम्बिना (भूयते) ॥ ६६ ॥

हे परमबुद्धिसंपन्न ! प्रातःकालो जातः शयनादुत्तिष्ठ हिरण्यगर्भो हि वसुधारक्षणरूपं कार्य्यभारं विभज्य त्वद्गुरौ त्वयि च समर्पितवान्, तव पिता निद्रां विहाय स्वकार्थं करोति त्वमपि निद्रां त्यक्त्वा प्रजापालनरूपं विधिशासनं कुरु इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०-हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रात्री बीतगई शय्यात्याग कीजिये, विधाताने संसारके भारको दो प्रकार विभाग किया है उसको एक ओरसे निद्रा त्यागकर तुम्हारे पिता धारण करतेह, और आप उसका दूसरीओरकी धुरी उठानेवाले हो ॥ ६६ ॥

द्विधा=द्वि+धा । एकतः=एक+तसिल् । बिभर्त्ति=भृ+लट् ।

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ॥
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । लक्ष्मीः निद्रावशेन भवता पर्युत्सुकत्वमपि अनवेक्षमाणा (सती) खण्डिता अबला इव निशि येन (चन्द्रेण) विनोदयति स चन्द्रः अपि दिगन्तलम्बी (सन्) त्वदाननरुचिं विजहाति ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । लक्ष्म्या अनवेक्षमाणया खण्डितया इव विनोद्यते, तेन चन्द्रेण दिगन्तलम्बिना त्वदाननरुचिः विहीयते ॥ ६७ ॥

त्वां रात्रौ निद्रारूपायामन्यस्यां नायिकायाम् आसक्तमवलोक्य मन्ये तव चिरप्रेयसी श्रीः मानवती जाता, सा त्वदर्थम् औत्कण्ठ्यमपि अगणयन्ती कथञ्चित् चित्तप्रसत्त्यर्थं त्वदाननसदृशं सुधाकरम् आश्रयते, सः कुमुदिनीनायकोपि अधुनाऽस्ताचलशिखरावलम्बी भूत्वा क्षीणकान्तिः त्वदाननसमतां त्यजति, ततश्च अधुना त्वदाननसादृश्यरूपस्य विनोदस्थानस्याभावात् साः अशरणा जाता, अतो निद्रां त्यक्त्वा तां लक्ष्मीं गृहाण इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–तुमको निद्राके वशमें देख अभिलाषा छोडकर लक्ष्मी जिस चंद्रमासे वियोगका दुख रात्रिमें खंडिता नायिकाके समान बिताती थी, सोभी दिशाके अन्तपर प्राप्त होकर तुम्हारे मुखकी शोभाको त्यागता है ॥ ६७ ॥

अनवेक्षमाणा=न+अव+ईक्ष+शानच्+टाप् । विजहाति=वि+हा+लट् ।

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन ताव-
त्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे ॥
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्त-
श्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः । तत् अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारं तव चक्षुः, प्रचलितभ्रमरं पद्मञ्च, (इति) द्वे वल्गुना युगपत् तावत् उन्मिषितेन सद्यः परस्परतुलाम् अधिरोहताम् ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारेण तव चक्षुषा, प्रचलितभ्रमरेण पद्मेन च (इति) द्वाभ्यां वल्गुना युगपत् तावत् उन्मिषितेन सद्यः परस्परतुला अधिरुह्यताम् ॥ ६८ ॥

संप्रति बालातपसंपर्कात् सरसि उत्पलम् उन्मीलति, त्वमपि यदि अस्मिन् समये विशदं स्वनेत्रम् उन्मीलयसि तदा एकस्मिन्नवसरे उन्मीलितं चञ्चलनीलतारकायुक्तं त्वदीयं फुल्लनेत्रं चञ्चलनीलभ्रमरशोभितं कमलं च सर्वथा परस्परं सादृश्यं प्राप्नुयातामिति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०–भीतर चलायमान स्निग्ध पुतलीवाले तुम्हारे नेत्र और भीतर फिरते भौरोंवाले कमल, यह दोनो एकही वार खिलनेसे परस्पर एक दूसरेकी तुलापर चढो अर्थात् समानताको प्राप्त हो ॥ ६८ ॥

उन्मिषितेन=उत्+मिष्+क्तः। प्रस्पन्दमाना=प्र+स्पन्द्+शानच् । स्पन्दते । सस्पन्दे । पस्पन्दे । अस्पन्दिष्ट । भा० स्पन्द्यते । स्पन्दनीयम् । स्पन्दितव्यम् स्पान्द । स्पेम् । पान्दित्वा । निस्पन्द्य ।

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः ॥
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥ ६९ ॥

अन्वयः । विभातवायुः ते मुखमारुतस्य स्वाभाविकं सौरभ्यं परगुणेन ईप्सुः इव अनोकहानां श्लथं पुष्पं वृन्तात् हरति, अरुणांशुभिन्नैः सरसिजैः संसृज्यते ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । विभातवायुना ईप्सुना इव ह्रियते संसृज्यते ॥ ६९ ॥

प्रातःपवनः अत्र तव निःश्वासवायोः स्वाभाविकम् आमोदं प्राप्तुं वाञ्छन् इव तरूणां शिथिलबंधनानि पुष्पाणि मुहुः स्वीकरोति, बालातपोन्मीलितानि नलिनानि मुहुरालिङ्गति इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-प्रातःकालकी वायु तुम्हारे मुखके स्वांसकी स्वाभाविकसुगन्धिको पराये गुणोंसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वृक्षोंके डालियोंसे शिथिल फूलोंको तोडती और सूर्यकी किरणोंसे खिलाये कमलोंसे मिलतीहै ॥ ६९ ॥

सौरभ्यम्=सुरभि+ष्यञ् । ईप्सुः=आप्+सन्+उः । अनोकहानाम्=अनस्+अक्+हन्+डः । संसृज्यते=सम्+सृज्+लट् ।

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ॥
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम् ॥ ७० ॥

अन्वयः । ताम्रोदरेषु तरुपल्लवेषु पतितं निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः लब्धपरभागतया अधरोष्ठे त्वदीयं सदशनार्चिः लीलास्मितम् इव, आभाति ॥ ७० ॥

वाच्यप० । ताम्रोदरेषु तरुपल्लवेषु पतितेन निर्धौतहारगुलिकाविशदेन हिमाम्भसा लब्धपरभागतया अधरोष्ठे त्वदीयेन सदशनार्चिषा लीलास्मितेन इव, आभायते ॥ ७० ॥

उज्ज्वलधवलमौक्तिकसदृशं नैशशिशिरजलं स्निग्धपाटलगर्भेषु नवपल्लवेषु निपतितं सत् कमपि शोभातिशयं पुष्णाति, ते ताम्राधरपर्य्यस्तरुचं लीलामधुरं मृदुहास्यमनुकरोति च इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-लाल उदर वाले वृक्षोंके पत्तोंमें गिरीहुई, हारके निर्मलमोतियोंकीसी स्वच्छता वाली, ओसकी बूंदे नीचेके होठपर महान् शोभा पाकर दातोंकी कान्ति सहित तुम्हारे साधारण हँसनेके समान शोभापाती हैं ॥ ७० ॥

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् ॥
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर ! याते
किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥ ७१ ॥

अन्वयः । प्रतापनिधिः भानुः, यावत् न आक्रमते, तावत्, अह्नाय अरुणेन तमः निरस्तम्, वीर ! त्वयि अयोधनाग्रसरतां याते (सति) तव गुरुः किं रिपून् वा स्वयम् उच्छिनत्ति ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । प्रतापनिधिना भानुना यावत् न आक्रम्यते, तावत् अह्नाय अरुणः तमः निरस्तवान्, हे वीर ! त्वयि आयोधनाग्रसरतां याते तव गुरुणा किं रिपवः वा स्वयं उच्छिद्यन्ते ॥ ७१ ॥

यथा रवेरुदयात्प्रागेव तदीयसाहाय्यं विनैव तत् सारथिः अरुणः समुदितः सन् सम्पूर्णमेवान्धकारं दूरीकरोति, तथा पितृसहायः त्वमपि उत्थितः सन् पितृसहायं विनैव पूर्णं शत्रुसमूहं विनाशय इति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०—प्रतापका सागर सूर्य जबतक उदय नहीं होता, तबतक अरुणने शीघ्रही अंधकारदूर करदिया, हे वीर ! संग्राममें तुम्हारे अग्रगामी होनेपर क्या अब तुम्हारे पिता स्वयं शत्रुओंका संहार करेंगे ॥ ७१ ॥

आक्रमते=आ+क्रम्+लट् । अह्नाय=न+ह्नुङ्+घञ् । अरुणेन=ऋ+उनन् । आयोधनेषु=आ+युध+ल्युट् । उच्छिनत्ति=उत्+छिद्+लट् । चिच्छेद । अच्छिनत् । अच्छिन्त । अच्छिदत् । अच्छैत्सीत् । अच्छित्त । क० छिद्यते । छेदनीयम् । छेत्तुम् । छेत्तव्यम् । छित्त्वा । छिन्दन् ।

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते ॥
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगा-
द्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । येषां दन्तकोशाः तरुणारुणरागयोगात् भिन्नाद्रिगैरिकतटाः इव विभान्ति, ते मुखरशृंखलकर्षिणः उभयपक्षविनीतनिद्राः स्तम्बेरमा शय्यां जहति ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । येषां दन्तकोशैः तरुणारुणरागयोगात् भिन्नाद्रिगैरिकतटैः इव विभायते, तैः मुखरशृंखल कर्षिभिः उभयपक्षविनीतनिद्रैः स्तम्बेरमैः शय्या हीयते ॥ ७२ ॥

तव गजाः पार्श्वद्वयपरिवर्तनपूर्वकं निद्रामपनीय उत्तिष्ठन्ति, अंगसञ्चालनाच्च तेषां शृंखलेभ्यः मुहुः शब्दः समुत्पद्यते, उज्ज्वलाः तेषां दन्ताश्च अरुणकिरणसम्पर्केण रक्तवर्णाः सन्तः वप्रक्रीडालग्नगैरिकरागरक्ता इव भान्ति इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०— जिनके दांतोंके जोडे (प्रातःकालकी) नई धूपके संयोगसे पहाडके टूटे-हुए गेरूके खंडकीनाईं चमकतेहैं, शब्दायमान सांकलोंको खैंचतेहुए तुम्हारे हाथी दोनो ओर लोट कर शय्या त्यागते है ॥ ७२ ॥

शय्या=शी+क्यप् ।

दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु
निद्रां विहाय वनजाक्ष ! वनायुदेश्याः ॥
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः ॥ ७३ ॥

अन्वयः । वनजाक्ष ! दीर्घेषु पटमंडपेषु नियमिताः वनायुदेश्याः अमी वाहाः निद्रां विहाय, वक्त्रोष्मणा पुरोगतानि लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि मलिनयन्ति ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । हे वनजाक्ष ! दीर्घेषु पटमंडपेषु नियमितैः वनायुदेश्यैः अमीभिः वाहैः निद्रां विहाय, वक्त्रोष्मणा मलिनीक्रियन्ते ॥ ७३ ॥

हे कमललोचन ! दीर्घेषु वस्त्रनिर्मितेषु मण्डपेषु निवद्धाः त्वदीयाः वनायुदेशजाः तुरंगाः निद्रां विहाय लेहनार्थं पुरोगतानि सैन्धवशिलाखण्डानि लिहन्ति, लेहनसमये तेषां निःश्वासपवनैः तानि मलिनी भवन्ति इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०—हे कमलनेत्र, वडे कपडोंके डेरोंमें बंधेहुए पारसदेशके यह घोडे निद्रा त्याग कर मुखकी भाफसे आगे रक्खे हुए चाटने योग्य सेंधानोनके टुकडोंको मलिन करतेहैं ॥ ७३ ॥

वनायुदेश्याः=वनायुदेश+यत् । लेह्यानि=लिह्+ण्यत् । मलिनयन्ति=मलिन+णिच्+लट् ।

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ॥
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रवोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः ॥ ७४ ॥

अन्वयः । म्लानपुष्पोपहारः विरलभक्तिः भवति, प्रदीपाः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः (भवन्ति) मंजुवाक् पंजरस्थः अयं ते शुकः अपि त्वत्प्रवोधप्रयुक्तां गिरं च अनुवदति ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । म्लानपुष्पोपहारेण विरलभक्तिना (भूयते,) प्रदीपैः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्यैः भूयते) मंजुवाचा पंजरस्थेन अनेन ते शुकेन अपि त्वत्प्रवोधप्रयुक्ता गीः अनूद्यते ॥ ७४ ॥

उपहृताः सुरचिताः कुसुममालाः क्रमशो विशीर्य्यमाणाः विरक्तरचनाः भवन्ति, प्रदीपाश्च न पूर्ववत्प्रकाशं कुर्वन्ति, कलकण्ठः पञ्जरगतोऽयं ते शुकोपि जागरितः सन् अस्मत्कथितानि वचनानि अविकलमनुकृत्य उदीरयति इति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०–सजावटके फूलोंके कुंभलानेसे रचना फीकी होती है, दीपकका प्रकाश अपनी किरणमंडलसे बाहर नहीं जाता पींजरेमें स्थित मनोहर वाणी बोलनेवाला यह तुम्हारा तोताभी तुम्हारे जगानेको यही हमारी कही हुई वाणी बोलताहै ॥ ७४ ॥

म्लानः=म्लै+क्तः।

इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार ॥
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥ ७५ ॥

अन्वयः। इति विरचितवाग्भिः वन्दिपुत्रैः सपदि विगतनिद्रः कुमारः मदपटुनिनदद्भिः राजहंसैः बोधितः सुप्रतीकः सुरगजः गांगं सैकतम् इव तल्पम् उज्झांचकार ॥ ७५ ॥

वाच्यप०। इति विरचितवाग्भिः वन्दिपुत्रैः सपदि विगतनिद्रेण कुमारेण मदपटुनिनदद्भिः राजहंसैः बोधितेन सुप्रतीकेन सुरगजेन इव तल्पम् उज्झाञ्चक्रे ॥ ७५ ॥

यथा हि सुप्रतीको नाम देवगजः प्रातःकाले राजहंसानां शब्दैः विनिद्रः सन् मन्दाकिनीपुलिनशयनात् उत्तिष्ठति, तथा रघुपुत्रोपि सूतपुत्राणां स्तुतिमंगलैः जागरितः सन् तत्कालमेव शयनादुदतिष्ठत् इति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०–इस प्रकारके वचनोंकी रचना करने वाले सूतपुत्रोंके जगानेसे शीघ्र निद्रा त्यागकर कुमारने मदके कारण मधुर बोलनेवाले राजहंसोंसे जगाये सुप्रतीक नामक देवतोंके हाथी द्वारा गंगाके रेतवाले तटके समान शय्याको त्यागा ॥ ७५ ॥

उज्झाञ्चकार=उज्झ+लिट्।

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा ॥
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः। अथ अञ्चिताक्षिपक्ष्मा (अजः) शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितं विधिम् अवसाय्य, कुशलविरचितानुकूलवेषः (सन्) स्वयंवरस्थं क्षितिपसमाजम् अगात् ॥ ७६ ॥

वाच्यप०। अथ अंचिताक्षिपक्ष्मणा शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितं विधिम् अवसाय्य, कुशलविरचितानुकूलवेषेण (सता) स्वयंवरस्थः क्षितिपसमाजः अगायि ॥ ७६ ॥

रुचिरनेत्रपक्ष्मयुक्तः अजः शय्यां विहाय प्रातःकृत्यं यथाविधि कृतवान्, वेषविन्यास-चतुराः सेवकाः तस्य शृङ्गारं कुर्वन्ति स्म, ततश्च सः भूपकुलसमाकुलां स्वयंवरसभां जगामेति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०-इसके उपरान्त शास्त्रके अनुसार प्रातः कालकी उचित क्रियाको समाप्त करके सुन्दर पलकोंवाला वह अज चतुर पुरुषोंके रचे सुंदरवेषयुक्त होकर स्वयंवरमें बैठे हुए राजोंके समाजको गया ॥ ७६ ॥

आञ्चितानि=अञ्च्+क्तः । अवगाह्य=अव+गाह्+णिच्+ल्यप् । अगात्=इ+लुङ् ।

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाटीकासमन्विते पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ।

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु ।
वैमानिकानां मरुतामपश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान् ॥ १ ॥

अन्वयः । सः (अजः) तत्र उपचारवत्सु मंचेषु सिंहासनस्थान् मनोज्ञवेषान् वैमानिकानां मरुताम् आकृष्टलीलान् नरलोकपालान् अपश्यत् ॥ १ ॥

वाच्यप० । तेन तत्र उपचारवत्सु मंचेषु सिंहासनस्थाः मनोज्ञवेषाः वैमानिकानां मरुताम् आकृष्टलीलाः नरलोकपालाः अदृश्यन्त ॥ १ ॥

सः कुमारः तत्र राजसभायां गत्वा उपचारयुक्तेषु मंचेषु स्थितान् तान् नृपान् अवलोकयामास, ये नृपाः वैमानिकानां देवानां शोभां गृहीत्वा तत्र स्थितिं चक्रुः इति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—वह रघु सजे हुए मचानोंमें सिंहासनोंपर स्थित हुए अच्छे वेशवाले राजाओंको जो विमानके देवताओंकी सुघडाई लिये थे, देखता हुआ ॥ १ ॥

पश्यति । ददर्श । अपश्यत् । अदर्शत् । अद्राक्षीत् । दृश्यते । दर्शनीयम् । द्रष्टुम् । दर्शयितुम् । द्रष्टव्यम् । दृष्ट्वा । दर्शयन् ।

रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण ॥
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥ २ ॥

अन्वयः । रतेः गृहीतानुनयेन ईश्वरेण प्रत्यर्पितस्वांगं कामम् इव, काकुत्स्थम् आलोकयतां नृपाणाम् मनः इन्दुमतीनिराशं बभूव ॥ २ ॥

वाच्यप० । रतेः गृहीतानुनयेन ईश्वरेण प्रत्यर्पितस्वांगं कामम् इव काकुत्स्थम् आलोकयतां नृपाणां मनसा निराशेन बभूवे ॥ २ ॥

यदा ते नृपाः रतिप्रार्थनास्वीकारात् शिवेन प्रत्यर्पितं स्वांगं मदनमिव स्थितं तम् अजं ददृशुः तदा तेषां मनांसि इन्दुमतीनिराशानि बभूवुः इति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—रतिकी विनती स्वीकार करनेवाले शंकरसे फिर अपना शरीर पाये हुए कामदेवकी समान अजको देखकर राजाओंका मन इन्दुमतीसे निराश हुआ ॥ २ ॥

बभूव=भू+लिट् ।

वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः कॢप्तेन सोपानपथेन मञ्चम् ॥
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥ ३ ॥

अन्वयः । असौ कुमारः (अजः) क्लृप्तेन सोपानपथेन, मृगराजशावः शिलाविभंगैः तुंगं नगोत्संगम् इव वैदर्भनिर्दिष्टं मंचम् आरुरोह ॥ ३ ॥

वाच्यप० । अमुना कुमारेण क्लृप्तेन सोपानपथेन, मृगराजशावेन शिलाविभंगैः तुंगः नगोत्संगः इव वैदर्भनिर्दिष्टः मंचः आरुरुहे ॥ ३ ॥

यथा मृगराजपोतः शिलानां विभंगैः उन्नतं पर्वताग्रम् आरोहति तथाऽसौ कुमारः भोजप्रदिष्टं मंचं मनोहरेण सोपानमार्गेण आरुरोह इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—यह कुमार भोजराजाके दिखाये हुए मचानपर मनोहर सीढियोंके द्वारा शिलाओंकी चटानोंसे पहाडके ऊंचे स्थानपर सिंहके बच्चेकी समान चढगया ॥ ३ ॥

आरुरोह=आ+रुह्+लिट् ।

परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासनं सः ॥
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन ॥ ४ ॥

अन्वयः । परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नं रत्नवदासनम् आसेदिवान् सः मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन भूयिष्ठम् उपमेयकांतिः आसीत् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । तेन आसनम् आसेदि, मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन उपमेयकान्तिना अभूयत ॥ ४ ॥

यदाऽसौ कुमारः नीलपीतहरितादिवर्णयुक्तं बहुमूल्यमतिश्रेष्ठं सुवर्णसिंहासनमाधिष्ठितवान् तदा तस्य तादृशी शोभा जाता, यथा मयूरपृष्ठाश्रयिणो गुहस्य भवतीति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—वह अज श्रेष्ठरंगोंके विछौने विछे हुए रत्नोंसे जडे आसनपर वैठकर; मोरकी पीठपर चढनेवाले स्वामिकार्तिकेयके समान उपमाके योग्य अधिक कांतिमान् हुआ ॥ ४ ॥

तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ॥
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पङ्क्तिषु विद्युतेव ॥ ५ ॥

अन्वयः । तासु राजपरंपरासु श्रिया पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव सहस्रधा विभक्तः प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः आत्मा व्यरुचत् ॥ ५ ॥

वाच्यप० । सहस्रधा विभक्तेन प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्येण आत्मना व्यरोचि ॥ ५ ॥

यथा मेघानां पंक्तिषु बहुधा भिन्ना चञ्चला शोभते, तथैव तासु नृपपंक्तिषु तरंगेषु सूर्य इव शतशः भिन्नः अतिशयेन तेजसा दुर्दर्शनः आत्मा शुशुभे इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—राजाओंकी उन पंक्तियोंमें लक्ष्मीद्वारा, मेघोंकी पंक्तियोंमें विजलीकी समान सहस्रभाग किया हुआ कान्तिके विशेष उदय होनेके कारण कठिनतासे देखने योग्य, स्वरूप शोभित हुआ ॥ ५ ॥

व्यरुचत्=रुच—दीप्तौ । रोचते । रुरुचे । अरोचत । अरुचत्—अरोचिष्ट । भावे रुच्यते । सनि रुरुचिषते । कृ० रोचनीयम् । रोचनम् । रुचितिः । रोचितुम् । रोच्यम् । रोचमानः ।

तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये ॥
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः ॥ ६ ॥

अन्वयः । महार्हासनसंस्थितानाम् उदारनेपथ्यभृतां तेषां (राज्ञाम्) मध्ये धाम्ना सः रघु-सूनुः एव, कल्पद्रुमाणां (मध्ये) पारिजातः इव रराज ॥ ६ ॥

वाच्यप० । महार्हासनसंस्थितानाम् उदारनेपथ्यभृतां तेषां मध्ये धाम्ना, तेन रघुसूनुना एव कल्पद्रुमाणां (मध्ये) पारिजातेन इव रेजे ॥ ६ ॥

श्रेष्ठसिंहासनस्थितानां निर्मलवेषधारिणां तेषां नृपाणां मध्ये तेजसा स अजः कल्पवृक्षाणां मध्ये पारिजात इव शुशुभे इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—बडे मूल्यके सिंहासनोंपर बैठे सुन्दरवेषधारी उन राजोंके बीचमें तेजसे रघु-का पुत्र कल्पवृक्षोंके मध्यमें पारिजातकी समान शोभित हुआ ॥ ६ ॥

रराज=राज्+लिट् । राजति-ते । रराजे+रेजे । अराजत्-त । अराजीत्-अराजिष्ट । भावे राज्यते । राजनीयम् । राजः । क्विप्+राट्-ड् । राजित्वा । विराज्य । राजन् । राजमानः ।

नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः ॥
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः ॥ ७ ॥

अन्वयः । पौरजनस्य नेत्रव्रजाः सर्वान् नृपतीन् विहाय, रेचितपुष्पवृक्षाः द्विरेफाः मदोत्कटे वन्ये गन्धद्विपे इव, तस्मिन् (अजे) निपेतुः ॥ ७ ॥

वाच्यप० । पौरजनस्य नेत्रव्रजैः सर्वान् नृपतीन् विहाय, रेचितपुष्पवृक्षैः द्विरेफैः मदोत्कटे वन्ये गन्धद्विपे इव, तस्मिन् (अजे) निपेते ॥ ७ ॥

यथा भ्रमराः पुष्पवृक्षान् त्यक्त्वा वन्ये गन्धद्विपे निपतन्ति, तथैव नगरनिवासिनो जनस्य नेत्र-व्रजाः सर्वान् नृपतीन्विहाय तस्मिन् अजे निपेतुः इति सरलार्थः ॥७ ॥

भा०—पुरवासियोंके नेत्रोंके समूह सम्पूर्ण राजोंको छोडकर फूलके वृक्षोंको छोड-कर मदसे उत्कट गंधवाले हाथीमें भौंरोंकी समान उस अजपर ही पडते हुए ॥ ७ ॥

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके ॥
संचारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः ॥ ८ ॥

अन्वयः । अथान्वयज्ञैः बंदिभिः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके स्तुते (सति) संचारिते अगुरु-सारयोनौ धूपे वैजयन्तीः (प्रति) समुत्सर्पति (सति) ॥ ८ ॥

अथ कुलाभिज्ञैः स्तुतिपाठकैः शशिदिवाकरवंशोत्पन्ने नृपसमूहे स्तुते सति संचारिते अगुरुसारोत्पन्ने धूपे ध्वजाः समुपगच्छति सति इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०—इसके उपरांत वंशके जाननेवाले स्तुतिपाठकोंसे सूर्यचंद्रवंशमें उत्पन्नहुए राजसमूहोंकोस्तुत किये जानेपर, और फैलती हुई अगुरुसारकी धूपमें पताकाओंके फहरानेपर ॥ ८ ॥

स्तुतः=स्तु+क्त । वैजयन्ती=वि+जि+अच्+ङीप् ।

पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ ॥
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तांस्तूर्यस्वने मूर्छति मङ्गलार्थे ॥ ९ ॥

अन्वयः । पुरोपकंठोपवनाश्रयाणां कलापिनाम् उद्धतनृत्यहेतौ प्रध्मातशंखे मङ्गलार्थे तूर्यस्वने परितः दिगन्तान् मूर्छति (सति) ॥ ९ ॥

नगरस्य समीपे उपवननिवासिनां मयूराणां नृत्यकारणे शंखे नदति सति, मङ्गलहेतौ वाद्यशब्दे समन्तात् दिगन्तान्व्याप्नुवति सति इति तत्वार्थः ॥ ९ ॥

भा०—नगरके समीपवाले उपवनोंमें रहनेवाले मोरोंके महानृत्य करानेवाले शंखोंके शब्दोंसे पूर्ण, मंगलके निमित्त बजनेवाली तुरही बाजेकी ध्वनिके दिशाओंके अन्ततक छानेपर ॥ ९ ॥

कलापिनां=कलाप+इनि+६ ।

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि ॥
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा कॢप्तविवाहवेषा ॥ १० ॥

अन्वयः । पतिंवरा कॢप्तविवाहवेषा कन्या मनुष्यवाह्यं परिवारशोभि चतुरस्रयानम् अध्यास्य मंचांतरराजमार्गं विवेश ॥ १० ॥

वाच्यप० । पतिंवरया कॢप्तविवाहवेषया कन्यया मंचान्तरराजमार्गः विविशे ॥ १० ॥

पतिंवरा सा कन्या शोभनं वेषं विधाय मनुष्यैर्वाह्यं परिचारकैर्युक्तं शिबिकायानमध्यास्य मञ्चान्तरराजमार्गमाजगामेति तत्वार्थः ॥ १० ॥

भा०—पतिको वरनेवाली विवाहके वस्त्र धारण किये हुई वह कन्या साथ चलनेवालोंसे शोभित मनुष्योंके कंधेपर सुखपालमें चढकर मंचानोंके बीच राजमार्गमें गई ॥ १० ॥

वाह्यं=वाह+यत् ।

तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये ॥
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ॥ ११ ॥

अन्वयः । नरेन्द्राः नेत्रशतैकलक्ष्ये कन्यामये तस्मिन् विधातुः विधानातिशये अन्तःकरणैः निपेतुः केवलं देहैः आसनेषु स्थिताः (बभूवुः) ॥ ११ ॥

वाच्यप० । नरेन्द्रैः नेत्रशतैकलक्ष्ये कन्यामये तस्मिन् विधातुः विधानातिशये अन्तःकरणैः निपेते, केवलं देहैः आसनेषु स्थितैः (बभूवे) ॥ ११ ॥

यस्मिन् समये सा कन्या नृपतीनां समीपे आगता तदा तस्याः सौन्दर्यातिशयं दृष्ट्वा सर्वे भूपा अन्तकरणैः तस्यां निपेतुः केवलं शरीरैः आसनेषु संस्थिता बभूवुरिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०–राजसमूह सैकडों नेत्रोंके एकलक्ष्य (निशाना) कन्यारूप उस विधाताके विशेष कर्तव्यमें अन्तःकरणोंसे गिरे, केवल देहोंसे आसनोंमें बैठेरहे ॥ ११ ॥

कन्यामये=कन्+यत्+मयट् ।

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ॥
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥ १२ ॥

अन्वयः । ताम् (भोज्याम्) प्रति अभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां, पादपानां प्रवालशोभाः इव, प्रणयाग्रदूत्यः विविधाः शृंगारचेष्टाः बभूवुः ॥ १२ ॥

वाच्यप० । ताम् प्रति अभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां, पादपानां प्रवालशोभाभिः इव, प्रणयाग्रदूतीभिः विविधाभिः शृंगारचेष्टाभिः बभूवे ॥ १२ ॥

इन्दुमतीम्प्रति महाभिलाषिणां नृपाणां प्रणयेषु प्रथमदूतिकाः वृक्षाणां पल्लवसंपद इव बहुधा भिन्नाः शृंगारचेष्टाः बभूवुरिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–उसके सन्मुख मनकी अभिलाषा प्रगट करनेवाले राजोंकी, वृक्षोंकी पल्लवशोभाकी समान, प्रार्थनामें उत्तम दूती, अनेक प्रकारकी शृंगारकी चेष्टा हुईं ॥ १२ ॥

अभिव्यक्त=अभि+वि+अञ्ज+क्त ।

कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ॥
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ॥ १३ ॥

अन्वयः । कश्चित् (क्षितीशः) कराभ्याम् उपगूढनालम् आलोलपत्राभिहतद्विरेफं रजोभिःअन्तःपरिवेषबंधि लीलारविन्दं भ्रमयांचकार ॥ १३ ॥

वाच्यप० । केनचित् (क्षितीशेन) लीलारविन्दं भ्रमयाचक्रे ॥ १३ ॥

काश्चिद्राजा हस्ताभ्यां गृहीतनालं चंचलपत्रैः ताडितद्विरेफं परागैः अन्तःपरिवेषबन्धि लीलाकमलं भ्रामयामासेति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–कोई राजा दोनों हाथोंसे पकडीहुई नालवाले, पत्तोंके हलनेसे भौंरोंको दूर करनेवाले, मध्यमें परागका मंडल बाँधते हुए लीलाके कमल फिराने लगे ॥ १३ ॥

परिवेष = परि+विष+घञ् ।

विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम् ॥
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः ॥ १४ ॥

अन्वयः । साचीकृतचारुवक्त्रः अपरः विलासी अंसात् विस्रस्तं रत्नानुविद्धांगदकोटिलग्नं प्रालम्बम् उत्कृष्य यथावकाशं निनाय ॥ १४ ॥

वाच्यप० । साचीकृतचारुवक्त्रेण अपरेण विलासिना अंसात् विस्रस्तं रत्नानुविद्धांगदकोटिलग्नं प्रालम्बम् उत्क्षिप्य यथावकाशं निन्ये ॥ १४ ॥

अपरो विलासी अंसात् स्खलितं प्रालंबं रत्नजटितकेयूरकोटिलग्नम् उद्धृत्य शोभनं मुखं तिर्यक्कृत्वा स्वस्थानं निवेशयामासेति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-तिरछा मुख किये किसी दूसरे विलासीने कंधेकी सरकी हुई रत्नोंसे जडी बाजूबन्दकी कोटीमें लगीहुई माला लेकर अपने यथास्थानमें रक्खी ॥ १४ ॥

प्रालम्ब = प्र+आ+लम्ब+अच् ।

आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः॥
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम् ॥ १५॥

अन्वयः । ततः अन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः आकुंचिताग्रांगुलिना तिर्यग्विसंसर्पिनख-प्रभेण पादेन हैमं पीठं विलिलेख ॥ १५ ॥

वाच्यप० । ततः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभेन अन्येन, आकुंचिताग्रांगुलिना तिर्यग्विसंसर्पिन-खप्रभेण पादेन हैमः पीठः विलिलिखे ॥ १५ ॥

अपरो नृपः ईषत्पातितनेत्रशोभः सन् आभुग्नाग्रांगुलिना तिर्य्यक्प्रपातिनखप्रभेण चरणेन पादपीठं लिखितवानिति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-दूसरा राजा कुछेक नेत्रोंका कटाक्ष दिखाकर सकोडी उंगलीवाले, तिरछी फैलनेवाली नखोंकी कांतिवाले चरणसे सोनेकी पीढीपर कुछ लिखने लगा ॥ १५ ॥

विलिलेख=वि+लिख+लिट् । लिखति। अलिखत् । अलेखीत्। कर्मणि लिख्यते । सनि लिलिखिषति,लि-लेखिषति। कृ०लेखनीयम् । लेखनम् । लेखी । लिखितव्यम्। लिखित्वा, लेखित्वा । लिखन् । लिख्यमानः।

निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नतांसः ॥
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ॥ १६ ॥

अन्वयः । कश्चित् आसनार्धे वामं भुजं निवेश्य तत्सन्निवेशात् अधिकोन्नतांसः विवृत्तत्रिक-भिन्नहारः सन् सुहृत्समाभाषणतत्परः अभूत् ॥ १६ ॥

वाच्यप०। अधिकोन्नतांसेन विवृत्तत्रिकभिन्नहारेण सुहृत्समाभाषणतत्परेण अभावि ॥ १६ ॥

कश्चिन्नृपः सिंहासनैकदेशे वामं भुजं निधाय तत् संस्थापनात् अधिकोन्नतांसः लुंठितहारः सन् मित्रेण सह संलापितुं प्रववृते इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०-कोई राजा सिंहासनके एकभागमें वाईं भुजाको रखकर उसके रखनेसे अधिक ऊंचे कन्धेवाला, पीठपर पडेहारवाला मित्रसे वात करनेमें तत्पर हुआ ॥ १६ ॥

विवृत्त=वि+वृत्+क्त ।

---

१ कुरसीपर वैठकर जिसपर चरण रखतेहैं वह पायदान यहाँ पीठ कहागया है ।

विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ॥
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ॥ १७ ॥

अन्वयः । अन्यः युवा प्रियानितंबोचितसंनिवेशैः नखाग्रैः विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रम् आपांडुरं केतकबर्हम विपाटयामास ॥ १७ ॥

वाच्यप० । अन्येन यूना प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैः नखाग्रैः आपांडुरः विलासिनीविभ्रमदंतपत्रः केतकबर्हः विपाटयांचक्रे ॥ १७ ॥

अपरः कश्चित् युवा प्रियायाः विलासार्थं दंतपत्रयुक्तम् आपाण्डुरं केतकपल्लवं प्रियानितम्बयोग्याभ्यस्तनिक्षेपणैः नखाग्रभागैर्विदारयामासेति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—दूसरा युवा प्रियाके नितम्बोंपर लगनेवाले नखोंसे स्त्रियोंके विलासनिमित्त दन्तपत्र बनेहुए पीतवर्ण केतकीके पत्रोंको नोचता हुआ ॥ १७ ॥

विपाटयामास=वि+पट+णिच्+लिट् । पाट्यति–ते । अपीपटत्–त । कर्मणि पाट्यते । पाटनीयम्, पाटनम् पाटयितुम्, पाटयितव्यम्, पाटयित्वा, संपाट्य । पाटयन् । पाटयमानः ।

कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन ॥
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान् ॥ १८ ॥

अन्वयः । कश्चित् (नृपः) कुशेशयाताम्रतलेन रेखाध्वजलांछनेन करेण रत्नांगुलीयप्रभयानुविद्धान् अक्षान् सलीलम् उदरियामास ॥ १८ ॥

वाच्यप० । केनचित् (नृपेण) करेण रत्नांगुलीयप्रभयानुविद्धाः अक्षाः सलीलमुदीरयामासिरे ॥ १८ ॥

कश्चिन्महीपतिः कमलमिव ताम्रतलेन रेखाध्वजाचिह्नयुक्तेन हस्तेन मणिनिर्मितांगुलीयकान्त्यानुविद्धान् पाशान् सलीलमुदीरयामासेति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—कोई राजा कमलकी समान हथेलीवाले ध्वजाकी रेखाचिह्नयुक्त हाथसे रत्न जडी अंगूठियोंकी चमकसे युक्त पाशोंको उछालता हुआ ॥ १८ ॥

अक्षान्=अक्ष+घञ् ।

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव ॥
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ॥ १९ ॥

अन्वयः । कश्चित् (भूवल्लभः) यथाभागमवस्थितेपि किरीटे स्वसन्निवेशात् व्यतिलंघिनि इव, वज्रांशुगर्भांगुलिरंध्रम् एकं करं व्यापारयामास ॥ १९ ॥

वाच्यपरि० । केनचित् (भूवल्लभेन) वज्रांशुगर्भांगुलिरंध्रः एकः करः व्यतिलंघिनि इव किरीटे व्यापारयामासे ॥ १९ ॥

कश्चिद्विलासी यथास्थानं संस्थितेपि किरीटे स्वस्थानात् चलित इव रत्नप्रभागर्भांगुलिरंध्रम् एकं हस्तं व्यापारयामासेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०-किसी राजाने यथास्थानमें रक्खे हुए भी मुकुटमें मानो अपने स्थानसे खसकगयाहो (इसप्रकार) हीरेकी चमकसे भरे हुए अंगुलीके छिद्रवाला एक हाथ रक्खा ॥ १९ ॥

सन्निवेशात्=सम्+नि+विश+घञ् ।

ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी ॥
प्राक्संनिकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ॥ २० ॥

अन्वयः । ततः नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत् प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी सुनन्दा प्राक् कुमारीं मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं नीत्वा अवदत् ॥ २० ॥

वाच्यपरि० । ततः नृपाणां श्रुतवृत्तवंशया पुंवत् प्रगल्भया प्रतिहाररक्ष्या सुनन्दया प्राक् कुमारी मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं नीत्वा औद्यत ॥ २० ॥

अथ नृपकुलचारित्रज्ञा पुंवत् भाषिणी द्वारपालिनी सुनन्दा कन्यां प्राक् मगधनायकस्य समीपं नीत्वा उवाचेति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०-इसके उपरान्त राजोंके वंश और वृत्तान्त सुनी हुई पुरुषकी समान बोलनेवाली द्वारपालिनी सुनन्दा पहले कुमारीको मगधेश्वरके समीप ले जाकर बोली॥२०॥

प्रगल्भ=प्र+गल्भ+अच्-स्त्री०टाप् ।

असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः ॥
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परंतपो नाम यथार्थनामा ॥ २१ ॥

अन्वयः । शरणोन्मुखानां (नराणाम्) शरण्यः अगाधसत्त्वः प्रजारंजनलब्धवर्णः मगधप्रतिष्ठः यथार्थनामा परंतपो नाम असौ राजा (अस्ति) ॥ २१ ॥

वाच्यप० । शरणोन्मुखानां शरण्येन अगाधसत्त्वेन प्रजारंजनलब्धवर्णेन मगधप्रतिष्ठेन यथार्थनाम्ना परंतपेन नाम अनेन राज्ञा (भूयते) ॥ २१ ॥

शरणागतानां नृणां शरणदाता गूढाशयः प्रजारञ्जनलब्धकीर्तिः मगधाधिपतिः यथार्थनामा अयं परंतपो नाम राजा अस्ति त्वं पश्य इति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-शरणमें आयेहुए मनुष्योंको शरणका देनेवाला, महापराक्रमी प्रजापालनमें चतुर मगधदेशमें प्रतिष्ठित 'परंतप' यथार्थ नामवाला यह राजा है ॥ २१ ॥

शरण्यः=शरणे साधुः+यत् ।

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ॥
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥ २२ ॥

अन्वयः । अन्ये सहस्रशः नृपाः कामं सन्तु, (जनाः) अनेन भूमिं राजन्वतीम् आहुः नक्षत्रताराग्रहसंकुला अपि रात्रिः ज्योतिष्मती चन्द्रमसा एव (भवति) ॥ २२ ॥

वाच्यप० । अन्यैः सहस्रशः नृपैः कामं भूयताम्,(जनैः) अनेन भूमिः राजन्वती उच्यते नक्षत्रताराग्रहसंकुलया अपि रात्र्या ज्योतिष्मत्या चन्द्रमसा एव (भूयते) ॥ २२ ॥

अपरे सहस्रशः महीपाः कामं सन्तु जनास्तु अनेनैव पृथ्वीं राजन्वतीमाहुः, नक्षत्रताराग्रहयुक्तापि रात्रिः चन्द्रमसा एव ज्योतिष्मती भवतीति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०–चाहे और राजा सहस्रों हों परन्तु पृथ्वी इसी राजासे राजावाली है, नक्षत्र, तारे और ग्रहोंसे युक्त हुई रात्रि चांदनीवाली चंद्रमासेही होती है ॥ २२ ॥

नक्षत्र=न+क्षत्र ।

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः ॥
शच्याश्चिरं पांडुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार ॥२३॥

अन्वयः । अध्वराणां क्रियाप्रबंधात् अजस्रम् आहूतसहस्रनेत्रः अयं (परन्तपः) चिरं पांडुकपोललम्बान् शच्याः अलकान् मंदारशून्यान् चकार ॥ २३ ॥

वाच्यप० । अध्वराणां क्रियाप्रबंधात् अजस्रम् आहूतसहस्रनेत्रेण अनेन चिरं पांडुकपोललम्बाः शच्याः अलकाः मन्दरशून्याः चक्रिरे ॥ २३ ॥

यज्ञानां निरन्तरमनुष्ठानात् अनेन शक्रो निरन्तरमाहूतः, अतोयं पाण्डुकपोलस्रस्तान् शच्या, अलकान् चिरं कल्पवृक्षपुष्पैः शून्यांश्चकरोति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०–यज्ञोंके निरन्तर करनेसे वारंवार इन्द्रको बुलानेवाला यह राजा बहुत कालतक पीले कपोलोंपर लम्बायमान इंद्राणीके अलकोंको मंदारके फूलोंसे शून्य करता हुआ ॥ २३ ॥

अजस्रम्=न+जस्+र ।

अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे ॥
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम् ॥ २४ ॥

अन्वयः । चेत् (त्वं) वरेण्येन अनेन (परंतपेन) गृह्यमाणं पाणिम् इच्छसि, (तदा) प्रवेशे प्रासादवातायनसंश्रितानां पुष्पपुराङ्गनानां नेत्रोत्सवं (त्वं) कुरु ॥ २४ ॥

वाच्यप० । चेत् (त्वया) वरेण्येन अनेन गृह्यमाणः पाणिः इष्यते, (तदा) प्रवेशे प्रासादवातायनसंश्रितानां पुष्पपुराङ्गनानां नेत्रोत्सवः (त्वया) क्रियताम् ॥ २४ ॥

यदि अनेन परन्तपेन सह रन्तुं ते इच्छा अस्ति तदा अस्य नगरप्रवेशसमये राजमन्दिरगवाक्षस्थितानां पाटलिपुत्राङ्गनानां नेत्रानन्दं कुर्वीति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०-यदि तू वरनेयोग्य इस परंतपसे पाणिग्रहण किया चाहती है तो प्रवेशके समय महलोंके झरोखोंमें बैठी हुई पुष्पपुरकी स्त्रियोंके नेत्रोंके आनंदको कर ॥ २४ ॥

प्रासाद+प्र+सद+घञ् ।

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला ॥
ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा ॥ २५ ॥

अन्वयः । तया एवम् उक्ते (सति) विस्रंसिदूर्वांकमधूकमाला तन्वी (इन्दुमती) तं (नृपं) किंचित् अवेक्ष्य, एनम् अभाषमाणा (सती) ऋजुप्रणामक्रियया एव प्रत्यादिदेश ॥ २५ ॥

वाच्यपरि० । विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमालया तन्व्या (इन्दुमत्या) अयम् अभाषमाणया (सत्या) प्रत्यादिदिशे ॥ २५ ॥

सुनन्दया एवं कथिते सति किंचिद्विस्रंसिदूर्वाचिह्नमधूकमाला सा तन्वी इन्दुमती एनं महीपम् अभाषमाणर्ज्वी भावशून्यया क्रिययैव तत्याजेति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०-उसके ऐसा कहनेपर दूब लगीहुई महुएकी माला कुछ नीची करनेवाली सूक्ष्मकटियुक्त इन्दुमती उस राजाको कुछ देखकर बिना बोलेही उसको सीधेपनकी प्रणाम क्रियासे नहीं का उत्तर देतीहुई ॥ २५ ॥

विस्रंसि(नी) = वि+स्रंस+इनि ।

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय ॥
समीरणोत्थेव तरंगलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम् ॥ २६ ॥

अन्वयः । वेत्रग्रहणे नियुक्ता सा (सुनंदा) एव तां राजसुतां राजान्तरं, समीरणोत्था तरंगलेखा मानसराजहंसीं पद्मान्तरम् इव, निनाय ॥ २६ ॥

वाच्यप० । वेत्रग्रहणे नियुक्तया तया एव सा राजसुता राजान्तरं; समीरणोत्थया तरंगलेखया मानसराजहंसी पद्मान्तरम् इव, निन्ये ॥ २६ ॥

द्वारपालिनी सा सुनन्दा ताम् इन्दुमतीं राजान्तरं तथा निनाय यथा पवनोत्था तरंगपंक्ति मानसराजहंसीं कमलान्तरं प्रापयति इति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०-वेत्र ग्रहणमें लगीहुई वह सुनंदा इसप्रकार उस सुताको दूसरे राजाके पास, मानों पवनसे उठी हुई तरंगकी रेखा मानससरोवरकी राजहंसीको दूसरे कमलके निकट ले गई ॥ २६ ॥

जगाद चैनामयमङ्गनाथः सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः ॥
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते ॥ २७ ॥

अन्वयः । सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः सूत्रकारैः विनीतनागः अयम् अंगनाथः भूमिगतः अपि किल ऐन्द्रं पदं भुंक्ते ॥ २७ ॥

वाच्यपरि० । सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रिया सूत्रकारैः विनीतनागेन अनेन अंगनाथेन भूमिगतेन अपि किल ऐन्द्रं पदं भुज्यते ॥ २७ ॥

अयं अंगाधिपतिः पृथ्वीगतः अपि स्वर्गसुखमनुभवति यदासौ नृपतिः इन्द्रलोकं गतः तदा सुराङ्गनाभिः अस्य यौवनश्रीः प्रार्थिता, गजशास्त्रकारैः अस्य नागाः शिक्षिताः सन्ति इति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०–देवताओंकी स्त्री जिसकी यौवनलक्ष्मीकी प्रार्थना करती हैं, हाथियोंकी विद्या निर्माण करनेवाले जिसके हाथियोंको सिखातेहैं, ऐसा यह अंगनाथ पृथ्वीमें प्राप्त हुआ भी इन्द्रपदको भोगताहै ॥ २७ ॥

ऐन्द्रम् = इंद्र+अण् ।

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान्स्तनेषु ॥
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः ॥२८॥

अन्वयः । शत्रुविलासिनीनां स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमान् अश्रुबिन्दून्पर्यासयता अनेन उन्मुच्य सूत्रेण विना एव हाराः प्रत्यर्पिताः (सन्ति) ॥ २८ ॥

वाच्यप० । हारैः प्रत्यर्पितैः (भूयते) ॥ २८ ॥

शत्रुस्त्रीणां स्तनेभ्यः तासां भर्तृवधात् मुक्ताहारान् उन्मुच्य, मुक्तासदृशस्थूलतमान् अश्रुबिन्दून् प्रसारयता अनेनैव तासां स्तनेषु सूत्रेण विना एव हाराः प्रत्यर्पिताः इति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०–इसी राजाने शत्रुओंकी स्त्रियोंके स्तनोंमें पड़े हारोंको उतरवाकर मोतियोंकी समान बड़े आंसुओंके हार विना डोरेके डालेहुए हारकी समान पहराये ॥ २८ ॥

उन्मुच्य=उत्+मुच+ल्यप् ।

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ॥
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि ! तयोस्तृतीया २९.

अन्वयः । अस्मिन् श्रीश्च सरस्वती च द्वयं निसर्गभिन्नास्पदम् एकसंस्थम् (अस्ति)) कल्याणि ! कान्त्या सूनृतया गिरा च तयोः (मध्ये) त्वमेव तृतीया योग्या (असि) ॥ २९ ॥

वाच्यप० । श्रिया सरस्वत्या च द्वयेन निसर्गभिन्नास्पदेन एकसंस्थेन (भूयते) हे कल्याणि ! कान्त्या सूनृतया गिरा च तयोर्मध्ये त्वया एव तृतीयया योग्यया (भूयते) ॥ २९ ॥

स्वभावतो भिन्नाश्रयं श्रीश्च सरस्वती च द्वयम् अस्मिन्नंगाधिपतौ एकसंस्थम् कान्त्या सत्यप्रियया गिरा च संसर्गार्हा त्वमेव तयोः श्रीसरस्वत्योर्मध्ये तृतीया भव, यत्र श्रीस्तिष्ठति तत्र सरस्वती

न वसति, अस्मिन्नृपतौ ते एकीभूय निवासं कुरुतः, त्वमपि सदृशगुणतया तयोः सदृशी भवेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—स्वभावहीसे पृथक् रहनेवाली लक्ष्मी और सरस्वती इसके पास दोनो इकट्ठी रहती हैं, हे कल्याणी ! मनोहरता और सुन्दरवाणीसे तू उनमें तीसरी होने योग्य है ॥ २९ ॥

संस्थम्=सम्+स्था+क ।

अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी ॥
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः॥३०

अन्वयः । कुमारी अथ अंगराजात् चक्षुः अवतार्य, (त्वम्) याहि इति जन्याम् अवदत् असौ (नृपः) काम्यः न (आसीत्, इति) न, सा (इन्दुमती) द्रष्टुं सम्यक् न वेद (इति) न, हि (तथाहि) लोकः भिन्नरुचिः (भवति) ॥ ३० ॥

वाच्यप० । कुमार्या अथ अंगाराजात् चक्षुः अवतार्य, (त्वया) यायताम् इति जन्या ऊचत, अनेन काम्येन न (अभूयत, इति) न, तया द्रष्टुं सम्यक् न विद्यताम्, (इति) न हि, लोकेन भिन्नरुचिणा (भूयते) ॥ ३० ॥

अथ कुमारी अंगनाथाच्चक्षुः अपनीय गच्छ इति सुनंदामवदत्, असौ अंगनाथः सर्वगुण-सम्पन्नः आसीत्, सा कुमारी इन्दुमत्यपि सम्यक् द्रष्टुं वेद किन्तु लोकस्य भिन्नरुचिः भवतीति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०--कुमारी इसके उपरान्त अंगराजकी ओरसे चक्षु हटाकर चलो ऐसा धायसे कहती हुई, यह राजा मनोहर न हो यह बात नहीं, और उसे देखना नहीं आता यह बात नहीं, परन्तु प्राणियोंकी रुचि भिन्न होतीहै ॥ ३० ॥

ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ ॥
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै ॥ ३१ ॥

अन्वयः । ततः प्रतिहारभूमौ नियुक्ता (सुनन्दा) इन्दुमत्यै,: द्विषद्भिः दुष्प्रसहं विशेषदृश्यं, नवोत्थानम् इन्दुम् इव, परं नृपं निदर्शयामास ॥ ३१ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । ततः प्रतिहारभूमौ नियुक्तया (सुनन्दया) दुष्प्रसहः विशेषदृश्यः नवो-त्थानः इन्दुः इव, परः नृपः निदर्शयांचक्रे ॥ ३१ ॥

ततः द्वारपालिनी सुनन्दा शत्रुभिः दुस्सहं रूपयौवनसम्पन्नं नवोदयं पूर्णचन्द्रमिव परं भूमिप-तिम् इन्दुमत्यै दर्शयामासेति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—तब द्वारपालिनीके कार्यमें नियुक्त सुनन्दा इन्दुमतीको शत्रुओंसे असह्य महासुन्दर नये निकलेहुए चन्द्रमाकी समान दूसरे राजाको दिखाती हुई ॥ ३१ ॥

अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः ॥
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति॥३२॥

अन्वयः। उदग्रबाहुः विशालवक्षाः तनुवृत्तमध्यः अयम् अवन्तिनाथः, त्वष्ट्रा चक्रभ्रमम् आरोप्य यत्नोल्लिखितः उष्णतेजाः इव, विभाति ॥ ३२ ॥

वाच्यप०। उदग्रबाहुना विशालवक्षसा तनुवृत्तमध्येन अनेन अवन्तिनाथेन, यत्नोल्लिखितेन उष्णतेजसा विभायते ॥ ३२ ॥

महाभुजः पीनवक्षाः कृशमध्यभागः अयम् अवन्तिदेशाधिपतिः विश्वकर्मणा शस्त्रोत्तेजनयंत्रम् आरोप्य सावधानतयोल्लिखितरविरिव शोभते इति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०–बडी भुजा और चौडी छातीवाला सूक्ष्म गोली कटियुक्त यह अवन्तिदेशका राजा शानपर चढाकर विश्वकर्माके उजाले हुए सूर्यकी समान शोभित होताहै ॥ ३२ ॥

त्वष्ट्रा=त्वक्ष्+तृन्।

अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि ॥
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि ॥३३॥

अन्वयः। समग्रशक्तेः अस्य प्रयाणेषु अग्रेसरैर्वाजिभिः उत्थितानि रजांसि सामंतशिखामणिनां प्रभाप्ररोहास्तमय कुर्वन्ति ॥ ३३ ॥

वाच्यप०। उत्थितैः रजोभिः प्रभाप्ररोहास्तमयं क्रियते ॥ ३३ ॥

शक्तित्रययुक्तस्य अस्य यात्रायाम् अग्रे गच्छद्भिः अश्वैः उत्थापितानि रजांसि समन्ताद्भवानां नृपाणां चूडामणीनां तेजोंकुरनाशं कुर्वन्तीति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–सम्पूर्ण शक्तिवाले इस राजाकी यात्रामें आगे चलनेवाले घोडोंसे उठाई हुई धूरि राजाओंके शिरकी मणियोंके किरणअंकुरोंको अस्त करती हैं ॥ ३३ ॥

सामन्तः=समन्त+अण्।

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः ॥
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्॥३४॥

अन्वयः। असौ (अवन्तिनाथः) किल महाकालनिकेतनस्य चन्द्रमौलेः अदूरे वसन् (सन्) प्रियाभिः सह तमिस्रपक्षे अपि ज्योत्स्नावतः प्रदोषान् निर्विशति ॥ ३४ ॥

वाच्यपरि०। अनेन किल महाकालनिकेतनस्य चन्द्रमौलेः अदूरे वसता (सता) प्रियाभिः सह तमिस्रपक्षे अपि ज्योत्स्नावन्तः प्रदोषाः निर्विश्यन्ते ॥ ३४ ॥

असौ अवन्तिनाथः महाकालनिवासिनः चन्द्रमौलेः महादेवस्य समीपे वसति, अत एव कृष्णपक्षेपि प्रियाभिः सह ज्योत्स्नावतीः रात्रीः अनुभवतीति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—यही अवन्तिनाथ महाकालनिवासी चंद्रशेखर शिवजीके निकट प्रियासहित वसता हुआ कृष्णपक्षमेंभी चाँदनी रातोंके सुखको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

तमिस्र=तमोऽस्त्यत्र र निपातः।

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु! कच्चिन्मनसो रुचिस्ते ॥
शिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु ॥ ३५ ॥

अन्वयः। हे रम्भोरु! कच्चित् ते मनसः रुचिः यूना अनेन पार्थिवेन सह शिप्रातरंगानिलकम्पितासु उद्यानपरम्परासु विहर्तुम् (अस्ति) ॥ ३५ ॥

वाच्यपरि०। हे रम्भोरु कच्चित् ते मनसः रुच्या यूना अनेन पार्थिवेन सह शिप्रातरंगानिलकम्पितासु उद्यानपरंपरासु विहर्तुं (भूयते) ॥ ३५ ॥

हे रम्भोरु! यदि त्वम् अनेन यूना पार्थिवेन सह विवाहं करिष्यसि, तर्हि शिप्रातरंगपवनकम्पितासु उपवनपंक्तिषु विहरिष्यसीति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—हे केलेकी समान जंघाओंवाली क्या तेरे मनकी रुचि युवा इस राजाके संग शिप्रानदी की तरंगोंकी पवनसे कंपित बगीचोंकी पंक्तियोंमें रमण करनेकी है ॥ ३५ ॥

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपंके ॥
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः। अभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपंके तस्मिन् (राज्ञि) उत्तमसौकुमार्या भावं, कुमुद्वती भानुमति इव, न ववन्ध ॥ ३६ ॥

वाच्यप०। अभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपंके तस्मिन् अनया उत्तमसौकुमार्यया भावः कुमुद्वत्या भानुमति इव, न बबन्धे ॥ ३६ ॥

अधिकसुकुमाराङ्गी सा इन्दुमती निर्जितशत्रौ, बंधुजनसुखदायके तस्मिन् नृपतौ भावं न बबन्ध, यथा कुमुद्वती भानुमति भावं न बध्नातीति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—बन्धुरूपी कमलके खिलानेवाले प्रतापसे, शत्रुरूपी कीचके सुखानेवालेमें उस उत्तम सुकुमारीने कुमुदिनीकी समान सूर्यमें चित्त न लगाया ॥ ३६ ॥

बबन्ध=बन्ध+लिट्। बध्नाति। अबध्नात्। अभान्त्सीत्। अबान्धाम्। क०बध्यते। सनि बिबन्त्सति। बन्धनीयम्, बन्धनम्। बद्धः। बन्धुम्। बन्धव्यम्। आबध्य। बन्धन्। बध्यामानः।

तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम् ॥
विधाय सृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा ॥ ३७ ॥

अन्वयः। सुनन्दा तामरसांतराभां गुणैः अनूनां विधातुः ललितां सृष्टिं सुदतीं तां (भोज्याम्) अनूपराजस्य अग्रतः विधाय भूयः जगाद ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । सुनन्दया तामरसान्तराभा गुणैः अनूना विधातुः ललिता सृष्टिः सुदती सा अनूपराजस्य अग्रतः विधाय भूयः जगदे ॥ ३७ ॥

सुनन्दा कमलोदरतुल्यकान्तिं गुणैरधिकां ब्रह्मणः मनोहरां रचनां सुदतीं ताम् इन्दुमतीम् अनूपराजस्य समीपे नीत्वा भूयः उवाचेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—सुनन्दा, कमलकी समान कान्तिवाली गुणोंसे पूर्ण विधाताकी सुन्दर सृष्टिरूप, सुन्दर दाँतोंवाली इन्दुमतिको अनूपराजाके आगे ले जाकर फिर बोली ॥३७॥

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः ॥
अनन्यसाधरणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । किल संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः अष्टादशद्वीपनिखातयूपः अनन्यसाधारणराजशब्दः कार्तवीर्यः योगी बभूव ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । किल संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुना अष्टादशद्वीपनिखातयूपेन अनन्यसाधारणराजशब्देन कार्तवीर्येण योगिना बभूवे ॥ ३८ ॥

पूर्वकाले युद्धे प्राप्तसहस्रभुजः अष्टादशद्वीपेषु स्थापितयज्ञयूपः प्रजारञ्जनाल्लब्धानन्यसाधारणराजशब्दः ब्रह्मवेत्ता कश्चित्कार्तवीर्यो नाम राजा बभूवेति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—संग्राममें सहस्र भुजा प्राप्त होनेवाला अठारह द्वीपोंमें यज्ञस्तंभको गाडनेवाला औरके प्राप्त न होने योग्य राज शब्द लेनेवाला कार्तवीर्य नाम योगी हुआ ॥ ३८ ॥

योगी=युज+घिनुण् । "आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन । सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥"

अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात् ॥
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ॥३९॥

अन्वयः । अकार्यचिन्तासमकालम् एव चापधरः (सन्) पुरस्तात् प्रादुर्भवन् (सन्) यः विनेता (कार्त्तवीर्यः) प्रजानाम् अन्तःशरीरेषु अपि विनयं प्रत्यादिदेश ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । चापधरेण (सता) प्रादुर्भवता (सता) येन विनेत्रा (कार्तवीर्येण) विनयः प्रत्यादिदिशे ॥ ३९ ॥

तस्मिन् शासति यदा कदाचित् असत्कार्यस्य चिंतामकरोत् तत्क्षणमेव चापधरः स अग्रे प्रादुर्भूय प्रकृतीनाम् अन्तःकरणेषु अपि अपराधं निवारयामासेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०—बुरे कार्यकी चिन्ता करतेही धनुष धारणकर सामने प्रगट होते हुए इस न्याय करनेवालेने प्रजाओंके अंतःकरणसे भी अन्याय मिटा दिया ॥ ३९ ॥

ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण ॥
कारागृहे निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेणोषितमा प्रसादात् ॥४०॥

अन्वयः । ज्याबन्धनिष्पंदभुजेन विनिःश्वसद्वक्त्रपरंपरेण निर्जितवासवेन लंकेश्वरेण यस्य कारागृहे आ प्रसादात् उषितम् ॥ ४० ॥

वाच्यप० । यस्य आ प्रसादात् ज्याबन्धभुजः विनिःश्वसद्वक्त्रपरंपरः निर्जितवासवः लंकेश्वरः कारागृहे उषितः ॥ ४० ॥

यस्य भवने युद्धे निर्जितः ज्याबन्धनिष्पंदभुजः विनिःश्वसद्मुखपरंपरः इन्द्रजिद्रावणोपि प्रसादपर्यन्तं निवासमकरोदिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-प्रत्यञ्चासे भुजारुके, ऊर्ध्वश्वास लेते मुखोंकी पंक्तिवाले, इन्द्रके जीतनेवाले रावणने; जिसके बंदीघरमें उसके प्रसन्न होनेतक निवास किया ॥ ४० ॥

उषितम्=वस+क्त । वसति । उवास । अवसत् । अवात्सीत् । भावे उष्यते । वसनीयम् । उषितः । वस्तुम् । वास्तव्यः । वस्तव्यम् । उषित्वा । क्वसु ऊषिवान् । वसन् ।

तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी ॥
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः । आगमवृद्धसेवी प्रतीप इति एष भूपतिः तस्य अन्वये जातः येन संश्रयदोषरूढं श्रियः स्वभावलोला इति अयशः प्रमृष्टम् ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । आगमवृद्धसेविना प्रतीपेन अनेन भूपतिना जातेन भूयते, अयशः प्रमृष्टवान् ॥ ४१ ॥

तस्य कार्तवीर्यस्य कुले एष भूपतिः उत्पन्नः, अनेन व्यसनादिभिरुत्पन्नं 'स्वभावचंचला' इति श्रियः अयशः दूरीकृतम्, दोषहीनोयं कदापि लक्ष्म्या न त्यज्यते इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-उस कार्तवीर्यके वंशमें वेद और वृद्धोंका सेवी यह प्रतीप उत्पन्न हुआहै जिसने लक्ष्मीका स्वाभाविक चंचलपनका अपयश जो संगोंके दोषोंसे उत्पन्न होताहै दूर किया ॥ ४१ ॥

संश्रय=सम्+श्रि+अच् ।

आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ॥
धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलपत्रसाराम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः । यः आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य क्षत्रियकालरात्रिं रामपरश्वधस्य शितां धाराम् उत्पलपत्रसारां संभावयति ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । येन क्षत्रियकालरात्रिः शिता धारा उत्पलपत्रसारा सम्भाव्यते ॥ ४२ ॥

यः संग्रामे अग्निं सहायमवाप्य क्षत्रियसंहारकारिणीं जामदग्न्यपरशोः तीक्ष्णां धारां कमलदलतुल्यां मन्यते इति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-जो यह राजा संग्राममें अग्निकी सहायताको प्राप्त होकर क्षत्रियोंको कालरात्रिकी समान परशुरामके फरसेकी तीक्ष्णधारको कमलपत्रके समान तेजवाली मानता हुआ ॥ ४२ ॥

पत्त्र-पत्-ष्ट्रन् ।

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् ॥
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ॥४३॥

अन्वयः । यदि माहिष्मतीवप्रनितम्बकांचीं जलवेणिरम्यां रेवां प्रासादजालैः प्रेक्षितुं (ते) कामः अस्ति, (तर्हि) दीर्घबाहोः अस्य अंकलक्ष्मीः (त्वं) भव ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । (ते) कामेन भूयते, अंकलक्ष्म्या (त्वया) भूयताम् ॥ ४३ ॥

यदि माहिष्मतीसमीपे तस्या रशनाभूतां सलिलप्रवाहेण मनोरमां नर्मदां प्रासादगवाक्षैः अवलोकितुं ते इच्छास्ति तर्हि अस्य महाभुजस्य नृपस्य अङ्कलक्ष्मीर्भवेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–जो माहिष्मती नगरीके परकोटेरूपी नितम्बकी रेवारूपी मेखलाको जो जलके प्रवाहसे मनोहर है देखनेकी इच्छा है तो इस महाभुजावालेकी अंकलक्ष्मी हो ॥४३॥

तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव ॥
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ॥ ४४ ॥

अन्वयः । प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि सः क्षितीशः शरत्प्रमृष्टांबुधरोपरोधः पर्याप्तकलो शशी नलिन्याः इव, तस्याः रुचये न बभूव ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । प्रकामं प्रियदर्शनेनापि तेन क्षितीशेन शरत्प्रमृष्टांबुधरोपरोधेन पर्याप्तकलेन शशिना नलिन्याः इव, (रुचये) न बभूवे ॥ ४४ ॥

प्रियदर्शनोपि सः नृपः तस्य प्रीतये न बभूव, यथा मेघावरणरहिते शरत्कालेऽपि पूर्णचन्द्रः नलिन्याः प्रीतये न भवतीति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–देखनेमें अत्यन्त सुन्दर प्रियदर्शनवालाभी वह राजा, शरदके बादलोंका आवरण मिट जानेसे निर्मल कलवाला चन्द्रमा नलिनीको जैसे ऐसे उसकी रुचिको प्राप्त न हुआ ॥ ४४ ॥

पर्याप्त=परि+आप्+क्त ।

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ॥
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी ॥४५॥

अन्वयः । लोकान्तरगीतकीर्तिम् आचारशुद्धोभयवंशदीपं शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य शुद्धान्तरक्ष्या सा कुमारी (इति) जगदे ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । शुद्धान्तरक्षी तां कुमारीम् (इति) जगाद ॥ ४५ ॥

ततः सा सुनन्दा लोकान्तरप्राप्तकीर्तिम् आचारेण पवित्रं मातृपितृकुलप्रकाशकं शूरसेनदेशाधिपतिं सुषेणमवलोक्य उवाचेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–फिर स्वर्गादिमें गाई हुई कीर्तिवाले, आचारसे पवित्र, दोनों कुलके दीपक शूरसेनके राजा सुषेणको दिखलाकर द्वारपालिनीने कुमारीसे कहा ॥ ४५ ॥

नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण ॥
सिद्धाश्रमं शान्तमिवेत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ४६॥

अन्वयः । यज्वा एषः पार्थिवः नीपान्वयः (अस्ति) यं (पार्थिवम्) गुणैः परस्परेणाश्रित्य सत्त्वैः शान्तं सिद्धाश्रममेत्य इव, नैसर्गिकोऽपि विरोधः उत्ससृजे ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । यज्वना अनेन पार्थिवेन नीपान्वयेन (भूयते) यं गुणाः परस्परेणाश्रित्य, सत्त्वैः सिद्धाश्रममेत्य इव, नैसर्गिकमपि विरोधमुत्सृजन्ति ॥ ४६ ॥

यज्ञकर्ता एषः नृपः नीपवंशोत्पन्नः अस्ति, यं नृपम् आश्रित्य ज्ञानमौनादिभिः गुणैः स्वाभाविकोपि परस्परेण विरोधः त्यक्तः, यथा गजसिंहादयः जीवाः सिद्धाश्रमं प्राप्य स्वाभाविकं वैरभावं त्यजन्तीति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-विधिपूर्वक यज्ञकरनेवाला यह राजा नीपके वंशमें उत्पन्न हुआ है, जिसमें प्राप्त होकर गुणोंने परस्परका स्वाभाविक द्वेष भी; सिद्धोंके शान्तआश्रममें जाकर पशुपक्षियोंके समान त्याग दिया है ॥ ४६ ॥

यज्वा=यज+ङ्वनिप् ।

यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव संनिविष्टा ॥
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु ॥४७॥

अन्वयः । यस्य नयनाभिरामा कान्तिः हिमांशोः (कांतिः) इव, आत्मगेहे संनिविष्टा (अस्ति) अविषह्यं तेजस्तु हर्म्याग्रसंरूढतृणांकुरेषु रिपुमंदिरेषु (संनिविष्टम् अस्ति) ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । नयनाभिरामया कान्त्या हिमांशोः (कान्त्या) इव, सन्निविष्टया (भूयते) अविषह्येन तेजसा (संनिविष्टेन भूयते) ॥ ४७ ॥

यस्य नेत्रानन्ददायिका कान्तिः शशिनः कांतिरिव स्वमंदिरे प्रविष्टा, दुस्सहः प्रतापस्तु धनिकभवनप्रान्तेषु संरूढतृणांकुरेषु शत्रुमंदिरेषु सन्निविष्टमस्ति इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०-जिसका, चंद्रमाकी समान मनोहर प्रकाश अपने घरमें और दुःसह तेज आंगनोंमें घास जमेंवाले शत्रुओंके मंदिरोंमें प्रविष्ट हुआ है ॥ ४७ ॥

हर्म्य=हृ+यत्+मुट् च ।

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले ॥
कलिंदकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति ॥४८॥

अन्वयः । यस्य वारिविहारकाले अवरोधस्तनचंदनानां प्रक्षालनात् मथुरां गता अपि कलिन्दकन्या गंगोर्मिसंसक्तजला इव भाति ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । मथुरां गतया अपि कलिन्दकन्यया गंगोर्मिसंसक्तजलया इव भायते ॥ ४८ ॥

यस्य जलक्रीडासमये अन्तःपुरस्त्रीणां कुचेषु चंदनानां प्रक्षालनात् मथुरां गतापि यमुना गंगायाः तरंगैः संयुक्तजलेव शोभते इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–जिसके जलविहारके समय रनवासकी स्त्रियोंके स्तनोंका चन्दनजल धुलजानेसे यमुना मथुरामें भी गंगाके तरंगोंसे मिलेहुए जलकी समान शोभित होती है ॥ ४८ ॥

अवरोधः = अव+रुध+घञ् ।

त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः ॥
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ॥४९॥

अन्वयः। किल तार्क्ष्यात् त्रस्तेन यमुनौकसा कालियेन विसृष्टं वक्षःस्थलव्यापिरुचं मणिं दधानः यः (सुषेणः) सकौस्तुभं कृष्णं ह्रेपयति इव ॥ ४९ ॥

वाच्यप०। मणिं दधानेन येन (सुषेणेन) सकौस्तुभः कृष्णः ह्रेप्यते इव ॥ ४९ ॥

गरुडात् त्रस्तेन यमुनावासिना कालियेन नागेन त्यक्तं हृदयस्थलव्याप्तप्रभं मणिं दधानः यः सुषेणः कौस्तुभयुक्तं श्रीकृष्णं व्रीडयतीव इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०–जो गरुडसे भयभीत हुए यमुनामें रहनेवाले कालीनागकी दी हुई मणिको हृदयमें धारण करता हुआ कौस्तुभमणि पहरे हुए श्रीकृष्णको लज्जित करता है ॥ ४९ ॥

तार्क्ष्य=तार्क्ष+यञ् ।

संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ॥
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ॥ ५० ॥

अन्वयः। युवानममुं भर्तारं संभाव्य हे सुन्दरि ! मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये चैत्ररथात् अनूने वृंदावने (त्वया) यौवनश्रीः निर्विश्यताम् ॥ ५० ॥

वाच्यप०। (त्वम्) यौवनश्रियं निर्विश ॥ ५० ॥

हे सुन्दरि ! युवानम् अमुं पतिं मत्वा कोमलपुष्पशय्यायुक्ते कुबेरोद्यानात् श्रेष्ठे वृंदावने क्रीडां कुर्विति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०–हे सुन्दरि ! युवाअवस्थायुक्त इस सुषेण राजाको स्वामी मानकर कोमल पल्लवोंकी फूलोंकी सेजपर कुवेरके बगीचोंकी समान वृंदावनमें विहार कर ॥ ५० ॥

शय्या–शी+क्यप् ।

अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ॥
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥५१॥

अन्वयः । प्रावृषि कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु अंभःपृषतोक्षितानि शैलेयगंधीनि शिलातलानि (त्वं) अध्यास्य कलापिनां नृत्यं पश्य ॥ ५१ ॥

वाच्यप० (त्वया) नृत्यं दृश्यताम् ॥ ५१ ॥

वर्षासमये मनोहरासु गोवर्द्धनदरीषु जलविन्दुसिक्तानि शिलाजतुगंधयुक्तानि शिलातलानि अध्यास्य मयूराणां नृत्यमवलोकयेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—और वर्षाकालमें गोवर्द्धनकी मनोहर कंदराओंमें जलके कणोंसे छिड़की हुई शिलाजीतकी सुगंधिवाली शिलाओंमें बैठकर मोरोंके नृत्य देख ॥ ५१ ॥

पृषतः=पृष्+अतच् किच ।

नृपं तमावर्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री ॥
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव ॥ ५२ ॥

अन्वयः । आवर्त्तमनोज्ञनाभिः अन्यवधूः भवित्री सा, सागरगामिनी स्रोतोवहा मार्गवशात् उपेतं महीधरमिव तं नृपं व्यत्यगात् ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । आवर्त्तमनोज्ञनाभ्या अन्यवध्वा भवित्र्या तया, सागरगामिन्या स्रोतोवहया उपेतः महीधर इव, सः नृपः व्यत्यगायि ॥ ५२ ॥

अम्भसां भ्रम इव मनोज्ञनाभिः अन्यस्य भार्या भाविनी सा इन्दुमती तं नृपं तथा तत्याज यथा समुद्रगामिनी नदी मार्गवशात् प्राप्तं पर्वतं त्यजतीति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—भँवरकी समान नाभिवाली दूसरेकी वधू होनेवाली वह कुमारी समुद्रकी ओर गमन करती हुई नदी पर्वतकी समान उस राजाको त्यागती हुई ॥ ५२ ॥

आवर्त्त=आ+वृत+घञ् ।

अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम् ॥
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे ॥ ५३ ॥

अन्वयः । अथ भुजिष्या अंगदाश्लिष्टभुजं सादितशत्रुपक्षं हेमांगदं नाम कलिंगनाथम् आसेदुषीम् अबालेन्दुमुखीं बालां बभाषे ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । भुजिष्यया आसेदुषी अबालेन्दुमुखी बाला बभाषे ॥ ५३ ॥

अथ द्वारपालिनी सुनन्दा केयूरबद्धभुजं निर्जितशत्रुसमूहं हेमांगदं नाम कलिंगनाथं प्राप्य पूर्णचन्द्रमुखीम् इन्दुमतीमुवाचेति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—इसके उपरान्त दासी (सुनन्दा) बाजूबंद धारण की हुई भुजावाले शत्रुघाती हेमांगद नामक कलिङ्गनाथके निकट प्राप्त होकर पूर्णचन्द्रमाकी समान मुखवाली बालासे बोली ॥ ५३ ॥

बभाषे=भाष+लिट् । भाषते । अभाषिष्ट । कर्मणि भाष्यते । भाषणीयम् । भाषणम् । भाषा । भाषितुम् । भाषितव्यम् । संभाष्य । भाष्यम् । भाषमाणः । भाष्यमाणः ।

असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च ॥
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः ॥ ५४ ॥

अन्वयः। महेन्द्राद्रिसमानसारः असौ महेंद्रस्य महोदधेः च पतिः (अस्ति) यस्य यात्रासु महेन्द्रः क्षरत्सैन्यगजच्छलेन पुरः याति इव ॥ ५४ ॥

वाच्यप०। महेन्द्राद्रिसमानसारेणानेन महेन्द्रस्य महोदधेः च पतिना (भूयते) महेन्द्रेण क्षरत्सैन्यगजच्छलेन पुरः यायते इव ॥ ५४ ॥

महेन्द्रपर्वतस्य समानसारः असौ महेन्द्रस्य महोदधेश्च पतिः अस्ति यस्य गमने महेन्द्राद्रिः मदस्राविणां सैन्यगजानां छलेन अग्रे गच्छति इव इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०-महेन्द्रपर्वतकी समान बलवाला यह महेन्द्र और महोदधिका पति है, जिसकी यात्रामें महेन्द्रपर्वत ही मद टपकातेहुए हाथियोंके मिससे मानो आगे जाता है ॥ ५४ ॥

ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः ॥
रिपुश्रियां साञ्जनबाष्पसेके बन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे ॥ ५५ ॥

अन्वयः। सुभुजः चापभृतां पुरोगः यः वन्दीकृतानां रिपुश्रियां साञ्जनबाष्पसेके पद्धती इव, भुजायां द्वे ज्याघातरेखे विभर्ति ॥ ५५ ॥

वाच्यप०। सुभुजेन चापभृतां पुरोगेण येन रिपुश्रियां सांजनबाष्पसेके पद्धती इव भुजाभ्यां द्वे ज्याघातरेखे भ्रियेते ॥ ५५ ॥

सुबाहुः धनुर्धराग्रणीः यः नृपः निगृहीतानां शत्रुश्रियां कज्जलयुक्ताश्रुसिक्ते पद्धती इव द्वे ज्याघातानां रेखे बाहुभ्यां बिभर्तीति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०-यह सुन्दर भुजावाला धनुषधारियोंमें अग्रणी (है) जो पकडे हुए शत्रुओंकी लक्ष्मीके काजलसहित आंसुओंसे छिडके हुए दो मार्गकी समान दोनों भुजाओंमें दो ज्याघातकी रेखा धारण करता है ॥ ५५ ॥

पद्धती=पद्+हन+क्तिन् वा ङीप्।

यमात्मनः सद्मनि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ॥
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः। आत्मनः सद्मनि सुप्तं यं सन्निकृष्टः मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः प्रासादवातायनदृश्यवीचिः अर्णवः एव प्रबोधयति ॥ ५६ ॥

वाच्यप०। सुप्तः यः सन्निकृष्टेन मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्येण प्रासादवातायनदृश्यवीचिना अर्णवेन एव प्रबोध्यते ॥ ५६ ॥

निजमंदिरे सुप्तं यं नृपं निकटवर्ती अत एव प्रासादगवाक्षदृश्यवीचिः गम्भीरेण शब्देन विवर्जितं प्रहरान्तसूचकं वाद्यं वादयन् सागरः एव एनं प्रबोधयतीति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०—अपने मंदिरमें सोतेहुए जिसको समीप रहनेवाला गम्भीरध्वनिसे पहर पहरकी ध्वनिका मौन करनेवाला, महलके झरोंखोंसे दीखतीहुई तरंगोंवाला सागर ही जगानेवाला है ॥ ५६ ॥

तूर्य्यः=तूर+यत् ।

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ॥
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥ ५७ ॥

अन्वयः । अनेन सार्धं तालीवनमर्मरेषु अम्बुराशेः तीरेषु द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैः मरुद्भिः अपाकृतस्वेदलवा (सती—त्वम्) विहर ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । मरुद्भिः अपाकृतस्वेदलवया (सत्या-त्वया) विह्रियताम् ॥ ५७ ॥

तालीवनैः मर्मरेषु सागरस्य तीरेषु द्वीपान्तरेभ्यः प्राप्तलवंगकुसुमैः पवनैः प्रशमितप्रस्वेदलवा सती त्वम् अनेन सार्द्धं क्रीडां कुर्विति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०—इसके साथ तालीवनोंके मर्मरशब्दवाले सागरके किनारेमें द्वीपान्तरोंसे लौंगके फूल लानेवाली, वायुओंसे पसीनेके कण सुखाती हुई तू विहार कर ॥ ५७ ॥

प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम् ॥
तस्मादपावर्त्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् ॥ ५८ ॥

अन्वयः । आकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तया एवं प्रलोभिता अपि नीत्या दूरकृष्टा लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् (जनात्) इव तस्मात् अपावर्त्तत ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । आकृतिलोभनीयया विदर्भराजावरजया तया एवं प्रलोभितयापि नीत्या दूरकृष्टया लक्ष्म्या प्रतिकूलदैवात् इव तस्मात् अपावृत्यत ॥ ५८ ॥

रूपेण लोभनीया इन्दुमती सुनन्दया एवं प्रलोभितापि प्रतिकूलदैवात् पुरुषात् पुरुषार्थेन दूरमानीता लक्ष्मीः इव तस्मात् नृपान्निवृत्ता इति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०—मनोहररूपवाली विदर्भराजाकी छोटी बहन उस (दासी) के इस प्रकार लुभाने परभी नीतिद्वारा दूरसे लाई लक्ष्मी दैवके हत हुए पुरुषके समान उसको छोडकर चली गई ॥ ५८ ॥

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य ॥
इतश्चकोराक्षि ! विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः। अथ दौवारिकी देवसरूपम् उरगाख्यस्य पुरस्य नाथम् एत्य, चकोराक्षि! इतः (त्वम्) विलोकय इति पूर्वानुशिष्टां भोज्यां निजगाद ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । अथ दौवारिक्या हे चकोराक्षि! इतः (त्वया) विलोक्यताम् इति पूर्वानुशिष्टा भोज्या निजगदे ॥ ५९ ॥

अथ सुनन्दा देवस्वरूपं नागपुरस्याधिपतिं प्राप्य हे चकोराक्षि! इतो विलोकयेति पूर्वमुक्तामिन्दुमतीमुवाचेति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—इसके उपरान्त द्वारपालिनी देवताके समान रूपवान् नागपुरके स्वामीके निकट प्राप्त हो हे चकोरसे नेत्रोंवाली! "इधर देख" इस प्रकार पहले कहकर इन्दुमतिसे बोली ॥ ५९ ॥

शिष्टाम्=शास+क्त।

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ॥
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥ ६० ॥

अन्वयः। अंसार्पितलम्बहारः हरिचन्दनेन क्लृप्तांगरागः अयं पांड्यः बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गारः अद्रिराजः इव आभाति ॥ ६० ॥

वाच्यप० । अंसार्पितलम्बहारेण हरिचन्दनेन क्लृप्तांगरागेण अनेन पांड्येन बालातपरक्तसानुना सनिर्झरोद्गारेण अद्रिराजेन इव आभायते ॥ ६० ॥

अयं पाण्ड्यः राजा अस्ति, यस्य अंसे हारः लम्बायमानो भवति, शरीरे हरिचन्दनं लिप्तमस्ति, असौ बालातपारुणसानुः सनिर्झरप्रवाहयुक्तः पर्वतराज इव विभाति इति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—कंधेपर हार लटकाये, हरिचन्दनसे अंगरागयुक्त यह पांड्देशका राजा प्रातःकालकी धूपसे लाल शिखरयुक्त, झरने झरनेवाले पर्वतराजके समान शोभित होता है ॥ ६० ॥

उद्गार=उद्+गॄ+घञ्।

विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः ॥
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्त्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः ॥ ६१ ॥

अन्वयः। विंध्यस्य महाद्रेः संस्तम्भयिता निःशेषपीतोज्झितसिंधुराजः अगस्त्यः अश्वमेधावभृथार्द्रमूर्त्तेः यस्य (पांड्यस्य) प्रीत्या सौस्नातिकः भवति ॥ ६१ ॥

वाच्यपा० । महाद्रेः संस्तंभयित्रा निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजेन अगस्त्येन यस्य प्रीत्या सौस्नातिकेन भूयते ॥ ६१ ॥

यदासौ नृपः यज्ञान्तस्नानं करोति, तदा विन्ध्याचलस्य निवारयिता सम्पूर्णसागरपानकर्ता अगस्त्यः प्रीत्या सुस्नातपृच्छको भवतीति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—महापर्वतविंध्याचलके थम्हानेवाले सम्पूर्ण समुद्रशोषनेवाले अगस्त्यऋषि अश्वमेधके अन्त स्नानपर भीजीमूर्तिवाले इस राजासे प्रसन्नतापूर्वक कुशल पूछनेवाले होतेहैं ॥ ६१ ॥

अवभृथ=अव+भृ+कथन् ।

अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः ॥
पुरा जनस्थानविमर्दशंकी संधाय लंकाधिपतिः प्रतस्थे ॥ ६२ ॥

अन्वयः । जनस्थानविमर्दशंकी दृप्तः लङ्काधिपतिः हरात् दुरापम् अस्त्रम् आप्तवता येन (सह) पुरा संधाय इन्द्रलोकावजयाय प्रतस्थे ॥ ६२ ॥

वाच्यपरि० । जनस्थानविमर्दशंकिना दृप्तेन लंकाधिपतिना प्रतस्थे ॥ ६२ ॥

यदा, मानी दशकंधरः इन्द्रलोकं युद्धाय जगाम तदा जनस्थानविध्वंसशंकया अनेन पाण्ड्येन सह सन्धि कृत्वा प्रतस्थे, अनेन हरात् दुर्लभं ब्रह्मशिरोनामकमस्त्रं प्राप्तमिति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०—जनस्थानके नाशकी शंकासे अभिमानी रावण भी शिवजीसे कठिन अस्त्र पानेवाले इस राजाके साथ संधिकर इन्द्रलोककी विजयको गया था (अर्थात् यह रावणसे भी बली है) ॥ ६२ ॥

दृप्तः—दृप्+क्तः ।

अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी ॥
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः ॥६३॥

अन्वयः । महाकुलीनेन अनेन पाणौ विधिवत् गृहीते (सति) गुर्वी मही इव (त्वम्) रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः दक्षिणस्याः दिशः सपत्नी भव ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । गुर्व्या मह्या इव (त्वया) सपत्न्या भूयताम् ॥ ६३ ॥

महाकुलसंभूतेन अनेन विधिवत् ते पाणौ गृहीते सति गुर्वी धरा इव त्वं रत्नैरनुव्याप्तसागरकाञ्च्याः दक्षिणस्याः दिशः सपत्नी भव इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०—महाकुलसम्भूत इस राजाके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण होनेसे तूं अमोल पृथ्वीकी समान रत्नोंसे भरे सागरकी कौंधनीवाली दक्षिणदिशाकी सौत हो ॥ ६३ ॥

गुर्वी=गुरु+ङीप् ।

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिंगितचन्दनासु ॥
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥ ६४ ॥

अन्वयः। ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु एलालतालिंगितचन्दनासु तमालपत्रास्तरणासु मलयस्थलीषु शश्वत् रन्तुं (त्वम्) प्रसीद ॥ ६४ ॥

वाच्यप०। मलयस्थलीषु शश्वत् रन्तुं (त्वया) प्रसद्यताम् ॥ ६४ ॥

नागवल्लीदलैः परिणद्धपूगासु एलावल्लरीभिरालिंगितचन्दनासु तमालदलास्तरणासु मलयाचलस्थलीषु निरन्तरं रन्तुं प्रसीदेति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—पानकी लताओंसे ढके हुए सुपारीके वृक्षोंवाली तथा इलायचियोंकी बेलोंसे लिपटे चंदनवाली और तमालपत्तोंके बिछौनेवाली मलयाचलपर्वतकी पृथिवियोंमें निरन्तर विहार करनेको प्रसन्न हो ॥ ६४ ॥

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः ॥
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ॥ ६५ ॥

अन्वयः। असौ नृपः इन्दीवरश्यामतनुः (अस्ति) त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः (असि) तडित्तोयदयोः (योगः) इव, वां योगः अन्योन्यशोभापरिवृद्धये अस्तु ॥ ६५ ॥

वाच्यप०। अनेन नृपेण इन्दीवरश्यामतनुना (भूयते) त्वया रोचनागौरशरीरयष्ट्या (भूयते) तडित्तोयदयोः (योगेन) इव, वां योगेन भूयताम् ॥ ६५ ॥

असौ नृपः नीलोत्पलश्यामाङ्गः त्वं गोरोचनेव गौराङ्गी, विद्युन्मेघयोः संयोग इव वां संयोगः परस्परशोभापरिपुष्टये भवत्विति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—यह राजा नीलकमलके समान शरीरवाला है, और तू गोरोचनके समान गोरे शरीरवाली है, बादल और बिजलीके योगकी समान तुम दोनोंका योग परस्पर एक दूसरेकी शोभा बढानेवाला हो ॥ ६५ ॥

रोचना=रुच+ल्युट्+अजा०टाप्।

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ॥
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ॥ ६६ ॥

अन्वयः। विदर्भाधिपतेः स्वसुः चेतसि तदीयः उपदेशः दिवाकरादर्शनबद्धकोशे अरविन्दे नक्षत्रनाथांशुः इव, अन्तरं न लेभे ॥ ६६ ॥

वाच्यप०। विदर्भाधिपतेः स्वसुः चेतसि तदीयेन उपदेशेन अरविन्दे नक्षत्रनाथांशुना इव अन्तरं न लेभे ॥ ६६ ॥

यथा सूर्यस्य अदर्शनेन बद्धकोशे कमले चन्द्रमोंशुः अन्तरं न लभते तथैव इन्दुमत्याः मनसि सुनंदाया उपदेशः अवकाशं न लेभे इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०—विदर्भदेशके राजाकी बहनके चित्तमें उसका उपदेश सूर्यके दर्शन न करनेसे मूंदी हुई पंखडीवाले कमलमें चन्द्रमाकी किरणोंकी समान स्थान न पाता हुआ ॥ ६६ ॥

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यंयं व्यतीयाय पतिंवरा सा ॥
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं सस भूमिपालः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । पतिंवरा सा, रात्रौ संचारिणी दीपशिखा इव, यंयं व्यतीयाय, सः सः भूमिपालः नरेन्द्रमार्गाट्ट इव, विवर्णभावं प्रपेदे ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । पतिंवरया तया संचारिण्या दीपशिखया इव, यः यः व्यतीये तेनतेन भूपालेन नरेन्द्रमार्गाट्टेन इव विवर्णभावः प्रपेदे ॥ ६७ ॥

रात्रौ जंगमा दीपशिखा इव सा पतिंवरा इन्दुमती यंयं नृपम् अतीत्य गता सस नृपः राजमार्गे अट्टाल्यगृहमिव विच्छायत्वं प्राप्तवानिति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०-पतिके वरनेकी इच्छा करनेवाली वह रात्रिमें फिरती हुई दीपकी शिखाके समान जिस जिसको त्यागती हुई, वही वही राजा वडे राजमार्गके अट्टकी समान मलीन भावको प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अट्टः=अट्ट-वञ् ।

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत् ॥
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद ॥ ६८ ॥

अन्वयः । तस्याम् उपस्थितायाम् (सत्यां) रघोः सूनुः मां वृणीत, (वा) न, इति समाकुलः अभूत, वामेतरः बाहुः अस्य संशयं केयूरबंधोच्छ्वासितैः नुनोद ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । रघोः सूनुना मां वृणीत न वा इति समाकुलेनाभावि, वामेतरेण बाहुना संशयो नुनुदे ॥ ६८ ॥

यदा सा इन्दुमती अजस्य समीपे उपगता तदा स रघुपुत्रः असौ मां वृणीत न वा इति संशयितोऽभूत, अथ अस्य दक्षिणभुजः अङ्गदबन्धस्थाने स्फुरणं कृत्वा संशयं चिच्छेद इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-उसके उपस्थित होनेपर रघुका पुत्र 'यह मुझे वरेगी या नहीं' ऐसा विचार कर व्याकुल हुआ (तब) दक्षिण भुजाने इसके संदेहको भुजबंदके फडकनेसे दूर किया ॥ ६८ ॥

उच्छ्वसितैः=उद्+श्वस्+क्त ।

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्ततान्योपगमात्कुमारी ॥
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदालिः ॥६९॥

अन्वयः । कुमारी सर्वावयवानवद्यं तं प्राप्य, अन्योपगमात् व्यावर्तत, हि षट्पदालिः प्रफुल्लं सहकारम् एत्य, वृक्षान्तरं न कांक्षति ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । कुमार्या तं प्राप्य, अन्योपगमात् व्यावृत्यते, हि षट्पदाल्या सहकारम् एत्य, वृक्षान्तरं न कांक्ष्यते ॥ ६९ ॥

सा इन्दुमती सम्पूर्णांगेषु दोषशून्यं तम् अजं प्राप्य राजान्तरोपगमात् निवृत्ता, यतः भृंगपंक्तिः प्रफुल्लम् आम्रवृक्षमुपेत्य वृक्षान्तरं गन्तुं न इच्छति ॥ ६९ ॥

भा०–कुमारी सम्पूर्णदोषरहित अङ्गवाले उस (अज) के निकट जाकर दूसरेके पास जानेसे निवट गई, कारण कि भोरोंका समूह फूले हुए आमके पेडके निकट जाकर दूसरे वृक्षकी इच्छा नहीं करता ॥ ६९ ॥

सहकारः=सह=कृ+अण् ।

तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य ॥
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा ॥ ७० ॥

अन्वयः । अनुक्रमज्ञा सुनन्दा इन्दुप्रभाम् इन्दुमतीं तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्तिम् अवेक्ष्य, सविस्तरम् इदं वाक्यं वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ७० ॥

वाच्यप० । अनुक्रमज्ञया सुनन्दया प्रचक्रमे ॥ ७० ॥

वाक्यविन्यासाभिज्ञा सुनन्दा चन्द्रप्रभाम् इन्दुमतीं तस्मिन्नजे संक्रामितचित्तवृत्तिम् अवलोक्य सविस्तरमिदं वचनं जगादेति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०–वाक्यके पूर्वापरकी जाननेवाली सुनन्दा चन्द्रमाकी समान कांतिवाली इन्दुमतीको उसमें चित्तवृत्ति लगाये हुए देखकर विस्तारपूर्वक यह वाक्य कहने लगी७०॥

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् ॥
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः॥७१॥

अन्वयः । इक्ष्वाकुवंश्यः नृपाणां ककुदम् आहितलक्षणः ककुत्स्थ इति अभूत्, यतः उन्नतेच्छाः उत्तरकोशलेन्द्राः श्लाघ्यं काकुत्स्थशब्दं दधति ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । इक्ष्वाकुवंश्येन नृपाणां ककुदेन आहितलक्षणेन ककुत्स्थ इति अभावि, यतः उन्नतेच्छैः उत्तरकोशलेन्द्रैः श्लाघ्यः काकुत्स्थशब्दः धीयते ॥ ७१ ॥

महीपतीनां श्रेष्ठः राजलक्षणयुक्तः इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः ककुत्स्थनामा कश्चिन्नृपः अभूत्, यतः महाशयाः उत्तरकोशलभूपाः प्रशंसनीयं काकुत्स्थशब्दं बिभ्रतीति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०–इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजोंमें श्रेष्ठ सम्पूर्ण गुणयुक्त एक ककुत्स्थ राजा हुआ जिससे उन्नतिकी इच्छा करनेवाले उत्तरकोशलके राजा श्लाघनीय " काकुत्स्थ " पदवीको रखते हैं ॥ ७१ ॥

ककुदं=कं सुखं कौति कुशब्दे क्विप् तुक् च तस्य दः ।

महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः ॥
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । यः प्राप्तपिनाकिलीलः महोक्षरूपं महेन्द्रम् आस्थाय, संयति बाणैः असुरांगनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः चकार ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । प्राप्तपिनाकिलीलेन येन महेन्द्रम् आस्थाय, बाणैः असुरांगनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः चक्रे ॥ ७२ ॥

यः ककुत्स्थः संग्रामे वृषभरूपधारिणं शक्रमारुह्य पिनाकधारिणः शिवस्य लीलां स्वीकृत्य शरैः असुरस्त्रीणां कपोलान् पत्ररचनारहितांश्चकारेति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-जो महादेवकी लीलाको प्राप्त हो बैलरूपी इन्द्रके ऊपर चढकर संग्राममें बाणोंसे राक्षसोंकी स्त्रियोंके कपोलोंको सिंगार रहित करता हुआ ॥ ७२ ॥

(एक इक्ष्वाकुवंशमें पुरंजय नाम राजा था जब देव और दैत्योंमें संग्राम हुआ तब इन्द्रने आकर उससे कहा तुम हमारी सहायता करो, राजाने कहा मेरा वेग संग्राममें कोई धारण नहीं करसक्ता, यदि तुम बैल बनो तो मैं चढकर शत्रुओंका संहार करूं, इन्द्रके स्वीकार करनेपर वैसाही हुआ, उस दिनसे इक्ष्वाकुवंशी काकुत्स्थ कहाते हैं.)

संयति=सम्+यम्+क्विप् तुक् च ।

ऐरावतास्फालनविश्लथं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन ॥
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ ॥ ७३ ॥

अन्वयः । यः ऐरावतास्फालनविश्लथम् अंगदम् अंगदेन संघट्टयन् (सन्) स्वाम् अग्र्यां मूर्तिम् उपेयुषः अपि गोत्रभिदः अर्धासनम् अधितष्ठौ ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । येन ऐरावतास्फालनविश्लथम् अंगदम् अंगदेन संघट्टयता (सता) अर्धासनमधितष्ठे ॥ ७३ ॥

यः ककुत्स्थः ऐरावतस्य ताडनेन शिथिलं शक्रस्य भुजबन्धनं निजांगदेन संघर्षयन् स्वां श्रेष्ठां मूर्तिं प्राप्तस्यापि शक्रस्य अर्द्धासनम् अधिष्ठितवानिति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-जो ऐरावतके थपकोरलेसे ढीले भुजबन्दको अपने बाजूबंदसे रगड़ता हुआ फिर अपने निजरूपको प्राप्त हुए पर्वतोंके पंख काटनेवाले इन्द्रके आधे आसनपर स्थित हुआ ॥ ७३ ॥

आस्फालन=आ+स्फाल+णिच्+ल्युट् ।

जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः ॥
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः ॥ ७४ ॥

अन्वयः । किल तस्य कुले उरुकीर्तिः कुलप्रदीपः दिलीपः नृपतिः जातः, यः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये एकोनशतक्रतुत्वे अतिष्ठत् ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । उरुकीर्तिना कुलप्रदीपेन दिलीपेन नृपतिना जातेन येन एकोनशतक्रतुत्वे अस्थीयत ॥ ७४ ॥

तस्य ककुत्स्थस्य वंशे महाकीर्तिसंपन्नः वंशप्रवर्तकः दिलीपः बभूव यः इन्द्रप्रीतये शततमं यज्ञं न चकारेति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०-प्रसिद्ध है कि उसीके कीर्तिमान् कुलमें कुलदीपक दिलीपराजा हुआ, जो इन्द्रकी ईर्षा दूर करनेके निमित्त निन्यानवें ही यज्ञ करके स्थित हुआ ॥ ७४ ॥

यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम् ॥
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ॥७५॥

अन्वयः । यस्मिन् महीं शासति (सति) विहारार्धपथे निद्रां गतानां वाणिनीनाम् अंशुकानि वातः अपि न अस्रंसयत्, आहरणाय हस्तं कः लम्बयेत् ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । वाणिनीनाम् अंशुकानि वातेनापि न अस्रंस्यन्त केन हस्तः लंब्येत ॥ ७५ ॥

यस्मिन् दिलीपे शासति सति क्रीडास्थानस्यार्धमार्गे प्रसुप्तानां वेश्यानां वस्त्राणि पवनः अपि नाकंपयत्, अपहर्तुं को भुजं लम्बयेदिति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-जिसके राज्यशासनमें विहारस्थलके आधे मार्गमें सोती हुई वेश्याओंके वस्त्रोंको पवनभी न उडा सक्तीथी, हरण करनेके लिये हाथको तो कौन फैला सके ॥ ७५ ॥

अंशुकानि=अंशु+क ।

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता ॥
चतुर्दिगावर्जितसंभृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । विश्वजितः महाक्रतोः प्रयोक्ता तस्य पुत्रः रघुः पदं प्रशास्ति यः चतुर्दिगावर्जितसम्भृतां विभूतिं मृत्पात्रशेषाम् अकरोत् ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । महाक्रतोः प्रयोक्त्रा तस्य पुत्रेण रघुणा पदं प्रशिष्यते येन चतुर्दिगावर्जितसम्भृता विभूतिः मृत्पात्रशेषा अक्रियत ॥ ७६ ॥

जगज्जयी अश्वमेधयज्ञानामनुष्टाता तस्य दिलीपस्य सुतः रघुः पदं पालयति, यः रघुः चतुर्दिग्भ्यः धनमाहृत्य सर्वं ब्राह्मणेभ्यो दत्तवानिति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०-विश्वजित् महायज्ञका करनेवाला तिसका पुत्र रघु पिताके सिंहासनको पालताहै जिसने चारों दिशाओंसे लाये हुए धनको मिट्टीका पात्र बचाहुआ किया अर्थात् सब दान करादिया ॥ ७६ ॥

विभूतिम्=वि+भू+क्तिन् ।

आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम् ॥
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् ॥७७॥

अन्वयः । अद्रीन् आरूढम्, उदधीन् वितीर्णम्, भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्, ऊर्ध्वं गतम्, यस्य अनुबन्धि च यशः इयत्तया अलं न (अस्ति) ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । अद्रीन् आरूढेन उदधीन् वितीर्णेन वसतिं प्रविष्टेन ऊर्ध्वं गतेन यस्य अनुबंधिना च शयसा इयत्तया अलं न (भूयते) ॥ ७७ ॥

पर्वतानारूढं सागरान्वितीर्णं सर्पाणां स्थाने प्रविष्टम् एवं ब्रह्माण्डव्यापकं स्वर्गादिपर्य्यन्तं प्राप्तं यस्य कालत्रयव्यापकं यशः मातुं न शक्यमिति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०-समुद्रोंके पार गया हुआ, पर्वतोंपर चढाहुआ, सर्पोंके स्थान (पाताल) में प्रविष्ट, और आकाशमें प्राप्त हुआ तीनोंकालमें नहीं टूटा हुआ जिसका यश परिमाण नहीं किया जाता कि यह इतना है ॥ ७७ ॥

अनुबन्धि=अनु+बन्ध+घञ् ।

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः ॥
गुर्वीं धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति ॥ ७८ ॥

अन्वयः । असौ कुमारः अजः त्रिविष्टपस्य पतिं जयन्तः इव, तम् अनु जातः दम्यः यः भुवनस्य गुर्वीं धुरं धुर्येण पित्रा सदृशं बिभर्ति ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । अनेन कुमारेणाजेन त्रिविष्टपस्य पतिं जयन्तेन इव, तमनुजातम् दम्येन येन भुवनस्य गुर्वी धूः पित्रा सदृशं भ्रियते ॥ ७८ ॥

यथा इन्द्राज्जयंतः जातः तथा असौ कुमारः तस्माद्रघोरुत्पन्नः यः शिक्षितः जगतः गुरुभारं धुरं धुर्येण पित्रा तुल्यं बिभर्तीति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०-यह कुमार अज स्वर्गके स्वामी (इन्द्र) से जयन्तके समान उससे उत्पन्न हुआहै जो शिक्षित हो संसारके भारी भारको धुरधारी पिताके समान धारण करताहै ॥ ७८ ॥

दम्यः=दम्+यत् क्यप् वा ।

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ॥
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥ ७९ ॥

अन्वयः । कुलेन कान्त्या नवेन वयसा विनयप्रधानैः तैः तैः गुणैः त्वम् आत्मनः तुल्यम् अमुं वृणीष्व, (इति) रत्नं कांचनेन (सह) समागच्छतु ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । त्वया तुल्योऽसौ व्रियताम्, रत्नेन समागम्यताम् ॥ ७९ ॥

हे सुन्दरि ! त्वं वंशेन लावण्येन यौवनेन प्रणयमुख्यैः तैस्तैः श्रुतशीलादिभिः गुणैः स्वानुरूपममुं रघुकुमारं वृणीष्व रत्नं सुवर्णेन संगच्छतामिति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—कुल कान्ति नवीन अवस्था और जिनमें नम्रता प्रधानहै ऐसे उन उन गुणों-करके तू अपने तुल्य इसको वर, रत्न सोने से मिलै ॥ ७९ ॥

काञ्चनेन=काचिल्युट् ।

ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या ॥
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ॥ ८० ॥

अन्वयः । ततः सुनन्दावचनावसाने नरेन्द्रकन्या लज्जां तनूकृत्य प्रसादामलया दृष्ट्या संवरण-स्रजा इव कुमारं प्रत्यग्रहीत् ॥ ८० ॥

वाच्यप० । नरेन्द्रकन्यया लज्जां तनूकृत्य कुमारः प्रत्यग्राहि ॥ ८० ॥

अथ सुनन्दावाक्यावसाने इन्दुमती ह्रियं लघूकृत्य मनःप्रसादेन निर्मलया दृष्ट्या स्वयंवरार्थ-मालयेव तमजं स्वीचकारेति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—सुनन्दाके वचनके उपरान्त नरेन्द्रकन्याने लाजको थोडीकर प्रसन्नताकी उज्ज्वल दृष्टिसे स्वयंवरकी मालाकी समान कुमारको ग्रहण किया ॥ ८० ॥

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम् ॥
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्याः॥८१॥

अन्वयः । सा तस्मिन् यूनि अभिलाषबंधं शालीनतया वक्तु न शशाक, (किं च) अरालकेश्याः सः रोमांचलक्ष्येण गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामत् ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । तया तस्मिन् यूनि अभिलाषबंधः शालीनतया वक्तुं न शेके, तेन रोमांचलक्ष्येण गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रम्यत ॥ ८१ ॥

सा इन्दुमती तस्मिन्नजे प्रीतिग्रन्थिं धृष्टतया कथितुं न शशाक, किन्तु कुंचितकेश्याः सोऽनुराग-बंधः पुलकव्याजेन शरीरयष्टिं भित्त्वा बहिर्बभूवेति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—वह उस युवामें प्रेमग्रंथिको धृष्टतासे कहनेकेसमर्थ न हुई, परन्तु वह प्रेमकी गांठ रोमांचके बहानेसे घुंघराले बालोंवालीके शरीरको भेदकर बाहर निकल आई ॥ ८१ ॥

गात्र=गा+ष्ट्रन् । यष्टि=यज+क्तिन् ।

तथा गतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे ॥
आर्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श ॥ ८२ ॥

अन्वयः । सख्यां तथागतायां (सत्यां) सखी वेत्रभृत् (सुनन्दा) हे आर्ये ! (वयम्-) अन्यतः व्रजामः, इति परिहासपूर्वं आबभाषे, अथ वधूः एनाम् असूयाकुटिलं ददर्श ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । सख्या वेत्रभृता (सुनन्दया) आर्ये (अस्माभिः) अन्यतः व्रज्यते इति परिहासपूर्वम् आबभाषे, अथ वध्वा एषा असूयाकुटिलं ददृशे ॥ ८२ ॥

इन्दुमतीं तथाभूतामवलोक्य परिहासपूर्वकं सुनन्दा कथयामास आर्ये अन्यं प्रति गच्छामः किम्, अथ इन्दुमती एनां क्रोधेन क्रूरं ददर्शेति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०–इस दशामें प्राप्त हुई उस सखीको वेत्र रखनेवाली सखीने हे आर्य्ये और के समीप चलें (क्या) इसप्रकार हँसीसे कहा तब वधूने क्रोधसे उसको तिरछी दृष्टि देखा ॥ ८२ ॥

कुटिलम्=कुट+इलच् ।

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः ॥
आसञ्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः । करभोपमोरूः सा चूर्णगौरं गुणं मूर्तम् अनुरागम् इव धात्रीकराभ्यां रघुनन्दनस्य कण्ठ यथाप्रदेशम् आसञ्जयामास ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । करभोपमोर्वा तया आसंजयांचक्रे ॥ ८३ ॥

करभोपमोरूः सा इन्दुमती मंगलचूर्णेन रक्तगुणमालां मूर्तिधरं प्रेमाणम् इव सुनंदायाः हस्ताभ्याम् अजस्य गलप्रदेशं यथास्थानं सक्तं कारयामासेति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०–करभ (मणिवंधसे लेकर कनिष्ठातक हस्तभाग) के सदृश जंघावाली, वह मंगलके चूर्णसे श्वेत डोरेवाली मालाको मूर्त्तिमान् अनुरागकी समान धायके हाथसे रघुनन्दनके कण्ठमें जहां उचित थी तहां पहरावती हुई ॥ ८३ ॥

चूर्ण=चूर्ण+घञ् ।

तया स्रजा मंगलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया सः ॥
अमंस्त कण्ठार्पितवाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः ॥ ८४ ॥

अन्वयः । वरेण्यः सः मंगलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थलम्बया तया स्रजा विदर्भराजावरजां कण्ठार्पितवाहुपाशाम् अमंस्त ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । वरेण्येन तेन स्रजा विदर्भराजावरजा कण्ठार्पितवाहुपाशा अमानि ॥ ८४ ॥

श्रेष्ठः सोऽजः मधूकादिपुष्पनिर्मितया विशालवक्षःस्थले लम्बमानया मालया इन्दुमतीं कंठार्पितभुजपाशां मेने इति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०–श्रेष्ठ उस (अज) ने मंगलपुष्पोंसे वनी चौडी छातीके स्थलमें लम्बायमान उस मालासे विदर्भराजाकी बहन (इन्दुमती) का गलेमें अर्पण किया भुजाओंरूपी पाश माना ॥ ८४ ॥

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा ॥
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः ॥ ८५ ॥

अन्वयः। तत्र समगुणयोगप्रीतयः पौराः इयं कौमुदी मेघमुक्तं शशिनम् उपगता, जह्नुकन्या अनुरूपं जलनिधिम् अवतीर्णा, इति नृपाणां श्रवणकटु एकवाक्यं विवव्रुः ॥ ८५ ॥

वाच्यप०। तत्र समगुणयोगप्रीतिभिः पौरैः अनया कौमुद्या मेघमुक्तः शशी उपगतः, जह्नुकन्यया अनुरूपः जलनिधिः अवतीर्णः, इति विवव्रे ॥ ८५ ॥

तस्मिन्नवसरे नगरनिवासिनो जनाः इन्दुमतीरघुकुमारयोगेन प्रसन्नाः महीपतीनां श्रवणकटु वचनम् एवं अब्रुवन्, इयम् अजसंगतेन्दुमती मेघावरणरहितं चन्द्रमसं कौमुदीव उपगता, स्वसदृशं सागरं गंगा इव संगता इति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०-तहां समानगुणवालोंके मिलनेसे प्रसन्न हुए पुरवासियोंने यह चाँदनी मेघसे छूटेहुए चंद्रमाको प्राप्त हुई है, वा गंगा अपने समान समुद्रको प्राप्त हुई है इस प्रकार राजोंके कानोंको दुस्सह यह एक वाक्य कहे ॥ ८५ ॥

शशिनम्=शशोऽस्त्यस्य इनिः।

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम् ॥
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ॥ ८६ ॥

अन्वयः। एकतः प्रमुदितवरपक्षः अन्यतः वितानं तत् क्षितिपतिमंडलम् उषसि प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रं सर इव आसीत् ॥ ८६ ॥

वाच्यप०। एकतः प्रमुदितेन वरपक्षेन अन्यतः वितानेन तत् क्षितिपतिमंडलेन उषसि प्रफुल्लेन पद्मेन कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रेण सरसा इव अभूयत ॥ ८६ ॥

एकतः अजस्य पक्षः प्रसन्नोऽभूत् अन्यत्र भग्नाशं नृपमण्डलम्, प्रातःकाले विकसितकमलं कुमुदवनेन प्राप्तनिमीलनं सर इव आसीदिति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०-एक ओरसे प्रसन्न वरके पक्षवाला, दूसरी ओरसे उदास वह राजमंडल प्रातःकालमें फूले कमल और मुँदती कुमुदिनियोंवाले सरोवरकी समान हुआ ॥ ८६ ॥

वितानं=वि+तन्=घञ्।

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसाद-
मिश्रविरचितभावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते
षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ।

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ॥
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ विदर्भनाथः सदृशेनोपयंत्रा युक्ताम् (अत एव) साक्षात् स्कंदेन (युक्तां) देवसेनामिव स्वसारमादाय पुरप्रवेशाभिमुखः बभूव ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ विदर्भनाथेन सदृशेन उपयंत्रा युक्तां साक्षात् स्कदेन (युक्तां) देवसेनामिव स्वसारमादाय पुरप्रवेशाभिमुखेन बभूवे ॥ १ ॥

अथ विदर्भाधिपतिः तुल्येन वरेण युक्ताम् अत एव साक्षात् स्कंदेन युक्तां स्कंदपत्नीमिव स्थितामिन्दुमतीं गृहीत्वा पुरं प्रति चचालेति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०-इसके उपरान्त विदर्भदेशका राजा सदृश दूलहसे युक्त साक्षात् स्कन्दसहित देवसेना (उनकी स्त्री) के समान बहनको लेकर नगरमें प्रवेशकरनेको चला ॥ १ ॥

स्कंद=स्कन्दति अच् ।

सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ॥
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः ॥ २ ॥

अन्वयः । विभातग्रहमन्दभासः पृथिवीक्षितोऽपि भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वात् रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः (सन्तः) सेनानिवेशान् जग्मुः ॥ २ ॥

वाच्यप० । विभातग्रहमन्दभाभिः पृथिवीक्षिद्भिः रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयैः सेनानिवेशाः जग्मिरे ॥ २ ॥

प्रभातनक्षत्रतुल्यमन्दकान्तयः नृपाः अपि इन्दुमतीं प्रति विफलमनोरथत्वात् आकृतिषु वेषेषु वृथा इति निन्दन्तः शिबिरोन्मुखाः बभूवुः इति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०-प्रातःकालके ग्रहोंकी समान मन्दकान्तिवाले राजा भी इन्दुमतीमें मनोरथ सफल न होनेसे (अपने) रूप और वेषकी निन्दा करतेहुए डेरोंको गये ॥ २ ॥

विभात=वि+भा+क्त ।

सांनिध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ॥
काकुत्स्थमुद्दिश्य समत्सरोऽपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥३॥

अन्वयः । तत्र किल शच्याः सांनिध्ययोगात् स्वयंवरक्षोभकृतामभावः (बभूव) तेन काकुत्स्थम् उद्दिश्य समत्सरोपि क्षितिपाललोकः शशाम ॥ ३ ॥

वाच्यप०। स्वयंवरक्षोभकृतामभावेन (बभूवे) समस्तरेणापि क्षितिपाललोकेन शेमे ॥ ३॥

तत्र स्वयंवरे इन्द्राण्याः पूजनात् स्वयंवरविघातकानामभावोऽभूत्, तेन अजमवलोक्य क्रोधयुक्तोपि पृथ्वीपालमण्डलः शान्तिं गतः इति सरलार्थः॥ ३॥

भा०-प्रसिद्ध है कि तहां इन्द्राणीके समीप होनेसे स्वयंवरमें विघ्नकरनेवालोंका अभाव हुआ; इसी कारण काकुत्स्थको देखकर क्रोधको प्राप्त हुआ भी राजोंका समूह शान्त हुआ (स्वंयरमें इन्द्राणीका पूजन किया जाता है इससे वहां विघ्न नहीं होता)॥ ३॥

शशाम=शम्+लिट्। शाम्यति। अशमत्। क० अशामि। शमनीयम्। शमनम्।शम्यम्। शाम्यन्।

तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम्॥
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम्॥४॥

अन्वयः। स वरः वध्वा सह तावत् प्रकीर्णाभिनवोपचारम् इन्द्रायुधद्योतिततोरणांकं ध्वजच्छायनिवारितोष्णं राजमार्गं प्राप॥ ४॥

वाच्यप०। तेन वरेण राजमार्गः प्रापे॥ ४॥

यावदजः इन्दुमत्या सह राजमार्गं प्राप तावत् प्रसारिताभिनवसुमनःप्रकरादियुक्तः शक्रायुधसदृशप्रकाशिततोरणाङ्कचिह्नः राजपथ आसीदिति सरलार्थः॥ ४॥

भा०-वह वर वधूके सहित जबतक नई मंगलवस्तुओंसे सजेहुए इन्द्रधनुषकी समान कान्तिमान् पताकाओंकी छायासे धूप मिटानेवाले राजमार्गमें प्राप्त हुआ॥ ४॥

उष्णम्=उष+नक्।

ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु॥
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि॥५॥

अन्वयः। ततः चामीकरजालवत्सु सौधेषु तदालोकनतत्पराणां पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्य्याणि विचेष्टितानि इत्थं बभूवुः॥ ५॥

वाच्यप०। पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्यैः चेष्टितैः इत्थं बभूवे॥ ५॥

ततः सौवर्णगवाक्षयुक्तेषु मन्दिरेषु अजस्य अवलोकने समुत्सुकानां नगरसुन्दरीणामित्थं केशबंधनादीनि कार्य्याणि त्यक्त्वा विचेष्टितानि बभूवुः इति सरलार्थः॥ ५॥

भा०-तब (तक) सुवर्णके झरोखेवाले महलोंमें उसके देखनेमें तत्पर नगरकी स्त्रियोंकी और कार्य्य त्यागकर इस प्रकारकी चेष्टा हुई॥ ५॥

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः॥
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः॥६॥

अन्वयः । सहसा आलोकमार्गं व्रजन्त्या कयाचित् उद्वेष्टनवान्तमाल्यः करेण रुद्धोपि केशपाशः बद्धुं न संभावित एव (बभूव) ॥ ६ ॥

वाच्यप० । व्रजन्ती काचित् उद्वेष्टनवान्तमाल्यं रुद्धमपि केशपाशं न संभावितवती ॥ ६ ॥

तत्क्षणं गवाक्षमार्गं गच्छन्त्या कयाचित् शीघ्रगतिवशात् श्लथबंधनः अत एव उद्गीर्णमाल्यः हस्तेन स्वीकृतोपि केशकलापः पुनर्बंधनाय न विचारित एव इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०–तत्काल देखने (खिडकी) के मार्गको जाती हुई किसी एक स्त्रीने डोरा खुलनेसे मालागिरनेके कारण हाथमें लिये हुए केशकलाप (चोटीका जूडा) को भी बाँधनेकी चिन्ता न की ॥ ६ ॥

उद्वेष्टन=उद्+वेष्ट+ल्युट् ।

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ॥
उत्सृष्टलीलागतिरा गवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥७॥

अन्वयः । काचित् प्रसाधिकालम्बितं द्रवरागमेव अग्रपादमाक्षिप्य उत्सृष्टलीलागतिः (सती) आ गवाक्षात् अलक्तकांकां पदवीं ततान ॥ ७ ॥

वाच्यप० । कयाचित् अग्रपादमाक्षिप्य, उत्सृष्टलीलागत्या (सत्या) आ गवाक्षात् अलक्तकांका पदवी तेने ॥ ७ ॥

काचित् स्त्री अलंकर्त्र्या रचनार्थं गृहीतं आर्द्रालक्तकमेव अग्रचरणमाकृष्य मंदगतिं त्यक्त्वा गवाक्षपर्य्यन्तं लाक्षारागाङ्कान्विस्तारयामासेति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०–कोई एक नायनके पकडेहुए गीलेमहावरके रंगवाले पाँवको खींचकर मंदगति त्याग कर खिडकीतक लाखके रंगके चिह्न विस्तार करती हुई ॥ ७ ॥

प्रसाधिका=प्रसाधक=प्र+साध्+णिच्+ण्वुल् । अलंकर्त्री, स्त्रियां टाप् ।

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ॥
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥८॥

अन्वयः । अपरा दक्षिणं विलोचनम् अञ्जनेन संभाव्य, तद्वञ्चितवामनेत्रा (सती) तथैव शलाकां वहन्ती वातायनसन्निकर्षं ययौ ॥ ८ ॥

वाच्यप० । अपरया लोचनम् अंजनेन सम्भाव्य, तद्वंचितवामनेत्रया (सत्या) तथैव शलाका वहन्त्या वातायनसन्निकर्षं यये ॥ ८ ॥

काचित् दक्षिणं नेत्रं कज्जलेन अलंकृत्य व्याकुलतया वामनेत्रम् अञ्जनरहितमविचार्य तथैव करेण अञ्जनशलाकां वहन्ती गवाक्षनिकटं जगामेति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०—दूसरी कोई स्त्री दहने नेत्रमें सुरमाँ लगाकर और बांई आंखको उससे शून्य ही रखती हुई वैसे ही सलाई हाथमें लिये झरोखेके निकटको गई ॥ ८ ॥

शलाका=शल+आकन्।

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम् ॥
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ॥९॥

अन्वयः। अन्या जालान्तरप्रेषितदृष्टिः (सती) प्रस्थानभिन्नां नीवीं न बबन्ध, (किन्तु) नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन वासः अवलम्ब्य तस्थौ ॥ ९ ॥

वाच्यप०। अन्यया जालान्तरप्रेषितदृष्ट्या (सत्या) प्रस्थानभिन्ना नीवी न बबन्धे, हस्तेनावलम्ब्य तस्थे ॥ ९ ॥

काचित् बाला गवाक्षमध्यदत्तदृष्टिः सती शीघ्रगतिवशात् भग्नां वसनग्रंथिं न बबंध किन्तु नाभिप्रविष्टकंकणांगुलीयकादिप्रभायुक्तेन करेण वासो गृहीत्वा तथैव तस्थौ इति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०—कोई और झरोखेके बीचमें दृष्टि लगाये अपने जलदी चलनेसे टूटेहुए नारेको न बाँधती हुई, किन्तु नाभिपर भूषणकी कान्ति डालते हुए हाथसे उसे धारण कर स्थित हुई ॥ ९ ॥

नीवी=नी+व्ये+उणा०इण् ङीप्।

अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदेपदे दुर्निमिते गलन्ती ॥
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ॥ १० ॥

अन्वयः। सत्वरमुत्थितायाः कस्याश्चित् अर्धाञ्चिता दुर्निमिते पदेपदे गलन्ती रशना तदानीमंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा आसीत् ॥ १० ॥

वाच्यप०। अर्धाचितया पदेपदे गलन्त्या रशनया अंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषया अभूयत ॥ १० ॥

तत्कालसमुत्थितायाः कस्याश्चित् मणिभिरर्धगुम्फिता शीघ्रगतिवशात् पदेपदे गलन्ती मेखला अंगुष्ठमूले सूत्रशेषा आसीदिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—शीघ्रतासे उठनेके कारण किसी एक स्त्रीकी आधी पोही तगडी शीघ्रगतिके कारण पग पग पर गिरती हुई (अर्थात घूंघरूओंके गिरजानेसे) अँगूठेके मूलमें बचे तागेवाली रह गई ॥ १० ॥ (जब कोई चीज पोही जाती है बहुधा उसका एक डोरा पैरके अंगूठेमें लगालेते हैं.)

रशना=रश+ल्यु।

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ॥
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥ ११ ॥

अन्वयः । सान्द्रकुतूहलानां तासाम् आसवगन्धगर्भैः विलोलनेत्रभ्रमरैः मुखैः व्याप्तान्तराः गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणाः इव आसन् ॥ ११ ॥

वाच्यप० । तासां मुखैर्व्याप्तान्तरैः गवाक्षैः सहस्रपत्राभरणैरिव अभूयत ॥ ११ ॥

प्राप्तकुतूहलानां तासां नारीणां मद्यगन्धयुक्तैः चञ्चलनेत्रद्विरेफैः आननैः छन्नावकाशैः गवाक्षैः पद्मालंकृता इवासन्निति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—अत्यन्त अभिलाषावाले इन स्त्रियोंके आसवकी गंधयुक्त चलायमाननेत्ररूपी भौंरेवाले मुखोंसे भरेहुए झरोखे कमलोंसे शोभितहुओंके समान हुए ॥ ११ ॥

आसव=आ+सु+अण् ।

ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ॥
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥ १२ ॥

अन्वयः । दृष्टिभिः राघवम् आपिबन्त्यः ताः नार्यः विषयान्तराणि न जग्मुः, तथाहि आसां शेषेन्द्रियवृत्तिः सर्वात्मना चक्षुः प्रविष्टा इव (बभूव) ॥ १२ ॥

वाच्यप० । दृष्टिभिः राघवं पिबन्तीभिः ताभिः नारीभिः विषयान्तराणि न जग्मिरे, शेषेन्द्रियवृत्त्या सर्वात्मना चक्षुः प्रविष्टया इव (बभूवे) ॥ १२ ॥

नेत्रैः अजं पिबन्त्यः ताः स्त्रियः कार्य्यान्तराणि न जग्मुः तथाहि आसां स्त्रीणां नेत्रव्यतिरिक्तसर्वेन्द्रियव्यापारः स्वरूपकात्स्न्येन चक्षुः प्रविष्ट एवेति सरलार्थः ।

भा०—दृष्टियोंसे राघव (अज) को पीती हुई वे स्त्री और इन्द्रियोंके सुखकी ओर न गईं, कारण कि इनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियें सब प्रकारसे मानो नेत्रोंमें प्रवेश कर गई थीं ॥ १२ ॥

वृत्तिः=वृत+क्तिन् ।

स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या ॥
पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम् ॥ १३ ॥

अन्वयः । भोज्या परोक्षैः भूपतिभिः वृता (अपि) स्वयंवरमेव साधु अमंस्त, (इति) स्थाने (अस्ति) अन्यथासौ पद्मा नारायणमिवात्मतुल्यं कान्तं कथं लभेत ॥ १३ ॥

वाच्यप० । भोज्यया भूपतिभिः वृतया अपि स्वयंवर एव साधुः अमानि (इति) स्थाने (भूयते) अनया पद्मया नारायण इव, आत्मतुल्यः कान्तः लभ्येत ॥ १३ ॥

इन्दुमती अदृष्टैः नृपैः प्रार्थितापि स्वयंवरमेव हितं मेने, उचितमेवैतत् अन्यथासौ लक्ष्मीनारायणमिवात्मतुल्यम् अजं कथं लभेतेति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–इन्दुमती विनादेखे राजोंसे इच्छा भी करी गई (तथापि) (उसने) स्वयंवरकोही अच्छा माना, यह अच्छा हुआ नहीं तो यह लक्ष्मी नारायणकी समान अपने सदृश पतीको कैसे प्राप्त होती ॥ १३ ॥

कान्तम्=कन+क, वा–कम+क ।

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ॥
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् १४॥

अन्वयः । चेत् (प्रजापतिः) स्पृहणीयशोभम् इदं द्वंद्वं परस्परेण न अयोजयिष्यत्, (तर्हि) अस्मिन्द्वये प्रजानां पत्युः रूपविधानयत्नः वितथः अभविष्यत् ॥ १४ ॥

वाच्यप० । चेत् (प्रजापतिना) स्पृहणीयशोभम् इदं द्वन्द्वं परस्परेण न अयोजयिष्यत, (तर्हि) रूपविधानयत्नेन वितथेन अभविष्यत ॥ १४ ॥

यदि ब्रह्मा रूपयौवनसंपन्नम् इदं मिथुनं परस्परेण नायोजयिष्यत्, तर्हि ब्रह्मणः अस्मिन् मिथुने रूपविधानचातुरी विफलाऽभविष्यदिति सरलार्थः १४ ॥

भा०–जो (ब्रह्मा) शोभायमान इस जोड़ेको परस्पर न मिलाता तो इन दोनोंमें प्रजापतिका रूप रचना करनेका यत्न वृथा हो जाता ॥ १४ ॥

स्पृहणीय–स्पृह+अनीयर् ।

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथाहि वाला ॥
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् ॥ १५ ॥

अन्वयः । इमौ नूनं रतिस्मरौ अभूताम्, तथा हि इयं वाला राज्ञां सहस्रेषु आत्मप्रतिरूपमेव गता, हि मनः जन्मान्तरसंगतिज्ञं (भवति) ॥ १५ ॥

वाच्यप० । आभ्यां रतिस्मराभ्यामभावि, अनया बालया आत्मप्रतिरूप एव गतः हि मनसा जन्मान्तरसङ्गतिज्ञेन (भूयते) ॥ १५ ॥

इमौ दम्पती रतिमन्मथरूपेणोत्पन्नौ तथाहि इयमिन्दुमती नृपाणां सहस्रेषु स्वानुरूपं पतिं प्राप्ता यस्मान्मनः पूर्वजन्मयोगं जानातीति सरलार्थः १५ ॥

भा०–यह दोनों निश्चय ही कामदेव और रति हैं इसीसे इस वालाने सहस्रों राजाओंमें अपनी समान इसे पाया, निश्चय मन जन्मान्तरकी संगति जान्ता है ॥ १५ ॥

सहस्र=स+हस+र ।

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः ॥
उद्भासितं मंगलसंविधाभिः संबन्धिनः सद्म समाससाद ॥१६॥

अन्वयः । इति पौरवधूमुखेभ्यः उद्गताः श्रोत्रसुखाः कथाः शृण्वन् (सन्) कुमारः मंगलसंविधाभिः उद्भासितं सम्बन्धिनः सद्म समाससाद ॥ १६ ॥

वाच्यप० । कथाः शृण्वता (सता) कुमारेण सद्म समासेदे ॥ १६ ॥

एवं पौरवधूमुखेभ्य उत्पन्नाः कर्णमधुराः गिरः शृण्वन् अजः मंगलसामग्रीभिः दीप्तिमन्तं भोजस्य मन्दिरं प्रापेति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०- इस प्रकार पुरकी स्त्रियोंके मुखसे कहीहुई कानोंको सुखदेनेवाली कथा सुनता हुआ कुमार मंगलसामग्रीसे सजाये हुए सम्बन्धीके मंदिरमें प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

उद्गतः=उद्+गम+क्त ।

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः ॥
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ॥ १७ ॥

अन्वयः । ततः सः कामरूपेश्वरदत्तहस्तः (सन्) करेणुकायाः आशु अवतीर्य, अथो वैदर्भनिर्दिष्टमन्तःचतुष्कं नारीमनांसि इव विवेश ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तेन कामरूपेश्वरदत्तहस्तेन (सता) विविशे ॥ १७ ॥

अथ हस्तिन्याः सद्यः अवतीर्य कामरूपदेशाधिपतेः हस्तमवलम्ब्य सः कुमारः भोजनिर्दिष्टम् अवरोधांगणं स्त्रीणां मनांसीव विवेशेति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०-तब वह कामरूपदेशके राजाका हाथ पकडकर हथिनीसे शीघ्र उतर विदर्भराजाके दिखाये अंतःपुरमें स्त्रियोंके मनोंमें मानो प्रवेश करगया १७ ॥

चतुष्कं=चतुर्भिः स्तंभैः कायति कै+क ।

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम् ॥
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः ॥ १८ ॥

अन्वयः । महार्हसिंहासनसंस्थितः असौ भोजोपनीतं मधुपर्कमिश्रं सरत्नमर्घ्यं दुकूलयुग्मं च वनिताकटाक्षैः सार्धं जग्राह ॥ १८ ॥

वाच्यप० । महार्हसिंहासनसंस्थितेनाजेन जगृहे ॥ १८ ॥

बहुमूल्यसिंहासनम् अधिष्ठितः स कुमारः भोजनृपेण समानीतं रत्नैर्युक्तं मधुपर्कसहितमर्घ्यं वस्त्रयुग्मं च स्त्रीणां तिर्य्यगवलोकनैः सार्धं स्वीकृतवानिति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०-बडे मोलके सिंहासनपर स्थितहुआ यह कुमार भोजके लाये मधुपर्कयुक्त रत्नोंसहित अर्घ और वस्त्रोंका जोडा स्त्रियोंके कटाक्षोंके सहित ग्रहण करता हुआ १८ ॥

मधुपर्क=मधु+पृच्+घञ् । मधुना पर्को योगो यत्र " दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रसिते चैतैश्च पञ्चभिः । प्रोच्यते मधुपर्कस्तु " ।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः ॥
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥ १९ ॥

अन्वयः। दुकूलवासाः सः विनीतैः अवरोधरक्षैः वधूसमीपं स्फुटफेनराजिः उदन्वान् नवैः चन्द्र-पादैः वेलासकाशमिव निन्ये॥ १९॥

वाच्यप०। दुकूलवाससं तं विनीता अवरोधरक्षाः वधूसमीपं, स्फुटफेनराजिमुदन्वन्तं नवाः चन्द्रपादाः वेलासकाशमिव निन्युः॥ १९॥

दुकूलवस्त्रधारी सः कुमारः नम्रीभूतैः सेवकैः वधूनिकटं निन्ये, यथा स्फुटफेनपंक्तिः सागरः नूतनैः शशिप्रभाभिः वेलासमीपं नीयते इति सरलार्थः॥ १९॥

भा०—दुकूलवस्त्र पहरे हुए अजको विनयी सेवकोंने वधूके समीप प्रकाशित फेनपंक्तिवाले समुद्रको नई चन्द्रमाकी किरणोंने तटके निकटकी समान पहुँचाया॥ १९॥

दुकूल=दु+उलच्+कुक् च।

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः॥
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये वधूवरौ संगमयाञ्चकार॥ २०॥

अन्वयः। आर्चितः अग्निकल्पः भोजपतेः पुरोधाः तत्राज्यादिभिरग्निं हुत्वा, च विवाहसाक्ष्ये तमेवाधाय, च वधूवरौ संगमयांचकार॥ २०॥

वाच्यप०। आर्चितेनाग्निकल्पेन पुरोधसा वधूवरौ संगमयांचक्राते॥ २०॥

पूजितः अग्नितुल्यः भोजनृपस्य पुरोहितः तस्मिन् स्थाने घृतादिभिः वह्निं हुत्वा तमेवाग्निं विवाहकर्मणि साक्षिणं कृत्वा वधूकुमारौ संयोजयामासेति सरलार्थः॥ २०॥

भा०—पूजनीय अग्निकी समान तेजस्वी भोजाधिपतिके पुरोहितने तहां अग्निको घृतादिकी आहुति देकर और उसे ही विवाहकी साक्षीमें भी करके वधू और वरको मिलाया॥ २०॥

साक्ष्य=साक्षिणो भावः कर्म वा ष्यञ्। सह+अक्षि+ष्यञ्।

हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे॥
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन॥ २१॥

अन्वयः। स राजसूनुः हस्तेन वध्वाः हस्तं परिगृह्य अनन्तराशोकलताप्रवालं प्रतिपल्लवेन संप्राप्य चूत इव सुतरां चकासे॥ २१॥

वाच्यप०। तेन राजसूनुना चूतेन इव सुतरां चकासे॥ २१॥

सोजः स्वकीयेन हस्तेन इन्दुमत्या हस्तं परिगृह्य समीपवर्तिन्या अशोकवल्लर्याः पल्लवं स्वकीयेन प्रतिपल्लवेन प्राप्य सहकार इव सुतरां दिदीपे इति सरलार्थः॥ २१॥

भा०—वह राजकुमार हाथसे वधूका हाथ पकडकर समीपकी अशोकलताके प्रवालकी शाखाओंसे धारण किये आमकी समान अत्यन्त शोभित हुआ॥ २१॥

हस्तेन=हस+तन्+न इट् ३।

आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नांगुलिः संववृते कुमारी ॥
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन ॥ २२ ॥

अन्वयः । (तदा) वरः कंटकितप्रकोष्ठः आसीत्, कुमारी स्विन्नांगुलिः संववृते, तत्क्षणं मनोभवेन तस्मिन्द्वये आत्मवृत्तिः समं विभक्ता इव (आसीत्) ॥ २२ ॥

वाच्यप० । वरेण कण्टकितप्रकोष्टेन अभूयता, कुमार्या स्विन्नांगुल्या संववृते, आत्मवृत्त्या समं विभक्तया इव (अभूयत) ॥ २२ ॥

पाणौ गृहीते सति कुमारः पुलकितप्रकोष्ठः आसीदिन्दुमती स्विन्नांगुलिः बभूव, तदा मन्मथेन तस्मिन् मिथुने सात्त्विकादिवृत्तिः समं पृथक्कृतेवेति सरलार्थः ॥२२ ॥

भा०-वर पुलकित प्रकोष्ठ (पहुंचे) वालाहुआ और कुमारी पसीजी उँगलीवाली हुई उसकाल कामदेवने मानों अपनी वृत्ति उन दोनोंमें तुल्य बाँट दी ॥ २२ ॥

कंटकितः=कण्टको रोमाञ्चो जातोऽस्य इतच् ।

तयोरपांगप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि ॥
ह्रीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि॥२३॥

अन्वयः । अपांगप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि अन्योन्यलोलानि तयोः विलोचनानि मनोज्ञां ह्रीयंत्रणामानशिरे ॥ २३ ॥

वाच्यप० । अपांगप्रतिसारितैः क्रियासमापत्तिनिवर्तितैः अन्योन्यलोलैः विलोचनैः मनोज्ञा ह्रीयंत्रणा आनशे ॥ २३ ॥

अपांगपर्यन्तप्रवर्तितानि अवलोकनसंगत्या निवर्तितानि परस्परेण सतृष्णानि वधूकुमारयोः नेत्राणि अनिर्वचनीयं लज्जया निमित्तेन संकोचं प्रापुः इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-कोरोंतक लम्बायमान अभिलाषाकी प्राप्तिसे निश्चित हुई, परस्पर तृष्णावाली उन दोनोंकी आंखें मनोहर लज्जा और संकोचको प्राप्त हुईं ॥ २३ ॥

आनशिरे=अश्+लिट् बहु० । अश्नुते । अशनीयम् । आशकः । अष्टः । अशितुम् । अशित्वा । अपाश्य । अश्नुवान् ।

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे ॥
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥ २४ ॥

अन्वयः । तत् मिथुनम् उदार्चिषः कृशानोः प्रदक्षिणप्रक्रमणात् मेरोः उपान्तेषु वर्तमानमन्योन्यसंसक्तम् अहः त्रियाममिव चकासे ॥ २४ ॥

वाच्यप० । तेन मिथुनेन वर्तमानेनान्योन्यसंसक्तेन अहस्त्रियामेणेव चकासे ॥ २४ ॥

तत् द्वन्द्वं प्रज्वलितस्याग्नेः प्रदाक्षिणाकिरणात् मेरुपर्वतस्य उपान्तेपु प्रदक्षिणीकुर्वन् परस्परसंयुक्तं रात्रिंदिवमिव शुशुभे इति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०-वह जोडा उठी हुई लपटवाली अग्निकी प्रदक्षिणा करनेसे मेरुके चारों ओर भ्रमण करते परस्पर मिले हुए दिनरातकी समान शोभित हुआ ॥ २४ ॥

मिथुनं=मिथ+उनन्+किच ।

नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन ॥
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ ॥ २५ ॥

अन्वयः । नितम्वगुर्वी विधातृप्रतिमेन तेन गुरुणा प्रयुक्ता मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती सा वधूः अग्नौ लाजविसर्गं चकार ॥ २५ ॥

वाच्यप० । नितम्बगुर्व्या गुरुणा प्रयुक्तया मत्तचकोरनेत्रया लज्जावत्या तया वध्वा लाजविसर्गः चक्रे ॥ २५ ॥

नितम्बवती मत्तचकोरनेत्रा ह्रीमती सा कुमारी ब्रह्मस्वरूपेण तेन याजकेन नियुक्ता सती अग्नौ लाजत्यागं कृतवती इति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०-बडे नितम्बोंवाली विधाताकीतुल्य तिन गुरूकी आज्ञासे मत्तचकोरकी समान नेत्रोंवाली उस लज्जावतीने अग्निमें खीलें डालीं ॥ २५ ॥

चकोर=चक् तृप्तौ+ओरन् ।

हविःशमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः ॥
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥ २६ ॥

अन्वयः । हविःशमीपल्लवलाजगंधी पुण्यः स धूमः कृशानोः उदियाय कपोलसंसर्पिशिखः सन्) तस्याः मुहूर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥ २६ ॥

वाच्यप० । हविः शमीपल्लवलाजगंधिना पुण्येन धूमेन तेन कपोलसंसर्पिशिखेन (सता) तस्याः मुहूर्त्तकर्णोत्पलता प्रपेदे ॥ २६ ॥

घृतशमीपत्रलाजगन्धोत्पन्नः पवित्रः अग्नेरुद्भूतः गण्डस्थलसंसर्पिशिखः धूमः तस्याः इन्दुमत्याः मुहूर्तमात्रं कर्णभूषणतां प्रपेदे इति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०-घृत, शमीके पत्ते और लाज (चावल वा खीलों) की सुगन्धि भरे हुए पवित्रधुएंने अग्निसे उठकर कपोलोंपर शिखा फैलाते हुए क्षणमात्र उसके कानोंकी नीलकमलताको प्राप्त किया ॥ २६ ॥

मुहूर्त=हूर्च्छ+क धातोर्मुट् च ।

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् ॥
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव ॥ २७ ॥

अन्वयः । तद्वधूमुखम् आचारधूमग्रहणात् अंजनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानवीजांकुरकर्णपूरं पाटलगण्डलेखं बभूव ॥ २७ ॥

वाच्यप० । तेन वधूमुखेन अंजनक्लेदसमाकुलाक्षेण प्रम्लानवीजांकुरकर्णपूरेण पाटलगंडलेखेन बभूवे ॥ २७ ॥

तद्वध्वाननम् आचारधूमस्वीकारात् अञ्जनमिश्रबाष्पजलेन समाकुलनेत्रं प्रम्लानयवांकुरस्य कर्णाभरणं रक्तकपोलस्थलं च बभूवेति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—वह वधूका मुख आचारके धुँएंके ग्रहणसे अंजनके मिले हुए नेत्रोंके जलसे चंचल नेत्रवाला मुरझाये हुए यवांकुरके कर्णफूल और रक्तकपोलस्थलवाला हुआ२७॥

अञ्जनम्=अज्यते अनेन करणे ल्युट् ।

तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरंध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् ॥
कन्याकुमारौ कनकासनस्थावार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥ २८ ॥

अन्वयः । कनकासनस्थौ तौ कन्याकुमारौ स्नातकैः बंधुमता राज्ञा च पुरंध्रिभिः च क्रमशः प्रयुक्तमार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥ २८ ॥

वाच्यप० । कनकासनस्थाभ्यां ताभ्यां कन्याकुमाराभ्यां प्रयुक्तः आर्द्राक्षतारोपणम् अन्वभावि २८

सुवर्णासनस्थौ वधूवरौ अचिरकृतविवाहैः गृहस्थविशेषैः बंधुयुक्तेन च राज्ञा, सुतवतीस्त्रीभिश्च क्रमानुसारेण कृतमार्द्रतण्डुलानामारोपणमनुभूतवन्ताविति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—सोनेके सिंहासनपर बैठेहुए वह वर और वधू स्नातकों और कुटुम्बियों सहित राजाका तथा पति और पुत्रवालियोंका क्रम क्रमसे गीले धानवोना देखते हुए२८॥

(यह विवाहकी रीति है इस समय इसे धानवोना कहते हैं, थोडे दिनोंसे गृहस्थाश्रममें आयेका नाम स्नातक है)

पुरन्ध्री=पुरं गेहं धारयति पालयति धृ+खच् ।

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा ॥
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः ॥ २९ ॥

अन्वयः । भोजकुलप्रदीपः अधिश्रीः सः राजा इति स्वसुः पाणिग्रहणं सम्पाद्य, महीपतीनां पृथक् अर्हणार्थम् अधिकृतान् समादिदेश ॥ २९ ॥

वाच्यप० । भोजकुलप्रदीपेन अधिश्रिया तेन राज्ञा अधिकृताः समादिदिशिरे ॥ २९ ॥

भोजवंशप्रदीपः सम्पत्तिमान् स भोजः एवं भगिन्याः विवाहं संपाद्य नृपतीनां पृथक् सत्कारार्थम् अधिकारिणः आज्ञापयामासेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—भोजकुलका दीपक लक्ष्मीवान् वह राजा, इसप्रकार बहनका पाणिग्रहण पूरा करके, राजाओंके पृथक् पृथक् सत्कारके निमित्त अधिकारियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २९ ॥

पाणिग्रहण=पण इण् आयामावः पाणिर्गृह्यतेऽत्र ग्रह+आधारे ल्युट् ।

लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः ॥
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाछलेन ॥ ३० ॥

अन्वयः । मुदः लिंगैः संवृतविक्रियाः ते गूढनक्राः प्रसन्नाः ह्रदा इव, वैदर्भमामंत्र्य, तदीयां पूजामुपदाछलेन प्रत्यर्प्य ययुः ॥ ३० ॥

वाच्यप० । संवृतविक्रियैः तैः गूढनक्रैः प्रसन्नैः ह्रदैरिव यये ॥ ३० ॥

संतोषचिह्नैः कपटालापैः गूढविक्रियाः ते नृपाः गूढनक्राः निर्मलाः ह्रदा इव भोजमापृच्छ्य त्वदीयामर्चामुपायनव्याजेन प्रत्यर्प्य जग्मुरिति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—संतोषके लक्षणोंसे विकार छिपाये हुए वे राजा छिपेहुए नाकोंवाले निर्मल सरोवरकी समान, विदर्भराजासे आज्ञा ले उसकी दी हुई सामग्रीको भेंटके व्याजसे लौटाकर चले गये ॥ ३० ॥

संवृतं=सम्+वृ+क्त ।

स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम् ॥
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥ ३१ ॥

अन्वयः । आरम्भसिद्धौ कृतपूर्वसंवित् सः राजलोकः समयोपलभ्यं तत्प्रमदामिषमादास्यमानः (सन्) अजस्य पंथानमावृत्य तस्थौ ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । कृतपूर्वसंविदा तेन राजलोकेनादास्यमानेन (सता) तस्थे ॥ ३१ ॥

कार्यसिद्धौ कृतपूर्वसंकेतः स नृपतीनां संघः अजप्रस्थानसमये लभ्यं तत्प्रमदैवामिषं ग्रहीष्यमाणः सन् कुमारस्य मार्गमवरुध्य तस्थौ इति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—कार्यसिद्धिके निमित्त पहले संकेत करके वह राजसमूह अजके प्रस्थान समय प्राप्त होनेयोग्य उस प्रमदारूपी मांसके लेनेकी इच्छासे अजका मार्ग रोककर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥

संवित्=सम्+विद्+क्विप् ।

भर्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः ॥
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च ॥ ३२ ॥

अन्वयः । अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः क्रथकैशिकानां भर्तापि सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः (सन्) राघवं प्रास्थापयामास, च स्वयम् अन्वगात् ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । अनुष्ठितानंतरजाविवाहेन भर्त्रापि सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रिया (सता) राघवः प्रस्थापयांचक्रे, (स्वेन) अन्वगायि ॥ ३२ ॥

संपादितलघुभगिनीविवाहः भोजपतिः विभवानुरूपं श्रियं यौतकं दत्त्वा अजं प्रस्थापितवान्, स्वयं तदनु ययाविति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०-छोटी बहनका विवाह करचुकनेपर विदर्भदेशका स्वामी अपने वित्तानुसार लक्ष्मीभेंट देकर राघवको विदा करके आपभी उसके पीछे गया ॥ ३२ ॥

विवाह=वि+वह+घञ् ।

तिस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा ॥
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः ॥३३॥

अन्वयः । कुण्डिनेशः त्रिलोकप्रथितेनाजेन सार्धं मार्गे तिस्रो वसतीः उषित्वा, पर्वात्यये उष्णरश्मेः सोमः इव, तस्मात् अपावर्त्तत ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । कुंडिनेशेन, सोमेन इव, अपावृत्यत ॥ ३३ ॥

विदर्भाधिपतिः त्रिलोकविख्यातेन कुमारेण सार्कं पथि त्रीणि दिनानि स्थित्वा अमावस्यान्ते रवेश्चंद्र इव तमजं विसृज्य स्वयं निवृत्तः इति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-कुंडिनपुरका स्वामी त्रिलोकमें विख्यात अजके साथ मार्गमें तीन रात्रि बिताकर अमावसके अन्तमें सूर्यसे चन्द्रमाकी समान लौटा ॥ ३३ ॥

वसतीः=वस+ति वा ङीप् ।

प्रमन्यवः प्रागपि कोसलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः ॥
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य ॥३४॥

अन्वयः । नृपाः प्रागपि प्रत्येकमात्तस्वतया कोसलेन्द्रे प्रमन्यवो बभूवुः, अतः (कारणात्) समेताः तदात्मजस्य स्त्रीरत्नलाभं न चक्षमिरे ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । नृपैः प्रमन्युभिः बभूवे, समेतैः स्त्रीरत्नलाभो न चक्षमे ॥ ३४ ॥

ते राजानः पूर्वमेव रघोः दिग्विजये गृहीतधने रघौ प्ररूढवैराः बभूवुः अतः संयुक्ताः तत्पुत्रस्य अजस्य स्त्रीरत्नप्राप्तिं न सेहिरे इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-राजोंमें प्रथमही प्रत्येकराजा धन छिन जानेके कारण कौशलपतिसे वैर मानता था, इसकारण सब मिलकर उसके पुत्रका स्त्रीरत्न पाना न सह सके ॥ ३४॥

चक्षमिरे=क्षम+लिट् । क्षमते । अक्षमत । अक्षमिष्ट । कर्मणि क्षम्यते । क्षमणीयम् । क्षमणम् । क्षान्तिः । क्षमा । क्षमितव्यम् । क्षन्तव्यम् । क्षमितुम् । क्षन्तुम् । संक्षम्य । क्षममाणः क्षम्यमाणः ।

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः ॥
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः ॥३५॥

अन्वयः । दृप्तः स राजन्यगणः भोजकन्यामुद्वहन्तं तमजं वलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादम् इन्द्रशत्रुरिव पथि रुरोध ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । दृप्तेन तेन राजन्यगणेन उद्वहन्सोऽजः श्रियमाददानः त्रैविक्रमः पादः इन्द्रशत्रुणा इव रुरुधे ॥ ३९ ॥

अहंकारयुक्तः सः नृपसमूहः इन्दुमतीं नीयमानं तं कुमारं वलिना प्रतिपादितां श्रियं गृह्णमाणं वामनस्य चरणं प्रह्लाद इव मार्गे रुरोध इति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०—अभिमानी वह राजसमूह भोजकी कन्या ले जाते हुए अजको वलिकी लक्ष्मी हरणकरते हुए वामनजीके चरणको प्रह्लादकी समान रोकते हुए ॥ ३९ ॥

दृप्त=दृप्+क्त ।

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः ॥
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः ॥३६ ॥

अन्वयः । सः कुमारः तस्याः रक्षार्थमनल्पयोधं पित्र्यं सचिवमादिश्य, उत्तरंगः शोणः भागीरथीमिव, तां पार्थिववाहिनीं प्रत्यग्रहीत् ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । तेन कुमारेण उत्तरंगेण शोणेन भागीरथीव, सा पार्थिववाहिनी प्रत्यगाहि ॥३६॥

सोजः इन्दुमत्याः रक्षणार्थं वहुभटं पित्र्यं मंत्रिणमाज्ञाप्य तां नृपसेनां गंगामुत्तरंगः शोणनद इव प्रत्यग्रहीदिति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—कुमारने इन्दुमतीकी रक्षाके निमित्त वहुत योधाओं सहित पिताके मंत्रीको आज्ञा देकर वडी तरंगोंवाले शोणभद्रने गंगाकी जैसे उस सेनाको रोका ॥ ३६ ॥

वाहिनी=वाहोऽस्त्यस्याः इनि+ङीप् ।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम् ॥
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि वभूव युद्धम् ॥३७॥

अन्वयः । पत्तिः पदातिम्, रथेशः रथिनम्, तुरंगसादी तुरगाधिरूढम्, गजस्य यन्ता गजस्थमभ्यपतत् (इति) तुल्यप्रतिद्वन्द्वि युद्धं वभूव ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । पत्तिना पदातिः, रथेशेन रथी, तुरंगसादिना तुरगाधिरूढः, यंत्रा गजस्थः अभ्यपत्यत, तुल्यप्रतिद्वन्द्विना युद्धेन वभूवे ॥ ३७ ॥

पादचारी योद्धा पादचारमभ्यहनत्, रथेशः रथिनमभ्यपतत्, अश्वारोही तुरगाधिरूढमभ्यपतत्, हस्त्यारोहः गजस्थं वीरमभ्यहनत्, इत्थं तत् तुल्यजातीयप्रतिभटं युद्धं वभूवेति सरलार्थः ३७

भा०—पैदल पैदलसे, रथी रथीसे, घुडसवार अश्वारोहीसे, हाथीपर चढनेवाला हाथीपर स्थितसे भिडे, इसप्रकार वह वरावर जोडीवाला संग्राम हुआ ॥ ३७ ॥

युद्धं=युध्+क्त ।

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान् ॥
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । तूर्य्येषु नदत्सु सत्सु अविभाव्यवाचः चापभृतः कुलोपदेशान् नोदीरयन्ति स्म, (किन्तु) वाणाक्षरैरेव परस्परस्योर्जितं नाम शशंसुः ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । अभिभाव्यवाग्भिः चापभृद्भिः कुलोपदेशाः नोदीरयाञ्चक्रिरे ++नाम शशंसे ॥३८॥

तूर्येषु वाद्यविशेषेषु नदत्सु अनवधार्यगिरः धनुष्धारिणः वंशनामानि न कथयन्ति स्म, किन्तु शराक्षरैरेव अन्योन्यस्य प्रसिद्धं नाम कथयामासुः इति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०–तुरहियोंके बजनेमें वाणी न समझते हुए धनुषधारियोंने कुल और नामका उच्चारण न किया, किन्तु वाणोंके अक्षरोंहीसे अपना प्रसिद्ध नाम एक दूसरेको बताया ॥ ३८ ॥

तूर्य्य=तूर+यत् ।

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः ॥
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः । संयति अश्वैः उत्थापितः स्यन्दनवंशचक्रैः सांद्रीकृतः कुञ्जरकर्णतालैः विस्तारितः रेणुः नेत्रक्रमेण सूर्य्यम् उपरुरोध ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । उत्थापितेन सान्द्रीकृतेन विस्तारितेन रेणुना सूर्य्यः उपरुरुधे ॥ ३९ ॥

युद्धे तुरंगैरुत्थापितः रथसमूहानां चक्रैः घनीकृतः हस्तिकर्णताडनैः प्रसारितः धूलिः वस्त्रपरिपाट्या रविमुपरुरोधेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०–संग्राममें घोडोंसे उठाई हुई, रथके समूहके पहियोंसे घनी की हुई, हाथियोंके कर्णतालोंसे विस्तार करी हुई धूलिने वस्त्रकी समान सूर्यको ढक दिया ॥ ३९ ॥

कुञ्जरः=अस्त्यर्थे रः ।

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि ॥
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि ॥४०॥

अन्वयः । वायुवशात् विदीर्णैः मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि पिबन्तः मत्स्यध्वजाः पर्य्याविलानि नवोदकानि परमार्थमत्स्या इव बभुः ॥ ४० ॥

वाच्यप० । पिबद्भिः मत्स्यध्वजैः परमार्थमत्स्यैरिव बभे ॥ ४० ॥

पवनवेगाद् विवृतैराननैः वृद्धिं गतानि वाहिनीरजांसि गृह्णन्तो मत्स्यसदृशा ध्वजाः परितः मलिनानि नवजलानि पिबन्तः सत्यमत्स्या इव शुशुभिरे ॥ ४० ॥

भा०–वायुके वशसे मुख फैलाये बढी हुई सेनाकी रज पीते हुए मत्स्यके आकारवाली ध्वजाओंने नवीन मैलाजल पीते हुए सच्ची मछलियोंकी समान शोभा पाई॥४०॥

मत्स्याः=मद्+स्यन्–बहु० ।

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः ॥
स्वभर्तृनामग्रहणाद्बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः ॥ ४१ ॥

अन्वयः । (सैनिकैः) सान्द्रे रजसि रथः रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे, नागः विलोलघंटाक्वणितेन (विजज्ञे) आत्मपरावबोधः स्वभर्तृनामग्रहणात् बभूव ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । (सैनिकाः) रथं विजज्ञुः++आत्मपरावबोधेन + बभूवे ॥ ४१ ॥

प्रवृद्धायां धूलौ स्यदनः स्यन्दनचक्रशब्देन ज्ञातः करी चंचलानां घंटानां शब्देन विजज्ञे भटाना स्वपरविवेकः स्वस्वामिनां नाम कथनाद्बभूवेति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—घने संग्राममें रथ, पहियोंके शब्दसे जाना गया, हाथी चलायमान धंटेके शब्दसे (जानागया) और अपने परायेका ज्ञान अपने स्वामीके नाम उच्चारणसे विदित हुआ ॥ ४१ ॥

सान्द्रः—अदि—रक्—सह अन्द्रेण ।

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य ॥
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । लोचनमार्गम् आवृण्वतः आजौ विजृम्भितस्य रजोन्धकारस्य शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा रुधिरप्रवाहः बालारुणः अभूत् ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । आवृण्वता शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मना रुधिरप्रवाहेण बालारुणेन अभावि ॥ ४२ ॥

नेत्रमार्गमुपरुन्धतः संग्रामे पूर्णस्य रजोन्धकारस्य शस्त्रविद्धेभ्यः तुरगहस्तिभटेभ्यः उत्पन्नः रुधिरप्रवाहः प्रभातस्य रविरभूदिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—नेत्रोंका मार्ग रोकनेवाली, संग्राममें फैली हुई रजके अंधकारको हथियारोंसे विंधे घोडे हाथी और योधाओंसे प्रगट हुआ रुधिरका प्रवाह प्रातःकालका सूर्य हुआ ॥ ४२ ॥

क्षतः—क्षण+ भावे क्तः ।

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः ॥
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवाबभासे ॥ ४३ ॥

अन्वयः । क्षतजेन छिन्नमूलः तस्य उपरिष्टात् पवनावधूतः सः रेणुः अंगारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितः धूमः इव आबभासे ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । छिन्नमूलेन पवनावधूतेन तेन रेणुना पूर्वोत्थितेन धूमेनेव आबभासे ॥ ४३ ॥

रुधिरेण त्याजितपृथ्वीसम्बन्धः तस्य क्षतजस्य उपरिष्टात् वायुना कंपितः स रेणुः अंगारावशिष्टस्य वह्नेः पूर्वोत्थितो धूम इव चकासे इति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-रुधिरसे जड़कटीहुई और उसीके उपर वायुसे चलायमान होतीहुई वह धूरि अंगारे मात्र बची हुई आगके उपर पहले उठे हुए धूँएके समान शोभित हुई ॥ ४३ ॥

धूमः=धु+मक् ।

प्रहारमूर्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निवर्तिताश्वान् ॥
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूंस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः ॥ ४४ ॥

अन्वयः । रथस्थाः प्रहारमूर्छापगमे निवर्त्तिताश्वान् यन्तॄन् उपालभ्य यैः सादिताः लक्षितपूर्वकेतून् तानेव सामर्षतया निजघ्नुः ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । रथस्थैः यैः सादितैः लक्षितपूर्वकेतवः ते एव निजघ्निरे ॥ ४४ ॥

रथिनः शस्त्रप्रहारमूर्छागते सति निवर्त्तिततुरगान् सारथीन् धिकृत्य पूर्वं यैः स्वयं हताः दृष्टपूर्वध्वजान् तान् सक्रोधत्वेन प्रजहुः इति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-रथी; प्रहारकी मूर्च्छाके मिटनेपर घोडे लोटानेवाले सारथियोंका तिरस्कारकर पहले जिन्होंने प्रहार किया था, उन्हीको ध्वजाओंसे पहचानकर क्रोधसे मारने लगे ॥ ४४ ॥

निजघ्नुः=नि+हन+लिट्+बहु० । हन्ति । जघान । अहन् । अवधीत् । कर्म०हन्यते । सनि जिघांसति । यङि जेघ्नीयते । हननीयम् । हननम् । वधः । उ०-तमोपहः । उकञ् घातुकः । हन्तव्यम् । हन्तुम् । हत्वा । प्रहत्य । घ्नन् ।

अप्यर्धमार्गे परबाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः ॥
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्द्धभागैः फलिभिः शरव्यम् ॥४५॥

अन्वयः । अर्धमार्गे परबाणलूना अपि हस्तवतां धनुर्भृतां पृषत्काः आत्मजवानुवृत्त्या फलिभिः पूर्वार्द्धभागैः शरव्यं संप्रापुः एव ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । परबाणलूनैः पृषत्कैः शरव्यं संप्रापे ॥ ४५ ॥

अर्धमार्गे शत्रूणां शरैः छिन्ना अपि लघुहस्तवतां धनुर्धारिणां बाणाः शीघ्रगत्या अयोनिर्मितैः पूर्वार्द्धभागैः फलिभिः लक्ष्यं संप्रापुः एवेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०-आधेमार्गमें ही दूसरेके बाणसे छिन्न हुए भी चतुर धनुषधारियोंके बाण अपनी शीघ्रगतिके कारण आगेके आधेभागसे ही निशाने (लक्ष्य) पर पहुँचे॥४५॥

पृषत्काः=पृषत्+संज्ञायां कन् ।

आधोरणानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः ॥
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । गजसन्निपाते निशितैः क्षुराग्रैः चक्रैः हृतानि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि आधोरणानां शिरांसि चिरेण पेतुः ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । हृतैः शिरोभिः चिरेण पेते ॥ ४६ ॥

हस्तिसंग्रामे तीक्ष्णैः क्षुराग्रैः चक्रैः पृथक्कृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिषु संलग्नकेशानि निषादिनां शिरांसि दीर्घकालेन पेतुरिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–हाथियोंके युद्धमें क्षुरेके समान तीक्ष्णधारवाले चक्रोंसे छेदे हुए श्येनपक्षीके नखोंमें केश उलझनेके कारण हाथीपर चढनेवालोंके शिर देरमें गिरे ॥ ४६ ॥

श्येन=श्यै+इनन् । क्षुरः–क्षुर–कः ।

पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ॥
तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकांक्ष ॥ ४७ ॥

अन्वयः । पूर्वं प्रहर्त्ता अश्वसादी प्रतिप्रहाराक्षमं तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं रिपुं भूयः न जघान, (किं तु) प्रत्याश्वसन्तम् (तं) आचकांक्ष ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । प्रहर्त्रा अश्वसादिना प्रतिप्रहाराक्षमः तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहः रिपुः न जघ्ने प्रत्याश्वसन् (सः) आचकांक्षे ॥ ४७ ॥

पूर्वं प्रहर्ता तुरंगसादी प्रतिप्रहारे असमर्थं अश्वस्कंधे न्यस्तशरीरं शत्रुं पुनर्न जघान किन्तु तस्य पुनरुज्जीवनमाचकांक्षेति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–पहले प्रहार करनेवाले अश्वारोहीने, प्रहार करनेमें असमर्थ घोडेके स्कंधमें देह रक्खेहुए शत्रुपर फिर प्रहार नहीं किया, किंतु उसके जीनेकी इच्छा की ॥४७॥

स्कंध=स्कंद्यते आरुह्यते कर्मणि घञ् ।

तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः ॥
उद्यन्तमग्निं शमयाम्बभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण ॥ ४८ ॥

अन्वयः । तनुत्यजां वर्मभृतां बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिः विकोशैः असिभिः उद्यन्तमग्निं विविग्नाः गजाः करशीकरेण शमयांबभूवुः ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । उद्यन् अग्निः विविग्नैः गजैः शमयांचक्रे ॥ ४८ ॥

शरीरेषु निःस्पृहाणां वर्मधारिणां सम्बन्धिभिः बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिः कोशादुद्धृतैः कृपाणैः उत्थितं वह्निम् भीता गजाः शुण्डानिर्गतसलिलेन शांतं चक्रुः इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–शरीरोंमें इच्छा न करनेवाले कवचधारियोंके, वडे दांतोंमें लगनेसे नंगे खड्गोंसे उठी हुई अग्निको डरेहुए हाथियोंने सूंडके जलसे बुझाया ॥ ४८ ॥

दन्तेषु=दम्+तन् ।

शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव ॥
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः ॥ ४९ ॥

अन्वयः । शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैः शोणितमद्यकुल्या चषकोत्तरा इव रणक्षितिः मृत्योः पानभूमिरिव रराज ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्यया शोणितमद्यकुल्यया चषकोत्तरया इव रणक्षित्या पानभूम्या इव रेजे ॥ ४९ ॥

शराच्छिन्नशिरःफलैः संपन्ना भ्रष्टैः शिरस्त्रैः रुधिरमद्यप्रवाहा चषकोत्तरा इव रणभूमिः मृत्योः पानभूमिरिव दिदीपे ॥ ४९ ॥

भा०–शरोंसे कटे हुए शिररूपी फलोंसे भरी गिरेहुए शिरटोपरूपी कटोरे आगे धरी हुई रुधिररूपी मदिराकी नदीवाली रणभूमि, मृत्युकी पानभूमिके समान शोभित हुई ॥ ४९ ॥

चषकः=चष भक्षणे कुन् ।

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि ॥
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार ॥ ५० ॥

अन्वयः । विहंगैः उपान्तयोः निष्कुषितं भुजच्छेदं तेभ्यः आक्षिप्य पिशितप्रिया अपि शिवा केयूरकोटिक्षततालुदेशा (सती) अपाचकार ॥ ५० ॥

वाच्यप० । पिशितप्रियया अपि शिवया केयूरकोटिक्षततालुदेशया (सत्या) अपाचक्रे॥५०॥

प्रान्तयोः पक्षिभिः खण्डितं बाहुखंडं पक्षिभ्यः आच्छिद्य मांसप्रियापि शृगाली केयूराग्रेण हततालुदेशा सती तत्याज इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०–पक्षियोंसे दोनोंओर कुरेदा हुआ भुजाका खण्ड, उन्हीं पक्षियोंसे गिरवाकर मांसका लोभकरनेवाली गीदडनी भुजबंदकी नोकसे तालू छिदनेके कारण उसे छोड देती हुई ॥ ५० ॥

निष्कुषितं=निर्+कुष+क्त ।

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य ॥
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श ॥ ५१ ॥

अन्वयः । द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः कश्चित् सद्यः विमानप्रभुतामुपेत्य वामांगसंसक्तसुरांगनः (सन्) समरे स्वं नृत्यत्कबंधं ददर्श ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । द्विषत्खड्गहृतोत्तमांगेन, केनचित् वामांगसंसक्तसुरांगनेन (सता) नृत्यत्कबंधः ददृशे ॥ ५१ ॥

द्विषतः कृपाणेन छिन्नशिराः कश्चिद्भटः सद्यः देवत्वं प्राप्य सुरांगनासहितः सन् युद्धे नृत्यन्तं निजं रुण्डमवलोकयामासेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०–शत्रुओंके खड्गसे शिर कटनेसे कोई वीर तत्काल विमानकी प्रभुता (देवतापन) को प्राप्त होकर वाम अंगमें अप्सरालिये युद्धमें अपना नाचता हुआ कवन्धको देखने लगा ॥ ५१ ॥

कबन्धः=कं मुखं बध्यते छिद्यतेऽस्मात् बन्ध=घञ् ।

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित् ॥
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ॥५२॥

अन्वयः । कौचित् अन्योन्यसूतोन्मथनात् तौ एव सूतौ रथिनौ च अभूताम् (तावेव) व्यश्वौ (सन्तौ) गदासंप्रहारौ (अभूताम्) (पुनः) भग्नायुधौ (सन्तौ) बाहुविमर्दनिष्ठौ (अभूताम् ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । काभ्यांचित् ताभ्यां सूताभ्यां रथिभ्यां च अभावि, व्यश्वाभ्यां (सद्भ्यां) गदासंप्रहाराभ्यां, भग्नायुधाभ्यां बाहुविमर्दनिष्ठाभ्याम् (अभावि) ॥ ५२ ॥

कौचित् भटौ परस्परसारथिनिधनात् तावेव सारथिनौ युद्धकर्तारौ तावेव चाभूताम् तावेव नष्टतुरगौ सन्तौ गदायुद्धतत्परौ चाभूताम् पुनः नष्टायुधौ सन्तौ बाहुयुद्धसक्तावभूतामिति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०–कोई दो वीर परस्पर सारथियोंके मारेजानेसे वही सारथी और रथी हुए, फिर घोडे नष्ट होनेपर गदाओंका प्रहार करते हुए फिर आयुध टूट जानेसे कुस्ती लडकर मृतक हुए ॥ ५२ ॥

उन्मथनात्=उद्+मन्थ+ल्युट् ५ ।

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव ॥
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः ॥५३॥

अन्वयः । परस्परेण क्षतयोः समकालमेव उत्क्रान्तवाय्वोः कयोश्चित् प्रहर्त्रोः अमर्त्यभावेऽपि एकाप्सरःप्रार्थितयोः (सतोः) विवादः आसीत् ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । विवादेन x अभूयत ॥ ५३ ॥

अन्योन्यनष्टशरीरयोः युगपदुद्गतप्राणयोः कयोश्चित् प्रहर्त्रोः एकस्यां सुराङ्गनायां प्रार्थनातत्परयोः सतोः देवत्वेपि कलहः आसीदिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०–परस्पर विद्ध हुए एकसाथ प्राण त्यागेहुए कोई दो वीर देवत्वको प्राप्त होकर भी एक अप्सरामें चाह रखनेके कारण विवाद करने लगे ॥ ५३ ॥

अप्सरस्=अद्भ्यः सरन्ति–सृ+असुन् ।

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम् ॥
पश्चात्पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी ॥ ५४ ॥

अन्वयः । तौ उभौ व्यूहौ पश्चात्पुरोमारुतयोः पर्य्यायवृत्त्या प्रवृद्धौ महार्णवोर्मी इव इतरेतरस्मात् अव्यवस्थं जयं भंगं च आपतुः ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । ताभ्याम् उभाभ्याम् अव्यवस्थः जयो भंग आपे ॥ ५४ ॥

तौ उभौ सेनाविन्यासौ पश्चात्पुरः पवनयोः क्रमवृत्त्या वृद्धिं गतौ सागरोर्मी इव अन्योन्यस्मात् अनियतं पराभवं च प्राप्तवन्ताविति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—दोनों सेनाओंने पीछे आगेकी पवनद्वारा क्रमसे वढाई हुई महासमुद्रकी दो लहरोंकी समान जय और पराजय पाई ॥ ५४ ॥

व्यूहः=वि+ऊह+घञ् । पर्याय=परि+इण्+घञ् ।

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव ॥
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः ॥ ५५ ॥

अन्वयः । महौजा अजः परेण वले भग्नेऽपि अरिसैन्यं प्रति एव ययौ, समीरणेन धूमः निवर्त्येत, वह्निस्तु यतः कक्षः (भवति) तत एव (प्रवर्तते) ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । महौजसा अजेन यये, समीरणः धूमं निवर्त्तयेत, वह्निना तु यतः कक्षेण (भूयते) तत एव (प्रवर्त्यते) ॥ ५५ ॥

महावलिष्ठः अजः शत्रुणा स्वसैन्ये भग्नेपि शत्रुसैन्यं प्रत्येव जगाम, तथाहि पवनेन धूमः कक्षात् निवर्त्येत अग्निस्तु यत्र तृणं तत्रैव प्रवर्तते इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—महापराक्रमी अज शत्रुओंसे अपनी सेना भंग होनेपर भी शत्रुकी सेना हीकीओर गया पवनसे धुँआँ निवृत्त होजाता है, परन्तु अग्नि तो जहां तृण होता है वहीं प्रवृत्त होती है ॥ ५५ ॥

वह्नि=वह+नि । कक्षः=कष+स ।

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ॥
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । रथी निषंगी कवची धनुष्मान् दृप्तः एकवीरः सः राजन्यकं महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तम् अर्णवाम्भः इव निवारयामास ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । रथिना निषंगिणा कवचिना धनुष्मता दृप्तेन एकवीरेण तेन महावराहेण राजन्यकं निवर्त्तयांचक्रे ॥ ५६ ॥

स्यन्दनारूढः धृततूणीरः वर्मधरः धानुष्कः रणदुर्मदः असहायभटः सोऽजः राजसमूहं महावराहः कल्पांतसमये उद्वेलं सागरजलमिव निवारयामासेति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०—रथपर चढे तूण लगाये कवच धारे धनुष लिये गर्वित वह एक वीर राजाओंके समूहको कल्पांतमें समुद्रके वढे हुएजलको वराहकी समान निवारण करताहुआ ॥ ५६ ॥

क्षयः=क्षि+अच् ।

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ ॥
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान् ॥५७॥

अन्वयः। अजः आजौ दक्षिणं हस्तं तूणमुखेन वामं व्यापारयन् (सन्) अलक्ष्यत, अस्य योद्धुः सकृत् आकर्णकृष्टा मौर्वी रिपुघ्नान् बाणान् सुषुवे इव ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । अजेन व्यापारयता (सता) अलक्ष्यत आकर्णकृष्टया मौर्व्या रिपुघ्नाः वाणाः सुषुविरे ॥ ५७ ॥

सोऽजः युद्धे दक्षिणभुजं निषंगच्छिद्रेण शोभनं व्यापारयन्नदृश्यत अस्य योद्धुरजस्य सकृत् कर्णपर्य्यन्तमाकृष्टा ज्या शत्रुघ्नान् शरान् जनयामास इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०—वह संग्राममें सुघड़ दक्षिणहाथको तरकसके मुखपर रखता हुआ दीखा, और इस युद्ध करनेवालेकी एकवार खेंचीहुई प्रत्यश्चाने शत्रुके संहार करनेहारे मानों शर उत्पन्न किये ॥ ५७ ॥

मौर्वी=मूर्वालता तत्तन्तुना निर्वृत्ता+अण् ।

स रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः ॥
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः ॥ ५८ ॥

अन्वयः। सः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः व्यक्तोर्ध्वरेखाः भ्रुकुटीः वहद्भिः भल्लनिकृत्तकण्ठैः हुङ्कारगर्भैः द्विषतां शिरोभिः गां तस्तार ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । तेन गौः तस्तरे ॥ ५८ ॥

सः कुमारः क्रोधदष्टाधिकरक्तैः ओष्ठैः स्फुटोर्ध्वरेखान् भ्रूभंगान् वहद्भिः शराच्छिन्नकण्ठैः हुंकारपूर्णैः शत्रूणां शिरोभिः संग्रामस्थलं छादयामासेति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०—उसने क्रोधसे दांतोंके चवाये अधिकलाल होठोंद्वारा प्रगट हुई ऊर्ध्वरेखा सहित भृकुटीवाले, तथा भालोंसे गला कटे हुंकारशब्द करते हुए शत्रुओंके शिरोंसे पृथ्वी पाट दी ॥ ५८ ॥

भल्लः=भल्ल+अच् । निकृत्त=नि+कृत्+क्तः ।

सर्वैर्बलांगैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च ॥
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव ॥ ५९ ॥

अन्वयः। द्विरदप्रधानैः सर्वैः बलांगैः कंकटभेदिभिः सर्वायुधैश्च, सर्वप्रयत्नेन च सर्वे एव भूमिपालाः युधि तस्मिन् (अजे) प्रजह्रुः ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । सर्वैरेव भूमिपालैः प्रजह्रे ॥ ५९ ॥

हस्तिमुख्यैः सम्पूर्णैः हस्त्यश्वरथपदातिनाः सेनांगैः कवचभेदिभिः सर्वायुधैश्च सर्वप्रयत्नेन सर्व एव राजानः संग्रामे तस्मिन् कुमारे प्रजह्रुः इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—हाथीमुख्यवाली सब सेनाके अंगोंसे और कवच भेदन करनेवाले शस्त्रोंसे और सम्पूर्ण यत्नोंसे सम्पूर्ण राजा; युद्धमें उस अजपर प्रहार करते हुए ॥ ५९ ॥

कङ्कटः=कं देहं कटति क+कट+मुम् ।

सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः ॥
नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव ॥ ६० ॥

अन्वयः । परेषाम् अस्त्रव्रजैः छन्नरथः सः नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित् प्रकाशेन विवस्वता इव ध्वजाग्रमात्रेण लक्ष्यः बभूव ॥ ६० ॥

वाच्यप० । छन्नरथेन तेन नीहारमग्नेन दिनपूर्वभागेन लक्ष्येण बभूवे ॥ ६० ॥

शत्रूणामस्त्रसमूहैश्छन्नस्यन्दनः सोऽजः हिममग्नप्रभातः किंचिल्लक्ष्येण सूर्येण इव ध्वजाग्रमात्रेण किंचिल्लक्ष्यते स्म इति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—शत्रुओंके अस्त्रसमूहोंसे छिपेहुए रथवाला वह अज कुछएक चमकते हुए सूर्यसे कुहरमें डूबे हुए प्रभातकी समान ध्वजाके अग्रभागसे लक्षित होता था ॥६०॥

छन्नः=छद्+णिच्+क्त+निपातः । विवस्वत्=वि+वस्+क्विप् । अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः ।

प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः ॥
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः ॥६१॥

अन्वयः । अधिराजसूनुः कुसुमास्त्रकान्तः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः असौ कुमारः प्रियंवदात्प्राप्तं प्रस्वापनं गान्धर्वम् अस्त्रं राजसु प्रायुंक्त ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । अधिराजसूनुना कुसुमास्त्रकान्तेन स्वप्ननिवृत्तलौल्येनानेन कुमारेण प्रियंवदाप्राप्तं प्रस्वापनं गान्धर्वम् अस्त्रं प्रायुज्यत ॥ ६१ ॥

सम्राट्सुतः मन्मथसदृशः जागरणशीलः असौ कुमारः प्रियंवदात् गंधर्वात् प्राप्तं गन्धर्वदेवताकं निद्रोत्पादकमस्त्रं नृपेषु प्रयुक्तवानिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—महाराजके पुत्र कामदेवकी समान सुन्दर निद्रा त्यागेहुए इस कुमारने प्रियंवद गन्धर्वसे पाये हुये निद्रा उत्पन्न करनेवाले गन्धर्वोंके अस्त्रको राजोंपर छोडा॥६१॥

स्वप्न=स्वप्+नन् ।

ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम् ॥
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः । ततः धनुष्कर्षणमूढहस्तम् एकांसपर्यस्ताशिरस्त्रशालं ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं नरदेवसैन्यं निद्राविधेयं (सत्) तस्थौ ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । धनुष्कर्षणमूढहस्तेन एकांसपर्य्यस्ताशिरस्त्राणजालेन ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहेन नरदेवसैन्येन निद्राविधेयेन (सता) तस्थे ॥ ६२ ॥

ततः चापकर्षणे व्याप्तभुजमेकस्मिन्नंसे स्रस्तं शिरस्त्राणसमूहं ध्वजस्तंभेषु अवष्टब्धशरीरं नृपाणां सैन्यं निद्रापरवशं तस्थाविति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–तब धनुषखींचनेसे थकितभुजावाली एक कंधेपर पगडियोंके लपेट पडीहुई ध्वजाके स्तंभोंमें देह लगाये राजाओंकी सेना निद्राके वशीभूत हो स्थित रह-गई ॥ ६२ ॥

शिरस्त्र=शिरस्त्रायते त्रै+क।

ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः ॥
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवाबभासे ॥ ६३ ॥

अन्वयः। ततः कुमारः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे जलजं निवेश्य दध्मौ तेन एकवीरः स्वहस्तार्जितं मूर्तं यशः पिबन् इव आबभासे ॥ ६३ ॥

वाच्यप०। कुमारेण जलजः दध्मे×–एकवीरेण+पिबता आबभासे ॥ ६३ ॥

अथ अजः इन्दुमत्याः आस्वादितमाधुर्ये अधरोष्ठे शंखं धृत्वा मुखपवनेन पूरयामास तेन शंखेन एकशूरः सः स्वभुजोपार्जितं मूर्तिमद्यशः पिबन्निवः शुशुभे इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०–फिर कुमार अजने प्यारीसे रस चाखेहुए नीचेके होठपर शंखको रखकर बजाया, जिससे वह एकवीर अपने हाथोंसे प्राप्त किया मूर्तिमान् यश पानकरताहुआसा शोभित हुआ ॥ ६३ ॥

जलजं०जले जायते जन–डः। दध्मौ=ध्मा+लिट्। धमति। अधमत्। अध्मासीत्। कर्मणि ध्मायते। ध्मानीयम्। ध्माथी। ध्मातुम्। ध्मातव्यम्। ध्मेयम्। धमन्।

शंखस्वनाभिज्ञतया निवृत्तास्तं सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः ॥
निमीलितानामिव पंकजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशांकम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः। शंखस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः स्वयोधाः सन्नशत्रुं तं निमीलितानां पंकजानां मध्ये स्फुरंतं प्रतिमाशशांकमिव ददृशुः ॥ ६४ ॥

वाच्यप०। निवृत्तैः स्वयोधैः सन्नशत्रुः सः निमीलितानां पंकजानां मध्ये स्फुरन् शशांकः इव ददृशे ॥ ६४ ॥

शंखध्वनेः प्रत्यभिज्ञातत्वात् प्रत्यागताः स्वसैन्ययोधाः निद्राणद्विषं तं कुमारं मुकुलितानामुत्पलानां मध्ये स्फुरंतं प्रतिबिंबचन्द्रमिव ददृशुः इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०–शंखके शब्दकी पहचानसे लौटेहुए योधाओंने सोतेहुए शत्रुवाले उस कुमारको मूँदे हुए कमलोंके मध्यमें प्रकाशमान चंद्रमाके बिंबकी समान देखा ॥ ६४ ॥

प्रतिमा–प्रति+मा+क।

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम् ॥
यशो हृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ॥६५॥

अन्वयः । संप्रति राघवेण वः यशो हृतं जीवितं तु कृपया न इति वर्णाः सशोणितैः शिलीमुखाग्रैः पार्थिवानां केतुषु निक्षेपिताः ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । संप्रति राघवः यशो हृतवान् जीवितं न इति वर्णैः निक्षेपितैः (भूयते) ॥६५॥

हे नृपाः संप्रति रघुकुमारेण युष्माकं यशो गृहीतं जीवितन्तु कृपया न हृतम् एतदर्थप्रतिपादकं वचनं रुधिरलग्नैः अयोमुखैः शरैः नृपाणां ध्वजस्तंभेषु लिलेख इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—हे राजाओ! रघुकुमारने तुम्हारा यश तो हरण किया, और कृपाकरके प्राण नहीं हरण किये इस प्रकारके अक्षर शोणितयुक्त मुखवाले बाणोंकी नोकोंसे राजाओंकी ध्वजाओंमें लिख दिये ॥ ६५ ॥

वर्णाः=वर्ण+घञ् बहुव० ।

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ॥
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥ ६६ ॥

अन्वयः । चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः सः भीता प्रिया एत्य वचो बभाषे ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । चापकोटीनिहितैकबाहुना शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिना ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुना तेन भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥ ६६ ॥

धनुष्कोटीनिहितैकभुजः शिरस्त्रस्य अपनयनेन श्लथकेशबंधः मस्तके श्रमवारिबिन्दुयुक्तः स कुमारः विह्वलां प्रियामेत्य वचनमूचे इति सरलार्थ ॥ ६६ ॥

भा०—धनुषकी कोटिमें एक भुजा रक्खे हुए, शिरपेंच उतारनेसे ढीले केशबन्धन और माथेपर परिश्रमकी बूंदोंवाला वह कुमार भयभीत हुई प्रियाके पास जाकर बोला ॥ ६६ ॥

कोटी=कुट+अच्+ङीष् ।

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि पश्यानुमता मयासि ॥
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । हे वैदर्भि ! (त्वम्) इतः अर्भकहार्यशस्त्रान् परान् पश्य, मया (त्वम्) अनुमतासि, एभिः एवं विधेन आहवचेष्टितेन मम हस्तगता त्वं प्रार्थ्यसे ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । हे वैदर्भि ! (त्वया) अर्भकहार्यशस्त्राः पराः दृश्यन्ताम् अनुमतया (त्वया) भूयते ते मम हस्तगतां त्वां प्रार्थयन्ते ॥ ६७ ॥

हे इन्दुमति ! इदानीं बालकापहार्यशस्त्रानरीनवलोकय मया द्रष्टुमनुमतासि एभिर्भूमिपालैः एवं-विधेन निद्रारूपेण युद्धकर्मणा मम भुजप्राप्ता त्वम् अपजिहीर्ष्यसे इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–हे इन्दुमति ! अब तू इन बालकोंके छीनने योग्य शस्त्रवाले शत्रुओंको देख मैंने तुझे आज्ञा दी, यह इस प्रकारकी संग्रामचेष्टासे मेरे हाथमें आई हुई तेरे लेनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६७ ॥

प्रार्थ्यसे=प्र+अर्थ+क०लट्। अर्थयते। अर्थयाम्बभूव–आस–चक्रे। आर्थयत्। आर्तिथत। कर्म०अर्थ्यते। अर्थनीयम्। अर्थकः। युच् अर्थना। अर्थयितुम्। अर्थयितव्यः। प्रार्थ्य। अर्थ्यमानः। अर्थयमानः।

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे ॥
निःश्वासबाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः॥ ६८ ॥

अन्वयः। प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात् सद्यः विमुक्तं तस्याः मुखं निश्वासबाष्पापगमात् आत्मीयं प्रसादं प्रपन्नः आत्मदर्शः इव आबभासे ॥ ६८ ॥

वाच्यप०। तस्याः मुखेन ++ प्रपन्नेन आत्मदर्शेन इव आबभासे ॥ ६८ ॥

शत्रूत्थाद्दुःखात्तत्क्षणं विमुक्तमिन्दुमत्या मुखं निःश्वासजलापगमात् उज्ज्वलतां प्राप्तः दर्पण इव चकासेति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०–शत्रुओंके भयके कष्टसे छुटाहुआ उसका मुख तत्काल श्वासकी भाफके पोछनेसे उज्ज्वलता पाये हुए दर्पणकी समान प्रकाशित हुआ ॥ ६८ ॥

निःश्वासः=निर्+श्वस+घञ्।

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्॥
स्थली इवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः। सा हृष्टापि ह्रिया विजिता प्रियं साक्षात् स्वयं नाभ्यनंदत् (किन्तु) नवांभःपृषताभिवृष्टा स्थली अभ्रवृंदं मयूरकेकाभिरिव सखीनां वाग्भिः (अभ्यनन्दत) ॥ ६९ ॥

वाच्यप०। तया प्रियः साक्षात् स्वयं नाभ्यनन्द्यत स्थल्या अभ्रवृंदम् इव अभ्यनन्द्यत ॥६९॥

सा इन्दुमती स्वामिनः पुरुषार्थेन प्रसन्नापि लज्जया विजिता प्रियं तम् अजं स्वयं न प्रशशंस किन्तु नूतनैः जलबिन्दुभिः अभिषिक्ता पृथ्वी वारिदसमूहं मयूरकेकाभिरिव सखीनां वचोभिरभ्यनंददिति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०–वह इन्दुमती प्रसन्न हुई भी लाजसे जीतीजाकर प्रियकी स्पष्ट बड़ाई न करशकी, किन्तु नवीन जलकी बूंदोंसे छिडकीहुई पृथ्वी मेघसमूहको मोरोंके शब्दोंकी समान सखियोंकी वाणीसे सराहना कराती हुई ॥ ६९ ॥

स्थली=स्थल=ङीप्।

इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञा-
मुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः ॥

रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा।
समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्ता बभूव ॥ ७० ॥

अन्वयः । अवद्यादपेतः स इति राज्ञां शिरसि वामं पादमाधाय, अनवद्यां ताम् उदवहत्, तस्य रथतुरगरजोभिः रूक्षालकाग्रा सा मूर्ता समरविजयलक्ष्मीः बभूव ॥ ७० ॥

वाच्यप० । तेन सा उदौह्यत+×रूक्षालकाग्रया तया मूर्तया समरविजयलक्ष्म्या इव बभूवे ॥ ७० ॥

दोषशून्यः सोजः एवं नृपतीनां शिरसि वामं चरणमाक्षिप्य दोषरहितां ताम् इन्दुमतीमुपानयत्, तस्य कुमारस्य स्यन्दनतुरगाणां रेणुभिः परुषालकाग्रा सा इन्दुमत्येव मूर्तिमती युद्धविजयलक्ष्मीः बभूवेति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०—इस प्रकार दोषरहित वह कुमार राजोंके शिरपर बायां पैर रखकर निन्दारहित उसको लेगया उसके रथ और घोडोंकी रजसे रूखे बालोंवाली वही युद्धकी मूर्तिमान् विजयलक्ष्मी हुई ॥ ७० ॥

तुरगः=तुरेण वेगेन गच्छति गम्+डः ।

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम् ॥
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभून्न
हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥ ७१ ॥

अन्वयः । प्रथमपरिगतार्थः रघुः विजयिनं श्लाघ्यजायासमेत सन्निवृत्तं तम् अभिनन्द्य, तदुपहितकुटुम्बः सन् शान्तिमार्गोत्सुकोऽभूत्, तथाहि कुलधुर्ये सति सूर्यवंश्या गृहाय न (भवन्ति) ७१

वाच्यप० । प्रथमपरिगतार्थेन रघुणा विजयिनं श्लाघ्यजायासमेतं सन्निवृत्तं तम् अभिनन्द्य तदुपहितकुटुम्बेन सता शान्तिमार्गोत्सुकेन अभावि सूर्यवंश्यैः गृहाय न (भूयते) ॥ ७१ ॥

प्रागेव ज्ञातवृत्तान्तः रघुः विजययुक्तं शोभनभार्यासमेतं समागतं तमजमभिनन्द्य तस्मिन्नजे समर्पितकुटुम्बभारः सन् मोक्षमार्गे उत्कण्ठितोऽभूत्, तथाहि वंशधुरंधरे पुत्रे जाते सति सूर्यवंश्याः गृहस्थाश्रमाय न भवन्तीति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०—प्रथम ही समाचार सुने हुए रघुने श्रेष्ठ बहू सहित समीप आये रणविजयीको सराह कर और उसे कुटुम्बसमर्पणकर मोक्षमार्गकी इच्छा की, कारण कि कुलधारण करनेवाले पुत्रके होनेपर सूर्यवंशी घरमें नहीं रहते ॥ ७१ ॥

श्लाघ्य=श्लाघ+ण्यत् । जाया=जन+यक् ।

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ।

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः ॥
वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम् ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ पार्थिवः ललितं विवाहकौतुकं बिभ्रत एव तस्य अपरामिन्दुमतीमिव वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोत् ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ पार्थिवेन×तस्य अपरा इन्दुमतीव वसुधापि हस्तगामिनी अक्रियत ॥ १ ॥

अथ नृपः सुभगं विवाहहस्तसूत्रं बिभ्रत एव तस्य कुमारस्य द्वितीयमिन्दुमतीमिव पृथ्वीमपि हस्तगामिनीमकरोदिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—तब रघुने उस मनोहर विवाहकंकण धारण कियेहुएको पृथ्वी भी दूसरी इन्दुमतीके समान समर्पण करदी ॥ १ ॥

दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ॥
तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ॥ २ ॥

अन्वयः । नृपसूनवः यत् दुरितैरपि आत्मसात् कर्तुं प्रयतंते हि उपस्थितं, तदजः पितुराज्ञा इति अग्रहीत् भोगतृष्णया न (अग्रहीत) ॥ २ ॥

वाच्यप्र० । नृपसूनुभिः प्रयत्यते अजेन+अग्राहि ॥ २ ॥

राजसुताः यद्राज्यं विषप्रयोगादिनिषिद्धोपचारैरपि स्वाधीनं कर्तुं यतन्ते हि स्वतः सभागतं तद्राज्यमजः पितुराज्ञेति हेतोः स्वीचकारेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—राजपुत्र जिस राज्यको कुत्सित उपायोंसेभी अपने अधीन करनेका यत्न करतेहैं, प्राप्त हुए उस राज्यको अजने पिताकी आज्ञासे स्वीकार किया भोगकी इच्छासे नहीं ॥ २ ॥

अनुभूय वसिष्ठसंभृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम् ॥
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी कथयामास कृतार्थतामिव ॥ ३ ॥

अन्वयः । मेदिनी वसिष्ठसंभृतैः सलिलैः तेन सह अभिषेचनमनुभूय विशदोच्छ्वसितेन कृतार्थतां कथयामासेव ॥ ३ ॥ ॥

वाच्यप० । मेदिन्या कृतार्थता कथयाञ्चक्रे ॥ ३ ॥

पृथ्वी वसिष्ठेन संभृतैः जलैः तेन अजेन सहाभिषेचनमनुभूय स्फुटमानंदवृंहणेन गुणवद्भर्तृलाभकृतं साफल्यं कथयामासेवेति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—पृथ्वीने वसिष्ठके निर्मलजलोंसे उसके साथ अभिषेकको प्राप्त हो उज्ज्वल भाँफसे मानों अपनी सफलता जताई ॥ ३ ॥

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः ॥
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥ ४ ॥

अन्वयः । अथर्वविदा गुरुणा कृतक्रियः स परैः दुरासदः बभूव अस्त्रतेजसा सहितं यत् ब्रह्म अयं पवनाग्निसमागमो हि ॥ ४ ॥

वाच्यप० । तेन दुरासदेन बभूवे+ब्रह्मणा (भूयते) समागमेन (भूयते) ॥ ४ ॥

अथर्ववेदाभिज्ञेन गुरुणा वसिष्ठेन कृताभिषेकसंस्कारः सोऽजः शत्रुभिः दुस्सहो बभूव तथा हि क्षत्रतेजसा युक्तं यत् ब्रह्मतेजो वाय्वग्नितुल्यं भवतीति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—अथर्ववेदके जाननेवाले गुरुसे अभिषेकको प्राप्त हो अज शत्रुओंको दुस्सह हो गया, कारण कि ब्रह्मतेजसहित जो क्षत्रिय तेज है यह अग्नि और वायुका संयोग है ॥ ४ ॥

रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः ॥
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ ५ ॥

अन्वयः । प्रजाः नवेश्वरं तं निवृत्तयौवनं रघुमेवामन्यंत हि सः तस्य केवलां श्रियं न प्रतिपेदे (किं तु) सकलान् गुणानपि (प्रतिपेदे) ॥ ५ ॥

वाच्यप० । प्रजाभिः नवेश्वरः स निवृत्तयौवनः रघुरेव मेने, तेन केवला श्रीः न प्रतिपेदे (किन्तु) सकलाः गुणा अपि प्रतिपेदिरे ॥ ५ ॥

प्रकृतयः नवेश्वरं तमजं प्रत्यावृत्तयौवनं रघुमेवावमन्यन्त यस्मात्सोऽजस्तस्य रघोः केवलमेकां लक्ष्मीं न प्रतिपेदे सकलान् शौर्यदाक्षिण्यादीन्गुणानपि प्रतिपेदेति इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—प्रजाने नये राजा उस अजको यौवनलौटाहुवा रघु ही माना, कारण कि अज रघुकी लक्ष्मीहीं को नहीं किन्तु उसके सब गुणोंको भी प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव संगतम् ॥
पदमृद्धमजेन पैतृकं विनयेनास्य नवं च यौवनम् ॥ ६ ॥

अन्वयः । द्वयमेव शुभंयुना द्वितयेन संगतम् अधिकं शुशुभे, पैतृकं ऋद्धं पदम् अजेन, अस्य नवं च यौवनं विनयेन (शुशुभे) ॥ ६ ॥

वाच्यप० । द्वयेन संगतेन शुशुभे+ऋद्धं पदम् अजः शोभयामास नवं च यौवनं विनयः (शोभयामास) ॥ ६ ॥

पितुरागतं समृद्धं राज्यमजेन अस्य नवं यौवनम् इन्द्रियजयेन इत्थं द्वयमेव शुभवता द्वितयेन युतं सदधिकं शुशुभे । इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०–यह दो ही अच्छे जोडेके संगसे अधिक शोभित हुए, अजके समागमसे उसके कुलकी पदवी, और उसकी नम्रताके संयोगसे नवीन युवा अवस्था ॥ ६ ॥

सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति ॥
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव ॥ ७ ॥

अन्वयः । महाभुजः स अचिरोपनतां मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव सहसा इयम् उद्वेगं व्रजेदिति सदयं बुभुजे ॥ ७ ॥

वाच्यप० । महाभुजेन तेन वधूः इव मेदिनी बुभुजे ॥ ७ ॥

महाबाहुः सोजः नवोपगतां वसुधां नवविवाहितां वधूमिव बलात्कारे कृते सति इयं भयं व्रजेदिति हेतोः कृपायुक्तो भुक्तवानिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०–महाबाहु उस अजने नई पाईहुई उस पृथ्वीको नये विवाह कीहुई बहूकी समान 'बलात्कारसे यह डरजायगी,' इस्से कृपापूर्वक भोगी ॥ ७ ॥

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ॥
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित् ॥ ८ ॥

अन्वयः । प्रकृतिषु सर्वः अहमेव महीपतेः मतः इति अचिन्तयत् उदधेः निम्नगाशतेषु अस्य क्वचित् विमानना न अभवत् ॥ ८ ॥

वाच्यप० । सर्वेण+अचिन्त्यत । विमाननया न अभूयत ॥ ८ ॥

प्रजासु मध्ये सर्वोपि जनः अहमेव नृपतिना मन्यमानः इत्यमन्यत सागरस्य निम्नगाशतेष्विवास्याजस्य क्वचिदपि तिरस्कारो नाभवदिति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०–प्रजामें सब ही मनुष्य 'मैं ही राजाका प्रियहूं' ऐसा जान्तेहुए, सैंकडों नदियोंमें सागरकी समान उसकी अप्रीति किसीमें न थी ॥ ८ ॥

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव ॥
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन् ॥ ९ ॥

अन्वयः । स भूयसा खरः न मृदुः न (किन्तु) पुरस्कृतमध्यमक्रमः (सन्) पवमानः पृथ्वीरुहानिव नृपाननुद्धरन् नमयामास ॥ ९ ॥

वाच्यप०। तेन खरेण न मृदुना न (बभूवे) पुरस्कृतमध्यमक्रमेण सता पवमानेन पृथ्वीरुहा इव नृपा अनुद्धरतां नमयाञ्चक्रिरे ॥ ९ ॥

सोजः वाहुल्येन तीक्ष्णेन भूयसा मृदुरपि न किन्तु मध्यमपरिपाटीमुपगतः सन् पवनः तरूनिव शत्रूननुत्पाटयन्नेव नमयामासेति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०—वह राजा न बहुत तीक्ष्ण और न अति कोमल किन्तु मध्यमवृत्ति अंगीकार किये हुए पवन जिस प्रकार वृक्षोंको झुकाती है इसप्रकार राजोंको विना उखाड़े झुकाता हुआ ॥ ९ ॥

अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया ॥
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत् ॥ १० ॥

अन्वयः। अथ रघुः आत्मजम् आत्मवत्तया प्रकृतिषु प्रतिष्ठितं वीक्ष्य विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि विषयेषु निस्पृहः अभवत् ॥ १० ॥

वाच्यप०। अथ रघुणा निःस्पृहेण अभूयत ॥ १० ॥

तदनंतरं रघुः पुत्रम् अजं निर्विकारमनस्कतया अमात्यादिषु रूढवलं विलोक्य अनित्येषु स्वर्गस्थेषु विषयेष्वपि निर्गतेच्छोऽभवत् ॥ १० ॥

भा०—तब रघुने अपने पुत्रको प्रतिष्ठासे राजमंत्रियोंमें प्रतिष्ठित देखकर स्वर्गके भी विनाशी सुखोंमें इच्छा छोडदी ॥ १० ॥

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः ॥
पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे ॥ ११ ॥

अन्वयः। दिलीपवंशजाः परिणामे गुणवत्सुतरोपितश्रियः तरुवल्कवाससां संयमिनां प्रयताः पदवीं प्रपेदिरे ॥ ११ ॥

वाच्यप०। दिलीपवंशजैः परिणामे गुणवत्सुतरोपितश्रीभिः पदवी प्रपेदे ॥ ११ ॥

दिलीपकुलोत्पन्नाः नृपाः वार्द्धके गुणवत्पुत्रेषु स्थापितलक्ष्मीकाः नियमिताश्च सन्तः वृक्षवल्कलवाससां संन्यासिनां गतिं प्रपेदिरे ॥ ११ ॥

भा०—दिलीपके वंशवाले वृद्धावस्थामें गुणवान् पुत्रमें लक्ष्मी सौंपकर नियम धारणकर वृक्षोंकी छाल ओढनेवाले यतियोंकी पदवीको प्राप्त होते थे ॥ ११ ॥

तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ॥
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥ १२ ॥

अन्वयः। अरण्यसमाश्रयोन्मुखं पितरं तं (रघुं) सुतः वेष्टनशोभिना शिरसा पादयोः प्रणिपत्य आत्मनः अपरित्यागमयाचत ॥ १२ ॥

वाच्यप०। सुतेन आत्मनः अपरित्यागः अयाच्यत॥ १२॥

वनगमनोन्मुखं पितरं तं रघुं पुत्रः उष्णीषमनोहरेण शिरसा चरणयोः प्रणिपत्य मां परित्यज्य न गन्तव्यमिति प्रार्थितवानिति सरलार्थः॥ १२॥

भा०–वनको जाते हुए रघुको पुत्र अजने मनोहर शिरपेचवाले शिरसे चरणोंमें प्रणाम कर अपने न त्यागनेकी प्रार्थना की॥ १२॥

रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः॥
न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम्॥ १३॥

अन्वयः। आत्मजप्रियः रघुः अश्रुमुखस्य तस्य तदीप्सितं कृतवान्, किन्तु सर्पत्वचमिव व्यपवर्जितां श्रियं पुनः न प्रतिपेदे॥ १३॥

वाच्यपरि०। आत्मजप्रियेण रघुणा तस्य तदीप्सितं कृतं सर्पत्वगिव श्रीः न प्रतिपेदे॥ १३॥

पुत्रप्रियः रघुः शोकाकुलस्य पुत्रस्याभिलषितं चकार किन्त्वहित्वचमिव त्यक्तां लक्ष्मीं पुनर्न प्रापेति सरलार्थः॥ १३॥

भा०–पुत्रवत्सल रघुने आँसू भरे मुखवाले अपने पुत्रकी अभिलाषा पूरी की, परन्तु सर्पकी कैंचलीकी समान अपनी त्यागीहुई लक्ष्मीको फिर स्वीकार न किया१३॥

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः॥
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया॥१४॥

अन्वयः। सः किल अन्त्यम् आश्रमम् आश्रितः पुराद्बहिः आवसथे निवसन् अविकृतेन्द्रियः स्नुषया इव श्रियापि समुपास्यत॥ १४॥

वाच्यप०। तम् आश्रितं निवसन्तम्× अविकृतेन्द्रियम् स्नुषा इव श्रीरपि समुपास्त॥ १४॥

स रघुः संन्यासाश्रममाश्रितः नगराद्बहिस्स्थाने तिष्ठन् जितेन्द्रियः सन् वध्वेव सुतभोग्यया श्रिया शुश्रूषितः इति सरलार्थः॥ १४॥

भा०–प्रसिद्ध है कि संन्यासाश्रम लेकर नगरके वाहरस्थानमें वसते हुए जितेन्द्रिय उस रघुकी पुत्रकी भोगी लक्ष्मीने पुत्रवधूकी समान सेवा की॥ १४॥

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम्॥
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत्॥ १५॥

अन्वयः। प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवम् अभ्युद्यतनूतनेश्वरं तत् कुलं निभृतेन्दुना उदितार्केण च नभसा तुलां समारुरोह॥ १५॥

वाच्यप०। प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवेन अभ्युद्यतनूतनेश्वरेण तेन कुलेन×तुला समारुरुहे॥ १५॥

प्रशमे स्थितं पूर्वनृपम् अभ्युदितं नूतनेश्वरं तत्प्रसिद्धं कुलमस्तमयासन्नशशिना प्रकटिततरणिना च आकाशेन तुलां प्रापेति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—शान्तिमें स्थित हुए पहले राजावाला और ऐश्वर्यमें उठतेहुए नवीन नृपवाला वह कुल अस्त होते हुए चन्द्रमा और उदय होते हुए सूर्यवाले आकाशकी समानताको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥

यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः ॥
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ ॥ १६ ॥

अन्वयः । यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ रघुराघवौ अपवर्गमहोदयार्थयोः धर्मयोः भुवं गतौ अंशौ इव जनैः ददृशाते ॥ १६ ॥

वाच्यप० । जनाः ददृशुः ॥ १६ ॥

यतिनृपचिह्नधारिणौ रघुतत्पुत्रौ मोक्षाभ्युदयफलयोर्धर्मयोः भूलोकमवतीर्णावंशाविव मनुष्यैः दृष्टाविति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—संन्यासी और राजाके चिह्न धारण किये वह रघु और अज दोनों मोक्ष और वैभवरूपी दो फल देनेवाले धर्मोंके पृथ्वीमें आये हुए दो अंशकी समान प्रजासे देखे गये ॥ १६ ॥

(मोक्षदायक निवर्त्तकधर्म और वैभव देनेवाला प्रवर्त्तकधर्म)

अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरजः ॥
अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः ॥ १७ ॥

अन्वयः । अजः अजिताधिगमाय नीतिविशारदैः मंत्रिभिः युयुजे, रघुः अनपायिपदोपलब्धये आप्तैः योगिभिः समियाय ॥ १७ ॥

वाच्यप० । अजं नीतिविशारदा मंत्रिणः युयुजुः, रघुणा समीये ॥ १७ ॥

अजः अजितपदप्राप्तये नीतिकोविदैः मन्त्रिभिः संगतः रघुरपि मोक्षपदस्य प्राप्तये यथार्थदर्शिभिः योगिभिः संगतः ॥ १७ ॥

भा०—अज अजितपद प्राप्त करनेके निमित्त नीतिजाननेवाले मंत्रियोंसे और रघु मोक्षपदवीपानेके निमित्त श्रेष्ठ योगियोंसे मिलते भये ॥ १७ ॥

नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ॥
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ १८ ॥

अन्वयः । युवा नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे, प्रवयास्तु धारणां परिचेतुम् उपांशु कुशपूतं विष्टरं समाददे ॥ १८ ॥

वाच्यप० । यूना नृपतिना व्यवहारासनम् आददे प्रवयसा कुशपूतः विष्टरः समाददे ॥ १८ ॥

युवा नृपतिः प्रजाः कार्यार्थिनीरवेक्षितुं वा दुष्टादुष्टपरिज्ञानार्थं धर्मासनं स्वीचकार वृद्धः रघुस्तु चित्तैकाग्रतामभ्यसितुमेकान्ते दर्भपूतं विष्टरं स्वीचकारेति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०–युवा राजाने प्रजाके देखनेको धर्मासनका स्वीकार किया, और वृद्धने मनकी एकाग्रताके अभ्यासके लिये एकान्तमें कुशासन (स्वीकार किया) ॥ १८ ॥

अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान् ॥
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान् ॥ १९ ॥

अन्वयः । एकः अनन्तरान् नृपतीन् प्रभुशक्तिसम्पदा वशम् अनयत्, अपरः प्रणिधानयोग्यया पंच शरीरगोचरान् मरुतः (वशमनयत्) ॥ १९ ॥

वाच्यप० । एकेन अनन्तराः नृपतयः वशम् अनीयन्त, अपरेण पंच शरीरगोचराः मरुतः वशमनीयन्त ॥ १९ ॥

अजः स्वभूम्यनन्तरान् भूपान् कोशदण्डमहिम्ना वशमनयत् अपरो रघुः योगबलेन देहाश्रयान्पञ्च प्राणादीन् वशमनयदिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०–एक (अज) तो प्रभुत्व और सामर्थ्यकी महिमासे निकटवर्ती राजोंको वशीभूत करता हुआ, दूसरा (रघु) योगाभ्याससे शरीरमें फिरनेवाले पांच पवनों को वश करता हुआ ॥ १९ ॥

अकरोदचिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात् ॥
इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना ॥ २० ॥

अन्वयः । अचिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारंभफलानि भस्मसात् अकरोत्, इतरः ज्ञानमयेन वह्निना स्वकर्मणां दहने ववृते ॥ २० ॥

वाच्यप० । अचिरेश्वरेण × × अक्रियन्त इतरेण स्वकर्मणां दहने ववृते ॥ २० ॥

नवेश्वरः अजः पृथिव्यां द्विषदारम्भकार्याणि विनाशितवान्, इतरो रघुः तत्त्वज्ञानजन्येन अग्निना भवबीजभूतानां स्वकर्मणां भस्मीकरणे ववृते ॥ २० ॥

भा०–नवीन राजा (अज) ने पृथ्वीमें शत्रुओंके उद्योगके फल नष्ट किये, और दूसरे (रघु) ने ज्ञानाग्निसे अपने कर्म जलानेमें प्रवृत्ति की ॥ २० ॥

पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम् ॥
रघुरप्यजयद्गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः ॥ २१ ॥

अन्वयः । अजः पणबंधमुखान् षड्गुणान् तत्फलं समीक्ष्य उपायुंक्त, समलोष्टकांचनः रघुरपि गुणत्रयं प्रकृतिस्थम् अजयत् ॥ २१ ॥

वाच्यप० । अजेन + उपायुज्यंत, समलोष्टकांचनेन रघुणापि अजीयत ॥ २१ ॥

अजः संध्यादीन् षड्गुणानां फलमालोच्योपायुंक्त, समदर्शनः रघुरपि सत्त्वादिकं गुणत्रयं पुनर्विकारशून्यं यथा तथा अजयदिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-अजने पणबंध आदि (मिलना, युद्ध, चढाई, विश्राम, रंध्र, आश्रय) छः गुण इनके फल देखकर प्रयोग किये मृत्तिका और सुवर्णको समान जाननेवाले रघुने भी प्रकृतिके गुणोंके जय किये ॥ २१ ॥

न नवः प्रभुरा फलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ॥
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात् ॥ २२ ॥

अन्वयः । स्थिरकर्मा नवः प्रभुः आ फलोदयात् कर्मणः न विरराम, स्थिरधीः नवेतरश्च आ परमात्मदर्शनात् योगविधेः न (विरराम) ॥ २२ ॥

वाच्यप० । स्थिरकर्मणा नवेन प्रभुणा + न विरेमे स्थिरधिया नवेतरेण न (विरेमे) ॥२२॥

आफलोदयकर्मकारी नवेश्वरः अजः फलसिद्धिपर्यन्तं कर्मणः आरम्भान्न निवृत्तः निश्चलचित्तो रघुश्च परमात्मसाक्षात्कारपर्यन्तं योगविधेरैक्यानुसंधानान्न विरराम ॥ २२ ॥

भा०-दृढकर्म करनेवाले नये प्रभुने फलसिद्धितक अपने उद्योगको न छोड़ा और निश्चलचित्त वृद्ध रघुने परमात्माके दर्शनतक योगकर्मसे विराम न किया ॥ २२ ॥

इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ ॥
प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं सिद्धिमुभाववापतुः ॥ २३ ॥

अन्वयः । इति प्रतिषिद्धप्रसरेषु शत्रुषु इन्द्रियेषु च जाग्रतौ उदयापवर्गयोः प्रसितौ उभौ उभयीं सिद्धिम् अवापतुः ॥ २३ ॥

वाच्यप० । जागृताभ्यां + प्रसिताभ्याम् उभाभ्याम् उभयी सिद्धिः अवापे ॥ २३ ॥

इत्थं स्वार्थवृत्तिषु शत्रुषु चेन्द्रियेषु च अप्रमत्तौ अभ्युदयमोक्षयोरसक्तावजरघू अभ्युदयमोक्षरूपं फलमवापतुः इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-इस प्रकार स्वार्थवृत्तिवाले शत्रु और इन्द्रियोंमें जागेहुए लक्ष्मी और मोक्षमें दत्तचित्त दोनोंने दोनों सिद्धियोंको पाया ॥ २३ ॥

अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः ॥
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ॥ २४ ॥

अन्वयः । अथ रघुः समदर्शनः (सन्) अजव्यपेक्षया काश्चित् समाः गमयित्वा योगसमाधिना तपसः परम् अव्ययं पुरुषम् आपत् ॥ २४ ॥

वाच्यप० । रघुणा समदर्शनेन (सता) तपसः परः च अव्ययः पुरुषः आपे ॥ २४ ॥

तदनन्तरं रघुः सर्वभूतेषु समदृष्टिस्सन् आकाङ्क्षानुरोधेन कतिचिद्वर्षाणि नीत्वा योगानुष्ठानेनाविनाशिनं मायातीतं परमात्मानं प्रापेति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०–तब समदृष्टि रघुने अजके अनुरोधसे कुछेक वर्ष व्यतीत कर योगसमाधिसे; अविनाशी मायासे पर पुरुषको प्राप्त किया ॥ २४ ॥

श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः ॥
विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित् ॥ २५ ॥

अन्वयः। अग्निचित् राघवः पितुः श्रुतदेहविसर्जनः (सन्) चिरम् अश्रूणि विमुच्य अस्य अनग्निं नैष्ठिकं विधिं यतिभिस्सार्द्धं विदधे ॥ २५ ॥

वाच्यप०। अग्निचिता राघवेण पितुः श्रुतदेहविसर्जनेन (सता) विधिः विदधे ॥ २५ ॥

आहिताग्निरजः आकर्णितापितृदेहत्यागः सन् बहुकालपर्यन्तं वाष्पान्विसृज्य अस्य पितुः अग्निसंस्काररहितामन्त्येष्टिं संन्यासिभिः सह चक्रे इति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०–अग्निहोत्र रखनेवाले राघव (अज) ने पिताका देहत्यागन करना सुन बहुत समयतक रुदनकर उसकी अन्तक्रिया अग्निके बिना योगियोंसहित की ॥ २५ ॥ (अर्थात् शरीर दग्ध नहीं किया, किन्तु पृथ्वीमें स्थापित किया. क्यों कि राजा संन्यासी हो गया था)

अकरोत्स तदौर्ध्वदैहिकं पितृभक्त्या पितृकार्यकल्पवित् ॥
न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः ॥२६॥

अन्वयः। पितृकार्यकल्पवित् सः पितृभक्त्या तदौर्ध्वदैहिकम् अकरोत् तेन पथा तनुत्यजः तनयावर्जितपिंडकांक्षिणः न हि ॥ २६ ॥

वाच्यप०। पितृकार्यकल्पविदा तेन + अक्रियत, तनुत्यजैः तनयावर्जितपिंडकांक्षिभिः न (भूयते) ॥ २६ ॥

पितृकार्यविधानज्ञः सोऽजः पितरि प्रेम्णा तस्य रघोः तिलोदकपिण्डदानादि चकार तेन योगमार्गेण देहत्यागिनः पुरुषाः पुत्रदत्तपिण्डकाङ्क्षिणो न भवन्तीति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०–पितृकार्यके जाननेवाले अजने पिताकी भक्तिसे उसके परलोकसम्बन्धी कर्म किये यद्यपि इस प्रकार शरीरत्यागनेवाले पुत्रोंके दिये पिंडकी अभिलाषा नहीं करते ॥ २६ ॥

स परार्ध्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः ॥
शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवानप्रतिशासनं जगत् ॥२७ ॥

अन्वयः। परार्ध्यगतेः पितुः अशोच्यताम् उद्दिश्य सदर्थवेदिभिः शमिताधिः सः अधिज्यकार्मुकः (सन्) जगत् अप्रतिशासनं कृतवान् ॥ २७ ॥

वाच्यपरि० । शमिताधिना तेन अधिज्यकार्मुकेण (सता) जगदप्रतिशासनं कृतम् ॥ २७ ॥

पाप्तमोक्षस्य पितुरशोचनीयत्वमभिधाय परमार्थज्ञैः पण्डितैः निवारितमनोव्यथः सोऽजः गृहीतकार्मुकः सन् जगद् द्वितीयाज्ञारहितं चकारेति सरलार्थः ॥२७ ॥

भा०-मोक्ष पायेहुए पिताकी अशोच्यता विचार कर परमार्थज्ञानियों (तत्त्ववेत्ताओं) से दुःख शांतहुए प्रत्यञ्चा चढाये उस धनुषधारीने सम्पूर्ण जगत् दूसरेकी आज्ञासे हीन कर दिया ॥ २७ ॥

क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम् ॥
प्रथमा बहुरत्नसूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम् ॥ २८ ॥

अन्वयः । क्षितिः भामिनी इन्दुमती च अग्र्यपौरुषं तं पतिमासाद्य प्रथमा (क्षितिः) बहुरत्नसूरभूत् अपरा (इन्दुमती) वीरं सुतम् अजीजनत् ॥ २८ ॥

वाच्यप० । क्षित्या इन्दुमत्या च + प्रथमया बहुरत्नसुवा अभावि, अपरया वीरः सुतः अजनि ॥ २८ ॥

पृथिवी कामिनीन्दुमती चोत्कृष्टपराक्रमं तमजं भर्तारं प्राप्य प्रथमा वसुमती बहूनि श्रेष्ठवस्तूनि असूत अपरेन्दुमती बलिष्ठं पुत्रं जनयामासेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-पृथ्वी और स्त्री इन्दुमती उस महापराक्रमी अजको पति पाकर पहली (पृथ्वी) ने बहुत रत्न और दूसरी (इन्दुमतीने) वीर पुत्र उत्पन्न किया ॥ २८ ॥

दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम् ॥
दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः ॥ २९ ॥

अन्वयः । दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दशसु अपि दिक्षु श्रुतं दशकंठारिगुरुं यम् आख्यया दशपूर्वरथं बुधा विदुः ॥ २९ ॥

वाच्यप० । दशरश्मिशतोपमद्युतिः यशसा दशसु अपि दिक्षु श्रुतः दशकंठारिगुरुः यः × दशपूर्वरथः बुधैः विद्यते ॥ २९ ॥

सूर्यतुल्यं तं यशसा दशस्वप्याशासु प्रख्यातं रामचन्द्रस्य पितरं यं पुत्रं नाम्ना दशरथं पण्डिताः वदन्तीति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०-दस सौ किरणवाले सूर्यकी समान कान्तिमान् यशद्वारा दशों दिशामें विख्यात दशशिरवालेके शत्रुके पिताको पण्डितजन नामसे रथसे पहले दश (दशरथ) जान्ते हैं ॥ २९ ॥

ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः ॥
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः ॥ ३० ॥

अन्वयः। श्रुतयागप्रसवैः ऋषिदेवगणस्वधाभुजाम् अनृणत्वमुपेयिवान् सः पार्थिवः परिधेः मुक्तः उष्णदीधितिः इव बभौ॥ ३०॥

वाच्यप०। उपेयुषा तेन पार्थिवेन × मुक्तेन उष्णदीधितिना इव बभे॥ ३०॥

अध्ययनयज्ञपुत्रैः यथासंख्यमृषिदेवपितॄणामनृणत्वं प्राप्तवान् सः पार्थिवः परिवेशान्निर्गतःरविरिव शुशुभे इति सरलार्थः॥ ३०॥

भा०–वेद यज्ञ और पुत्रसे वह राजा ऋषि देवता और पितरोंकी उऋणताको प्राप्त होकर परिधिसे छूटेहुए सूर्यकी समान शोभित हुआ॥ ३०॥

(मनुष्यपर तीन ऋण हैं, वेद पढनेसे ऋषियोंका, यज्ञ करनेसे देवतोंका, सन्तान उत्पन्न करनेसे पितरोंका, ऋण दूर होता है)

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्॥

वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना॥ ३१॥

अन्वयः। तस्य विभोः केवलं वसु (एव) (परप्रयोजनं) न (अभूत्) (किन्तु) गुणवत्तापि परप्रयोजना (आसीत्) बलम् आर्त्तभयोपशान्तये बहुमतं विदुषां सत्कृतये (आसीत्)॥ ३१॥

वाच्यप०। वसुना परप्रयोजनेन न (अभावि) गुणवत्तयापि परप्रयोजनया (अभूयत) बहुश्रुतेन (अभूयत)॥ ३१॥

तस्य विभोः नृपस्य केवलं द्रव्यमेव परोपकारकं नाभूत् किन्तु गुणित्वमप्यन्येषां प्रयोजनपरम् आसीत्, तथाहि बलं पीडितानां भयस्योपशान्तये, विद्या विदुषां सत्काराय बभूवेति सरलार्थः॥ ३१॥

भा०–उस भाग्यशील अजका केवल धन ही पराये उपकारके निमित्त न हुआ, किन्तु गुणवत्ता भी पराये अर्थ साधनेवाली थी, कारण कि उसका पौरुष भयभीतोंका भय शांत करनेको और बड़ा शास्त्रका ज्ञान विद्वानोंके सत्कारके निमित्त हुआ॥ ३१॥

स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजाः॥

नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने॥ ३२॥

अन्वयः। अवेक्षितप्रजः सुप्रजाः स कदाचित् देव्या सह नगरोपवने नंदने शचीसखः मरुतां पालयितेन्द्र इव विजहार॥ ३२॥

वाच्यप०। अवेक्षितप्रजेन सुप्रजसा तेन × शचीसखेन मरुतां पालयित्रा इन्द्रेणेव विजह्रे॥ ३२॥

अकुतोभयत्वेनानुसंहितप्रजः सुपुत्रवान् सोऽजः कदाचिदिन्दुमत्या सह नगरोपवने अमरावत्युपकण्ठवने शच्या सह मरुतां (देवानां) पालयितेन्द्र इव चिक्रीड॥ ३२॥

भा०–प्रजाको देख भालकर अच्छे संतानवाले उस अजने एकसमय इन्दुमतीके सहित नगरके उपवनमें नन्दन वनमें शचीके पति देवपालक इन्द्रकी समान विहार किया॥ ३२॥

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम् ॥
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः ॥ ३३ ॥

अन्वयः । अथ दक्षिणोदधेः रोधसि श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम् उपवीणयितुं नारदः रवेः उदयावृत्तिपथेन ययौ ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । नारदेन × यये ॥ ३३ ॥

अथ दक्षिणसागरस्य तीरे अधिष्ठितगोकर्णाख्यस्थानमीश्वरं वीणयोपसमीपे गातुं शंकरं नारदः आकाशमार्गेण जगामेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-उसकाल दक्षिणसागरके तटपर गोकर्णवाशी शंकरको गाना श्रवण करानेको सूर्यके उदय और अस्तके मार्ग (आकाशमें) होकर नारदजी गये ॥ ३३ ॥

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम् ॥
अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः । अपार्थिवैः कुसुमैः ग्रथितां तस्य आतोद्यशिरोनिवेशितां स्रजं वेगवान्मारुतः अधिवासस्पृहया इव अहरत्किल ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । कुसुमैः ग्रथिता तस्य आतोद्यशिरोनिवेशिता स्रक् वेगवता मरुता अह्रियत ॥ ३४ ॥

दिव्यैः पुष्पैः रचितां तस्य नारदस्य वीणाया अग्रे निवेशितां मालां वेगवान् पवनः स्पृहयेव अहरत्किल ॥ ३४ ॥

भा०-विख्यात है कि, पृथ्वीमें न उत्पन्न हुए (दिव्य) फूलोंसे गुथी उनकी वीणाके शिरोभागमें रक्खीहुई माला शीघ्रगामी वायुने मानों अपनेको सुगन्धित करनेके निमित्त हरण की ॥ ३४ ॥

भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः ॥
ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवाञ्जनाविलम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । कुसुमानुसारिभिः भ्रमरैः परिकीर्णा मुनेः परिवादिनी पवनावलेपजम् अञ्जनाविलं बाष्पं सृजतीव ददृशे ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । मुनेः परिवादिनीम् + सृजन्तीम् इव ददृशुः ॥ ३५ ॥

पुष्पानुयायिभिरलिभिः व्याप्ता नारदस्य वीणा वायोरधिक्षेपजं कज्जलेन कलुषं बाष्पाश्रु मुञ्चतीव ददृशे इति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०-फूलोंके पीछे चलनेवाले भौंरोंसे युक्त मुनिकी वीणा वायुके झोकेसे उत्पन्न हुए कज्जलसे काले अश्रु विसर्जन करतीसी दीखी ॥ ३५ ॥

अभिभूय विभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ॥
नृपतेरमरस्रगाप सा दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः । सा अमरस्रक् मधुगंधातिशयेन वीरुधाम् आर्तवीं विभूतिम् अभिभूय नृपतेः दयितो-रुस्तनकोटिसुस्थितिम् आप ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । तया स्रजा × स्थितिः आपे ॥ ३६ ॥

सा दिव्यमाला मकरन्दसौरभाधिक्येन लतानामृतुसम्बन्धिनीं विभूतिं तिरस्कृत्य भूपतेरजस्य प्रियाया इन्दुमत्या विशालयोः कुचयोः चूचुकयोः सुस्थितिं गोप्यस्थाने पतितत्वा श्रेष्ठस्थानं प्राप्ता इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–वह दिव्यमाला मधु और गन्धकी अधिकतासे लताओंके ऋतुवैभवका पराभव करके रानी इन्दुमतीके स्तनोंके अग्रभाग पर गिरी ॥ ३६ ॥

क्षणमात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला ॥
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृतचन्द्रा तमसेव कौमुदी ॥ ३७ ॥

अन्वयः । सुजातयोः स्तनयोः क्षणमात्रसखीं ताम् अवलोक्य विह्वला नरोत्तमप्रिया तमसा हृतचंद्रा कौमुदीव निमिमील ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । विह्वलया नरोत्तमप्रियया × हृतचन्द्रया कौमुद्या इव निमिमीले ॥ ३७ ॥

सुजातयोः कुचयोः किंचित्कालपर्यन्तं सखीमिव स्थितां तां मालामवलोक्य व्याकुला नरेन्द्रभार्येन्दुमती स्वर्भानुना हृतचन्द्रिकेव मुमोहेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०–सुन्दर स्तनोंकी उस क्षणमात्र सखीको देखतेही नृपेन्द्रकी प्रिया राहुग्रसे चन्द्रमाकी चांदनीकी समान व्याकुल होकर मोहित हो गई अर्थात मरगई ॥ ३७ ॥

वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ॥
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः । करणोज्झितेन वपुषा निपतन्ती सा पतिम् अपि अपातयत्, तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिः मेदिनीम् उपैति ननु ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । निपतन्त्या तया पतिः अपि अपात्यत, दीपार्चिषा मेदिनी ईयते ॥ ३८ ॥

इन्द्रियैः त्यक्तेन शरीरेण निपतन्ती सेन्दुमती भर्तारमजमप्यपातयत्, तथाहि क्षरत्तैलबिन्दुना सह दीपज्वाला भुवमुपैतीति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०–इन्द्रियोंके छोडे हुए शरीरसे गिरती हुई उसने पतिको भी गिराया, टपकते हुए तेलकी बूँदके संग दीपककी लोय भी धरतीपर गिरती है ॥ ३८ ॥

उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिताः ॥

विहगाः कमलाकरालयाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ॥ ३९ ॥

अन्वयः । उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेन आर्तरवेण वेजिताः कमलाकरालयाः विहगाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । वेजितैः कमलाकरालयैः विहगैः समदुःखैरिव तत्र चुक्रुशे ॥ ३९ ॥

उभयोः स्त्रीपुरुषयोः सेवकवर्गाणां संकुलेनार्तशब्देन भीताः सरःस्थिताः हंसादयः विहगाः तत्रोपवने समानशोका इव रुरुदुः इति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०--दोनों स्त्री पुरुषोंके सेवकोंके महारुदनसे डरे हुए सरोवरके पक्षीभी समान दुखियोंकी समान रोते हुए ॥ ३९ ॥

नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता ॥

प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ॥ ४० ॥

अन्वयः । नृपतेः तमः व्यजनादिभिः नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता हि प्रतिकारविधानम् आयुषः शेषे सति फलाय कल्पते ॥ ४० ॥

वाच्यप० । नृपतेः तमसा+नुनुदे तया तु तथैव समस्थायि प्रतिकारविधानेन+ कल्प्यते ॥ ४० ॥

नृपतेरजस्य मोहः व्यजनादिभिः साधनैः दूरीकृतः, सा तु नरोत्तमप्रिया तथैव स्थिता, तथाहि चिकित्सा जीवितकालस्य शेषे सति आरोग्याय भवतीति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०--राजाकी मूर्च्छा तो व्यजनादि साधनोंसे दूर होगई, परन्तु वह उसीप्रकार स्थित रही, कारण कि आयुके शेष रहनेपर ही औषधीका उपाय फल देता है ॥ ४० ॥

प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात् ॥

स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमंकमङ्गनाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः । अथ सत्त्वविप्लवात् प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थाम् अंगनां नितान्तवत्सलः सः परिगृह्य उचितम् अंकं निनाय ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । तेन नितान्तवत्सलेन + परिगृह्य + निन्ये ॥ ४१ ॥

अथ चैतन्यस्य विनाशकारणात् तन्त्रीभियोजनीयायाः वीणायाः समावस्थां तां प्रियामतिप्रेमवान् सः नृपः परिगृह्योत्संगं नीतवानिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०--तब चेतना दूर होजानेसे विना तार चढी वीणाकी समान उस प्रियाको अति प्रेमीने उठाकर उचित अंक (गोदी) में रक्खा ॥ ४१ ॥

पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया ॥

समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः ॥ ४२ ॥

अन्वयः। पतिरंकानिषण्णया करणापायविभिन्नवर्णया तया उषसि आविलां मृगलेखां बिभ्रत् चन्द्रमा इव समलक्ष्यत ॥ ४२ ॥

वाच्यप०। (जनाः) बिभ्रन्तं चन्द्रमसम् इव तम् अलक्षयन् ॥ ४२ ॥

स्वाम्यजः उत्संगस्थितया इन्द्रियाणामपगमेन हेतुना विवर्णया प्रातःकाले कलुषं लाञ्छनं धारयंश्चन्द्रमा इवादृश्यतेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–पतिकी गोदमें रक्खी हुई इन्द्रियोंके अभावसे विपरीत रंगवाली, उससे वह (श्रेष्ठ) प्रातःकालमें मलिन मृगचिह्न लिये चन्द्रमाकी समान दिखाई दिया ॥४२॥

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ॥
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ ४३ ॥

अन्वयः। सः सहजाम् अपि धीरताम् अपहाय बाष्पगद्गदं विललाप, अभितप्तमयोपि मार्दवं भजते शरीरिषु कैव कथा ॥ ४३ ॥

वाच्यप०। तेन विलेपे, अभितप्तेनायसा मार्दवं भज्यते, शरीरिषु कयैव कथया (भूयते)॥४३॥

सः नृपः स्वाभाविकीमपि धीरतां विहाय सबाष्पगद्गदं परिदेवितवान्, अग्निना तप्तमचेतनं लोहमपि मृदुत्वं प्राप्नोति, देहिषु विषये कैव वार्तेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–वह अज स्वाभाविकी धीरताको त्यागन कर गदगद कंठसे विलाप करने लगा, तपा लोहा भी कोमल होजाताहै शरीरधारियोंकी तो कथा क्या है ॥ ४३ ॥

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ॥
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ॥ ४४ ॥

अन्वयः। कुसुमान्यपि गात्रसंगमात् आयुरपोहितुं प्रभवन्ति यदि हन्त प्रहरिष्यतो विधेः अन्यत् किमिव साधनं न भविष्यति ॥ ४४ ॥

वाच्यप०। कुसुमैरपि + प्रभूयते यदि, अन्येन साधनेन न भविष्यते ॥ ४४ ॥

पुष्पाण्यपि शरीरसंसर्गात् आयुरपहर्तुं प्रभवन्ति यदि हन्त ! हन्तुमिच्छतो देवस्य पुष्पातिरिक्तं किमिव वस्त्विति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–जब फूलभी शरीरके संगसे आयुका नाश करनेको समर्थ है, तो खेद है कि मारनेवाले दैवका साधन और कौनसी वस्तु न होगी ॥ ४४ ॥

अथ वा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ॥
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥ ४५ ॥

अन्वयः। अथ वा प्रजान्तकः मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते, अत्र हिमसेकविपत्तिः नलिनी मे पूर्वनिदर्शनं मता ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । अथ वा प्रजान्तकेन + मृदुनैव आरभ्यते अत्र हिमसेकविपत्त्या नलिन्या मे पूर्वनिदर्शनं मतया (भूयते) ॥ ४५ ॥

अथवा यदि कालः कोमलं वस्तु मृदुनैव वस्तुना हन्तुमुपक्रमते अत्रार्थे तुषारनिष्यन्दविपत्तिः कमलिनी मे प्रथममुदाहरणं मता द्वितीयमुदाहरणं पुष्पमृत्युरिन्दुमतीति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—अथवा काल; सुकुमार वस्तुको सुकुमारसेही मारताहै, इसमें बर्फ लगनेसे नाश होनेवाली कमलिनी मैंने प्रथम उदाहरण मानी है ॥ ४५ ॥

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ॥
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४६ ॥

अन्वयः । इयं स्रक् जीवितापहा यदि, हृदये निहिता मां किं न हंति क्वचिदीश्वरेच्छया विषमप्यमृतं भवेत् क्वचिदमृतं वा विषं (भवेत्) ॥ ४६ ॥

वाच्यपरि० । अनया स्रजा जीवितापहया भूयते यदि हृदये निहितया अहं किं न हन्ये+विषेण अपि अमृतेन भूयते क्वचिदमृतेन वा विषेण भूयेत ॥ ४६ ॥

इयं माला जीवितापहा यदि तर्हि वक्षसि निहिता सती मां किं न हन्ति, ईश्वरेच्छया क्वचित्प्रदेशे गरलमप्यमृतं भवेत्, क्वचिदमृतं वा विषं भवेदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—यदि यह माला ही जीवन नष्ट करनेवाली है तो हृदयपर रक्खी हुई मुझे क्यों नहा मारती, कहीं विष भी अमृत हो जाताहै और कहीं ईश्वरकी इच्छासे अमृत विष हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथ वा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ॥
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ ४७ ॥

अन्वयः । अथ वा मम भाग्यविप्लवात् वेधसा एषः अशनिः कल्पितः एव, यदनेन तरुर्न पातितः (किं तु) विटपाश्रिता लता क्षपिता ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । वेधाः अमुम् अशनिमेव कल्पितवान्, यदसौ तरुं न पातयामास, विटपाश्रितां लतां क्षपयामास ॥ ४७ ॥

अथ वा मम - भाग्यविपर्ययादेषा स्रक् ब्रह्मणा वैद्युतोऽग्निः कल्पितः यस्मादनेन प्रसिद्धाशनिनेव तरुः स्वयमेव न पातितः किन्तु तस्य वृक्षस्य आश्रिता वल्लरी विनाशितेति सरलार्थः ॥४७॥

भा०—अथवा मेरे खोटे भाग्यसे विधाताने यह वज्र करदी है, जिसने वृक्षको न मारकर इसके आश्रित लताको नाश किया ॥ ४७ ॥

कृतवत्यपि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ॥
कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ॥ ४८ ॥

अन्वयः। मयि चिरम् अपराद्धेपि अवधीरणा न कृतवत्यसि, तत्कथमेकपदे निरागसम् इमं जनमाभाष्यं न मन्यसे ॥ ४८

वाच्यप०। (त्वया) + कृतवत्या भूयते ॥ ४८ ॥

मयि भूरिशोपराधं कृतवत्यपि यस्मादवज्ञां नाकार्षीः, तत्कथं तत्क्षणे अपराधविहीनमिमं जनं संभाष्यं न चिन्तयसीति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०-मेरे बहुत अपराध करनेपर भी जब तैंने तिरस्कार नहीं किया, फिर अब एकाएकी अपराध रहित इस जनको बोलनेके योग्य क्यों नहीं मान्ती है ॥ ४८ ॥

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ॥
परलोकमसंनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ॥ ४९ ॥

अन्वयः। हे शुचिस्मिते कैतववत्सलः शठ इति ध्रुवं तव विदितः अस्मि यत् मामनापृच्छ्य इतः परलोकम् असन्निवृत्तये गतासि ॥ ४९ ॥

वाच्यप०। (त्वं) कैतववत्सलं शठम् इति ध्रुवं विदितवती ++गतया (भूयते) ॥ ४९ ॥

हे धवलहसिते ! गूढविप्रियकारी कैतवस्निग्ध इति सत्यं त्वया विज्ञातोस्मि, यस्मात्कारणात् मामनामन्त्र्यास्माल्लोकात्परलोकमपुनरावृत्तये गतासीति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-हे उज्ज्वल हँसनेवाली ! तैंने निश्चयही मुझे कपटसे प्यार करनेवाला शठ जाना, इसीकारण मुझसे विना पूछे ही तू फिर न आनेके लिये परलोकको चली गई ॥ ४९ ॥

दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना ॥
सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्मकृतेन वेदनाम् ॥५०॥

अन्वयः। इदं मम हतजीवितं तावत् दयिताम् अन्वगात् यदि तया विना किं निवृत्तम् (अत एव) आत्मकृतेन प्रबलां वेदनां सहताम् ॥ ५० ॥

वाच्यप०। अनेन हतजीवितेन दयिता अन्वगायि यदि तया विना निवृत्तेन किं (भूयते) प्रबला वेदना सह्यताम् ॥ ५० ॥

इदं मम कुत्सितं जीवितमादौ प्रियामिन्दुमतीमन्वगच्छद्यदि तर्हि तया प्रियया विना किमर्थं प्रत्यागतमत एव स्वदुश्चेष्टितेन निवृत्तिरूपेणाधिकं दुःखं क्षमतामिति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०-यह मेरा नष्टजीवन यदि प्यारीके पीछे चलागया था तो फिर किस निमित्त लौटि आया, इसकारण अपने कर्मोंका प्रबल दुःख सहै ॥ ५० ॥

सुरतश्रमसंभृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते ॥
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥५१॥

अन्वयः । सुरतश्रमसंभृतः स्वेदलवोद्गमः अपि ते मुखे ध्रियते अथ च त्वम् आत्मना अस्तमि-ता, देहभृताम् इमाम् असारतां धिक् ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । सुरतश्रमसंभृतेन स्वेदलवोद्गमेन × ध्रियते त्वया च अस्तमितया (भूयते) ५१ ॥

सुरतश्रमेण प्रादुर्भूतः स्वेदलवोद्गमोपि ते मुखे वर्तते अथ च त्वम् आत्मना स्वरूपेण नाशं प्राप्ता, अतः प्राणिनामिमामस्थिरतां धिगिति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०-परिश्रमके पसीनेकी बूँदें तेरे मुखपर वर्त्तमान हैं, और तू आप नाशको प्राप्त हुई देहधारियोंकी इस असारताको धिक्कार है ॥ ५१ ॥

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ॥
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥५२॥

अन्वयः । मया मनसापि तव विप्रियं न कृतं, मां किं जहासि, ननु अहं क्षितेः शब्दपतिः भावनिबन्धना मे रतिः त्वय्येव ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । अहं×न कृतवान् त्वयाहं किं हीये, मया शब्दपतिना (भूयते) भावनिबन्धनया मे रत्या त्वय्येव ॥ ५२ ॥

मया मनसापि तव विप्रियं न कृतं, तर्हि त्वं केन कारणेन मां त्यजसि न नन्वहं क्षितेः शब्दत एव पतिः, न त्वर्थतः किन्तु स्वभावहेतुका मे प्रीतिः त्वय्येवास्तीति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०-मैंने पहले कभी मनसेभी तेरा विप्रिय नहीं किया, फिर तू मुझे क्यों त्यागन करती है, पृथ्वीका पति तो मैं नाममात्रसे हूं, परन्तु मनकी प्रीति तुझमेंही है ॥५२॥

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ॥
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशंकि मे मनः ॥ ५३ ॥

अन्वयः । हे करभोरु कुसुमोत्खचितान्वलीभृतः भृङ्गरुचस्तवालकान् चलयन् मारुतः मे मनः त्वदुपावर्त्तनशंकि करोति ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । चलयता मारुतेन × क्रियते ॥ ५३ ॥

हे करभोरु ! मारुतः पुष्पै रचितान् कुटिलान् नीलांस्तवालकान् कम्पयन् मे मनः तव पुनरागमने शंकावत्करोतीति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०-हे करभोरु ! फूलोंसे गुँथी, टेढी काली अलकोंको कँपाकर वायु मेरे मनको तेरे लौट आनेको आशावान् करतीहै ॥ ५३ ॥

तदपोहितुमर्हसि प्रिये प्रतिबोधेन विषादमाशु मे ॥
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः ॥ ५४ ॥

अन्वयः। हे प्रिये ! तत् आशु मे विषादं नक्तमोषधिः ज्वलितेन तुहिनाद्रेः गुहागतं तम इव प्रतिबोधेन अपोहितुम् अर्हसि ॥ ९४ ॥

वाच्यप०। त्वया मे विषादम् अपोहितुम् अर्ह्यते ॥ ९४ ॥

हे प्रिये ! यथा निशायां तृणज्योतिराख्या लता स्वप्रकाशेन हिमालयस्य गुहागतमन्धकारं नाशं करोति तथैव त्वमपि प्रतिबोधेन शीघ्रं मे दुःखं निरासितुमर्हसीति सरलार्थः ॥ ९४ ॥

भा०—हे प्रिये ! इसकारण तूं मेरे शोकको रात्रिमें प्रकाशवाली औषधीसे हिमालयकी कंदराके अंधेरेकी समान हरनेके योग्य है ॥ ९४ ॥

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ॥
निशि सुप्तमिवैकपंकजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् ॥ ९५ ॥

अन्वयः। इदमुच्छ्वसितालकं विश्रान्तकथं तव मुखं निशि सुप्तं विरताभ्यन्तरलीनषट्पदस्वनम् एकपंजकमिव मां दुनोति ॥ ९५ ॥

वाच्यप०। अनेन उच्छ्वसितालकेन विश्रान्तकथेन तव मुखेन निशि सुप्तेन विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनेन एकपंकजेन इव अहं दूये ॥ ९५ ॥

इदं चलितचूर्णकुन्तलं निवृत्तसंभाषणं तवाननं निशाया निमीलितं निःशब्दभृंगमद्वितीयं पद्ममिव मां परितापयति ॥ ९५ ॥

भा०—यह बिखरी हुई अलकावलीयुक्त वचनसे रहित तेरा मुख रात्रिमें मूँदेहुए भीतर भौंरोंके शब्दसे रहित इकेले कमलकी समान मुझे दुःखी करताहै ॥ ९५ ॥

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ॥
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ॥९६॥

अन्वयः। शर्वरी शशिनं पुनरेति द्वंद्वचरं पतत्रिणं दयिता (पुनरेति) इति तौ विरहान्तरक्षमौ अत्यन्तगता त्वं कथं न मां दहेः ॥ ९६ ॥

वाच्यप०। शर्वर्या शशी पुनः ईयते दयितया द्वंद्वचरः पतत्री पुनरीयते इति ताभ्यां विरहान्तरक्षमाभ्यां (भूयते) अत्यन्तगतया त्वया अहं कथं न दह्ये ॥ ९६ ॥

रात्रिः चन्द्रं पुनः प्राप्नोति, चक्रवाकं चक्रवाकी पुनरेति, अस्मात्तौ चन्द्रचक्रवाकौ विरहावधिसहौ, पुनरावृत्तिरहिता त्वं तु कथं न मां संतापयेः ॥ ९६ ॥

भा०—रात्रि चन्द्रमाको फिर भी प्राप्त होती है, चकवेको चकवी फिर मिलती है इसकारण वह दोनों वियोगका अन्तर सहनेमें समर्थ हैं, सदाके निमित्त गई तू मुझे क्यों न भस्म करेगी ? ॥ ९६ ॥

नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ॥
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ॥ ९७ ॥

अन्वयः । नवपल्लवसंस्तरेऽपि अर्पितं मृदु ते यदंगं दूयेत, हे वामोरु ! तदिदं चिताधिरोहणं कथं विषहिष्यते (त्वं) वद ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । अर्पितेन मृदुना ते अंगेन दूयेत अनेन × विषहिष्यते त्वया उद्यताम् ॥ ५७ ॥

नूतनप्रवालास्तरणेऽपि स्थापितं मृदु तव शरीरं परितप्तं भवेत्, हे वामोरु ! तदिदमङ्गं चितायाः काष्ठसमूहस्याधिरोहणं कथं विषहिष्यते वदेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०—नवीन पत्तोंके बिछौनेपरभी रक्खाहुआ सुकुमार तेरा शरीर दुखता था हे वामोरु ! बता अब वह चिताका चढना कैसे सहेगी ॥ ५७ ॥

इयमप्रतिबोधशायिनी रशना त्वां प्रथमा रहःसखी ॥
गतिविभ्रमसादनीरवा न शुचा नानुमृतेव लक्ष्यते ॥ ५८ ॥

अन्वयः । इयं प्रथमा रहःसखी गतिविभ्रमसादनीरवा रशना अप्रतिबोधशायिनीं त्वां शुचा अनुमृतेव न लक्ष्यते इति न ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । अनया प्रथमया रहःसख्या गतिविभ्रमसादनीरवया रशनया अप्रतिबोधशायिनी त्वम् × अनुमृतया इव न लक्ष्यते इति न (भूयते) ॥ ५८ ॥

इयमाद्या रहःसखी विलासोपरमेण निःशब्दा मेखला भूतां त्वामनुशोकेन मृतेव न लक्ष्यते इति नेति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०—पहली तेरी एकान्तकी सखी क्रीडाके अभावमें मौन होनेवाली यह मेखला (तगडी) तुझ अत्यन्त सोती हुईके साथ शोकसे क्या मृतक हुई सी नहीं दीखती है ॥ ५८ ॥

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ॥
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥ ५९ ॥
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया ॥
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ॥ ६० ॥

अन्वयः । अन्यभृतासु कलं भाषितं, कलहंसीषु मदालसं गतम् पृषतीषु विलोलमीक्षितं (गतम्) पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥ ५९ ॥

इत्यमी गुणाः त्रिदिवोत्सुकयापि त्वया मामवेक्ष्य सत्यं निहिताः तव विरहगुरुव्यथं मे हृदयम् अवलम्बितुं न क्षमाः ॥ ६० ॥

वाच्यप० । कलेन भाषितेन, मदालसेन गतम्, विलोलेन ईक्षितेन (गतम्) विभ्रमैः (गतम्) इत्येतान् गुणान् त्रिदिवोत्सुकापि त्वं सत्यं निहितवती, क्षमैः न (भूयते) ॥ ५९ ॥ ६० ॥

कोकिलासु मधुरं भाषणं, विशिष्टहंसीषु मन्थरं गमनं, हारिणीषु चञ्चला दृष्टिः ईषत्कम्पितलतासु विलासाः इत्यमी पूर्वोक्ता गुणाः एषु कोकिलादिस्थानेषु जीवन्त्येव स्वर्गं प्रति प्रस्थितयापि त्वया मामवेक्ष्य विरहासहं विचार्य मत्प्राणधारणोपायतया स्थापिताः तव वियोगे अतिदुःखं मे हृदयं स्थापयितुं न शक्ता इति सरलार्थः ॥ ५९ ॥ ६० ॥

भा०–कोकिलाओंमें मनोहर वचन, कलहंसियोंमें मन्द गमन, हरणियोंमें चंचल दृष्टि, पवनसे कंपित की हुई लताओंमें विलास गया ॥ ५९ ॥

सत्य है कि स्वर्ग जानेकी इच्छा करनेवाली तैंने मुझे देखकर यह गुण त्यागे हैं, परन्तु तेरे वियोगके महादुःखवाले मेरे हृदयतक पहुंचनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ६० ॥

मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ ॥
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम् ॥ ६१ ॥

अन्वयः । ननु हे प्रिये ! सहकारः फलिनी च इमौ त्वया मिथुनं परिकल्पितम् अनयोर्विवाहसत्क्रियाम् अविधाय गम्यत इत्यसांप्रतम् ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । त्वं मिथुनं परिकल्पितवती ×× गच्छसि इत्यसांप्रतं (भूयते)॥ ६१ ॥

हे प्रिये ! आम्रः प्रियंगुलता चेमौ त्वया मिथुनत्वेनामानि अनयोर्विवाहमङ्गलमकृत्वा गम्यत इत्ययुक्तमिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०–हे प्रिये तैंने आमको और इस प्रियंगुलताको जोडा माना था, इन दोनोंके विवाहमंगलको विना किये तेरा जाना यह युक्त नहीं है ॥ ६१ ॥

कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ॥
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः । त्वया कृतदोहदः अयमशोकः यत् कुसुमम् उदीरयिष्यति तवालकाभरणं तत् कथं नु निवापमाल्यतां नेष्यामि ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । कृतदोहदअनेनाशोकेन यत् + उदीरयिष्यते मया तत् ++ नेष्यते ॥ ६२ ॥

त्वया कृतपादताडनरूपदोहदोऽयमशोको यत्पुष्पमुदीरयिष्यति, तवालकानामाभरणरूपं तत्पुष्पं केन प्रकारेण दाहाञ्जलेरर्ध्यतां नेष्यामीति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–तेरा प्रफुल्लितकिया यह अशोक जिस पुष्पको उत्पन्न करेगा उस तेरे अलकोंके भूषणरूपको मैं तेरी दाहकी अंजलिमें कैसे लगाऊंगा ॥ ६२ ॥

(अशोक सौभाग्यवती स्त्रीके चरणप्रहारसे फूलताहै.)

स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम् ॥
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे ॥ ६३ ॥

अन्वयः । हे सुगात्रि अन्यदुर्लभं सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहं स्मरतेव कुसुमाश्रुवर्षिणा अमुना अशोकेन त्वं शोच्यसे ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । स्मरन्निव कुसुमाश्रुवर्षी असौ अशोकः त्वां शोचति ॥ ६३ ॥

अन्यदुर्लभं ध्वनियुक्तं मंजीरं पादानुग्रहं चिन्तयतेव पुष्पाश्रुवर्षिणा अमुना पुरोवर्तिनाऽशोकेन हे सुगात्रि ! त्वं शोच्यसे इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०—हे सुन्दरि दूसरेको दुर्लभ शब्दायमान नूपुरवाले तेरे चरणके अनुग्रहको स्मरण करता पुष्परूपी आंसू त्यागता हुआ यह अशोक तेरा शोच करता है ॥ ६३ ॥

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया ॥
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते ॥ ६४ ॥

अन्वयः । तव निःश्वसितानुकारिभिः वकुलैः मया समम् अर्धचितां विलासमेखलाम् असमाप्य हे किन्नरकण्ठि ! किमिदं सुप्यते ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । त्वं किमिदं + स्वपिषि ॥ ६४ ॥

तव निःश्वासानुकारिभिः वकुलपुष्पैः मया सार्धमर्धं यथा तथा रचितां विलासरशनामपूरयित्वा हे किन्नरकण्ठि ! किमिदं निद्रा क्रियते इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—हे किन्नरसदृशकंठवाली तेरे श्वासके अनुकरण करनेवाले वकुलपुष्पोंसे मेरे साथ अधगुथी विलासकोंधनी पूर्ण किये विना कैसे सोती है ॥ ६४ ॥

समदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः ॥
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः ॥ ६५ ॥

अन्वयः । सखीजनः समदुःखसुखः अयमात्मजः प्रतिपच्चंद्रनिभः अहमेकरसः तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः अस्ति ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । सखीजनेन समदुःखसुखेन अनेनात्मजेन प्रतिपच्चन्द्रनिभेन मया एकरसेन (भूयते) तथापि व्यवसायेन प्रतिपत्तिनिष्ठुरेण भूयते ॥ ६५ ॥

सखीजनः त्वद्दुःखेन दुःखी, त्वत्सुखेन सुखी, अयम् पुत्रः शुक्लपक्षचन्द्रतुल्यः, अहमभिन्नरागः, तथापि तवास्मत्परित्यागरूपो व्यापारः निश्चयेन क्रूर इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—ये सखीजन सुखदुःखकी साथी हैं, द्वितीयाके चन्द्रमाकी समान यह पुत्र है, एक तेराही प्रेमी मैं हूं, तथापि तेरा कर्तव्य कठोर है ॥ ६५ ॥

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ॥
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ॥ ६६ ॥

अन्वयः । अद्य मे धृतिरस्तमिता, रतिश्च्युता, गेयं विरतम्, ऋतुर्निरुत्सवः, आभरणप्रयोजनं गतं, शयनीयं परिशून्यम् (जातम्) ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । धृत्या अस्तमितया, रत्या च्युतया, गेयेन विरतेन, ऋतुना निरुत्सवेन आभरणप्रयोजनेन गतेन, शयनीयेन परिशून्येन (जातम्) ॥ ६६ ॥

अद्य मे धैर्यं विलुप्तं, क्रीडा गता, गानं विरतम्, ऋतुर्वसन्तादिर्निरुत्सवः, भूषणानामप्रयोजनं गतं, तल्पं परिशून्यं किं बहुना त्वां विना सर्वं निष्फलमिति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०–आज मेरा धीरज नष्ट हुआ, रतिक्रीडा मिटी, गाना गया, ऋतु उत्सवहीन हुई, गहनोंका प्रयोजन समाप्त हुआ, शय्या सूनी हुई ॥ ६६ ॥

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ॥
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥ ६७ ॥

अन्वयः । त्वमेव गृहिणी, सचिवः, मिथः सखी, ललिते कलाविधौ प्रियशिष्या (अतः) त्वां हरता करुणाविमुखेन मृत्युना मे किं न हृतं वद ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । त्वया एव गृहिण्या, सचिवेन, मिथः सख्या, प्रियशिष्यया (भूयते) त्वया × + उच्यताम् ॥ ६७ ॥

त्वमेव दाराः, बुद्धिसहायो मंत्री, नर्मसचिवः, मनोहरे कलाप्रयोगे प्रियशिष्या अतस्त्वां हरता दयाशून्येन मृत्युना मे किं वस्तु न हृतं वद सर्वमपि हृतमिति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–तू मेरी भार्या, बुद्धि देनेमें सहायक, एकान्तकी सखी, गानआदि विद्याओंकी अच्छी प्यारी शिष्या थी तुझे कठोर मृत्युने हर कर बता मेरा क्या नहीं हरलिया ॥ ६७ ॥

मदिराक्षि मदाननार्पितं मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे ॥
अनुपास्यसि बाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः । मदिराक्षि ! मदाननार्पितं रसवत् मधु पीत्वा बाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिं कथं नु अनुपास्यसि ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । त्वया बाष्पदूषितः परलोकोपनतः जलाञ्जलिः कथं + नु पास्यते ॥ ६८ ॥

हे मदिराक्षि ! मन्मुखेनार्पितं रसवत्स्वादुतरं मद्यं पीत्वाश्रुतप्तं परलोकप्राप्तं मे जलाञ्जलिं कथं नु अनन्तरं पास्यसीति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०–हे मत्तनेत्रोंवाली ! मेरे मुखसे अर्पण कियाहुआ रसीला आसव पानकर मेरे आँसुओंसे दूषित परलोकमें मिलनेवाली अंजलीको कैसे पियेगी ॥ ६८ ॥

विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ॥
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः ॥ ६९ ॥

अन्वयः । विभवेपि सति त्वया विना अजस्य तावदेव सुखं गण्यताम् विलोभनान्तरैः विषयान्तरैः अहृतस्य मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । (जनाः) गणयन्तु सर्वैः विषयैः त्वदाश्रयैः (भूयते) ॥ ६९ ॥

ऐश्वर्ये सत्यपि त्वया विनाजस्यैतावत्सुखं गण्यतां विषयान्तरैरनाकृष्टस्य मम सर्वे भोगाः त्वदधीनाः इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०–ऐश्वर्य होनेपर भी तेरे विना अजका सुख यहींतक गिनना चाहिये कारण कि और विषय त्यागे हुए मेरे सब भोग तेरे आश्रित थे ॥ ६९ ॥

विलपन्निति कोशलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति ॥
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् ॥ ७० ॥

अन्वयः । कोसलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति इति विलपन् पृथ्वीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितानकरोत् ॥ ७० ॥

वाच्यप० । कोसलाधिपेन इति विलपता पृथ्वीरुहाः अपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषिताः अक्रियन्त ॥ ७० ॥

कोसलपतिरिति शोकरसार्थसंबद्धं प्रियामुद्दिश्य विलपन् सन् वृक्षानपि निर्यासबाष्पैः दूषितानकरोदिति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०–कोशलपति अजने इसप्रकार शोकमें ग्रथित हो प्यारीके निमित्त शोक कर के वृक्षोंके शाखाओंसे चूते हुए रसके आँसुओंसे रुदन कराया ॥ ७० ॥

अथ तस्य कथंचिदंकतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम् ॥
विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे ॥ ७१ ॥

अन्वयः । अथ स्वजनः तस्य अंकतः कथंचित् अपनीय तदन्त्यमंडनां तां सुन्दरीम् अगुरुचन्दनैधसे अनलाय विससर्ज ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । अथ स्वजनेन + + तदन्त्यमंडना सा सुन्दरी + + विससृजे ॥ ७१ ॥

अथ कुटुम्बवर्गः तस्याजस्योत्संगात् कथंचिदपनीय तद्दिव्यपुष्पेनालंकृतां वरारोहामगुरुचन्दनैधस अग्नये त्यक्तवानिति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०–तब बंधुवर्गोंने किसीप्रकार उसकी गोदमेंसे लेकर उसी मालासे अन्तसमय सिंगारी उस सुन्दरीको अगरचन्दनके ईंधनवाली अग्निके निमित्त समर्पण किया ॥ ७१ ॥

प्रमदामनुसंस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ॥
न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया ॥ ७२ ॥

अन्वयः । नृपतिः सन् शुचा प्रमदामनुसंस्थितः इति वाच्यदर्शनात् देव्या सह शरीरमग्निसात् न चकार जीविताशया तु न ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । नृपतिना सता × शरीरं न चक्रे ॥ ७२ ॥

महीपतिरजः विद्वानपि शोकेन प्रियया सह मृत इति निन्दादर्शनादिन्दुमत्या सह देहमग्न्यर्पणं न चकार, प्राणेच्छया तु नेति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०–राजा अज विद्वान होकरभी स्त्रीके पीछे मरगया, इस दुर्नामतासे उसने शरीर अग्निमें न जलाया, कुछ जीनेकी इच्छासे नहीं ॥ ७२ ॥

अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम् ॥
विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः ॥ ७३ ॥

अन्वयः । अथ विदुषा तेन गुणशेषां भामिनीमुपदिश्य दशाहतः परे महर्द्धयः विधयः पुर उपवने एव समापिताः ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । अथ सः विद्वान् महर्द्धीन् ++ समापितवान् ॥ ७३ ॥

अथ पण्डितेन तेन नृपेण गुणशेषाम्प्रियामुद्दिश्य दशाहतः परा महासमृद्धयः क्रियाः पुर्या उद्याने एव सम्पूर्णा अनुष्ठिता इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०–तब शास्त्रके जाननेवाले अजने गुणमात्र रही हुई प्यारीके निमित्त नगरके उपवनमेंही महावैभवके सहित कर्म पूरे किये ॥ ७३ ॥

स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशांकदर्शनः ॥
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु ॥ ७४ ॥

अन्वयः । तया विना क्षणदापायशशांकदर्शनः सः पौरवधूमुखाश्रुषु स्वशुचः परिवाहमिवावलोकयन् पुरीं विवेश ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । शशांकदर्शनेन तेन × अवलोकयता × पुरी विविशे ॥ ७४ ॥

प्रियया विना प्रभातचन्द्रसमः सः नृपः पौरवध्वाननाश्रुषु स्वदुःखस्य जलोच्छ्वासमिवावलोकयन्नगरीं विवेशेति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०–इन्दुमतीके विना रात्रिके बीतनेसे चन्द्रमाके समान (कांतिहीन) उस अजने नगरवासिनी स्त्रियोंके मुखोंके आंसुओंमें अपने दुःखका प्रवाहसा देखते हुए प्रवेश किया ॥ ७४ ॥

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रणिधानाद्गुरुराश्रमस्थितः ॥
अभिषंगजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत् ॥ ७५ ॥

अन्वयः । अथ सवनाय दीक्षितः गुरुः आश्रमस्थितः (सन्) तम् अभिषंगजडं प्रणिधानात् विजज्ञिवान् इति शिष्येण अन्वबोधयत् किल ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । दीक्षितेन गुरुणा आश्रमस्थितेन (सता) स (अभिषंगजडः) अन्वबोधि ॥७५॥

अथ यागाय दीक्षितो महर्षिः वशिष्ठः स्वकीयाश्रमे स्थितः सन् समाधिबलात्तं नृपं दुःखमोहितं ज्ञातवान्, पश्चादिति वक्ष्यमाणप्रकारेण शिष्येणान्वबोधयत्किलेति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-तब यज्ञमें दीक्षित होनेके कारण वशिष्ठने अपने आश्रममें स्थित हुए तपके प्रतापसे उसे दुःखसे मोहित जानकर शिष्यके द्वारा इसप्रकार बोध दिया ॥ ७५ ॥

असमाप्तविधिर्यतो मुनिस्तव विद्वानपि तापकारणम् ॥
न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । यतो मुनिः असमाप्तविधिः तव तापकारणं विद्वानपि पथश्च्युतं भवंतं प्रकृतौ स्थापयितु स्वयं न उपस्थितः ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । मुनिना असमाप्तविधिना विदुषापि पथश्च्युतं भवन्तं स्वयं न उपस्थितम् ॥ ७६ ॥

यस्मान्मुनिरसमाप्तयज्ञस्ततस्तव प्रियानाशरूपं दुःखकारणं जानन्नपि स्वभावाद् भ्रष्टं भवन्तं स्वभावे स्थापयितुं स्वयं नागतः इति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०-क्योंकि मुनि यज्ञ समाप्त न होनेके कारण तुम्हारे दुःखका हेतु जानकरभी स्वभाव त्यागेहुए तुमको समझानेके निमित्त स्वयं न आ शके ॥ ७६ ॥

मयि तस्य सुवृत्त वर्तते लघुसंदेशपदा सरस्वती ॥
शृणु विश्रुतसत्त्वसार तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि ॥ ७७ ॥

अन्वयः । हे सुवृत्त लघुसंदेशपदा तस्य सरस्वती मयि वर्तते हे विश्रुतसत्त्वसार तां शृणु एनां च हृदि उपधातुम् अर्हसि ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । तस्य सरस्वत्या मयि वृत्यते + सा श्रूयतां त्वया + अर्ह्यते ॥ ७७ ॥

हे सदाचारशील! सूक्ष्मसंदेशपदा तस्य वशिष्ठस्य वाङ् मयि विद्यते, हे प्रख्यातधैर्यातिशय तां भारतीं शृणु, एनां वाचं हृदि धर्तुं योग्योऽसीति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०-हे सदाचारयुक्त ! उनकी थोडे अक्षरके संदेसाकी वाणी मुझमें वर्तमान है, विख्यातधैर्यवाले इसे सुन और इसको हृदयमें धारण करनेको तू योग्यहै ॥ ७७ ॥

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ॥
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ॥ ७८ ॥

अन्वयः । अजन्मनः पुरुषस्य पदेषु समतीतं च भवच्च भावि च इति त्रितयं स निष्प्रतिघेन ज्ञानमयेन चक्षुषा पश्यति हि ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । तेन + दृश्यते ॥ ७८ ॥

पुरातनपुरुषस्य भगवतस्त्रिविक्रमस्य पदविक्रमेषु भूतं वर्त्तमानं भविष्यच्चेति त्रितयं स मुनिरप्रतिबन्धेन ज्ञानमयेन चक्षुषा पश्यति हीति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—पुराणपुरुषके पद (त्रिलोकी) में भूत भविष्य वर्तमान तीनोंको ज्ञानकी उज्ज्वल दृष्टिसे वे निःसन्देह देखते हैं ॥ ७८ ॥

चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिन्दोः परिशंकितः पुरा ॥
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः । पुरा किल दुश्चरं तपः चरतः तृणबिंदोः परिशंकितः हरिः समाधिभेदिनीं हरिणीं सुराङ्गनाम् अस्मै प्रजिघाय ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । परिशंकितेन हरिणा समाधिभेदिनी हरिणी सुराङ्गना प्रजिघ्ये ॥ ७९ ॥

पूर्वकाले तीव्रं तपश्चरतस्तृणबिन्दुनामकात्कस्माच्चिदृषेः भीतः शक्रः तपोविनाशिनीं हरिणीं नाम देवाङ्गनामस्मै राजर्षये प्रेरितवानिति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—आगे कठिन तप करतेहुए तृणबिंदुनामक राजर्षिसे डरकर इन्द्रने उसके निकट तपस्या भंगकरनेवाली हरिणी नाम अप्सरा भेजी ॥ ७९ ॥

स तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् ॥
अशपद्भव मानुषीति तां शमवेलाप्रलयोर्मिणा भुवि ॥ ८० ॥

अन्वयः । सः शमवेलाप्रलयोर्मिणा तपः प्रतिबंधमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् तां भुवि मानुषी भव इति अशपत् ॥ ८० ॥

वाच्यप० । तेन + प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमा सा त्वया मानुष्या भूयतामिति अशप्यत॥८०॥

स मुनिः तपोविघ्नक्रोधेन प्रकाशितमनोहरविलासां तामप्सरसं मर्त्यलोके मनुष्यस्त्री भवेति शशापेति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—उस मुनिने शांतिरूप मर्यादाको (नाश करनेवाली) प्रलयकालकी तरंगसे तपभंग होनेके क्रोधके कारण सन्मुख मनोहर विलास करती हुईको यह शाप दिया कि तू पृथ्वीमें मनुष्यकी स्त्री हो ॥ ८० ॥

भगवन्परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे ॥
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवानासुर पुष्पदर्शनात् ॥८१॥

अन्वयः । हे भगवन् अयं जनः परवान् मे प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व इति च उपनताम् आ सुरपुष्पदर्शनात् क्षितिस्पृशं कृतवान् ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । अनेन जनेन परवता (भूयते) प्रतिकूलाचरितं क्षम्यताम् इति उपनता (सा) क्षितिस्पृक् कृता ॥ ८१ ॥

हे भगवन् ! अयं जनः पराधीनः, मे प्रतिकूलाचरितमपराधं क्षमस्वेत्यनेन प्रकारेण शरणागताञ्चाप्सरसम् सुरपुष्पदर्शनपर्य्यन्तं भूमिस्पृशं मानुषीं कृतवानिति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०-हे भगवन्! यह जन पराये आधीन है, मेरा अपराध क्षमा करो इसप्रकारसे शरण आई हुईको दिव्यपुष्प देखनेतक पृथ्वीमें रहनेवाली किया ॥ ८१ ॥
(अर्थात् जब देवताओंका फूल देखेगी तब तूं अपने लोकको प्राप्त होगी)

क्रथकैशिकवंशसंभवा तव भूत्वा महिषी चिराय सा ॥
उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः । क्रथकैशिकवंशसंभवा सा तव महिषी भूत्वा चिराय दिवश्च्युतं शापनिवृत्तिकारणम् उपलब्धवती विवशा (अभूत्) ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । क्रथकैशिकवंशसंभवया तया तव महिष्या भूत्वा उपलब्धवत्या विवशया (अभावि) ॥ ८२ ॥

क्रथकैशिककुललब्धजन्मा सा हरिणी तव महिषी भूत्वा चिराय स्वर्गात्पातितं शापनिवृत्तिहेतुकं सुरकुसुमरूपमुपलब्धवती विवशाभूदिति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०-क्रथकैशिक (विदर्भ) वंशमें जन्म ले वह (हरिणी) तेरी रानी हो बहुत कालके पीछे स्वर्गसे गिरे, शाप दूर होनेके कारण दिव्य फूलोंको पाकर मृतक हुई है ॥ ८२ ॥

तदलं तदपायचिन्तया विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता ॥
वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः ॥ ८३ ॥

अन्वयः । तस्मात् तस्य अपायाचिन्तया अलम् उत्पत्तिमतां विपदुपस्थिता त्वया वसुधा इयम् अवेक्ष्यतां हि नृपाः वसुमत्या कलत्रिणः ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । विपदा उपस्थितया (भूयते) त्वम् इमां वसुधाम् अवेक्षस्व नृपैः कलत्रिभिः (भूयते) ॥ ८३ ॥

तस्मात्तस्याः मरणं न चिन्त्यं जन्मधारिणां विपत्तिः सिद्धा " जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" इति गीतायाम् । त्वयेयं भूमिः पाल्यतां यस्मान्नृपाः पृथिव्या कलत्रवन्तः अतो न शोचितव्यमिति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०-इसकारण उसके मरणकी चिन्तासे बस करो, जन्मधारियोंके निकट विपत्ति रहतीहीहै, तुमको यह पृथ्वी पालन करनी चाहिये, कारण कि राजाओंकी पृथ्वीही स्त्री होती है ॥ ८३ ॥

उदये मदवाच्यमुज्झता श्रुतमाविष्कृतमात्मवत्त्वया ॥
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम् ॥ ८४ ॥

अन्वयः । उदये मदवाच्यमुज्झता त्वया आत्मवत् श्रुतम् आविष्कृतं तत् मनसो ज्वरे उपस्थिते सति अक्लीबतया पुनः प्रकाश्यताम् ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । मद्वाच्यम् उज्झन् त्वम्+ आविष्कृतवान् तत् त्वं पुनः प्रकाशय ॥ ८४ ॥

अभ्युदये सति निन्दादुःखं परिहरता सत्यपि मदकारणे क्षमाचता त्वया यदध्यात्मप्रचुरं ज्ञानं प्रकाशितं, तच्छ्रुतं मनःसंतापे प्राप्ते सति धैर्येण पुनः प्रकाश्यताम् ' पण्डितेन सर्वास्ववस्थास्वपि धीरेण भवितव्यमिति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०—ऐश्वर्यमें मदके अपवाद मिटाते हुए जो तैंने अध्यात्मज्ञान प्रकाश किया था मनके संताप प्राप्त होनेपर धीरतासे फिर अब प्रकाश कर ॥ ८४ ॥

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते ॥
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥ ८५ ॥

अन्वयः । रुदता भवता सा कुत एव अनुमृता अपि पुनर्न लभ्यते परलोकजुषां देहिनां स्वकर्मभिः गतयः भिन्नपथाः हि ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । रुदन् तां लभते गतिभिः भिन्नपथाभिः भूयते ॥ ८५ ॥

रुदता भवता सा कुत एव लभ्यते, तेनानुमृतवतापि भवता पुनर्न लभ्यते, लोकान्तरभाजां शरीरधारिणां स्थानानि पूर्वाचरितपुण्यपापैः' पृथक्कृतमार्गाणि भवन्तीति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०—रोनेसेभी तुम्हारे वह कहां है तुम्हारे मरनेसेभी वह नहीं मिल सक्ती, लोकान्तरमें जानेवाले जीवोंकी गतियां अपने २ कर्मोंके अनुसार पृथक् २ होती हैं ॥ ८५ ॥

अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः ॥
स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥ ८६ ॥

अन्वयः । (किं तु) अपशोकमनाः कुटुम्बिनीं निवापदत्तिभिः अनुगृह्णीष्व, अतिसंततं स्वजनाश्रु प्रेतं दहति इति प्रचक्षते किल ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । त्वया अपशोकमनसा कुटुम्बिनी अनुगृह्यतां, स्वजनाश्रुणा प्रेतः दह्यते ॥ ८६ ॥

किन्तु दुःखरहितः सन् भार्यां पिण्डोदकदानैस्तर्पय, हि अविच्छिन्नं बन्धूनामश्रु मृतं दहतीति मन्वादयः प्रचक्षत इति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—किन्तु विशोक मन होकर कुटुम्बिनी (भार्या) पर पिंडादि देकर अनुग्रह करो, बंधुजनोंका निरन्तर रोना प्रेतको दुःखी करताहै, ऐसा कहते हैं ॥ ८६ ॥

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ॥
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥ ८७ ॥

अन्वयः । शरीरिणां मरणं प्रकृतिः जीवितं विकृतिः बुधैः उच्यते यद्यसौ जंतुः क्षणं श्वसन्नवतिष्ठते लाभवान् ननु ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । मरणं प्रकृतिं जीवितं विकृतिं बुधाः ब्रुवन्ति जन्तुना श्वसता अवस्थीयते अनेन लाभवता (भूयते) ॥ ८७ ॥

देहधारिणां मरणं स्वभावः, जीवितं विकृतिः पण्डितैरुच्यते, एवं स्थिते जीवः क्षणमपि जीवन्नव-तिष्ठते यद्यसौ लाभवान्ननु जीवने यथालाभं सन्तोष्टव्यमिति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०-शरीरधारियोंका मरना स्वभाव है, और जीना विकार है; यह विद्वानोंने कहा है, जो जीवधारी क्षणमात्र श्वास लेते हैं यही निश्चय लाभ है ॥ ८७ ॥

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ॥
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः । मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि आर्पितं शल्यम् अवगच्छति स्थिरधीः तु तदेव कुशलद्वार-तया समुद्धृतं मन्यते ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । मूढचेतनेन प्रियनाशः अवगम्यते स्थिरधिया तु × मन्यते ॥ ८८ ॥

मूढबुद्धिरिष्टनाशं हृदि निखातं शङ्कुमन्यते, पण्डितास्तु प्रियनाशस्य मोक्षोपायतया तदेव शल्य-मुत्खातं मन्यंत इति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०-भ्रांतबुद्धि प्रियके नाशसे हृदयमें गडी भाल मान्ते हैं, परन्तु विद्वान् उसीको कुशलताका द्वार होनेके कारण निकली हुई (शल्य) मान्ते हैं ॥ ८८ ॥

(अर्थात् मरनेसे सुकर्मियोंको मोक्ष होताहै)

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ॥
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ ८९ ॥

अन्वयः । स्वशरीरशरीरिणौ अपि यदा श्रुतसंयोगविपर्ययौ (स्तः) तदा बाह्यैर्विषयैः विरहः विपश्चितं किमिवानुतापयेत् वद ॥ ८९ ॥

वाच्यप० । स्वशरीरशरीरिभ्यां श्रुतसंयोगविपर्ययाभ्यां (भूयते) विरहेण विपश्चित् किमिवानुता-प्येत (त्वया) उद्यताम् ॥ ८९ ॥

स्वस्य देहात्मानावपि यदा श्रुतसंयोगवियोगौ, तदा पुत्रकलत्रादिभिर्विरहो पंडितं किमिवानुता-पयेत्त्वं वदेति सरलार्थः ॥ ८९ ॥

भा०-अपना शरीर और आत्माभी जब संयोग वियोगवाले माने गये हैं तो बाहरी विषय (पुत्रकलत्रादि) से पृथक् होना विद्वानोंको कैसे संताप दे सक्ताहै ॥ ८९ ॥

न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि ॥
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥९०॥

अन्वयः । हे वशिनामुत्तम पृथग्जनवत् शुचो वशं गंतुं नार्हसि (तथाहि) द्रुमसानुमतां किम-न्तरं वायौ द्वितयेऽपि यदि ते चलाः ॥ ९० ॥

वाच्यप० । त्वया नार्ह्यते केन अन्तरेण (भूयते) तैः चलैः भूयते ॥ ९० ॥

हे जितेन्द्रियश्रेष्ठ ! पामरजनवच्छोकस्य वशं गन्तुं न योग्योसि, तथाहि तरुशिखारिणां को विशेषः पवने सति द्विप्रकारा अपि ते द्रुमसानुमन्तश्चंचला स्युरिति सरलार्थः ॥ ९० ॥

भा०-हे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ पामरमनुष्योंके समान शोकके वशीभूत होनेको तुम योग्य नहीं हो, क्यों कि वृक्ष और पर्वतमें क्या अन्तर है जो पवनसे वे दोनों चलायमान हो जाँय ॥ ९० ॥

स तथेति विनेतुरुदारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम् ॥
तदलब्धपदं हृदि शोकघने प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः॥९१॥

अन्वयः । सः उदारमतेः विनेतुर्गुरोर्वशिष्ठस्य वचः तथा इति प्रतिगृह्य मुनिं विससर्ज तत् (वचः) शोकघने अस्य हृदि अलब्धपदं (सत्) गुरोः अन्तिकं प्रतियातमिव ॥ ९१ ॥

वाच्यप० । तेन उदारमतिना मुनिः विससृजे तेन × अलब्धपदेन (सता) प्रतियातेन इव भूयते ॥ ९१ ॥

स नृपः कुशाग्रबुद्धेर्गुरोर्वशिष्ठस्य वचः तच्छात्रमुखेरितमंगीकृत्य वशिष्ठच्छात्रं विसृष्टवान्, किन्तु तद्वचः दुःखसान्द्रेऽस्य नृपस्य हृद्यप्राप्तावकाशं सद्गुरोर्वशिष्ठस्य समीपं प्रतिनिवृत्तं किमिति सरलार्थः । तोटकवृत्तमेतत् ॥ ९१ ॥

भा०-उस अजने शिक्षाकरनेवाले गुरुके वचनको "ऐसाही है" यह कह स्वीकारकर वशिष्ठके शिष्यको विदा किया, परन्तु महाशोकवाले हृदयमें वह वचन अवकाश न पाकर उसके गुरुके निकट निवृत्तसा होगया ॥ ९१ ॥

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचिद्बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः ॥
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च ९२

अन्वयः । अवितथसूनृतेन तेन सूनोः बालत्वात् प्रियायाः सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च कथंचिदष्टौ समाः परिगमिताः ॥ ९२ ॥

वाच्यप० । अवितथसूनृतः सः कथंचिदष्टौ समाः परिगमितवान् ॥ ९२ ॥

यथार्थप्रियवचनेन तेनाजेन सुतस्य बालत्वादिन्दुमत्याः वस्त्वन्तरगतमाकारसाम्यैः चित्रदर्शनैः स्वप्नेषु क्षणभंगुरैस्समागमोत्सवैश्च कृच्छ्रेणाष्टौ वत्सरा अतिवाहिताः इति सरलार्थः ॥ ९२ ॥

भा०-सत्य और मधुरवाणी बोलनेवाले अजने पुत्रको बालक होनेके कारण प्यारीके चित्र देखनेसे और स्वप्नमें क्षणमात्र संयोगके आनन्दसे जैसे तैसे आठ वर्ष विताये ॥ ९२ ॥

तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशंकुः
प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद ॥

प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं
लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने ॥ ९३ ॥

अन्वयः । शोकशंकुः तस्य हृदयं प्लक्षप्ररोहः सौधतलम् इव प्रसह्य किल विभेद सः प्राणान्तहेतुमपि भिषजामसाध्यं तं (शोकशंकुं) प्रियानुगमने त्वरया लाभं मेने ॥ ९३ ॥

वाच्यप० । शोकशंकुना तस्य हृदयं प्लक्षप्ररोहेण सौधतलेन इव विभिदे तेन प्राणान्तहेतुः भिषजामसाध्यः स लाभः मेने ॥ ९३ ॥

शोककील: तस्याजस्य हृदयं प्लक्षप्ररोहः सौधतलमिव बलात्किल विभेद, स नृपः मरणकारणमपि भिषजामप्रतिसमाधेयं तं रोगपर्यवसितं प्रियाया अनुगमने त्वरयोत्कण्ठया लाभं मेने इति सरलार्थः । तद्वियोगस्य दुस्सहत्वात्तत्प्रतिकारणं मरणमेव श्रेष्ठमिति भावः ॥ ९३ ॥

भा० । निश्चयही शोकका बाण शक्तिसे उसके हृदयको घरकी छत्तको बडके वृक्ष के समान अन्ततक भेदकर गया था, उसने मरणके कारण वैद्योंसे असाध्य उस शोककोभी प्यारीके पीछे जानेकी उत्कंठामें लाभ माना ॥ ९३ ॥

सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमार-
मादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम् ॥
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः
प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव ॥ ९४ ॥

अन्वयः । अथ नृपतिः सम्यक् विनीतं वर्महरं कुमारं विधिवत्प्रजानां रक्षणविधौ आदिश्य रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः (सन्) प्रयोपवेशनमतिर्बभूव ॥ ९४ ॥

वाच्यप० । नृपतिना रोगोपसृष्टतनुना × मुमुक्षुणा (सता) प्रायोपवेशनमतिना बभूवे॥९४॥

अथ नृपतिः निसर्गसंस्काराभ्यां विनययुक्तं कवचधारणयोग्यं तं कुमारं दशरथं प्रजानां रक्षणविधौ राज्ये विधिवन्नियुज्य रोगव्याप्तशरीरस्य दुःखावस्थितिं जिहासुःसन् अनशनावस्थानबुद्धिर्बभूवेति सरलार्थः । अनयोर्वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥ ९४ ॥

भा०—तब अजने अच्छीप्रकार सिखाये कवचधारी कुमार दशरथको प्रजाकी रक्षण विधिमें शास्त्रानुसार उपदेश करके, रोगके कुत्सित निवासवाले शरीरको त्यागनेकी इच्छासे अन्नत्यागका व्रत लिया ॥ ९४ ॥

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वो-
र्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः ॥
पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ॥ ९५ ॥

अन्वयः । असौ जह्नुकन्यासरय्वोर्व्यतिकरभवे तीर्थे देहत्यागात् सद्य एव अमरगणनाले-ख्यम् आसाद्य पूर्वाकाराधिकतररुचा कान्तया संगतः (सन्) नन्दनाभ्यन्तरेषु लीलागारेषु अरमत ॥ ९५ ॥

वाच्यप० अनेन + संगतेन (सता) + अरम्यत ॥ ९५ ॥

असौ नृपः गंगासरयूसंगमे तीर्थे शरीरत्यागात्सद्य एवामरगणनायां लेखनं प्राप्य पूर्वस्मादधिक-तरकान्त्या प्रियया संगतस्सन् इन्द्रोद्यानस्यान्तर्वर्तिषु क्रीडाभवनेषु पुनररमतेति सरलार्थः । मन्दाक्रा-न्ताच्छन्दः ॥ ९५ ॥

भा०-यह अज गंगा और सरयूके जलोंके समागम तीर्थमें शरीर त्यागनेसे शीघ्र देवताओंकी गिन्तीमें लेख पाकर (वह) पहले शरीरसे अधिक शोभायमान भार्याके साथ फिर नन्दनवनके क्रीडामन्दिरोंमें विलास करने लगा ॥ ९५ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ।

पितुरनन्तरमुत्तरकोसलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ॥
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः ॥ १ ॥

अन्वयः । समाधिजितेन्द्रियः यमवताम् अवतां च धुरि स्थितः महारथः दशरथः पितुरनन्तरमु-त्तरकोसलान्समधिगम्य प्रशशास ॥ १ ॥

वाच्यप० । समाधिजितेन्द्रियेण × धुरि स्थितेन महारथेन दशरथेन प्रशशासे ॥ १ ॥

संयमेन जितेन्द्रियः संयमिनां रक्षतां राज्ञामग्रे स्थितो महारथः दशरथः पितुरनन्तरमुत्तरकोसला-न्देशान्सधिगम्य प्रशशासेति सरलार्थः । द्रुतविलम्बितमेतद्वृत्तम् ॥ १ ॥

भा०-संयमसे इन्द्री जीतनेवाले, योगी और राजोंमें अग्रणी, महारथ, दशरथने पिताके अनन्तर उत्तरकोसलदेशोंको प्राप्त करके मर्यादामें रक्खा ॥ १ ॥

अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम् ॥
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः ॥ २ ॥

अन्वयः । अधिगतम् आत्मकुलोचितं सनगरं प्रकृतिमण्डलं यत् विधिवत् अपालयत् ततः नगरन्ध्रकरौजसः अस्य गुणवत्तरम् अभवत् ॥ २ ॥

वाच्यप० । (तेन) विधिवत् अपाल्यत + गुणवत्तरेण अभूयत ॥ २ ॥

प्राप्तं स्वकुलागतं नगरजनयुक्तं जानपदमण्डलं यस्माद्यथाशास्त्रमपालयत्ततः कुमारतुल्यपराक्रमस्यास्य दशरथस्य गुणवत्तरमभवत्, तत् प्रकृतिमण्डलं तस्मिन्नतीवानुरक्तं जातमिति भावः ॥ २ ॥

भा०—प्राप्त हुए अपने कुलके योग्य नगरसहित, प्रजामंडलको, विधिपूर्वक जो पालन किया इसीसे पर्वतमें छिद्र करनेवाले (कार्तिकेय) के समान तेजस्वीका प्रजामंडल) अधिक गुणवान् हुआ ॥ २ ॥

उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृतकर्मणाम् ॥
बलनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम् ॥ ३ ॥

अन्वयः । मनीषिणः बलनिषूदनं मनुदण्डधरान्वयम् तमर्थपतिं च उभयमेव समयवर्षितया कृतकर्मणां श्रमनुम् (इति) वदन्ति ॥ ३ ॥

वाच्यप० । मनीषिभिः बलनिषूदनः मनुदण्डधरान्वयः अर्थपतिः च उभयम् एव + श्रमनुद इति उच्यते ॥ ३ ॥

पण्डिताः शक्रं प्रशाशकं मनुकुलोत्पन्नं तमर्थपतिं दशरथं चेत्युभयमेव समयवर्षितया स्वकर्मकारिणां श्रमस्य नुदमिति वदन्तीति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् इन्द्र और मनुराजाके वंशवाले उस पृथ्वीपति इन दोहीको अवसर पर वर्षा करनेके कारण सुकर्मियोंके श्रम मिटानेवाले कहते हैं ॥ ३ ॥

जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः ॥
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे ॥ ४ ॥

अन्वयः । शमरते अमरतेजसि अजनंदने पार्थिवे (सति) जनपदे गदः पदं न आदधौ सपत्नजः अभिभवः कुत एव क्षितिः फलवती अभूत् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । गदेन पदं न आदधे सपत्नजेन अभिभवेन कुत एव, क्षित्या फलवत्या अभावि ॥४॥

शान्तिधर्मतत्परे देवतेजस्यजनन्दने दशरथे पृथ्वीश्वरे सति देशे रोगः पदं नादधौ, शत्रुजन्यः तिरस्कारः कुत एव, वसुधा फलवत्यभूच्च ॥ ४ ॥

भा०—शान्तिमें तत्पर देवताके समान तेजस्वी अजनन्दनके धराधीश होनेपर देशमें रोगनेभी चरण न धरा और फिर शत्रुओंका भय तो कहां पृथ्वी फलवाली हुई ॥४॥

दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यदजेन ततः परम् ॥
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीनमहीनपराक्रमम् ॥ ५ ॥

अन्वयः । मही दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यत् ततः परम् अजेन (यथा श्रियमपुष्यत्) तथैवाहीनपराक्रमं तम् अधिगम्य पुनर्न बभौ (इति) न ॥ ५ ॥

वाच्यप० । मह्या + श्रीः अपुष्यत + पुनर्न बभे (इति) न ॥ ५ ॥

पृथ्वी चक्रवर्तिना रघुणा यथा लक्ष्मीमपुष्यत्, तदनन्तरमजेन यथा कान्तिमपुष्यत्, तथैव महाबलिष्ठं तं दशरथं स्वामिनमभिगम्य पुनर्नवभाविति नेति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—पृथ्वीने जैसे दशदिशाओंके जीतनेवाले रघुसे और उसके उपरान्त अजसे अपनी शोभा वढाईथी, वैसेही उस महापराक्रमी राजाको प्राप्त हो शोभित हुई ॥ ५ ॥

समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः ॥
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा ॥ ६ ॥

अन्वयः । नराधिपः समतया वसुवृष्टिविसर्जनैः असतां नियमनाच्च सवरुणौ यमपुण्यजनेश्व अनुययौ रुचा अरुणाग्रसरम् (अनुययौ) ॥ ६ ॥

वाच्यप० । नराधिपेन × अनुयये रुचा अरुणाग्रसरः (अनुयये) ॥ ६ ॥

प्रजापतिः दशरथः समदर्शितया धनवृष्टिविसर्जनैः क्रूराणां निग्रहाच्च वरुणसहितौ यमकुबेरौ यथासंख्यमनुचकार, कान्त्यारुणसारथिं रविमनुययाविति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—महाराज दशरथ समान वर्तावसे धनवरसाने और क्रूरोंको दंड देनसे वरुण सहित यम कुबेरके और तेजसे रविके अनुयायी हुए ॥ ६ ॥

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु ॥
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत् ॥ ७ ॥

अन्वयः । उदयाय यतमानं तं मृगयाभिरतिर्न अपाहरत्, दुरोदरं न (अपाहरत्) शशिप्रतिमाभरणं मधु न च (अपाहरत्) नवा नवयौवना प्रियतमा (अपाहरत्) ॥ ७ ॥

वाच्यप० । यतमानः स मृगयाभिरत्या न अपाह्रियत दुरोदरेण न शशिप्रतिमाभरणेन मधुना न (अपाह्रियत) न वा नवयौवनया प्रियतमया (अपाह्रियत) ॥ ७ ॥

अभ्युदये यतमानं तं दशरथमाखेटव्यसनं नाचकर्ष, द्यूतं च नापाहरत्, चन्द्रस्य प्रतिबिम्बाभरणं मधु नापाहरत्, नवयौवना रामा नापाहरदिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—उन्नतिके निमित्त यत्न करनेवाले उस दशरथको न मृगयाकी अधिकताने न द्यूतने और न चंद्रप्रतिबिम्बके भूषणवाली मदिरा तथा नवीन यौवनवाली स्त्रियोंने जय किया ॥ ७ ॥

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहासकथास्वपि ॥
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता ॥ ८ ॥

अन्वयः । तेन प्रभवति सति वासवेऽपि कृपणा वाङ् नेरिता, परिहासकथास्वपि वितथा (वाङ् नेरिता) (किं च) अपरुषा (तेन) सपत्नजनेष्वपि परुषाक्षरं न (ईरितम्) ॥ ८ ॥

वाच्यप० । सः कृपणां वाचं न ईरितवान् वितथां (वाचं न ईरितवान्) अपरुद् (सः) परुषाक्षरं न (ईरितवान्) ॥ ८ ॥

तेन दशरथेन प्रभौ सति इन्द्रेपि दीना वाङ् नोक्ता, परिहासवार्तास्वपि मिथ्या वाङ् नेरिता किञ्च क्रोधशून्येन तेनारिजनेष्वपि क्रूराक्षरं यथा तथा वाङ् नेरिता, किं त्वदीना सत्या मधुरैव वागुक्तेति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-उस राजाने प्रभु होनेपर दीनताका वचन इन्द्रसेभी न कहा, तथा हँसीकी कथामेंभी असत्य न कहा और क्रोधशून्य (होनेसे) कठोर वचनका प्रयोग शत्रुओंमेंभी न किया ॥ ८ ॥

उदयमस्तमयं च रघूद्वहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः ॥
स हि निदेशमलंघयतामभूत्सुहृदयोहृदयः प्रतिगर्जताम् ॥ ९ ॥

अन्वयः । वसुधाधिपाः रघूद्वहात् उदयमस्तमयञ्च उभयमानशिरे हि सः निदेशमलंघयतां सुहृद्-भूत् प्रतिगर्जतामयोहृदयः (अभूत्) ॥ ९ ॥

वाच्यप० । वसुधाधिपैः आनशे + तेन सुहृदा अभावि अयोहृदयेन (अभावि) ॥ ९ ॥

पृथ्वीपतयः तस्माद्रघुनायकाद्वृद्धिं नाशं चेत्युभयं लेभिरे, यस्मात् सः दशरथः आज्ञामलंघयताम्मित्रमभूत्, प्रतिस्पर्धिनां कठिनचित्तोऽभूदिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-राजाओंने उस रघुकुलपतिसे उदय और अस्त दोनोंकी प्राप्ति की, कारण कि वह आज्ञा उल्लंघन न करनेवालेका प्रिय और सामना करनेवालोंको कठिनचित्त था ॥ ९ ॥

अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः ॥
जयमघोषयदस्य तु केवलं गजवती जवतीव्रहया चमूः ॥ १०

अन्वयः । अधिज्यशरासनः सः एकरथेन उदधिनेमिं मेदिनीमजयत् गजवती जवतीव्रहया चमूः अस्य तु केवलं जयमघोषयत् ॥ १० ॥

वाच्यप० । अधिज्यशरासनेन तेन + उदधिनेमिः मेदिनी अजीयत गजवत्या जवतीव्रहयया चम्वा x जयः अघोष्यत ॥ १० ॥

अधिज्यकार्मुकः स दशरथः समुद्रवेष्टनां वसुधामेकरथेनाजयत्, हस्तियुक्ता वेगेन तीव्राश्वा सा सेना त्वस्य महीपतेः केवलं जयमप्रथयदिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-धनुषधारीने समुद्रपर्यंत पृथ्वी एकही रथसे जीती, हाथी और महावेगवान् घोडेवाली इसकी सेनाने तो केवल जयशब्द प्रगट किया ॥ १० ॥

अवनिमेकरथेन वरूथिना जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः ॥
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवा घनरवा नरवाहनसंपदः ॥ ११ ॥

अन्वयः । वरूथिना एकरथेन अवनिं जितवतः धनुर्भृतः नरवाहनसंपदः तस्य घनरवा अर्णवाः विजयदुंदुभितां ययुः किल ॥ ११ ॥

वाच्यप० । घनरवैः अर्णवैः विजयदुंदुभिता ययेः॥ ११ ॥

गुप्तिमताऽद्वितीयरथेन वसुधां जितवतः धानुष्कस्य कुबेरतुल्यलक्ष्मीकस्य तस्य दशरथस्य मेघतुल्यघोषाः सागराः विजयदुन्दुभितां ययुः किलेति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०–वरूथमान् (बैठनेवालेकी रक्षाकरनेवाले) एकही रथसे पृथ्वीके जय करनेवाले, धनुषधारी, कुबेरके तुल्य धनी, उस दशरथके मेघके समान गर्जता हुआ सागर जीतका नगाड़ा बना ॥ ११ ॥

शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरंदरः ॥

स शरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः ॥१२॥

अन्वयः । पुरन्दरः शतकोटिना कुलिशेन शिखरिणां शमितपक्षबलः नवतामरसाननः सः शरवृष्टिमुचा स्वनवता धनुषा द्विषां (शमितपक्षबलः) ॥ १२ ॥

वाच्यप० । पुरन्दरेण + शमितपक्षबलेन (अभूयत) नवतामरसाननेन तेन (शमितपक्षबलेन (अभूयत) ॥ १२ ॥

शक्रः शतालिणा वज्रेण पर्वतानां विनाशितपक्षसारः नवोत्पलमुखः सः दशरथः बाणवृष्टिमुचा घोषवता धनुषा शत्रूणां नाशितसहायबल आसीदिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–इन्द्रने वज्रकी कोटिसे पर्वतोंके पक्षबलका नाश किया और नये कमलके समान मुखवाले दशरथने बाण वर्षानेवाले धनुषसे शत्रुपक्षका नाश किया ॥ १२ ॥

चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन् ॥

नृपतयः शतशो मरुतो यथा शतमखं तमखण्डितपौरुषम् ॥१३॥

अन्वयः । शतशो नृपतयः अखंडितपौरुषं तं मरुतः शतमखं यथा नखरागसमृद्धिभिः मुकुटरत्नमरीचिभिः चरणयोः अस्पृशन् ॥ १३ ॥

वाच्यप०। शतशः नृपतिभिः अखंडितपौरुषः सः मरुद्भिः शतमखः यथा अस्पृश्यत ॥ १३ ॥

शतशो भूपतयोऽखण्डितपराक्रमं तं दशरथं निर्जराः पुरन्दरमिव पदनखकान्त्या संपादितार्द्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिः पदयोरस्पृशन् तं प्रणेमुरिति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–सैकडों राजा महापराक्रमी दशरथको, इन्द्रको देवतोंके समान चरणके नखोंकी कांतिसे बढी कान्तिवाली मुकुटकी मणियोंकी प्रभासे चरणोंमें छूते हुए॥१३॥

निववृते स महार्णवरोधसः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् ॥

समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमां पुरीम् ॥ १४ ॥

अन्वयः । सः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् अनलकान् सपत्नपरिग्रहान् समनुकम्प्य अलकानवमां पुरीं (प्रति) महार्णवरोधसः निववृते ॥ १४ ॥

वाच्यप० । तेन अलकानवमां पुरीं (प्रति) निववृते ॥ १४ ॥

स दशरथः मन्त्रिभिः संप्रयोजितैः कारितबालपुत्राञ्जलीः हतस्वामितयालकसंस्कारशून्या-श्शत्रुपत्नीः समनुगृह्यालकातुल्यां पुरीमयोध्यां प्रति सागराणां पर्यन्तान्निववृत इति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-वह दशरथ मंत्रियोंसे कराई हुई बालकोंकी अंजली और अलकसंस्काररहित शत्रुओंकी नारियोंपर दया करके महासागरके किनारेसे अलका (कुबेरकी पुरी) के समान अपनी राजधानीको लौटा ॥ १४ ॥

उपगतोऽपि च मण्डलनाभितामनुदितान्यसितातपवारणः ॥
श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ॥ १५॥

अन्वयः । अनुदितान्यसितातपवारणः अनलसोमसमद्युतिः श्रियं च रन्ध्रचलामवेक्ष्य स मंडल-नाभितामुपगतोपि अनलसोऽभूत् ॥ १५ ॥

वाच्यप० । अनुदितान्यसितातपवारणेन अनलसोमसमद्युतिना श्रियं रन्ध्रचलामवेक्ष्य तेन मंडल-नाभितामुपगतेनापि अनलसेन अभावि ॥ १५ ॥

अनुच्छ्रितान्यश्वेतच्छत्रोऽग्निचंद्रतुल्यकान्तिः लक्ष्मीमालस्यादिरूपे छले चञ्चलामालोक्य सः दशरथः द्वादशराजमण्डलस्य प्रधानपृथ्वीपतित्वमुपगतोपि अप्रमत्तोऽभूदिति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-अकेले श्वेतछत्रवाला, चन्द्रमा और अग्निके समान तेजस्वी, लक्ष्मीको छि-द्रद्वारा चलायमान होनेवाली देख वह दशरथ चक्रवर्ती होकरभी आलस्यरहित हुआ ॥ १५ ॥

तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मभवं च पतिव्रता ॥
नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाघवमर्थिषु ॥ १६ ॥

अन्वयः । पतिव्रता सकमला अर्थिषु अलाघवं ककुत्स्थकुलोद्भवं तं (दशरथम्) आत्मभवं पुरुषं च अपहाय अन्यं कं नृपतिम् असेवत ॥ १६ ॥

वाच्यप० । पतिव्रतया सकमलया×अलाघवं ककुत्स्थकुलोद्भवं तम् अपहाय अन्यः कः नृपतिः असव्येत ॥ १६ ॥

पतिव्रता कमलहस्ता श्रीरर्थिषु विषये लघुत्वरहितं ककुत्स्थवंशोत्पन्नं तं दशरथं स्वयम्भवं पुरुषो-त्तमं त्यक्त्वाऽन्यं कं नृपतिमसेवतेति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०-पतिव्रता कमलहस्ता देवी (लक्ष्मी) याचकोंके आदर करनेवाले काकुत्स्थ-वंशमें उत्पन्न उस दशरथको तथा स्वयं होनेवाले पुरुष विष्णुको छोडकर और किसका सेवन करती थी ? ॥ १६ ॥

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागरमापगाः ॥
मगधकोसलकेकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम् ॥ १७॥

अन्वयः । पतिदेवताः मगधकोसलकेकयशासिनां दुहितरः अहितरोपितमार्गणं तं शिखरिणामापगाः सागरमिव पतिम् अलभंत ॥ १७ ॥

वाच्यप० । पतिदेवताभिः×दुहितृभिः अहितरोपितमार्गणः सः शिखरिणामापगाभिः सागर इव पतिः अलम्यत ॥ १७ ॥

पतिव्रताः मगधकोसलकेकयाधिपतीनां राज्ञां कन्यकाः वैरिषु निखातवाणं तं दशरथं पर्वतानां पुत्र्यः नद्यः जलनिधिमिव स्वामिनं प्रापुरिति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–पतिव्रता मगध कोसल और केकयदेशोंकी बेटियों (सुमित्रा, कौसल्या, केकई) ने शत्रुओंपर बाणप्रहार करनेवाले दशरथको, पर्वतोंकी पुत्री नदियोंने सागरके समान पति पाया ॥ १७ ॥

प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ॥
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ॥ १८ ॥

अन्वयः । अरिहयोगविचक्षणः असौ दशरथः तिसृभिः शक्तिभिः सह प्रजाः विनिनीषुः तिसृभिः शक्तिभिः सह भुवम् उपगतः हरिहय इव बभौ ॥ १८ ॥

वाच्यप० । अरिहयोगविचक्षणेन अनेन दशरथेन प्रजा विनिनीषुणा उपगतेन हरिहयेन इव बभे ॥ १८ ॥

शत्रुनाशविधौ चतुरः असौ दशरथः तिसृभिः प्रियतमाभिः सह प्रजा विनेतुमिच्छुः तिसृभिः प्रभावमन्त्रोत्साहशक्तिभिरेव सह क्ष्मामुपगतो शक्र इव बभाविति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०–वैरियोंके नाशोपायमें प्रवीण यह दशरथ तीन स्त्रियोंसे प्रजाकी रक्षाके निमित्त तीनों शक्तियोंसहित पृथ्वीपर आये हुए इन्द्रके समान शोभित हुआ ॥ १८ ॥
(प्रभाव मंत्र और उत्साह यह तीन शक्ति कहाती हैं)

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ॥
स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधूतभयाः शरैः ॥ १९ ॥

अन्वयः । सः महारथः संयुगमूर्ध्नि मघवतः सहायतां प्रतिपद्य शरैः अवधूतभयाः सुरवधूः उच्छ्रितं स्वभुजवीर्यमगापयत् किल ॥ १९ ॥

वाच्यप० । तेन महारथेन + उच्छ्रितं स्वभुजवीर्यम् अगाप्यत ॥ १९ ॥

महारथः सः दशरथः समरमूर्ध्नि शक्रस्य सहायतां प्रतिपद्य बाणैर्निवर्तितत्रासाः सुरवधूरुच्छ्रितं स्वबाहुबलमगापयत्किलेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—महारथी वह दशरथ रणभूमिमें इन्द्रका सहायक हो बाणोंसे भय मिटाई हुई देवाङ्गनाओंसे अपनी भुजाओंका प्रताप गवाता हुआ ॥ १९ ॥

क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः ॥
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसा तमसासरयूतटाः ॥ २० ॥

अन्वयः । क्रतुषु विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना वितमसा तेन तमसासरयूतटाः कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः कृताः ॥ २० ॥

वाच्यप० । क्रतुषु विसर्जितमौलिः भुजसमाहृतदिग्वसुः वितमाः सः तमसासरयूतटान् कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः कृतवान् ॥ २० ॥

अश्वमेधेषु यज्ञेष्ववरोपितमुकुटेन भुजार्जितदिगन्तसंपदा तमोगुणविहीनेन तेन दशरथेन तमसासरयूतटाः सुवर्णयूपानां समुन्नमनेन शोभिनः कृताः इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—यज्ञमें मुकुट उतारेहुए, भुजाओंसे दिशाओंका धनलानेवाले, तमोगुणरहित दशरथने तमसा और सरयूके किनारोंको सुवर्णके ऊँचे स्तम्भोंसे शोभित किया ॥ २० ॥

अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृङ्गपरिग्रहाम् ॥
अधिवसंस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः ॥ २१ ॥

अन्वयः । ईश्वरः अजिनदंडभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृंगपरिग्रहाम् अध्वरदीक्षितां तनुम् अधिवसन् असमभासम् अभासयत् ॥ २१ ॥

वाच्यप० । ईश्वरेण + अधिवसता × अभास्यत ॥ २१ ॥

भगवानष्टमूर्तिः कृष्णाजिनमौदुम्बरं दण्डधारिणं दर्भमेखलां वाचंयमां कुरङ्गशृंगपरिग्रहां यज्ञदीक्षितां संस्कारविशेषयुक्तां तनुमधितिष्ठन्सन्नसमदीप्तिं भासयति स्मेति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—महादेव भगवान् अष्टमूर्तिने मृगचर्म और दंडधारी, कुशकी मेखलासे युक्त, मौनता धारे, हरिणका सींग लिये, यज्ञमें दीक्षित, विशेषसंस्कारयुक्त; उस (दशरथ) के शरीरमें प्रवेश करके मनोहर कांतिसे शोभित किया ॥ २१ ॥

अवभृथप्रयतो नियतेंद्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः ॥
नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नमुचेररये शिरः ॥ २२ ॥

अन्वयः । अवभृथप्रयतः नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः सः उन्नतं शिरः वनमुचे नमुचेः अरये केवलं नमयति स्म ॥ २२ ॥

वाच्यप० । अवभृथप्रयतेन नियतेन्द्रियेण सुरसमाजसमाक्रमणोचितेन तेन उन्नतं शिरः × × नम्यते स्म ॥ २२ ॥

यज्ञान्तस्नानेन जितेन्द्रियः अमरसमाधिष्ठानयोग्यः सः दशरथः उन्नतं शिरः वनमुचे नमुचेरम्नवे शक्रायैव केवलं नमयति स्मेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०—यज्ञान्तस्नानसे पवित्रता प्राप्त किये, इन्द्रियजीतनेवाले देवसभामें बैठने योग्य उसने ऊंचा शिर केवल नमुचि (दैत्य) के मारनेवाले, जल वर्षानेवाले इन्द्रकोही झुँकाया ॥ २२ ॥

असकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता ॥
दिनकराभिमुखा रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम् ॥ २३ ॥

अन्वयः । एकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता असकृत् दिनकराभिमुखाः रणरेणवः सुरद्विषां रुधिरेण रुरुधिरे ॥ २३ ॥

वाच्यप० । एकरथी तरस्वी हरिहयाग्रसरः धनुर्भृत् असकृत् दिनकराभिमुखान् रणरेणून् + रुरोध ॥ २३ ॥

अद्वितीयस्यन्दनेन बलवता शक्रस्याग्रसरेण धानुष्केन दशरथेन बहुशः सूर्यस्याभिमुखाः संग्रामपांसवः दैत्यानां रुधिरेण दूरीकृता इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—एकरथी, बली, इन्द्रके आगे चलनेवाले, धनुषधारी दशरथने बहुतबार सूर्यके सम्मुख छाई हुई युद्धकी धूलि, दैत्योंके रुधिरसे दूर कर दी ॥ २३ ॥

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् ॥
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ॥ २४ ॥

अन्वयः । अथ यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरम अंचितविक्रमं तं नराधिपं सेवितुम् इव मधुः नवैः कुसुमैः समाववृते ॥ २४ ॥

वाच्यप० । अथ मधुना × समाववृते ॥ २४ ॥

तदन्तरं धर्मराजकुबेरवरुणपुरन्दराणां तुल्यकक्षं समधुरं प्रतिष्ठितबलमेकनराधिपं तं दशरथमुपासितुमिव वसन्तः नवैः पुष्पैरुपलक्षितः सन्समागत इति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—तब यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रके तुल्य धुरधारी, पूजितपराक्रम, चक्रवर्ती दशरथको सेवन करनेके निमित्त वसन्त नवीनपुष्पोंसहित आया ॥ २४ ॥

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः ॥
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ॥२५॥

अन्वयः । धनदाध्युषितां दिशं जिगमिषुः रथयुजा परिवर्तितवाहनः रविः हिमनिग्रहैः दिनमुखानि विमलयन् मलयं नगम् अत्यजत् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । जिगमिषुणा रथयुजा परिवर्तितवाहनेन रविणा × विमलयता मलयः नगः अत्यज्यत ॥ २५ ॥

कुबेराधिष्ठितां दिशं गन्तुमिच्छुः सारथिनाऽरुणेन निवर्तिताश्वः सूर्यः हिमस्य दूरीकरणैः प्रभातानि प्रकाशयन् मलयाचलं तत्याजेति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—कुबेरके बसनेकी (उत्तर) दिशाको जानेकी इच्छावाले, अरुणके रथ लौटाये हुए सूर्यने शरदी दूर करनेसे प्रभातोंको उज्ज्वल करते हुए मलयपर्वत त्यागा २५

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ॥
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥२६॥

अन्वयः । (आदौ) कुसुमजन्म ततो नवपल्लवाः तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् इति यथाक्रमं द्रुमवतीं वनस्थलीम् अवतीर्य मधुः आविरभूत् ॥ २६ ॥

वाच्यप० । (आदौ) कुसुमजन्मना ततो नवपल्लवैः तदनु षट्पदकोकिलकूजितेन (जातं) मधुना आविरभावि ॥ २६ ॥

आदौ पुष्पजन्म, ततो नवपल्लवाः, तदनु भ्रमराणां कोकिलानां च कूजितमित्येवं प्रकारेण यथाक्रमं वृक्षभूयिष्ठां वनस्थलीमवतीर्य वसन्तः प्रादुरभूदिति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—प्रथम फूलोंका जन्म तिसके पीछे नवीन पल्लव तिसके पीछे भ्रमर और कोकिलाओंका शब्द इस प्रकार यथाक्रमसे वनके वृक्षोंकी भूमिमें आकर वसन्त प्रगट हुआ ॥ २६ ॥

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः ॥
अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्रिणः ॥२७॥

अन्वयः । नयगुणोपचितां सदुपकारफलां भूपतेः श्रियमर्थिनः इव मधुसंभृतां सरसः कमलिनीम् अलिनीरपतत्रिणः अभिययुः ॥ २७ ॥

वाच्यप० । नयगुणोपचिता सदुपकारफला + श्रीरर्थिभिरिव मधुसंभृता कमलिनी अलिनीरपतत्रिभिः अभियये ॥ २७ ॥

नयेन शौर्यादिभिर्गुणैः उपचितां सदुपकारफलां दशरथस्य श्रियमर्थिन इव वसन्तेन सम्यक् पुष्टां सरसः सम्बन्धिनीं पद्मिनीं भ्रमराः जलपक्षिणो हंसादयश्च अभिययुरिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—नीतिके गुणोंसे बढाई, सत्पुरुषोंके उपकाररूपी फलवाली, राजाकी लक्ष्मीके निकट याचकोंके समान वसन्तसे पुष्ट की हुई सरोवरकी कमलिनीके निकट भौंरे और हंस आये ॥ २७ ॥

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ॥
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः॥२८॥

अन्वयः । आर्तवं नवमशोकतरोः केवलं कुसुममेव स्मरदीपनं न (किन्तु) विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः किसलयप्रसवोपि (स्मरदीपनोऽभवत्) ॥ २८ ॥

वाच्यप० । कुसुमेन + स्मरदीपनेन न (अभूयत) विलासिनां मदयित्रा दयिताश्रवणार्पितेन किसलयप्रसवेन अपि अभूयत ॥ २८ ॥

ऋतुसम्बन्धिनं नवमशोकवृक्षस्य केवलं पुष्पमेव कामोद्दीपनं न किन्तु विलासिनां मदोत्पादकः रामाकर्णार्पितः पल्लवसंतानोपि कामोद्दीपनोऽभवदिति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—ऋतुमें फूलाहुआ नवीन अशोकका केवल फूल ही कामोद्दीपक न हुआ किंतु विलासियोंको मद करानेहारा स्त्रियोंके कर्णमें रक्खाहुआ कोंपलोंका गुच्छा भी कामोद्दीपक हुआ ॥ २८ ॥

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ॥
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः ॥ २९ ॥

अन्वयः । मधुना विरचिता उपवनश्रियाम् अभिनवा पत्रविशेषका इव मधुदानविशारदाः कुरबकाः मधुलिहां रवकारणतां ययुः ॥ २९ ॥

वाच्यप० । मधु नाविरचितैः उपवनश्रियाम् अभिनवैः पत्रविशेषकैः इव मधुदानविशारदैः कुरबकैः मधुलिहां रवकारणता यये ॥ २९ ॥

वसन्तेन विरचिताम् उपवनशोभामभिनवाः पत्ररचना इव स्थिताः मकरन्दानां दाने विचक्षणाः कुरबकाः वृक्षाः भ्रमराणां मदकारणतां गता इति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—वसन्तसे रचेहुए उपवनकी शोभामें नवीन पत्ररचनाके समान स्थित मधुका दान देनेमें चतुर कुरबक (वृक्ष) भौंरोंकी गुंजारके हेतु हुए ॥ २९ ॥

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः ॥
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपंक्तिभिः ॥ ३० ॥

अन्वयः । सुवदनावदनासवसंभृतः तदनुवादिगुणेन कुसुमोद्गमः मधुलोलुपैः आयतपंक्तिभिः मधुकरैः बकुलम् आकुलमकरोत् ॥ ३० ॥

वाच्यप० । सुवदनावदनासवसंभृतेन तदनुवादिगुणेनः कुसुमोद्गमेन बकुलः आकुलः अक्रियत ॥ ३० ॥

विलासिनीमुखमद्येन जनितः तस्यासवस्य सदृशगुणः पुष्पोद्गमः मद्यलोलुपैः दीर्घपंक्तिभिः भ्रमरैः बकुलवृक्षमाकुलमकरोदिति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—कान्ताके मुखके मद्यसे उत्पन्नहोनेवाले मौर (मौल) ने उसी (आसव) के समान गुणवाला होनेसे मधुके लुब्धक महापंक्तिवाले भौंरोंसे बकुलका वृक्ष पूर्ण कर दिया ॥ ३० ॥ (बकुल युवास्त्रीके मुखका कुल्ला पाकर फलता फूलता है.)

उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके ॥
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डलं प्रमदया तदयार्पितलज्जया ॥ ३१ ॥

अन्वयः । शिशिरापगमश्रिया किंशुके उपहितं मुकुलजालं मदयापितलज्जया प्रमदया प्रणयिनि (उपहितं) नखक्षतमंडनम् इव अशोभत ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । उपहितेन मुकुलजालेन–उपहितेन नखक्षतमंडनेन इव अशुभ्यत ॥ ३१ ॥

वसन्तलक्ष्म्या पलाशतरौ दत्तः कूड्मलसमूहः मदेन दूरीकृतलज्जया कान्तया प्रियतमे न्यस्तं नखक्षतमण्डनमिवाशोभतेति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०–वसन्तके आगमनकी लक्ष्मीद्वारा पलाशमें प्राप्त हुआ कलियोंका गुच्छा मदसे लज्जा त्यागी स्त्रीका प्यारेको दिया हुआ नखक्षतके भूषणके समान शोभित हुआ ॥ ३१ ॥

व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलम् ॥
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः । व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलं हिमं रविः तावत् निःशेषं (यथा तथा) अपोहितुं न अलं किन्तु विरलं कृतवान् ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । व्रणगुरुप्रमदाधरदुस्सहं जघननिर्विषयीकृतमेखलं हिमं रविणा तावत् विरलं कृतम् ॥ ३२ ॥

दन्तक्षतैः दुर्धरैः रामाणामधरोष्टैः हिमस्य दुःखकरणत्वादसह्यं जघनेषु निरवकाशीकृतमेखलं हिमं सूर्यस्तावदावसन्तान्निःशेषं यथा तथा दूरीकर्तुं न खलु समर्थो हि किन्तु तनूचकारेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०–बडे भावयुक्त होठोंको दुस्सह और जंघाओंसे मेखलाका दूरकरानेवाला शीत तबतक सूर्यने संपूर्ण नष्ट नहीं किया गया था किन्तु थोडा कर दिया था ॥ ३२ ॥

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा ॥
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ॥ ३३ ॥

अन्वयः । अभिनयान् परिचेतुम् उद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा सकलिका सहकारलता कलिकामजिताम् अपि मनः अमदयत् ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । उद्यतया मलयमारुतकम्पितपल्लवया सकलिकया सहकारलतया अमद्यत ॥ ३३ ॥

भावव्यञ्जकान् व्यापारानभ्यसितुं स्थिता मलयपवनेन कम्पितकिसलया सकोरका सहकारवल्ली जितरागदोषाणां यतीनामपि मनोऽमदयदिति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–रिझानेके व्यापारोंमें परिश्रम करनेवाली (वेश्या) के समान मलयाचलके वायुसे हिलते हुए पत्तोंवाली कलियोंवाली आमकी लताने काम और क्लेश जीते हुओंका भी मन मत्त कर दिया ॥ ३३ ॥

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ॥
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ॥ ३४ ॥

अन्वयः । सुरभिगंधिषु कुसुमितासु वनराजिषु अन्यभृताभिः प्रथममुदीरिताः मिताः गिरः प्रविरल-मुग्धवधूकथाः इव शुश्रुविरे ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । + (जनाः) शुश्रुवुः ॥ ३४ ॥

मनोहरगन्धिषु कुसुमितासु वनराजिषु कोकिलाभिः प्रारम्भेप्रूक्ता अत एव परिमिताः आलापा-मौग्ध्यात्स्तोकोक्ता मुग्धवधूनां वाच इव श्रुता इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०–मनोहर गंधिवाले वनके फूलोंकी पंक्तियोंमें कोकिलाओंके प्रथम ही कुछ कछ उच्चारण किये आलाप मुग्धा नायिकाकी समान सुने गये ॥ ३४ ॥

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः ॥
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ ३५ ॥

अन्वयः । श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचः उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैः पाणिभिरिव बभुः ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतिभिः कुसुमकोमलदन्तरुग्भिः उपवनान्तलताभिः + बभे ॥ ३५ ॥

कर्णसुखाः द्विरेफशब्दगीतयः पुष्पकोमलदन्तद्युतयः उपवनान्तलताः वायुना कम्पितैः नवपल्लवैः साभिनयैः पाणिभिरिव बभुरिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०–कानोंके सुखदायक भौंरोंके मधुरगुंजाररूपी गीत और पुष्परूपी कोमल दांतोंकी कान्तिवाली उपवनके समीपकी लता, पवनके कंपाये हुए नवीनपत्तोंसे भाव बताते हुए हाथोंके समान शोभित हुई ॥ ३५ ॥

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम् ॥
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः । अङ्गनाः ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरं स्मरसखं मधुं पतिषु रसखण्डनवर्जितं निर्विविशुः ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । अङ्गनाभिः ललितविभ्रमबन्धविचक्षणः सुरभिगन्धपराजितकेसरः स्मरसखः मधुः पतिषु रसखण्डनवर्जितम् निर्विविशे ॥ ३६ ॥

अंगनाः मधुरविलासघटनापटुतरं मनोहरेण गन्धेन निर्जितवकुलकेसरं कामसखं मद्यं पतिषु विषयानुरागभंगरहितं यथा तथा निर्विविशुरिति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–स्त्रियोंने मधुर विलासकरानेमें चतुर, मनोहर गन्धसे वकुलपुष्पके परागका जीतनेवाला, कामदेवका मित्र, मधु, पतियोंमें रसभंग रहित पान किया ॥ ३६ ॥

शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः ॥
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहंगमाः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । विकचतामरसाः मदकलोदकलोलविहंगमाः गृहदीर्घिकाः स्मितचारुतराननाः श्लथशिंजितमेखलाः स्त्रियः इव शुशुभिरे ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । विकचतामरसाभिः मदकलोदकलोलविहंगमाभिः गृहदीर्घिकाभिः चारुतराननाभिः श्लथशिंजितमेखलाभिः स्त्रीभिः इव शुशुभे ॥ ३७ ॥

विकसितकमला मदेनाव्यक्तमधुरवाचो जलप्रियपक्षिहंसादयः गृहेषु वाप्यः स्मितश्रेष्ठतरमुखाः मुखरमेखला अंगना इव शुशुभिर इति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-खिले कमल और मधुर बोलनेवाले जलमें विहार करनेवाले पक्षियोंसे युक्त घरकी बावडी, मुस्कानसे सुन्दरमुख और शब्द करती हुई ढीली कोंधनीवाली स्त्रियोंकी समान शोभित हुई ॥ ३७ ॥

उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः ॥
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयाऽनितया रजनीवधूः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । मधुखंडिता हिमकरोदयपांडुमुखच्छविः रजनीवधूः इष्टसमागमनिर्वृतिमनितया वनितया सदृशं तनुतामुपययौ ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । मधुखंडितया हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छव्या रजनीवध्वा तनुता उपययै ॥ ३८ ॥

वसन्तसमयेन ह्रासं गमिता चन्द्रोदयेन पाण्डुमुखकान्तिरजनीवधूः पतिसंगमसुखनप्राप्तया वनितया सदृशं कृशतां चोपययाविति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-वसन्तसे खण्डित की हुई, चन्द्रोदयसे पाण्डु (श्वेत) मुखवाली, रात्रिरूपी स्त्री प्रियके समागमका सुख न पानेवाली खंडिता स्त्रीके समान क्षीणताको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥

अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसंगपरिश्रमनोदिभिः ॥
कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः । हिमकरः अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसंगपरिश्रमनोदिभिः अंशुभिः मकरोर्जितकेतनम् कुसुमचापम् अतेजयत् ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । हिमकरेण मकरोर्जितकेतनः कुसुमचापः अतेज्यत ॥ ३९ ॥

चन्द्रमा अपगतनीहारतया निर्मलद्युतिभिः सुरतसंगखेदहारिभिः मयूखैः मकरेणोर्जितध्वजं पुष्पचापम् अशातयदिति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-चंद्रमाने तुषार न होनेसे निर्मलकान्तिवाली, सुरतसंगमें उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर करनेवाली, किरणोंसे मकर (मच्छ) की ऊंची ध्वजावाले फूलोंके धनुषधारी (कामदेव) को प्रचण्ड किया ॥ ३९ ॥

हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत् ॥
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम् ॥ ४० ॥

अन्वयः। हुतहुताशनदीप्ति यत् कुसुमं वनश्रियः कनकाभरणस्य प्रतिनिधिः (अभूत्) दलकेसरपेशलं (प्रियैः) आहितं तत् युवतयः अलके दधुः ॥ ४० ॥

वाच्यप०। हुतहुताशनदीप्तिना येन कुसुमेन प्रतिनिधिना (अभावि) तत् युवतिभिः दधे ॥ ४० ॥

घृतादिप्रज्वलिताग्निप्रभं यत्कर्णिकारपुष्पमुपवनलक्ष्म्याः सुवर्णाभरणस्य प्रतिनिधिरभूत् केसरेषु च सुकुमारं प्रियैराहितं तत्पुष्पम् अंगनाः कुन्तले दधुरिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०–हवनकी अग्निके समान कान्तिमान् (कर्णिकारका फूल) सुन्दर पखुरी और केशरयुक्त वनकी शोभाको धारे जो सोनेके भूषणोंके स्थानमें था, वह स्त्रियोंने प्रियोंसे पाकर अलकोंमें धारण किया ॥ ४० ॥

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपंक्तिनिपातिभिरङ्कितः ॥
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ४१॥

अन्वयः। अंजनबिंदुमनोहरैः कुसुमपंक्तिनिपातिभिः अलिभिः अंकितः तिलकः वनस्थलीं तिलकः प्रमदामिव न शोभयति स्म न खलु ॥ ४१ ॥

वाच्यप०। अंकितेन तिलकेन वनस्थली तिलकेन प्रमदेव न शोभ्यते स्म न खलु ॥ ४१ ॥

कज्जलकणमनोहरैः पुष्पराजिषु निपातिभिः भ्रमरैः चिह्नितः श्रीमान्नाम वृक्षः वनस्थलीमंगनामिव न शोभयति स्मेति न खल्विति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०–काजलके कणोंके समान, सुन्दर फूलोंकी पंक्तिपर गिरनेवाले भौंरोंसे चिह्नित हुए तिलक वृक्षने, तिलकने कामिनीके समान वनस्थलीको शोभित किया ही ॥ ४१ ॥

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः ॥
कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥४२॥

अन्वयः। तरुचारुविलासिनी नवमल्लिका मधुगंधसनाथया किसलयाधरसंगतया कुसुमसंभृतया स्मितरुचा (पश्यताम्) मनः अमदयत् ॥ ४२ ॥

वाच्यप०। तरुचारुविलासिन्या नवमल्लिकया मनः अमद्यत ॥ ४२ ॥

तरोः पुंसश्च चारुविलासिनी सप्तलाख्या लता मकरन्दगन्धप्रधानया नवपल्लवाधरसंगतया पुष्पैः संपादितया हासकान्त्या पश्यतां मनः अमदयदिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–वृक्षकी श्रेष्ठ वधू नवमल्लिका लताने मधुकी गंधसे युक्त हो कोपलरूपी होठोंपर पड़ी फूलोंसे रचीहुई मधुर मुसकानसे मनको मत्तकिया ॥ ४२ ॥

अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः ॥
परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः ॥४३॥

अन्वयः । विलासिनः अरुणरागनिषेधिभिः अंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः परभृताविरुतैश्च स्मरबलैः अबलैकरसाः कृताः ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । विलासिनः अरुणरागनिषेधीनि अंशुकानि श्रवणलब्धपदाः यवाङ्कुराः परभृताविरुतानि स्मरबलानि अबलैकरसान् कृतवन्तः ॥ ४३ ॥

विलसनशीलाः पुरुषाः अरुणरागं तिरस्कुर्वद्भिः वस्त्रैः कर्णेषु निवेशितैर्यवाङ्कुरैश्च कोकिलाकूजितैश्च मदनसैन्यैः स्त्रीपरतन्त्राः कृताः इति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–विलासी पुरुषोंको, लालरंगको, तिरस्कार करनेवाले वस्त्रोंने और कानोंमें रक्खे हुए यवाङ्कुरोंने, कोपलोंकी कूकरूपी कामदेवकी सेनाने स्त्रीके रसमें अनुरक्त करदिया ॥ ४३ ॥

उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी ॥
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः॥४४॥

अन्वयः । शुचिभिः कणैः उपचितावयवा अलिकदम्बकयोगमुपेयुषी तिलकजा मंजरी अलकजालकमौक्तिकैः सदृशकान्तिः अलक्ष्यत ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । उपचितावयवाम् अलिकदम्बकयोगमुपेयुषीं तिलकजां मञ्जरीं + सदृशकान्तिम् अलक्षयन् ॥ ४४ ॥

शुभ्ररजोभिः पुष्टावयवा भ्रमरकदम्बकयोगं प्राप्ता तिलकवृक्षोत्था मञ्जरी नीलालकसक्तमुक्ताजालमिवालक्ष्यतेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–उज्ज्वल परागके कणोंसे पुष्ट हुई, भौंरोंके समाजको प्राप्त हुई, तिलकवृक्षकी मंजरी, बालोंके समूहमें गुथे हुए मोतियोंके सदृश दीप्तिमान् दिखाई दी ॥ ४४ ॥

ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः ॥
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । अलिव्रजाः धनुर्भृतः मदनस्य ध्वजपटम् ऋतुश्रियः छविकरं मुखचूर्णं सपवनोपवनोत्थितं कुसुमकेसररेणुम् अन्वयुः ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । अलिव्रजैः + अनुयये ॥ ४५ ॥

भ्रमरसमूहाः धानुष्कस्य कामस्य पताकाभूतं वसन्तलक्ष्म्याः शोभाकरनाननालंकारचूर्णभूतं पवनेन सहितमुपवनोत्थितपुष्पकिंजल्करेणुमन्वगच्छन्निति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–भौंरोंके समूह धनुषधारण करनेवाले कामकी ध्वजारूप ऋतुश्रीके मुखको सुन्दर करनेवाले, चूर्ण (कुंकुम) के उपवनकी वायुके साथ उठीहुई फलोंके केसरकी रजके पीछे गये ॥ ४५ ॥

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सव पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ॥
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । नवदोलमृतूत्सवमनुभवन् अवलाजनः पटुरपि प्रियकंठजिघृक्षया आसनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलताम् अनयत् ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । अनुभवता अवलाजनेन पटुनापि (सता) भुजलता जलता अनीयत ॥ ४६ ॥

वसन्तोत्सवम् अनुभवन्कामिनीजनः चतुरोपि प्रियकण्ठमालिङ्गितुमिच्छया पीठरज्जुग्रहणे बाहुलतां शैथिल्यमनयदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—नवे झूलेका ऋतु उत्सव करती हुई स्त्रियोंने चतुर होकरभी प्रियके कंठ आलिंगनकी इच्छासे आसन रस्सीके धारण करनेमें भुजलता ढीली करदी ॥ ४६ ॥

त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ॥
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । बत मानः त्यजत विग्रहैरलं गतं चतुरं वयः पुनः न एति इति स्मरमते परभृताभिः निवेदिते (सति) इव वधूजनः रमते स्म ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । (युष्माभिः) मानं त्यज्यतां + गतेन चतुरेण वयसा पुनः न ईयते + वधूजनेन रम्यते स्म ॥ ४७ ॥

बत अङ्गनाः क्रोधं त्यजत विरोधैरलम् अतीतं विचक्षणमुपभोगक्षमं नवयौवनं पुनर्नागच्छति एवंरूपे मदनाभिप्राये कोकिलाभिः कथिते सतीव विलासिनीजनः रेमे इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०—स्त्रियो मानको त्याग करो विरोध रहने दो नवीन गई हुई अवस्था फिर नहीं आती, इसप्रकार कामका अभिप्राय कोकिलाओंके निवेदन करनेपर वधूजनोंने रमण किया ॥ ४७ ॥

अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः ॥
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं स मधुमन्मधुमन्मथसंनिभः ॥ ४८ ॥

अन्वयः । अथ मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः सः नरपतिः विलासवतीसखः (सन्) आर्तवमुत्सवं यथासुखमनुभूय मृगयारतिं चकमे ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । अथ मधुमन्मधुमन्मथसन्निभेन तेन नरपतिना विलासवतीसखेन (सता) मृगयारतिः चकमे ॥ ४८ ॥

अथ विष्णुवसन्तकामसमः सः दशरथः स्त्रीसहचरः सन् वसन्तोत्सवं सुखपूर्वकमनुभूय मृगयाविहारमाचकांक्षेति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—तब मधुसूदन (विष्णु) वसन्त और कामदेवके समान स्त्रियोंके सखा दशरथने ऋतुसंबंधी सुख भोगकर मृगयाविहारकी इच्छा की ॥ ४८ ॥

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम् ॥
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ॥४९॥

अन्वयः । असौ (मृगया) चललक्ष्यनिपातने परिचयं करोति, भयरुषोश्च तदिंगितबोधनं (करोति) तनुं श्रमजयात्प्रगुणं च (करोति) अतः सचिवैः अनुमतः (सन्) ययौ ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । अनया (मृगयया) +परिचयः क्रियते अतः सचिवैः अनुमतेन(सता) यये॥४९॥

असौ मृगया कुरंगगवयादीनां निपातने अभ्यासं करोति भयक्रोधयोः तेषां चेष्टाज्ञानं च करोति देहं श्रमस्य जयात्प्रकृष्टलाघवादिगुणयुक्तं च करोति अस्मान्मंत्रिभिरनुमोदितः सन् जगामेति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-यह मृगया चलतेहुए मृगोंके मारनेमें निपुण करती है, उनमें भय और क्रोधके लक्षण दिखाती है, श्रम जीतनेके कारण शरीरको श्रेष्ठगुणवाला करती है,इस कारण मंत्रियोंकी सम्मतिसे वह गया ॥ ४९ ॥

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः ॥
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥ ५०॥

अन्वयः । मृगवनोपगमक्षमवेषभृत् विपुलकंठनिषक्तशरासनः नृसविता स अश्वखुरोद्धतरेणुभिः गगनं वितानमिव अकरोत् ॥ ५० ॥

वाच्यप० । मृगवनोपगमक्षमवेषभृता विपुलकंठनिषक्तशरासनेन नृसवित्रा तेन + अक्रियत ॥ ५० ॥

मृगकाननप्राप्तियोग्यवेषधारी वृहत्स्कंधलग्नधन्वा. नरश्रेष्टः सः नृपः हयखुरोद्धतरजोभिराकाशं तुच्छमिवाकरोदिति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०-मृगोंके वनमें गमन योग्य वेषधारे, वडे कंधेपर धनुषधरे, मनुष्यरूपी सूर्य उस (राजा) ने घोडोंके खुरोंकी उठाई रजसे आकाशको चंदोवा तनाहुआसा किया ॥ ५० ॥

ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः ॥
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु ॥ ५१ ॥

अन्वयः । वनमालया ग्रथितमौलिः तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः तुरगवल्गनचंचलकुंडलः असौ रुरुचेष्टितभूमिषु विरुरुचे ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । वनमालया ग्रथितमौलिना तरुपलाशसवर्णतनुच्छदेन तुरगवल्गनचंचलकुंडलेन अमुना + विरुरुचे ॥ ५१ ॥

वनपुष्पस्रजा बद्धधम्मिल्लः वृक्षाणां पत्रैः समानवर्मा अश्वस्य गतिविशेषेण चलत्कुण्डलः दशरथः रुरुमृगविशेषैः चरितासु भूमिषु विदिद्युत इति सरलार्थः ॥५१ ॥

भा०–वनके फूलोंकी मालासे गुथे जूडेवाला, वृक्षोंकेपत्तोंके वर्णके समान कवचवाला घोडेकी शीघ्रगतिसे चलायमान कुंडलवाला, यह दशरथ रुरु जातिवाले मृगोंसे खूंदी हुई पृथ्वीमें शोभित हुआ ॥ ५१ ॥

तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः ॥
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोसलम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः । तनुलताविनिवेशितविग्रहाः भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः वनदेवताः सुनयनं नयनंदितकोसलं तम् अध्वनि ददृशुः ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । तनुलताविनिवेशितविग्रहाभिः भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तिभिः वनदेवताभिः सुनयनः नयनंदितकोसलः सः + ददृशे ॥ ५२ ॥

तनुषु लतासु संक्रमितशरीराः मधुकरेषु संक्रमितदृग्व्यापाराः वनदेवताः सुनेत्रं नीत्या तोषितकोसलं तं दशरथं मार्गे ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०–छोटी लताओंमें शरीर छिपाये भौरोंमें आंखोंकी वृत्ति लगाये, वनदेवताओंने अच्छे नेत्रवाले तथा नीतिसे कोसलदेशको प्रसन्न करनेवाले राजा दशरथको मार्गमें देखा ॥ ५२ ॥

श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः ॥
स्थिरतुरङ्गमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥ ५३ ॥

अन्वयः । सः श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु स्थिरतुरंगमभूमि निपानवत् मृगवयोगवयोपचितं वनं विवेश ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । तेन + वनं विविशे ॥ ५३ ॥

सः दशरथः श्वग्राहिभिः जालिकैः प्रथममधिष्ठितं व्यपगताग्नितस्करभयं दृढाश्वयोग्यभूमि आहावयुक्तं मृगपक्षिगोसदृशैररण्यपशुविशेषैश्चोपचितं समृद्धं काननं प्रविष्टवानिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०–वह दशरथ कुत्तोंके रक्षकों और जाल रखनेवालोंके पहले प्राप्त हुए चोर और अग्निसे रहित घोडोंके योग्य कठिन भूमिवाले सरोवरोंसे युक्त मृग पक्षी और रोजोंसे पूर्ण वनमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५३ ॥

अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गतडिद्गुणसंयुतम् ॥
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोषितकेसरी ॥ ५४ ॥

अन्वयः । अथ अनाधिः नरवरः रवरोषितकेसरी (सः) कनकपिंगतडिद्गुणसंयुतं त्रिदशायुधं नभस्य इव अधिज्यं धनुः उपाददे ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । अथ अनाधिना नरवरेण रवरोषितकेसरिणा (तेन) नभस्येन इव धनुः उपाददे ॥ ५४ ॥

अथ मनोव्यथारहितः नरश्रेष्ठः धनुःशब्देन रोपितसिंहः स राजा सुवर्णपिङ्गतडिन्मौर्वीसंयुतमिन्द्रचापं भाद्रमास इवाधिगतमौर्वीकं धनुर्जग्राहेति सरलार्थः ॥ ९४ ॥

भा०-तब मनके दुःखसे रहित मनुष्योंमें श्रेष्ठ धनुषके टंकारसे मृगोंको क्रोध दिलानेवाले राजाने सुवर्णकी समान पीली बिजलीकी मौर्वी संयुक्त इन्द्रका धनुष भाद्रपद (मास) के समान ग्रहण किया ॥ ५४ ॥

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावै-
र्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात् ॥
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां
यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः । स्तनप्रणयिभिः एणशावैः मुहुः व्याहन्यमानहरिणीगमनं कुशगर्भमुखं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारं मृगाणां यूथं तस्य पुरस्तात् आविर्बभूव ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । मुहुः व्याहन्यमानहरिणीगमनेन कुशगर्भमुखेन तदग्रसरगर्वितकृष्णसारेण मृगाणां यूथेन + आविर्बभूवे ॥ ५५ ॥

स्तनपायिभिः कुरंगशिशुभिः वत्सलतया तद्गमनानुसारेण मुहुर्मुहुः प्रतिषिध्यमानहरिणीगमनः दर्भगर्भाननः पुरस्सरदत्तकृष्णसारः कुरंगाणां समूहः तस्य दशरथस्याग्रे प्रादुर्बभूवेति सरलार्थः॥५५॥

भा०-थनोंके पानकी इच्छा करनेवाले बच्चोंसे वारंवार गति रुकी मृगियोंसे युक्त, मुखमें घास भरे हुए, आगे चलतेहुए अभिमानी कृष्णसारवाला मृगसमूह, उस दशरथके आगे दिखाई दिया ॥ ५४ ॥

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा
तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपंक्ति ॥
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातै-
र्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । जवनवाजिगतेन तूणीमुखोद्धृतशरेण राज्ञा प्रार्थितं विशीर्णपंक्ति तत् (मृगयूथम्) आर्द्रैः आकुलदृष्टिपातैः वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिव वनं श्यामीचकार ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । प्रार्थितेन विशीर्णपंक्तिना तेन मृगयूथेन वनं श्यामीचक्रे ॥ ५६ ॥

शीघ्रगाम्यश्वारूढेन तूणीविवरादुद्धृतबाणेन दशरथेनाभियातं विशीर्णराजि मृगकुलं भयादश्रुसिक्तैः भयचकितदृष्टिपातैः पवनकम्पितेन्दीवरदलसमूहैरिव वनं श्यामीचकारेति सरलार्थः ॥५६॥

भा०-शीघ्र चलनेवाले घोडेपर चढे निषंगके मुखसे तीर निकालतेहुए दशरथका घुडका और पंक्तिभ्रष्ट हुआ वह झुंड आंसुओंसे भीजी भयव्याकुल दृष्टियोंसे पवनके हिलाये हुए नीलकमलकी पखरियोंके ढेरके समान वनको कृष्णवर्ण करता हुआ ॥ ५६ ॥

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः
प्रेक्ष्य स्थिता सहचरीं व्यवधाय देहम् ॥
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ॥ ५७ ॥

अन्वयः । हरिप्रभावः धन्वी सः लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य देहं व्यवधायं स्थितां सहचरीं प्रेक्ष्य कामितया कृपामृदुमनाः (सन्) आकर्णकृष्टम् अपि वाणं प्रतिसंजहार ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । हरिप्रभावेण धन्विना तेन कृपामृदुमनसा (सता) आकर्णकृष्टः अपि वाणः प्रतिसंजह्रे ॥ ५७ ॥

शक्रतुल्यः धनुर्धारी स नृपः वेद्धुमिष्टस्य कुरंगस्य स्वप्रेयसो शरीरमनुरागादन्तर्धाय स्थितां तां सहचरीं कुरङ्गीं प्रेक्ष्य कामुकत्वात् करुणार्द्रचित्तः सन् कर्णपर्यन्तमाकर्षितमपि शरं प्रतिसंजहारेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

इन्द्रके समान पराक्रमी धनुषधारी राजाने लक्ष्य (निशाना) को प्राप्तहुए हरिणका शरीर ओटमें लेकर स्थितहुई हरिणीको देख कामीपनके कारण कृपापूर्ण हृदय हो कर्णपर्यंत खेंचाहुआ भी बाण उतार लिया ॥ ५७ ॥

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः
कर्णान्तमेत्य बिभिदे निबिडोऽपि मुष्टिः ॥
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरतः सुनेत्रैः
प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि ॥ ५८ ॥

अन्वयः । त्रासातिमात्रचटुलैः सुनेत्रैः प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि स्मरतः अपरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः तस्य निबिडोपि मुष्टिः कर्णांतमेत्य बिभिदे ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । निबिडेनापि मुष्टिना बिभिदे ॥ ५८ ॥

भयादत्यन्तचञ्चलैः सुनेत्रैः प्रगल्भकान्ताविलोचनविलासव्यापारान्स्मरतः अपरेष्वपि कुरङ्गेषु बाणान्मोक्तुमिच्छोः तस्य नृपस्य दृढोपि मुष्टिः कर्णान्तं प्राप्य स्वयमेव भिद्यते स्मेति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–भयसे अत्यन्त चंचल सुन्दरनेत्रोंसे चतुर प्रियाके नेत्रोंके कटाक्षका स्मरण करके दूसरे मृगोंपर शर त्यागनेकी इच्छा करनेवालेकी कठोर मुट्ठीभी कानतक पहुंचकर ढीली होगई ॥ ५८ ॥

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपंकमध्या-
न्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् ॥
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं
सुव्यक्तमार्द्रपदपंक्तिभिरायताभिः ॥ ५९ ॥

अन्वयः । सः मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् आयताभिः आर्द्रपदपंक्तिभिः सुव्यक्तं सपदि पल्वलपंकमध्यादुत्तस्थुषः द्रुतवराहकुलस्य मार्गं जग्राह ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । तेन मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णः + सुव्यक्तः + मार्गः जगृहे ॥ ५९ ॥

सः दशरथः मुस्ताङ्कुरग्रासावयवैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः शकलैरनुव्याप्तं दीर्घाभिरार्द्रपंक्तिभिः सुव्यक्तं सपदि पल्वलपङ्कमध्यादुत्थितस्य पलायितस्य वराहयूथस्य मार्गमनुससारेति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०-उस राजाने मोथेके अंकुरोंके ग्राससे व्याप्त, बडे भीजे पैरोंकी पंक्तिसे सहज दिखाई देनेवाला तत्काल छोटे सरोवरोंकी कीचसे निकलकर भागेहुए वराहयूथका मार्ग लिया ॥ ५९ ॥

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीष-
द्विध्यन्तमुद्धृतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः ॥
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा
वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु ॥ ६० ॥

अन्वयः । वराहाः वाहनादवनतोत्तरकायम् ईषत् विध्यन्तं तम् उद्धृतसटाः (सन्तः) प्रतिहन्तुमीषुः अस्य इषुभिः सहसा जघनाश्रयेषु वृक्षेषु विद्धम् आत्मानं न विविदुः ॥ ६० ॥

वाच्यप० । वराहैः वाहनादवनतोत्तरकायः ईषत् विध्यन् सः उद्धृतसटैः सद्भिः प्रतिहन्तुमीषे+ विद्धः आत्मा न विविदे ॥ ६० ॥

सूकराः तुरंगात्किंचिदानतपूर्वकायं प्रहरन्तं तं दशरथं प्रतिहर्तुमैच्छन्नस्य नृपस्येषुभिः सहसा जघनानामवष्टम्भेषु वृक्षेषु विद्धमात्मानं न विविदुरिति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०-सूकरोंने वाहन (घोडे) से आगेका शरीर कुछ झुकायेहुए, बाणसे वेधतेंहुए, उस राजाको खडे केश कर मारनेकी इच्छा करते ही अपनेको इस राजाके बाणोंसे जंघा लगायेहुए वृक्षोंमें विधा हुआ सहसा न जाना ॥ ६० ॥

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री
वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः ॥

निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुंख-
स्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥ ६१ ॥

अन्वयः। अभिघातरभसस्य वन्यस्य महिषस्य नेत्रविवरे तेन विकृष्य मुक्तः पत्री विग्रहं विभिद्य अशोणितलिप्तपुंखः (सन्) तं प्रथमं पातयामास (स्वयं) पश्चात् पपात ॥ ६१ ॥

वाच्यप०। मुक्तेन पत्रिणा + अशोणितलिप्तपुंखेन (सता) सः प्रथमं पातयाञ्चक्रे पश्चात् पेते ॥ ६१ ॥

अभिहन्तुमुद्यतस्य वन्यस्य महिषस्य नेत्रमध्ये तेन नृपेणाकृष्य मुक्तः शरः महिषदेहं विदार्य अशोणितलिप्तपुंखः सन् तं महिषं प्रथमं पातयामास स्वयं पश्चात्पपातेति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०-शीघ्रतासे मारनेको आतेहुए वनके भैंसेकी आखोंके बीचमें उस राजासे खैंचकर छोडाहुआ बाण उसके शरीरको विदीर्ण करके पूंछमें रुधिर विना लगाही पहले उसे गिराताहुआ, पीछे आप गिरा ॥ ६१ ॥

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गा-
न्खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः ॥
शृङ्गं स दृप्तविनयाधिकृतः परेषा-
मत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः ॥ ६२ ॥

अन्वयः। नृपतिः निशितैः क्षुरप्रैः खड्गान् प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान् चकार दृप्तविनयाधिकृतः सः परेषाम् अत्युच्छ्रितं शृंगं न ममृषे दीर्घमायुः न ॥ ६२ ॥

वाच्यप०। नृपतिना×खड्गाः प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमांगाः चक्रिरे दृप्तविनयाधिकृतेन तेन अत्युच्छ्रितं शृंगं न ममृषे ॥ ६२ ॥

दशरथः निशितैः क्षुरप्रैः बाणविशेषैः खड्गाख्यान् हरिणान् शृंगभंगेन लघुशिरसः चकार यतः क्रूरनिग्रहयुक्तः सः प्रतिकूलानामुन्नतं विषाणं प्राधान्यं च न सेहे, दीर्घमायुषं जीवितकालं न ममृषे इति नेति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०-राजा दशरथने तीक्ष्णबाणोंसे खड्गनामक मृगोंके सींग काटकर उनके शिर हलके कर दिये, अहंकारियोंको दमन करनेमें उद्यत वह राजा वैरियोंकी उन्नतिको न सह सका, न कि बडी आयुको ॥ ६२ ॥

व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः
फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान् ॥
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषा-
त्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् ॥ ६३ ॥

अन्वयः । अभीः स गुहाभ्यः अभिमुखोत्पतितान् वायुरुग्णान् फुल्लासनाग्रविटपानिव स्थितान् शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् व्याघ्रान् शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात् तूणीचकार ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । अभिया तेन गुहाभ्यः अभिमुखोत्पतिताः वायुरुग्णाः फुल्लासनाग्रविटपा इव स्थिताः शरपूरितवक्त्ररन्ध्राः व्याघ्राः तूणीचक्रिरे ॥ ६३ ॥

भयरहितः सः धनुर्धारी दरीभ्योभिमुखमुत्पतितान् पवनेन भग्नान् विकसितसर्जाग्रविटपानिव स्थितान्बाणपूरितमुखरंध्रान् व्याघ्रान् क्षिप्रहस्ततया निमेषाच्छरैः पूरितवानिति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-भयरहित उस धनुषधारीने गुफाओंके सन्मुख आतेहुए वायुसे गिराई सर्जवृक्षकी फूली शाखाके समान स्थित हुए सिंहोंके मुखोंको हाथके हलकेपनके अभ्याससे क्षणमात्रमें वाणोंसे भरेहुये तरकस बना दिये ॥ ६३ ॥

(लघुहस्त-अर्थात् शीघ्रतासे वाणादिका चलाना)

निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाञ्जिघांसुर्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्वीर्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु ॥ ६४ ॥

अन्वयः । सः जिघांसुः निर्घातोग्रैः ज्यानिर्घोषैः कुञ्जलीनात् सिंहान् क्षोभयामास (सः) नूनं तेषां वीर्योदग्रे मृगेषु राजशब्दे अभ्यसूयापरोऽभूत् ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । तेन+जिघांसुना + कुंजलीनाः सिंहाः क्षोभयाञ्चक्रिरे अभ्यसूयापरेण अभावि॥ ६४॥

कुञ्जेषु स्थितान् सिंहान् हन्तुमिच्छुरशनिवद्रौद्रैर्मौर्वीशब्दैः क्षोभयामास अत्रोत्प्रेक्ष्यते तेषां सिंहानां पराक्रमेणोन्नते मृगेषु विषये राजशब्देऽसूयापरोऽभूत्किलेति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-कुंजोंमें शयनकरते हुए सिंहोंके मारनेकी इच्छावालेने विजलीकी कडकके समान भयंकर शब्द करनेवाली ज्याकी टंकारोंसे उनको क्रोधित किया, कारण कि पशुओंमें पराक्रमसे पाई हुई उनकी राजपदवी पर उसे ईर्षा थी ॥ ६४ ॥

तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान्।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं गतमिव मार्गणैरमंस्त ॥ ६५ ॥

अन्वयः । काकुत्स्थः गजकुलबद्धतीव्रवैरान् कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् तान् (सिंहान्) हत्वा आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानाम् आनृण्यं मार्गणैः गतमिव अमंस्त ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । काकुत्स्थेन × अमानि ॥ ६५ ॥

दशरथः हस्तिकुलेषु बद्धतीव्रवैरान्कुटिलनखाग्रेषु सक्तगजमौक्तिकान् तान् सिंहान्निपात्य आत्मानं संग्रामेषु कृतोपकाराणाङ्करिणामनृणत्वं वाणैः प्राप्तवन्तमिव मेने इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०-दशरथने हाथियोंके वंशसे महावैर रखनेवाले, मोती लगेहुए कुटिल नखवाले सिंहोंको मार कर अपनेको युद्धमें उपकार करनेवाले हाथियोंकी उऋणताको बाणोंद्वारा प्राप्त हुआसा माना ॥ ६५ ॥

चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी ॥
नृपतीनिव तान्वियोज्य सद्यः सितवालव्यजनैर्जगाम शान्तिम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः। क्वचित् चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः आकर्णविकृष्टभल्लवर्षी (स नृपः) नृपतीनिव तान् सितवालव्यजनैः वियोज्य शांतिं जगाम ॥ ६६ ॥

वाच्यप०। प्रवर्तिताश्वेन आकर्णविकृष्टभल्लवर्षिणा (तेन) शान्तिः जग्मे ॥ ६६ ॥

क्वचिच्चमरान्परितः प्रधाविताश्वः आश्रवणविकृष्टभल्लैर्वर्षी स नृपः भूपतीनिव तांश्चमराञ्शुभ्रचामरैर्वियोज्य सद्यः शान्तिं जगामेति सरलार्थः। औपच्छन्दसिकं वृत्तम् ॥ ६६ ॥

भा०–एक समय चमरी मृगोंपर घोडा दौडाकर कानतक खेंचकर भाले बर्षानेवाले उस राजाने राजोंके समान उनको श्वेतचामरोंसे हीन करके तत्काल शान्ति पाई॥६६॥

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार ॥
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः ॥ ६७ ॥

अन्वयः। सः तुरगसमीपात् उत्पतंतम् अपि रुचिरकलापं मयूरं चित्रमाल्यानुकीर्णे रतिविगलितबंधे प्रियायाः केशपाशे सपदि गतमनस्कः न बाणलक्ष्यीचकार ॥ ६७ ॥

वाच्यप०। तेन उत्पतन् अपि रुचिरकलापः मयूरः + सपदि गतमनस्केन न बाणलक्ष्यीचक्रे ॥ ६७ ॥

सः दशरथः तुरगसमीपादुत्पतन्तमपि कान्तिमद्बर्हं तं चित्रेण माल्येनानुकीर्णे रतौ शिथिलितबन्धे प्रियायाः केशपाशे सद्यः प्रवृत्तचित्तः शरं न मुमोचेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–उस राजाने घोडेके समीपसे उडतेहुएभी अच्छी पूंछवाले मोरको, चित्रविचित्र मालासे गुंथेहुए क्रीडासमय बंधन खुलेहुए प्रियाके केशपाशमें मन लगानेके कारण बाणका लक्ष्य (निशाना) न किया ॥ ६७ ॥

तस्य कर्कशविहारसंभवं स्वेदमाननविलग्नजालकम् ॥
आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः ॥ ६८ ॥

अन्वयः। कर्कशविहारसंभवम् आननविलग्नजालकं तस्य स्वेदं सतुषारशीकरः भिन्नपल्लवपुटः वनानिलः आचचाम ॥ ६८ ॥

वाच्यप०। कर्कशविहारसंभवः आननविलग्नजालकः तस्य स्वेदः सतुषारशीकरेण भिन्नपल्लवपुटेन वनानिलेन आचेमे ॥ ६८ ॥

अतिपरिश्रमादुत्पन्नं मुखे बद्धकदम्बकं तस्य दशरथस्य स्वेदं शिशिरजलकणयुक्तः निर्दलितपल्लवकोशः वनपवनः जहारेति सरलार्थः। रथोद्धतावृत्तमेतत् ॥ ६८ ॥

भा०-उसके कठिन परिश्रमसे उत्पन्न हुए मुखपर छायेहुए पसीनेके समूहको शीतलजलके कणोंवाली पत्तोंकी कली खोलनेवाली वनकी वायुने सुखा दिया ॥६८॥

इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवावलम्बितधुरं धराधिपम् ॥
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृगया जहार चतुरेव कामिनी ॥ ६९ ॥

अन्वयः । इति आत्मनः विस्मृतान्यकरणीयं सचिवावलंबितधुरम् अनुबंधसेवया परिवृद्धरागं धराधिपं मृगया चतुरा कामिनीव जहार ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । आत्मनः विस्मृतान्यकरणीयः सचिवावलंबितधूः परिवृद्धरागः नराऽधिपः मृगयया चतुरया कामिन्या इव जह्रे ॥ ६९ ॥

पूर्वोक्तप्रकारेण विस्मृतान्यकार्यं सचिवालंवितराज्यं निरन्तरसेवया परिवृद्धानुरागं तं दशरथं मृगया चतुराङ्गनेवाचकर्षेति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-इस प्रकार अपने और सब कार्य विसारेहुए, मंत्रियोंपर (पृथ्वीका) भार सौंपेहुए, निरन्तर सेवासे प्रेम बढ़ेहुए, राजा दशरथको मृगया (आखेट) ने चतुर स्त्रीके समान वश किया ॥ ६९ ॥

स ललितकुसुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम् ॥
नरपतिरतिवाहयांबभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम् ॥ ७० ॥

अन्वयः । सः नरपतिः ललितकुसुमप्रवालशय्या ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथां त्रियामां क्वचित् असमेतपरिच्छदः (सन्) अतिवाहयांबभूव ॥ ७० ॥

वाच्यप० । तेन नरपतिना ललितकुसुमप्रवालशय्या ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथा त्रियामा क्वचित् असमेतपरिच्छदेन (सता) अतिवाहयांबभूवे ॥ ७० ॥

सः दशरथः मनोहरपुष्पपल्लवशय्यां प्रकाशिताभिरौषधिभिः युक्तां रात्रिं परिहृतपरिजनः सन् गमयामासेति सरलार्थः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ७० ॥

भा०-उस राजाने मनोहर फूलपत्तोंकी शय्यावाली, प्रकाशमान औषधियोंके दीपकवाली, रात्रि कभी २ सेवकोंके विना भी बिताई ॥ ७० ॥

(अर्थात् इकला वनमें रह जाता था.)

उषसि स गजयूथकर्णतालैः पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः ॥
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि ॥ ७१ ॥

अन्वयः । उषसि पटुपटहध्वनिभिः गजयूथकर्णतालैः विनीतनिद्रः सः तत्र मधुराणि विहगविकूजितबंदिमंगलानि शृण्वन्नरमत ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । विनीतनिद्रेण तेन + + शृण्वता अरम्यत ॥ ७१ ॥

प्रभाते पटुपटहसदृशशब्दयुक्तैः हस्तियूथकर्णतालैः गतनिद्रः सः दशरथः तथा कानने मनोहराणि पक्षिणां कूजितान्येव मागधानां मंगलगीतानि शृण्वन्नरमतेति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-प्रातःकाल अच्छे नगाडोंके समान शब्द करती हुई, हाथियोंके समूहोंकी कर्णतालकी ध्वनिसे जागेहुए उस ने उस वनमें पक्षियोंके उच्चारणकिये बंदियोंकी समान मंगल गीत सुनकर चित्त लगाया ॥ ७१ ॥

अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः ॥
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरङ्गमेण ॥ ७२ ॥

अन्वयः। अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः श्रमफेनमुचा तुरंगमेण तपस्विगाढां तमसां नदीं प्राप ॥ ७२ ॥

वाच्यप०। रुरोर्गृहीतवर्त्मना + पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणेन (तेन) तपस्विगाढा तमसा नदी प्रापे ॥ ७२ ॥

कदाचिद्रुरोर्मृगस्य स्वीकृतमार्गः कानने वाजिवेगात्सेवकवर्गैरलक्ष्यमाणः श्रमेण स्वेदमुचाऽश्वेन मुनिभिस्समाकुलां तमसां सरितं प्रापेति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-एक समय रुरु मृगका पीछा करतेहुए वनमें अनुचरोंसे पृथक् होकर श्रमित होनेसे पसीनोंके फेन त्यागतेहुए घोडे सहित वह, तपस्वियोंसे सेवित तमसानदी पर उपस्थित हुआ ॥ ७२ ॥

कुम्भपूरणभवः पटुरुच्चैरुच्चचार निनदोऽम्भसि तस्याः ॥
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज ॥ ७३ ॥

अन्वयः। तस्याः अम्भसि कुंभपूरणभवः पटुः उच्चैः निनदः उच्चचार तत्र स द्विरदबृंहितशंकी (सन्) शब्दपातिनम् इषुं विससर्ज ॥ ७३ ॥

वाच्यप०। कुम्भपूरणभवेन पटुना उच्चैः निनदेन उच्चेरे + तत्र तेन द्विरदबृंहितशंकिना (सता) शब्दपाती इषुः विससृजे ॥ ७३ ॥

तस्याः तमसायाः जले घटपूरणेनोत्पन्नः मधुरगम्भीरशब्दः उदियाय, तत्र शब्दे स दशरथः हस्तिबृंहितशङ्की सन् शब्दवेधिनं बाणं विसृष्टवानिति सरलार्थः। स्वागता वृत्तम् ॥ ७३ ॥

भा०-उस तमसाके जलमें घड़ा भरनेसे उत्पन्न हुए मधुरशब्द पर उस राजाने हाथीकी गाजकी भ्रांतिसे शब्दवेधी बाण छोड़ा ॥ ७३ ॥

नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पंक्तिरथो विलंघ्य यत् ॥
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥ ७४ ॥

अन्वयः। तत् (कर्म) नृपतेः प्रतिषिद्धमेव यत् पंक्तिरथः विलंघ्य कृतवान् श्रुतवंतोपि रजोनिमीलिताः अपथे पदम् अर्पयंति हि ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । तेन (कर्मणा) + प्रतिपिद्धेन (भूयते) यत् पंक्तिरथेन कृतम् श्रुतवद्भिरपि रजो-निमीलितैः पदम् अर्प्यते ॥ ७४ ॥

तत्कार्यं क्षत्रियस्य निषिद्धमेव यदेतद्गजवधरूपं कार्यं दशरथः मर्यादामुल्लंघ्य कृतवान् विद्वांसोपि रजोगुणसमावृत्ताः सन्तः कुमार्गे पदं निक्षिपन्ति हीति सरलार्थः । वैतालीयं वृत्तम् ॥ ७४ ॥

भा०-वह कर्म राजोंको निषिद्ध ही था जो (गजवधरूप) कर्म दशरथने (शास्त्र) उल्लंघनकर किया, सत्य है विद्वान्भी रजोगुणमें लिप्त हो कुमार्गमें पद रखते हैं ॥७४॥

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्ण-
स्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः ॥
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं
तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि ॥ ७५ ॥

अ० । हा तात ! इति क्रंदितम् आकर्ण्य विषण्णः (सन्) तस्य वेतसगूढं प्रभवम् अन्विष्यन् शल्यप्रोतं सकुंभं मुनिपुत्रं प्रेक्ष्य सः क्षितिपोपि तापात् अन्तःशल्य इव आसीत् ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । विषण्णेन (सता) अन्विष्यता + क्षितिपेनापि अभूयत ॥ ७५ ॥

हा पितः ! इति शब्दमाकर्ण्य गतोत्साहस्सन् तस्य शब्दस्य वेतसैः छन्नमुत्पत्तिकारणमन्विष्यञ्छरेण स्यूतं सघटं मुनिकुमारमवलोक्य सः दशरथोपि दुःखादन्तःशल्य इवासीदिति सरलार्थः । मत्तमयूरं वृत्तम् ॥ ७५ ॥

भा०-हे पिता इस प्रकार रोना सुनकर दुःखको प्राप्त हो उसका वेतोंमें छिपा हुआ कारण ढूंढता २ बाणसे घडे सहित मुनिपुत्रको विधा देख वह राजा भी उस दुःखसे हृदयमें बाण लगेहुए सा हुआ ॥ ७५ ॥

तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन
पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिषण्णदेहः ॥
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्खलद्भि-
रात्मानमक्षरपदैः कथयांबभूव ॥ ७६ ॥

अन्वयः । प्रथितान्वयेन तेन तुरगादवतीर्य पृष्टान्वयः जलकुंभनिषण्णदेहः स तस्मै स्खलद्भिरक्षरपदैः आत्मानं द्विजेतरतपस्विसुतं कथयाम्बभूव ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । पृष्टान्वयेन जलकुंभनिषण्णदेहेन तेन आत्मा द्विजेतरतपस्विसुतः कथयाम्बभूवे ॥ ७६ ॥

प्रख्यातकुलेन तेन महीपतिना तुरंगादवतीर्य ब्रह्महत्याभयेन पृष्टवंशः जलघटन्यस्तदेहः स मुनि-सुतः तस्मै राज्ञे अशक्तिवशादर्धोच्चारितैरक्षरपदैरात्मानं द्विजेतरतपस्विपुत्रं (करणसंज्ञं) कथयाम्बभूवेति सरलार्थः ॥ वैश्यात्तु करणः शूद्रायामिति याज्ञवल्क्यः ॥ शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप इति रामायणे ॥ ७६ ॥

भा०—विख्यात वंशवाले राजाके घोडेसे उतरकर वंश पूछनेपर जलके घडेपर देह रक्खे हुए उसने स्खलित अक्षरोंसे अपनेको ब्राह्मणसे इतर जातके तपस्वीका पुत्र बताया ॥ ७६ ॥

(यह तपस्वी करणजाति था, जिसका पिता वैश्य और माता शूद्री थी.)

तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव
पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय ॥
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस ॥ ७७ ॥

अन्वयः । तच्चोदितः नृपतिः अनुद्धृतशल्यमेव तम् अवसन्नदृशोः पित्रोः सकाश निनाय तथागतम् तम् एकपुत्रम् उपेत्य अज्ञानतः स्वचरितं ताभ्यां शशंस ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । तच्चोदितेन नृपतिना अनुद्धृतशल्यः एव सः + निन्ये + शशंसे ॥ ७७ ॥

तेन मुनिसुतेन पितृसमीपं प्रापयेत्युक्तः (सः) दशरथः अनुत्पाटितबाणमेव तं मुनिकुमारमन्धयोर्मातापित्रोर्निकटं निनाय, तथागतं वेतसच्छन्नमेकं सुतं तं मुनिपुत्रमुपेत्य संनिकृष्टं गत्वा गजभ्रान्त्या स्वीकृतं ताभ्यां मातापितृभ्यां कथितवानिति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—उसीके कहनेसे दशरथने बाण छिदेहुए ही उस मुनिपुत्रको उसके अंधे माता पिताके समीप प्राप्त किया, और ऊपर वर्णन की हुई अवस्थामें उस इकलौते पुत्रके संग वेसुधीमें किये अपने वृत्तान्तको उनसे कहा ॥ ७७ ॥

(यहां रामायणसे थोडा विरोध है वहां लिखा है कि माता पिताको पुत्रके समीप ले गया)

तौ दम्पती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः ॥
सोऽभूत्परासुरथ भूमिपतिं शशाप
हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः ॥ ७८ ॥

अन्वयः । तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः उरस्तः निखातं शल्यं प्रहर्त्रा उदहारयतां, सः परासुः अभूत् अथ वृद्धः हस्तार्पितैः नयनवारिभिः एव भूमिपतिं शशाप ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । ताभ्यां दम्पतिभ्याम् × उदहार्यत तेन परासुना (अभावि) अथ वृद्धेन भूमिपतिः शेपे ॥ ७८ ॥

तौ दम्पती भूरि विलप्य सुतस्य वक्षसि निखातं शरं दशरथेनोद्धारयामासतुः सः कुमारः प्राणरहितोऽभूत् अथ स्थविरः मुनिः करार्पितैर्नेत्रजलैरेव पृथ्वीपतिं शशापेति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—उन दोनों स्त्री पुरुषोंने बहुत प्रकारसे विलाप करके पुत्रकी छातीमें छिदे हुए बाणको प्रहार करनेवालेहीसे निकलवाया, कि उसने प्राण छोडदिये, तब वृद्धने हाथोंपर गिरेहुए आंसुओंके जलसे ही राजाको शाप दिया ॥ ७८ ॥

दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका-
दन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम् ॥
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजङ्गं
प्रोवाच कोसलपतिः प्रथमापराद्धः ॥ ७९ ॥

अन्वयः । (हे राजन् !) भवानपि अन्त्ये वयसि अहमिव पुत्रशोकात् दिष्टान्तम् आप्स्यति इति उक्तवन्तम् आक्रान्तपूर्वं मुक्तविषं भुजंगमिव (तं) प्रथमापराद्धः कोसलपतिः प्रोवाच ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । भवतापि + मया इव दिष्टान्तः आप्स्यते इति उक्तवान् आक्रान्तपूर्वः मुक्तविषः भुजंग इव (सः) प्रथमापराद्धेन कोसलपतिना ऊचे ॥ ७९ ॥

भो दशरथ ! भवानपि वृद्धावस्थायामहमिव पुत्रशोकान्मरणं प्राप्स्यति, इत्युक्तवन्तं प्रथमापकृतमुत्सृष्टविषं सर्पमिव स्थितं तं मुनिं प्रथमापराधी दशरथः प्रोवाचेति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—हे राजन् तुमभी वृद्धावस्थामें मेरे समान पुत्रशोकसे मृत्यु पाओगे इस प्रकार कहतेहुए, प्रथम पैरसे दबायेहुए, विषत्यागते सर्पके समान उसको प्रथम अपराधी कोशलदेशके राजाने कहा ॥ ७९ ॥

शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम् ॥
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति ॥ ८० ॥

अन्वयः । अदृष्टतनयाननपद्मशोभे मयि भगवता पातितः अयं शापः अपि सानुग्रहः इन्धनेद्धः ज्वलनः कृष्यां क्षितिं दहन्नपि बीजप्ररोहजननीं करोति ॥ ८० ॥

वाच्यप० । + पातितेन अनेन शापेन+ सानुग्रहेण (भूया ते) इन्धनेद्धेन ज्वलनेन+दहतापि बीजप्ररोहजननी क्रियते ॥ ८० ॥

अदृष्टसुतमुखपद्मद्युतौ मयि भगवतोयं शापोपि सानुकम्पः, काष्ठैः समिद्धोऽनलः कर्षणार्हां पृथ्वीं दहन्नपि बीजांकुराणामुत्पादनसमर्थां करोतीति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—सन्तानके मुखकमलकी छबि न देखनेवाले मुझको तुमने यह शाप भी दया करके प्रदान किया है, ईंधनसे बढाई हुई अग्नि खेतको जलाकर बीजांकुर उत्पन्न करनेवाला करती है ॥ ८० ॥

इत्थंगते गतघृणः किमयं विधत्तां
वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन ॥
एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे
पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः ॥ ८१ ॥

अन्वयः। इत्थंगते वसुधाधिपेन गतघृणः तव वध्यः अयं (जनः) किं विधत्ताम् इति अभिहितः सः मुनिः सदारः परासुं पुत्रम् अनुगन्तुमनाः (सन्) हुताशनवतः एधान् ययाचे ॥ ८१ ॥

वाच्यप०। गतघृणेन तव वध्येन अनेन जनेन किं विधीयताम् इति अभिहितेन तेन सदारेण अनुगन्तुमनसा (सता) एधाः ययाचिरे ॥ ८१ ॥

इत्थं प्रवृत्ते सति महीपतिना दशरथेन निष्कृपः तव वधार्होऽयं जनः किं विधत्तामित्युक्तः स मुनिः सभार्यः गतासुं सुतमनुगन्तुमनाः सन् साग्नीनि काष्ठानि ययाचे इति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—यह वृत्तान्त होनेपर राजाके "तुमसे मारे जाने योग्य इस कठोर जनको क्या करना चाहिये" ऐसा कहनेपर, वह मुनि भार्यासहित मरे पुत्रके पीछे जानेकी इच्छासे ईंधन और अग्नि मांगता हुआ ॥ ८१ ॥

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्य राजा
संपाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः ॥
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं
शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः ॥ ८२ ॥

अन्वयः। प्राप्तानुगः राजा सपदि अस्य शासनं संपाद्य पातकविलुप्तधृतिः (सन्) अन्तर्निविष्टपदम् आत्मविनाशहेतुं शापम् अम्बुराशिः और्वं वडवानलम् इव दधत् निवृत्तः ॥ ८२ ॥

वाच्यप०। प्राप्तानुगेन राज्ञा पातकविलुप्तधृतिना (सता) निवृत्तम् ॥ ८२ ॥

प्राप्तसेवकवर्गः राजा सपद्यस्य मुनेः काष्ठसंभरणरूपमनुशासनं संपाद्य मुनिवधरूपेण पातकेन नष्टोत्साहः सन्नन्तःप्राप्तस्थानमात्मविनाशकारणं शापं सागरः वडवाग्निमिव धारयन् वनान्निवृत्त इति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०—सेवकोंको पाकर राजा शीघ्र इसकी आज्ञा करके पातक करनेसे धीरता त्यागे, हृदयमें स्थान पायेहुए, अपने विनाशके कारण उस शापको मानो 'वडवानलको समुद्रके समान' धारेहुए लौटा ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ।

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ॥
किंचिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ॥ १ ॥

अन्वयः । पृथिवीं शासतः पाकशासनतेजसः अनूनर्द्धेः तस्य किंचिदूनं शरदाम् अयुतं ययौ ॥ १ ॥

वाच्यप० । पृथिवीं शासतः पाकशासनतेजसः अनूनर्द्धेः तस्य किंचिदूनेन शरदामयुतेन यये ॥ १ ॥

पृथिवीं पालयतः शक्रवर्चसः महासमृद्धेस्तस्य दशरथस्य किंचिन्न्यूनं वत्सराणां दशसहस्रं ययाविति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—पृथ्वी पालन करनेवाले इन्द्रके समान तेजस्वी महाऋद्धिमान् दशरथको कुछेक कम दशसहस्र वर्ष वीतगये ॥ १ ॥
(यह दशसहस्रवर्ष शापके उपरान्तके जानना, कारण कि वाल्मीकिमें लिखाहै—हे विश्वामित्र साठहजार वर्षकी अवस्थामें मेरे पुत्र हुए हैं)

न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ॥
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ॥ २ ॥

अन्वयः । सः पूर्वेषाम् ऋणनिर्मोक्षसाधनं सद्यः शोकतमोपहं सुताभिधानं ज्योतिर्न च उपलेभे ॥ २ ॥

वाच्यप० । तेन पूर्वेषाम् ऋणनिर्मोक्षसाधनं सद्यः शोकतमोपहं ज्योतिः न उपलेभे ॥ २ ॥

सः महीपतिः पितृणामृणविमुक्तिकारणं सद्यः शोकतमोपहं पुत्राख्यं ज्योतिः न प्राप चेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—वह पितरोंके ऋणसे छूटनेके साधन तत्काल शोकरूपी अन्धकारका नाश करनेवाले पुत्ररूपी प्रकाशको न प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरं नृपः ॥
प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः ॥ ३ ॥

अन्वयः । स नृपः प्रत्ययापेक्षसंततिः (सन्) मंथात् प्राक् अनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिः अर्णव इव चिरम् अतिष्ठत् ॥ ३ ॥

वाच्यप० । तेन नृपेण प्रत्ययापेक्षसंततिना (सता) मंथात् प्राक् अनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिनार्णवेन इव चिरमस्थीयत ॥ ३ ॥

हेत्वापेक्षसंततिः सः नृपः मन्थनात्पूर्वमदृष्टरत्नोत्पत्तिः जलनिधिरिव बहुकालपर्यन्तमतिष्ठदिति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–वह राजा कारण चाहतीहुई सन्तानवाला मथनेसे प्रथम रत्नोंकी अप्रकट उत्पत्तिवाले सागरके समान बहुत कालतक रहा ॥ ३ ॥

ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः संतानकांक्षिणः ॥
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ॥ ४ ॥

अन्वयः । ऋष्यशृंगादयः ऋत्विजः जितात्मानः संतः संतानकांक्षिणः तस्य पुत्रीयाम् इष्टिम् आरेभिरे ॥ ४ ॥

वाच्यप० । ऋष्यशृंगादिभिः ऋत्विग्भिः जितात्मभिः सद्भिः संतानकांक्षिणः तस्य पुत्रीया इष्टिः आरेभे ॥ ४ ॥

ऋष्यशृंगादयः महर्षयः याज्ञिकाः जितान्तःकरणाः सन्तः सुतार्थिनस्तस्य दशरथस्य सुतनिमित्तामिष्टिं प्रचक्रमिर इति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०–ऋष्यशृंगादि ऋत्विज जितेन्द्रियतायुक्त सन्तानकी इच्छा करनेवाले तिस राजाको पुत्रेष्टियज्ञ कराते भये ॥ ४ ॥

तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ॥
अभिजग्मुर्निदाघार्ताश्छायावृक्षमिवाध्वगाः ॥ ५ ॥

अन्वयः । तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुताः (सन्तः) निदाघार्ताः अध्वगाः छायावृक्षमिव हरिम् अभिजग्मुः ॥ ५ ॥

वाच्यप० । तस्मिन्नवसरे देवैः पौलस्त्योपप्लुतैः (सद्भिः) निदाघार्तैः अध्वगैः छायावृक्ष इव हरिः अभिजग्मे ॥ ५ ॥

सुतकामेष्टिप्रवृत्तिसमये निर्जराः रावणेन पीडिताः सन्तः ग्रीष्मातुराः पान्थाः छायातरुमिव भगवन्तं विष्णुमभिजग्मुः ॥ ५ ॥

भा०–जिसप्रकार गरमीसे व्याकुलहुए पथिक वृक्षोंके निकट जाते हैं (इसीप्रकार) उससमय देवता रावणसे भयभीत हो हरिके निकट गये ॥ ५ ॥

ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ॥
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥ ६ ॥

अन्वयः । ते च उदन्वंतं प्रापुः आदिपूरुषश्च बुबुधे अव्याक्षेपः भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः लक्षणं हि ॥ ६ ॥

वाच्यप० । तैश्चोदन्वान् प्रापे, आदिपूरुषेण च बुबुधे, अव्याक्षेपेण भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः लक्षणेन हि (भूयते) ॥ ६ ॥

ते देवाः सागरं प्रापुः विष्णुश्च बुबुधे, तथा हि गम्यस्यान्यासङ्गः भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः चिह्नं हीति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०-वे सागरपर प्राप्तहुए और आदिपुरुष योगनिद्रासे जागे, कारण कि होनेवाली कार्यसिद्धिका विलम्ब न होनाही लक्षण होताहै ॥ ६ ॥

भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः ॥
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः । दिवौकसः भोगिभोगासनासीनं तत्फणामंडलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहं तं ददृशुः ॥७॥

वाच्यप० । दिवौकोभिः भोगिभोगासनासीनः तत्फणामंडलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहः स ददृशे ॥ ७ ॥

देवाः शेषस्य शरीरे समुपविष्टं तस्य शेषस्य फणामण्डलस्योद्गमिभिर्मणिभिर्द्योतितदेहं तं हरिं ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-देवता शेषशय्यापर स्थित उनके फणामंडलके निर्मल मणियोंसे प्रकाशमान शरीरवालेको देखते हुए ॥ ७ ॥

श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले ॥
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ॥ ८ ॥

अन्वयः । पद्मनिषण्णायाः श्रियः क्षौमांतरितमेखले आस्तीर्णकरपल्लवे अंके निक्षिप्तचरणम् ॥ ८ ॥

वाच्यप० । निक्षिप्तचरण इति विशेषः ॥ ८ ॥

उत्पले समुपविष्टायाः श्रियाः दुकूलव्यवहितमेखले आस्तीर्णपाणिपल्लवे अङ्के निक्षिप्तपदं विष्णुं ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-कमलपर स्थितहुई लक्ष्मीके वस्त्रोंसे आच्छादित मेखलावाले (उसके) हाथरूपी पत्ते विछेहुए अंक (गोद) में चरण धरेहुए ॥ ८ ॥

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम् ॥
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम् ॥ ९ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) प्रबुद्धपुंडरीकाक्षं बालातपनिभांशुकं प्रारंभसुखदर्शनम् (अत एवोक्तविशेषणयुक्तम्) शारदं दिवसमिव स्थितम् ॥ ९ ॥

वाच्यप ० । प्रथमांतत्वम् ॥ ९ ॥

पुनः किंविधम् । विकसितकमलनेत्रं प्रातःकालिकसूर्यतुल्यपीताम्बरधरं योगिगम्यं शरत्संबन्धि दिवसमिव स्थितमिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-खिलेहुए कमलके समान नेत्र और प्रातःकालके धूपके समान वस्त्र तथा प्रारंभसेही सुखदायक दर्शनवाले शरदके दिनके समान स्थित ॥ ९ ॥

प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ॥

कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा ॥ १० ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् कौस्तुभाख्यमपां बृहतोरसा बिभ्राणम् ॥ १० ॥

वाच्यप० । बिभ्राणः इति विशेषः ॥ १० ॥

पुनः कीदृशम् । कान्त्यानुरञ्जितश्रीवत्सलाञ्छनं लक्ष्म्या विलासदर्पणं सागराणां सारं कौस्तुभाख्यं मणिं विशालवक्षसा धारयन्तमिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-कांतिसे श्रीवत्सके चिह्नको शोभित करनेवाली लक्ष्मीके विलासका दर्पण रूप कौस्तुभनाम मणिको बृहत् हृदयमें पहरेहुए ॥ १० ॥

(भृगुके चरणप्रहारके चिह्नको श्रीवत्स कहते हैं)

बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः ॥

आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम् ॥ ११ ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतं) विटपाकारैः दिव्याभरणभूषितैः बाहुभिरुपलक्षितम् (अत एव) अपांमध्ये आविर्भूतम् अपरं पारिजातमिव (स्थितम्) ॥ ११ ॥

वाच्यप० । अपां मध्ये आविर्भूतः अपरः पारिजात इव इति विशेषः ॥ ११ ॥

वृक्षाकारैः दिव्यालंकारभूषितैः भुजैरुपलक्षितमत एव पयोमध्यादाविर्भूतं द्वितीयं कल्पद्रुममिव स्थितमिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०-शाखाके समान दिव्यभूषणोंसे युक्त भुजाओंसे शोभित समुद्रके बीचमें प्रगट हुए दूसरे पारिजातके समान ॥ ११ ॥

दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः ॥

हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम् ॥ १२ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः चेतनावद्भिः हेतिभिरुदीरितजयस्वनम् ॥ १२ ॥

वाच्यप० । उदीरितजयस्वन इति विशेषः ॥ १२ ॥

दैत्यांगनाकपोलभित्तीनां मदरागहारिभिः सविग्रहैः सुदर्शनादिभिः शस्त्रैरुदीरितजयशब्दमिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०-दैत्योंकी नारियोंके गण्डस्थलका मदराग मिटानेवाले, चेतनावाले अस्त्रोंसे प्रगटकिये जयशब्दवाले ॥ १२ ॥

वाच्यप० । तैश्चोदन्वान् प्रापे, आदिपूरुषेण च बुबुधे, अव्याक्षेपेण भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः लक्षणेन हि (भूयते) ॥ ६ ॥

ते देवाः सागरं प्रापुः विष्णुश्च बुबुधे, तथा हि गम्यस्याव्यासङ्गः भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः चिह्नं हीति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०-वे सागरपर प्राप्तहुए और आदिपुरुष योगनिद्रासे जागे, कारण कि होने-वाली कार्यसिद्धिका विलम्ब न होनाही लक्षण होताहै ॥ ६ ॥

भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः ॥
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः । दिवौकसः भोगिभोगासनासीनं तत्फणामंडलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहं तं ददृशुः ॥७॥

वाच्यप० । दिवौकोभिः भोगिभोगासनासीनः तत्फणामंडलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहः स ददृशे ॥ ७ ॥

देवाः शेषस्य शरीरे समुपविष्टं तस्य शेषस्य फणामण्डलस्योद्रश्मिभिर्मणिभिर्द्योतितदेहं तं हरिं ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-देवता शेषशय्यापर स्थित उनके फणामंडलके निर्मल मणियोंसे प्रकाशमान शरीरवालेको देखते हुए ॥ ७ ॥

श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले ॥
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ॥ ८ ॥

अन्वयः । पद्मनिषण्णायाः श्रियः क्षौमांतरितमेखले आस्तीर्णकरपल्लवे अंके निक्षिप्तच-रणम् ॥ ८ ॥

वाच्यप० । निक्षिप्तचरण इति विशेषः ॥ ८ ॥

उत्पले समुपविष्टायाः श्रियाः दुकूलव्यवहितमेखले आस्तीर्णपाणिपल्लवे अङ्के निक्षिप्तपदं विष्णुं ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-कमलपर स्थितहुई लक्ष्मीके वस्त्रोंसे आच्छादित मेखलावाले (उसके) हाथरूपी पत्ते बिछेहुए अंक (गोद) में चरण धरेहुए ॥ ८ ॥

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम् ॥
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम् ॥ ९ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) प्रबुद्धपुंडरीकाक्षं बालातपनिभांशुकं प्रारंभसुखदर्शनम् (अत एवोक्तविशेषणयुक्तम्) शारदं दिवसमिव स्थितम् ॥ ९ ॥

वाच्यप० । प्रथमांतत्वम् ॥ ९ ॥

पुनः किंविधम् । विकसितकमलनेत्रं प्रातःकालिकसूर्यतुल्यपीताम्बरधरं योगिगम्यं शरत्संबन्धि दिवसमिव स्थितमिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०–खिलेहुए कमलके समान नेत्र और प्रातःकालके धूपके समान वस्त्र तथा प्रारंभसेही सुखदायक दर्शनवाले शरदके दिनके समान स्थित ॥ ९ ॥

प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ॥
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा ॥ १० ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् कौस्तुभाख्यमपां बृहतोरसा बिभ्राणम् ॥ १० ॥

वाच्यप० । बिभ्राणः इति विशेषः ॥ १० ॥

पुनः कीदृशम् । कान्त्यानुरञ्जितश्रीवत्सलाञ्छनं लक्ष्म्या विलासदर्पणं सागराणां सारं कौस्तुभाख्यं मणिं विशालवक्षसा धारयन्तमिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०–कांतिसे श्रीवत्सके चिह्नको शोभित करनेवाली लक्ष्मीके विलासका दर्पण रूप कौस्तुभनाम मणिको वृहत् हृदयमें पहरेहुए ॥ १० ॥

(भृगुके चरणप्रहारके चिह्नको श्रीवत्स कहते हैं)

बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः ॥
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम् ॥ ११ ॥

अन्वयः । (पुनः कथंभूतं) विटपाकारैः दिव्याभरणभूषितैः बाहुभिरुपलक्षितम् (अत एव) अपांमध्ये आविर्भूतम् अपरं पारिजातमिव (स्थितम्) ॥ ११ ॥

वाच्यप० । अपां मध्ये आविर्भूतः अपरः पारिजात इव इति विशेषः ॥ ११ ॥

वृक्षाकारैः दिव्यालंकारभूषितैः भुजैरुपलक्षितमत एव पयोमध्यादाविर्भूतं द्वितीयं कल्पद्रुममिव स्थितामिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०–शाखाके समान दिव्यभूषणोंसे युक्त भुजाओंसे शोभित समुद्रके बीचमें प्रगट हुए दूसरे पारिजातके समान ॥ ११ ॥

दैत्यस्त्रीगण्डलेखाना मदरागविलोपिभिः ॥
हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम् ॥ १२ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः चेतनावद्भिः हेतिभिरुदीरितजयस्वनम् ॥ १२ ॥

वाच्यप० । उदीरितजयस्वन इति विशेषः ॥ १२ ॥

दैत्यांगनाकपोलभित्तीनां मदरागहारिभिः सविग्रहैः सुदर्शनादिभिः शस्त्रैरुदीरितजयशब्दमिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–दैत्योंकी नारियोंके गण्डस्थलका मदराग मिटानेवाले, चेतनावाले अस्त्रोंसे प्रगटकिये जयशब्दवाले ॥ १२ ॥

मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा ॥
उपस्थितं प्राञ्जलिना विनीतेन गरुत्मता ॥ १३ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा विनीतेन गरुत्मता प्राञ्जलिना (सता)उपस्थितम् ॥ १३ ॥

वाच्यप० । गरुत्मान्प्राञ्जलिः उपस्थितवान् ॥ १३ ॥

त्यक्ताहीश्वरवैरेण वज्रप्रहारचिह्नधारिणाञ्जलियुक्तेनानुद्धतेन तार्क्ष्येणोपासितमिति सरलार्थः॥ १३॥

भा०—शेषके साथ वैर त्यागेहुए वज्रघावके चिह्नवाले हाथजोडे नम्रतायुक्त गरुडसे सेवित ॥ १३ ॥

योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः ॥
भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन् ॥ १४ ॥

अन्वयः । (पुनः किंभूतम्) योगनिद्रांतविशदैः पावनैः अवलोकनैः सौखशायनिकान् भृग्वादीन् ऋषीन् अनुगृह्णंतम् ॥ १४ ॥

योगनिद्रावसाने प्रसन्नैः पावनैरवलोकनैः सुखशयनपृच्छकान्भृग्वादीनृषीननुकम्पयन्तमिति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—योगनिद्राके अन्तमें स्वच्छ और पवित्र अवलोकनसे सुखशयनपूंछनेवाले भृगुआदि ऋषियोंपर अनुग्रह करते हुए ॥ १४ ॥

प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् ॥
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १५ ॥

अन्वयः । अथ सुराः सुरद्विषां शमयित्रे तस्मै प्रणिपत्य स्तुत्यम् अवाङ्मनसगोचरम् एनं तुष्टुवुः ॥ १५ ॥

वाच्यप० । अथ सुरैः सुरद्विषां शमयित्रे तस्मै प्रणिपत्य स्तुत्यः अवाङ्मनसगोचरः एषः तुष्टुवे ॥ १५ ॥

अथ दर्शनावसाने देवाः दैत्यानां नाशकाय तस्मै परमेश्वराय प्रणिपत्य स्तुतियोग्यं वाङ्मनसपरमेनं परमेश्वरमस्तुवन्निति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—इसके उपरान्त देवता दैत्योंके मारनेवालेके निमित्त प्रणामकरके स्तुतियोग्य उन मन और वाणीके अगोचरकी स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ॥
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥ १६ ॥

अन्वयः । पूर्वं विश्वसृजे तदनु विश्वं बिभ्रते अथ विश्वस्य संहर्त्रे त्रेधास्थितात्मने तुभ्यं नमः ॥ १६ ॥

आदौ विश्वस्रष्ट्रे तदनु जगत्पालकाय तदनन्तरं संसारस्य विनाशकाय एवं त्रेधा सृष्टिपालनविनाशकर्तृत्वेन स्थितात्मने परमेश्वराय तुभ्यं नमः इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०–प्रथम विश्वके उत्पन्न करनेवाले फिर पालन करनेवाले पीछे संहार करनेवाले तीन प्रकार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥

रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते ॥
देशेदेशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः ॥ १७ ॥

अन्वयः । एकरसं दिव्यं पयः देशेदेशे रसांतराणि यथा अश्नुते एवम् अविक्रियः त्वं गुणेषु अवस्थाः (अश्नुषे) ॥ १७ ॥

वाच्यप० । एकरसेन दिव्येन पयसा देशेदेशे रसांतराणि यथा अश्यंते, एवम् अविक्रियेण त्वया गुणेषु अवस्थाः (अश्यन्ते) १७ ॥

यथा मधुरैकरसं दिव्यं वर्षाजलं देशेदेशे लवणादीनि रसान्तराणि प्राप्नोति, तथा विकाररहितोपि त्वं सत्त्वादिषु गुणेषु स्रष्टृत्वादिरूपा अवस्था अश्नुषे इति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–जैसे एक रस रहनेवाला आकाशका जल देश देशमें पृथक्पृथक् स्वादको धारण करताहै इसीप्रकार एकरूप तुम गुणोंसे अनेकरूप धारण करतेहो ॥ १७ ॥

अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः ॥
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम् ॥ १८ ॥

अन्वयः । (त्वं) अमेयः (त्वम्) मितलोकः (त्वम्) अनर्थी (त्वं) प्रार्थनावहः (त्वम्) अजितः (त्वं) जिष्णुः (त्वम्) अत्यंतम् अव्यक्तः (त्वं) व्यक्तकारणम् (असि) ॥ १८ ॥

वाच्यप० । (त्वया) अमेयेन (त्वया) मितलोकेन (त्वया) अनर्थिना (त्वया) प्रार्थनावहेन (त्वया) जिष्णुना (त्वया) अजितेन (त्वया) अत्यंतम् अव्यक्तेन (त्वया) व्यक्तकारणेन भूयते) ॥ १८ ॥

हे परमेश्वर ! त्वं जनैरियत्तया न परिच्छेद्यः परिच्छिन्नलोकः स्पृहाशून्यः कामदाता अजेयः जयशीलोत्यन्तसूक्ष्मरूपः स्थूलरूपस्य कारणमसीति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०– (हे भगवन् !) तुम लोकके अतुलकी तुलना करनेवाले हो प्रयोजनके विना प्रयोजन देनेवाले अजित तुम जय करनेवाले हो अत्यन्त ही सूक्ष्म तुम स्थूलरूपके कारण हो ॥ १८ ॥

हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वा तपस्विनम् ॥
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः ॥ १९ ॥

अन्वयः । त्वां हृदयस्थम् अनासन्नम् अकामं तपस्विनं दयालुम् अनघस्पृष्टं पुराणम् अजरं विदुः ॥ १९ ॥

वाच्यप० । त्वं हृदयस्थः अनासन्नः अकामः तपस्वी दयालुः अनघस्पृष्टः पुराणः अजरः विद्यसे ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! त्वामन्तर्यामितया हृदयस्थं तथापि दुर्गमरूपत्वाद्विप्रकृष्टं च विदुः तथा कामरहितं प्रशस्ततपोयुक्तं विदुः । परदुःखनाशकरं तथापि परमानंदरूपत्वाददुःखिनं विदुः । अनादिमजरं विदुरिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—तुमको हृदयमें स्थित अत्यन्त दूर, इच्छा रहित, तपस्वी, दुःखरहित, दयालु, पापरहित, पुराणपुरुष, जरारहित जानते हैं ॥ १९ ॥

सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ॥
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ॥ २० ॥

अन्वयः । त्वं सर्वज्ञः त्वम् अविज्ञातः त्वं सर्वयोनिः त्वम् आत्मभूः त्वं सर्वप्रभुः त्वम् अनीशः त्वम् एकः सर्वरूपभाक् ॥ २० ॥

वाच्यप० । त्वया सर्वज्ञेन त्वया अविज्ञातेन त्वया सर्वयोनिना त्वयात्मभुवा त्वया सर्वप्रभुणा त्वयानीशेन (भूयते) एकेन त्वया सर्वरूपभाजा (भूयते) ॥ २० ॥

त्वं सर्वज्ञानः त्वां कोपि न जानाति, त्वं सर्वस्योत्पत्तिकारणं, त्वं स्वयंभूः त्वं सर्वस्य प्रभुः त्वमनीशः त्वमेक एव सर्वात्मना वर्तस इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०— तुम सर्वज्ञ हो तुम्हें कोई नहीं जानता तुम सबके उत्पन्न करनेवाले और आप स्वयं हुए हो तुम सबके स्वामी हो और तुम्हारा स्वामी कोई नहीं तुम एक ही सम्पूर्ण के स्वरूप हो ॥ २० ॥

सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम् ॥
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम् ॥ २१ ॥

अन्वयः । (हे भगवन् !) त्वां सप्तसामोपगीतं सप्तार्णवजलेशयं सप्तार्चिर्मुखं सप्तलोकैकसंश्रयम आचख्युः ॥ २१ ॥

वाच्यप० । (हे भगवन्) त्वं सप्तसामोपगीतः सप्तार्णवजलेशयः सप्तार्चिर्मुखः सप्तलोकैकसंश्रय आचख्यिषे ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! त्वां रथन्तरादिसप्तसामभिरुपगीयमानं सप्तसागरसलिलेशयमग्निमुखं भूर्भुवःस्वरादीनां सप्तलोकानामेकमाश्रयमाचख्युरिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—हे भगवन्! तुमको सात सामवेदके मंत्रोंसे गाया हुआ सात समुद्रोंके जलमें शयन करनेवाला, सातज्वाला अर्थात् अग्नि मुखवाला, सातलोकोंका एक आश्रय कहते हैं ॥ २१ ॥

चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्था चतुर्युगा ॥
चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ॥ २२ ॥

अन्वयः। चतुर्वर्गफलं ज्ञानं चतुर्युगा कालावस्था चतुर्वर्णमयो लोकः (एतत्) सर्वं चतुर्मुखात् त्वत्तः (जातम्) ॥ २२ ॥

वाच्यप०। चतुर्वर्गफलेन ज्ञानेन चतुर्युगया कालावस्थया चतुर्वर्णमयेन लोकेन (एतेन) सर्वेण चतुर्मुखात् त्वत्तः (जातम्) ॥ २२ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां फलानां ज्ञानं कृतत्रेताद्वापरकलियुगादीनां कालपरिमाणं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रमयो लोकः इत्येवंरूपं सर्वं चतुर्मुखरूपिणस्त्वत्तः प्रादुर्भूतमिति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०—अर्थ धर्म काम मोक्ष इस चतुर्वर्गका फल देनेवाला ज्ञान चारोंयुगोंके समयका परिमाण चारों वर्णमय लोक यह सब चतुर्मुख तुमसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम् ॥
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ॥ २३ ॥

अन्वयः। योगिनः अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयं ज्योतिर्मयं त्वां विमुक्तये विचिन्वंति ॥ २३ ॥

वाच्यप०। योगिभिः अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयः ज्योतिर्मयः त्वं विमुक्तये विचीयसे ॥ २३ ॥

अभ्यासेन विषयान्तरेभ्यो निगृहीतेन चेतसा हृत्कमलस्थं ज्योतिःस्वरूपं त्वां मोक्षायान्विष्यन्तीति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—योगीजन अभ्याससे वश किये मनसे हृदयमें स्थित ज्योतिस्वरूप तुमको मुक्तिके निमित्त खोजते हैं ॥ २३ ॥

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ॥
स्वपतो जागरूकस्य याथात्म्यं वेद कस्तव ॥ २४ ॥

अन्वयः। अजस्य (अपि) जन्म गृह्णतः निरीहस्य (अपि) हतद्विषः जागरूकस्य (अपि) स्वपतः तव याथात्म्यं कः वेद ॥ २४ ॥

वाच्यप०। × × × याथात्म्यं केन विद्यते ॥ २४ ॥

जन्मशून्यस्यापि मत्स्यादिरूपेण जायमानस्य निश्चेष्टस्याप्यरिघातिनः सर्वसाक्षितया नित्यप्रबुद्धस्य तव याथार्थ्यं को वेत्तीति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०-तुम जन्मरहित होकरभी जन्म लेनेवाले, उद्योग रहित होकरभी शत्रुओंके मारनेवाले, सोतेहुए भी जागनेवाले आपको यथार्थ कौन जान सकता है ॥ २४ ॥

शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः ॥
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्त्तितुम् ॥ २५ ॥

अन्वयः । शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं दुश्चरं तपः चरितुं प्रजाः पातुम् औदासीन्येन वर्त्तितुं (च) पर्याप्तोऽसि ॥ २५ ॥

वाच्यप० । × × × पर्याप्तेन (त्वया) भूयते ॥ २५ ॥

किं च अनादिसिद्धकृष्णादिरूपेण विषयान्भोक्तुं नरनारायणादिरूपेण दुस्सहं तपश्चरितुं तथाऽसुरमर्दनेन प्रजा रक्षितुं ताटस्थ्येन वर्तितुं च समर्थोसीति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०-शब्दादिविषयोंको भोगने और दुश्चर तपस्या करने तथा प्रजा पालन करने और उदासीनतासे रहनेको आप ही समर्थ हो ॥ २५ ॥

बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ॥
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥ २६ ॥

अन्वयः । आगमैर्बहुधा भिन्ना अपि सिद्धिहेतवः पंथानः (तथाभूताः) जाह्नवीया ओघा अर्णवे इव त्वयि निपतंति ॥ २६ ॥

वाच्यप० । आगमैः बहुधा भिन्नैरपि सिद्धिहेतुभिः पथिभिः (तथाभूतैः) जाह्नवीयैरोघैर्णवे इव त्वयि निपत्यते ॥ २६ ॥

त्रयीसांख्यादिभिश्शास्त्रैः बहुधा भिन्ना अपि पुरुषार्थसाधकाः उपायाः गंगाप्रवाहाः सागर इव त्वय्येव प्रविशन्ति, येन केनापि रूपेण त्वामेवोपयान्तीति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०-शास्त्रोंके पृथक् पृथक् कियेहुए भी सिद्धिकी प्राप्तिके मार्ग आपमें समाते हैं जैसे गंगाजीके प्रवाह सागरमें समाते हैं ॥ २६ ॥

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् ॥
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये ॥ २७ ॥

अन्वयः । त्वयि आवेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् वीतरागाणाम् अभूयः सन्निवृत्तये त्वं गतिः ॥ २७ ॥

वाच्यप० । +त्वया गत्या (भूयते) ॥ २७ ॥

त्वयि निवेशितमनसां तुभ्यं समर्पितकर्मणां विरक्तानां मोक्षाय त्वमेव साधनमसीति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०-तुममें ध्यान लगानेवाले तुममें सम्पूर्ण कर्म समर्पण करनेवाले रागादिरहित पुरुषोंको जन्म न होनेके निमित्त तुमही साधन हो ॥ २७ ॥

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव ॥
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ॥ २८ ॥

अन्वयः । प्रत्यक्षः अपि तव मह्यादिः महिमा अपरिच्छेद्यः आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ॥ २८ ॥

वाच्यप० । प्रत्यक्षेणापि तव मह्यादिना महिम्नाऽपरिच्छेद्येन (भूयते) आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति कया कथया (भूयते) ॥ २८ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणगम्यमपि तव पृथिव्याद्यैश्वर्यमियत्तया नावधार्यम् वेदवागनुमानाभ्यां गम्यं त्वां प्रति का कथेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा–प्रत्यक्ष प्रमाण कीभी तुम्हारी पृथिवी आदि महिमा अनन्त है, फिर वेद और अनुमानसे सिद्ध होनेवाले तुम्हारी तो क्या कथा है ॥ २८ ॥

केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः ॥
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि ॥ २९ ॥

अन्वयः । स्मरणेन केवलं पुरुषं पुनासि, यतः (यत्) अनेन एव त्वयि शेषा वृत्तयः निवेदितफलाः ॥ २९ ॥

वाच्यपरिवर्त्तनम् । स्मरणेन केवलः पुरुषः पूयते, यतः (यत्) अनेन त्वयि शेषाभिः वृत्तिभिः निवेदितफलाभिः (भूयते) ॥ २९ ॥

स्मरणेन केवलं स्मर्तारं पुरुषं पुनासि यदनेन स्मृतिकार्येणैव त्वद्विषये अवशिष्टा दर्शनस्पर्शनादयो व्यापाराः विज्ञापितकार्या इति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०–जब तुम स्मरणमात्रसे ही पुरुषको पवित्र करतेहो, इससे तुममें दूसरे दर्शन स्पर्शनादि व्यापारोंके फल जाने जाते हैं ॥ २९ ॥

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः ॥
स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥

अन्वयः । उदधेः रत्नानि इव विवस्वतः तेजांसि इव दूराणि ते चरितानि स्तुतिभ्यः व्यतिरिच्यंते ॥ ३० ॥

कर्मकर्तरि वाच्यपरिवर्त्तनं नास्ति ॥ ३० ॥

जलनिधेः रत्नानि इव रवेस्तेजांसीव अवाङ्मनसगोचराणि ते चरितानि निश्शेषं स्तोतुं न शक्यन्त इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०–सागरके रत्नोंकी नाईं, सूर्यके किरणोंके समान तुम्हारे अनन्त चरित्र स्तुतियासे बाहर हैं ॥ ३० ॥

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते ॥
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । अनवाप्तम् अवाप्तव्यं ते किंचन न विद्यते एकः लोकानुग्रह एव ते जन्मकर्मणोः हेतुः ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । अनवाप्तेनावाप्तव्येन न ते किंचन विद्यते एकेन लोकानुग्रहेणैव ते जन्मकर्मणो-हेतुना (भूयते) ॥ ३१ ॥

अप्राप्तमप्राप्तव्यं ते किंचिदपि न विद्यते किन्तु लोकानुग्रह एव ते जन्मकर्मणोः कारणमिति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०--प्राप्त होने योग्य तुमको कोई वस्तुभी अलभ्य नहीं है, एक लोकके ऊपर अनुग्रह ही आपके जन्म और कर्मका कारण है ॥ ३१ ॥

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ॥
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ ३२ ॥

अन्वयः । तव महिमानम् उत्कीर्त्य वचः संह्रियते यत्, तत् श्रमेण अशक्त्या वा गुणानामियत्तया न ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । तव महिमानमुत्कीर्त्य वचः संहरति यत्, तत् श्रमेणाशक्तया वा गुणानामियत्तया न (वचो न संहरति) ॥ ३२ ॥

तव कीर्तिमुत्कीर्त्य वचः संह्रियत इति यत् तद्वचः वाग्व्यापारश्रान्त्या कार्त्स्न्येन वक्तुमशक्यतया गुणानामियत्तया नेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०—तुम्हारी महिमा वर्णन करते जो सरस्वती विरामको प्राप्त होती है, यह श्रम अथवा असामर्थ्यसे होती है कुछ आपके गुणोंके पार पानेसे नहीं ॥ ३२ ॥

इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम् ॥
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः ॥ ३३ ॥

अन्वयः [illegible] हृतिः, न स्तुतिः ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । तैः सुरैः स अधोक्षजः इति प्रसादयामास हि (यस्मात्) परमेष्ठिनः तया भूतार्थ-व्याहृत्या, न स्तुत्या (भूयते) ॥ ३३ ॥

एवं ते देवाः तं परमेश्वरं विष्णुं प्रसन्नं चक्रुः यस्मात्सर्वोत्कृष्टस्य तस्य जगदीश्वरस्य देवैः कृता सत्यार्थोक्तिः स्तुतिर्नेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०—इस प्रकार वे देवता भगवान्को प्रसन्न करतेहुए, कारण कि यह परमात्माकी सत्य कथा थी न कि स्तुति ॥ ३३ ॥

तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये सुराः ॥
भयमप्रलयोद्वेलादाचख्युर्नैर्ऋतोदधेः ॥ ३४ ॥

अन्वयः । सुराः कुशलसंप्रश्नव्यंजितप्रीतये तस्मै अप्रलयोद्वेलात् नैर्ऋतोदधेः भयम् आचख्युः ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । सुरैः भयम् आचख्ये ॥ ३४ ॥

अमराः कुशलसंप्रश्नप्रकटीकृतानुरागाय तस्मै परमेश्वराय प्रलयाभावेप्युन्मर्यादान्निशाचरसागराद्भयं कथितवन्तः इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—कुशल पूछकर प्रसन्नता प्रगट करतेहुए भगवान्से देवताओंने प्रलयके बिना ही मर्यादा भंग करनेवाले राक्षसरूपी सागरका भय वर्णन किया ॥ ३४ ॥

अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना ॥
स्वरेणोवाच भगवान्परिभूतार्णवध्वनिः ॥ ३५ ॥

अन्वयः । अथ वेलासमासन्नशैलरंध्रानुनादिना स्वरेण परिभूतार्णवध्वनिः भगवानुवाच ॥३५॥

वाच्यप० । + + परिभूतार्णवध्वनिना भगवताऽचे ॥ ३५ ॥

तदा सागरतटे संनिकृष्टशैलगह्वरेषु प्रतिध्वनिमता स्वरेण तिरस्कृतसागरशब्दो भगवानुवाचेति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—तब समुद्रके किनारेवाले पर्वतोंमें प्रतिध्वनिसे उठाये हुए स्वरसे सागरकी ध्वनि तिरस्कार करतेहुए भगवान् बोले ॥ ३५ ॥

पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता ॥
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती ॥ ३६ ॥

अन्वयः । पुराणस्य कवेः तस्य वर्णस्थानसमीरिता (अत एव) कृतसंस्कारा भारती चरितार्था बभूवेव ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । ×++वर्णस्थानसमीरितयाऽत एव कृतसंस्कारया भारत्या चरितार्थया बभूवे एव ३६

पुरातनस्य कवेस्तस्य विष्णोरुरःकण्ठादिषु सम्यगुच्चारिता संपादितसंस्कारा भारती कृतार्था बभूवैवेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—उस सनातन पुरुषके कंठआदि स्थानोंसे भले प्रकार उच्चारण होकर शुद्धताको प्राप्त हुई सरस्वती कृतार्थ हुई ॥ ३६ ॥

बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता ॥
निर्यातशेषाचरणाद्गङ्गेवोर्द्ध्वप्रवर्तिनी ॥ ३७ ॥

अन्वयः । विभोः वदनोद्गता सदशनज्योत्स्ना सा (भारती) चरणात् निर्यातशेषा ऊर्द्ध्वप्रवर्तिनी गंगेव बभौ ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । विभोः वदनोद्गतया सदशनज्योत्स्नया तया (भारत्या) चरणान्निर्यातशेषयोर्द्ध्वप्रवर्तिन्या गंगयेव बभे ॥ ३७ ॥

सर्वज्ञस्य मुखान्निःसृता दन्तद्युतिसहिता सा भारती चरणान्निसृतावशिष्टोर्ध्ववाहिनी भागीरथीव बभाविति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-विष्णुके मुखसे निकली हुई दांतोंकी कांतिसे वह वाणी चरणसे निकली हुई ऊर्ध्ववाहिनी गंगाके समान शोभित हुई ॥ ३७ ॥

जाने वो रक्षसाऽऽक्रान्तादनुभावपराक्रमौ ।
अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ ॥ ३८ ॥

अन्वयः । हे देवाः ! वः अनुभावपराक्रमौ रक्षसा अंगिनामुभौ प्रथममध्यमौ गुणौ तमसा इवाक्रांतौ जाने ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । हे देवाः ! वः अनुभावपराक्रमौ रक्षः अंगिनामुभौ प्रथममध्यमौ गुणौ तमः इव आक्रांतवत् ज्ञायते ॥ ३८ ॥

हे देवाः ! युष्माकं महिमपुरुषकारौ रावणेन देहधारिणा प्रथममध्यमावुभौ सत्त्वरजसी गुणौ तमोगुणेनेवाक्रान्तौ जान इति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-हे देवताओ ! तुम्हारे प्रभाव और पराक्रम रक्षसोंसे दबेहुए जाने, जैसे देहधारियोंके पहले और बीचके (सत और रजोगुण) तमोगुणसे दबे हों ॥ ३८ ॥

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् ॥
अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा ॥ ३९ ॥

अन्वयः । किं च अकामोपनतेन एनसा साधोः हृदयमिव तेन तप्यमानं च भुवनत्रयं मे विदितम् ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । किं चाकामोपनतेनैनसा साधोः हृदयमिव तेन तप्यमानं भुवनत्रयम् अहम् विदितवान् ॥ ३९ ॥

प्रमादात्प्राप्तेन पापेन सज्जनस्यान्तःकरणमिव तेन दशाननेन संतप्यमानं लोकत्रयं मे विदितमिति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-और विना इच्छाके प्राप्तहुए पापसे साधुओंके हृदयके समान उस (राक्षस) से तपताहुआ त्रिलोक मैंने जाना ॥ ३९ ॥

कार्येषु चैककार्यत्वादभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा ॥
स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

अन्वयः । किं चैककार्यत्वाद्वज्रिणा कार्येषु अभ्यर्थ्यो नास्मि तथाहि वातः स्वयमेवाग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

वाच्यप० । किं चैककार्यत्वाद्वज्रिणा कार्येषु अभ्यर्थ्येन न भूयते (मया) तथाहि वातेन स्वयमेव अग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

किं चावयोरेककार्यकारणात्कर्तव्येषु विषयेषु पुरन्दरेण प्रार्थनीयो नास्मि तथाहि पवनः स्वयमेव वह्नेः साहाय्यं प्राप्नोति न तु प्रार्थनयेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०–और कार्यकी एकताके हेतुमें देवेन्द्रसे प्रार्थना करने योग्य नहीं हूं, कारण कि पवन स्वयं ही अग्निकी सहायताको जाता है ॥ ४० ॥

स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे ॥
स्थापितो दशमो मूर्द्धा लभ्यांश इव रक्षसा ॥ ४१ ॥

अन्वयः । तेन रक्षसा स्वासिधारापरिहृतः दशमः मूर्द्धा मे चक्रस्य कामं लभ्यांश इव स्थापितः ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । तत् रक्षः स्वासिधारापरिहृतं दशमं मूर्द्धानं मे चक्रस्य कामं लभ्यांशम् इव स्थापितवत् ॥ ४१ ॥

स्वखड्गधारयाऽच्छिन्नः दशमो मस्तकः मम चक्रस्य प्राप्तव्यभाग इव तेन दशाननेन स्थापित इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०–उस राक्षसने अपनी तलवारसे बचाया हुआ दशवां शिर मेरे चक्रके निमित्त उचित भागकी नाई धर रक्खा है ॥ ४१ ॥

(रावणने दश शिरोंमेंसे नौ तो तलवारसे काटकर शिवजीको चढा दिये थे एक रख छोडा था)

स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः ॥
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । किं तु स्रष्टुर्वरातिसर्गान्मया दुरात्मनः तस्य रिपोः अत्यारूढं भोगिनः (अत्यारूढं) चंदनेनेव सोढम् ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । किं तु स्रष्टुर्वरातिसर्गादहं दुरात्मनः तस्य रिपोरत्यारूढं भोगिनः (त्यारूढं) चंदन इव सोढवान् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मणो वरदानात्कारणान्मया तस्य दुरात्मनः रावणस्यात्यारोहणं भुजंगस्यात्यारूढं चन्दनेनेव सोढमिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–परन्तु ब्रह्माजीके वरदानसे मैंने उस दुरात्मा शत्रुका शिर चढना सर्पका चन्दनके समान सहा ॥ ४२ ॥

(जैसे कि चन्दनका वृक्ष सर्पके चढनेको सहन करता है)

धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः ॥
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः ॥ ४३ ॥

अन्वयः । स राक्षसः तपसा प्रीतं धातारं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः (सन्) दैवात् सर्गादवध्यत्वं ययाचे हि ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । तेन राक्षसेन तपसा प्रीतः धाता मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखेन (सता) दैवात्सर्गादवध्यत्वं ययाचे हि ॥ ४३ ॥

सः रावणः तपसा संतुष्टं परमेष्ठिनं मर्त्येषु विषय आदररहितः सन् अष्टविधदेवसृष्टेरवध्यत्वं प्रार्थयामासेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

(अष्टविधो देवसर्गो यथा—देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः । गंधर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ श्रीमद्भा० दश० १० अ०)

भा०-उस राक्षसने तपस्यासे प्रसन्न होनेवाले ब्रह्माजीसे मनुष्योंका अनादरकर देवताओंसे अवध्यपना मांगलिया है ॥ ४३ ॥

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम् ॥
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरःकमलोच्चयम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः । सः अहं दाशरथिर्भूत्वा तीक्ष्णैः शरैः तच्छिरःकमलोच्चयं रणभूमेः बलिक्षमं करिष्यामि ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । तेन मया दाशरथिना भूत्वा तीक्ष्णैः शरैः तच्छिरःकमलोच्चयः रणभूमेर्बलिक्षमः करिष्यते ॥ ४४ ॥

सोहं दशरथस्य पुत्रो भत्वा तीव्रैः शरैस्तच्छिरोत्पलराशिं युद्धभूमेः पूजायोग्यं करिष्यामीति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-सो दशरथका पुत्र होकर तीक्ष्णबाणोंसे उसके शिररूपी कमलोंका ढेर रणभूमिकी पूजाके योग्य करूंगा ॥ ४४ ॥

अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः ॥
मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । (हे देवाः ! यूयं) यज्वभिः विधिवत्कल्पितं भागं मायाविभिः निशाचरैः अनालीढम् अचिरात्पुनरादास्यध्वे ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । (हे देवाः !) युष्माभिः यज्वभिः विधिवत्कल्पितो भागो मायाविभिः निशाचरैः अनालीढः अचिरात्पुनरादास्यते ॥ ४५ ॥

हे देवाः ! याज्ञिकैः विधिवदुपहृतं हविर्भागं मायाविद्भिः निशाचरैरनास्वादितं शीघ्रमेव पुनर्ग्रहीष्यध्वे इति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—हे देवताओ ! यजमानोंसे विधिपूर्वक कल्पित कियेहुए, माया जाननेवाले राक्षसोंसे न चखे हुए भागको शीघ्र ही तुम फिर पाओगे ॥ ४५ ॥

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यजन्तु मरुतां पथि ॥
पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । मरुतां पथि वैमानिकाः पुण्यकृतः मेघावरणतत्पराः पुष्पकालोकसंक्षोभं त्यजंतु ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । मरुतां पथि वैमानिकैः पुण्यकृद्भिर्मेघावरणतत्परैः पुष्पकालोकसंक्षोभः त्यज्यताम् ॥ ४६ ॥

देवानां मार्गे विमानैश्चरन्तः तोयदावरणतत्पराः पुण्यशीला दशाननयानावलोकभयं त्यजन्त्विति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—देवताओंके मार्गमें पुण्य करनेवाले मेघोंमें छिपेहुए विमानोंमें फिरनेवाले देवता (रावणके) पुष्पकविमानके देखनेसे उत्पन्नहुए भयको त्याग कर दें ॥ ४६ ॥

मोक्ष्यध्वे स्वर्गबन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान् ॥
शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । (हे देवाः यूयं) शापयंत्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैरदूषितान् स्वर्गबंदीनां वेणीबंधान् मोक्ष्यध्वे ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । (हे देवाः ! युष्माभिः) शापयंत्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैरदूषिताः स्वर्गबंदीनां वेणीबंधा मोक्ष्यंते ॥ ४७ ॥

हे देवाः ! यूयं नलकूबरशापेन प्रतिबद्धै रावणबलात्कारकेशाकर्षैरनुपहतान् हृतस्वर्गाङ्गनानां वेणीबन्धान्मोक्ष्यध्व इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०—हे देवताओ ! शापके कारण रावणके बलपूर्वक कच ग्रहणसे बचेहुए बंदी की हुई देवांगनाओंके वेणीबंधनको तुम लोग खोलोगे ॥ ४७ ॥

(रावणको नलकूबरने शाप दिया था कि यदि तू किसी स्त्रीके बाल बलसे पकडेगा तो मर जायगा, इस कारण जो बंदी की हुई अप्सरा उसके यहां थीं उनके बाल बंधे थे.)

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः ॥
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघास्तिरोदधे ॥ ४८ ॥

अन्वयः । सः कृष्णमेघः रावणावग्रहक्लान्तं मरुत्सस्यम् इति वागमृतेनाभिवृष्य तिरोदधे ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । तेन कृष्णमेघेन रावणावग्रहक्लान्तं मरुत्सस्यम् इति वागमृतेनाभिवृष्य तिरो-दधे ॥ ४८ ॥

स नीलमेघो विष्णुः रावणवर्षप्रतिबन्धेन म्लानं देवसस्यमेवंरूपेण वचनामृतेनाभिषिच्यान्तर्दधे इति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—वह कृष्णमेघ रावणरूपी अनावृष्टिसे सूखतेहुए देवतारूप अन्नको इस प्रकार वाणीरूप अमृतसे सींचकर अन्तर्द्धान हुआ ॥ ४८ ॥

पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः ॥
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः ॥ ४९ ॥

अन्वयः । पुरुहूतप्रभृतयः सुराः सुरकार्योद्यतं विष्णुम् अंशैः द्रुमाः पुष्पैः वायुमिवानु-ययुः ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । पुरुहूतप्रभृतिभिः सुरैर्विष्णुरंशैः द्रुमैः पुष्पैर्वायुरिवानुयये ॥ ४९ ॥

इन्द्राद्याः देवाः दशाननवधरूपे कार्ये उद्यतं परमेश्वरं मात्राभिः वृक्षाः पुष्पैः पवनमिवानुययु-रिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०—इन्द्रादिक देवता देवताओंके कार्यमें उद्यत हुए विष्णुके पीछे गये, जैसे पवनके पीछे पुष्पोंसे वृक्ष जाता है ॥ ४९ ॥

अथ तस्य विशां पत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः ॥
पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्त्विजाम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । अथ तस्य विशां पत्युः काम्यस्य कर्मणः अन्ते अग्नेः पुरुषः ऋत्विजां विस्मयेन सह प्रबभूव ॥ ५० ॥

वाच्यप० । अथ तस्य विशां पत्युः काम्यस्य कर्मणोऽन्तेऽग्नेः पुरुषेणर्त्विजां विस्मयेन सह प्रब-भूवे ॥ ५० ॥

अथ तस्य दशरथनृपस्य पुत्रकामेष्टेरवसाने पावकात्कश्चिद्दिव्यपुरुषः ऋत्विजां विस्मयेन सह प्रादु-र्बभूवेति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—इसके उपरांत उस राजा दशरथके पुत्रेष्टियज्ञके अनन्तर अग्निमेंसे एक पुरुष ऋत्विजोंके आश्चर्यसहित प्रगट हुआ ॥ ५० ॥

हेमपात्रगतं दोर्भ्यामादधानः पयश्चरुम् ॥
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः । (पुरुषः कथंभूतः) आद्यस्य पुंसोनुप्रवेशात्तेनापि दुर्वहं हेमपात्रगतं पयश्चरुं दोर्भ्या-मादधानः ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । + आदधानेनेति विशेषः ॥ ५१ ॥

विष्णोरधिष्ठानात्तेन दिव्यपुरुषेणापि वोढुमशक्यं हेमपात्रप्राप्तं पायसान्नं भुजाभ्यां वहन्निति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०-(जो कि) आदिपुरुषके प्रवेशके कारण उससेभी कठिनतासे उठनेवाली सुवर्णके पात्रमें भरी हुई खीरको दोनो हाथोंसे उठाये था ॥ ५१ ॥

प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः ॥
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता ॥ ५२ ॥

अन्वयः । नृपः प्राजापत्योपनीतं तदन्नम् उदन्वताऽऽविष्कृतं पयसां सारं वृषेव प्रत्यग्रहीत् ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । नृपेण प्राजापत्योपनीतं तदन्नमुदन्वताऽऽविष्कृतं पयसां सारः (अमृतं) वृष्णा इव प्रत्यग्राहि ॥ ५२ ॥

महीपतिः दशरथः प्रजापतिसम्बधिना पुरुषेणोपनीतं पायसान्नं जलधिना प्रकाशितं पयसाममृतं वासव इव स्वीचकारेति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०-राजा दशरथ प्रजापतिसम्बन्धी पुरुषके दियेहुए उस अन्नको समुद्रसे निकलेहुए अमृतको इन्द्रके समान ग्रहण करता हुआ ॥ ५२ ॥

अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः ॥
प्रसूतिं चकमे तस्मिंस्त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत् ॥ ५३ ॥

अन्वयः । तस्य राज्ञोऽन्यदुर्लभाः गुणाः अनेन कथिता यत् त्रैलोक्यप्रभवोऽपि तस्मिन्प्रसूतिं चकमे ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । अस्य राज्ञोऽन्यदुर्लभान्गुणान् इदं कथितवान् यत् त्रैलोक्यप्रभवेणापि तस्मिन् प्रसूतिः चकमे ॥ ५३ ॥

तस्य नृपस्यासाधारणाः गुणा अनेन व्याख्याताः यस्माद्विष्णुरपि तस्मिन्नृपे उत्पत्तिं कामितवानिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०-उस राजाके दूसरेको न मिलने योग्य गुण इस कारण कहे गये कि उसमें त्रिलोकीके कर्ताने भी जन्म लेनेकी अभिलाषा की ॥ ५३ ॥

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम् ॥
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः । सः चरुसंज्ञितं वैष्णवं तेजः पत्न्योः अहर्पतिः द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रम् आतपमिव विभेजे ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । तेन चरुसंज्ञितं वैष्णवं तेजः पत्न्योरहर्पतिना द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रः आतप इव विभेजे ॥ ५४ ॥

स नृपः चरुसंज्ञितं वैष्णवं तेजः कौसल्याकैकेय्योः द्यावापृथिव्योरहः पतिः बालातपमिव विभेजे इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०-वह राजाने चरुनामक वैष्णवतेजको दो रानियोंमें जैसे सूर्यने प्रातःकालका आतप पृथ्वी और आकाशमें तिस प्रकार बांट दिया ॥ ५४ ॥

अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा ॥

अतः संभाविता ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ॥ ५५ ॥

अन्वय । तस्य कौसल्या अर्चिता केकयवंशजा प्रिया च अतः ईश्वरः सुमित्रां ताभ्यां संभाविताम् ऐच्छत् ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । तस्य कौसल्या अर्चिता केकयवंशजा प्रियाऽतः ईश्वरेण सुमित्रा ताभ्यां संभाविता ऐष्यत ॥ ५५ ॥

तस्य नृपस्य कौसल्या मान्या कैकेयी प्रियाऽऽसीत् अतः नृपः सुमित्रां कौसल्याकैकयीभ्यां भागदानेन मानितामिच्छति स्मेति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०-उस राजाकी कौशल्या वडी महारानी और केकयके वंशमें उत्पन्न हुई कैकयी प्रिया थी इस कारण महाराजने सुमित्राका उनदोनोंसे सत्कार करानेकी इच्छा की ॥ ५५ ॥

ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः ॥

चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे ॥ ५६ ॥

अन्वयः । बहुज्ञस्य पत्युः महीक्षितः चित्तज्ञे ते उभे चरोरर्द्धार्द्धभागाभ्यां तामयोजयताम् ५६ ॥

वाच्यप० । बहुज्ञस्य पत्युर्महीक्षितः चित्तज्ञाभ्यां ताभ्याम उभाभ्यां चरोरर्द्धार्द्धभागाभ्यां साऽयोज्यत ॥ ५६ ॥

उचितज्ञस्य महीपतेः दशरथस्याभिप्रायज्ञे ते उभे कौसल्याकैकय्यौ चरोरर्धार्धभागाभ्यां तां सुमित्रां युक्तां चक्रतुरिति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०-सवकुछ जाननेवाले अपने पति महाराजके चित्तको जाननेवाली उन दोनो रानियोंने अपनी २ खीरका चतुर्थांश उसको दिया ॥ ५६ ॥

सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि ॥

भ्रमरी वारणस्येव मदनिष्यन्दरेखयोः ॥ ५७ ॥

अन्वयः । सा हि उभयोरपि सपत्न्योर्भ्रमरी वारणस्य मदनिष्यंदरेखयोरिव प्रणयवत्यासीत् ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । तया हि उभयोरपि सपत्न्योर्भ्रमर्या वारणस्य मदनिष्यंदरेखयोरिव प्रणयवत्या अभूयत ॥ ५७ ॥

सा सुमित्रोभयोरपि सपत्न्योः भृङ्गाङ्गना गजस्य दाननिष्यन्दरेखयोरिवानुरागिणी बभूवेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–वह सुमित्रा उन दोनों सपत्नियोंमें हाथीके मदकी दोनो रेखाओंमें भौंरीके समान प्रीति करनेवाली थी ॥ ५७ ॥

ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसंभवः ॥
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः ॥ ५८ ॥

अन्वयः। ताभिः प्रजाभूत्यै देवांशसंभवः गर्भोऽमृताख्याभिः सौरीभिर्नाडीभिः अम्मयः (गर्भः) इव दध्रे ॥ ५८ ॥

वाच्यप०। ताः प्रजाभूत्यै देवांशसंभवं गर्भम् अमृताख्याः सौर्यः नाड्यः अम्मयं (गर्भम्) इव दध्रुः ॥ ५८ ॥

ताभिः कौसल्यादिभिः प्रजानां कल्याणाय विष्णोरंशसंभवः गर्भः सूर्यसम्बन्धिनीभिरमृताख्याभिः वृष्टिविसर्जनीभिर्दीधितिभिः जलमयो गर्भ इव धृतः इति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–उन रानियोंने प्रजाके उपकारके निमित्त विष्णुके अंशसे उत्पन्न होनेवाले गर्भको मानो सूर्यकी अमृतानाम किरणोंने जलके समान धारण किया ॥ ५८ ॥

सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः ॥
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव संपदः ॥ ५९ ॥

अन्वयः। समम् आपन्नसत्त्वा आपांडुरत्विषः ताः अंतर्गतफलारंभाः सस्यानां संपदः इव रेजुः ॥ ५९ ॥

वाच्यप०। समम् आपन्नसत्त्वाभिः आपांडुरत्विड्भिस्ताभिः अंतर्गतफलारंभाभिः सस्यानां संपद्भिः इव रेजे ॥ ५९ ॥

युगपद्गर्भिण्यः ईषत्पाण्डुरवर्णास्ता राजपत्न्योऽन्तर्गुप्तफलप्रादुर्भावाः सस्यसंपद इव बभुरिति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०–समान ही गर्भधारण करनेवाली पीलेपनको प्राप्त होकर वह भीतर फलके अंकुर धारण करनेवाली सस्यकी शाखाओंके समान शोभित हुईं ॥ ५९ ॥

गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः ॥
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः ॥ ६० ॥

अन्वयः। सर्वाः स्वप्नेषु जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलांछितमूर्तिभिर्वामनैर्गुप्तम् आत्मानं ददृशुः॥ ६०॥

वाच्यप०। सर्वाभिः (ताभिः) स्वप्नेषु जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलांछितमूर्तिभिर्वामनैर्गुप्तः आत्मा ददृशे ॥ ६० ।

सर्वास्ता राजपत्न्यः स्वप्नेषु शंखखड्गगदाधनुश्चक्रलाञ्छितमूर्तिभिः खर्वैः पुरुषै रक्षितस्वरूपं ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—वे सब रानी स्वप्नमें शङ्ख, खड्ग, गदा, धनुष और चक्रके चिह्नोंसे युक्त वामनपुरुषोंसे अपनेको रक्षित देखती हुई ॥ ६० ॥

हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता ॥
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा ॥ ६१ ॥

अन्वयः । (किं च) हेमपक्षप्रभाजालं वितन्वता वेगाकृष्टपयोमुचा सुपर्णेन (ताः) गगने उह्यते स्म ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । (किं च) हेमपक्षप्रभाजालं वितन्वन् वेगाकृष्टपयोमुक् सुपर्णः (ताः) गगने वहति स्म ॥ ६१ ॥

सुवर्णपक्षकान्तिपुञ्जं विस्तारयता वेगाकृष्टपयोदेन ताक्ष्र्येणाकाशे ताः ऊढाः इति सरलार्थः॥६१॥

भा०—और सुवर्णके पंखोंके प्रभाजाल विस्तारनेवाले, और शीघ्रतासे बादलोंको खेंचनेवाले गरुडपर चढकर आकाशमें जाते हुए ॥ ६१ ॥

बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम् ॥
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया ॥ ६२ ॥

अन्वयः । (किं च) स्तनांतरविलंबिनं कौस्तुभन्यासं बिभ्रत्या पद्मव्यजनहस्तया लक्ष्म्या पर्युपास्यंत ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । (किं च) स्तनांतरविलंबिनं कौस्तुभन्यासं बिभ्रती पद्मव्यजनहस्ता लक्ष्मीः (ताः) पर्युपास्त ॥ ६२ ॥

किं च वक्षस्थले लम्बमानं कौस्तुभन्यासं बिभ्रत्या कमलव्यजनहस्तया लक्ष्म्योपासिताः इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०—और भी छतीके बीचमें लम्बायमान कौस्तुभमणि धारण करनेवाली हाथमें कमलका पंखा लिये लक्ष्मीसे सेवित हैं ॥६२॥

कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः ॥
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे ॥ ६३ ॥

अन्वयः । (किं च) (ताः महिष्यः) दिव्यायां त्रिस्रोतसि कृताभिषेकैः परं ब्रह्म गृणद्भिः सप्तभिः ब्रह्मर्षिभिरुपतस्थिरे ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । (किं च) (ताः महिषीः) दिव्यायां त्रिस्रोतसि कृताभिषेकाः परं ब्रह्म गृणन्तः सप्त ब्रह्मर्षयः उपतस्थिरे ॥ ६३ ॥

किं चाकाशगंगायां कृतस्नानैर्वेदरहस्यं पठद्भिः कश्यपप्रभृतिभिः सप्तब्रह्मर्षिभिरुपासांचक्रिरे इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०–और आकाशगंगामें स्नान किये वेदघोष करतेहुए सप्त ऋषियोंसे सेवित हैं (ऐसा उन रानियोंने कहा) ॥ ६३ ॥

ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः ॥
मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः ॥ ६४ ॥

अन्वयः । पार्थिवः ताभ्यः तथाविधान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतः (सन्) जगद्गुरोः गुरुत्वेनात्मानं परार्ध्यं मेने हि ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । पार्थिवेन ताभ्यः तथाविधान्स्वप्नान् श्रुत्वा प्रीतेन (सता) जगद्गुरोर्गुरुत्वेनात्मा परार्ध्यः मेने ॥ ६४ ॥

नृपः दशरथस्ताभ्यः पत्नीभ्यः पूर्वकथितान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रसन्नः सन्नात्मानं जगद्गुरोर्विष्णोरपि पितृत्वेन कारणेन सर्वोत्कृष्टं मेने इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०–राजा दशरथने रानियोंसे इस प्रकारके स्वप्न सुनकर प्रसन्न हो जगत्पतिके पिता बननेसे अपनेको महाश्रेष्ठ माना ॥ ६४ ॥

विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा ॥
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ॥ ६५ ॥

अन्वयः । एकः विभुः तासां कुक्षिषु प्रसन्नानामपां (कुक्षिषु) प्रतिमाचंद्र इवानेकधा विभक्तात्मा (सन्) उवास ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । एकेन विभुना तासां कुक्षिषु प्रसन्नानामपां (कुक्षिषु) प्रतिमाचंद्रेणेवानेकधा विभक्तात्मना (सता) ऊषे ॥ ६५ ॥

एकरूपो विष्णुस्तासां राजमहिषीणां गर्भेषु पवित्राणां जलानां कुक्षिषु प्रतिबिम्बचन्द्र इवानेकधा विभक्तात्मा सन्नुवास इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०–एक ही विष्णुने उनकी कुक्षियोंमें निर्मलजलोंमें चंद्रमाके प्रतिबिंबके समान अपनेको अनेकरूप करके वास किया ॥ ६५ ॥

अथाग्र्यमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती ॥
पुत्रं तमोऽपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः ॥ ६६ ॥

अन्वयः । अथ राज्ञः सती अग्र्यमहिषी प्रसूतिसमये ओषधिः नक्तं तमोपहं ज्योतिरिव (तमोपहं) पुत्रं लेभे ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । अथ राज्ञः सत्याऽग्र्यमहिष्या प्रसूतिसमये ओषध्या नक्तं तमोपहं ज्योतिरिव तमोपहः पुत्रः लेभे ॥ ६६ ॥

अथ दशरथस्य पतिव्रता ज्येष्ठमहिषी कौसल्या प्रसूतिकाले औषधिः रात्रिसमये तमोपहं ज्योतिरिव पुत्रं प्राप इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०–इसके उपरान्त राजाकी बडी रानीने प्रसवके समय (दसवें महीनेमें) तमोगुणका नाशक पुत्र उत्पन्न किया, जैसे रात्रिमें औषधीने (अंधकारके दूर करनेवाली) ज्योति ॥ ६६ ॥

राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ॥

नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम् ॥ ६७ ॥

अन्वयः । अभिरामेण वपुषा चोदितो गुरुस्तस्य रामः इति जगत्प्रथममंगलं नामधेयं चक्रे ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । अभिरामेण वपुषा चोदितेन गुरुणा तस्य रामः इति जगत्प्रथममंगलं नामधेयं चक्रे ॥ ६७ ॥

मनोहरेण शरीरेण प्रेरितो वशिष्ठः दशरथस्य सुतस्य लोकानां प्रथममङ्गलं सुलक्षणं राम इति नामधेयं चक्र इति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०–मनोहर शरीरसे प्रेरित हो गुरुने तिसका राम ऐसा जगत्का प्रथममंगलरूप नामकरण किया ॥ ६७ ॥

रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ॥

रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ॥ ६८ ॥

अन्वयः । रघुवंशप्रदीपेना प्रतिमतेजसा तेन रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । रघुवंशप्रदीपेनाप्रतिमतेजसा तेन रक्षागृहगतैः दीपैः प्रत्यादिष्टैरिवाभूयत ॥ ६८ ॥

रघुकुलप्रकाशेनाप्रतिहततेजसा तेन रामेण सूतिकागृहगता दीपाः प्रतिरुद्धा इवाभवन्निति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०–महातेजस्वी उन रघुवंशके तेजसे सूतिकाघरके दीपक मन्दज्योति होगये ६८

शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ ॥

सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा ॥ ६९ ॥

अन्वयः । शातोदरी माता शय्यागतेन रामेण सैकताम्भोजबलिना शरत्कृशा जाह्नवीव बभौ ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । शातोदर्या मात्रा शय्यागतेन रामेण सैकतांभोजबलिना शरत्कृशया जाह्नव्या इव बभे ॥ ६९ ॥

गर्भत्यागात्कृशोदरी माता शय्यागतेन रामेण पुलिनाम्भोजोपहारेण शरदि कृशा गङ्गेव बभाविति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०–दुबलेपेटवाली कौशल्या सेजपर सोतेहुए रामसे शरत्कालमें किनारेकी कमल रचनासे दुर्बल गंगाजीके समान शोभित हुई ॥ ६९ ॥

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ॥
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम् ॥ ७० ॥

अन्वयः। कैकेय्याः भरतो नाम शीलवान् तनयः जज्ञे, यः प्रश्रयः श्रियमिव जनयित्रीम् अलंचक्रे ॥ ७० ॥

वाच्यप०। कैकेय्याः भरतेन नाम शीलवता तनयेन जज्ञे, येन प्रश्रयेण श्रीरिव जनयित्री अलंचक्रे ॥ ७० ॥

कैकेय्याः सकाशाद्भरतो नाम विनयसम्पन्नः पुत्रो जातः यो विनयः लक्ष्मीमिव मातरमलंचक्र इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०–केकई भरतनामक शीलवान् पुत्रको उत्पन्न करती भई जो किं लक्ष्मी (लज्जा) को प्रश्रय (नम्रता) के समान माताको शोभित करता भया ॥ ७० ॥

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ ॥
सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव ॥ ७१ ॥

अन्वयः। सुमित्रा लक्ष्मणशत्रुघ्नौ नाम यमौ सुतौ सम्यक् आराधिता विद्यां प्रबोधविनयाविव सुषुवे ॥ ७१ ॥

वाच्यप०। सुमित्रया लक्ष्मणशत्रुघ्नौ नाम यमौ सुतौ सम्यगाराधितया विद्यया प्रबोधविनयाविव सुषुवाते ॥ ७१ ॥

सुमित्रा लक्ष्मणशत्रुघ्नौ युग्मजातौ पुत्रौ स्वभ्यस्ता विद्या तत्त्वज्ञानेन्द्रियजयाविव सुषुव इति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०–सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो यमजकुमारोंको मानों सम्यक् अभ्यास की हुई विद्याने प्रबोध और विनयके समान उत्पन्न किया ॥ ७१ ॥

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत् ॥
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥ ७२ ॥

अन्वयः। सर्वं जगत् निर्दोषम् आविष्कृतगुणं चाभवत् स्वर्गो हि गां गतं पुरुषोत्तमम् अन्वगादिव ॥ ७२ ॥

वाच्यप०। सर्वेण जगता निर्दोषेणाविष्कृतगुणेन चाभूयत स्वर्गेण हि गां गतः पुरुषोत्तमः अन्वगायीव ॥ ७२ ॥

सर्वं जगद्दुर्भिक्षादिदोषरहितं प्रकटीकृतारोग्यादिगुणं चाभवत् मन्ये पृथिव्यामवतीर्णं पुरुषोत्तमं नारायणं स्वर्गोप्यन्वगादिवेति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-सम्पूर्ण जगत् सब दोषोंसे रहित और गुणोंसे प्रकाशित हुआ, मानो स्वर्ग पृथ्वीपर आयेहुये नारायणके पीछे आया ॥ ७२ ॥

तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः ॥
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव ॥ ७३ ॥

अन्वयः । चतुर्मूर्तेः तस्योदये पौलस्त्यचकितेश्वरा दिशः विरजस्कैर्नभस्वद्भिः (छलेन) उच्छ्वसिता इव ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । चतुर्मूर्तेः तस्य उदये पौलस्त्यचकितेश्वराभिः दिग्भिः विरजस्कैः नभस्वद्भिः (छलेन) + उच्छ्वसितम इव ॥ ७३ ॥

रामादिरूपेण चतूरूपस्य हरेरुदये सति रावणाद्भीतेश्वराः दिशः विगतरजोभिः पवनैरुच्छ्वसिता इवेति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-उन चतुर्मूर्तिके उदयमें पुलस्त्यके बेटे (रावण) से डरे हुए स्वामियोंकी दिशाने धूलि रहित पवनके बहानेसे मानों स्वांस लिया ॥ ७३ ॥

कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः ॥
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव ॥ ७४ ॥

अन्वयः । रक्षोविप्रकृतौ अपधूमत्वात्कृशानुः प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः (च) (इत्युभौ) अपविद्धशुचौ इवास्ताम् ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । रक्षोविप्रकृताभ्याम् अपधूमत्वात्कृशानुना प्रसन्नत्वात्प्रभाकरेण (च) (इत्युभाभ्याम्) अपविद्धशुग्भ्याम् इवाभूयत ॥ ७४ ॥

दशाननेनापकृतावग्निसूर्यौ यथाक्रममपमधूमत्वाच्च प्रसन्नत्वाच्च निरस्तदुःखाविवाभवतामिति सरलार्थः ॥ ॥ ७४ ॥

भा०-राक्षससे पीडित कियेहुए निर्धूमता पाकर अग्नि और निर्मलता पाकर सूर्य यह दोनो शोच त्यागकरनेवालेसे हुए ॥ ७४ ॥

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः ॥
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ॥ ७५ ॥

अन्वयः । तत्क्षणं राक्षसश्रियः अश्रुबिंदवः दशाननकिरीटेभ्यो मणिव्याजेन पृथिव्यां पर्यस्ताः ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । तत्क्षणं राक्षसश्रियः अश्रुबिंदुभिः दशाननकिरीटेभ्यः मणिव्याजेन पृथिव्यां पर्यस्तम् ॥ ७५ ॥

रामजन्मसमये राक्षसलक्ष्म्याः बाष्पविन्दवः निशिचरेशमुकुटेभ्यो मणीनां मिषेण पृथिव्यां पतिताः रामजन्मनि रावणस्य किरीटमणिभ्रंशलक्षणं दुर्निमित्तमभूदिति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०—उस समय राक्षसकी लक्ष्मीके आसूंकी बूंदे रावणके मुकुटोंसे मणियोंके बहानेसे पृथ्वीपर गिरीं ॥ ७५ ॥

पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः ॥
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि ॥ ७६ ॥

अन्वयः । पुत्रिणस्तस्य पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणाम् आरंभम् प्रथमं दिवि देवदुंदुभयः चक्रुः ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । पुत्रिणस्तस्य पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणाम् आरंभः प्रथमं दिवि देवदुंदुभिभिः चक्रे ॥ ॥ ७६ ॥

जातपुत्रस्य तस्य दशरथस्य सुतजन्मनि प्रवेशयितव्यानां वाद्यानामारम्भमुपक्रमं प्रथमं दिवि देवदुन्दुभयश्चक्रुरिति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०—उस पुत्रवान् राजाके पुत्रजन्ममें बजने योग्य ढोल तुरही वाजोंका आरम्भ प्रथम आकाशमें देवताओंकी दुंदुभियोंने किया ॥ ७६ ॥

संतानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी ॥
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाभवत् ॥ ७७ ॥

अन्वयः । अस्य भवने संतानकमयी वृष्टिश्च पेतुषी, सैव सन्मंगलोपचाराणाम्, आदिरचनाऽभवत् ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । अस्य भवने संतानकमय्या वृष्ट्या च पेतुष्या (अभूयत) तयैव सन्मंगलोपचाराणाम् आदिरचनयाऽभूयत ॥ ७७ ॥

अस्य दशरथस्य गृहे सुरद्रुमपुष्पाणां वृष्टिः पपात, सा पुष्पवृष्टिरेव सतां सुतजन्मन्यावश्यकानां मङ्गलोपचाराणां प्रथमक्रियाऽभवदिति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—इस राजाके भवनमें जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा हुई वही सुन्दर मंगलके उपचारोंकी प्रथम रचना हुई ॥ ७७ ॥

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः ॥
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः ॥ ७८ ॥

अन्वयः । कृतसंस्काराः धात्रीस्तन्यपायिनः ते कुमाराः अग्रजेनेव पितुरानंदेन समं ववृधिरे ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । कृतसंस्कारैर्धात्रीस्तन्यपायिभिस्तैः कुमारैरग्रजेनेव पितुरानंदेन समं ववृधे ॥ ७८ ॥

कृतजातकर्मादयः उपमातॄणां स्तन्यपायिनः ते कुमाराः ज्येष्ठेनेव स्थितेन दशरथस्यानन्देन समं ववृधिर इति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—संस्कारको प्राप्तहुए धायका स्तनपान करनेवाले वे कुमार बड़े भाई सहित पिताके आनन्दके साथ ही वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥ ७८ ॥

स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा ॥
मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः । तेषां स्वाभाविकं विनीतत्वं विनयकर्मणा हविर्भुजां सहजं तेजः हविषेव मुमूर्च्छ ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । तेषां स्वाभाविकेन विनीतत्वेन विनयकर्मणा हविर्भुजां सहजेन तेजसा हविषेव मुमूर्च्छे ॥ ७९ ॥

तेषां कुमाराणां सहजं विनयशिक्षया हविर्भुजां वह्नीनां स्वाभाविकं तेजः आज्यादिकेनेव ववृध इति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—उन कुमारोंका स्वाभाविक ही विनीतपन शिक्षा पाकर, हवि पाकर अग्निके स्वाभाविक तेजके समान वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ७९ ॥

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम् ॥
अलमुद्द्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्तवः ॥ ८० ॥

अन्वयः । परस्पराविरुद्धाः ते तदनघं रघोः कुलम् ऋतवः देवारण्यम् इव अलम् उद्योतयामासुः ॥ ८० ॥

वाच्यप० । परस्पराविरुद्धैः तैरनघं रघोः कुलम् ऋतुभिः देवारण्यम् इवालम् उद्योतयामासे ॥ ८० ॥

सौभ्रात्रगुणवन्तस्ते कुमारास्तत्पापरहितं रघोः कुलम् ऋतवः वसन्तादयः नन्दनमिवात्यंतं प्रकाशयामासुरिति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—परस्पर विरोध रहित उन्होंने वह पापरहित रघुका कुल ऋतुओंने नन्दन वनके समान अधिक प्रकाशित किया ॥ ८० ॥

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ ॥
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः ॥ ८१ ॥

अन्वयः । सौभ्रात्रे समानेपि हि यथोभौ रामलक्ष्मणौ प्रीत्या द्वंद्वं बभूवतुः, तथा भरतशत्रुघ्नौ (प्रीत्या द्वंद्वं, द्वौ द्वौ साहचर्येणाभिव्यक्तौ) बभूवतुः ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । सौभ्रात्रे समानेपि हि यथोभाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां प्रीत्या द्वंद्वेन बभूवे, तथा भरतशत्रुघ्नाभ्यां (प्रीत्या द्वंद्वेन, अभिव्यक्ताभ्यां) बभूवे ॥ ८१ ॥

तुल्येपि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ प्रेम्णा द्वंद्वं बभूवतुः तथा भरतशत्रुघ्नावपि प्रीत्या द्वौ द्वौ साहचर्येणाभिव्यक्तौ बभूवतुरिति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०-अच्छे भाईपनकी समानतामेंभी जैसे राम और लक्ष्मण दोनो थे इसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न यह भी प्रीतिसे (दोदो) जोड़े हुए ॥ ८१ ॥

तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन ॥
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः ॥ ८२ ॥

अन्वयः । तेषां (मध्ये) द्वयोर्द्वयोः वायुविभावस्वोः यथा चंद्रसमुद्रयोः यथा ऐक्यं कदाचन न बिभिदे ॥ ८२ ॥

अस्य वाच्यपरिवर्त्तनं नास्ति ॥ ८२ ॥

तेषां चतुर्णां मध्ये रामलक्ष्मणयोर्भरतशत्रुघ्नयोश्च पवनाग्न्योरिव शशिसागरयोरिव चैकमत्यं कदाचन न विभिद इति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०-तिनकी जोडीकी प्रीतिमें अग्नि और पवन समुद्र और चन्द्रमाकी (प्रीति-की) समान कभी अन्तर न पडा ॥ ८२ ॥

ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च ॥
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव ॥ ८३ ॥

अन्वयः । प्रजानाथास्ते तेजसा प्रश्रयेण च निदाघान्ते श्यामाभ्राः दिवसाः इव प्रजानां मनो जह्रुः ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । प्रजानाथैस्तैः तेजसा प्रश्रयेण च निदाघांते श्यामाभ्रैर्दिवसैरिव प्रजानां मनो जह्रे ॥ ८३ ॥

प्रजापतयस्ते कुमाराः प्रतापेन विनयेन च ग्रीष्मावसाने कृष्णमेघा दिवसा इव प्रकृतीनां मनो जह्रुरिति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०-प्रजाके स्वामी वे कुमार तेज और नम्रतासे गरमीके अन्तमें श्याम मेघोंवाले दिनोंके समान प्रजाके मनको हरते हुए ॥ ८३ ॥

स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक् ॥ ८४ ॥

अन्वयः । चतुर्धा व्यस्तः सः पृथिवीपतेः प्रसवः (चतुर्धा) अंगभाक् धर्मार्थकाममोक्षाणाम् अवतारः इव बभौ ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । चतुर्धा व्यस्तेन तेन पृथिवीपतेः प्रसवेन (चतुर्धांगभाजा) धर्मार्थकाममोक्षणाम् अवतारेणेव बभे ॥ ८४ ॥

स चतुर्धा विभक्तः सन्तानः चतुर्धा मूर्तिमान् धर्मार्थकाममोक्षगामवतार इव बभाविति संरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०—चार प्रकारसे विभागको प्राप्त हुई वह राजाकी सन्तान धर्म अर्थ काम मोक्षके अवतारके समान शोभित हुई ॥ ८४ ॥

गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः ॥
तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः ॥ ८५ ॥

अन्वयः । गुरुवत्सलाः तं गुणैः गुरुं चतुरंतेशं तमेव महार्णवाः रत्नैरिव आराधयामासुः॥८५॥

वाच्यप० । गुरुवत्सलैः तैः गुणैः गुरुः चतुरंतेशः स एव महार्णवैः रत्नैरिवाराधयामासे॥८५॥

पितृभक्तास्ते कुमाराः प्रश्रयादिभिर्गुणैर्दशरथं चतुर्णां दिगन्तानामधिपतिं तमेव महार्णवाश्चत्वारो रत्नैरिवानन्दयामासुरिति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०—पिताके प्यारे वे कुमार गुणोंसे पिताको प्रसन्न करते हुए, जैसे महासागरोंने उस धरापतिको रत्नोंसे (प्रसन्न किया था) ॥ ८५ ॥

सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारै-
र्नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः ।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः
पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः ॥ ८६ ॥

अन्वयः । भग्नदैत्यासिधारैः चतुर्भिर्दंतैः सुरगज इव पणबंधव्यक्तयोगैः चतुर्भिरुपायैः नय इव युगदीर्घैः चतुर्भिर्दोर्भिः हरिरिव तदीयैश्चतुर्भिरंशैः तैः अवनिपतीनां पतिः चकाशे ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । × × सुरगजेनेव × × नयेनेव × × हरिणेव × × पत्या चकाशे ॥ ८६ ॥

भग्नासुरखड्गधारैः चतुर्भिः दन्तैःसुरगज इव फलसिद्ध्यानुमितप्रयोगैश्चतुर्भिः सामादिभिरुपायैर्नीतिरिव,युगवद्दीर्घैश्चतुर्भिर्भुजैर्विष्णुरिव,तदीयैर्विष्णुसम्बन्धिभिरंशभूतैश्चतुर्भिस्तैः पुत्रै राजाधिराजो दशरथः विदिद्युत इति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—जैसे दैत्योंके तलवारकी धार भग्न करनेवाले चारोंदांतोंसे ऐरावत और जैसे फलसिद्धिके चारों उपायोंसे नीति, जैसे युग (जुआ) के समान चार बाहुओंसे विष्णु इस प्रकार (भगवान्) के उन चारों अंशोंसे पृथ्वीपतियोंका पति (दशरथ) दीप्तिमान् हुआ ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते दशमः सर्गः ॥१०॥

एकादशः सर्गः ।

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ॥
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ १ ॥

अन्वयः । कौशिकेनेत्य सः क्षितीश्वरोऽध्वरविघातशांतये काकपक्षधरं रामं याचितः किल तेजसां वयः न समीक्ष्यते हि ॥ १ ॥

वाच्यप० । कौशिक एत्य तं क्षितीश्वरम् अध्वरविघातशांतये काकपक्षधरं रामं याचितवान् किल तेजसां वयो न समीक्षंते हि (लोकाः) ॥ १ ॥

विश्वामित्रेणागत्य स दशरथः यज्ञविघ्नध्वंसाय बालकोचितशिखाधरं रामं प्रार्थितः खलु तेजस्विनां बाल्यादि न समीक्ष्यते हीति सरलार्थः । रथोद्धतावृत्तम् ॥ १ ॥

भा०—प्रसिद्ध है कि विश्वामित्रने आकर उस राजासे यज्ञके विघ्न दूरकरनेके निमित्त काकपक्ष (पट्टे) वाले रामको मांगा, क्योंकि तेजस्वियोंकी अवस्था नहीं देखी जाती है ॥ १ ॥

कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ॥
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥२॥

अन्वयः । लब्धवर्णभाक् कृच्छ्रलब्धमपि सलक्ष्मणं तं मुनये दिदेश, (तथाहि) असुप्रणयिनामपि अर्थिता रघोः कुले न कदाचित् व्यहन्यत (रघुकुलजैः) ॥ २ ॥

वाच्यप० । लब्धवर्णभाजा (तेन) कृच्छ्रलब्धोपि सलक्ष्मणः सः (रामः) मुनये दिदिशे (तथाहि) असुप्रणयिनामपि अर्थितां रघोः कुले न कदाचिद्व्यघ्नन (रघुकुलजाः) ॥ २ ॥

विद्वत्सेवी स राजा कृच्छ्रलब्धमपि सलक्ष्मणं तं रामं विश्वामित्रायातिसृष्टवान्, तथाहि प्राणार्थिनामपि याच्ञा रघोः कुले कदाचिदपि न विफलक्रियतेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—विद्वानोंके सत्कार करनेवाले राजाने बडे कष्टसे पायेहुएभी रामको लक्ष्मण सहित मुनिको दिया, कारण कि रघुकुलमें प्राण मांगने वालोंकीभी याचना कभी वृथा नहीं होती है ॥ २ ॥

यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम् ॥
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः ॥ ३ ॥

अन्वयः । पार्थिवः तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियां यावदादिशति तावन्मरुत्सखैः सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः साऽऽशु विदधे ॥ ३ ॥

वाच्यप० । पार्थिवेन + + पुरमार्गसंक्रिया यावदादिश्यते तावन्मरुत्सखाः सपुष्पजलवर्षिणः घनाः तां विदधुः ॥ ३ ॥

महीपतिस्तयो रामलक्ष्मणयोर्निष्क्रमणाय यावदाज्ञापयति, तावत्पवनसखैः सकुसुमजलवर्षिभिर्मेघैः सा मार्गसंस्क्रिया शीघ्रमेव विदधे इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—राजा जबतक उनकी विदाके निमित्त नगरके मार्गके सजानेकी आज्ञा देतेहैं तबतक पवनके सखा फूल सहित जल बरसानेवाले बादलोंने वह (आज्ञा) तुरन्त करदी ॥ ३ ॥

तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः ॥
भूपतेरपि तयोः प्रवत्स्यतोर्नम्रयोरुपरि बाष्पबिन्दवः ॥ ४ ॥

अन्वयः । निदेशकरणोद्यतौ धन्विनौ तौ पितुः चरणयोः निपेततुः, भूपतेरपि बाष्पबिन्दवः प्रवत्स्यतोः नम्रयोः तयोरुपरि (निपेतुः इति शेषः) ॥ ४ ॥

वाच्यप० । निदेशकरणोद्यताभ्यां धन्विभ्यां ताभ्यां पितुः चरणयोः निपेते, भूपतेरपि बाष्पबिंदुभिः प्रवत्स्यतोः नम्रयोः तयोः उपरि (निपेते) ॥ ४ ॥

पित्राज्ञाकरणोद्युक्तौ धनुर्धारिणौ तौ रामलक्ष्मणौ दशरथस्य चरणयोः प्रणतौ, भूपतेरपि प्रेमाश्रुबिन्दवः प्रवासं करिष्यतोः प्रणतयोस्तयोरुपरि पतिता इति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—आज्ञा माननेमें तत्पर धनुषधारी वे दोनो पिताके चरणोंमें गिरते हुए, राजाकीभी आंसूकी बूंदे जाते हुए विनीत उन दोनोंके ऊपर गिरीं ॥ ४ ॥

तौ पितुर्नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखण्डकावुभौ ॥
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ ॥ ५ ॥

अन्वयः । पितुः नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखंडकौ धन्विनौ तावुभौ पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ (संतौ) तमृषिमन्वगच्छताम् ॥ ५ ॥

वाच्यप० । पितुः नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखंडकाभ्यां धन्विभ्यां ताभ्याम् उभाभ्यां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणाभ्यां (सद्भ्यां) स ऋषिरन्वगम्यत ॥ ५ ॥

पितुर्नेत्रजलेनेषत्सिक्तचूडौ धन्विनौ तावुभौ पौरदृष्टिभिः सर्वशो निरीक्ष्यमाणौ तं विश्वामित्रमन्वगच्छतामिति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—पिताके नेत्रोंके जलसे कुछेक भीजेहुए शिखाओंवाले वे दोनो धनुषधारी पुरवासियोंकी दृष्टिको मार्गमें तोरण बनाते हुए उन ऋषिके पीछे गये ॥ ५ ॥

लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदृषिरित्यसौ नृपः ॥
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं सा हि रक्षणविधौ तयोः क्षमा ॥६॥

अन्वयः । ऋषिः लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुम् ऐच्छत् इति (हेतोः) असौ नृपः आशिषं प्रयुयुजे, न वाहिनीं (प्रयुयुजे) हि सा तयोः रक्षणविधौ क्षमा ॥ ६ ॥

वाच्यप० । ऋषिणा लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुम् ऐष्यत इति (हेतोः) अमुना नृपेणाशीः प्रयुयुजे न वाहिनी (प्रयुयुजे) हि तया तयोः रक्षणविधौ क्षमया (भूयते) ॥ ६ ॥

मुनिर्लक्ष्मणानुचरमेव रामं नेतुमैच्छदिति हेतोरसौ दशरथः आशिषं प्रयुक्तवान्, सेनां न प्रेषितवान् यस्मात् साशीरेव तयोः कुमारयो रक्षणविधौ समर्थेति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—ऋषिने लक्ष्मण सहित ही रामचन्द्रके ले जानेकी इच्छा की, इस कारण राजाने केवल आशीर्वाद दिया और सेना नहीं, कारण कि वही (आशिष्) उनकी रक्षा करनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः ॥
रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव ॥ ७ ॥

अन्वयः । मातृवर्गचरणस्पृशौ तौ महौजसौ मुनेः पदवीं प्रपद्य (महौजसः) भास्करस्य गतिवशात्प्रवर्तिनौ मधुमाधवौ इव रेजतुः ॥ ७ ॥

वाच्यप० । मातृवर्गचरणस्पृग्भ्यां ताभ्यां महौजसः मुनेः पदवीं प्रपद्य (महौजसः) भास्करस्य गतिवशात्प्रवर्तिभ्यां मधुमाधवाभ्याम् इव रेजे ॥ ७ ॥

कृतमातृवर्गप्रणामौ तौ तेजसां निधेर्मुनेः पदवीं प्रपद्य महौजसः सूर्यस्य मेषादिराशिसंक्रान्त्यनुसारात्प्रवर्तिनौ चैत्रवैशाखाविव रेजतुरिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—माताओंके चरणोंमें नमस्कार कियेहुए वे दोनो महापराक्रमी मुनिके मार्गको प्राप्त होकर तेजस्वी सूर्यके (मार्ग में) गतिके कारण फिरते हुए चैतवैशाखकी नाईं शोभित हुए ॥ ७ ॥

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं शैशवाच्चपलमप्यशोभत ॥
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोर्नामधेयसदृशं विचेष्टितम् ॥ ८ ॥

अन्वयः । वीचिलोलभुजयोः तयोः चपलमपि गतं तोयदागमे उद्ध्यभिद्ययोः नामधेयसदृशं विचेष्टितमिव शैशवात् अशोभत ॥ ८ ॥

वाच्यप० । वीचिलोलभुजयोः तयोः चपलेनापि गतेन तोयदागमे उद्ध्यभिद्ययोः नामधेयसदृशेन विचेष्टितेनेव शैशवादशुभ्यत ॥ ८ ॥

तरंगवच्चञ्चलभुजयोस्तयोश्चञ्चलमपि गमनं शैशवाद्धेतोरशोभत, वर्षाकाल उद्ध्यभिद्ययोर्नामानुरूपोदकोज्झनकूलभेदनरूपव्यापार इवेति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०—उन तरंगके समान चंचल बांहवालोंकी चंचल गतिभी बालअवस्थाके कारण वर्षाऋतुमें सदृश गुणवाली उद्ध्य और भिद्य नदियोंकी गतिके समान शोभायमान थी ॥ ८ ॥

(उनका नाम यों हुआ कि वर्षामें उसका जल ऊंचा उठता है इससे उद्धय और तटोंको तोडता है इससे भिद्य नाम हुआ.)

तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः ॥
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्त्तिनाविव ॥ ९ ॥

अन्वयः । मणिकुट्टिमोचितौ तौ मुनिप्रदिष्टयोः बलातिबलयोः विद्ययोः प्रभावतः मातृपार्श्वपरिवर्त्तिनौ इव पथि न मम्लतुः ॥ ९ ॥

वाच्यप० । मणिकुट्टिमोचिताभ्यां ताभ्यां मुनिप्रदिष्टयोः बलातिबलयोः विद्ययोः प्रभावतः मातृपार्श्वपरिवर्त्तिभ्याम् इव पथि न मम्ले ॥ ९ ॥

मणिबद्धभूमिसंचारयोग्यौ तौ विश्वामित्रेणोपदिष्टयोर्बलातिबलाख्ययोर्मन्त्रयोः प्रभावतः मातृसमीपवर्तिनाविव मार्गे न मम्लतुरिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-रत्नजटित मणिकी भूमियोंमें चलने योग्य वे दोनों मुनिकी पढाई हुई बला और अतिबला विद्याके प्रभावसे माताकी गोदमें बैठेहुएके समान मार्गमें थकित नहीं हुए ॥ ९ ॥

पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः ॥
उह्यमान इव वाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत् ॥ १० ॥

अन्वयः । वाहनोचितः सानुजो राघवः पुराविदः पितृसखस्य (मुनेः) पूर्ववृत्तकथितैः उह्यमान इव पादचारमपि न व्यभावयत् ॥ १० ॥

वाच्यप० । वाहनोचितेन सानुजेन राघवेण पुराविदः पितृसखस्य (मुनेः) पूर्ववृत्तकथितैः उह्यमानेनेव पादचारः अपि न व्यभाव्यत ॥ १० ॥

वाहनयोग्यः सानुजो रामः पूर्वचरिताभिज्ञस्य दशरथसखस्य मुनेः पुरावृत्तकथाभिर्वाहनेन प्राप्यमाण इव पादचारमपि न ज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-वाहनपर चढने योग्य भाई सहित रामचन्द्र पुरानी कथा जाननेवाले पिताके प्रिय मुनिके कहेहुए प्राचीन कथारूपी वाहनपर चढे हुए पैरोंके उठानेकोभी न जान्ते हुए ॥ १० ॥

तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्रिणः ॥
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे ॥ ११ ॥

अन्वयः । सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः पतत्रिणः श्रुतिसुखैः कूजितैर्वायवः सुरभिपुष्परेणुभिः जलदाः छायया च तौ सिषेविरे ॥ ११ ॥

वाच्यप० । सरोभिः रसवद्भिरंबुभिः पतत्रिभिः श्रुतिसुखैः कूजितैः, वायुभिः सुरभिपुष्परेणुभिर्जलदैः छायया च तौ सिषेवाते ॥ ११ ॥

तौ रामलक्ष्मणौ, सरांसि मधुरैः जलैः सिषेविरे, पक्षिणः कर्णसुखैः कूजितैः, वायवः सुरभिकुसुमरजोभिः, मेघाः छायया च सिषेविर इति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—सरोवरोंने मीठे जलसे, पक्षीयोंने कानोंको सुखदायक मनोहर शब्दोंसे, वायुने सुगन्धिवाले फूलोंकी रजसे और मेघोंने छायासे उन दोनोंका सेवन किया॥ ११॥

नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम् ॥
दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः ॥ १२ ॥

अन्वयः । तपस्विनः लघुना तयोरुभयोर्दर्शनेन यथा प्रीतिमापुः तथा कमलशोभिनामंभसां न, परिश्रमच्छिदां शाखिनां (च दर्शनेन नापुः) ॥ १२ ॥

वाच्यप० । तपस्विभिः लघुना तयोरुभयोर्दर्शनेन यथा प्रीतिः आपे, तथा कमलशोभिनामंभसां परिश्रमाच्छिदां शाखिनां (दर्शनेन नापे) ॥ १२ ॥

तपस्विनः तयोरुभयोर्दर्शनेन यथा प्रसन्नतामापुः, तथोत्पलशोभिनामभसां खेदहारिणां वृक्षाणां दर्शनेन च नापुरिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—तपस्वियोंने जैसा आनन्द उन दोनोंके दर्शनोंसे पाया, वैसा न तो कमलोंकी शोभावाले सरोवर और न परिश्रम मिटानेवाले वृक्षोंके दर्शनसे पाया ॥ १२ ॥

स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः ॥
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा ॥ १३ ॥

अन्वयः । सः आत्तकार्मुकः दाशरथिः स्थाणुदग्धवपुषः मदनस्य तपोवनं प्राप्य चारुणा विग्रहेण प्रतिनिधिरभवत्कर्मणा न ॥ १३ ॥

वाच्यप० । तेनात्तकार्मुकेण दाशरथिना स्थाणुदग्धवपुषः मदनस्य तपोवनं प्राप्य चारुणा विग्रहेण प्रतिनिधिनाऽभूयत कर्मणा न ॥ १३ ॥

गृहीतशरासनः स रामः हरेण दग्धशरीरस्य कामस्य तपोवनं प्राप्य मनोहरेण शरीरेण तुल्योऽभवत्कर्मणा नेति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—वह धनुष चढाये राजकुमार महादेवके जलाये हुए कामदेवके तपोवनमें प्राप्त होकर अपने सुन्दर शरीरसे कामदेवकी मूर्तिको प्राप्त हुए न कि कर्मसे ॥ १३ ॥

(अंगदेशमें गंगा सरयूके संगममें कामदेवका आश्रम था, जब उसने तपकरते शिवजीका तप डिगाया, तब शिवजीने कामको भस्म करदिया, वह इस देशमें अंग त्याग कर अनङ्ग हुआ, इसी कारण इस देशका नाम अंग हुआ । वा. रा. स. २३)

तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि ॥
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलयैव धनुषी अधिज्यताम् ॥ १४ ॥

अन्वयः । तौ कौशिकाद्विदितशापया सुकेतुसुतया खिलीकृते पथि स्थलनिवेशिताटनी (सन्तौ) धनुषी लीलयैवाधिज्यतां निन्यतुः ॥ १४ ॥

वाच्यप० । ताभ्यां कौशिकाद्विदितशापया सुकेतुसुतया खिलीकृते पथि स्थलनिवेशिताटनिभ्यां (सद्भ्यां) धनुषी लीलया एवाधिज्यतां निन्याते ॥ १४ ॥

विदितशापया ताटकया खिलीकृते मार्गे तौ राघवौ स्थले निवेशितधनुःकोटी लीलयैव धनुषी नीतवन्ताविति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-वे दोनों विश्वामित्रसे सुनीहुई शापित ताडकाके शून्य किये मार्गमें धरतीमें नोक टेकते हुए धनुषपर लीलासे ही प्रत्यञ्चा चढाते हुए ॥ १४ ॥

(अगस्त्यजीने ताटकाको शाप दिया था कि तू राक्षसी हो जा, इसकी कथा यों है कि सुकेतुनाम यक्षके तपसे प्रसन्न हो शिवजीने सहस्र हाथियोंके बलवाली कन्या दी, सुकेतुने इसका जम्भके पुत्र सुन्दसे विवाह करदिया, तब कुछ समय उपरान्त इसके मारीच पुत्र हुआ, किसी समय अपराध करनेसे अगस्त्यजीने इसके पति सुन्दको नष्ट करदिया, तब यह उन्हें खानेको पुत्र सहित दौडी, तब ऋषिने उन्हें भी शाप दिया कि तुम दोनों मनुष्यभक्षी राक्षस हो जाओ.)

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः ॥
ताटका चलकपालकुण्डला कालिकेव निविडा बलाकिनी॥१५॥

अन्वयः । अथ तयोः ज्यानिनादं गृह्णती बहुलक्षपाच्छविः ताटका चलकपालकुंडला निविडा बलाकिनी कालिकेव प्रादुरास ॥ १५ ॥

वाच्यप० । अथ तयोः ज्यानिनादं गृह्णत्या बहुलक्षपाच्छव्या चलकपालकुंडलया ताटकया निविडया बलाकिन्या कालिकयेव प्रादुरासे (प्रादुर्बभूवे) ॥ १५ ॥

अथ तयोर्ज्याशब्दं शृण्वती कृष्णपक्षरात्रिवर्णा चंचलकपालकुण्डला ताटका सान्द्रा बलाकावती मेघावलीव प्रादुरासेति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-इसके उपरान्त उन दोनोंके धनुषशब्दको ग्रहणकर अंधेरी रातकीसी कान्ति और हिलतेहुए कपालके कुंडलवाली ताटका बगलियों सहित घनी घटाके समान प्रगट हुई ॥ १५ ॥

तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया ॥
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया ॥ १६ ॥

अन्वयः । तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया तया पितृकाननोत्थया वात्ययेव भरताग्रजः अभ्यभावि ॥ १६ ॥

वाच्यप० । तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षा प्रेतचीवरवाः स्वनोग्रा सा पितृकाननोत्था वात्येव भरताग्रज-मभ्यभूत् ॥ १६ ॥

तीव्रजवेन कम्पितमार्गतर्वाः मृतकचीवरवसा शब्देनोग्रया तया ताटकया श्मशानोत्थया वात्ययेव रामोऽभिभूत् इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०-तीव्र वेगसे मार्गके वृक्षोंको हिलानेवाली प्रेतोंके वस्त्र ओढनेवाली भयंकर शब्दवाली श्मशानमें उठेहुए बवूलेके समान रामचन्द्रको तिरस्कार करती हुई॥१६॥

उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ॥
तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः॥१७॥

अन्वयः । उद्यतैकभुजयष्टिम् आयतीं श्रोणिलंबिपुरुषांत्रमेखलां ता विलोक्य राघवः वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच ॥ १७ ॥

वाच्यप० । ++ राघवेण वनितावधे घृणा पत्रिणा सह मुमुचे ॥ १७ ॥

उन्नमितैकबाहुयष्टिमागच्छन्तीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्ररशनां तामवलोक्य रामः नारीवधनिमित्तां जुगुप्सां शरेण सह मुक्तवानिति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०-एक भुजारूपी लाठी उठाये आती हुई, कमरमें पुरुषोंकी आंतोंकी मेखला लटकाय उसको देखकर रामचन्द्र स्त्रीके मारनेकी घृणाको बाणके साथही छोडते हुए ॥ १७ ॥

(स्त्रियोंके मारनेका निषेध है, परन्तु आतताईके मारनेका दोष नहीं यह जानकर रामने बाण छोडा)

यच्चकार विवरं शिलाघने ताटकोरसि स रामसायकः॥
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत् ॥ १८ ॥

अन्वयः । सः रामसायकः शिलाघने ताटकोरसि यद्विवरं चकार, तद्रक्षसाम् अप्रविष्टविषयस्यांतकस्य द्वारतामगमत् ॥ १८ ॥

वाच्यप० । तेन रामसायकेन शिलाघने ताटकोरसि यद्विवरं चक्रे, तेन रक्षसाम् अप्रविष्टविषयस्यांतकस्य द्वारता अगामि ॥ १८ ॥

स रामशरः शिलाघने निबिडे ताटकोरसि यद्रन्ध्रं चकार, तद्विवरमप्रविष्टरक्षोदेशस्य धर्मराजस्य द्वारतामगमदिति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०-वह रामचन्द्रका बाण शिलाके समान कठिन ताटकाकी छातीमें जो छिद्र करता हुआ, सोई मानो राक्षसोंके देशमें प्रथम प्रवेश न कियेहुए कालके गमनका द्वारस्वरूप हुआ ॥ १८ ॥

बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा स्वकाननभुवं न केवलाम् ॥
त्रिष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत् ॥ १९ ॥

अन्वयः । बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा केवलां स्वकाननभुवं न (व्यकम्पयत्) त्रिष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकंपयत् ॥ १९ ॥

वाच्यप० । बाणभिन्नहृदयया निपेतुष्या तया केवला स्वकाननभूः न (व्यकंप्यत) त्रिष्टपत्रयपराजयस्थिरा रावणश्रीरपि व्यकंप्यत ॥ १९ ॥

शरभिन्नहृदया निपतिता सती सैकान् स्वकाननभूमिं न व्यकम्पयत, किं तु लोकत्रयस्य पराजयेन निश्चलां रावणलक्ष्मीमपि व्यकम्पयदिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—बाणसे भिन्नहृदयवाली गिरतीहुई वह केवल अपने वनकी पृथ्वीको ही नहीं कम्पित करतीहुई, किन्तु त्रिभुवनके पराजयसे स्थिर हुई रावणकी लक्ष्मीकोभी कंपित करतीहुई ॥ १९ ॥

राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ॥
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥ २० ॥

अन्वयः । सा निशाचरी दुःसहेन राममन्मथशरेण हृदये ताडिता गंधवद्रुधिरचंदनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम ॥ २० ॥

वाच्यप० । तया निशाचर्या दुःसहेन राममन्मथशरेण ताडितया गंधवद्रुधिरचंदनोक्षितया जीवितेशवसतिः जग्मे ॥ २० ॥

सा राक्षसी सोढुमशक्येन राममन्मथवाणेन विद्धशरीरा दुर्गन्धरुधिरचन्दनालिप्ता प्राणेश्वरस्यान्तकस्य वा वसतिं जगामेति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—वह राक्षसी कामरूपी रामके कठिन बाणसे हृदयमें विंधीहुई गंधयुक्त रुधिररूपी चन्दन लगायेहुई जीवितेश (यमराज वा प्रीतम) के धामको प्राप्त हुई॥२०॥

(इस श्लोकमें अभिसारिका नायिकाका वर्णन कियाहै, जिस प्रकार संकेतकल्पना कर चन्दन सुगंधि लगाकर स्त्री कामसे प्रेरित हो अपने पतिके पास जाती है, इसी प्रकार ताटका रामरूपी कामसे प्रेरित हो रुधिरादि लगाकर यमरूपी पतिके निकट गई, परन्तु इस श्लोकमें शृंगार और रौद्र दोनों रस हैं और शृंगार तथा रौद्ररसका विरोध है इससे ॥ आद्यः (शृंगारः) करुणावीभत्सरौद्रवीरभयानकैः । इसके अनुसार नव्य अलंकारिक इस श्लोकमें अमत परार्थता दोष कहते हैं, क्यों कि इसमें रौद्र शृंगारका एकत्र समावेश है इति)

नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात् ॥
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताटकान्तकः २१

अन्वयः अथ ताडकांतकः अवदानतोषितान्मुनेः नैर्ऋतघ्नं मन्त्रवत् अस्त्रं सूर्यकांतः भास्करादिं-धननिपाति ज्योतिरिव प्रापत् ॥ २१ ॥

वाच्यप० । अथ ताडकांतकेन + + + + सूर्यकांतेन भास्करादिंधननिपाति ज्योतिरिव प्रापि ॥ २१ ॥

अथ ताडकाहन्ता रामः पराक्रमसन्तुष्टात् मुनेः राक्षसघ्नं मंत्रयुक्तमस्त्रं सूर्यकान्तो मणिर्भा-स्करात्काष्ठदाहकं ज्योतिरिव प्राप्तवानिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—इसके उपरान्त ताटकाके मारनेवाले रामचन्द्रने पराक्रमसे प्रसन्न किये मुनिसे राक्षसोंको मारनेवाला मंत्र सहित अस्त्र (पाया। मानो) सूर्यकान्त मणिने सूर्य-से काष्ठजलानेवाले तेजको पाया ॥ २१ ॥

वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान् ॥
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः ॥ २२ ॥

अन्वयः । ततः परं राघवः ऋषेः श्रुतं पावनं वामनाश्रमपदम् उपेयिवान् प्रथमजन्मचेष्टिता-नि अस्मरन्नपि उन्मना बभूव ॥ २२ ॥

वाच्यप० । ततः परं राघवेण ऋषेः श्रुतं पावनं वामनाश्रमपदम् उपेयुषा प्रथमजन्मचेष्टितानि अस्मरताप्युन्मनसा बभूवे ॥ २२ ॥

तदनन्तरं राघवः कौशिकाच्छ्रुतं पवित्रं वामनाश्रमपदमनुगतः सन् वामनावतारचेष्टितान्य स्मरन्नप्युत्सुको बभूवेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०—उसके उपरान्त रामचन्द्र मुनिसे सुनेहुए पवित्र वामनजीके आश्रममें प्राप्त होकर प्रथम जन्मकी चेष्टा न स्मरण करकेभी उत्कंठित हुए ॥ २२ ॥

(इन्होंने ही पूर्वजन्ममें वामनअवतार लिया था)

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम् ॥
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम् ॥ २३ ॥

अन्वयः । ततः मुनिः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणं बद्धपल्लवपुटांजलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगम् आत्मनः तपोवनम् आससाद ॥ २३ ॥

वाच्यप० । ततः मुनिना + + + आसेदे ॥ २३ ॥

ततो विश्वामित्रः छात्रवर्गसज्जितपूजासामग्रीकं बद्धकिसलयपुटाञ्जलिवृक्षं मुनिदर्शनोन्मुखमृगमा-त्मन आश्रमं समाससादेति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—इसके उपरान्त मुनि चेलोंकी संचय की हुई पूजासामग्रीवाले, पत्तोंकी अंजली बांधेहुए वृक्षोंसे युक्त, दर्शनके निमित्त मुख उठायेहुए मृगोंवाले, अपने आश्र-ममें पहुँचे ॥ २३ ॥

तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः ॥
लोकमन्धतमसात्क्रमोदितौ रश्मिभिः शशिदिवाकराविव ॥२४॥

अन्वयः । तत्र दशरथात्मजौ दीक्षितमृषिं शरैः विघ्नतः क्रमोदितौ शशिदिवाकरौ रश्मिभिः लोकम् अंधतमसादिव ररक्षतुः ॥ २४ ॥

वाच्यप० । तत्र दशरथात्मजाभ्यां दीक्षितः ऋषिः शरैः विघ्नतः क्रमोदिताभ्यां शशिदिवाकराभ्यां लोकः अंधतमसादिव ररक्षे ॥ २४ ॥

तत्राश्रमे रामलक्ष्मणौ दीक्षासंस्कृतं मुनिं बाणैर्विघ्नेभ्यः पर्य्यायेण रात्रिदिवसयोरुदितौ शशिदिवाकरौ करैर्गाढध्वान्ताल्लोकमिव ररक्षतुरिति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०–वह दोनों दशरथकुमार दीक्षा लिये ऋषिकी बाणोंद्वारा विघ्नोंसे रक्षा करते हुए, मानो क्रमसे उदय हुए चन्द्रमा और सूर्य किरणों द्वारा संसारकी अंधकारसे रक्षा करते हुए ॥ २४ ॥

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तबिन्दुभिर्बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम् ॥
संभ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम् ॥२५॥

अन्वयः । अथ बंधुजीवपृथुभिः रक्तबिंदुभिः प्रदूषितां वेदिं वीक्ष्य अपोढकर्मणां च्युतविकंकतस्रुचाम् ऋत्विजां सम्भ्रमः अभवत् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । + संभ्रमेणाभूयत इति विशेषः ॥ २५ ॥

अथ बन्धुजीवपुष्पस्थूलैः रुधिरकणैरुपहतां वेदिं वीक्ष्य त्यक्तव्यापाराणां च्युतविकंकतस्रुचां याजकानां संभ्रमोऽभवदिति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०–इसके उपरान्त बंधुजीव (दुपहरिया) के फूलके समान बड़ी २ रुधिरकी बूंदोंसे दूषित वेदीको देखकर सब कर्म छोड़े हुए और विकंकतकी स्रुचा (खैरकी लकडीकी करछी) त्यागेहुए ऋत्विजोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २५ ॥

उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन् ॥
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् ॥ २६ ॥

अन्वयः । सपदि लक्ष्मणाग्रजः बाणम् आश्रयमुखात्समुद्धरन् उन्मुखः अंबरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजं रक्षसां बलमपश्यत् ॥ २६ ॥

वाच्यप० । × लक्ष्मणाग्रजेन बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरता उन्मुखेन अम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजं रक्षसां बलमदृश्यत ॥ २६ ॥

सपदि रामस्तूणीरमुखात् बाणमुद्धरन्नूर्ध्वमुखोऽम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितपताकं निशाचराणां बलमपश्यदिति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—शीघ्र ही रामचन्द्र तरकससे बाण निकालते हुए और ऊंचा मुख किये आकाशमें गीधोंके पंखोंसे हिलती हुई ध्वजावाली राक्षसोंकी सेनाको देखते हुए॥२६॥

तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान् ॥
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ॥ २७ ॥

अन्वयः। तत्र यौ मखद्विषामधिपती स तौ शरव्यम् अकरोत् इतरान्न (अकरोत्) (तथाहि) महोरगविसर्पिविक्रमः गरुडः राजिलेषु प्रवर्तते किम् ॥ २७ ॥

वाच्यप०। तत्र याभ्यां मखद्विषाम् अधिपतिभ्याम् (अभूयत) तेन तौ शरव्यम् अक्रियेताम् इतरे न (अक्रियंत) (तथाहि) महोरगविसर्पिविक्रमेण गरुडेन राजिलेषु प्रवृत्यते किम् ॥२७॥

स रामस्तत्र निशाचराणां बले यौ मखद्विषामधिपती तौ सुबाहुमारीचौ शरव्यमकरोत, महाभुजगविसर्पिपराक्रमो गरुत्माञ्जलसर्पेषु न प्रवर्तत इति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—उनमें जो यज्ञ विध्वंस करनेवालोंके दो अधिपति थे, रामचन्द्रने उन्हीं दोनोंको निशाना बनाया, औरोंको नहीं, बड़े नागोंमें बल दिखानेवाला गरुड़ कहीं सपोलोंमें प्रवृत्त होता है क्या ?॥ २७ ॥

सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः संदधे धनुषि वायुदैवतम् ॥
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पांडुपत्रमिव ताडकासुतम् ॥ २८ ॥

अन्वयः। अस्त्रकोविदः स उग्रजवं वायुदैवतमस्त्रं धनुषि संदधे तेन शैलगुरुमपि ताडकासुतं पांडुपत्रमिव अपातयत् ॥ २८ ॥

वाच्यप०। अस्त्रकोविदेन तेनोग्रजवं वायुदैवतमस्त्रं धनुषि संदधे, तेन शैलगुरुरपि ताडकासुतः पांडुपत्रमिवापात्यत ॥ २८ ॥

अस्त्रज्ञः स राम उत्कटजवं पवनदैवतं वायव्यमस्त्रं धनुषि संहितवान्, तेनास्त्रेण शैलवद्गुरुमपि ताडकापुत्रं मारीचं परिणतपर्णमिव पातितवानिति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—अस्त्र जाननेवाले वह रामचन्द्र तीक्ष्ण वेगवाले वायव्यास्त्रको धनुषपर चढाते हुए, जिससे पर्वतके समान भारीभी ताडकाके पुत्रको पीले पत्तेके समान गिरा दिया॥२८॥

यः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया ॥
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः ॥ २९ ॥

अन्वयः। सुबाहुरिति यः अपरः राक्षसः तत्र तत्र मायया विससर्प, कृती (रामः) क्षुरप्रशकलीकृतं तम् आश्रमाद्बहिः पत्रिणां व्यभजत् ॥ २९ ॥

वाच्यप०। सुबाहुरिति येनापरेण राक्षसेन तत्र तत्र मायया विससृपे कृतिना (रामेण) क्षुरप्रशकलीकृतः स आश्रमात् बहिः पत्रिणां व्यभज्यत ॥ २९ ॥

सुबाहुरिति योऽपरः निशाचरस्तत्र तत्र शम्वरमायया संचचार क्षुरप्रैः खण्डीकृतं तं सुबाहुं कुशलो रामः आश्रमाद्बहिः पक्षिणां विभज्य दत्तवानिति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०–सुबाहु इस नामवाला जो दूसरा राक्षस था जहां जहां मायासे गया तहां तहां कुशल रामने तीक्ष्णबाणोंसे टुकडे टुकडे करके उसे आश्रमके बाहर पक्षियों को बांट दिया ॥ २९ ॥

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम् ॥
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः ॥ ३० ॥

अन्वयः । ऋत्विजः इति अपास्तमखविघ्नयोः तयोः सांयुगीनं विक्रमम् अभिनन्द्य वाग्यतस्य कुलपतेः क्रियाः यथाक्रमं निरवर्तयन् ॥ ३० ॥

वाच्यप०– । ऋत्विग्भिरिति अपास्तमखविघ्नयोः तयोः सांयुगीनं विक्रमम् अभिनन्द्य वाग्यतस्य कुलपतेः क्रियाः यथाक्रमं निरवर्त्यंत ॥ ३० ॥

इति दूरीकृतयज्ञविघ्नयोस्तयो रामलक्ष्मणयोः सांयुगीनं विक्रममभिनन्द्य याज्ञिकाः मौनव्रतस्य विश्वामित्रस्य यज्ञक्रियाः यथाक्रमं निष्पादितवन्त इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०–ऋत्विजोंने इस प्रकार विघ्न दूर करनेवाले उन दोनोंका समरपराक्रम सराह कर, मौन साधेहुए कुलपति (विश्वामित्र) का यज्ञ विधिपूर्वक पूर्ण किया ॥ ३० ॥

तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ भ्रातराववभृताप्लुतो मुनिः ॥
आशिषामनुपदं समस्पृशद्दर्भपाटिततलेन पाणिना ॥ ३१ ॥

अन्वयः । अवभृथाप्लुतः मुनिः प्रणामचलकाकपक्षकौ तौ भ्रातरौ आशिषाम् अनुपदं दर्भ-पाटिततलेन पाणिना समस्पृशत् ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । अवभृथाप्लुतेन मुनिना प्रणामचलकाकपक्षकौ तौ भ्रातरौ आशिषामनुपदं दर्भपाटि-ततलेन पाणिना समस्पृश्येताम् ॥ ३१ ॥

दीक्षांतस्नातः मुनिः प्रणामेन चंचलचूडौ तौ रामलक्ष्मणावाशिषामन्वक् कुशपाटिततलेन पवि-त्रेण पाणिना संतोषात्संस्पृष्टवानिति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०–यज्ञान्त स्नान कियेहुए मुनि, प्रणाम करनेमें चलायमान अलकोंवाले उन दोनों भाइयोंको आशीर्वादके पीछे कुशासे चीरी हुई हथेलीवाले हाथसे छूते हुए ३१॥

तं न्यमन्त्रयत संभृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी ॥
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः । संभृतक्रतुर्मैथिलः तं न्यमंत्रयत वशी सः मिथिलां व्रजन् तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलं बिभ्रतौ राघवावपि निनाय ॥ ३२ ॥

वाच्यप०। संभृतक्रतुना मैथिलेन स न्यमंत्र्यत वशिना तेन मिथिलां व्रजता तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलं बिभ्रतौ राघवावपि निन्याते ॥ ३२॥

संकल्पितसंभारो मैथिलो जनकः तं विश्वामित्रमाहूतवान्, जितेन्द्रियः सः मुनिः जनकनगरीं गच्छन् जनकधनुःश्रवणजं कौतुकं बिभ्रतौ रामलक्ष्मणावपि नीतवानिति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०–यज्ञकरनेवाले जनकने उस (विश्वामित्र) को निमंत्रण भेजा, जितेन्द्रिय वह मिथिलापुरीको जाते हुए उसके धनुषके सुनेहुए कुतूहलको मनमें धरनेवाले रामचंद्र और लक्ष्मणको भी ले चले ॥ ३२ ॥

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत ॥
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ ॥ ३३ ॥

अन्वयः। गताध्वभिः तैः सायं शिवेषु आश्रमतरुषु वसतिः अगृह्यत, येषु दीर्घतपसः परिग्रहः वासवक्षणकलत्रतां ययौ ॥ ३३ ॥

वाच्यप०। गताध्वानस्ते सायं शिवेषु आश्रमतरुषु वसतिमगृह्णन् येषु दीर्घतपसः परिग्रहेण वासवक्षणकलत्रता यये ॥ ३३ ॥

गताध्वभिस्तैस्त्रिभिः सायं मनोहरेष्वाश्रमवृक्षेषु स्थानमगृह्यत, येष्वाश्रमवृक्षेषु गौतमस्य नारी पुरन्दरस्य क्षणकलत्रतां ययाविति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–मार्गपर पहुंचेहुए उन्होंने संध्यासमय सुन्दर आश्रमके वृक्षोंके नीचे वास किया, जहां बडे तपस्वी (गौतम) की स्त्री इन्द्रकी क्षणमात्रको भार्या बनी थी ॥ ३३ ॥

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी ॥
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः ॥ ३४ ॥

अन्वयः। शिलामयी गौतमवधूः चारु स्वं वपुः चिराय पुनः प्रत्यपद्यत (इति) यत् सः किल्बिषच्छिदां रामपादरजसाम् अनुग्रहः किल ॥ ३४ ॥

वाच्यप०। शिलामय्या गौतमवध्वा चारु स्वं वपुः चिराय पुनः प्रत्यपद्यत, (इति) यत्तेन किल्बिषच्छिदां रामपादरजसाम् अनुग्रहेण किल (भूयते) ॥ ३४ ॥

भर्तृशापात् पाषाणत्वं प्राप्ताहल्या मनोरमं स्वं देहं पुनः प्राप्तवती इति यत् सः पापहारिणां रामचरणरजसां प्रसादः किलेति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०–शिलारूप गौतमकी स्त्री सुन्दर अपने शरीरको फिरप्राप्त हुई, प्रसिद्ध है कि यह पाप दूर करनेवाले रामके चरणोंकी रजका अनुग्रह था ॥ ३४ ॥

(जब अहल्याने इन्द्रसे संगम किया तब गौतमने शाप दिया कि तूं शिला हो जा, रामचन्द्रके चरणस्पर्शसे तेरा उद्धार होगा)

राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः ॥
अर्थकामसहितं सपर्यया देहबद्धमिव धर्ममभ्यगात् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । राघवान्वितम् उपस्थितं तं मुनिं जनको जनेश्वरः निशम्य अर्थकामसहितं देहबद्धं धर्ममिव सपर्ययाऽभ्यगात् ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । राघवान्वितः उपस्थितः सः मुनिः निशम्य जनकेन जनेश्वरेणार्थकामसहितः देहबद्धः धर्म इव सपर्ययाऽभ्यगायि ॥ ३५ ॥

राघवाभ्यां सहितमागतं तं विश्वामित्रं जनेश्वरो जनको निशम्यार्थकामाभ्यां सहितं मूर्तिमन्तं-धर्ममिव सपर्यया प्रत्युद्गतवानिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०-रामचन्द्र और लक्ष्मण सहित उपस्थितहुए मुनिको सुनकर मिथिलापति जनक अर्थ और काम सहित देहधारी धर्मके समान पूजाकी सामग्री लेकर उनसे आगे मिला ॥ ३५ ॥

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू ॥
मन्यते स्म पिबता विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः ॥३६ ॥

अन्वयः । दिवः गां गतौ पुनर्वसू इव (स्थितौ) तौ विलोचनैः पिबतां विदेहनगरीनिवासिनां मनः पक्ष्मपातमपि वंचनां मन्यते स्म ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । दिवः गां गतौ पुनर्वसू इव (स्थितौ) तौ विलोचनैः पिबतां विदेहनगरीनिवासिनां मनसा पक्ष्मपातोऽपि वंचना मन्यते स्म ॥ ३६ ॥

आकाशाद्वसुधां प्राप्तौ पुनर्वसू इव स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ नेत्रैः पिबतां मिथिलापुरनिवासिनां मनः निमेषमपि विडम्बनां मेन इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०-स्वर्गसे पृथ्वीमें आयेहुए दो पुनर्वसुके समान स्थितहुए उन दोनोको नेत्रोंसे पीते हुए विदेहनगरीके रहनेवालोंका मन पलक मारनेको भी विघ्न मान्ता हुआ ॥ ३६ ॥

यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्द्धनः ॥
रामभिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव सः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । यूपवति क्रियाविधौ अवसिते सति कालवित् कुशिकवंशवर्द्धनः सः रामम् इष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । यूपवति क्रियाविधौ अवसिते सति कालविदा कुशिकवंशवर्द्धनेन तेन रामः इष्वसनदर्शनोत्सुकः मैथिलाय कथयांबभूवे ॥ ३७ ॥

यज्ञकर्मानुष्ठाने समाप्ते सत्यवसरज्ञः विश्वामित्रः रामं चापदर्शनोत्सुकं जनकाय कथितवानिति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०–अनुष्ठानकार्य समाप्त होनेपर समयके ज्ञाता कुशिकनंदन (विश्वामित्र) रामचन्द्रक धनुष देखनेकी उत्कंठाको जनकके प्रति कहते भये ॥ ३७ ॥

तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः ॥
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया ॥३८॥

अन्वयः । पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः तस्य शिशोः ललितं वपुः वीक्ष्य स्वं दुरानमं धनुश्च विचिन्त्य दुहितृशुल्कसंस्थया पीडितः (बभूव) ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । पार्थिवेन प्रथितवंशजन्मनः तस्य शिशोः ललितं वपुः वीक्ष्य स्वं दुरानमं धनुश्च विचिन्त्य दुहितृशुल्कसंस्थया पीडितेन (बभूवे) ॥ ३८ ॥

जनकः प्रसिद्धकुलजन्मनः शिशोस्तस्य रामस्य कोमलं देहमवलोक्य स्वकीयमानमयितुमशक्यं धनुर्विचिन्त्य च धनुर्भङ्गरूपकन्यामूल्यसंस्थया शिशुना रामेण दुष्करमिति दुःखितोऽभूदिति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०–राजा विख्यात वंशमें उत्पन्न हुए उस बालकका मनोहर शरीर देखकर और धनुषका नमना कठिन विचारकर कन्याके शुल्क (मोल) की प्रतिज्ञासे दुःखी हुआ ॥ ३८ ॥

अब्रवीच्च भगवन्मतंगजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम् ॥
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः । अब्रवीच्च (मुनिम् इति शेषः) हे भगवन् बृहद्भिः मतंगजैः यत्कर्म दुष्करं तत्र कलभस्य मोघवृत्ति चेष्टितम् अनुमंतुमहं नोत्सहे ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । औच्यत च (मुनिरिति शेषः) हे भगवन्बृहद्भिरपि मतंगजैः येन कर्मणा दुष्करेण (भूयते) तत्र कलभस्य मोघवृत्ति चेष्टितम् अनुमंतुं नोत्सह्यते ॥ ३९ ॥

मुनिमब्रवीच्च हे मुने ! बृहद्भिर्महागजैरपि दुस्साध्यं यत्कर्म,तत्र कर्मणि बालगजस्य व्यर्थव्यापार-चेष्टितं साहसमनुमन्तुमहं नोत्सह इति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०–और मुनिसे बोलाभी हे भगवन् ! जो कर्म बडे २ हाथियोंसे भी दुष्कर है, उस कार्यमें हाथीके बच्चेकी व्यर्थफलवाली चेष्टाके अनुमान करनेको मैं उत्साह नहीं करता हूं ॥ ३९ ॥

ह्रेपिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात ! धनुषा धनुर्भृतः ॥
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे ४०

अन्वयः । हे तात ! तेन धनुषा बहवो धनुर्भृतः नरेश्वराः ह्रेपिताः हि (ते) ज्यानिघातकठिनत्वचः स्वान् भुजान् धिगिति विधूय प्रतस्थिरे ॥ ४० ॥

वाच्यप० । हे तात ! तद्धनुः बहून् धनुर्भृतो नरेश्वरान् ह्रेपितवत् (तैः) ज्यानिघातकठिनत्वचः स्वान् भुजान् धिगिति विधूय प्रतस्थे ॥ ४० ॥

हे भगवन् ! तेन धनुषा बहवो धनुर्भृतो नरपतयो ह्रियं प्रापिता हि ते पृथ्वीपाला ज्यानिघातकठिनत्वचः स्वान्बाहून्धिगित्यवमत्य प्रस्थिता इति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०—हे तात ! उस धनुषने बहुतसे धनुषधारी राजोंको लज्जित किया है, वे राजा प्रत्यंचाके फटकारोंसे कठिन त्वचावाली अपनी भुजाओंको धिक्कार देकर चले गये ॥ ४० ॥

प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथ वा गिरा कृतम् ॥
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव ॥ ४१ ॥

अन्वयः । ऋषिः तं प्रत्युवाच अयं सारतः निशम्यताम् अथ वा गिरा कृतं, (किं तु) अशनिः गिरौ इव चापे एव (अयं) भवतः व्यक्तशक्तिः भविष्यति ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । ऋषिणा सः प्रत्यूचे, इमं सारतः निशामय, अथ वा गिरा कृतं, (किं तु) अशनिना गिरौ इव चापे एव (अमुना) भवतः व्यक्तशक्तिना भविष्यते ॥ ४१ ॥

विश्वामित्रस्तं प्रत्युवाच, अयं रामः बलेन श्रूयताम् अथ वा गिरा सारवर्णनयालं किन्त्वशनिः पर्वत इव धनुष्येव तव दृष्टसारो भविष्यतीति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—ऋषि जनकसे बोले, इसका बल सुनिये, अथ वा वाणीसे क्या है, पर्वतमें वज्रके समान यह तुम्हारे धनुषमें ही बल दिखानेवाला होगा ॥ ४१ ॥

एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे ॥
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥ ४२ ॥

अन्वयः । एवम् आप्तवचनात् सः काकपक्षकधरेऽपि राघवे पौरुषं त्रिदशगोपमात्रके कृष्णवर्त्मनि दाहशक्तिमिव श्रद्दधे ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । एवम् आप्तवचनात् तेन काकपक्षकधरेऽपि राघवे पौरुषं त्रिदशगोपमात्रके कृष्णवर्त्मनि दाहशक्तिरिव श्रद्दधे ॥ ४२ ॥

एवं मुनेर्वचनात्स राजा काकपक्षधरे बालेपि रामे पराक्रममिन्द्रगोपमात्रके वह्नौ दाहशक्तिमिव विश्वस्तवानिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—इस प्रकार आप्त मुनिके वचनसे उसने अलकोंसे युक्तभी रामचन्द्रमें बलका, इन्द्रवधू (चिनगारी) मात्र अग्निमें जलानेवाली शक्तिके समान विश्वास किया ॥४२॥

व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः ॥
तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः ॥ ४३ ॥

अन्वयः । अथ मैथिलः पार्श्वगान् कार्मुकाभिहरणाय सहस्रलोचनः तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव गणशः व्यादिदेश ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । अथ मैथिलेन पार्श्वगाः कार्मुकाभिहरणाय सहस्रलोचनेन तेजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदा इव गणशः व्यादिदिशिरे ॥ ४३ ॥

अथ जनकः सेवकवर्गान्कार्मुकमानेतुं शक्रः तेजोमयस्य धनुष आविर्भवाय मेघानिव प्रजिवायेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०—तब जनकने सेवकोंके समूहको धनुषके लानेके निमित्त (आज्ञा दी) मानों इन्द्रने मेघसमूहोंको तेजोमय धनुष प्रगट करनेको आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः ॥
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन बाणमसृजद्वृषध्वजः ॥ ४४ ॥

अन्वयः । दाशरथिः प्रसुप्तभुजगेंद्रभीषणं तद्धनुः वीक्ष्य आददे वृषध्वजः येन विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं बाणमसृजत् ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । दशरथिना प्रसुप्तभुजगेंद्रभीषणं तद्धनुः वीक्ष्याददे, वृषध्वजेन येन विद्रुतक्रतुमृगानुसारी बाणः असृज्यत ॥ ४४ ॥

रामः प्रसुप्तसर्पेन्द्र इव भयंकरं तद्धनुर्वीक्ष्य जग्राह, शिवः येन धनुषा यज्ञमृगमनुगच्छन्तं बाणं मुमोचेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०—रामचन्द्रने सोतेहुए सर्पराजके समान उस धनुषको देखकर ग्रहण किया, जिससे शिवजीने पलायन करतेहुए यज्ञरूपी मृगके पीछे चलनेवाला बाण त्याग किया था ॥ ४४ ॥

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः ॥
शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । सः संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रम् ईक्षितः (सन्) शैलसारमपि (धनुः) स्मरः पेशलं पुष्पचाप इव नातियत्नतः आततज्यम् अकरोत् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । तेन संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रम् ईक्षितेन (सता) शैलसारमपि (धनुः) स्मरेण पेशलं पुष्पचाप इव नातियत्नतः आततज्यमक्रियत ॥ ४५ ॥

स रामः सभया विस्मयस्तिमितनेत्रैरवलोकितः सन् तत्पर्वतसारमपि धनुः कामः कोमलं पुष्पचापमिव नातियत्नादधिज्यमकरोदिति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—वह राम सभासदोंकी आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखेहुए पर्वतके समान सारवाले धनुषको कामदेवके कोमल फूलोंके धनुषके समान विना यत्नके ही प्रत्यञ्चायुक्त करते भये ॥ ४५ ॥

भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः ॥
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः । तेनातिमात्रकर्षणाद्भज्यमानं वज्रपरुषस्वनं (तत्) धनुः दृढमन्यवे भार्गवाय क्षत्त्रं पुनः उद्यतं न्यवेदयदिव ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । तेनातिमात्रकर्षणाद्भज्यमानेन वज्रपरुषस्वनेन (तेन) धनुषा दृढमन्यवे भार्गवाय क्षत्त्रः पुनः उद्यतः न्यवेद्यत इव ॥ ४६ ॥

तेन रामेणातिमात्रकर्षणात् भज्यमानं वज्रवद्भीषणशब्दं धनुः दृढक्रोधाय परशुरामाय क्षत्रवंशं पुनरुद्यतं ज्ञापयामासेवेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-उस अत्यन्त खैंचनेसे टूटे हुए वज्रकी समान शब्दवाले धनुषने महाक्रोधी परशुरामके अर्थ मानों क्षत्रियोंका फिरसे उद्यत होना निवेदन किया ॥ ४६ ॥

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ॥
राघवाय तनयामयोनिजां पार्थिवः श्रियमिव न्यवेदयत् ॥ ४७ ॥

अन्वयः । अथ मैथिलः पार्थिवः रुद्रकार्मुके दृष्टसारं वीर्यशुल्कम् अभिनंद्य रामायायोनिजां तनयां श्रियमिव न्यवेदयत् ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । अथ मैथिलेन पार्थिवेन रुद्रकार्मुके दृष्टसारं वीर्यशुल्कम् अभिनंद्य रामायायोनिजा तनया श्रीरिव न्यवेद्यत ॥ ४७ ॥

अथ जनकः शिवचापे दृष्टबलं धनुर्भङ्गरूपं वीर्यमूल्यमभिनन्द्य रामाय देवयजनसंभवां सीतां साक्षाल्लक्ष्मीमिवार्पितवानिति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

(रामायणे । अथ मे कर्षतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥)

भा०-तब जनकने शिवजीके धनुषमें देखेहुए पराक्रमरूपी कन्याके शुल्ककी बडाईकर रामचन्द्रके निमित्त योनिसे न उत्पन्न हुई (पृथ्वीसे उत्पन्न हुई) कन्याको लक्ष्मीके समान निवेदन किया ॥ ४७ ॥

मैथिलः सपदि सत्यसंगरो राघवाय तनयामयोनिजाम् ॥
संनिधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान् ॥ ४८ ॥

अन्वयः । सत्यसंगरः मैथिलः राघवायायोनिजां तनयां द्युतिमतः तपोनिधेः संनिधौ अग्निसाक्षिक इव सपदि अतिसृष्टवान् ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । सत्यसंगरेण मैथिलेन राघवाय अयोनिजा तनया द्युतिमतः तपोनिधेः संनिधौ अग्निसाक्षिकेणेवातिसृष्टा ॥ ४८ ॥

सत्यप्रतिज्ञः मैथिलः रामायायोनिजां कन्यां तेजस्विनस्तपोनिधेर्विश्वामित्रस्य संनिधौ वह्निसाक्षिक इव दत्तवानिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०-सत्य प्रतिज्ञावाले जनक रामचन्द्रके अर्थ योनिसे न उत्पन्न हुई कन्याको कान्तिमान् तपके निधि मुनिके निकट अग्निसाक्षीके समान शीघ्र ही देते हुए ॥ ४८ ॥

प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः कोसलाधिपतये पुरोधसम् ॥
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहाद्दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति ॥ ४९ ॥

अन्वयः । महाद्युतिः महितं पुरोधसं कोसलाधिपतये प्राहिणोच्च इदं निमेः कुलं दुहितुः परिग्रहाद्भृत्यभावि दिश्यताम् (आदिश्यताम्) इति ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । महाद्युतिना महितः पुरोधाः कोसलाधिपतये प्राहीयत + + + दिशतु (आदिशतु) इति ॥ ४९ ॥

महाद्युतिः मैथिलः पूजितं पुरोहितं दशरथाय प्रहितवांश्च, किमिति इदं निमेः कुलं सीतायाः स्नुषात्वेन स्वीकाराद्भृत्यभाव्यनुमन्यतामिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-महातेजस्वी जनकने पूजनीय पुरोहितको दशरथके निकट (यह कहाकर) भेजा कि इस निमिके कुलकी पुत्रीके ग्रहण करनेसे सेवकभावमें स्वीकार कीजिये ४९॥

अन्वियेष सदृशीं स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः ॥
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ॥५०॥

अन्वयः । स च सदृशीं स्नुषाम् अन्वियेष अनुकूलवाक् द्विजश्चैनं प्राप (तथाहि) कल्पवृक्षफलधर्मि सुकृतां कांक्षितं सद्य एव पच्यते हि ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तेन च सदृशी स्नुषाऽन्वीषेऽनुकूलवाचा द्विजेन च एषः प्रापे + + द्वितीयार्द्धस्य वाच्यपरिवर्त्तनं निष्प्रयोजनम् ॥ ५० ॥

सः दशरथश्चानुरूपां स्नुषामन्वियेष स्नुषाप्राप्तिरूपानुकूलार्थवादी जनकपुरोधाश्चैनं नृपं प्राप (तथाहि) सुरतरुफलधर्मी पुण्यकारिणां मनोरथः सद्य एव पच्यते हीति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०-वह दशरथ पुत्रके सदृश वधूकी इच्छा करतेथे और अभिलाषित कहने वाला ब्राह्मण उनके पास पहुंचा, कारण कि पुण्यात्माओंकी अभिलाषा कल्पवृक्षके फलके स्वभाववाली शीघ्र ही पकती है ॥ ५० ॥

तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः ॥
उच्चचाल बलभित्सखो वशी सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः ॥ ५१ ॥

अन्वयः । बलभित्सखो वशी (सः) कल्पितपुरस्क्रियाविधेः तस्य अग्रजन्मनः वचनं शुश्रुवान्सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः (सन्) उच्चचाल ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । बलभित्सखेन वशिना (तेन) कल्पितपुरस्क्रियाविधेः तस्य अग्रजन्मनः वचनं शुश्रुवुषा सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिना (सता) उच्चेले ॥ ५१ ॥

शक्रसहचरः स्वाधीनतावान् कृतपूजाविधेस्तस्य श्रेष्ठजन्मनो द्विजस्य जनकेन संदिष्टं वचन श्रुतवान् सैन्यधूलिमुषितरविमयूखः सन् प्रतस्थे इति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०-इन्द्रके सखा जितेन्द्री (वह दशरथ) पूजन और आदर किये उस ब्राह्मणका वचन श्रवणकर सेनाकी धूरिसे सूर्यके किरणांको आच्छादन करतेहुए चले ५१॥

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः ॥
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम् ॥ ५२॥

अन्वयः । सः बलैः पीडितोपवनपादपां मिथिलां वेष्टयन् आससाद, सा पुरी स्त्री आयतं कांतपरिभोगम् इव प्रीतिरोधम् असहिष्ट ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । तेन बलैः पीडितोपवनपादपा मिथिला वेष्टयताऽऽसेदे, तया पुर्या स्त्रियाऽऽयतः कांतपरिभोग इव प्रीतिरोधः असाहि ॥ ५२ ॥

सः दशरथः सैन्यैः पीडितोपवनवृक्षां मिथिलां परिधीकुर्वन्नाससाद, सा नगरी कान्तातिप्रसक्तं प्रियसंभोगमिव प्रीत्या रोधं सोढवतीति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०-वह सेनासे पीडित किये वृक्षोंके बागोंवाली मिथिलाको घेरतेहुए पहुंचे, वह पुरी प्रीतमके कठोर आलिंगनको स्त्रीके समान, प्यारेके घेरेको सहन करती हुई ॥ ५२ ॥

तौ समेत्य समये स्थितावुभौ भूपती वरुणवासवोपमौ ॥
कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः ॥ ५३ ॥

अन्वयः । समये स्थितौ वरुणवासवोपमौ तौ उभौ भूपती समेत्य स्वप्रभावसदृशीं कन्यकातनयकौतुकक्रियां वितेनतुः ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । समये स्थिताभ्यां वरुणवासवोपमाभ्यां ताभ्यामुभाभ्यां भूपतिभ्यां स्वप्रभावसदृशी कन्यकातनयकौतुकक्रिया वितेने ॥ ५३ ॥

काले स्थितावाचारपरायणौ वरुणेन्द्रतुल्यौ तौ जनकदशरथौ समेत्य स्वमहिमानुरूपां कन्यकानां सीतादीनां, पुत्राणां रामादीनां च विवाहमङ्गलं विस्तृतवन्ताविति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०- आचारमें स्थित वरुण और इन्द्रके समान दोनों राजा मिलकर अपने ऐश्वर्यके समान पुत्रियों और पुत्रोंके विवाहकी क्रियाको करतेहुए ॥ ५३ ॥

पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहो लक्ष्मणस्तदनुजामथोर्मिलाम् ॥
यौ तयोरवरजौ वरौजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे ॥ ५४ ॥

अन्वयः । रघूद्वहः पार्थिवीमुदवहत् अथ लक्ष्मणः तदनुजामूर्मिलाम् (उदवहत्) यौ वरौजसौ तयोः अवरजौ तौ सुमध्यमे कुशध्वजसुते (उदवहताम्) ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । रघूद्वहेन पार्थिवी उदौह्यत, अथ लक्ष्मणेन तदनुजोर्मिला (उदौह्यत) याभ्यां वरौजोभ्यां तदवरजाभ्याम (अभूयत) ताभ्यां सुमध्यमे कुशध्वजसुते (उदौह्यताम्) ॥ ५४ ॥

रामः सीतां परिणीतवान्, लक्ष्मणः जनकस्यौरसीमूर्मिलामुदवहत् भरतशत्रुघ्नौ जनकानुजस्य कुशध्वजस्य कन्यके माण्डवीं श्रुतिकीर्तिं चोदवहतामिति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०-रामचन्द्र पृथ्वीकी पुत्रीको व्याहतेहुए और लक्ष्मण उसकी छोटी बहन ऊर्मिलाको, उनके जो तेजस्वी भाई (भरत और शत्रुघ्न) थे वे अच्छी कमरवाली कुशकेतुकी कन्या (मांडवी और श्रुतिकीर्ति) को व्याहते भये ॥ ५४ ॥

ते चतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनवो नववधूपरिग्रहात् ॥
सामदानविधिभेदनिग्रहाः सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः ॥ ५५ ॥

अन्वयः । ते चतुर्थसहिताः त्रयः सूनवः नववधूपरिग्रहात् सिद्धिमंतः तस्य भूपतेः सामदान-विधिभेदनिग्रहा इव बभुः ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । तैः चतुर्थसहितैः त्रिभिः सूनुभिः नववधूपरिग्रहात्सिद्धिमद्भिः तस्य भूपतेः सामदान-विधिभेदनिग्रहैरिव बभे ॥ ५५ ॥

ते कुमाराः नववधूपरिग्रहाः फलसिद्धियुक्तास्तस्य दशरथस्य सामदानविधिभेदनिग्रहाश्चत्वार उपाया इव शुशुभिर इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०-चौथे सहित वे तीनों कुमार नई बहुओंके विवाह करनेसे फलसिद्धियुक्त उस राजाके साम, दान, विधि, भेद और दंडके समान शोभित हुए ॥ ५५ ॥

ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च ताभिरगमन्कृतार्थताम् ॥
सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसंनिभः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । ताः नराधिपसुताः नृपात्मजैः ते च ताभिः कृतार्थतामगमन् सः वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसंनिभः अभवत् ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । ताभिः नराधिपसुताभिः नृपात्मजैः तैश्च ताभिः कृतार्थताऽगामि तेन वरवधूस-मागमेन प्रत्ययप्रकृतियोगसंनिभेनाभूयत ॥ ५६ ॥

ताः जनककन्यकाः दशरथपुत्रैः कुलशीलवयोरूपादिसाफल्यमगमन्, ते च कुमारास्ता-भिस्तथा सवराणां वधूनां च समागमः प्रत्ययानां प्रकृतीनां योग इव तुल्योऽभवदिति सरलार्थः ५६

भा०-वे राजाकी कन्या राजकुमारोंसे और वे कुमार उनसे कृतार्थताको प्राप्त हुए, वह वर और बहुओंका समागम प्रत्यय और प्रकृतिके मेलके समान हुआ ॥ ५६ ॥ (व्याणरणमें प्रत्यय और प्रकृति के मिलनेसे शब्द सार्थ होता है.)

एवमात्तरतिरात्मसंभवांस्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः ॥
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत ॥ ५७ ॥

अन्वयः । एवम् आत्तरतिः सः दशरथः तत्र चतुरः अपि आत्मसंभवान्निवेश्य त्रिषु अध्वसु (सत्सु) विसृष्टमैथिलः (सन्) स्वां पुरीं न्यवर्तत ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । एवमात्तरतिना तेन दशरथेन तत्र चतुरोपि आत्मसंभवान् निवेश्य त्रिषु अध्वसु (सत्सु) विसृष्टमैथिलेन (सता) स्वां पुरीम् (उद्दिश्य) न्यवृत्यत ॥ ५७ ॥

एवं प्रेमवान् स दशरथस्तान्पुत्रांस्तत्र मिथिलायां विवाह्य, त्रिषु प्रयाणेषु विसृष्टजनकः सन् स्वां पुरीमयोध्यां न्यवर्ततेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०-इस प्रकार प्रीतिमान् वह दशरथ तहां चारों बेटोंको विवाह कर जनकको तीसरी मजल पर छोडते हुए अपनी पुरीको लौटे ॥ ५७ ॥

तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः ॥
चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम् ॥५८॥

अन्वयः । जातु वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः प्रतीपगा मरुतः उत्तटा नदीरयाः स्थलीमिव तस्य वरूथिनीं भृशतया चिक्लिशुः ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । जातु वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिभिः प्रतीपगैः मरुद्भिः उत्तटैर्नदीरयैः स्थलीव तस्य वरूथिनी भृशतया चिक्लिशे ॥ ५८ ॥

कदाचिद्वर्त्मनि पताकावृक्षप्रमाथिनः प्रतिकूलगामिनः पवनाः उत्तटा नदीवेगा अकृत्रिमभूमिमिव तस्य सेनामधिकतरं क्लिश्यन्ति स्मेति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०-एक दिन मार्गमें ध्वजारूप वृक्षोंको कम्पित करनेवाले सन्मुखके पवनने मानो नदीके भयंकर प्रवाहने वनकी पृथ्वीके समान उसकी सेनाको बहुत क्लेश दिया ॥ ५८ ॥

लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्बद्धभीमपरिवेषमण्डलः ॥
वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः ॥ ५९॥

अन्वयः । तदनंतरं बद्धभीमपरिवेषमंडलः रविः वैनतेयशमितस्य भोगिनः भोगवेष्टितः च्युतः मणिरिव लक्ष्यते स्म ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । तदनन्तरं भीमपरिवेषमंडलं रविं वैनतेयशमितस्य भोगिनः भोगवेष्टितं च्युतं मणिमिव लक्षयंति स्म (दशरथादयः) ॥ ५९ ॥

प्रतिकूलपवनानन्तरं बद्धभीषणपरिधिमण्डलः सूर्यः तार्क्ष्यहतस्य सर्पस्य देहेन वेष्टितः शिरोभ्रष्टो मणिरिव लक्ष्यते स्मेति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०-इसके अनन्तर सूर्य भयानक पौसके मंडलसे बंधाहुआ गरुडके वध किये सर्पकी कुंडलीमें शिरसे गिरी हुई मणिके समान दिखाई दिया ॥ ५९ ॥

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः ॥
अङ्गना इव रजस्वला दिशो नो बभूवुरवलोकनक्षमाः ॥ ६० ॥

अन्वयः । श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः रजस्वलाः दिशः (उक्तलक्षणाः) अंगनाः इवावलोकनक्षमा नो बभूवुः ॥ ६० ॥

वाच्यप० । श्येनपक्षपरिधूसरालकाभिः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवासोभिः रजस्वलाभिः दिग्भिः (उक्तलक्षणाभिः) अंगनाभिरिवावलोकनक्षमाभिः नो बभूवे ॥ ६० ॥

श्येनपक्षपरिम्लानकेशाः सांध्यघना रुधिरार्द्रवाससः धूलियुक्ता दिशः ऋतुमत्योऽङ्गना इव दर्शनयोग्या नो बभूवुरिति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–शिकरेके पंखोंसे धूसर अलकोंवाली संध्याके मेघके समान रुधिरसे गीले कपडेवाली तथा धूलियुक्त दिशा, रजस्वला स्त्रीके समान देखनेके योग्य न हुई ॥ ६० ॥

भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववाशिरे ॥
क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः ॥६१॥

अन्वयः । भास्करः यां दिशम् अध्युवास च तां (दिशं) श्रिताः शिवाः क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं भार्गवं चोदयन्त्य इव प्रतिभयं ववाशिरे ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । भास्करेण या दिक् अध्यूषे च तां (दिशं) श्रिताभिः शिवाभिः क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं भार्गवं चोदयंतीभिरिव प्रतिभयं ववाशे ॥ ६१ ॥

सूर्यो यस्यां दिश्युषितस्तां दिशं श्रिताः शृगालाः क्षत्ररुधिरपितृतर्पणोचितं परशुरामं नोदयन्त्य इव रुरुवुरिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०–सूर्य जिस दिशामें स्थिति किए थे, उसी दिशामें आश्रित होकर शृगाल क्षत्रियोंके रुधिरसे पिताकी उचित क्रिया करनेवाले परशुरामको उभारते हुएसे भयंकर रोदन करने लगे ॥ ६१ ॥

तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित् ॥
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ॥६२॥

अन्वयः । तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य कृत्यवित् क्षितेः ईश्वरः शांतिम् अधिकृत्य गुरुमन्वयुंक्त सः स्वन्तमिति तद्व्यथाम् अलघयत ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य कृत्यविदा क्षितेः ईश्वरेण शांतिम् अधिकृत्य गुरुः अन्वयुज्यत, तेन स्वन्तम् इति तद्व्यथा अलघ्यत ॥ ६२ ॥

तत्प्रतिकूलपवनादि दुर्निमित्तमवलोक्य कार्यज्ञः दशरथोऽनर्थनिवृत्तिमधिकृत्योद्दिश्य वसिष्ठमपृच्छत् स गुरुः शुभोदर्कं भावीति तस्य दशरथस्य व्यथां लघूकृतवानिति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–वह उलटे पवनादिके विकार (कुशकुन) देखकर कार्यके जाननेवाले पृथ्वीपतिने शान्तिके निमित्त गुरूसे कहा, गुरूने 'अच्छा होगा' यह कहकर राजाकी व्यथाको हलकी किया ॥ ६२ ॥

तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास किल वाहिनीमुखे ॥
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात् ॥ ६३ ॥

अन्वयः । सपदि उत्थितः तेजसः राशिः वाहिनीमुखे प्रादुरास किल यः सैनिकैः नयनानि प्रमृज्य चिराल्लक्षणीयपुरुषाकृतिः (अभूत्) ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । सपदि उत्थितेन तेजसः राशिना वाहिनीमुखे (प्रादुर्बभूवे) किल येन सैनिकैः नयनानि प्रमृज्य चिरात् लक्षणीयपुरुषाकृतिना (अभावि) ॥ ६३ ॥

सेनाग्रे सपद्युत्थितस्तेजसो राशिः प्रादुर्बभूव खलु यः सैनिकैर्नेत्राणि प्रमृज्य चिराद्भावनीयपुरुषाकृतिरभूदिति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-फिर शीघ्र उठी हुई तेजकी राशि सेनाके सन्मुख प्रगट हुई, जो कि सैनिक पुरुषोंके नेत्रोंको ढक कर बहुत देरमें देखने योग्य मनुष्यकी मूर्त्ति हुई ॥ ६३ ॥

पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत् ॥
यः ससोम इव घर्मदीधितिः सद्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः ॥ ६४ ॥

अन्वयः । उपवीतलक्षणं पित्र्यं धनुरूर्जितं मातृकं च अंशं दधत् यः ससोमः घर्मदीधितिरिव सद्विजिह्वः चंदनद्रुमः इव (स्थितः) ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । + + दधता येन ससोमेन घर्मदीधितिना इव सद्विजिह्वेन चंदनद्रुमणेव (स्थितम्) ॥ ६४ ॥

यज्ञोपवीतलक्षणं पित्र्यमंशं धनुषोर्जितं मातृकमंशं दधद्यो भार्गवश्चन्द्रयुक्तो सूर्य इव सभुजगश्चन्दनद्रुम इव स्थितः इति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-यज्ञोपवीतके लक्षणवाला पिताका और धनुषके बलसे पाया हुआ माताका अंश धारण कियेहुए जो चंद्रमा सहित सूर्य और सर्प सहित चन्दनके वृक्षकी नाईं स्थित हुए ॥ ६४ ॥

येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा ॥
वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो मही ॥ ६५ ॥

अन्वयः । रोषपरुषात्मनः स्थितिभिदोपि पितुः शासने तस्थुषा वेपमानजननीशिरश्छिदा येन प्राक् घृणा अजीयत ततः मही (अजीयत) ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । रोषपरुषात्मनः स्थितिभिदोपि पितुः शासने तस्थितवान् वेपमानजननीशिरश्छित् यः प्राक् घृणाम् अजयत् ततो महीम् (अजयत) ॥ ६५ ॥

क्रोधेन परुषबुद्धेस्तस्य मर्यादालंघिनोपि पितुः शासने स्थितेन कम्पमानजननीशिरश्छिदा प्राक्घृणाजीयत तदनन्तरं मह्यजीयतेति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०-क्रोधसे कठोर बुद्धि, मर्यादा तोडनेवाले पिताकीभी आज्ञा करनेमें स्थित होकर कांपतीहुई माताका शिर छेदन करके जिन्होंने प्रथम घृणा और पीछे पृथ्वीका जय किया था ॥ ६५ ॥

(रेणुका परशुरामकी माता नदीसे जल भरने गई वहां वह गंधर्वराजकी क्रीडा देखकर मोहित हुई, जमदग्निने यह जानकर कि इसने परपुरुषकी रति देखी परशुरामसे उसके मारनेको कहा, इन्होंने उसे तत्काल मार डाला, पिता प्रसन्न हो बोले पुत्र वर मांगो, तब परशुरामने कहा माता जी उठै और उनके 'तथास्तु' कहतेही वह जी उठी। सहस्त्रार्जुनके पुत्रोंने इनके पिताको मारा था, इस कारण इन्होंने इक्कीस बार राजोंका संहारकर पृथ्वी जय की.)

अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः ॥
क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन् ॥ ६६ ॥

अन्वयः । यः दक्षिणश्रवणस्थितेनाक्षबीजवलयेन क्षत्रियांतकरणैकविंशतेः व्याजपूर्वगणनाम् उद्वहन् इव निर्बभौ ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । येन दक्षिणश्रवणसंस्थितेयाक्षबीजवलयेन क्षत्रियांतकरणैकविंशतेः व्याजपूर्वगणानाम् उद्वहता इव निर्बभे ॥ ६६ ॥

यः दक्षिणकर्णे संस्थितमाक्षमालया क्षत्रियवधानामेकविंशतिसंख्यया व्याजपूर्वगणनान्दधदिव निर्बभाविति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०-जो दक्षिण कानमें पहनी हुई (इक्कीस दानोंकी) रुद्राक्षकी मालाके वहनेसे क्षत्रियोंके नाश करनेकी इक्कीसवारकी गिनतीको धारण करते शोभित हुए ॥ ६६ ॥

तं पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितम् ॥
बालसूनुरलोक्य भार्गवं स्वां दशां च विषसाद पार्थिवः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । पितुः वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितं तं भार्गवं स्वां दशां च अवलोक्य बालसूनुः पार्थिवः विषसाद ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितं तं भार्गवं स्वां दशां चावलोक्य बालसूनुना पार्थिवेन विषेदे ॥ ६७ ॥

पितुर्जमदग्नेर्वधभवेन कोपेन नृपवंशनाशार्थं प्रवृत्तं तं भार्गवं स्वां दशां चावलोक्य बालपुत्रः पार्थिवः विषसदेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०-पिताके वधसे उत्पन्न हुए क्रोधसे राजवंशके मारनेमें दीक्षित परशुरामको और अपनी दशाको देखकर बालकपुत्रोंवाले दशरथजी बहुत दुःखी हुए ॥ ६७ ॥

नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे ॥
हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः ॥ ६८ ॥

अन्वयः । आत्मजे दारुणे अहिते च तुल्यं वर्तमानं रामः इति नाम हारसर्पयोः (वर्त्तमानं) रत्नजातमिवास्य हृद्यं भयदायि चाभवत् ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । आत्मजे दारुणे अहिते च तुल्यं वर्तमानेन राम इति नाम्ना हारसर्पयोः (वर्त्तमानेन) रत्नजातेनेवास्य हृद्येन भयदायिना चाभूयत ॥ ६८ ॥

आत्मजे सुते घोरेऽहिते शत्रौ चाविशेषेण वर्तमानं राम इति नाम हारसर्पयोर्वर्तमानः रत्नजातिरिवास्य दशरथस्य हृदयंगमं भयंकरं चाभवदिति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-पुत्रमें और कठोर शत्रुमें समान वर्तनेवाला राम यह नाम उसे प्यारा और भयंकर, हार और सर्पमें रत्नके समान हुआ ॥ ६८ ॥

अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः ॥
क्षत्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः । सः अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपम् अनवेक्ष्य यतः भरताग्रजः ततः क्षत्रकोपदहनार्चिषम् उदग्रतारकां दृशं संदधे ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । तेनार्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपमनवेक्ष्य यतः भरताग्रजेन (अभूयत) ततः क्षत्रकोपदहनार्चिः उदग्रतारका दृक् संदधे ॥ ६९ ॥

स भार्गवः अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपमनवलोक्य यत्र रामस्तत्र क्षत्रकोपदहनज्वालामिव स्थितामुदग्रकनीनिकां दृशं संदध इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-उन परशुरामने अर्घ्यम् अर्घ्यम् ऐसे कहतेहुए राजाको न देखकर जिधर रामचन्द्र थे उधर ही क्षत्रियोंके वंशपर उत्पन्न हुई अग्निकी ज्वालाके समान तीक्ष्णपुतलीवाली दृष्टि लगाई ॥ ६९ ॥

तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः ॥
अंगुलीविवरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना ॥ ७० ॥

अन्वयः । कार्मुकनिषक्तमुष्टिना शरम् अंगुलीविवरचारिणं कुर्वता युयुत्सुना तेन विगतभीः पुरोगतः राघवः निजगदे ॥ ७० ॥

वाच्यप० । कार्मुकनिषक्तमुष्टिः शरम् अंगुलीविवरचारिणं कुर्वन् युयुत्सुः स विगतभयं पुरोगतं राघवं निजगाद ॥ ७० ॥

धनुर्निषक्तमुष्टिना बाणमंगुलीविवरगामिनं कुर्वता योद्धुमिच्छता तेन भार्गवेण भयरहितः सन्नग्रतः स्थितः राघव उक्त इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-धनुषमें मुट्ठी लगाये बाणको अंगुलियोंके विवरमें फिराते, युद्धकी इच्छा करनेवाले परशुराम, निडर हो आगे स्थित रामचन्द्रसे बोले ॥ ७० ॥

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः ॥
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ॥ ७१ ॥

अन्वयः। क्षत्रजातं मे अपकारवैरि तत् बहुशः निहत्य शमं गतोस्मि दंडघट्टनात्सुप्तसर्प इव तव विक्रमश्रवात् रोषितोस्मि ॥ ७१ ॥

वाच्यप०। क्षत्रजातेन मे अपकारवैरिणा (भूयते स्म) तत् बहुशः निहत्य शमं गतेन मया दंडघट्टनात्सुप्तसर्पेण इव तव विक्रमश्रवात् रोषितेन मया भूयते ॥ ७१ ॥

क्षत्रजातिः मे पितृवधरूपेणापकारेण द्वेषिणी तत् क्षत्रकुलमेकविंशतिवारान्निहत्य शमं गतोस्मि तथापि सुप्तभुजगो दण्डघट्टनादिव तव पराक्रमस्य श्रवणात्कोपं प्रापितोस्मीति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-क्षत्रजाति अपकार करनेसे मेरा वैरी है, उन्हें बहुतवार मारके अब शांत हुआ मैं दंड छुआनेसे सर्पके समान तुम्हारे विक्रम सुनकर क्रोधित हुआ हूं ॥ ७१ ॥

मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणोः ॥
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मनः ॥७२॥

अन्वयः। अन्यपार्थिवैः अनमितपूर्वं मैथिलस्य धनुः त्वम् अक्षणोः किल तत् निशम्य (अहं) भवता आत्मनः वीर्यशृंगं भग्नम् इव समर्थये ॥ ७२ ॥

वाच्यप०। अन्यपार्थिवैः अनामितपूर्वं मैथिलस्य धनुः त्वया अक्षण्यत किल तत् निशम्य (मया) भवता आत्मनः वीर्यशृंगं भग्नमिव समर्थ्यते ॥ ७२ ॥

अन्यैर्नृपैः पूर्वमनमितमस्य जनकस्य धनुस्त्वं क्षतवान् खलु तद्धनुर्भग्नमाकर्ण्य भवतात्मनो वीर्यशृङ्गं भग्नमिव मन्य इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-दूसरे राजोंसे पहले न झुकाया हुआ जनकका धनुष तुमने तोडा है, यह सुनकर मैं अपना बलरूपी शृंग टूटाहुआसा मान्ता हूं ॥ ७२ ॥

अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात् ॥
व्रीडमावहति मे स संप्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि ॥ ७३ ॥

अन्वयः। अन्यदा जगति रामः इत्ययं शब्दः उच्चरितः (सन्) माम् एव अगात्, संप्रति त्वयि उदयोन्मुखे सति व्यस्तवृत्तिः सः मे व्रीडम् आवहति ॥ ७३ ॥

वाच्यप०। अन्यदा जगति राम इत्यनेन शब्देनोच्चारितेन (सता) अहमेवागायिषि, संप्रति उदयोन्मुखे त्वयि व्यस्तवृत्तिना तेन मे व्रीडः ओह्यते ॥ ७३ ॥

अन्यस्मिन्काले जगति राम इत्ययं शब्द उच्चारितः सन्मामेवागात्, अधुना त्वय्युदयोन्मुखे सति विपरीतवृत्तिः स शब्दो मे लज्जां करोतीति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-इस समय तक जगत्में राम यह शब्द उच्चारण किया मेरेहीमें आता था, अब तुम्हारे उदय होनेपर दूसरेमें प्राप्त होकर मुझे लज्जित करता है ॥ ७३ ॥

बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ ॥
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः ॥ ७४ ॥

अन्वयः । अचले अपि अकुंठितमस्त्रं बिभ्रतः मम द्वौ समागसौ रिपू मतौ धेनुवत्सहरणात् हैहयश्च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः त्वं च ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । अचले अपि अकुंठितम् अस्त्रं बिभ्रत् अहं द्वौ समागसौ रिपू मन्ये धेनुवत्सहरणात् हैहयं कीर्तिमपहर्तुमुद्यतं त्वां च ॥ ७४ ॥

क्रौञ्चाद्रावप्यकुण्ठितमस्त्रं बिभ्रतो मम द्वौ तुल्यापराधौ शत्रू मतौ पितृहोमधेनोर्वत्सस्य हरणात्कार्तवीर्यश्च कीर्तिमपहर्तुमुद्युक्तस्त्वं चेति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०-पर्वतमें भी न रुकनेवाले अस्त्रको धारण करनेवाले मैंने दो समान ही शत्रु माने हैं, कामधेनुका बछडा हरण करनेसे तो सहस्रार्जुन और मेरी कीर्ति हरनेको उद्यत हुए तुम ॥ ७४ ॥

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि ॥
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ॥७५॥

अन्वयः । तेन क्षत्रियांतकरणोपि विक्रमः त्वयि अजिते मां न अवति (तथाहि) पावकस्य महिमा सः गण्यते यः कक्षवत्सागरेऽपि ज्वलति ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । तेन क्षत्रियांतकरणेनापि विक्रमेण त्वयि अजिते अहं न अव्ये (तथाहि) पावकस्य महिमानं तं गणयंति येन कक्षवत् सागरेपि ज्वल्यते ॥ ७५ ॥

तेन कारणेन क्षत्रियनाशकरणोपि विक्रमस्त्वय्यजितेपि मां न प्रीणाति, तथा ह्यग्नेर्महिमा स गण्यते यः कक्ष इव समुद्रेपि प्रज्वलतीति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-इस कारण क्षत्रियोंका अन्तकरनेवाला पुरुषार्थ मुझे तुम्हारे जय किये विना नहीं अच्छा लगता है, अग्निकी वही महिमा गिनी जाती है जो समुद्रमें भी काष्ठकी समान प्रज्वलित हो ॥ ७५ ॥

विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वरं धनुरभाजि यत्त्वया ॥
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । (किं च) ऐश्वरं धनुः हरेरोजसाऽऽत्तबलं च विद्धि यद्धनुः त्वयाऽभाजि (तथाहि) नदीरयैः खातमूलं तटद्रुमं मृदुरपि अनिलः पातयति ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । (किं च) ऐश्वरं धनुः हरेरोजसा आत्तबलं विद्यतां यद्धनुः त्वमभांक्षीः (तथाहि) नदीरयैः खातमूलः तटद्रुमः मृदुनापि अनिलेन पात्यते ॥ ७६ ॥

किं च शैवं धनुर्विष्णोर्बलेन हृतसारं च विद्धि, यद्धनुस्त्वया अभञ्जि तथा हि नदीवेगैरवदारिततटद्रुमं मृदुरपि पवनः पातयति ततः शिशुरपि शैवं धनुरभाङ्क्षमिति मा गर्वीरिति भावार्थः ॥ ॥ ७६ ॥

भा०—वह शिवजीका धनुष विष्णुके तेजसे साररहित हुआ जानो,जिसे तुमने तोडा है, नदीके वेगसे जड खुदेहुए किनारेके वृक्षको थोडीभी पवन गिरा देता है ॥७६ ॥

तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया संगमय्य शशरं विकृष्यताम् ॥

तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया ॥ ७७ ॥

अन्वयः । तन्मदीयम् इदम् आयुधं ज्यया संगमय्य (त्वया) सशरं विकृष्यताम् प्रधनं तिष्ठतु एवमपि अहं तुल्यबाहुतरसा त्वया जितः ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । तन्मदीयम् इदमायुधं ज्यया संगमय्य त्वं सशरं विकर्ष प्रधनेन स्थीयताम् एवमपि मां तुल्यबाहुतरास्त्वं जितवान् ॥ ७७ ॥

तस्मान्मदीयमिदं कार्मुकं ज्यया संयोज्य सशरं यथा तथा त्वया विकृष्यताम्, रणस्तावदास्ताम् धनुष्कर्षणेऽप्यहं समबाहुबलेन त्वया जित इति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—इस कारण मेरा यह आयुध (वैष्णव धनुष) तू ज्या चढाकर बाणसहित खैंच, युद्ध रहो, इससेभी मैं समान भुजबलवाले तुझसे जीता हुआ रहूंगा ॥ ७७ ॥

कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम ॥

ज्यानिघातकठिनांगुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलिः ॥ ७८ ॥

अन्वयः । यदि वा उद्गतार्चिषा मम परशुधारया तर्जितः कातरोसि वृथा ज्यानिघात-कठिनांगुलिः अभययाचनांजलिः बध्यताम् ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । यदि वा उद्गतार्चिषा मम परशुधारया तर्जितेन कातरेण भूयते (तर्हि) वृथा ज्यानिघातकठिनांगुलिम् अभययाचनांजलिं बधान ॥ ७८ ॥

यदि वोद्गतत्विषा मम परशुधारया तर्जितः भीतोऽसि, तर्हि वृथा ज्यानिघातेन कठिनाङ्गुलिरभयप्रार्थनाञ्जलिर्बध्यतामिति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—और यदि अधिकतर चमकती हुई मेरे फरसेकी धारसें तर्जित होकर तू डरगया है, तो वृथा ज्याके चिह्नसे कठिन अंगुलीवाली अभयकी याचना अंजली बांध ॥७८॥ (अर्थात्, हाथ जोडकर मुझसे अभयकी प्रार्थना कर)

एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः ॥

तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः । भीमदर्शने भार्गवे एवमुक्तवति सति राघवः स्मितविकंपिताधरः (सन्) तद्धनुर्ग्रहणमेव समर्थम् उत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । भीमदर्शने भार्गवे एवम् उक्तवति सति राघवेण स्मितविकंपिताधरेण (सता) तद्धनुर्ग्रहणमेव समर्थम् उत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ७९ ॥

रौद्रदर्शने परशुराम एवमुक्तवति सति रामो हासेन विकम्पिताधरः संस्तद्धनुर्ग्रहणमेवोचितमुत्तर-मङ्गीचकारेति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०-घोरदर्शनवाले परशुरामके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र हास्यसे होठ कँपाते हुए उस धनुषके ग्रहणकोही समर्थ उत्तर मानते भये ॥ ७९ ॥

पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत् ॥
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः॥८०॥

अन्वयः । पूर्वजन्मधनुषा समागतः सः अतिमात्रलघुदर्शनः अभवत् (तथाहि) नवांबुदः केवलः अपि सुभगः त्रिदशचापलांछितः किं पुनः ॥ ८० ॥

वाच्यप० । पूर्वजन्मधनुषा समागतेन तेन अतिमात्रलघुदर्शनेन अभूयत नवांबुदेन केवलेनापि सुभगेन त्रिदशचापलांछितेन किं पुनः ॥ ८० ॥

नारायणावतारे यद्धनुस्तेन संगतः स रामोऽत्यन्तप्रियदर्शनोऽभवत्तथाहि नवमेघः रिक्तोपि मनोहर इन्द्रधनुश्चिह्नितः किं पुनरिति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०-पूर्वजन्मके धनुषके प्राप्त होनेसे वह अत्यंत शोभित हुए, कारण कि नवीन मेघ स्वयं ही सुन्दर होता है, इन्द्रधनुषके संगम होनेसे तो फिर कहना ही क्या? ॥८०॥

तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च बलिनाधिरोपितम् ॥
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां धूमशेष इव धूमकेतनः ॥ ८१ ॥

अन्वयः । बलिना तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च अधिरोपितम् भूभृतां रिपुः च धूमशेषः धूमकेतन इव निष्प्रभः आस ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । बली सः भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च अधिरोपितवान् भूभृतां रिपुणा च धूमशेषेण धूमकेतनेन इव निष्प्रभेण बभूवे ॥ ८१ ॥

बलवता तेन रामेण पृथिव्यां निहितैककोटि तद्धनुश्चाधिरोपितं, राजशत्रुर्भार्गवश्च धूमशेषोऽग्निरिव निरतेजस्को बभूवेति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०-बलवान् उन रामचन्द्रने एक नोक पृथ्वीमें रखकर उस धनुषके ऊपर ज्या चढाई और क्षत्रियोंके शत्रु (परशुराम) धूआं बचीहुई अग्निके समान प्रभाहीन हुए ॥ ८१ ॥

तावुभावपि परस्परस्थितौ वर्द्धमानपरिहीनतेजसौ ॥
पश्यति स्म जनता दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकराविव॥ ८२ ॥

अन्वयः । परस्परस्थितौ वर्द्धमानपरिहीनतेजसौ तौ उभौ अपि दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकरौ इव जनता पश्यति स्म ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । परस्परास्थितौ वर्द्धमानपरिहीनतेजसौ तौ उभौ अपि दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकरौ इव जनतया दृश्येते स्म ॥ ८२ ॥

अन्योन्याभिमुखौ वर्द्धमानपरिहीनतेजसौ तौ राघवभार्गवावपि सायंकाले पर्वणि मत्रौ शशिसूर्यांविव जनसमूहः पश्यति स्मेति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०–आमने सामने खडे हुए बढते और घटते तेजवाले उन दोनोको, दिनके अन्तमें चन्द्रमा और सूर्यके समान मनुष्य देखते हुए ॥ ८२ ॥

तं कृपामृदुरवेक्ष्य भार्गवं राघवः स्खलितवीर्यमात्मनि ॥
स्वं च संहितममोघमाशुगं व्याजहार हरसूनुसंनिभः ॥ ८३ ॥

अन्वयः। हरसूनुसंनिभः कृपामृदुः राघवः आत्मनि स्खलितवीर्यं तं भार्गवं स्वं च संहितम् अमोघम् आशुगं च अवेक्ष्य व्याजहार ॥ ८३ ॥

वाच्यप०। हरसूनुसंनिभेन कृपामृदुना राघवेण आत्मनि स्खलितवीर्यं तं भार्गवं स्वं च संहितम् अमोघम् आशुगं च अवेक्ष्य व्याजह्रे ॥ ८३ ॥

स्कन्दसमः कृपामृदू राम आत्मनि विषये कुंठितशक्तिं तं भार्गवं निजं संहितममोघशरं चावेक्ष्य बभाष इति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०–कार्तिकेयके समान, दयासे कोमल रामचन्द्र अपनेमें पराक्रमहीन उन परशुरामको और अपने चढाये हुए अमोघ बाणको देखकर बोले ॥ ८३ ॥

न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि ॥
शंस किं गतिमनेन पत्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम्॥८४॥

अन्वयः। अभिभवत्यपि त्वयि विप्रः इति निर्दयं प्रहर्तुम् (अहम्) अलं नास्मि किं तु अनेन पत्रिणा ते गतिम् उत मखार्जितं लोकं हन्मि शंस ॥ ८४ ॥

वाच्यप०। अभिभवत्यपि त्वयि विप्र इति निर्दयं (मया) प्रहर्तुम् अलं न भूयते, किं तु अनेन पत्रिणा ते गतिः उत मखार्जितो लोकः हन्यते शस्यताम् ॥ ८४ ॥

अभिभवत्यपि त्वयि विप्र इति कारणात् निर्दयं प्रहर्तुं शक्तो नास्मि, किं त्वनेन बाणेन ते गमनं हन्मि वा यज्ञार्जितं स्वर्गं हन्मि ब्रूहीति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०–तुम हमें पराभव करनको उद्यतहुए तो भी ब्राह्मण जानकर निर्दयतासे तुमपर प्रहारकी इच्छा नहीं करता, कहो इस बाणसे मैं तुम्हारी गति अथवा यज्ञसे सिद्ध किये लोकोंको मिटाऊं ॥ ८४ ॥

प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम् ॥
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा॥८५॥

अन्वयः। ऋषिः तं प्रत्युवाच तत्त्वतः त्वां पुरातनं पुरुषं न वेद्मि इति न किं तु गां गतस्य तव वैष्णवं धाम दिदृक्षुणा मया कोपितः हि असि ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । ऋषिणा स प्रत्यूचे तत्त्वतः त्वं पुरातनः पुरुषः मया न विद्यसे इति न किं तु गां गतस्य तव वैष्णवं धाम दिदृक्षुरहं (त्वां) कोपितवान् अस्मि हि ॥ ८५ ॥

भार्गवस्तं रामं प्रत्यब्रवीत् तत्त्वतः त्वां पुरातनं पुरुषं वेद्मि, किन्तु भुवमवतीर्णस्य तव वैष्णवं तेजो द्रष्टुमिच्छुना मया कोपितो ह्यसीति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०-परशुरामजी उनसे बोले स्वरूपसे मैं तुमको पुरातन पुरुष नहीं जानता हूं यह नहीं, किं तु पृथ्वीमें प्राप्तहुए आपके वैष्णवतेज अवलोकनकी इच्छासे मैंने तुम्हें क्रोधित किया है ॥ ८५ ॥

भस्मसात्कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधांससागराम् ॥
आहितो जयविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया ॥८६॥

अन्वयः । पितृद्विषः भस्मसात् ससागरां वसुधां च पात्रसात् कृतवतः मे परमेष्ठिना त्वया आहितः जयविपर्ययोऽपि श्लाघ्यः एव ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । पितृद्विषः भस्मसात् ससागरां वसुधां च पात्रसात् कृतवतः मे परमेष्ठिना त्वय आहितेन जयविपर्ययेणापि श्लाघ्येन एव (भूयते) ॥ ८६ ॥

पितृवैरिणः कोपेन भस्मीकुर्वतः ससागरां भूमिं पात्राधीनां कृतवतः कृतकृत्यस्य मे परमपुरुषेण त्वया कृतः पराजयोपि श्लाघ्य एवेति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०-पिताके शत्रुओंके भस्म करने वाले और सागरपर्य्यंत पृथ्वी ब्राह्मणोंको देनेवाले मेरी तुम परमेश्वरसे की हुई पराजयभी बडाईके योग्य है ॥ ८६ ॥

तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे ॥
पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः । तत् हे मतिमतां वर ! पुण्यतीर्थगमनायेप्सितां मे गतिं रक्ष (किं तु) खिलीकृता स्वर्गपद्धतिः अभोगलोलुपं मां न पीडयिष्यति ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । + पुण्यतीर्थगमनाय ईप्सिता मे गतिः रक्ष्यतां (किं तु) खिलीकृतया स्वर्गपद्धत्या अभोगलोलुपोऽहं न पीडयिष्ये ॥ ८७ ॥

तस्माद्धे मतिमतां वर ! पवित्रतीर्थगमनायेप्सितां मे गतिं पालय, किन्तुस्वर्गपद्धतिः भोगनिस्पृहं मां न पीडयिष्यतीति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०-इसकारण हे मतिमतांवर ! पवित्रतीर्थमें जानेके निमित्त मेरी अभिलषित गतिकी तो रक्षा कीजिये, क्यों कि भोगमें इच्छा न करनेवाले मुझको स्वर्गपद्धतिकी प्राप्ति न होनी दुःख न देगी ॥ ८७ ॥

प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम् ॥
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः ॥ ८८ ॥

अन्वयः । राघवः तथेति प्रत्यपद्यत प्राङ्मुखः सायकं विससर्ज च सः सुकृतोपि भार्गवस्य दुरत्ययः स्वर्गमार्गपरिघः अभवत् ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । राघवेण तथेति प्रत्यपद्यत प्राङ्मुखेन सायकः विससृजे च तेनं सुकृतोपि भार्गवस्य दुरत्ययेन स्वर्गमार्गपरिघेण अभूयत ॥ ८८ ॥

रामस्तथेत्यंगीकृतवान् इन्द्रदिङ्मुखः वाणं विससर्ज च, सः शरः साधुकारिणोपि भार्गवस्य दुरतिक्रमः स्वर्गमार्गस्य प्रतिवन्धोऽभवादिति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०–रामचन्द्रने 'ऐसा ही हो' यह कहकर स्वीकार किया और पूर्वमुखकरके वाणको छोडा वह वाण पुण्यात्मा परशुरामके भी स्वर्गमार्गको कठिन मूसला वना ॥ ८८ ॥

राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत् ॥
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥ ८९ ॥

अन्वयः । राघवोपि क्षम्यताम् इति वदन् तपोनिधेः चरणौ समस्पृशत् (तथाहि) तरस्विनः तरसा निर्जितेषु शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥ ८९ ॥

वाच्यप० । राघवेणापि क्षम्यतामिति वदता तपोनिधेः चरणौ समस्पृश्येतां (तथाहि) तरस्विनां तरसा निर्जितेषु शत्रुषु प्रणत्यैव कीर्तये (भूयते) ॥ ८९ ॥

रामचन्द्रोपि क्षम्यतामिति वदन् भार्गवस्य चरणौ प्रणनाम तथाहि विक्रमवतां वलेन निर्जितेषु शत्रुपु प्रणतिरेव कीर्तये भवतीति सरलार्थः ॥ ८९ ॥

भा०–रामचन्द्रनेभी 'क्षमा करो' ऐसा कहतेहुए परशुरामजीके चरण ग्रहण किये, क्यों कि पराक्रमसे जीतेहुए शत्रुओंमें नम्र होना तेजस्वियोंकी कीर्ति वढानेवाला होता है ॥ ८९ ॥

राजसत्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा ॥
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः ॥ ९० ॥

अन्वयः । मातृकं राजसत्वम् अवधूय पित्र्यं शमं यदा गमितोस्मि तदा त्वया मम अनिंदितफलः अयं निग्रहः अनुग्रहीकृतः ननु ॥ ९० ॥

वाच्यप० । मातृकं राजसत्वम् अवधूय पित्र्यं शमं यदा (मां) गमितवान् असि (तदा) त्वं मम अनिंदितफलम् इमं निग्रहम् अनुग्रहीकृतवानसि ॥ ९० ॥

मातुरागतं रजोगुणप्रधानत्वमवधूय पितुरागतं शमं यदा गमितोस्मि, तदा त्वया ममापेक्षितत्वादगर्हितस्वर्गहानिलक्षणफलोयमपकारोप्यनुग्रहीकृत इति सरलार्थः ॥ ९० ॥

भा०–माताके वंशका रजोगुण त्याग कराकर पिताके सत्त्वगुणमें प्राप्त कराये हुए मुझपर वह निन्दारहित फलका दंड भी अनुग्रह ही किया है ॥ ९० ॥

साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः ॥
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे ॥९१॥

अन्वयः । अहं साधयामि देवकार्यम् उपपादयिष्यतस्ते अविघ्नम् अस्तु सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजम् इति वचः ऊचिवान् ऋषिः तिरोदधे ॥ ९१ ॥

वाच्यप० । मया साध्यते देवकार्यम् उपपादयिष्यतः ते अविघ्नम् (अविघ्नेन वा) भूयतां स लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजम् इति वचः ऊचुषा ऋषिणा तिरोदधे ॥ ९१ ॥

अहं गच्छामि सुरकार्यं संपादयिष्यतस्ते विघ्नाभावोस्तु सह लक्ष्मणं राममिति वचः उक्तवान् ऋषिरन्तर्दध इति सरलार्थः ॥ ९१ ॥

भा०—मै जाताहूं देवकार्य साधन करनेवाले तुम्हारी जय हो, लक्ष्मण सहित रामचन्द्रसे यह वचन कहते हुए ऋषि अन्तर्धान हुए ॥ ९१ ॥

तस्मिन्गते विजयिनं परिरभ्य रामं
स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम् ॥
तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः
कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः ॥ ९२ ॥

अन्वयः । तस्मिन्गते सति विजयिनं रामं पिता परिरभ्य स्नेहात् पुनः जातमेवामन्यत क्षणशुचः तस्य परितोषलाभः कक्षाग्निलंघिततरोः वृष्टिपातः इवाभवत् ॥ ९२ ॥

वाच्यप० । तस्मिन् गते सति विजयी रामः पित्रा परिरभ्य पुनर्जात एवामन्यत क्षणशुचस्तस्य परितोषलाभेन कक्षाग्निलंघिततरोः वृष्टिपातेनेवाभूयत ॥ ९२ ॥

भार्गवे गते सति विजयिनं रामं दशरथः स्नेहादालिङ्ग्य पुनर्जातमेवामन्यत, क्षणशुचस्तस्य नृपस्य संतोषप्राप्तिः दवाग्निनाभिहतस्य वृक्षस्य वृष्टिपात इवाभवदिति सरलार्थः ॥ ९२ ॥

भा०—उनके जानेपर विजयी रामको पिता (दशरथ) आलिंगन करके स्नेहसे फिर जन्मा हुआ मानते भये, क्षणमात्र शोच करनेवाले उस (राजा) को संतोषकी प्राप्ति, दावानलसे झुलसेहुए वृक्षपर वर्षा पड़नेके समान हुई ॥ ९२ ॥

अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्ये
कतिचिदवनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः ॥
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥ ९३ ॥

अन्वयः । अथ शर्वकल्पः अवनिपालः क्लृप्तरम्योपकार्ये पथि कतिचित् शर्वरीः गमयित्वा मैथिलीदर्शनीनामंगनानां लोचनैः कुवलयितगवाक्षां पुरम् अयोध्याम् अविशत् ॥ ९३ ॥

वाच्यप० ।अथ शर्वकल्पेनावनिपालेन क्लृप्तरम्योपकार्ये पथि कतिचित् शर्वरीः गमयित्वा मैथिलीदर्शनीनां लोचनैः कुवलयितगवाक्षा पूः अयोध्याऽविश्यत ॥ ९३ ॥

शिवकल्पः दशरथः क्लृप्तनवोपकार्ये तस्मिन्मार्गे कतिचिद्रात्रीर्गमयित्वा जनकसुतादर्शनीनां स्त्रीणां नेत्रैः कुवलयितगवाक्षां पुरमयोध्यां प्रविष्टवानिति सरलार्थः ॥ ९३ ॥

भा०—महादेवके समान राजाने अच्छी सजावटयुक्त मार्गमें कुछेक दिन बिताकर जानकीके देखनेवाली स्त्रियोंके नेत्ररूपी कमलोंसे भरेहुए गवाक्षों (झरोखों) वाली अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ।

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ॥
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ॥ १ ॥

अन्वयः । निर्विष्टविषयस्नेहः दशांतम् उपेयिवान् सः उषसि प्रदीपार्चिरिवासन्ननिर्वाणः आसीत् ॥ १ ॥

वाच्यप० । निर्विष्टविषयस्नेहेन दशांतम् उपेयुषा तेनोषसि प्रदीपार्चिषा इवासन्ननिर्वाणेनाभूयत ॥ १ ॥

भुक्तविषयस्नेहः वार्द्धकमुपेयिवान्स दशरथः उषसि दीपज्वालेवासन्नमोक्ष आसीदिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—विषयरूपी स्नेह चुक जानेसे दशाके अंतको प्राप्त होताहुआ वह (राजा) प्रातः समयके दीपककी लौके समान निर्वाणके निकट हुआ ॥ १ ॥

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ॥
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥ २ ॥

अन्वयः । जरा कैकेयीशंकया इव पलितच्छद्मना कर्णमूलम् आगत्य रामे श्रीर्न्यस्यताम् इति तम् आह ॥ २ ॥

वाच्यप० । जरया कैकेयीशंकयेव पलितच्छद्मना कर्णमूलम् आगत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति सः (दशरथः) ऊचे ॥ २ ॥

जरा कैकेयीशङ्कयेव केशादिशौक्ल्यस्य मिषेण कर्णसमीपमागत्य रामे राज्यलक्ष्मीर्निधीयतामिति तमाह, दशरथो वृद्धोऽहमिति विचार्य रामस्य यौवराज्याभिषेकमाचकाङ्क्षेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—वृद्ध अवस्था कैकेईके भयसे जैसे श्वेतबालोंके बहानेसे कानके निकट जाकर रामचन्द्रको यौवराज्य दो इस प्रकार उस (राजा) को कहती हुई ॥ २ ॥

सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः ॥
प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ॥ ३ ॥

अन्वयः । सा पौरकांतस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः कुल्योद्यानपादपानिव पौरान् प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे ॥ ३ ॥

वाच्यप० । तया पौरकांतस्य रामस्याभ्युदयश्रुत्या कुल्ययोद्यानपादपा इव पौराः प्रत्येकं ह्लादयांचक्रिरे ॥ ३ ॥

सा प्रकृतिप्रियस्य रामस्याभिषेकवार्ता कृत्रिमा सरिदुद्यानवृक्षानिव नागरानाह्लादयांचक्र इति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—वह पुरवासियोंके प्यारे रामचन्द्रके अभिषेककी वार्ता पानी की नाली बगीचेके वृक्षोंके समान प्रत्येक पुरवासियोंको प्रसन्न करती हुई ॥ ३ ॥

तस्याभिषेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया ॥
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ॥ ४ ॥

अन्वयः । क्रूरनिश्चया कैकेयी तस्य कल्पितम् अभिषेकसंभारं शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः दूषयामास ॥ ४ ॥

वाच्यप० । क्रूरनिश्चयया कैकेया तस्य कल्पितः अभिषेकसंभारः शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः दूषयामासे ॥ ४ ॥

कुटिलनिश्चया कैकेयी तस्य रामस्य संभृतमभिषेकस्योपकरणं शोकोष्णैर्दशरथस्याश्रुभिर्दूषयामासेति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—कुटिल मनोरथवाली कैकेयी उसकी संग्रह की हुई राजाकी सामग्रीको राजाके गरम २ शोकके आसुंओंसे दूषित करती हुई ॥ ४ ॥

सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ ॥
उद्वामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ॥ ५ ॥

अन्वयः । चंडी सा किल भर्त्रा आश्वासिता (सती) तत्संश्रुतौ वरौ इंद्रसिक्ता भूः बिलमग्नौ उरगौ इव उद्वाम ॥ ५ ॥

वाच्यप० । चंड्या तया किल भर्त्राऽऽश्वासितया (सत्या) तत्संश्रुतौ वरौ इन्द्रसिक्तया भुवा बिलमग्नौ उरगौ इवोद्वमाते ॥ ५ ॥

अतिकोपना सा किल दशरथेनानुनीता सती तेन भर्त्रा प्रतिज्ञातौ वरौ पुरन्दरेणाभिवृष्टा भूर्वल्मीकादौ मग्नावुरगाविवोज्जगारेति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—क्रोध करनेवाली स्वामीके अनुनय करने पर उसकी प्रतिज्ञा किये हुए दो वर दान, इन्द्रकी सींची हुई पृथ्वीके बिलमें बैठे हुए दो सांपके समान उगलती भई ॥ ५ ॥

तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत्समाः ॥
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ॥ ६ ॥

अन्वयः । (सा) तयोरेकेन रामं चतुर्दश समाः प्राव्राजयद् द्वितीयेन सुतस्य वैधव्यैकफलां श्रियम् ऐच्छत् ॥ ६ ॥

वाच्यप० । (तया) तयोरेकेन रामः चतुर्दशसमाः प्राव्रज्यत द्वितीयेन सुतस्य वैधव्यैकफला श्रीः ऐष्यत ॥ ६ ॥

सा तयोर्वरयोर्मध्य एकेन वरेण रामं चतुर्दश संवत्सरान् प्रावासयत्, द्वितीयेन वरेण पुत्रस्य भरतस्य स्ववैधव्यमात्रफलां श्रियमियेषेति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—वह उनमेंसे एकवरसे तो रामचन्द्रको चौदह वर्षको वनमें भेजती हुई और दूसरेसे पुत्रके निमित्त केवल अपनेको विधवारूपी फल देनेवाली लक्ष्मी मांगी ॥ ६ ॥

पित्रा दत्तां रुदन्रामः प्राङ् महीं प्रत्यपद्यत ॥
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥ ७ ॥

अन्वयः । रामः प्राक् पित्रा दत्तां महीं रुदन् प्रत्यपद्यत पश्चात् ‘ वनाय गच्छ ’ इति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥ ७ ॥

वाच्यप० । रामेण प्राक् पित्रा दत्ता मही रुदता प्रत्यपद्यत पश्चात् ‘ वनाय गच्छ ’ इति तदाज्ञा मुदितेनाग्राहि ॥ ७ ॥

रामः प्राक् दशरथेन दत्तां वसुधां रुदन्नङ्गीचकार, पश्चाद्वनाय गच्छेत्येवंरूपं पित्रनुशासनं मुदितोऽग्रहीदिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—रामचन्द्र पहिले पिताकी दी हुई पृथ्वीको रोते हुए स्वीकार करते हुए, पीछे ‘वनको जाओ’ इस आज्ञाको प्रसन्न हो ग्रहण करते हुए ॥ ७ ॥

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले ॥
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ॥ ८ ॥

अन्वयः । मंगलक्षौमे दधतः वल्कले वसानस्य च तस्य समं मुखरागं जनाः विस्मिताः ददृशुः ॥ ८ ॥

वाच्यप० । + + समः मुखरागः जनैः विस्मितैः ददृशे ॥ ८ ॥

मंगलक्षौमे दधतो वल्कले आच्छादयतश्च तस्य रामस्यैकविधं मुखवर्णं जनाः विस्मिताः ददृशुरिति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०—आनन्दके रेशमी वस्त्र पहनेहुए और वृक्षकी छाल धारण कियेहुए रामचंद्रके मुखकी कान्ति लोग चकित होकर एकसी देखते हुए ॥ ८ ॥

स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन् ॥
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः ॥ ९ ॥

अन्वयः । सः गुरुं सत्यादलोपयन् सीतालक्ष्मणसखः दंडकारण्यं विवेश सतां मनश्च प्रत्येकं विवेश ॥ ९ ॥

वाच्यप० । तेन गुरुं सत्यादलोपयता सीतालक्ष्मणसखेन दंडकारण्यं विविशे सतां मनश्च प्रत्येकं विविशे ॥ ९ ॥

स रामः दशरथं वरदानरूपात्सत्यादभ्रंशयन्सीतालक्ष्मणाभ्यां सहितः सन् दण्डकारण्यं विवेश सतां मनश्च प्रत्येकं विवेशेति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०—वह अपने पिताको सत्यसे न भ्रष्ट करके सीता लक्ष्मणसहित दण्डकारण्यमें और प्रत्येक सत्पुरुषके मनमें प्रवेश करते हुए ॥ ९ ॥

राजापि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम् ॥
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत ॥ १० ॥

अन्वयः । तद्वियोगार्तः राजापि स्वकर्मजं शापं स्मृत्वा शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभम् अमन्यत ॥ १० ॥

वाच्यप० । तद्वियोगार्तेन राज्ञापि स्वकर्मजं शापं स्मृत्वा शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभः अमन्यत ॥ १० ॥

पुत्रवियोगदुःखितो राजापि मुनिपुत्रवधरूपं स्वकर्मजं शापं स्मृत्वा शरीरत्यागेनैव प्रायश्चित्तमम न्यतेति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—उनके वियोगसे दुःखी हुआ राजाभी अपने कर्मसे उत्पन्न हुए शापको स्मरण करके शरीर त्यागमात्रसे ही शुद्धिलाभको मानताहुआ ॥ १० ॥

(शरवनके शापकी कथा पीछे लिख चुके हैं.)

विप्रोषितकुमारं तद्राज्यमस्तमितेश्वरम् ॥
रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ ॥ ११ ॥

अन्वयः । विप्रोषितकुमारम् अस्तमितेश्वरं तद्राज्यं रंध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषाम् आमिषतां ययौ ॥ ११ ॥

वाच्यप० । विप्रोषितकुमारेणास्तमितेश्वरेण तेन राज्येन रंध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषाम् आमिषता ययं ॥ ११ ॥

गतकुमारं नष्टेश्वरं तद्राष्ट्रं रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणां भोग्यवस्तुतां ययाविति सरलार्थः ॥११॥

भा०–गयेहुए पुत्रों और मृतक राजावाला वह राज्य, छिद्र देखनेमें चतुर शत्रुओंका भोजन हुआ ॥ ११ ॥

अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम् ॥
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ १२ ॥

अन्वयः । अथ अनाथाः प्रकृतयः मातृबंधुनिवासिनं भरतं स्तंभिताश्रुभिः मौलैरानाययामासुः ॥ १२ ॥

वाच्यप० । अथ अनाथाभिः प्रकृतिभिः मातृबंधुनिवासी भरतः स्तंभिताश्रुभिर्मौलैः आनाययामासे ॥ १२ ॥

अनाथा अमात्याः मातृबन्धुषु निवासिनं भरतं स्तंभितबाष्पैराप्तैर्मन्त्रिभिरागमयाञ्चक्रुरिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–इसके उपरान्त दीन प्रजा मामाके घर बसते हुए भरतको आंसू रोके विश्वस्त मंत्रियोंसे बुलवाती हुई ॥ १२ ॥

श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः ॥
मातुर्न केवलं स्वस्याः श्रियोऽप्यासीत्पराङ्मुखः ॥ १३ ॥

अन्वयः । कैकेयीतनयः पितुः तथाविधं मृत्युं श्रुत्वा केवलं स्वस्याः मातुर्न (किं तु) श्रियः अपि पराङ्मुखः आसीत् ॥ १३ ॥

वाच्यप० । कैकेयीतनयेन पितुः तथाविधं मृत्युं श्रुत्वा केवलं स्वस्याः मातुर्न (किं तु) श्रियोपि पराङ्मुखेण अभूयत ॥ १३ ॥

कैकयीपुत्रः भरतः दशरथस्य तथाविधं स्वमातृमूलं मरणं श्रुत्वा केवलं मातुरेव पराङ्मुखो न किन्तु श्रियोऽपि पराङ्मुख आसीदिति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–कैकेईके पुत्र (भरत) पिताका इस प्रकार मृत्यु सुनकर केवल अपनी माताहीसे नहीं किन्तु राजलक्ष्मीसेभी विमुख होते हुए ॥ १३ ॥

ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः ॥
तस्य पश्यन्ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान् ॥ १४ ॥

अन्वयः । ससैन्यः रामम् अन्वगाच (किं कुर्वन्) आश्रमालयैः दर्शितान्ससौमित्रेः तस्य वसतिद्रुमान् पश्यन् उदश्रुः (रुदन्) ॥ १४ ॥

वाच्यप० । ससैन्येन रामः अन्वगायि च (किं कुर्वता) आश्रमालयैः दर्शितान् ससौमित्रेः तस्य वसतिद्रुमान् पश्यता (अत एव) उदश्रुणा (रुदता) ॥ १४ ॥

ससैन्यः भरतः वनवासिभिर्दर्शितसलक्ष्मणरामनिवासवृक्षान् पश्यन् रुदन्सन् राममन्वगाच्चेति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-वनवासियोंके दिखाये हुए उन लक्ष्मणके सखा (रामचन्द्र) के निवास स्थानोंके वृक्षोंको देखकर आंसू त्यागते हुए सेना सहित रामके पीछे गये ॥ १४ ॥

चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः ॥

लक्ष्म्या निमन्त्रयांचक्रे तमनुच्छिष्टसंपदा ॥ १५ ॥

अन्वयः । (सः भरतः) चित्रकूटवनस्थं तं (रामं) च गुरोः कथितस्वर्गतिः (सन्) अनुच्छिष्टसंपदा लक्ष्म्या निमंत्रयांचक्रे ॥ १५ ॥

वाच्यप० । (तेन भरतेन) चित्रकूटस्थः स (रामः) च गुरोः कथितस्वर्गतिना अनुच्छिष्टसंपदा लक्ष्म्या निमंत्रयांचक्रे ॥ १५ ॥

चित्रकूटवनवासिनं तं रामं कथितापितृमरणः सन्ननुभूताशिष्टसंपदा लक्ष्म्याहूतवानिति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-वह भरत चित्रकूटमें स्थित उन रामचन्द्रसे स्वर्गमें गये पिताकी गति कह कर, विना स्पर्श की हुई राजलक्ष्मी भोगनेके निमित्त लौटनेको कहते हुए ॥ १५ ॥

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे ॥

परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः ॥ १६ ॥

अन्वयः । स हि (भरतः) प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे सति भुवः स्वीकरणादात्मानं परिवेत्तारं मेने ॥ १६ ॥

वाच्यप० । तेन हि (भरतेन) प्रथमजे तस्मिन् अकृतश्रीपरिग्रहे सति भुवः स्वीकरणात् आत्मा परिवेत्ता मेने ॥ १६ ॥

स हि भरताग्रजे रामेऽकृतलक्ष्मीपरिग्रहे सति स्वयं पृथिव्याः स्वीकरणादात्मानं परिवेत्तारं मेने इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०-वह भरत रामचन्द्रके लक्ष्मी स्वीकार न करनेपर पृथ्वीके स्वीकार करनेसे अपनेको परिवेत्ता मानते हुए ॥ १६ ॥

(बडे भाईके व्याह न होनेपर जो छोटा भाई व्याह कर ले वह परिवेत्ता कहलाता है, उसे दोष लगता है)

तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिणः पितुः ॥

ययाचे पादुके पश्चात्कर्तुं राज्याधिदेवते ॥ १७ ॥

अन्वयः । (सः भरतः) स्वर्गिणः पितुः निदेशात् अपाक्रष्टुम् अशक्यं तं (रामं) पश्चाद्राज्याधिदेवते कर्तुं पादुके ययाचे ॥ १७ ॥

वाच्यप० । (तेन भरतेन) स्वर्गिणः पितुः निदेशात् अपाक्रष्टुम् अशक्यः (रामः) पश्चाद्राज्याधिदेवते कर्तुं पादुके ययाचे ॥ १७ ॥

स्वर्गिणः दशरथस्य निदेशान्निवर्तयितुमशक्यं तं रामं पश्चात्स्वामिन्यौ कर्तुं पादुके ययाच इति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—वह भरत स्वर्गमें गये पिताकी आज्ञासे लौटानेमें अशक्य उन रामचन्द्रसे पीछे राज्यका अधिदेवता बनानेके लिये खडाऊं मांगता हुआ ॥ १७ ॥

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत्पुरीम् ॥
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ॥ १८ ॥

अन्वयः । भ्रात्रा तथेत्युक्त्वा विसृष्टः (सन्) पुरीं नाविशदेव (किं तु) नंदिग्रामगतः (सन्) तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ॥ १८ ॥

वाच्यप० । तेन भ्रात्रा तथेत्युक्त्वा विसृष्टेन (सता) पुरी नाविश्यतैव (किं तु) नंदिग्रामगतेन (सता) तस्य राज्यं न्यास इवाभुज्यत ॥ १८ ॥

स भरतस्तथेत्युक्त्वा रामेण विसृष्टः सन् पुरीमयोध्यां नाविशदेव किन्तु नन्दिग्रामगतः सँस्तस्य रामस्य राज्यं निक्षेपमिवापालयदिति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—भाईसे "योंही" हो ऐसा कहकर विदा किये भरत पुरीमें प्रवेश न करते हुए, नन्दीगावमें जाकर उनके राज्यकी धरोहरकी नाईं रक्षा करने लगे ॥ १८ ॥

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः ॥
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत् ॥ १९ ॥

अन्वयः । ज्येष्ठे दृढभक्तिः (अत एव) राज्यतृष्णापराङ्मुखः भरतः इति मातुः पापस्य प्रायश्चित्तम् अकरोदिव ॥ १९ ॥

वाच्यप० । ज्येष्ठे दृढभक्तिना राज्यतृष्णापराङ्मुखेन भरतेन इति मातुः पापस्य प्रायश्चित्तम् अक्रियत इव ॥ १९ ॥

ज्येष्ठे दृढप्रीती राज्यतृष्णापराङ्मुखो भरत इति पूर्वोक्तप्रकारेण मातुः पापस्य दूरीकरणार्थं प्रायश्चित्तमिवाकरोदिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—ज्येष्ठ भाईमें दृढ प्रीतिके कारण राज्यकी तृष्णासे विमुख हुए भरतजी इस प्रकार माताके पापका प्रायश्चित्त करते हुए ॥ १९ ॥

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन् ॥
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा ॥ २० ॥

अन्वयः । सानुजः शान्तः रामोऽपि वैदेह्या सह वने वन्येन वर्त्तयन् वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा चचार ॥ २० ॥

वाच्यप० । सानुजेन शांतेन रामेणापि वैदेह्या सह वने वन्येन वर्त्तयता वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं यूना चेरे ॥ २० ॥

सलक्ष्मणः शान्तो रामोपि सीतया सह वने कन्दमूलादिना वृत्तिं कुर्वन् वृद्धेक्ष्वाकूणां व्रतं कुर्वन्निव यौवनस्थः एव चचार ॥ २० ॥

भा०-लक्ष्मण सहित शान्तात्मा रामचन्द्र भी जानकीके संग वनके पदार्थोंसे जीविका करके वनमें जाते हुए वृद्ध इक्ष्वाकुवंशियोंके व्रतको युवा (अवस्थामें) ही करते हुए ॥ २० ॥

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम् ॥
कदाचिदंके सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात् ॥ २१ ॥

अन्वयः । सः रामः कदाचित् प्रभावस्तंभितच्छायं वनस्पतिम् आश्रितः (सन्) किंचित् श्रमादिव सीतायाः अंके शिश्ये ॥ २१ ॥

वाच्यप० । तेन रामेण कदाचित् प्रभावस्तंभितच्छायं वनस्पतिमाश्रितेन (सता) किंचित् श्रमादिव सीताया अंके शिश्ये ॥ २१ ॥

स रामः कदाचित्स्वमहिम्ना स्थिरीकृतच्छायं वनस्पतिमाश्रितः सन्नीषच्छ्रमादिव जनकसुताया उत्सङ्गे सुष्वापेति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—वह रामचन्द्र किसी समय प्रभावसे स्थित की हुई छायावाले वृक्षका सहारा लिये कुछेक श्रमित हुएसे जानकीकी गोदीमें सो गये ॥ २१ ॥

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः ॥
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन् ॥ २२ ॥

अन्वयः । ऐंद्रिः द्विजः तस्याः स्तनौ प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यम् आचरन्निव नखैः विददार किल ॥ २२ ॥

वाच्यप० । ऐंद्रिणा द्विजेन तस्याः स्तनौ प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यम् आचरता इव (सता) विदद्राते ॥ २२ ॥

इन्द्रस्य पुत्रः पक्षीभूतः काकः सीतायाः स्तनौ रामस्योपभोगचिह्नेषु दुःश्लिष्टदोषघातं कुर्वन्निव नखैर्विलिलेखेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-प्रसिद्ध है कि ऐन्द्रि पक्षी (काकरूप बनाये हुए इन्द्रके पुत्र जयन्त) ने उसके तनोंको पतिके नखके चिह्नोंमें खोटा आचरण करके कुरेदा ॥ २२ ॥

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः ॥
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः ॥ २३ ॥

अन्वयः। रामावबोधितः रामः तस्मिन् इषीकास्त्रम् आस्थत् सः (भ्रांतश्च सन्) एकनेत्र-व्ययेन तस्मात् आत्मानं मुमुचे ॥ २३ ॥

वाच्यप०। रामावबोधितेन रामेण तस्मिन् इषीकास्त्रम् आसि तेन (भ्रांतेन च सता) एक-नेत्रव्ययेन तस्मात् आत्मा मुमुचे ॥ २३ ॥

सीतयावबोधितो रामस्तस्मिन् काके काशास्त्रमस्यति स्म, स काक एकनेत्रस्य दानेन तस्माद-स्त्रादात्मानं मुक्तवानिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—जानकीसे जगाये हुए रामचन्द्र उसपर इषीकास्त्र चलाते हुए, वह (भ्रमता हुआ) एक नेत्र देकर उससे मुक्त हुआ ॥ २३ ॥

रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भरतागमनं पुनः ॥
आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ ॥ २४ ॥

अन्वयः। रामस्तु आसन्नदेशत्वात्पुनः भरतागमनम् आशंक्य उत्सुकसारंगां चित्रकूट-स्थलीं जहौ ॥ २४ ॥

वाच्यप०। रामेण तु आसन्नदेशत्वात्पुनः भरतागमनम् आशंक्य उत्सुकसारंगा चित्र-कूटस्थली जहे ॥ २४ ॥

रामस्तु निकटदेशकारणात्पुनर्भरतागमनमाशङ्क्योत्कण्ठितहरिणां चित्रकूटस्थलीं तत्याजेति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—रामचन्द्र तो देशके निकटहोनेसे फिर भरतके आगमनकी आशंका करके उत्कंठितहरिणोंवाली चित्रकूटकी भूमिको त्यागते हुए ॥ २४ ॥

प्रययावातिथेयेषु वसन्नपि कुलेषु सः ॥
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः ॥ २५ ॥

अन्वयः। सः आतिथेयेषु ऋषिकुलेषु वार्षिकेषु ऋक्षेषु भास्करः इव वसन् दक्षिणां दिशं प्रययौ ॥ २५ ॥

वाच्यप०। तेनातिथेयेषु ऋषिकुलेषु वार्षिकेषु ऋक्षेषु भास्करेणेव वसता सता दक्षिणा दिक् प्रयये ॥ २५ ॥

स रामः अतिथिषु साधुषु मुन्याश्रमेषु वार्षिकनक्षत्रेषु सूर्य इव वसन् दक्षिणां दिशं ययाविति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—वह (रामचन्द्र) अतिथि सत्कार करनेवाले मुनियोंके आश्रमोंमें वर्षाके नक्षत्रोंमें सूर्यके समान वसते हुए दक्षिण दिशाको गये ॥ २५ ॥

बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता ॥
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी ॥ २६ ॥

अन्वयः । तम् अनुगच्छंती विदेहाधिपतेः सुता कैकेय्या प्रतिषिद्धापि गुणोन्मुखी लक्ष्मी-रिव बभौ ॥ २६ ॥

वाच्यप० । तम् अनुगच्छंत्या विदेहाधिपतेः सुतया कैकेय्या प्रतिषिद्धयापि गुणोन्मुख्य लक्ष्म्या इव बभे ॥ २६ ॥

तं राममनुव्रजन्ती सीता कैकेय्या निवारितापि गुणोत्सुका राजलक्ष्मीरिव बभाविति सरलार्थः २६

भा०–उनके पीछे जातीहुई जनकसुता केकईकी निषेधकरी भी गुणग्राहिणी राज-लक्ष्मीके समान शोभित हुई ॥ २६ ॥

अनुसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम् ॥
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम् ॥ २७ ॥

अन्वयः । साऽनुसूयातिसृष्टेन पुण्यगंधेनांगरागेण काननं पुष्पोच्चलितषट्पदं चकार ॥ २७ ॥

वाच्यप० । तयाऽनुसूयातिसृष्टेन पुण्यगंधेनांगरागेण काननं पुष्पोच्चलितषट्पदं चक्रे ॥ २७ ॥

सा सीताऽत्रिभार्यया दत्तेन पवित्रगन्धेनाङ्गरागेण वनं कुसुमोच्चलितभ्रमरं चकारेति सर-लार्थः ॥ २७ ॥

भा०–वह जानकी अनसूयाके दिये हुए सुगन्धि भरे अंगरागसे भौंरोंका वनके फूलोंसे चलनेवाला करती हुई (अर्थात् उसकी सुगंधिसे भौंरे वनके फूल छोड उसके निकट आये) ॥ २७ ॥

संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः ॥
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः ॥ २८ ॥

अन्वयः । संध्याभ्रकपिशः विराधो नाम राक्षसः इंदोः ग्रह इव तस्य रामस्य मार्गम् आवृत्या-तिष्ठत् ॥ २८ ॥

वाच्यप० । संध्याभ्रकपिशेन विराधेन नाम राक्षसेन इंदोः ग्रहेण इव तस्य मार्गम् आवृत्य अस्थीयत ॥ २८ ॥

संध्यामेघकपिशो विराधो नाम राक्षस. राहुरिन्दोरिव तस्य रामस्याध्वानमवरुध्यातिष्ठदिति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०–संध्याके बादलके समान लाल विराधनाम राक्षस, चन्द्रमाका राहु जैसे उन रामका मार्ग रोकता हुआ ॥ २८ ॥

स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः ॥
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे ॥ २९ ॥

अन्वयः । लोकशोषणः सः तयोर्मध्ये मैथिलीं नभोनभस्ययोर्मध्ये वृष्टिम् अवग्रह इव जहार ॥ २९ ॥

वाच्यप० । लोकशोषणेन तेन तयोर्मध्ये मैथिली नभोनभस्ययोर्मध्ये वृष्टिः अवग्रहेण इव जह्रे ॥ २९ ॥

लोकस्य शोषकः स राक्षसस्तयो रामलक्ष्मणयोर्मध्ये जानकीं श्रावणभाद्रपदयोर्मध्ये वर्षप्रतिबन्ध इव जहारेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—लोकके सुखानेवाले उस दैत्यने दोनोंके बीचमें जानकीको सावन और भादोंके बीचमेंसे वर्षाके समान हरण की ॥ २९ ॥

तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम् ॥
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः ॥ ३० ॥

अन्वयः । काकुत्स्थौ तं विनिष्पिष्य अशुचिना गंधेन स्थलीं दूषयति पुरा इति (हेतोः वसुधायां निचख्नतुश्च ॥ ३० ॥

वाच्यप० । काकुत्स्थाभ्यां स विनिष्पिष्य अशुचिना गंधेन स्थलीं दूषयति पुरा इति (हेतो : वसुधायां निचख्ने च ॥ ३० ॥

काकुत्स्थौ रामलक्ष्मणौ तं विराधं हत्वाऽपवित्रेण गन्धेनाश्रमभुवं पुरा दूषयतीति हेतोः भूमौ खनित्वा निक्षिप्तवन्तौ चेति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—राम लक्ष्मण उसको मारकर अपवित्र गंधिसे आश्रमभूमिको आगे दूषित करेगा इसकारण उसे पृथ्वीमें गाड़ते हुए ॥ ३० ॥

पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः ॥
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव ॥ ३१ ॥

अन्वयः । ततः रामः कुंभजन्मनः शासनात् पंचवट्यां विंध्याद्रिः प्रकृतौ इव अनपोढस्थितिः तस्थौ ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । ततः रामेण कुंभजन्मनः शासनात्पंचवट्यां विंध्याद्रिणा प्रकृतौ इव अनपोढस्थितिना तस्थे ॥ ३१ ॥

ततो रामः अगस्त्यस्य वचनात् पञ्चवट्यां विन्ध्याचलः वृद्धेः पूर्वावस्थायामिवातिक्रान्तमर्यादः तस्थाविति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—इसके उपरान्त मर्यादा न उलंघनकरनेवाले रामचन्द्र अगस्त्यकी आज्ञासे पंचवटीमें, प्रथम अवस्थामें विंध्याचलपर्वतके समान स्थित हुए ॥ ३१ ॥

(एक समय विन्ध्याचलपर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके निमित्त ऊंचा बढने लगा तब देवताओंके कहनेसे अगस्त्यजी उस विन्ध्याचल अपने शिष्यके निकट गये, उस समय इसने प्रणाम किया, तब अगस्त्यजीने कहा जबतक हम दक्षिणदिशासे लौटकर आवें तबतक तुम इसी प्रकार रहो, उसने स्वीकार किया अगस्त्यजी आजतक दक्षिण दिशासे नहीं लौटे)

रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा ॥
अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः । तत्र मदनातुरा रावणावरजा राघवं निदाघार्त्ता व्याली मलयद्रुममिव अभिपेदे ॥३२॥

वाच्यप० । तत्र मदनातुरया रावणावरजया राघवः निदाघार्तया व्याल्या मलयद्रुम इव अभिपेदे ॥ ३२ ॥

तत्र पञ्चवट्यां कामातुरा शूर्पणखा रामं घर्मव्याकुला भुजंगी चन्दनवृक्षमिव प्रापेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०—तहां कामपीडित रावणकी भगिनी (शूर्पणखा) रामचन्द्रके निकट (आई) मानों गरमीसे पीडित हुई सर्पिणी मलयाचलके वृक्षके निकट प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥

सा सीतासंनिधावेव तं वव्रे कथितान्वया ॥
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः ॥ ३३ ॥

अन्वयः । सा सीतासन्निधौ एव कथितान्वया (सती) तं वव्रे (तथाहि) अत्यारूढः नारीणां मनोभवः अकालज्ञः हि ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । तया सीतासान्निधौ एव कथितान्वयया (सत्या) स वव्रे (तथाहि) अत्यारूढेन नारीणां मनोभवेनाकालज्ञेन (भूयते) ॥ ३३ ॥

सा निशाचरी सीतासमीपकथितस्ववंशा सती, रामं वृतवती, तथाहि अतिवृद्धो नारीणां मदनोऽवसरज्ञो न भवतीति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०—वह जानकीके निकटही अपना वंश वर्णन करके उनसे वरनेको कहती हुई, कारण कि प्रबलहुआ स्त्रियोंका कामदेव समयका न जाननेवाला होताहै ॥ ३३ ॥

कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे ॥
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः । वृषस्कंधः रामः वृषस्यंतीं तां हे बाले अहं कलत्रवान् मे कनीयांसं भजस्व इति शशास ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । वृषस्कंधेन रामेण वृषस्यंती सा हे बाले अहं कलत्रवान् मे कनीयांसं भजस्व इति शशासे ॥ ३४ ॥

वृषस्कंधो रामः पुरुषमिच्छन्तीं तां राक्षसीं हे बाले ! अहं कलत्रवान् मे कनिष्ठं भजस्वे-त्याज्ञापितवानिति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०–वृषके समान स्कंधवाले रामचन्द्रने उस पुरुषकी चाहना करनेवालीसे " हे बाले मैं स्त्रीवाला हूं तू मेरे छोटे भाईको भज " ऐसा कहा ॥ ३४ ॥

ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिता ॥
साभूद्रामाश्रया भूयो नदीवोभयकूलभाक् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । पूर्वं ज्येष्ठाभिगमनात् तेनापि अनभिनंदिता भूयः रामाश्रया सा उभयकूलभाक् नदीवाभूत् ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । पूर्वं ज्येष्ठाभिगमनात्तेनापि अनभिनंदितया भूयः रामाश्रयया तयोभयकूलभाजा नद्या इव अभावि ॥ ३५ ॥

पूर्वं ज्येष्ठाभिगमनात्तेन लक्ष्मणेनापि नाङ्गीकृता, भूयो रामाश्रया सा शूर्पणखोभयकूलभाक् सरिदिवाभूदिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०–प्रथम बडे भाईके निकट जानेसे उन (लक्ष्मण) सेभी न स्वीकार की हुई वह फिर रामकी ओर आती हुई, दोनों किनारोंकी ओर जाती नदीके समान हुई ॥ ३५ ॥

संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम् ॥
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः ॥ ३६ ॥

अन्वयः । मैथिलीहासः क्षणसौम्यां तां चंद्रोदयः उदधेः निवातस्तिमितां वेलामिव संरंभं निनाय ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । मैथिलीहासेन क्षणसौम्या सा चंद्रोदयेन उदधेः निवातस्तिमिता वेलेव संरंभं निन्ये ॥ ३६ ॥

मैथिलिहासः क्षणं सौम्याकारां तां राक्षसीं निश्चलां सागरस्य वेलां चंद्रोदय इव संक्षोभं निनायेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–जानकीका हँसना उस क्षणमात्रको सौम्य हुईको मानो चंद्रमाका उदय-सागरकी पवनरहित निश्चल मर्यादाके समान क्षुभित करता हुआ. (-मायासे सुशील रूप धारण करलियाथा अब जानकीके हँसनेसे कुपित हुई) ॥ ३६ ॥

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ॥
मृग्याः परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहि त्वया कृतम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः । अस्य उपहासस्य फलं सद्यः प्राप्स्यसि मां पश्य, त्वया कृतं व्याघ्र्यां मृग्याः परिभव इत्यवेहि ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । अस्योपहासस्य फलं सद्यः प्राप्स्यते (त्वया) अहं दृश्ये, त्वया कृतं व्याघ्र्यां मृग्याः पारिभवः इति अवेयताम् ॥ ३७ ॥

अस्योपहासस्य फलं संप्रत्येव प्राप्स्यसि मां पश्य त्वया कृतमुपहासरूपं व्याघ्र्यां विषये मृग्याः पारिभव इत्यवेहि इति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-इस उपहासका फल शीघ्रही प्राप्त करेगी, मुझे देख, इस अपने किये हुए,. को, वाघिन्में हरिणीके किये हुए तिरस्कारके समान जान ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्के निविशतीं भयात् ॥
रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥

अन्वयः । भयाद्भर्तुरंके निविशतीं मैथिलीम् इति उक्त्वा शूर्पणखा नाम्नः सदृशं रूपं प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । शूर्पणखया इति विशेषः ॥ ३८ ॥

भयाद्भर्तुरुत्संगे निविशन्तीं मैथिलीमित्युक्त्वा शूर्पणखा नाम्ना सदृशमाकारं स्वीचकारेति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-डरकेमारे पतिकी गोदीमें जाती हुई जानकीको यह कहकर शूर्पणखा नामके समान रूपको धारती हुई ॥ ३८ ॥ (इसके नख छाजसे थे)

लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम् ॥
शिवाघोरस्वनां पश्चाद्बुबुधे विकृतेति ताम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः । लक्ष्मणः प्रथमं कोकिलामंजुवादिनीं पश्चात् शिवाघोरस्वनां तां श्रुत्वा विकृतेति बुबुधे ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । लक्ष्मणेन सेति इति विशेषः ॥ ३९ ॥

लक्ष्मणः प्रथमं कोकिलावद्वल्गुभाषिणीं पश्चाच्छिवावद्धोरस्वनां तां शूर्पणखां श्रुत्वा विकृता मायाविनीति ज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-लक्ष्मणने प्रथम कोकिलाके समान मनोहर वचन बोलनेवाली पीछे शिवा (गीदडनी) के समान घारशब्द करती हुईको श्रवणकर मायाविनी है ऐसा जाना ॥ ३९ ॥

पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः ॥
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत् ॥ ४० ॥

अन्वयः । अथ सः विकृष्टासिः (सन) क्षिप्रं पर्णशालां प्रविश्य भीषणां तां वैरूप्यपौनरुक्त्येन अयोजयत् ॥ ४० ॥

वाच्यप० । अथ तेन विकृष्टासिना (सता) पर्णशाला प्रविश्य भीषणा सा वैरूप्यपौनरुक्त्येन अयोज्यत ॥ ४० ॥

अथ स लक्ष्मणः कोशोद्धृतखड्गस्सन् शीघ्रं पर्णशालां प्रविश्य, भीषणां तां राक्षसीं वैरूप्यस्य पौनरुक्त्येन योजितवानिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०–इसके उपरान्त वह (लक्ष्मण) खड्ग निकाले हुए शीघ्र पर्णशालामें प्रवेश कर उस कुरूपिणीको दुगुनी कुरूपिणी करते हुए ॥ ४० ॥

सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया ॥
अंकुशाकारयांगुल्या तावतर्जयदम्बरे ॥ ४१ ॥

अन्वयः । सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया (अत एव) अंकुशाकारया अंगुल्या तौ अंबरे अतर्जयत् ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । तया वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया (अत एव) अंकुशाकारयांगुल्या तौ अंबरेऽतर्ज्येताम् ॥ ४१ ॥

सा कुटिलनखधारिण्या वंशवत्कठोरपर्वयांकुशाकृत्यांगुल्या तौ रामलक्ष्मणावाकाशे स्थिताभर्त्सयदिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०–वह कुटिलनख धारण करनेवाली वांसके समान कठिन पोरोंवाली अंकुशके सदृश उंगलीवाली उन दोनोंको आकाशमें धमकाती हुई ॥ ४१ ॥

प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम् ॥
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः । (सा) आशु जनस्थानं प्राप्य खरादिभ्यः तथाविधं रामोपक्रमं तं नवं रक्षःपरिभवम् आचख्यौ च ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । (तया) आशु जनस्थानं प्राप्य खरादिभ्यः तथाविधः रामोपक्रमं (न तु रामोपक्रमः) सः नवः रक्षःपरिभवः आचख्ये च ॥ ४२ ॥

सा शीघ्रमेव जनस्थानं प्राप्य खरादिभ्यो राक्षसेभ्यः तथाविधं स्वाङ्गच्छेदात्मकं रामोपक्रमं तन्नवं निशाचराणां पराजयमाचख्यौ चेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–(वह शूर्पणखा) शीघ्र जनस्थानमें प्राप्त होकर खरादि राक्षसोंसे इस प्रकारसे रामचन्द्रसेही प्रथम किएहुए उस राक्षसके नये तिरस्कारको कहती हुई ॥ ४२ ॥

मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः ॥
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः । नैर्ऋता मुखावयवलूनां तां पुरो दधुः यत्तदेव रामाभियायिनां तेषाम् अमंगलम् अभूत् ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । नैर्ऋतैः मुखावयवछूना सा पुरो दधे यत् तेनैव रामाभियायिनां तेषाम् अमंगलेनाभावि ॥ ४३ ॥

राक्षसाः कर्णादिषु छिन्नां तामग्रे चक्रुरिति, यत्तदेव राममभिद्रवतां तेषाममंगलमभूदिति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–राक्षसोंने जो उस नाक कान कटी हुईको आगे किया, वही रामचन्द्रपर चढाई करनेवाले उन्होंका अमंगल हुआ ॥ ४३ ॥

उदायुधानापततस्तान्दृप्तान्प्रेक्ष्य राघवः ॥
निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे ॥ ४४ ॥

अन्वयः । उदायुधानापततः दृप्तांस्तान्प्रेक्ष्य राघवः चापे विजयाशंसां लक्ष्मणे सीतां च निदधे ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । उदायुधानापततः दृप्तांस्तान् प्रेक्ष्य राघवेण चापे विजयाशंसा लक्ष्मणे सीता च निदधे ॥ ४४ ॥

उद्यतायुधानागच्छतो दृप्तांस्तान् खरादीन् प्रेक्ष्य रामश्चापे विजयाशां लक्ष्मणे सीतां च निदधे इति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–आयुध उठाकर आतेहुए अहंकारी उन (राक्षसोंको) देखकर रामचंद्र जयकी आशाको धनुषमें और सीताको लक्ष्मणमें सौंपते हुए ॥ ४४ ॥

एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः ॥
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः ॥ ४५ ॥

अन्वयः । दशरथिः एकः यातुधानाः कामं सहस्रशः, तैस्तु सः आजौ ते यावंत एव तावान्ददृशे च ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । दाशरथिना एकेन (बभूवे) यातुधानैः कामं सहस्रशः (बभूवे) ते तम् आजौ तैर्यावद्भिः (बभूवे) तावंतम् एव ददृशुश्च ॥ ४५ ॥

दाशरथी रामोऽद्वितीयः निशाचराः कामं सहस्रशः, ते यावत्संख्याकास्तैस्तावत्संख्याक एव रामः संग्राम ददृश इति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–रामचन्द्र एकही और राक्षस सहस्रों थे परन्तु उन्हे वे (राम) संग्राममें वे जितने थे तितनेही दीखे ॥ ४५ ॥

असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम् ॥
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । अथ शुभाचारः सः काकुत्स्थः असज्जनेन प्रयुक्तं दूषणम् आत्मनः दूषणमिव न चक्षमे ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । अथ शुभाचारेण तेन काकुत्स्थेन असज्जनेन प्रयुक्तः दूषणः आत्मनः दूषणम् इव न चक्षमे ॥ ४६ ॥

अथ रणे साधुचारी सद्वृत्तश्च स रामः दुर्जनेन रक्षोजनेन प्रेषितं दूषणाख्यं राक्षसमात्मनो दोषमिव न सेह इति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–तब अच्छे आचरणवाले रामचन्द्र वैरियोंके प्रेरे हुए दूषण (नामराक्षस) को अपने दूषणके समान न सहते हुए ॥ ४६ ॥

तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः ॥
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोद्ययुः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । सः तं खरत्रिशिरसौ च शरैः क्रमशः प्रतिजग्राह, ते पुनस्तस्य चापात् समम् इव उद्ययुः ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । तेन सः खरत्रिशिरसौ च शरैः क्रमशः प्रतिजगृहिरे, तैः पुनः तस्य चापात्सममिव उद्यये ॥ ४७ ॥

स रामस्तं दूषणं खरत्रिशिरसौ च मार्गणैः प्रतिजहार, यथाक्रमं प्रयुक्ता अपि ते शराः पुनश्चापाद्युगपदिवोद्ययुरिति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–वह रामचन्द्र उसे और खर त्रिशिराको बाणोंद्वारा क्रमसे ग्रहण करते हुए वे (बाण) उन (रामचन्द्र) के धनुषसे (आगे पीछे छूटे हुए) एक संगही प्रेरे हुएसे गये ॥ ४७ ॥

तैस्त्रयाणां शितैर्बाणैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः ॥
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरं तु पतत्रिभिः ॥ ४८ ॥

अन्वयः । देहातिगैः यथापूर्वविशुद्धिभिः शितैः तैः बाणैः त्रयाणाम् आयुः पीतं रुधिरं तु पतत्रिभिः (पीतम्) ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । देहातिगाः यथापूर्वविशुद्धयः शिताः ते बाणाः त्रयाणाम् आयुः पीतवंतो रुधिरं तु पतत्रिणः (पीतवंतः) ॥ ४८ ॥

शरीरभेदिभिरतिवेगत्वेन शरीरभेदात्प्रागिव रुधिरलेपरहितैस्तीक्ष्णैः शरैस्त्रयाणां खरादीनामायुः पीतं रुधिरं तु पक्षिभिः पीतमिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–देहको वेधकर जैसे पूर्वथे उसी प्रकार निकले हुए तीक्ष्ण बाणोंने इन तीनोंकी आयु पान करली, रुधिरका पान पक्षियोंने किया ॥ ४८ ॥

तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम् ॥
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कबन्धेभ्यो न किंचन ॥ ४९ ॥

अन्वयः । तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते महति रक्षसां बले उत्थितं कबंधेभ्यः अन्यत्किंचन न ददृशे च ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते महति रक्षसां बले उत्थितं कबंधेभ्यः अन्यत्किंचिन्न ददृशुश्च (लोकाः) ॥ ४९ ॥

तस्मिन् रामबाणैः छिन्ने महति रक्षसां बले उत्थितं शिरोहीनशरीरेभ्योन्यत्किंचन न ददृशे इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—उन रामचन्द्रके बाणोंसे काटी हुई उस बडी राक्षसोंकी सेनामें रुंडोंके सिवाय और कुछ स्थित हुआ न दीखा ॥ ४९ ॥

सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम् ॥
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी ॥ ५० ॥

अन्वयः । सा सुरद्विषां वरूथिनी बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा गृध्रच्छायेऽप्रबोधाय सुष्वाप ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तया सुरद्विषां वरूथिन्या बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा गृध्रच्छायेऽप्रबोधाय सुषुपे ५०

सा निशाचराणां सेना बाणवर्षिणं रामं युद्धं कारयित्वा गृध्रच्छायेऽपुनर्बोधाय सुष्वापेति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—वह राक्षसोंकी सेना बाणवर्षानेवाले रामसे युद्ध करके गृध्रोंकी छायामें फिर न उठनेके निमित्त शयन कर गई ॥ ५० ॥

राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम् ॥
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत् ॥ ५१ ॥

अन्वयः । एका शूर्पणखैव रावणं प्रति राघवास्त्रविदीर्णानां तेषां रक्षसां दुष्प्रवृत्तिहरा अभवत् ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । एकया शूर्पणखया एव रावणं प्रति राघवास्त्रविदीर्णानां तेषां रक्षसां दुष्प्रवृत्तिहरयाऽभूयत ॥ ५१ ॥

एकावशिष्टा सा शूर्पणखा रावणं प्रति रामास्त्रैः हतानां तेषां खरादीनां दुष्प्रवृत्तिहराऽभवदिति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—एक शूर्पणखाही रावणके प्रति रामके अस्त्रसे विदीर्ण हुए राक्षसोंका बुरा वृत्तान्त रावणके निकट ले जानेवाली हुई ॥ ५१ ॥

निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः ॥
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्द्धसु ॥ ५२ ॥

अन्वयः । स्वसुः निग्रहादाप्तानां वधाच्च धनदानुजः रामेण दशसु मूर्द्धसु पदं निहितं मेने ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । स्वसुः निग्रहाद्दातानां वधाच्च वनदानुजेन रामेण दशसु मूर्द्धसु पदं निहितं मेने ॥ ५२ ॥

स्वसुः शूर्पणखाया अङ्गच्छेदात् बंधूनां खरादीनां वधाच्च रावणो रामेण दशसु शिरस्सु चरणं निहितं मेन इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०–बहनके ताडित होने और सुहृदोंके वधसे कुबेरका छोटा भाई रामचंद्रसे अपने दशों शिरोंमें चरण रक्खा मानता हुआ ॥ ५२ ॥

रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ ॥
जहार सीतां पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः ॥ ५३ ॥

अन्वयः । सः मृगरूपेण रक्षसा राघवौ वंचयित्वा पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः (सन्) सीतां जहार ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । तेन मृगरूपेण रक्षसा राघवौ वंचयित्वा पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितेन (सता) सीता जह्रे ॥ ५३ ॥

स रावणो मृगरूपधारिणा निशाचरेण मारीचेन राघवौ प्रतार्य जटायुषः युद्धरूपेण प्रयासेन क्षणं संजातविघ्नः सन् सीतां जहारेति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०–वह मृगरूपी राक्षस (मारीच) द्वारा रामचंद्रको ठगाकर पक्षिराज जटायुके समरका क्षणमात्र विघ्न सहकर जानकीको हर लेगया ॥ ५३ ॥

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम् ॥
प्राणैर्दशरथप्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः ॥ ५४ ॥

अन्वयः । सीतान्वेषिणौ तौ लूनपक्षं कंठवर्त्तिभिः प्राणैः दशरथप्रीतेः अनृणं गृध्रम् अपश्यताम् ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । सीतान्वेषिभ्यां ताभ्यां लूनपक्षः कंठवर्त्तिभिः प्राणैः दशरथप्रीतेः अनृणः गृध्रः अदृश्यत ॥ ५४ ॥

सीतान्वेषणतत्परौ तौ राघवौ रावणेन छिन्नपक्षं कण्ठवर्तिभिः प्राणैर्दशरथसख्यस्यर्णविमुक्तं जटायुषं दृष्टवन्ताविति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०–सीताको ढूंढतेहुए उन दोनोंने पंख नुचे और कंठगत प्राणोंसे दशरथकी मित्रताका ऋण चुकाते हुए जटायुको देखा ॥ ५४ ॥

स रावणहृतां ताभ्यां वचसाख्याय मैथिलीम् ॥
आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः ॥ ५५ ॥

अन्वयः । सः रावणहृतां मैथिलीं ताभ्यां वचसाऽऽख्यायात्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । तेन रावणहृतां मैथिलीं ताभ्याम् आख्याय आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितम् ॥ ५५ ॥

स जटायू रावणहृतां सीतां रामलक्ष्मणाभ्यां वाग्वृत्त्या कथितवान्, आत्मनः युद्धरूपं कर्म व्रणैरावेद्य पञ्चत्वं गत इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—वह (जटायु) रावणद्वारा हरी हुई जानकीको वचनसे कहकर और अपने बडे पराक्रमको घावोंसे निवेदन कर मृतक हुआ ॥ ५५ ॥

तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः ॥
पितरीवाग्निसंस्कारात्परा ववृतिरे क्रियाः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः तयोः तस्मिन्पितरीवाग्निसंस्कारात्पराः क्रियाः ववृतिरे ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः तयोः तस्मिन्पितरीवाग्निसंस्कारात्पराभिः क्रियाभिः ववृते ॥ ५६ ॥

पितृमरणशोकयोस्तयोः रामलक्ष्मणयोस्तास्मिन् गृध्रे पितरीवाग्निसंस्कारमारभ्योत्तराः क्रिया अवर्तन्त, तस्य पितृवदौर्ध्वदैहिकं चक्रतुरिति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०—नवीन हुए पिता मरणके शोकवाले उन दोनोंने उसका पिताकी नाई अग्निसंस्कार करके पीछेकेभी सब कर्म किये ॥ ५६ ॥

वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः ॥
मुमूर्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ ॥ ५७ ॥

अन्वयः । वधनिर्धूतशापस्य कबंधस्य उपदेशतः रामस्य समानव्यसने हरौ सख्यं मुमूर्छ ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । × × × ० सख्येन मुमूर्छे ॥ ५७ ॥

रामकृतेन वधेन गतशापस्य देवभुवं प्राप्तस्य कबंधस्योपदेशतो रामस्य समानापदि सुग्रीवे सख्यं ववृध इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०—मरकर शापसे छुटेहुए कबंधके उपदेशसे रामचंद्रके समान दुःखवाले सुग्रीवसे मित्रता हुई ॥ ५७ ॥

(श्रियाका पुत्र दनु अत्यन्त सुन्दर था वह कौतुकसे भयंकर रूपधर ऋषियोंको डराताथा,एक दिन उसने स्थूलशिरानामक ऋषिको डराया,तब उन्होंने क्रोधकर शाप दिया, कि तेरा ऐसाही रूप होजाय, पीछे प्रार्थना करनेपर कहा कि जब रामचन्द्र तेरी भुजा छेदन करेंगे तब तूं अपने रूपको प्राप्त होगा, तब यह इसी शरीरसे महातपकर ब्रह्मासे दीर्घ आयुका वर ले इन्द्रसे लड़ने चला, इन्द्रने वज्र मारा जिससे इसका शिर छातीमें प्रवेश कर गया, पीछे भोजनके निमित्त इन्द्रने इसकी योजनभ-

रकी भुजा कट दी और तीक्ष्ण दांत कर दिये अब रामके भुजा छेदन करनेपर अपने रूपको प्राप्त हुआ जैसा लिखाहै–)

"दनुर्नाम श्रियः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः।
इन्द्रास्त्रकृतकावन्ध्यः पूतोस्मि भवतां श्रयात्" ॥

रावण जानकीको हर ले गयाहै तुम सुग्रीवके पास जाओ वालिको मार उसे राज्य दो सीता मिलेगी यह कह वह गया.

(आरण्य० वाल्मी०)

स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते ॥
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥ ५८ ॥

अन्वयः । वीरः सः वालिनं हत्वा चिरकांक्षिते तत्पदे धातोः स्थाने आदेशमिव सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । वीरेण तेन वालिनं हत्वा चिरकांक्षिते तत्पदे धातोः स्थाने आदेशः इव सुग्रीवः संन्यवेश्यत ॥ ५८ ॥

पराक्रमी स रामः वालिनं हत्वा चिरप्रार्थिते तत्पदे धातुस्थाने आदेशभूतं धात्वन्तरमिव सुग्रीवं स्थापितवानिति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–वह वीर वालिको मारकर बहुत दिनोंसे इच्छावाले उसके स्थानमें धातुके स्थानमें आदेशकी नांई सुग्रीवको स्थापित करते हुए ॥ ५८ ॥

(जब धातुको आदेश होताहै तो उसका रूप सर्वथा बदल जाताहै, जैसे अस् धातुको आदेश उसके स्थानमें भू हो जाता है) सुग्रीव! "श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् ॥ कारणं येन बाणोयं स मया न विसर्जितः ॥ १ ॥ अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च ॥ त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्तः परस्परम् ॥ २ ॥ स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर ॥ विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥ ३ ॥ ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम ॥ नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिवर्हणम् ॥ ४ ॥"

मन्ये कविना द्वयोरेव भ्रात्रोः वालिसुग्रीवयोः सौसादृश्यदर्शनात् धातोः स्थाने आदेशमिव इत्युपमा समुद्भाविता। यथा वैयाकरणः लङादिषु लकारचतुष्टयेषु लब्धावसरम् अस्धातुं निरस्य तत्स्थाने लिङादिषु भूधातुं प्रयुङ्क्ते स च सर्व्वथा तमनुकुर्व्वन् अशेषं तत्कार्य्यं करोति तथा रामः प्राक् प्रबलं व्यापिनं वालिनं हत्वा चिरकांक्षिते तत्पदे आकारतः गुणतः क्रियातः तत्सदृशं सुग्रीवं संस्थापितवान्, स्थापितश्चासौ वालिवन्निखिलकार्याण्यकार्षीदिति विवृतार्थः)

इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः ॥
कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः ॥ ५९ ॥

अन्वयः । ततः वैदेहीम् अन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः कपयः आर्त्तस्य रामस्य मनोरथा इव इतस्ततः चेरुः च ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । ततः वैदेहीम् अन्वेष्टुं भर्तृचोदितैः कपिभिरार्तस्य रामस्य मनोरथैरिव इतस्ततश्चेरे ॥ ५९ ॥

सीतां मार्गितुं सुग्रीवेण प्रयुक्ताः हनुमत्प्रमुखाः कपयः विरहातुरस्य रामस्य संकल्पा इव नानादेशेषु बभ्रमुश्चेति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—इसके उपरान्त जानकीके ढूंढनेको स्वामी (सुग्रीव) के भेजेहुए वानर, व्याकुल रामके मनोरथके समान जहां तहां गये ॥ ५९ ॥

प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात् ॥
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः ॥ ६० ॥

अन्वयः । संपातिदर्शनात्तस्याः प्रवृत्तौ उपलब्धायां मारुतिः सागरं निर्ममः संसारमिव तीर्णः ॥ ६० ॥

वाच्यप० । संपातिदर्शनात्तस्याः प्रवृत्तौ उपलब्धायां मारुतिना सागरः निर्ममेण संसारः इव तीर्णः ॥ ६० ॥

संपातेः जटायुषो ज्येष्ठभ्रातुर्मुखात् सीतायाः वार्तायां ज्ञातायां सत्यां हनुमान् शतयोजनविस्तीर्णं सागरं गततृष्णः अविद्यावन्धनमिव ततारेति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—संपातिके देखनेसे उस (सीता) का समाचार पाय महावीरजी सागर तरगये, जैसे इच्छा रहित, संसारको (तर जाताहै) ॥ ६० ॥

दृष्टा विचिन्वता तेन लंकायां राक्षसीवृता ॥
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ॥ ६१ ॥

अन्वयः । लंकायां विचिन्वता तेन राक्षसीवृता जानकी विषवल्लीभिः परीता महौषधिरिव दृष्टा ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । लंकायां विचिन्वन् सः राक्षसीवृतां जानकीं विषवल्लीभिः परीतां महौषधिमिव दृष्टवान् ॥ ६१ ॥

रावणराजधान्यां लङ्कायां मृगयमाणेन बलवता हनुमता निशाचरीभिर्वृता सीता विषवल्लीभिः परिवृता संजीविनी वल्लीव दृष्टेति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—लंकामें ढूंढतेहुए उन (महावीरजी)ने राक्षसियोंसे घिरी हुई जानकी विषवेलोंसे घिरी हुई महौषधिके समान, देखी ॥ ६१ ॥

तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः ॥
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानंदाश्रुविन्दुभिः ॥ ६२ ॥

अन्वयः । कपिः भर्तुः अभिज्ञानम् अंगुलीयं तस्यै ददौ (किंविधम् अंगुलीयम्) अनुष्णैः तदानंदाश्रुबिंदुभिः प्रत्युद्गतमिव (स्थितम्) ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । कपिना भर्तुः अभिज्ञानम् अंगुलीयं तस्यै ददे (किंविधम् अंगुलीयम्) अनुष्णैः तदानन्दाश्रुबिंदुभिः प्रत्युद्गतमिव (स्थितम्)॥ ६२ ॥

हनुमान् रामस्य प्रत्यभिज्ञानसाधकमंगुलीयकं सीतायै ददौ, किंविधम् शीतलैस्तस्यानन्दाश्रुबिन्दुभिः प्रत्युद्गतमिव स्थितमिति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–महावीरजी रामचन्द्रकी अंगूठी जानकीके निमित्त देतेहुए (जो कि) शीतल उनके आनन्दके आंसुओंकी बूंदोंसे आदर पाईकी समान स्थित हुई ॥ ६२ ॥

निर्वाप्य प्रियसंदेशैः सीतामक्षवधोद्धतः ॥
स ददाह पुरीं लंकां क्षणसोढारिनिग्रहः ॥ ६३ ॥

अन्वयः । सः प्रियसंदेशैः सीतां निर्वाप्याक्षवधोद्धतः क्षणसोढारिनिग्रहः (सन्) पुरीं लंकां ददाह ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । तेन प्रियसंदेशैर्निर्वाप्याक्षवधोद्धतेन क्षणसोढारिनिग्रहेण (सता) पुरी लंका देहे ॥ ६३ ॥

स कपिः रामस्य संदेशैः सीतां सुखयित्वाक्षस्य रावणपुत्रस्य वधेन दृप्तः सन् क्षणसोढब्रह्मास्त्रबंधनः सन् लंकां पुरीं भस्मीचकारेति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०–प्यारे (के) संदेशोंसे सीताको समझाकर अक्ष (रावणके बेटे) के वधसे उद्धत हो क्षणमात्र शत्रुबंधको सहकर पुरी लंकाको जलाते हुए ॥ ६३ ॥

प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती ॥
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत् ॥ ६४ ॥

अन्वयः । कृती स्वयमायातं मूर्तिमत् वैदेह्याः हृदयमिव स्थितं (तस्या एव) प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामाय अदर्शयत् ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । कृतिना स्वयमायातं मूर्तिमत् वैदेह्या हृदयमिव स्थितं (तस्या एव) प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामाय अदर्श्यत ॥ ६४ ॥

कृतकृत्यः हनुमान् स्वयमायातं मूर्तिमत् सीतायाः हृदयमिव स्थितं तस्या एव प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामचन्द्रायादर्शयदिति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०–कार्य करनेहारे स्वयं आये हुए (हनुमान्) मूर्तिमान् जानकीके हृदयकी नांई स्थित तिन्हीका पहचानचिह्न (चूडामणि) रामको दिखाते हुए ॥ ६४ ॥

स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः ॥
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः । हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः सः अपयोधरसंसर्गां प्रियालिंगननिर्वृतिं प्राप ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितेन तेनापयोधरसंसर्गा प्रियालिंगननिर्वृतिः प्रापे ॥ ६५ ॥

वक्षसि धृतस्याभिज्ञानरत्नस्य स्पर्शेन मोहितः स रामः अकृतस्तनसंसर्गां सीताया आलिंगनानन्दं प्रापेति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०–हृदयमें रक्खी हुई मणिके स्पर्शसे मोहित हो वह (रामचंद्र) विना स्तनके स्पर्शवाले प्यारीके आलिंगनका सुख मानते हुए ॥ ६५ ॥

श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्संगमोत्सुकः ॥
महार्णवपरिक्षेपं लंकायाः परिखालघुम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः । प्रियोदन्तं श्रुत्वा तत्संगमोत्सुको रामो लंकायाः महार्णवपरिक्षेपं परिखालघुं मेने ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । प्रियोदंतं श्रुत्वा तत्संगमोत्सुकेन रामेण लंकायाः महार्णवपरिक्षेपः परिखालघुर्मेने ॥ ६६ ॥

सीतायाः सन्देशं श्रुत्वा तस्याः संगमोत्कण्ठितो रामः लङ्कायाः महासागरविक्षेपं दुर्गवेष्टनवत्सुतरं मेन इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०–प्रियाका वृत्तान्त सुनकर उसके संगमके उत्साही रामचंद्रने लंकाके महासमुद्ररूपी वेष्टनको खाई समान लघु माना ॥ ६६ ॥

स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः ॥
न केवलं भुवः पृष्ठे व्योम्नि संबाधवर्त्मभिः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । केवलं भुवः पृष्ठे न (किं तु) व्योम्नि संबाधवर्त्मभिः हरिसैन्यैरनुद्रुतः (सन्) सः (रामः) अरिनाशाय प्रतस्थे ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । केवलं भुवः पृष्ठे न (किं तु) व्योम्नि संबाधवर्त्मभिः हरिसैन्यैरनुद्रुतेन तेन (रामेण) अरिनाशाय प्रतस्थे ॥ ६७ ॥

केवलं वसुधातले न किन्त्वाकाशे च संकटगामिभिः कपिबलैरन्वितः सन् रामोऽरिनाशाय चचालेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०—केवल पृथ्वीतल पर ही नहीं किन्तु आकाशमें भी संकोचसे गमन करती हुई वानरोंकी सेनाके सहित वह राम शत्रुनाश करनेको चले ॥ ६७ ॥

निविष्टमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः ॥
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमाविश्य चोदितः ॥६८॥

अन्वयः । उदधेः कूले निविष्टं तं (रामं) विभीषणः राक्षसलक्ष्म्या स्नेहाद् बुद्धिमाविश्य चोदितः इव प्रपेदे ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । उदधेः कूले निविष्टः सः (रामः) विभीषणेन राक्षसलक्ष्म्या स्नेहाद् बुद्धिमाविश्य चोदितेनेव प्रपेदे ॥ ६८ ॥

सागरस्य कूले समासीनं तं रामं रावणानुजः विभीषणः राक्षसलक्ष्म्या स्नेहाद्बुद्धिं कर्तव्यताज्ञान-माविश्य प्रणोदित इव प्राप्त इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०—सागरके किनारे उतरेहुए रामचंद्रको विभीषण राक्षसलक्ष्मीद्वारा स्नेहसे बुद्धिमें प्रविष्ट हो प्रेरेहुयेके समान मिला ॥ ६८ ॥
(अर्थात् विभीषण क्या आया मानो राक्षसोंकी लक्ष्मी और बुद्धि आई)

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः ॥
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः ॥ ६९ ॥

अन्वयः । राघवः तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव (तथाहि) काले समारब्धाः नीतयः फलं बध्नन्ति खलु ॥ ६९ ॥

अन्वयः । राघवेण तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्रुवे (तथाहि) काले समारब्धाभिः नीतिभिः फलं बध्यते खलु ॥ ६९ ॥

रामस्तस्मै विभीषणाय राक्षसाधिपत्यं प्रतिज्ञातवान्, तथाहि समये प्रक्रान्ता नीतयः फलं जनयन्तीति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०—रामचंद्र उसके प्रति राक्षसोंका राज्य देनेकी प्रतिज्ञा करते हुए, कारण कि समय पर वर्तीहुई नीति फल देती ही है ॥ ६९ ॥

स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि ॥
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः ॥ ७० ॥

अन्वयः । सः लवणाम्भसि प्लवगैः शार्ङ्गिणः स्वप्नाय रसातलात् उन्मग्नं शेषमिव (स्थितं) सेतुं बंधयामास ॥ ७० ॥

वाच्यप० । तेन लवणाम्भसि प्लवगैः शार्ङ्गिणः स्वप्नाय रसातलात् उन्मग्नः शेष इव (स्थितः) सेतुर्बंधयामासे ॥ ७० ॥

स रामस्तस्मिँल्लँवणाब्धौ वानरैः विष्णोः शयनाय पातालादुत्थितं शेषमिव स्थितं सेतुं बन्धयामासेति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-वह रामचंद्र क्षारसमुद्रमें वानरोंसे विष्णुके शयनकरनेको रसातलसे आये हुए शेषनागके समान, पुल बँधवाते हुए ॥ ७० ॥

तेनोत्तीर्य पथा लंकां रोधयामास पिङ्गलैः ॥

द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥ ७१ ॥

अन्वयः । (सः रामः) तेन पथा (समुद्रम्) उत्तीर्य पिंगलैः (अत एव) द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव (स्थितैः) वानरैः लंकां रोधयामास ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । (तेन रामेण) तेन पथा (समुद्रम्) उत्तीर्य पिंगलैः (अत एव) द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव (स्थितैः) वानरैः लंका रोधयामासे ॥ ७१ ॥

रामस्तेन सेतुमार्गेण सागरमुत्तीर्य्य सुवर्णवर्णैर्द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव स्थितैर्वानरैर्लङ्कां रोधयामासेति सरलार्थः ॥७१॥

भा०-वह राम उसी मार्गसे सागरको [illegible] दूसरे सुवर्णकी परिखा करनेवालेसे स्थित हुए वानरोंसे [illegible] लङ्कापुरीको घिरतवाते हुए ॥ ७१ ॥

रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम् ॥

दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । तत्र प्लवगरक्षसां भीमः दिग्विजृंभितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः रणः प्रववृते ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । तत्र प्लवगरक्षसां भीमेन दिग्विजृंभितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणेन रणेन प्रववृते ॥ ७२ ॥

तत्र लङ्कायां वानराणां निशाचराणां च भयंकरो दिगन्तव्याप्तरामरावणजयघोषः संग्रामः प्रवृत्त इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-तहां वानर और राक्षसोंका भयंकर दिशाओंमें फैलनेवाले राम और रावणके जयशब्दोंसहित संग्राम हुआ ॥ ७२ ॥

पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः ॥

अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतङ्गजः ॥ ७३ ॥

अन्वयः । (युग्मकम्) (रणः किंविधः) पादपाविद्धपरिघः (पुनः किंविधः) शिलानिष्पिष्टमुद्गरः (पुनः किंविधः) अतिशस्त्रनखन्यासः (पुनः किंविधः) शैलरुग्णमतंगजः ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । उक्तविशेषणानां तृतीयान्तत्वम् ॥ ७३ ॥

किंविधः संग्रामः वृक्षैर्भग्नपरिघः शिलाभिश्चूर्णितमुद्गरः शस्त्रातिक्रान्तनखन्यासः शैलैर्भग्नगज एतादृशः संग्रामः प्रवृत्त इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-(जो कि संग्राम) वृक्षोंसे परिघ भंगवाला, शिलाओंसे मुद्गर चूर्ण होनेवाला, नाखूनोंसे शस्त्रोंका तिरस्कार करनेवाला, पर्वतोंसे हाथी मारनेवाला हुआ ॥ ७३ ॥

(द्वाभ्यां तु युग्मकं प्रोक्तं त्रिभिः स्यात्तु विशेषकम् ।
कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्व कुलकं स्मृतम् ॥ १ ॥)

अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम् ॥
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत् ॥ ७४ ॥

अन्वयः । अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रांतचेतनां सीतां त्रिजटा मायेति शंसंती समजीवयत् ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रांतचेतना सीता त्रिजटया मायेति शंसंत्या समजीव्यत ॥ ७४ ॥

अनन्तरं विद्युज्जिह्वाख्यराक्षसमायानिर्मितस्य रामशिरश्छेदस्य दर्शनेनोद्भ्रान्तचेतनां गतसंज्ञां जानकीं त्रिजटा नाम सीतापक्षपातिनी काचिद्राक्षसी मायाकल्पितं न त्वेतत्सत्यमिति ब्रुवाणा समजीवयदिति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०-इसके उपरान्त रामके कटे शिरके देखनेसे व्याकुलचित्त हुई जानकीको त्रिजटाने 'यह माया है' ऐसा कह कर उसे जीवित किया ॥ ७४ ॥

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम् ॥
प्राङ् मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता ॥ ७५ ॥

अन्वयः । सा मे नाथो जीवति इति (हेतोः) शुचं कामं विजहौ (किं तु) प्राक् अस्यांतं सत्यं मत्वा जीवितास्मीति (हेतोः) लज्जिता ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । तया मे नाथः जीवति इति (हेतोः) शुक्कामं विजहे (किं तु) प्राक् अस्यांतं सत्यं मत्वा जीवितास्मीति (हेतोः) लज्जितम् ॥ ७५ ॥

सा सीता मे स्वामी जीवतीति हेतोः शोकं कामं विजहौ, किन्तु पूर्वमस्य भर्तुः नाशं यथार्थं मत्वा जीवितास्मीति हेतोर्लज्जावतीति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-वह (जानकी) मेरे स्वामी जीते हैं इस कारण शोकको त्याग करती हुई (किन्तु) प्रथम उनका मरण सत्य मान कर जीवित रही इस कारण लज्जित हुई ॥ ७५ ॥

गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ॥
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबंधनः क्षणक्लेशः दाशरथ्योः स्वप्नवृत्तः इवाभवत् ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबंधनेन क्षणक्लेशेन दाशरथ्योः स्वप्नवृत्तेनेवाभूयत ॥ ७६ ॥

वैनतेयागमनविश्लिष्टेन्द्रजिदस्त्रबन्धनः क्षणक्लेशः रामलक्ष्मणयोः स्वप्नावस्थायामनुभूत इवाभवदिति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०—गरुडके आनेसे शिथिल होनेवाले मेघनादके अस्त्रबंधनका क्षणमात्र क्लेश राम लक्ष्मणको स्वप्नावस्थाके समान हुआ ॥ ७६ ॥

ततो विभेद पौलस्त्यः शक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम् ॥
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णहृदयः शुचा ॥ ७७ ॥

अन्वयः । ततः पौलस्त्यः शक्त्या लक्ष्मणं वक्षसि विभेद, रामस्तु अनाहतोपि शुचा विदीर्णहृदयः आसीत् ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । ततः पौलस्त्येन शक्त्या लक्ष्मणः वक्षसि विभिदे रामेण, तु अनाहतेनापि शुचा विदीर्णहृदयेनाभूयत ॥ ७७ ॥

ततो रावणः शक्त्या लक्ष्मणं हृदि विदारयामास, रामस्त्वहतोऽपि दुःखेन विदीर्णहृदय आसीदिति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—इसके उपरान्त रावणने शक्तिसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण किया, रामचंद्र तो बिना मारे ही शोकसे विदीर्णहृदय हो गये ॥ ७७ ॥

स मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः ॥
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः ॥ ७८ ॥

अन्वयः । सः मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः (सन्) शरैः लंकास्त्रीणां विलापाचार्यकं पुनः चक्रे ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । तेन मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथेन (सता) शरैः लंकास्त्रीणां विलापाचार्यकं पुनः चक्रे ॥ ७८ ॥

स लक्ष्मणः हनूमता समानीतया संजीविन्या गतव्यथः सन्पुनर्बाणैर्लङ्कानारीणां परिदेवनाचार्यकर्म चक्र इति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—उन्होंने महावीरजीकी लाई हुई औषधिसे व्यथारहित हो बाणोंके द्वारा लंकाकी स्त्रियोंके विलाप आचार्यका कार्य फिर कराया ॥ ७८ ॥

स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम् ॥
मेघस्येव शरत्कालो न किंचित्पर्यशेषयत् ॥ ७९ ॥

अन्वयः । सः शरत्कालः मेघस्येव मेघनादस्य नादम् इंद्रायुधप्रभं धनुश्च किंचिन्न पर्यशेषयत् ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । तेन शरत्कालेन मेघस्येव मेघनादस्य नादः इन्द्रायुधप्रभं धनुश्च किंचिन्न पर्यशेष्यत ॥ ७९ ॥

स लक्ष्मणः शरत्कालः घनस्येवेन्द्रजितः सिंहनादं पुरन्दरधनुःसमं धनुश्चाल्पमपि नावशेषितवान् तमवधीदिति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०-उसने मेघनादका शब्द और इन्द्रधनुषकी कान्तिवाले धनुषको किंचित् भी शेष नहीं रक्खा जिस प्रकार शरत्काल मेघको (नहीं रखता) ॥ ७९ ॥

कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः ॥
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनःशिलः ॥ ८० ॥

अन्वयः । कपीन्द्रेण स्वसुः तुल्यावस्थः कृतः कुंभकर्णः टंकच्छिन्नमनःशिलः शृंगीव रामं रुरोध ॥ ८० ॥

वाच्यप० । कपीन्द्रेण स्वसुः तुल्यावस्थेन कृतेन कुंभकर्णेन टंकच्छिन्नमनःशिलेन शृंगिणेव रामः रुरुधे ॥ ८० ॥

सुग्रीवेण शूर्पणखायास्तुल्यावस्थः कृतः कुंभकर्णः शिलाविभेदकशस्त्रेण छिन्नरक्तवर्णधातुविशेषः शिखरीव रामं रुरोधेति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०-सुग्रीवसे भगिनीकी तुल्य अवस्था कियाहुआ कुंभकर्ण टंकसे कटे मनसिलके पर्वतके समान, रामको रोकता हुआ ॥ ८० ॥

अकाले बोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान् ॥
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ॥ ८१ ॥

अन्वयः । प्रियस्वप्नः भवान् वृथा भ्रात्राऽकाले बोधितः इतीवासौ रामेषुभिः दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । प्रियस्वप्नः भवान् वृथा भ्रात्राऽकाले बोधितः इतीवामुं रामेषवः दीर्घनिद्रां प्रवेशितवन्तः ॥ ८१ ॥

इष्टनिद्रोऽनुजो भवान् रावणेनाकाले बोधित इतीवासौ घटकर्णो रामबाणैर्दीर्घनिद्रां (मरणं) गमित इति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०-निद्राप्रिय तुमको वृथा भाईने बे समय जगाया, इस कारण यह रामचंद्रके बाणोंसे दीर्घनिद्रामें प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥

इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु ॥
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव ॥ ८२ ॥

अन्वयः । इतराण्यपि रक्षांसि वानरकोटिषु समरोत्थानि रजांसि तच्छोणितनदीष्विव पेतुः॥८२॥

वाच्यप० । इतरैरपि रक्षोभिः वानरकोटिषु समरोत्थैः रजोभिः तच्छोणितनदीष्विव पेते ॥८२॥

इतराणि रक्षांस्यपि वानरकोटिषु समरोत्थानि रजांसि तेषां रक्षसां रक्तप्रवाहेष्विव पेतुरिति सरलार्थः, निपत्य मृतानीति भावः ॥ ८२ ॥

भा०-दूसरे राक्षस भी वानरोंके दलमें पतित हुए, मानों समरमें उठीहुई रज उनकी लोहूकी नदीमें पडी ॥ ८२ ॥

निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात् ॥
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः ॥ ८३ ॥

अन्वयः । अथ पौलस्त्यः अद्य जगत् अरावणम् अरामं वा (भवेत्) इति निश्चितः (सन्) पुनः युद्धाय मंदिरात् निर्ययौ ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । अथ पौलस्त्येनाद्य जगद्रावणम् आरामं वा (भवेत्) इति निश्चितेन (सता) पुनर्युद्धाय मंदिरान्निर्ययेे ॥ ८३ ॥

अथ रावणः अद्य जगद्रावणशून्यं रामशून्यं वा भवेदिति निश्चितवान् पुनर्युद्धाय मन्दिरान्निर्जगामेति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०-इसके उपरान्त रावण आज जगत् रावणरहित वा रामरहित होगा ऐसा विचार कर फिर युद्धकरनेको मन्दिरसे निकला ॥ ८३ ॥

रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च वरूथिनम् ॥
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरंदरः ॥ ८४ ॥

अन्वयः । पदातिं रामं वरूथिनं लंकेशं चालोक्य पुरंदरः हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय॥८४॥

वाच्यप० । पदातिं रामं वरूथिनं लंकेशं चालोक्य पुरंदरेण हरियुग्यो रथः तस्मै प्रजिघ्ये ॥ ८४ ॥

तं पादचारिणं रामं लङ्केशं वरूथिनं चालोक्य शक्रः कपिलवर्णाश्वरथं तस्मै रामाय प्रहितवानिति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०-रामचंद्रको पैदल और रावणको रथी देखकर इन्द्र सुनहरी घोडे जुतेहुए रथको उनके निमित्त भेजता हुआ ॥ ८४ ॥

तमाधूतध्वजपटं व्योमगङ्गोर्मिवायुभिः ॥
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः ॥ ८५ ॥

अन्वयः। राघवः व्योमगंगोर्मिवायुभिराधूतध्वजपटं तं जैत्रं (रथं) देवसूतभुजालंवी (सन्) अध्यास्त ॥ ८५ ॥

वाच्यप०। राघवेण व्योमगंगोर्मिवायुभिः आधूतध्वजपटः सः जैत्रः (रथः) देवसूतभुजालंविना (सता) अध्यास्यत ॥ ८५ ॥

राघवः आकाशगङ्गोर्मिवायुभिः कम्पितध्वजपटं जयशीलं तं रथं मातलिहस्तावलम्बी सन्नधिष्ठितवानिति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०—रामचन्द्र आकाशगंगाकी लहरोंके वायुसे चलायमान ध्वजावाले उस जयशील (रथ पर) इन्द्रके सारथी (मातली) का हाथ पकडकर चढे ॥ ८५ ॥

मातलिस्तस्य माहेन्द्रमामुमोच तनुच्छदम् ॥
यत्रोत्पलदलक्लैब्यमस्त्राण्यापुः सुरद्विषाम् ॥ ८६ ॥

अन्वयः। मातलिः माहेन्द्रं तनुच्छदं तस्य आमुमोच यत्र सुरद्विषाम् अस्त्राणि उत्पलदलक्लैब्यम् आपुः ॥ ८६ ॥

वाच्यप०। मातलिना माहेन्द्रः तनुच्छदः तस्यामुमुचे यत्र सुरद्विषामस्त्रैः उत्पलदलक्लैब्यम् आपे ॥ ८६ ॥

मातलिर्माहेन्द्रं वर्म तस्य रामस्यासंजयामास यत्र तनुच्छदे दैत्यानामस्त्राणि कमलदलानां यन्निरर्थकत्वं तदापुरिति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—मातलि उन (रामचंद्र) को इन्द्रका बख्तर पहनाता हुआ, जिसमें असुरोंके अस्त्र कमलदलकी समान विफलताको प्राप्त हुए थे ॥ ८६ ॥

अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं चिरात् ॥
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत् ॥ ८७ ॥

अन्वयः। चिरादन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत् ॥ ८७ ॥

वाच्यप०। चिरादन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरेण रामरावणयोर्युद्धेन चरितार्थेनेवाभूयत॥ ८७ ॥
चिरादन्योन्यदर्शनेन प्राप्तविक्रमावसरो रामरावणयोः संग्रामः सफलोभवदिवेति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०—बहुतकालसे परस्परके दर्शनसे बलका समय पाकर राम और रावणका युद्ध, चरितार्थ (सफलताको प्राप्त) हुआ ॥ ८७ ॥

भुजमूर्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः ॥
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः ॥ ८८ ॥

अन्वयः। अयथापूर्वः (अत एव) एकोपि (सन्) धनदानुजः भुजमूर्धोरुबाहुल्यात् मातृवंशे स्थित इव ददृशे हि ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । अयथापूर्वम् (अत एव) एकमपि (सन्तं) धनदानुजं भुजमूर्द्धोरुबाहुल्यात् मातृवंशे स्थितमिव ददृशुः (वानराः) ॥ ८८ ॥

निहतबन्धुत्वाद्रक्षःपरिचारशून्यः अतः एवैकोपि रावणः बाहुशिरोरुबाहुल्यात् मातृसम्बन्धिनि वर्गे स्थित इव दृष्टो हीति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०—पहलीदशासे विरुद्ध इकला भी कुबेरका भाई (रावण) भुजा चरण और शिरोंकी बहुलतासे माताके कुलमें खडा हुआ सा विदित हुआ (पहलीदशाके विरुद्ध कहनेका तात्पर्य यह है कि उसके पास सेना न रही, माताका कुल यों कहा है कि उसकी माता राक्षसी थी) ॥ ८८ ॥

जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम् ॥
रामस्तुलितकैलासमरातिं बह्वमन्यत ॥ ८९ ॥

अन्वयः । लोकपालानां जेतारं स्वमुखैरर्चितेश्वरं तुलितकैलासम् अरातिं रामः बहु अमन्यत ॥ ८९ ॥

वाच्यप० । लोकपालानां जेता स्वमुखैः अर्चितेश्वरः तुलितकैलासः अरातिः रामेण बहु अमन्यत ॥ ८९ ॥

राम इन्द्रादीनां जेतारं स्वशिरोभिरार्चितशंकरमुत्क्षिप्तकैलासं महावीर्यं शत्रुं स्वोत्कर्षहेतुत्वाच्च बह्वमन्यतेति सरलार्थः ॥ ८९ ॥

भा०—लोकपालोंके जीतनेवाले, अपने शिरोंसे महादेवके पूजनेवाले, कैलासके उठानेवाले उस वैरीको रामने बहुत माना ॥ ८९ ॥

तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासंगमशंसिनि ॥
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे ॥ ९० ॥

अन्वयः । अधिकक्रोधः पौलस्त्यः स्फुरति (अत एव) सीतासंगमशंसिनि तस्य सव्येतरे भुजे शरं निचखान ॥ ९० ॥

वाच्यप० । अधिकक्रोधेन पौलस्त्येन स्फुरति (अत एव) सीतासंगमशंसिनि तस्य सव्येतरे भुजे शरः निचख्ने ॥ ९० ॥

अधिकक्रोधः दशाननः स्पन्दमाने सीतासंगमशंसिनि रामस्य दक्षिणे भुजे बाणं निखातवानिति सरलार्थः ॥ ९० ॥

भा०—अधिकक्रोधी रावणने फडकती हुई, जानकीका संगम जनानेवाली, उनकी दक्षिणभुजामें बाण मारा ॥ ९० ॥

रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः ॥
विवेश भवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम् ॥ ९१ ॥

अन्वयः । रामास्तः आशुगः रावणस्य अपि हृदयं भित्त्वोरगेभ्य प्रियम् आख्यातुमिव भुवं विवेश ॥ ९१ ॥

वाच्यप० । रामास्तेनाशुगेन रावस्यापि हृदयं भित्त्वोरगेभ्यः प्रियमाख्यातुमिव भूः विविशे ॥९१॥ रामेण क्षिप्तः बाणः रावणस्य हृदयं विदार्य पातालवासिभ्यः सर्पेभ्यः प्रियमाख्यातुमिव भुवि वं शेति सरलार्थः ९१ ॥

भा०–रामसे छोडा हुआ बाण रावणके हृदयको विदीर्णकर सर्पोंको प्रियबात कहनेको मानों पृथ्वीमें प्रवेश कर गया ॥ ९१ ॥

वचसैव तयोर्वाक्यमस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः ॥

अन्योन्यजयसंरम्भो ववृधे वादिनोरिव ॥९२॥

अन्वयः । वाक्यं वचसैवास्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः तयोः वादिनोः इवान्योन्यजयसंरंभः ववृधे ॥ ९२॥

वाच्यप० । + + + अन्योन्यजयसंरंभेण ववृधे ॥ ९२ ॥

वाक्यं वचसैवास्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः रामरावणयोः कथकयोरिवान्योन्यविषये जयसंरम्भो ववृधे इति सरलार्थः ॥ ९२ ॥

भा०–बाणीको वाणीसे अस्त्रको अस्त्रसे काटनेवाले उन दोनोंका क्रोध शास्त्रार्थ करनेवालोंके समान अपनी जयके लिये वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ९२ ॥

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याभूद्द्वयोरपि ॥

जयश्रीरन्तरा वेदिर्मत्तवारणयोरिव ॥ ९३ ॥

अन्वयः । जयश्रीः विक्रमव्यतिहारेण द्वयोरपि अन्तरा वेदिः मत्तवारणयोरिव सामान्याभूत् ॥ ९३ ॥

वाच्यप० । जयश्रिया विक्रमव्यतिहारेण द्वयोरपि अन्तरा वेद्या मत्तवारणयोरिव सामान्ययाऽभावि ॥ ९३ ॥

जयलक्ष्मीः विक्रमस्य पर्यायक्रमेण तयोर्द्वयोरपि मध्ये वेद्याकारा भित्तिर्मत्तवारणयोरिव सामान्याऽभूदिति सरलार्थः ॥ ९३ ॥

भा०–जयलक्ष्मी पराक्रमके उलट पलट होनेसे दोनोंहीको, दो युद्ध करनेवाले मत्तहाथियोंको बीचकी भीतकी नाईं सामान्य हुई ॥ ९३ ॥

कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयोर्मुक्तां सुरासुरैः ॥

परस्परशरव्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे ॥ ९४ ॥

अन्वयः । कृतप्रतिकृतप्रीतैः सुरासुरैः तयोर्मुक्तां पुष्पवृष्टिं परस्परशरव्राताः न सेहिरे ॥ ९४ ॥

वाच्यप० । कृतप्रतिकृतप्रीतैः सुरासुरैः तयोः मुक्ता पुष्पवृष्टिः परस्परशरव्रातैः न सेहे ॥ ९४ ॥

स्वयमस्त्रप्रयोगपरकृतप्रतीकाराभ्यां प्रीतैः सुरासुरैर्यथासख्यं तयोः रामरावणयोर्मुक्तकुसुमवृष्टिं परस्परं शरसमूहाः न सेहिर इति सरलार्थः ॥ ९४ ॥

भा०-अस्त्रप्रहारोंसे और प्रतिकारोंसे प्रसन्न होकर देवता और दैत्योंकी त्यागी हुई फूलोंकी वर्षा उन दोनोंकी परस्पर शरवृष्टिने न सही (अर्थात् बाणोंपरसेही इधर उधर होगई) ९४ ॥

अयःशंकुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे ॥
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमक्षिपत् ॥ ९५ ॥

अन्वयः । अथ रक्षः अयःशंकुचितां शतघ्नीं वैवस्वतस्य हृतां कूटशाल्मलिमिव शत्रवेऽक्षिपत् ॥ ९५ ॥

वाच्यप० । अथ रक्षसा अयःशंकुचिता शतघ्नी वैवस्वतस्य हृता कूटशाल्मलिरिव शत्रवेऽक्षिप्यत ॥ ९५ ॥

अथ रावणः शङ्कुभिः कीलैः कीर्णां विजयलब्धां शतघ्नीं यमस्य कूटशाल्मलिमिव रामाय क्षिप्तवानिति सरलार्थः ॥ ९५ ॥

भा०-तब राक्षसने लोहेकी कीलोंसे खचित शतघ्नी, यमराजकी बलसे लाईहुई कटशाल्मलीकी समान शत्रुपर चलाई ॥ ९५ ॥

(कूटशाल्मली सेंमलकी बनी हुई लोहेके कांटोंसे जड़ी खोटाकर्म करनेवालोंको दुःख देनेकी एक यमकी यष्टि है.)

राघवो रथमप्राप्तां तामाशां च सुरद्विषाम् ॥
अर्धचन्द्रमुखैर्बाणैश्चिच्छेद कदलीसुखम् ॥ ९६ ॥

अन्वयः । राघवो रथम् अप्राप्तां तां सुरद्विषाम् आशां च अर्द्धचंद्रमुखैर्बाणैः कदलीसुखं चिच्छेद ॥ ९६ ॥

वाच्यप० । राघवेण रथम् अप्राप्ता सा सुरद्विषाम् आशा च अर्द्धचंद्रमुखैः बाणैः कदलीसुखं चिच्छिदे ॥ ९६ ॥

रामो रथमप्राप्तां तां शतघ्नीं रक्षसां विजयतृष्णां च अर्द्धचन्द्रमुखैः शरैः कदलीवत्सुखं यथा तथा चिच्छेदेति सरलार्थः ॥ ९६ ॥

भा०-रामचन्द्र उस रथ पर न प्राप्त हुई शतघ्नी और राक्षसकी आशाको अर्द्धचन्द्रमुखवाले बाणोंसे केलेके समान सुखसे काट देते हुए ॥ ९६ ॥

अमोघं संदधे चास्मै धनुष्येकधनुर्धरः ॥
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम् ॥ ९७ ॥

अन्वयः । एकधनुर्धरः प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम् अमोघं ब्राह्ममस्त्रम् अस्मै च धनुषि संदधे ॥ ९७ ॥

वाच्य२० । एकधनुर्धरेण इति विशेषः ॥ ९७ ॥

अद्वितीयोपि धनुर्धरो रामः सीतायाः शोकशल्यस्योद्धारकमौषधं तदमोघं ब्रह्मास्त्रमस्मै रावणाय वधार्थं धनुषि संदध इति सरलार्थः ॥ ९७ ॥

भा०-(वह) एक धनुर्धारी प्यारीके शोकरूपी कांटे निकालनेको ओषधीरूप सफल ब्रह्मास्त्रको रावणके (वधके) लिए धनुषपर चढाते हुए ॥ ९७ ॥

तद्व्योम्नि शतधा भिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम् ॥

वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम् ॥ ९८ ॥

अन्वयः । व्योम्नि शतधा भिन्नं दीप्तिमन्मुखं तत् (ब्रह्मास्त्रम्) करालफणमंडलं महोरगस्य वपुरिव ददृशे ॥ ९८ ॥

वाच्य१० । ददृशुरिति विशेषः ॥ ९८ ॥

आकाशे शतधा भिन्नं द्युतिमन्मुखं तद्ब्रह्मास्त्रं भीषणफणमण्डलं शेषस्य वपुरिव दृष्टमिति सरलार्थः ॥ ९८ ॥

भा०-आकाशमें सौ प्रकारसे भिन्न हुआ, कान्तिमान् मुखवाला वह (ब्रह्मास्त्र) तीक्ष्ण फणमण्डलवाले शेषनागके शरीरके समान दीखा ॥ ९८ ॥

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धादपातयत् ॥

स रावणशिरःपङ्क्तिमज्ञातव्रणवेदनाम् ॥ ९९ ॥

अन्वयः । सः (रामः) मंत्रप्रयुक्तेन तेन (ब्रह्मास्त्रेण) अज्ञातव्रणवेदनां रावणशिरःपंक्तिं निमेषार्धादपातयत् ॥ ९९ ॥

वाच्य१० । तेन (रामेण) मंत्रप्रयुक्तेन तेन (ब्रह्मास्त्रेण) अज्ञातव्रणवेदना रावणशिरःपंक्तिः निमेषार्धादपात्यत ॥ ९९ ॥

स रामो मन्त्रप्रयुक्तेन तेनास्त्रेणातिशैघ्र्यादननुभूतव्रणदुःखां रावणशिरःपङ्क्तिं निमेषार्द्धात्पातयामासेति सरलार्थः ॥ ९९ ॥

भा०-वह (राम) मंत्रसे प्रेरे हुए उस ब्रह्मास्त्रसे घावोंका कष्ट सहेविनाही रावणके शिरोंकी पंक्तिको आधे निमेषमें गिरा देते हुए ॥ ९९ ॥

बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः ॥

रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा ॥ १०० ॥

अन्वयः । पतिष्यतः रक्षःकायस्य कंठच्छेदपरंपरा वीचिभिन्ना अप्सु बालार्कप्रतिमेव रराज ॥ १०० ॥

वाच्यप० । पतिष्यतः रक्षःकायस्य कंठच्छेदपरंपरया वीचिभिन्नयाऽम्सु बालार्कप्रतिम-येव रेजे ॥ १०० ॥

आसन्नपातस्य रावणदेहस्य कण्ठच्छेदपंक्तिः वीचिभिर्भिन्ना नानाकृताऽप्सु बालार्कस्य प्रतिविम्ब-मिव रराजेति सरलार्थः ॥ १०० ॥

भा०–गिरतेहुए राक्षसके देहकी मुंडोंकी पंक्ति तरंगोंसे पृथक २ की हुई जलमें प्रातःकालके सूर्यकी प्रतिमाकी समान शोभित हुई ॥ १०० ॥

मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि ॥
मनो नातिविशश्वास पुनःसंधानशङ्किनाम् ॥ १०१ ॥

अन्वयः । पतितानि तस्य शिरांसि पश्यतामपि पुनःसंधानशंकिनां मरुतां मनः न अतिवि-शश्वास ॥ १०१ ॥

वाच्यप० । पतितानि तस्य शिरांसि पश्यतामपि पुनःसंधानशंकिनां मरुतां मनसा नाति-विशश्वसे ॥ १०१ ॥

पतितानि तस्य रावणस्य शिरांसि पश्यतामपि पुनःसंधानशंकिनां देवानां मनोऽतिविश्वासं न प्राप्नोति सरलार्थः ॥ १०१ ॥

भा०-गिरे हुए उसके शिरोंको देखतेहुए भी मरुतोंके मनने फिर जुड़जानेकी शंका से पूर्ण विश्वास न किया ॥ १०१ ॥

(ततः क्रोधान्महाबाहुः रघूणां कीर्तिवर्द्धनः । सन्धाय धनुषा रामः शरमाशीविषो-पमम् ॥ रावणस्य शिरोऽच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा । तस्मै तत्सदृशश्चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः ॥ (वाल्मी०)

इत्थं रामशरनिकृत्तानां रावणशिरसाम् असकृत् सन्धानं पश्यन्तो देवाः ब्रह्मा-स्त्रच्छिन्नान्यपि अपुनरुत्थानाय पतितान्यपि शिरांसि कदाचित्पुनःसंधानं गच्छेयुः इति शंकिताः कियन्तं कालमविश्वासनिबन्धनं कष्टमनुबभूवुरिति विवृतार्थः)

अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपाना-
मनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय ॥
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः
सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात ॥ १०२ ॥

अन्वयः । अथ मदगुरुपक्षैरलिवृन्दैः लोकपालद्विपानां गंडभित्तीः विहायानुगतं सुरभि सुरवि-मुक्तं पुष्पवर्षम् उपनतमणिबंधे पौलस्त्यशत्रोः मूर्ध्नि पपात ॥ १०२ ॥

वाच्यप० । अथ मदगुरुपक्षैः अलिवृंदैः लोकपालद्विपानां गंडभित्तीः विहायानुगतेन सुरभिणा सुरविमुक्तेन पुष्पवर्षेणोपनतमणिबंधे पौलस्त्यशत्रोः मूर्ध्नि पेते ॥ १०२ ॥

अथ गजकपोलसंचारसंक्रान्तेन भारायमाणपक्षैर्भ्रमरसमूहैर्लोकपालद्विपानां गगनवर्तिनां गण्डभित्तिं विहायानुद्रुतं सुगन्धि देवविमुक्तं कुसुमवर्षमासन्नमणिबन्धे तस्मिन् रामस्य शिरसि पपातेति सरलार्थः ॥ १०२ ॥ मालिनीवृत्तम् ।

भा०–इसके उपरान्त मदसे भारा हुए पंखोंवाले भौरोंद्वारा लोकपालोंके हाथियोंकी विदीर्ण गण्डस्थली त्यागकर सेवनकिये देवताओंसे त्याग हुए सुगंधित फूलोंकी वर्षा मुकुट रखनेके समय रावणके शत्रु (राम) के शिरपर गिरी ॥ १०२ ॥

यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्य–
माप्च्छ्य राघवमनुष्ठितदेवकार्यम् ॥
नामांकरावणशरांकितकेतुयष्टि-
मूर्ध्व रथ हरिसहस्रयुजं निनाय ॥ १०३ ॥

अन्वयः । हरेः यंता सपदि संहृतकार्मुकज्यम् अनुष्ठितदेवकार्यं राघवमापृच्छ्य नामांकरावणशरांकितकेतुयष्टिं हरिसहस्रयुजं रथम् ऊर्ध्वं निनाय ॥ १०३ ॥

वाच्यप० । हरेर्यन्त्रा सपदि संहृतकार्मुकज्यमनुष्ठितदेवकार्यं राघवमापृच्छ्य नामांकरावणशरांकितकेतुयष्टिः हरिसहस्रयुक् रथः ऊर्ध्वं निन्ये ॥ १०३ ॥

इन्द्रसारथः मातलिः सपदि संहृतकार्मुकमनुष्ठितरावणवधरूपदेवकार्यं रामं साधु यामीत्यामन्त्र्य रावणशरैश्चिह्नितध्वजयाष्टिं वाजिसहस्रयुजं रथमूर्ध्वं नीतवानिति सरलार्थः ॥ १०३ ॥ वसन्ततिलका वृत्तम् ।

भा०–इन्द्रसारथि शीघ्रहा धनुषसे प्रत्यश्चा त्यागे हुए और देवताओंका कार्य सिद्ध किये हुए रामचन्द्रसे पूँछकर रावणके नामसे अंकित ध्वजावाले, सहस्र घोडे जुते रथको स्वर्गको ल गया ॥ १०३ ॥

रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि बिभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः ।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः प्रतस्थे पुरीम् ।

अन्वयः । रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रियां प्रगृह्य प्रियसुहृदि वैरिणः श्रियं संगमय्य रविसुतसहितेन ससौमित्रिणा तेनानुयातः भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः (सन्) पुरीं प्रतस्थे ॥ १०४ ॥

वाच्यप० । रघुपतिनापि × × × अनुयातेन + + + अधिरूढेन + + + पुरी इति विशेषः ॥ १०४ ॥

रामोऽप्यग्नौ जातशुद्धिं सीतां स्वीकृत्य प्रियसुहृदि विभीषणे रावणस्य राज्यलक्ष्मीं संगतां कृत्वा सुग्रीवयुक्तेन सलक्ष्मणेन तेन विभीषणेनानुगतः सन् बाहुनिर्जितपुष्पकाधिरूढः सन् पुरीमयोध्यां चचालेति सरलार्थः । नाराच (तारका) वृत्तम् ॥ १०४ ॥

भा०-रामचन्द्रभी अग्निसे शुद्ध क हुई जानकीको ग्रहणकर प्यारे विभीषण सुहृद को शत्रुकी लक्ष्मी देकर सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मणसहित, अपनी भुजासे जीते हुए श्रेष्ठ विमानपर चढकर अपनी पुरीको चले ॥ १०४ ॥

(जानकीकी परीक्षा अग्निमें की, वे अग्निमें प्रवेशकर शुद्ध निकल आईं)

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ।

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ॥
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच॥१॥

अन्वयः । अथ गुणज्ञः सः रामाभिधानो हरिः आत्मनः शब्दगुणं पदं विमानेन विगाहमानः रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः जायामित्युवाच ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ गुणज्ञेन तेन रामाभिधानेन हरिणा आत्मनः शब्दगुणं पदं विमानेन विगाहमानेन (सता) रत्नाकरं वीक्ष्य जायेत्यूचे ॥ १ ॥

अथ गमनानन्तरं गुणज्ञो रामाभिधानो नारायणः स्वपदं शब्दगुणकमाकाशं पुष्पकेण विगाहमानः सन् सागरं वीक्ष्य रहसि सीतां वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाचेति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०-इसके अनन्तर गुणके जाननेवाले वह रामनामक विष्णु अपने शब्दगुणवाले पद (आकाश) में विमानद्वारा फिरते हुए समुद्रको देखकर एकान्तमें इस प्रकार भार्या (सीता) से बोले ॥१॥

वैदेहि पश्या मलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ॥
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥ २ ॥

अन्वयः । (हे) वैदेहि ! आ मलयात् मत्सेतुना विभक्तं फेनिलम् अंबुराशिं छायापथेन (विभक्तं) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशमिव पश्य ॥ २ ॥

वाच्यप० । (हे) वैदेहि ! आ मलयात् मत्सेतुना विभक्तः फेनिलः अंबुराशिः छायापथेन (विभक्तं) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशमिव दृश्यताम् ॥ २ ॥

हे सीते ! मलयपर्यन्तं मत्सतुना द्विधा कृतं फेनवन्तं जलराशिं छायापथेन विभक्तं शरत्प्रसन्नं प्रकटीकृतचारुतारमाकाशमिव पश्येति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०–हे विदेहकुमारि ! मलयाचलपर्वततक विभाग किये अंगोंवाले सागरको, छायापथके विभाग किये हुए, शरद्के समान उज्ज्वल, प्रकाशमान तारोंसे युक्त आकाशकी नाईं देखो ॥ २ ॥

(छायापथको आकाशगंगा और नागवीथीभी कहते हैं जो शरदृतुमें आकाशके मध्य श्वेत रेखा दिखाई देती है)

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे ॥
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥

अन्वयः । यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरंगे कपिलेन रसातलं संक्रमिते (सति) तदर्थम् उर्वीम् अवदारयद्भिः नः पूर्वैः अयं परिवर्धितः किल ॥ ३ ॥

वाच्यप० । यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरंगे कपिलेन रसातलं संक्रमिते (सति) तदर्थम् उर्वीम् अवदारयंतः नः पूर्वे इमं परिवर्द्धितवन्तः किल ॥ ३ ॥

यष्टुमिच्छोः सगरस्याश्वमेधार्हे हये कपिलेन मुनिना पातालं संक्रमिते सति तदर्थं वसुधां खनद्भिरस्माकं पूर्ववृद्धैः सागरपुत्रैरयं सागरः–परिवर्द्धितः किलेति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–यज्ञ करनेवाले पिताके पवित्र घोडेको कपिलद्वारा पातालमें पहुंचानेपर उसके निमित्त पृथ्वी खोदते हुए हमारे पुरुखाओंने इसे वढाया है ॥ ३ ॥

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ॥
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥ ४ ॥

अन्वयः । अर्कमरीचयः अस्माद्गर्भं दधति अत्र वसूनि विवृद्धिम् अश्नुवतेऽसौ अबिंधनं वह्निं बिभर्ति अनेन प्रह्लादनं ज्योतिरजनि ॥ ४ ॥

वाच्यप० । अर्कमरीचिभिः अस्माद्गर्भो धीयते अत्र वसुभिः विवृद्धिः अश्यते अमुना अबिंधनो वह्निः भ्रियतेऽयं प्रह्लादनं ज्योतिरजीजनत् ॥ ४ ॥

सूर्यमरीचयोऽस्मादम्मयं गर्भं वृद्ध्यर्थं दधति । अत्राब्धौ रत्नानि विवृद्धिं प्राप्नुवन्ति । असावबिन्धनं वडवानलं बिभर्ति । अनेनाह्लादकं (चन्द्रो) ज्योतिः जनितमिति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०–सूर्यकी किरणें इससे जल प्राप्त करती हैं, रत्न इसमें वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, पानी भक्षण करनेवाली (वडवा) अग्निको यह धारण करताहै, इसीसे आनन्ददायक ज्योति (चन्द्रमा) उत्पन्न हुआ है ॥ ४ ॥

तांतामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ॥
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥ ५ ॥

अन्वयः । तांतामवस्थां प्रतिपद्यमानं महिम्ना दश दिशो व्याप्य स्थितं विष्णोरिवास्य रूपम् ईदृक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयम् ॥ ५ ॥

वाच्यप० । तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानेन महिम्ना दश दिशः व्याप्य स्थितेन विष्णोरिवास्य रूपेण ईदृक्तया इयत्तया वानवधारणीयेन (भूयते) ॥ ५ ॥

अनेकां तामक्षोभाद्यवस्थां भजमानं महिम्नां दश दिशो व्याप्य स्थितं हरेरिवास्य रत्नाकरस्य स्वरूपमुक्तरीत्या प्रकारतः परिमाणतश्च दुर्निरूपमिति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—अनेक दशाओंको प्राप्त होनेवाला महिमासे दशों दिशाओंमें व्याप्त होकर ठहरे हुए इसका विष्णुके समान, रूप ऐसापन तथा इतनापन से अकथनीय है ॥ ५ ॥

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा ॥
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥ ६ ॥

अन्वयः । युगांतोचितयोगनिद्रः पुरुषः लोकान्संहृत्य नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमानः (सन) अमुम् अधिशेते ॥ ६ ॥

वाच्यप० । युगांतोचितयोगनिद्रेण पुरुषेण लोकान्संहृत्य नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमानेन (सतासौ) अधिशय्यते ॥ ६ ॥

कल्पान्तोचितयोगनिद्रः विष्णुर्लोकान् संहृत्य नाभिप्ररूढपद्मासनाश्रयेण दक्षादीनामपि स्रष्ट्रा पितामहेन ब्रह्मणा संस्तूयमानः सन् अमुमधिशेत इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—प्रलयमें योगनिद्राको प्राप्त होनेवाले विष्णुभगवान् लोकोंको संहारकर, नाभिसे उत्पन्न हुए कमलपर बैठनेवाले प्रथम ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त हो इसमें शयन करते हैं ॥ ६ ॥

पक्षाच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः ॥
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥ ७ ॥

अन्वयः । पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगंधा महीध्राः शतशः शरण्यम् एनं परेभ्यः उपप्लविनो नृपाः धर्मोत्तरं मध्यममिवाश्रयंते ॥ ७ ॥

वाच्यप० । पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगंधैः महीध्रैः शतशः शरण्यः एषः परेभ्यः उपप्लविभिः नृपैः धर्मोत्तरः मध्यम इव आश्रीयते ॥ ७ ॥

पक्षच्छिदा शक्रेण हृतगर्वाः पर्वताः शतशः रक्षणसमर्थमेनं सागरं शत्रुभ्यः भयवन्तो नृपा धर्मप्रधानं मध्यमं भूपालमिवाश्रयन्त इति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-पंख छेदन करनेवाले इन्द्रसे अहंकारहीन हो सैकडों पर्वत, शरण देनेवाले इस सागरको शत्रुओंसे भयभीत हुए राजा श्रेष्ठधर्मवाले मध्यस्थ राजाके समान, आश्रय करते हैं ॥ ७ ॥

(पुरा कृतयुगे तात पर्व्वताः पक्षिणोऽभवन् । तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्व्वाः गरुडा इव वेगिनः ॥ ततस्तेषु प्रयातेषु देवसंघा महर्षिभिः । भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥ ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः । पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ॥) (वाल्मी०)

अत एव इन्द्रः गोत्रभित् उच्यते इति बोध्यम्

भा०-इन्द्रका नाम गोत्रभित् तबसे हुआ जबसे उसने पर्वतोंके पंख काटे, जो कि गरुडकी नाईं उडा करते थे)

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ॥
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥ ८ ॥

अन्वयः । आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः प्रलयप्रवृद्धम् अस्य स्वच्छमम्भः मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥ ८ ॥

वाच्यप० । + + + प्रलयप्रवृद्धेनास्य स्वच्छेनांभसा मुहूर्तवक्त्राभरणेन बभूवे ॥ ८ ॥

आदिवराहेण रसातलात्कृतोद्धरणक्रियायाः भूदेवतायाः प्रलये प्रवृद्धं सागरस्याच्छमम्भो मुहूर्तं लज्जारक्षणार्थं मुखावगुण्ठनं बभूवेति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-आदिवराहद्वारा पातालसे लाई हुई पृथ्वीका, इसका प्रलयमें बढाहुआ स्वच्छ जल, क्षणमात्रको घूंघट हुआ था ॥ ८ ॥

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः ॥
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥ ९ ॥

अन्वयः । अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः तरंगाधरदानदक्षः असौ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिंधूः स्वयं पिबति पाययते च ॥ ९ ॥

वाच्यप० । अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिना तरंगाधरदानदक्षेणामुना मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिंधवः स्वयं पीयंते पाय्यंते च ॥ ९ ॥

अन्येषां पुंसामसाधारणकलत्रवृत्तिरधरसमर्पणे चतुरोऽसौ समुद्रो मुखार्पणेषु सख्यादिप्रेषणं विना धृष्टाः नंदीः स्वयं पिबति पाययते चेति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-स्त्रियोंमें औरोंसे निराले व्यवहारवाला, तरंगरूपी अधर दान करनेमें चतुर यह (सागर) मुख अर्पण करनेमें ढीठ प्रकृतिवाली नदियोंको स्वयं पीता है और पिवाता है ॥ ९ ॥

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात् ॥
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् १०

अन्वयः। अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्त्वं नदीमुखांभः आदाय संमिलयंतः (संतः) सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वंति ॥ १० ॥

वाच्यप०। अमीभिः तिमिभिः विवृताननत्वात्ससत्त्वं नदीमुखांभ आदाय संमीलयद्भिः सद्भिः सरंध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहाः ऊर्ध्वं वितन्यंते ॥ १० ॥

अमी मत्स्यविशेषाः व्यावृतमुखत्वात् मत्स्यादिप्राणिसहितं नदीमुखजलमादाय चञ्चुपुटानि संघट्टयन्तः संतः सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहानूर्ध्वं वितन्वन्तीति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-यह तिमिजातिके मच्छ खुले मुखके कारण जीवो सहित नदीक जलको निगलकर पीछे मुख बंदकर छिद्रवाले शिरोंसे जलके प्रवाहोंको ऊपर फेंकते हैं॥१०॥

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ॥
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम् ॥ ११ ॥

अन्वयः। सहसोत्पतद्भिर्मातंगनक्रैः द्विधा भिन्नान्समुद्रफेनान् पश्य, य एषां कपोलसंसर्पितयाः कर्णक्षणचामरत्वं व्रजंति ॥ ११ ॥

वाच्यप०। सहसोत्पतद्भिर्मातंगनक्रैः द्विधा भिन्नाः समुद्रफेनाः दृश्यंताम्, यैः एषां कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणचामरत्वं व्रज्यते ॥ ११ ॥

सहसोत्पतद्भिर्मातंगाकारैर्ग्राहैर्द्विधा भिन्नान् सागरफेनान्पश्य, ये फेना एषां जलमातङ्गनक्राणां कपोलेषु संसर्पणेन कारणेन श्रवणेषु क्षणं चामरत्वं व्रजन्तीति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०-एकसाथ उठते हुए मतंगके आकार मगरमच्छोंसे दो भाग किये हुए समुद्रके फेनोंको देख, जो उनके कपोलोंपर फैलकर क्षणमात्रको मीनोंकी चामरताको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ॥
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥ १२ ॥

अन्वयः। वेलानिलाय प्रसृताः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषा एते भुजंगाः सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यंते ॥ १२ ॥

वाच्यप०। वेलानिलाय प्रसृतान् महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषानेतान्भुजगान्सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागाः फणस्थाः मणयः व्यंजंति ॥ १२ ॥

वेलापवनं पातुं निर्गता महोर्मीणामुद्रेकाद्दुर्ग्रहभेदा एते सर्पाः सूर्यांशुसम्पर्केण प्रवृद्धकान्तिभिः फणस्थैर्मणिभिरुन्नीयन्त इति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–किनारेकी पवन पीनेके निमित्त निकले हुए, बडी तरंगोंके फैलावके समान यह सर्प सूर्य्यकी किरणोंके संगमसे बढी हुई कान्तिवाली फणोंमें धरी हुई मणियोंसे जाने जाते हैं ॥ १२ ॥

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात् ॥
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शंखयूथम् ॥ १३ ॥

अन्वयः । तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसोर्मिवेगात्पर्यस्तमूर्ध्वांकुरप्रोतमुखम् एतत् शंखयूथं कथंचित्क्लेशादपक्रामति ॥ १३ ॥

वाच्यप० । तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसोर्मिवेगात्पर्यस्तेनोर्ध्वांकुरप्रोतमुखेनैतेन शंखयूथेन कथंचित् क्लेशादपक्रम्यते ॥ १३ ॥

तवाधरसदृशेषु प्रवालेषु सहसोर्मिजवात्प्रोत्क्षिप्तमूर्ध्वाङ्कुरैर्विद्रुमप्ररोहैः स्यूतवदनमेतच्छङ्खानां वृंदं कथंचिद्विलम्ब्यापसरतीति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–तेरे अधरकी हिरस करनेवाले विद्रुम (मूंगों) में सहसा तरङ्गोंके वेगसे फेंकाहुआ स्थित अंकुरोंसे मुख छिदा हुआ यह शंखोंका ढेर कैसे कष्टसे पीछेको लौटता है ॥ १३ ॥

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद्भ्रमता घनेन ॥
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १४ ॥

अन्वयः । पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्त्तवेगाद् भ्रमता घनेनायं समुद्रः भूयोऽपि गिरिणा प्रमथ्यमान इव भूयिष्ठमाभाति ॥ १४ ॥

वाच्यप० । पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेणावर्त्तवेगाद् भ्रमता घनेनानेन समुद्रेण पुनरपि गिरिणा प्रमथ्यमानेनेव भूयिष्ठम् आभायते ॥ १४ ॥

जलानि पातुं प्रवृत्तमात्रेणावर्तवेगाद् भ्रमता मेघेनायं समुद्रः पुनरपि मन्दरेण प्रमथ्यमान इवात्यन्तमाभातीति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०–जल पीनेको प्रवृत्त हुएही आवर्त (जल भ्रमण) के वेगसे घूमतेहुए बादलोंसे यह समुद्र फिरभी पर्वतसे मथन होता हुआसा विदित होताहै ॥ १४ ॥

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ॥
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा ॥ १५ ॥

अन्वयः । अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात्तन्वी तमालतालीवनराजिनीला वेला धारानिबद्धा कलंकरेखेवाभाति ॥ १५ ॥

वाच्यप० । अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात्तन्व्या तमालतालीवनराजिनीलया वेलया धारानिबद्धया कलंकरेखयेवाभायते ॥ १५ ॥

अयश्चक्रसदृशस्य लवणाम्बुराशेर्दूरादणुत्वेनावभासमाना तमालतालीवनपंक्तिभिर्नीला तीरभूमिश्चक्राश्रिता मालिन्यरेखेवाभातीति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०–लोहेके चक्रकी समान खारी समुद्रकी वेला दूर होनेके कारण सूक्ष्म और तमालताल वनोंकी पंक्तिसे नीली, चक्रमें स्थित कलंकरेखा (काई) की समान शोभित होती है ॥ १५ ॥

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि! ॥
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव विम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥ १६ ॥

अन्वयः । हे आयताक्षि वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं संभावयति विंबाधरबद्धतृष्णं मां मंडनकालहानेः अक्षमं वेत्तीव (अयम्) ॥ १६ ॥

वाच्यप० । हे आयताक्षि ! वेलानिलेन केतकरेणुभिस्ते आननं संभाव्यते विंबाधरबद्धतृष्णः अहं मंडनकालहानेः अक्षमः विद्ये इव (अनेन) ॥ १६ ॥

हे दीर्घविलोचने ! तीरभूम्यनिलस्ते मुखं केतकरेणुभिः संभावयति, किमर्थं विम्बाधरे बद्धतृष्णं मामाभरणक्रियया विलम्बमसहमानं वेत्तीवेति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०–हे कमललोचनि ! किनारेकी पवन केतकीकी रेणुओंसे तेरे मुखकी रचना करती है, मानों कंदूरीके समान (लाल) अधरमें तृष्णा बांधे हुए मुझको सिंगार करनेके समय बितानेकी हानिमें असमर्थ जानती है ॥ १६ ॥

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ॥
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥ १७ ॥

अन्वयः । एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं फलावर्जितपूगमालम् पयोधेः कूलं विमानवेगान्मुहूर्तेन प्राप्ताः ॥ १७ ॥

वाच्यप० । एतैरस्माभिः सैकतभिन्नशुक्तिपर्य्यस्तमुक्तापटलं फलावर्जितपूगमालम् पयोधेः कूलं विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्तम् ॥ १७ ॥

एते वयं सैकतेषु स्फुटिताभिः शुक्तिभिः क्षिप्तमुक्तापटलं फलैरानमितपूगमालं सागरस्य तटं विमानवेगान्मुहूर्तेन प्राप्ताः, त्वं पश्येति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–यह हम रेतमें फटी हुई सीपियोंके फैले हुए मोतियोंके ढेरवाले तथा फलोंसे झुके हुए पूग (सुपारी) की लतावाले सागरके किनारेपर विमानके वेगसे मुहूर्तमात्रमें प्राप्त होगये ॥ १७ ॥

कुरुष्व तावत्करभोरु! पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि ! दृष्टिपातम् ॥
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ॥ १८ ॥

अन्वयः । (हे) करभोरु (हे) मृगप्रेक्षिणि ! तावत्पश्चान्मार्गे दृष्टिपातं कुरुष्वैषा सकानना भूमिः विदूरीभवतः समुद्रान्निष्पततीति इव ॥ १८ ॥

वाच्यप० । (हे) करभोरु (हे) मृगप्रेक्षिणि ! तावत्पश्चान्मार्गे दृष्टिपातः क्रियतामेतया सकाननया भूम्या विदूरीभवतः समुद्रान्निष्पत्यते इव ॥ १८ ॥

हे करभोरु ! हे मृगप्रेक्षिणि ! तावल्लंघिताध्वनि दृष्टिपातं कुरुष्व, एषा सकानना भूमिर्विदूरीभवतः सागरान्निष्क्रामतीवेति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०–हे करभोरु हे मृगलोचनी ! पहले पीछेके मार्गको तो देखो, यह वनसहित भूमि दूररहते हुए सागरसे निकलती हुई सी (दीखती है) ॥ १८ ॥

क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ॥
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम्॥१९॥

अन्वयः । (हे देवि !) विमानं मे मनसः अभिलाषः यथाविधः तथा प्रवर्त्तते पश्य (तथाहि) क्वचित् सुराणां क्वचित् घनानां क्वचित्पततां च पथा संचरते ॥ १९ ॥

वाच्यप० । (हे देवि !) विमानेन मे मनसोऽभिलाषेण यथाविधेन (भूयते) तथा प्रवृत्यते दृश्यतां (तथाहि) क्वचित्सुराणां क्वचिद्घनानां क्वचित्पततां च पथा संचर्य्यते ॥ १९ ॥

हे देवि ! पुष्पकं मे मनसोभिलाषो यथाविधस्तथा प्रवर्त्तते त्वं पश्य, क्वचिद्देवानां मार्गेण संचरते क्वचिन्मेघानां क्वचित् पक्षिणां पथा संचरत इति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०–(हे देवि) यह विमान मेरे मनकी इच्छा जैसी (होती है) वैसाही चलता है. देख कभी देवताओंके, कभी मेघोंके, और कभी पक्षियोंके मार्गमें चलता है॥१९॥

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ॥
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥ २० ॥

अन्वयः । महेंद्रद्विपदानगंधिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः दिनयौवनोत्थान् ते मुखे स्वेदलवानाचामति ॥ २० ॥

वाच्यप० । महेंद्रद्विपदानगंधिना त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतेनामुनाऽऽकाशवायुना दिनयौवनोत्थाः ते मुखे स्वेदलवा आचम्यंते ॥ २० ॥

ऐरावतमदगन्धिः गंगातरंगसंस्पर्शशीतलः पवनः मध्याह्नसंभवान् ते मुखे स्वेदलवानाचामतीति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०–इन्द्रके हाथीके मदकी गन्धवाली, आकाशगंगाकी तरंगोंके लगनेसे शीतल यह आकाशकी पवन दुपहरीमें उठे हुए तेरे मुखकी पसीनेकी बूँदोंको सुखाती है॥२०॥

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि ! कुतूहलिन्या ॥
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

अन्वयः । हे चंडि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलंबितेन करेण स्पृष्टः उद्भिन्नविद्युद्वलयः घनः ते द्वितीयमाभरणम् आमुंचतीव ॥ २१ ॥

वाच्यप० । हे चंडि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलंबितेन करेण स्पृष्टेनोद्भिन्नविद्युद्वलयेन घनेन द्वितीयम् आभरणं ते आमुच्यते इव ॥ २१ ॥

हे कोपने ! विनोदार्थिन्या त्वया गवाक्षावलंसितेन करेण स्पृष्ट उद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते द्वितीयं वलयमर्पयतीवेति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-हे कोपनस्वभाववाली कुतूहल करनेवाली तुझसे झरोखेमें लम्बायमान बाँहसे छुआ हुआ, चमकती हुई बिजलीके कंकनवाला बादल तेरे निमित्त मानो दूसरा गहना देता है ॥ २१ ॥

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ॥
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि॥२२॥

अन्वयः । अमी चीरभृतः जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममंडलानि यथास्वम् अध्यासते ॥ २२ ॥

वाच्यप० । अमीभिः चीरभृद्भिः जनस्थानम् अपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यास्यंते ॥ २२ ॥

अमी तापसाः जनस्थानमपास्तविघ्नं ज्ञात्वा समारब्धनवपर्णशालान् राक्षसभयाच्चिरोज्झितानाश्रमविभागान् यथास्वमधितिष्ठन्तीति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-यह चीर धारण करनेवाले तपस्वी जनस्थानको विघ्न रहित मानकर नई बनाई पर्णकुटीवाले, बहुतकालसे छोडे हुए आश्रममण्डलोंमें सुखपूर्वक वसते हैं॥२२॥

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ॥
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ २३ ॥

अन्वयः । सा स्थली, एषा यत्र त्वां विचिन्वता मया त्वच्चरणारविंदविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् उर्व्यां भ्रष्टम् एकं नूपुरम् अदृश्यत ॥ २३ ॥

वाच्यप० । तया स्थल्या एतया, यत्र त्वां विचिन्वन् अहं त्वच्चरणारविंदविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् उर्व्यां भ्रष्टम् एकं नूपुरम् अपश्यम् ॥ २३ ॥

सा पूर्वानुभूता स्थली दृश्यते यत्र त्वामन्विष्यता मया त्वच्चरणवियोगदुःखादिव निश्शब्दं पृथिव्यां भ्रष्टमेकं नूपुरं दृष्टमिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-यह वह स्थान है जहां तुझ ढूंढते हुए मैंने तेरे चरणारविन्दके वियोगके दुःखसे मौन साधे, पृथ्वीमें पडेहुए, एक नूपुरको (मंजीर जिसे स्त्री पैरमें पहरती हैं) पाया था ॥ २३ ॥

त्वं रक्षसा भीरु ! यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ॥
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

अन्वयः । (हे) भीरु ! त्वं रक्षसा यतः अपनीता तं मार्गं वक्तुम् अशक्नुवत्यः एताः लताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्शयन् ॥ २४ ॥

वाच्यप० । हे भीरु ! त्वां रक्षः यतः अपनीतवत् स मार्गः वक्तुमशक्नुवतीभिरेताभिर्लताभिः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्श्यत ॥ २४ ॥

हे भयशीले ! त्वं रावणेन येन मार्गेणापहृता तं मार्ग वागिन्द्रियाभावाद्वक्तुमशक्नुवत्य एता वीरुधः नमितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मेऽदर्शयन्निति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—हे डरनेवाली ! राक्षस तुझको हरकर जिस ओरको ले गया था, उस मार्गके कहनेको असमर्थ यह लताएं झुकेहुए पत्तोंकी डालियोंसे दयाकर मुझको बताती हुई ॥ २४ ॥

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ॥
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि २५

अन्वयः । दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यश्चोत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः तवागतिज्ञं मां समबोधयन् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाभिः मृगीभिश्चोत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयंतीभिः तवागतिज्ञोहं समबोधिषि ॥ २५ ॥

दर्भांकुरेषु निस्पृहाः मृग्यो मृगाङ्गनाश्चोत्पक्ष्मराजीनि नेत्राणि दक्षिणस्यां दिशि प्रवर्तयन्त्यः स्त्य· स्तव गत्यनभिज्ञं मां समबोधयन्निति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—कुशांकुर भोजनमें इच्छा छोड़े हरिणी ऊंचे पलकोंवाले नेत्र दक्षिणदिशामें चलाती हुई तेरे मार्गके न जाननेवाले मुझको समझाती हुई ॥ २५ ॥

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ॥
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥२६॥

अन्वयः । माल्यवतो गिरेः अंबरलेखि शृंगम् एतत्पुरस्तादाविर्भवति यत्र घनैः नवं पयः मया त्वद्विप्रयोगाश्रु च समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

वाच्यप० । माल्यवतो गिरेरंबरलेखिना शृंगेणैतेन पुरस्तादाविर्भूयते । यत्र घनाः नवं पयः (विसृष्टवंतः) अहं त्वद्विप्रयोगाश्रु विसृष्टवान् ॥ २६ ॥

माल्यवतो नाम गिरेरम्बरलेखि शृंगमग्रे आविर्भवति, यत्र मेघैर्नवं पयः मया त्वद्वियोगाश्रु च युगपद्विसृष्टमिति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—माल्यवान् पर्वतका आकाश छूनेवाला यह शृंग आगे दिखाई देता है, जहा बादलोंने नवीन जल और मैंने तेरे वियोगके आंसू बराबरही छोड़े थे ॥ २६ ॥

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च ॥
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥ २७ ॥

अन्वयः । यस्मिन्धाराहतपल्वलानां गंधश्चार्धोद्गतकेसरं कादंबं च स्निग्धाः शिखिनां केकाश्च (इत्येतानि) त्वया विना मेऽसह्यानि बभूवुः ॥ २७ ॥

वाच्यप० । यस्मिन्धाराहतपल्वलानां गंधेन चार्धोद्गतकेशरेण कादंबेन च स्निग्धाभिः केकाभिश्च त्वया विना मेऽसह्यैः (असह्येन वा) बभूवे ॥ २७ ॥

यस्मिञ्शृङ्गे धाराभिराहतपल्वलानां गन्धश्चार्द्धोद्गतकेसरं नीपकुसुमं च मधुराः बर्हिणां केकाश्च त्वया विना मेऽसह्यानि बभूवुरिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०-जिसमें वर्षासे छिड़की हुई पोखरोंकी सुगन्धि और आधी खिली मंजरियोंवाले कदम्बके फूल और मोरोंके मनोहर शब्द मुझे तेरे विना असह्य हुए थे॥२७॥

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु ! तवोपगूढम् ॥
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि ॥ २८ ॥

अन्वयः । (हे) भीरु ! यत्र च पूर्वानुभूतं कंपोत्तरं तवोपगूढं स्मरता मया गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथंचिदतिवाहितानि ॥ २८ ॥

वाच्यप० । (हे) भीरु ! यत्र पूर्वानुभूतं कंपोत्तरं तवोपगूढं स्मरन् अहं गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथंचिदतिवाहितवान् ॥ २८ ॥

हे भीरु ! यत्र शृंगे पूर्वानुभूतं कंपोत्तरं तवोपगूहनं स्मरता मया गुहाविसारीणि मेघगर्जितानि कथंचिदतिवाहितानीति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-हे भीरु ! जिसमें पूर्वकालमें भोगे हुए तेरे कांपने सहित आलिंगनोंको स्मरण करते हुए मैंने गुहाओंमें वृद्धिको प्राप्त हुई बादलोंकी गर्जना किसी प्रकारसे बिताई थीं ॥ २८ ॥

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ॥
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥ २९ ॥

अन्वयः । यत्र विभिन्नकोशैः नवकंदलैः आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगाद्विडम्ब्यमाना ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः मामाक्षिणोत् ॥ २९ ॥

वाच्यप० । यत्र विभिन्नकोशैर्नवकंदलैरासारसिक्तक्षितिबाष्पयोगाद्विडंब्यमानया ते विवाहधूमारुणलोचनश्रिया (स्मर्य्यमाणया) अहम् अक्षीये ॥ २९ ॥

यत्र शृंगे विकसितकुड्मलैर्नवकन्दलैर्धारासंपातेन सिक्तायाः वसुधायाः बाष्पयोगादनुक्रियमाणा ते विवाहधूमेनारुणा नेत्रश्रीः मामपीडयदिति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०–जहां वर्षाकी सींची पृथ्वीकी भाफका संयोग पाकर खिली कलीवाली नई कन्दलियोंसे होड करती हुई विवाहके धुंएसे लालपनको प्राप्त हुई तेरे नेत्रोंकी शोभाने (स्मरण करनेवाले) मुझको कष्ट दिया था ॥ २९ ॥

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ॥
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

अन्वयः । उपांतवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पंपासलिलानि दूरावतीर्णा (मे) दृष्टिः (अत एव) खेदात् पिबतीव ॥ ३० ॥

वाच्यप० । उपांतवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पंपासलिलानि दूरावतीर्णया (मे) दृष्ट्या (अत एव) खेदात्पीयंत इव ॥ ३० ॥

पार्श्वेवञ्जुलवनच्छन्नानि, ईषद्दृश्यानि चञ्चलसारसान्यमूनि पम्पासरोजलानि दूरादवतीर्णा मे दृष्टिः खेदात्पिबतीवेति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०–किनारेके वानीर वनोंसे ढँके, कुछेक दीखते चंचल सारसोंवाले इन पंपासरोवरके जलोंको दूर गई हुई दृष्टि मानों दुःखसे पान करती है ॥ ३० ॥

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ॥
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये ! सस्पृहमीक्षितानि ३१ ॥

अन्वयः । (हे) प्रिये ! अत्रान्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि रथांगनाम्नां द्वंद्वानि ते दूरांतरवर्तिना मया सस्पृहमीक्षितानि ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । हे प्रिये ! अत्रान्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि रथांगनाम्नां द्वंद्वानि ते दूरांतरवर्ती अहं सस्पृहम् ईक्षितवानस्मि ॥ ३१ ॥

अत्र पम्पासरस्यन्योन्यस्मै दत्तोत्पलमकरन्दान्यवियुक्तानि चक्रवाकमिथुनानि दूरदेशवर्तिना मया हे प्रिये ! सस्पृहमीक्षितानीति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०–हे प्रिये ! यहां परस्पर कमलके पराग देतेहुए, मिलेहुए, चकवा चकवीके जोडे दूर वर्तनेवाले तेरे मुझ वियोगीने बडी लालसासे देखे थे ॥ ३१ ॥

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् ॥
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ॥३२॥

अन्वयः । (किं) च स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्रां तन्वीम् इमां तटाशोकलतां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः अहं सौमित्रिणा साश्रुः निषिद्धः ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । किं च स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्रां तन्वीम् इमां तटाशोकलतां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामं मां सौमित्रिः साश्रुं निषिद्धवान् ॥ ३२ ॥

किं च कुचवदभिरामाभ्यां स्तवकाभ्यामभिनम्रां तन्वीमिमां तटाशोकस्य शाखां त्वमेव प्राप्तेति भ्रान्त्यालिंगितुकामः साश्रुः अहं लक्ष्मणेन नेयं सीतेति निवारित इति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०-किन्तु स्तनसदृश मनोहर गुच्छोंसे झुकी इस तटकी अशोकलताको तेरी प्राप्तिकी बुद्धिसे आलिंगन करनेकी इच्छा करनेवाले आंसू बहाते मुझको लक्ष्मणनें निषेध किया था (अर्थात् यह सीता नहीं ऐसा कहकर निवारण कियाथा) ॥३२॥

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिंकिणीनाम् ॥
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ॥३३॥

अन्वयः । विमानांतरलंबिनीनां कांचनकिंकिणीनां स्वनं श्रुत्वा खम् उत्पतंत्यः अमूः गोदावरीसारससपंक्तयः त्वां प्रत्युद्व्रजंति इव ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । विमानांतरलंबिनीनां कांचनकिंकिणीनां स्वनं श्रुत्वा खमुत्पतंतीभिः अमूभिः गोदावरीसारसपंक्तिभिः त्वं प्रत्युद्व्रज्यसे इव ॥ ३३ ॥

विमानस्यावकाशेषु लम्बिनीनां सुवर्णकिङ्किणीनां शब्दं श्रुत्वा स्वयूथशब्दभ्रमादाकाशमुत्पतन्त्यो ऽमूर्गोदावरीसारसपंक्तयस्त्वां प्रत्युद्व्रजन्तीवेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-विमानान्तरमें लम्बायमान सुवर्णके घूंघरुओंका शब्द सुनकर आकाशमें उडनेवाली यह गोदावरीके सारसोंकी पंक्तियें तेरे सन्मुख आती हैं ॥ ३३ ॥

एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ॥
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥३४॥

अन्वयः । पेशलमध्ययापि त्वया घटांबुसंवर्धितबालचूता उन्मुखकृष्णसारा चिराद्दृष्टेषा पञ्चवटी मे मनः आनंदयति ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । पेशलमध्ययापि त्वया घटांबुसंवर्धितबालचूतयोन्मुखकृष्णसारया चिराद्दृष्टया एतया पंचवट्या मे मन आनंद्यते ॥ ३४ ॥

साराक्षमयापि त्वया: घटजलैः संवर्द्धितबालाम्रा अस्मदाभिमुखकृष्णसारा चिराद्दृष्टैषा पंचवटी मे मन आह्लादयतीति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-पतली कटिवाली तुझसे घडोंके जलसे बढाये हुए आमके बिरवोंवाली, ऊपरको मुख किये मृगोंवाली, बहुत दिनके पीछे देखी हुई यह पंचवटी मेरे मनको प्रसन्न करती है ॥ ३४ ॥

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः ॥
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ॥ ३५ ॥

अन्वयः । अत्र पंचवट्याम् अनुगोदं मृगयानिवृत्तः तरंगवातेन विनीतखेदः रहस्त्वदुत्संगनिषण्णमूर्द्धा (सन्नहं) वानीरगृहेषु सुप्तः स्मरामि ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तेन तरंगवातेन विनीतखेदेन रहस्त्वदुत्संगनिषण्णमूर्ध्ना (सता मया) वानीरगृहेषु सुप्तं स्मर्यते ॥ ३५ ॥

अत्र पञ्चवट्यां गोदावरीसमीपे मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन गतश्रमः रहसि त्वदंकनिषण्णशिराः सन्नहं वानीरगृहेषु सुप्तः स्मरामीति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०–इस पंचवटीमें गोदावरीके किनारे मृगयासे निवृत्त हो तरंगोंकी पवनसे श्रमरहित हो एकान्तमें तेरी गोदीमें शिर रखकर नरसलकी कुटीमें सोया हुआ मैं सुध करता हूं ॥ ३५ ॥

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ॥
तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ३६॥

अन्वयः । यः भ्रूभेदमात्रेण नहुषं मघोनः पदात् प्रभंशयांचकार आविलांभःपरिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेरयं भौमः स्थानपरिग्रहः ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । येन भ्रूभेदमात्रेण नहुषः मघोनः पदात्प्रभ्रंशयांचक्रे आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेरनेन भौमेन स्थानपरिग्रहेण (भूयते) ॥ ३६ ॥

यो मुनिर्भ्रूभङ्गमात्रेणैव नहुषं राजानं शक्रस्य स्थानात्प्रभ्रंशयाञ्चकार कलुषजलप्रसादहेतोस्तस्य मुनेरगस्त्यस्य भौमस्थानपरिग्रह आश्रमोयं दृश्यत इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०–जो भौंहके मरोडनेसेही नहुषको इन्द्रके पदसे भ्रष्ट करतेहुए, मैले जलोंके निर्मल करनेके कारण उन मुनि (अगस्त्य) का यह धरतीपर कियाहुआ आश्रम है ॥ ३७ ॥

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ॥
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा३७॥

अन्वयः । अनिंद्यकीर्तेस्तस्याक्रांतविमानमार्गं हविर्गंधीदं त्रेताग्निधूमाग्रं घ्रात्वा रजोविमुक्तः मे आत्मा लघिमानं समश्नुते ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । अनिंद्यकीर्तेस्तस्याक्रांतविमानमार्गं हविर्गंधीदं त्रेताग्निधूमाग्रं घ्रात्वा रजोविमुक्तेन मे आत्मना लघिमा समश्यते ॥ ३७ ॥

पवित्रकीर्तेस्तस्यागस्त्यस्याक्रान्तविमानमार्गं हविर्गन्धि त्रेताग्नेर्धूमाग्रमाघ्राय रजसो गुणाद्विमुक्तो मे आत्मा लघुत्वगुणं प्राप्नोतीति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०–निन्दारहित कीर्तिवाले तिन मुनिके विमानके मार्गमें आते हुए, हविकी सुगन्धिवाले इस तीन अग्निके धुएंको सूंघकर मुझ रजोगुण रहितका आत्मा लघुता (शुद्धता) को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

एतन्मुनेर्मानिनि ! शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ॥
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥३८॥

अन्वयः । (हे) मानिनि ! शातकर्णेः मुनेः पंचाप्सरो नाम पर्यन्तवनम् एतद्विहारवारि विदूरात् मेघांतरालक्ष्यमिंदुबिंबमिवाभाति ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । (हे) मानिनि ! शातकर्णेः मुनेः पंचाप्परसा नाम पर्य्यंतवनेनैतेन विहारवारिणा विदूरान्मेघांतरालक्ष्येणेंदुबिंबेनेवाभायते ॥ ३८ ॥

हे मानिनि ! शातकर्णेर्मुनेः सम्बन्धि पञ्चाप्सरो नाम पर्यन्तवनमेतत्क्रीडासरो विदूरात् मेघानां मध्य ईषद्दृश्यं चन्द्रबिम्बमिवाभातीति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-हे मानिनि! शातकर्णी मुनिका यह पंचाप्सर नाम, वनसे घिरा हुआ, जलविहार करनेका सरोवर, दूसरे बादलोंके बीचमें दीखते हुए चन्द्रबिम्बके समान प्रकाशित होता है ॥ ३८ ॥

पुरा स दर्भांकुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ॥
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः । पुरा दर्भांकुरमात्रवृत्तिः मृगैः सार्द्धं चरन्सः ऋषिः समाधिभीतेन मघोना पंचाप्सरोयौवनकूटबंधम् उपनीतः किल ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । पुरा दर्भांकुरमात्रवृत्तिं मृगैः सार्द्धं चरंतं तमृषिं समाधिभीतः मघवा पंचाप्सरोयौवनकूटबंधम् उपनीतवान् ॥ ३९ ॥

पूर्वस्मिन्काले दर्भांकुरमात्राहारो मृगैः सह चरन्स ऋषिस्तपसो भीतेन पुरन्दरेण पञ्चानामप्सरसां यौवनं कपटयन्त्रमुपनीत इति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-प्रथम दूर्वांकुर भक्षण करते, मृगोंके साथ फिरते हुए वह महर्षि, समाधिसे डरे हुए इन्द्रद्वारा पांच अप्सराओंके यौवनरूपी कूटजालमें फंसाये गये थे ॥ ३९ ॥

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ॥
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥४०॥

अन्वयः । अंतर्हितसौधभाजः तस्यायं प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः वियद्गतः (सन्) पुष्पकचंद्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥ ४० ॥

वाच्यप० । अन्तर्हितसौधभाजः तस्यानेन प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषेण वियद्गतेन (सता) पुष्पकचंद्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः क्रियंते ॥ ४० ॥

जलान्तर्गतप्रासादगतस्य तस्य शातकर्णेरयं संततः सङ्गीतमृदङ्गघोषो वियद्गतः सन् पुष्पकस्य शिरोगृहाणि क्षणं प्रतिध्वनिर्मुखराणि करोतीति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०—जलके भीतर मंदिरमें रहनेवाले उन मुनिकी यह संगीतसे मृदंगकी ध्वनि आकाशमें प्र होकर (प्रतिध्वनित हो) पुष्पकके ऊपरके मन्दिरोंको क्षणमात्र गुंजारती है ॥ ४० ॥

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः ॥
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ॥४१॥

अन्वयः । नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दांतः असावपरः तपस्वी एधवतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः (सन्) तपस्यति ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । नाम्ना सुतीक्ष्णेन चरितेन दांतेनामुनाऽपरेण तपस्विना एधवतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिना (सता) तपस्यते ॥ ४१ ॥

सुतीक्ष्णनामा सौम्योऽसावपरस्तपस्वीन्धनवतां चतुर्णामग्नीनां मध्ये ललाटंतपसूर्यः सन् तपश्चरतीति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—सुतीक्ष्ण नामवाला उदार चरित्र (वा सौम्यचरित्र) यह दूसरा तपस्वी चार जलती हुई अग्नियोंके बीचमें सूर्यसे माथा तपानेवाला तप करता है ॥ ४१ ॥

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि ॥
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुरांगनाविभ्रमचेष्टितानि ॥ ४२ ॥

अन्वयः । जनितेन्द्रशंकममुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि सुरांगनाविभ्रमचेष्टितानि विकर्तुं नालं (बभूवुः) ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । जनितेद्रशंकम् अमुं सहासप्रहितेक्षणैः व्याजार्द्धसन्दर्शितमेखलैः सुरांगनाविभ्रमचेष्टितैः विकर्तुं नालं (बभूवे) ॥ ४२ ॥

तपसा जनितेन्द्रभयममुं सुतीक्ष्णं सहासं प्रहितानीक्षणानि केनचिन्मिषेण संदर्शितमेखलानि शक्रप्रेपितानामप्सरसां विलासचेष्टितानि स्खलयितुं समर्थानि न बभूवुरिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—इन्द्रके शंकित करनेवाले इन (मुनिको) मुसकान सहित कटाक्ष और व्याजसे आधी मेखला दिखानेवाली देवांगनाओंकी चेष्टाएं विकार करनेको समर्थ न हुईं ॥ ४२ ॥

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् ॥
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥४३॥

अन्वयः । ऊर्ध्वबाहुरेषः अक्षमालावलयं मृगाणां कंडूयितारं कुशसूचिलावं सव्येतरं भुजं मे संभाजने इतः प्राध्वं प्रयुक्ते ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । उर्ध्वबाहुनैतेनाक्षमालावलयः मृगाणां कंडूयिता कुशसूचिलावः सव्येतरः भुजः मे सभाजने इतः प्राध्वं प्रयुज्यते ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्ववाहुरेष सुतीक्ष्णोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावं दक्षिणं भुजं मम संमाननिमित्तम् इतः प्रकृतानुकूलबन्धं प्रयुंक्त इति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-ऊपरको भुजा उठाये यह (तपस्वी) रुद्राक्षकी मालाके कंकनवाली मृगोंकी खुजानेवाली और कुशके तोडनेवाली दाहिनी भुजा मेरे सत्कारके निमित्त अनुकूलकरके इधर करता है ॥ ४३ ॥

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ॥
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥ ४४ ॥

अन्वयः । एषः वाचंयमत्वान्मम प्रणतिं मूर्ध्नः किंचित्कंपेन प्रतिगृह्य विमानव्यवधानमुक्तां दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । एतेन वाचंयमत्वान्मम प्रणतिं मूर्ध्नः किंचित् कंपेन प्रतिगृह्य विमानव्यवधानमुक्ता दृष्टिः पुनः सहस्रार्चिषि संनिधीयते ॥ ४४ ॥

एषः सुतीक्ष्णः मौनव्रतकारणात् मम प्रणतिं किंचिन्मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानातिरोधानमुक्तां दृष्टिं पुनः सूर्ये सन्निधत्त इति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-यह (तपस्वी) मौन होनेके कारण मेरे प्रणामको शिरके कुछेक कंपानेसे ग्रहण करके विमानके आनेसे छुटी हुइ दृष्टिको फिर सूर्यमें लगाता है ॥ ४४ ॥

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ॥
चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥४५॥

अन्वयः । शरण्यं पावनम् अदः तपोवनम् आहिताग्नेः शरभंगनाम्नः (संबंधि) यः चिरायाग्निं समिद्भिः सन्तर्प्य मंत्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । शरण्येन पावनेनामुना तपोवनेनाहिताग्नेः शरभंगनाम्नः (संबंधिना भूयते) येन चिरायाग्निं समिद्भिः संतर्प्य मंत्रपूता तनुरप्यहावि ॥ ४५ ॥

शरणागतवत्सलं पावनमदो दृश्यमानं तपोवनमाहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नो मुनेरस्ति, यः शरभङ्गश्चिरमग्निं समिद्भिस्तर्पयित्वा मन्त्रशुद्धं देहमपि हुतवानिति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०-शरणदायक पवित्र यह तपोवन अग्निहोत्री शरभंगऋषिका है, जिन्होंने बहुत काल अग्निको समिधोंसे तृप्त करके मंत्रोंसे पवित्र किया शरीरभी होम दिया था॥४५॥

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु ॥
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥ ४६ ॥

अन्वयः । अधुना तस्यातिथीनां सपर्या छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थिता ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । अधुना तस्यातिथीनां सपर्यया छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थितम् ॥ ४६ ॥

अस्मिन्काले तस्य शरभङ्गस्य सम्बन्धिन्यतिथिपूजा छायाभिर्विनीतमार्गपरिश्रमेषु बहुतमश्लाघ्यफलेष्वमीषु वृक्षेषु सुपुत्रेष्विव स्थितेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-इस समय उनके अतिथियोंकी पूजा छायासे मार्गका परिश्रम दूर करनेवाले बहुत फल देनेवाले इन वृक्षोंमें सुपुत्रोंकी समान स्थित है ॥ ४६ ॥

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ॥
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥४७॥

अन्वयः । धारास्वनोद्गारिदरीमुखः शृंगाग्रलग्नांबुदवप्रपंकः असौ चित्रकूटः (हे) बंधुरगात्रि ! दृप्तः ककुद्मानिव मे चक्षुः बध्नाति ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । धारास्वनोद्गारिदरीमुखेन शृंगाग्रलग्नांबुदवप्रपंकेन अमुना चित्रकूटेन (हे) बंधुरगात्रि ! दृप्तेन ककुद्मतेव मे चक्षुः बध्यते ॥ ४७ ॥

धारास्वनेनोद्गारिदरीमुखः शिखराग्रलग्नमेघवप्रपङ्कोऽसौ चित्रकूटः, हे उन्नतानताङ्गि मे चक्षुरनन्यसक्तं करोतीति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०-हे ऊंचेअंगवाली धाराके शब्दोंसे युक्त गुफारूपी मुख तथा शिखरके अग्रमें लगे मेघरूपी क्रीडाकी कीचवाला यह चित्रकूट ऊंचे कंधेवाले बैलके समान मेरी दृष्टिको खैंचता है ॥ ४७ ॥

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ॥
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥४८॥

अन्वयः । प्रसन्नास्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी मंदाकिनी (नाम) एषा सरित् नगोपकंठे भूमेः कंठगता मुक्तावलीव भाति ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । प्रसन्नास्तिमितप्रवाहया विदूरान्तरभावतन्व्या मंदाकिन्या नाम्नैतया सरिता नगोपकंठे भूमेः कंठगतया मुक्तावल्येव भायते ॥ ४८ ॥

निर्मलनिस्पन्दप्रवाहा दूरदेशवर्तित्वात्तनुत्वेनावभासमाना मन्दाकिनी नाम सरिन्नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावलीव भातीति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०-निर्मल और थोडे (निश्चल) प्रवाहवाली दूरसे देखनेके कारण पतली मन्दाकिनी नाम यह नदी पहाडके नीचे पृथ्वीके गलेमें पडी हुई मोतियोंकी मालाकी समान दीखती है ॥ ४८ ॥

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ॥
यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते ॥ ४९ ॥

अन्वयः । अनुगिरं सुजातः अयं तमालः (दृश्यते इति शेषः) यस्य सुगंधि प्रवालमादाय मया ते यवांकुरापांडुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । अनुगिरं सुजातमिमं तमालं (पश्यामः) यस्य सुगंधि प्रवालम् आदायाहं ते यवांकुरापांडुकपोलशोभिनम् अवतंसं परिकल्पितवान् ॥ ४९ ॥

गिरेः समीपे सुजातः सः तमालोयं दृश्यते, यस्य तमालस्य सुगन्धिप्रवालमादाय मया ते यवांकुरवदापाण्डुकपोलशोभ्यवतंसः परिकल्पित इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—पहाडके समीप शोभायमान यह तमाल वह है कि जिसका सुगंधियुक्त पत्र लेकर मैंने तेरे जवके अंकुर समान कुछ पीतवर्ण कपोलको सुन्दर करनेवाला कर्ण फलबनाया था ॥ ४९ ॥

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलवन्धिवृक्षम् ॥
वनं तपःसाधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् अपुष्पलिंगात्फलवन्धिवृक्षम् आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् अत्रेः तपःसाधनम् एतद्वनम् ॥ ५० ॥

वाच्यप० । अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वेनापुष्पलिंगात्फलवन्धिवृक्षेणाविष्कृतोदग्रतरप्रभावेण अत्रेः तपःसाधनेन वनेन एतेन (भूयते) ॥ ५० ॥

दण्डभयरहिता अपि विनीता जन्तवः पुष्परूपनिमित्तं विनैव फलग्राहिणो वृक्षाश्च यस्मिन्वने सन्ति । एतदाविष्कृतोदग्रतरप्रतापमत्रेर्मुनेस्तपसः साधनं वनमस्तीति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—दंडके भयविना भी विनय सीखे हुए जीव और फूलोंके विना आये फलवाले वृक्ष तथा वडे प्रताप प्रगट करनेवाला अत्रिके तपका साधन यह वन है ॥५०॥

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् ॥
प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ॥५१॥

अन्वयः । अत्र अनुसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्मां त्र्यंवकमौलिमालां त्रिस्रोतसं तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामास किल ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । अत्र अनुसूयया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्मा त्र्यंवकमौलिमाला त्रिस्रोताः तपोधनानामभिषेकाय प्रवर्तयामासे ॥ ५१ ॥

अत्र वनेऽनुसूयाऽत्रिपत्नी सप्तर्षिहस्तोद्धृतसुवर्णोत्पलां शिवशिरःस्रजं भागीरथीं तपोधनानाम् ऋषीणां स्नानाय प्रवाहयामासेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—यहां अनुसूया सप्तर्षियोंके हाथसे उखाडे सोनेके कमलवाली शिवजीके शिरकी मालारूप गंगाको तपस्वियोंके अभिषेकके निमित्त लाती हुई ॥ ५१ ॥

(अत्रिकी स्त्रीका नाम अनुसूया है)

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः ॥
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोपि॥५२॥

अन्वयः। वीरासनैः ध्यानजुषामृषीणां (संबंधिनः) समध्यासितवेदिमध्या अमी शाखिनोपि निवातनिष्कंपतया योगाधिरूढा इव विभांति ॥ ५२ ॥

वाच्यप०। वीरासनैः ध्यानजुषामृषीणां संबंधिभिः समध्यासितवेदिमध्यैरमीभिः शाखिभिरपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढैरिव विभायते ॥ ५२ ॥

वीरासनैर्ध्यायताम् ऋषीणां समध्यासितवेदिमध्या अमी तरवोपि निर्वाते निष्कम्पतया ध्यानभाज इव विभान्तीति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—वीरासन लगाकर ध्यान करतेहुए ऋषियोंकी वेदियोंके मध्यमें स्थितहुए यह वृक्षभी हवा न लगनेसे निश्चल होनेके कारण योगसमाधि लगायेसे दीखते हैं ॥ ५२ ॥

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ॥
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ॥५३॥

अन्वयः। त्वया पुरस्तात् यः उपयाचितः श्याम इति प्रतीतः सोऽयं वटः फलितः (सन्) सपद्मरागः गारुडानां मणीनां राशिरिव विभाति ॥ ५३ ॥

वाच्यप०। त्वं पुरस्तात् यम् उपयाचितवती श्याम इति प्रतीतेन तेनानेन वटेन फलितेन (सता) सपद्मरागेण गारुडानां मणीनां राशिनेव विभायते ॥ ५३ ॥

त्वया पूर्वं यः प्रार्थितः श्याम इति प्रतीतः स वटोयं फलितः सन् सपद्मरागो मरकतानां राशिरिव विभातीति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—तैंने प्रथम जिसकी पूजा की थी श्याम नामवाला वही यह वटका वृक्ष फूलाहुआ गारुडमणि अर्थात् चुन्नियोंसे युक्त पन्नेके समूहकी नाई शोभित होता है॥५३॥

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ॥
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ ५४ ॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ॥
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ॥
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥ ५६ ॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ॥
पश्यानवद्यांगि ! विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः॥ ५७ ॥

अन्वयः । हे अनवद्यांगि ! यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहा गंगा क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैरनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिरिवान्यत्रेन्दीवरैरुत्खचितांतरा सितपंकजानां मालेव क्वचित् कादंबसंसर्गवती प्रियमानसानां खगानां पंक्तिरिव अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा चंदनकल्पिता भुवः भक्तिरिव क्वचिच्छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चांद्रमसी प्रभेवान्यत्र रंध्रेषु आलक्ष्यनभःप्रदेशा शरदभ्रलेखेव क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणा भस्मांगरागा ईश्वरस्य तनुरिव विभाति त्वं पश्य ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । हे अनवद्यांगि ! यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहया गंगया क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैरनुविद्धया मुक्तामय्या यष्ट्येवान्यत्रेन्दीवरैरुत्खचितान्तरया सितपंकजानां मालयेव क्वचित्कादंबसंसर्गवत्या प्रियमानसानां खगानां पंक्त्येवान्यत्र कालागुरुदत्तपत्रया चंदनकल्पितया भुवः भक्त्येव क्वचिच्छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृतया चांद्रमस्या प्रभयेवान्यत्र रंध्रेषु आलक्ष्यनभःप्रदेशया शरदभ्रलेखयेव क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणया भस्मांगरागयेश्वरस्य तन्वेव भायते त्वया दृश्यताम् ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

हे अनवद्यांगि ! क्वचित्प्रदेशे प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलमणिभिरनुविद्धा मुक्तामयी हारावलिरिव विभाति, क्वचित्प्रदेशे नीलोत्पलैः सह ग्रथिता पुण्डरीकाणां मालेव ॥ ५४ ॥ क्वचिन्नीलहंससंसृष्टा प्रियमानसानां राजहंसानां राजीवान्यत्र कालागुरुणा रचितमकरिकापत्रा भुवश्चन्दनकल्पिता भक्तिरिव ॥ ५५ ॥ क्वचिच्छायासु स्थितैस्तमोभिः कर्बुरीकृता चन्द्रिकेवान्यत्र रन्ध्रेष्विवालक्ष्याकाशप्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रघनपंक्तिरिव ॥ ५६ ॥ क्वचित् कृष्णसर्पभूषणा भस्मांगरागेश्वरस्य तनुरिव यमुनातरंगैर्व्यामिश्रौघा भागीरथी विभाति त्वं पश्येति चतुर्णां सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–हे निन्दारहित अंगवाली ! कहीं फैली हुई कान्तिवाले नीलमोंके संग गुथे मुक्ताहारकी समान, कहीं नीले कमलोंके संग पोही हुई सफेद कमलोंकी मालाके समान ॥ ५४ ॥

कहीं नीले हंसोंसहित मानस सरोवरके उत्साही हंसोंकी पंक्तियोंकी समान कहीं कालागुरुकी पत्ररचना की हुई पृथ्वीकी चन्दनरचनाकी समान ॥ ५५ ॥

और कहीं छायामें स्थितहुए अंधेरेकी कबरी की हुई चांदनीकी समान और कहीं छिद्रोंमें आकाश प्रगट करती हुई शरत्के मेघकी श्वेतपंक्तिकी समान ॥ ५६ ॥

और कहीं कालेसर्पके भूषणवाले भस्मके अंगरागयुक्त शिवजीके शरीरकी समान यमुनाकी तरंगोंके प्रवाहसे पृथक् हुई शोभायमान गंगाको देख ॥ ५७ ॥

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषकात् ॥
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥५८॥

अन्वयः । अत्र समुद्रपत्न्योः जलसंनिपाते अभिषेकात्पूतात्मनां तनुत्यजां तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः शरीरबन्धः नास्ति किल ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । अत्र समुद्रपत्न्योः जलसंनिपातेऽभिषेकात्पूतात्मनां तनुत्यजां तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः शरीरबंधेन न भूयते किल ॥ ५८ ॥

अत्र गंगायमुनयोर्जलसंगमे स्नानाच्छुद्धात्मनां तनुत्यजां पुंसां तत्त्वज्ञानेन विनापि प्रारब्धदेहत्यागानन्तरं पुनः शरीरयोगो नास्तीति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–यहां सागरकी दोनो पत्नियोंके जलके संगममें स्नान करनेसे पवित्र हुए शरीरधारियोंको तत्त्वज्ञानके विना भी फिर शरीरबन्धन नहीं रहता ॥ ५८ ॥

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय ॥
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि ! कामाः फलितास्तवेति ५९॥

अन्वयः । निषादाधिपतेः तत्पुरम् इदं यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु (सतीषु) सुमंत्रः (हे) कैकेयि ! तव कामाः फलिताः इति अरुदत् ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । निषादाधिपतेः तेन पुरेणानेन (भूयते) यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु (सतीषु) सुमंत्रेण (हे) कैकेयि ! तव कामैः फलितैः (भूयते) इति अरोदि ॥५९॥

इदं निषादाधिपतेर्गुहस्य तत्पुरं यस्मिन्मया शिरोमणिं विहाय जटासु रचितासु सतीषु सुमंत्रः हे कैकेयि ! तव मनोरथाः सफला जाता इत्यरुददिति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०–निषादराजका यह वह पुर है, जहां मेरे शिरकी मणि उतार जटा बांधनेपर सुमंत्र " हे कैकेयि ! अब तेरे मनोरथ पूर्णहुए " ऐसा कहकर रोया था ॥ ५९ ॥

पयोधरैः पुण्यजनांगनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ॥
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ ६० ॥

अन्वयः । पुण्यजनांगनानां पयोधरैः निर्विष्टहेमांबुजरेणु ब्राह्मं सरः यस्याः बुद्धेः अव्यक्तमिव कारणम् आप्तवाचः उदाहरंति ॥ ६० ॥

वाच्यप० । पुण्यजनांगनानां पयोधरैः निर्विष्टहेमांबुजरेणु ब्राह्मं सरः यस्याः बुद्धेरव्यक्तमिव कारणम् आप्तवाग्भिरुदाह्रियते ॥ ६० ॥

यक्षस्त्रीणां स्तनैरुपभुक्तहेमाम्बुजरेणु मानसाख्यं सरो यस्याः सरय्वाः महत्तत्त्वस्य प्रधानमिव कारणं श्रेष्ठाः मुनयः प्रचक्षत इति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–यक्षोंकी स्त्रियोंके स्तनोंकी भोगी हुई कमलरजवाले मानससरोवरको जिस (नदी) का, महत्त्वको बुद्धिके कारणकी समान (कर्त्ता) मुनिजन कहते हैं ॥६०॥

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ॥
तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥ ६१ ॥

अन्वयः । तीरनिखातयूपा या तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि जलानि अयोध्यां राजधानीम् अनु वहति ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तीरनिखातयूपया यया तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि जलानि अयोध्यां राजधानीमनु उह्यंते ॥ ६१ ॥

कूलनिखातस्तंभा या सरयूः वाजिमेधेष्ववभृथार्थमेवारूढैरिक्ष्वाकुगोत्रापत्यैर्नृपैः पूर्वैः पवित्रीकृतानि जलानि नगरीमयोध्यामनु प्रापयतीति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०-किनारोंपर गाड़ेहुए यज्ञके खंभोंवाली जो अश्वमेधके अन्तमें स्नानोंसे इक्ष्वाकुवंशवालोंके अधिक पवित्र किये जलोंको अयोध्या राजधानीके निकट वहाती है ॥ ६१ ॥

यां सैकतोत्संगसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ॥
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तरकोसलानाम् ॥६२॥

अन्वयः । यां मे मानसं (कर्तृ) सैकतोत्संगसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्द्धितानाम् उत्तरकोसलानां सामान्यधात्रीमिव संभावयति ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । या मे मानसेन (कर्तृणा) सैकतोत्संगसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्द्धितानामुत्तरकोसलानां सामान्यधात्रीव संभाव्यते ॥ ६२ ॥

यां सरयूं मे मानसं पुलिनोत्संगसुखयोग्यानां प्रभूतैरम्बुभिः पुष्टानामुत्तरकोसलेश्वराणां साधारणमातरमिव संभावयतीति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०-जिसको मेरा मन किनारेरूपी गोदका सुख लेनेवाले उमगतेहुए पयोंसे पल हुए उत्तरकोसलके राजोंको साधारण धात्री (धाय) की समान मानता है ६२॥

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ॥
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव ॥ ६३ ॥

अन्वयः । मदीया जननीव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्ता सेयं सरयूः दूरे वसंतं मां शिशिरानिलैः तरंगहस्तैः उपगूहतीव ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । मदीयया जनन्येव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्तया तयाऽनया सरय्वा दूरे वसन् अहं शिशिरानिलैः तरंगहस्तैः उपगुह्ये इव ॥ ६३ ॥

मदीया माता कौसल्येव, पूज्येन तेन दशरथेन वियुक्ता सेयं सरयूः प्रोष्यागच्छन्तं पुत्रभूतं माम शिशिरपवनैरेव तरंगकरैरालिंगतीवेति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-मेरी माताकी समान, माननीय उस राजासे वियोगको प्राप्त हुई यह सरयू दूर रहनेवाले मुझको मानों ठंडी हवावाले तरंगरूपी हाथोंसे आलिंगन करती है ॥६३॥

विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते ॥
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ॥ ६४ ॥

अन्वयः। विरक्तसंध्याकपिशं पार्थिवं रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते (तस्मात्) हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः सन्मां प्रत्युद्गतः (इति) शंके ॥ ६४ ॥

वाच्यप०। विरक्तसंध्याकपिशेन पार्थिवेन रजसा पुरस्ताद्यतः उद्धीयते (तस्मात्) हनूमत्कथितप्रवृत्तिना भरतेन ससैन्येन (सता) अहं प्रत्युद्गत इति शंक्यते ॥ ६४ ॥

अतिरक्तसंध्यावत्ताम्रवर्णं पार्थिवं रजोऽग्रे यस्मादुद्गच्छति तस्मात् हनूमत्कथितास्मद्गमनवार्तः भरतः ससैन्यः सन्मां प्रत्युद्व्रजतीति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-रंग बदली हुई संध्याके तुल्य पीली, पृथ्वीकी धूल आगे जो उडती है (इससे) महावीरसे वृत्तान्त सुनकर भरत सेनासहित मेरे लेनेको आते हैं यह मैं शंका करताहूं ॥ ६४ ॥

अद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ॥
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥ ६५ ॥

अन्वयः। (किं च) साधुः सः पालितसंगराय मेऽनघां संरक्षितां श्रियं मृधे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय लक्ष्मणः (अनघां संरक्षितां) त्वामिव प्रत्यर्पयिष्यति अद्धा ॥ ६५ ॥

वाच्यप०। (किं च) साधुना तेन पालितसंगराय मेऽनघा संरक्षिता श्रीः मृधे खरादीन्हत्वा निवृत्ताय लक्ष्मणेन (अनघा संरक्षिता) त्वमिव प्रत्यर्पयिष्यते अद्धा ॥ ६५ ॥

सज्जनः स भरतः पालितपितृप्रतिज्ञाय मह्यमनुच्छिष्टां संरक्षितां श्रियं युद्धे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणः संरक्षितामदोषां त्वामिव प्रत्यर्पयिष्यति सत्यमिति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०-कारण कि वह साधु प्रतिज्ञा पालन करनेवाले मेरे निमित्त अछूती तथा रक्षा की हुई राजलक्ष्मीको युद्धमें खरादिकोंको मारकर निश्चिन्त हुए मेरे निमित्त लक्ष्मण द्वारा सौंपी हुई तुम्हारी समान समर्पण करेंगे ॥ ६५ ॥

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ॥
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥ ६६ ॥

अन्वयः। असौ पदातिः चीरवासाः भरतः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैरमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः (सन्) मामभ्युपैति ॥ ६६ ॥

वाच्यप०। अमुना पदातिना चीरवाससा पश्चादवस्थापितवाहिनीकेन गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैरमात्यैः सहार्घ्यपाणिना (सता) अहम् अभ्युपेये ॥ ६६ ॥

असौ पादचारी वल्कलवसनो भरतः पृष्ठभागेऽवस्थापितबलः सन् वसिष्ठं पुरस्कृत्य वृद्धैर्मन्त्रिभिः सहार्घ्यपाणिः सन् मामभ्युपैतीति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०—यह पादचारी चीरधारी भरत पीछे सेनाको किये गुरुको आगे लिये बूढे मंत्रियोंसहित अर्घ्य हाथमें लिये मेरी ओर आते हैं ॥ ६६ ॥

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता ॥
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम् ॥ ६७ ॥

अन्वयः । यः पित्रा विसृष्टाम् अंकगतामपि (यां) श्रियं युवापि मदपेक्षयाऽभोक्ता (सन्) इयन्ति वर्षाणि तया सह उग्रम् आसिधारं व्रतम् अभ्यस्यतीव ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । येन पित्रा विसृष्टाम् अंकगतामपि (यां) श्रियं यूनापि मदपेक्षयाऽभोक्त्रा (सता) इयंति वर्षाणि तया सह उग्रम् आसिधारं व्रतम् अभ्यस्यते इव ॥ ६७ ॥

यः भरतः पित्रा दत्तामुत्संगं च गतामपि यां श्रियं युवापि मत्प्रीत्याऽभोक्ता सन्नेतावतो वत्सरांस्तया श्रिया च दुश्चरमासिधारं नाम व्रतं वर्तयतीवेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०—जो (भरत) पितासे त्यागी गोदीमें आई हुई भी जिस राजलक्ष्मीको युवा होनेपरभी मेरी भक्तिके कारण न भोगकर इतने वर्ष उस (लक्ष्मी) के सहित कठिन असिधार (खड्गकी धारवाला) व्रत साधते रहे ॥ ६७ ॥

(जो युवा युवतीके संग मुग्धपतीके समान रहे और अन्तरसेभी संगरहित हो वह असिधार व्रत है)

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीया-
मिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा ॥
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभि-
रुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः ॥ ६८ ॥

अन्वयः । दाशरथौ एतावदुक्तवति (सति) विमानं तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितम् ज्योतिष्पथादवततार ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । दाशरथौ एतावदुक्तवति सति विमानेन तदीयामिच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितेन (सता) ज्योतिष्पथादवतेरे ॥ ६८ ॥

राम एतावदुक्तवति सति पुष्पकं रामसम्बन्धिनीमिच्छामधिदेवतया मिषेण विदित्वा सविस्मयाभिर्भरतानुगाभिः प्रजाभिरुद्वीक्षितं सदाकाशादवततारेति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०—रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर विमान उनकी अभिलाषाको अधिदेवतापनसे जानकर विस्मयको प्राप्त हुई भरतके पीछे आनेवाली प्रजाओंसे देखाहुआ आकाशसे उतरा ॥ ६८ ॥

तस्मात्पुरःसरविभीषणदर्शितेन
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ॥

यानादवातरददूरमहीतलेन
मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥ ६९ ॥

अन्वयः । रामः सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः (सन्) पुरःसरविभीषणदर्शितेनादूरमहीतलेन भंगिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्माद्यानादवातरत् ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । रामेण सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तेन (सता) पुरःसरविभीषणदर्शितेनादूरमहीतलेन भंगिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानादवातर्यत ॥ ६९ ॥

रामः सेवायां कुशलेन सुग्रीवेण दत्तहस्तः सन् पुरःसरविभीषणेन दर्शितेनासन्नभुवस्तलेन विच्छित्तिभिर्बद्धस्फटिकेन सोपानमार्गेण तस्मात्पुष्पकादवतीर्णवानिति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०–रामचन्द्र सेवामें चतुर सुग्रीवका हाथ पकडकर आगे विभीषणके दिखाई और पृथ्वीपर रक्खीहुई स्फटिकमणिके जडे डंडोंवाली सींढीके मार्गसे विमानसे उतरे ६९ ॥

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य
स भ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते ॥
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ
तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके ॥ ७० ॥

अन्वयः । प्रयतः स इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्यार्घ्यपरिग्रहांते पर्यश्रुः (सन्) भ्रातरं भरतम् अस्वजत तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्द्धनि उपजघ्रौ च ॥ ७० ॥

वाच्यप० । प्रयतेन तेनेक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्यार्घ्यपरिग्रहांते पर्यश्रुणा (सता) भ्राता भरतः अस्वज्यत तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्द्धनि उपजघ्रे च ॥ ७० ॥

प्रयतः स रामः इक्ष्वाकुवंशगुरवे वसिष्ठाय नमस्कृत्यार्घ्यस्य स्वीकारान्ते परिगतानन्दबाष्पः सन् भरतमालिङ्गत् तस्मिन् रामे प्रीत्या परिहृतपितृराज्यमहाभिषेके तस्मिन्मूर्धन्युपजघ्रौ चेति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०–विनीतवान् वह (राम) इक्ष्वाकुवंशके गुरु (वशिष्ठ) को प्रणाम करके अर्घ्य ग्रहण करनेके पीछे आंसू भरकर भाई भरतको आलिंगन कर अपनी भक्तिके कारण पिताके राज्यका महाभिषेक छोडनेवाला शिर सूंघते हुए ॥ ७० ॥

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताकृतिविक्रियांश्च
प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान् ॥
अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातै-
र्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा ॥ ७१ ॥

अन्वयः । श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताकृतिविक्रियान् प्ररोहजटिलान् प्लक्षानिव (स्थितान्) प्रणमतः मंत्रिवृद्धांश्च शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा चान्वग्रहीत् ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताकृतिविक्रियाः प्ररोहजटिलाः प्लक्षा इव (स्थिताः) प्रणमन्तः मंत्रिवृद्धाश्च शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा चान्वग्राहिषत ॥ ७१ ॥

सः संस्काराभावात् श्मश्रूणामभिवृद्धया जनितमुखविक्रियान् शाखावलम्बिभिरधोमुखैर्जटावतः न्यग्रोधानिव स्थितान् प्रणमतो मन्त्रिवृद्धांश्च कृपार्द्रैर्दृष्टिपातैः कुशलप्रश्नेन मधुराक्षरया वाचाचानुगृहीतवानिति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-डाढी मूछोंके बढनेसे मुखका रूप बदलेहुए, जटा बढाये वटके वृक्षोंके समान स्थित, प्रणाम करते हुए मंत्रियोंको सुन्दरदृष्टिसे (देख) कुशलप्रश्न मधुरवाणीसे पूंछकर कृपा की ॥ ७१ ॥

दुर्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे
पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता ॥
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन
व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे ॥७२॥

अन्वयः । अयं मे दुर्जातबंधुः ऋक्षहरीश्वरः एषः समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्य इति आदृतेन रघुनंदनेन कथितावुभौ लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य भरतः ववंदे ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । अयं मे दुर्जातबंधुः ऋक्षहरीश्वरः एषः समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्य इति आदृतेन रघुनंदनेन कथितावुभौ लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य भरतेन ववंदाते ॥ ७२ ॥

अयं मे आपद्बन्धुः ऋक्षहरीश्वरः सुग्रीवः । एष समरेषु पुरः प्रहर्ता विभीषण इत्यादरवता रामेण कथितावुभौ विभीषणसुग्रीवौ लक्ष्मणमप्यालिङ्गनादिभिरसंभाव्य भरतो ववन्द इति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-यह मेरा आपत्तिका मित्र रीछ वानरोंका राजा है, यह संग्राममें प्रथम प्रहार करनेवाला विभीषण है, इस प्रकार सत्कारसे रामचन्द्रके कहेहुए दोनोंके प्रति लक्ष्मणको छोडकर भरतने नमस्कार किया ॥ ७२ ॥

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैन-
मुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ॥
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन
क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन ॥ ७३ ॥

अन्वयः । तदनु सः सौमित्रिणा संससृजे नम्रशिरसमेनमुत्थाप्य भृशम् आलिलिंग च (किं कुर्वन्) रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेनास्योरःस्थलेन भुजमध्यं क्लिश्यन्निव ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । तदनु तेन सौमित्रिणा संससृजे नम्रशिरा एषः उत्थाप्य भृशमालिलिंगे च (किं कुर्वता) ++ क्लिश्यतेव ॥ ७३ ॥

सुग्रीवादिवन्दनानन्तरं स भरतः सौमित्रिणा संगतः नम्रशिरसं प्रणतमेनं लक्ष्मणमुत्थाप्य रूढ-मेघनादप्रहरणव्रणैः कर्कशेनास्य सौमित्रेरुरस्थलेन स्वकीयं भुजमध्यं पीडयन्निव गाढमालिलिंग चेति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०–इसके उपरान्त वह भरत सुमित्राके पुत्र (लक्ष्मण) से मिले विनय करते हुए इनको उठाकर इन्द्रजीतके प्रहारोंके वडे व्रणोंसे उनके कठिनहृदयमें मानो अपनी भुजाओंका मध्य पीडित करनेके लिये आलिंगन किया ॥ ७३ ॥

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं
कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान् ॥
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः
शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते ॥ ७४ ॥

अन्वयः । तदानीं हरिचमूपतयः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेंद्रानारुरुहुः, बहुधा मदवारि-धाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । तदानीं हरिचमूपतिभिः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रा आरुरुहिरे, बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु तैः शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे ॥ ७४ ॥

तदानीं हरिचमूनायकाः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा करीन्द्रानारुरुहुः बहुधा मदवारिधारा वर्षत्सु तेषु गजेन्द्रेषु ते नायकाः शैलाधिरोहणसुखान्यनुबभूवुरिति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०–इसके उपरान्त वानरोंकी सेनाके पति रामचन्द्रकी आज्ञासे मनुष्यका शरीर धारण कर हाथियोंपर चढे अनेक प्रकारसे मदके जलकी धारा टपकातेहुए उन हाथि-योंपर वे पर्वतपर चढनेके सुखको प्राप्त होते हुए ॥ ७४ ॥

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां
भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः ॥
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयै-
र्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः ॥ ७५ ॥

अन्वयः । सानुप्लवः क्षणदाचराणां प्रभुरपि दशरथप्रभवानुशिष्टः (सन्) रथान्भेजे ये माया-विकल्परचितैरपि तदीयैः स्यंदनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न (बभूवुः) ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । सानुप्लवेन क्षणदाचराणां प्रभुणापि दशरथप्रभवानुशिष्टेन (सता) रथा भेजिरे ये-मायाविकल्परचितैरपि तदीयैः स्यंदनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभैः न (बभूवे) ॥ ७५ ॥

सानुगः निशाचराणां प्रभुर्विभीषणोपि रामेणाज्ञप्तः सन् रथान्भेजे ये रथाः संकल्पविशेषनिर्मि-तैरपि विभीषणीयै रथैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न भवन्तीति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०-साथियोंके सहित राक्षसोंके स्वामी विभीषण भी दशरथपुत्र (राम) की आज्ञासे रथोंपर चढे, जो मायासे रचेहुए भी अपने रथोंसे उनकी कृत्रिमशोभाको न तोल सके (अर्थात् वह रथ मनुष्योंके बनाये थे तोभी विभीषणादिकी मायाके बनाये रथ उनकी बराबरी न कर सके) ॥ ७५ ॥

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताक-
मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम् ॥
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य-
स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । ततः रघुपतिः सावरजः (सन्) विलसत्पताकं कामगति विमानं भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनं तरलविद्युदभ्रवृंदमिवाध्यास्त ॥ ७६ ॥

वाच्यप०। ततः रघुपतिना सावरजेन (सता) विलसत्पताकं कामगति विमानं भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्येन तारापतिना दोषातनं तरलविद्युदभ्रवृंदमिवाध्यास्यत ॥ ७६ ॥

ततो रामो भरतलक्ष्मणसहितः सन् विलसद्ध्वजं कामगति विमानं बुधबृहस्पतिभ्यां योगेन दर्शनीयश्चन्द्रो दोषातनं चञ्चलतडिदभ्रवृन्दमिवाधिष्ठितवानिति सरलार्थः॥ ७६ ॥

भा०-तब रामचन्द्र छोटे भाइयोंसहित पताकाओंसे शोभित इच्छापूर्वक चलनेवाले विमानपर चढे, मानों फिरभी बुध और बृहस्पतिके योगसे शोभायमान चन्द्रमा संध्या समय प्रकाशित होती हुई बिजलीवाले बादलपर चढा ॥ ७६ ॥

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः ॥
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रा-
त्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥

अन्वयः । तत्र जगतामीश्वरेण प्रलयादुर्वीमिव वर्षात्ययेनाभ्रघनादिंदोः रुचमिव रामेण दशकंठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतः ववंदे ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । तत्र जगतामीश्वरेण प्रलयादुर्वीव वर्षात्ययेनाभ्रघनादिंदो रुगिव रामेण दशकंठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धृता धृतिमती मैथिलसुता भरतेन ववंदे ॥ ७७ ॥

तत्र विमाने जगतामीश्वरेणादिवराहेण प्रलयादुर्वीमिव शरदागमेन मेघसंघाताच्चन्द्रिकामिव रामेण दशकण्ठसंकटादुद्धृतां संतोषवतीं सीतां भरतो ववन्द इति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०-तहां जगत्के ईश्वर आदि वराहद्वारा प्रलयसे उद्धार की हुई पृथ्वी और शरद्द्वारा बादलोंकी घटासे (उद्धार की हुई) चांदनीकी समान, रामचन्द्रके द्वारा रावणके संकटसे उद्धारीहुई तथा धैर्यवाली जनकसुताकी भरतने वन्दना की ॥७७॥

लंकेश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं त-
द्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः ॥
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-
रन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य ॥ ७८ ॥

अन्वयः । लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतं वंद्यं तत् जनकात्मजायाः चरणयोर्युगं ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलमस्य साधोः शिरश्च (इति) उभयं समेत्यान्योन्यपावनमभूत् ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतेन वंद्येन तेन जनकात्मजायाः चरणयोर्युगेन ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलेनास्य साधोः शिरसा च (इति) उभयेन समेत्यान्योन्यपावनेनाभावि ॥ ७८ ॥

रावणस्य प्रणतीनां निरासेनाखण्डितपातिव्रत्यमत एव वन्द्यं तज्जनकसुतायाश्चरणयोर्युगं ज्येष्ठानुवृत्त्या जटायुतं सज्जनस्यास्य भरतस्य शिरश्चेत्युभयं मिलित्वान्योन्यस्य शोधकमभूदिति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०–रावणकी प्रार्थना भंग करनेमें दृढपातिव्रत्य रखनेवाली उन जानकीके पूजनीय दोनों चरण और वडे भाईकी भक्तिसे जटा वढाये हुए उन माहात्मा (भरत) का शिर यह दोनों मिलकर एक दूसरेको पवित्र करतेहुए ॥ ७८ ॥

(अर्थात् भरतने सीताको प्रमाण करनेमें उनके चरणोंमें शिर धरा)

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा
काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण ॥
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः
साकेतोपवनमुदारमध्युवास ॥ ७९ ॥

अन्वयः । आर्यः काकुत्स्थः प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन पुष्पकेण क्रोशार्द्धं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमुदारं साकेतोपवनमध्युवास ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । आर्य्येण काकुत्स्थेन ++ अध्यूषे ॥ ७९ ॥

पूज्यः काकुत्स्थो रामः प्रजापुरस्सरेण मन्दवेगेन पुष्पकेण क्रोशार्धं गत्वा शत्रुघ्नेन सज्जितोपकार्य्यं महदयोध्याया उपवनमधितष्ठाविति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०–श्रेष्ठ रामचन्द्रने प्रजासे पीछे शनैः २ चलतेहुए पुष्पकविमानद्वारा आधकोस चलकर शत्रुघ्नके सजायेहुए डेरोंवाले अयोध्याके वडे वागमें डेरा किया ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित– भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ।

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने ॥
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ दाशरथी उपघ्नतरोः छेदात् व्रतत्यौ इव भर्तुः प्रणाशात् शोचनीयं दशांतरं प्रपन्ने जनन्यौ तत्र समम् अपश्यताम् ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ दाशरथिभ्याम् उपघ्नतरोः छेदात् व्रतत्यौ इव भर्तुः प्रणाशाच्छोचनीयं दशांतरं प्रपन्ने जनन्यौ तत्र समम् अदृश्येताम् ॥ १ ॥

अथ उपवनाधिष्ठानानन्तरं रामलक्ष्मणावाश्रयवृक्षस्य परिच्छेदाल्लते इव दशरथस्य प्रणाशाच्छोचनीयं दशान्तरं प्राप्ते कौसल्यासुमित्रे तत्र साकेतोपवने युगपदपश्यतामिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—इसके उपरान्त दोनों दशरथकुमार आसरे लेनेवाले वृक्षके कट जानेसे (कुह्मलाई हुई दो) लताकी समान स्वामीके मरजानेसे शोचनीय दशाको प्राप्त हुई दोनों माताओंको तहां एकसाथही देखते हुए ॥ १ ॥

उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ ॥
विस्पष्टमस्त्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ॥ २ ॥

अन्वयः । यथाक्रमं प्रणतौ हतारी विक्रमशोभिनौ तौ उभाभ्याम् अस्रांधतया न विस्पष्टं दृष्टौ (किं तु) सुतस्पर्शसुखोपलंभात् ज्ञातौ ॥ २ ॥

वाच्यप० । यथाक्रमं प्रणतौ हतारी विक्रमशोभिनौ तौ उभे अस्रांधतया न विस्पष्टं दृष्टवत्यौ सुतस्पर्शसुखोपलंभात् ज्ञातवत्यौ ॥ २ ॥

यथाक्रमं स्वस्वमातृपूर्वकं नमस्कृतवन्तौ हतशत्रुकौ विक्रमशोभिनौ रामलक्ष्मणौ मातृभ्यामश्रुभिरन्धतया हेतुना विस्पष्टं न दृष्टौ किन्तु पुत्रस्पर्शेन सुखस्यानुभवाज्ज्ञाताविति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—यथाक्रमसे प्रणाम करनेवाले शत्रुसंहारी, पराक्रमसे शोभायमान दोनों (कुमारों) को दोनों (माताओं) ने आंसुओंसे दृष्टि रुक जानेके कारण स्पष्ट न देखा (परन्तु) सुतस्पर्शसुखके अनुभवसे जान लिया ॥ २ ॥

आनन्दजः शोकजमश्रु बाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो बिभेद ॥
गङ्गासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिष्यन्द इवावतीर्णः ॥ ३ ॥

अन्वयः । तयोरानंदजः शिशिरः वाष्पः शोकजम् अशीतमश्रु उष्णतप्तं गंगासरय्वोः जलमवतीर्णः हिमाद्रिनिष्यन्द इव बिभेद ॥ ३ ॥

वाच्यप० । तयोरानंदजेन शिशिरेण वाष्पेण शोकजमशीतमश्रु उष्णतप्तं गंगासरय्वोः जलम् अवतीर्णेन हिमाद्रिनिष्यंदेनेव विभिदे ॥ ३ ॥

तयोर्मात्रोरानन्दोत्पन्नः शिशिरो वाष्पः शोकजमशीतमुष्णमश्रु ग्रीष्मतप्तं गंगासरय्वोर्जलमवतीर्णो हिमाद्रेर्निष्यन्दो निर्झर इव विभेदेति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनोंके आनन्दसे उत्पन्न हुए शीतल आंसू शोकसे उत्पन्न हुए गरम आंसुओंको गरमीके तपायेहुए गंगासरयूके जलको प्राप्त हुए हिमालयके जलके समान तोडदेते हुए ॥ ३ ॥

ते पुत्रयोर्नैर्ऋतशस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ ॥
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामयेताम् ॥ ४ ॥

अन्वयः । ते पुत्रयोः अंगे नैर्ऋतशस्त्रमार्गानार्द्रानिव सदयं स्पृशन्त्यौ क्षत्रकुलांगनानामीप्सितमपि वीरसूशब्दं नाकामयेताम् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । ताभ्यां पुत्रयोः अंगे नैर्ऋतशस्त्रमार्गानार्द्रानिव सदयं स्पृशंतीभ्यां क्षत्रकुलांगनानाम् ईप्सितोपि वीरसूशब्दः नाकाम्यत ॥ ४ ॥

ते पुत्रयोः शरीरे राक्षसशस्त्राणां व्रणानार्द्रान् सरसानिव सदयं स्पृशन्त्यौ क्षत्रकुलांगनानामिष्टमपि वीरमातेति शब्दं नाकामयेतामिति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—वे मातायें पुत्रोंके अङ्गमें राक्षसोंके अस्त्रोंके चिह्न, गीलोंकी नाई दयासे स्पर्श करती हुई क्षत्रियोंकी स्त्रियोंकी आकांक्षा की हुई भी वीरपुत्र उत्पन्न करनेकी पदवीको न चाहती हुई ॥ ४ ॥

क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ॥
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ॥ ५ ॥

अन्वयः । भर्तुः क्लेशावहा (अत एव) अलक्षणाऽहं सीतेति स्वं नाम उदीरयंती स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोः महिष्यौ वधूः अभक्तिभेदेन ववंदे ॥ ५ ॥

वाच्यप० । भर्तुः क्लेशावहा (अत एव) अलक्षणाऽहं सीतेति स्वं नाम उदीरयन्त्या स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोः महिष्यौ वध्वाऽभक्तिभेदेन ववन्दाते ॥ ५ ॥

भर्तुः क्लेशकारिण्यलक्षणाहं सीतेति स्वं नामोदीरयन्ती स्वर्गस्थितस्य श्वशुरस्य महिष्यौ वधूरभक्तिभेदेन ववन्द इति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—भर्ता को क्लेश देने वाली (इसी लिये) मैं अलक्षणा सीता हूं इस प्रकार अपना नाम उच्चारण करती हुई वधू स्वर्गवासी श्वशुरकी दोनों रानियोंको समान भक्तिसे वंदना करती हुई ॥ ५ ॥

उत्तिष्ठ वत्से ! ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्त्ता शुचिना तवैव ॥
कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ॥ ६ ॥

अन्वयः । ननु वत्से ! उत्तिष्ठ असौ सानुजो भर्ता तवैव शुचिना व्रतेन महत्कृच्छ्रं तीर्णः इति प्रियार्हां तां प्रियमपि अमिथ्या ते (श्वश्र्वौ) ऊचतुः ॥ ६ ॥

वाच्यप० । ननु वत्से ! उत्थीयताममुना सानुजेन भर्त्रा तवैव शुचिना व्रतेन महत्कृच्छ्रं तीर्णम् इति प्रियार्हा सा प्रियमपि अमिथ्या ताभ्यां (श्वश्रूभ्याम्) ऊचे ॥ ६ ॥

ननु वत्से ! उत्तिष्ठ असौ सानुजो भर्ता तवैव शुभाचारेण महद्दुःखं तीर्णवान् इति प्रियार्हां तां वधूं प्रियमपि सत्यं ते श्वश्र्वावूचतुरिति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—पुत्री ! उठ यह भाई सहित (तेरा) भर्ता तेरेही व्रतके कारण महसंकटसे उत्तीर्ण हुआ है इस प्रकार प्रिय कहने योग्य उससे प्यारा वचन भी सत्य वे दोनों कहतीं हुई ॥ ६ ॥

अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः ॥
निर्वर्तयामासुरमात्यवृद्धास्तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः ॥ ७ ॥

अन्वयः । अथ जनन्योः आनन्दजलैः प्रारब्धं रघुवंशकेतोः अभिषेकम् अमात्यवृद्धाः तीर्थाहृतैः कांचनकुम्भतोयैः निर्वर्तयामासुः ॥ ७ ॥

वाच्यप० । अथ जनन्योः आनन्दजलैः प्रारब्धः रघुवंशकेतोः अभिषेकः अमात्यवृद्धैः तीर्थाहृतैः कांचनकुम्भतोयैः निर्वर्तयामासे ॥ ७ ॥

अथ जनन्योरानन्दवाष्पैः प्रक्रान्तं रामस्याभिषेकममात्यवृद्धाः गंगाप्रमुखेभ्य आनीतैः कांचनकुम्भतोयैर्निष्पादयामासुरिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—इसके अनन्तर माताओंके आनंदके जलसे प्रारम्भ हुए रामचंद्रके अभिषेकको वृद्ध मंत्री तीर्थोंसे लाये हुए सुवर्ण के घडोंके जलसे पूरा करते हुए ॥ ७ ॥

सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि ॥
तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः ॥ ८ ॥

अन्वयः । रक्षःकपीन्द्रैः सरितत्समुद्रान्सरसीः च गत्वोपपादितानि जलानि जिष्णोः तस्य मूर्ध्नि विंध्यस्य (मूर्ध्नि) मेघप्रभवाऽऽपः इवापतन् ॥ ८ ॥

वाच्यप० । रक्षःकपीन्द्रैः सरितत्समुद्रान्सरसीः गत्वोपपादितैः जलैः जिष्णोः तस्य मूर्ध्नि विंध्यस्य (मूर्ध्नि) मेघप्रभवाभिरद्भिरिवापत्यत ॥ ८ ॥

रक्षःकपीन्द्रैः सरितो गङ्गाद्याः पूर्वादीन्समुद्रान् सरसीर्मानसादीश्च गत्वोपनीतानि जलानि जयशीलस्य रामस्य मूर्ध्नि विन्ध्याद्रेः शिरसि मेघप्रभवा आप इवापतन्निति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०–राक्षस और वानरेन्द्रोंके सागर और नदियोंमें जाकर लाये हुए जल उन जयशीलके शिरपर विन्ध्याचलके (शिखरपर) मेघसे उत्पन्न हुए जलके समान गिरे ॥ ८ ॥

तपस्विवेषक्रिययापि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव ॥
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदिताऽऽसीत्पुनरुक्तदोषा ॥ ९ ॥

अन्वयः । यः तपस्विवेषक्रिययापि सुतरां प्रेक्षणीयस्तावद्बभूव तस्य राजेंद्रनेपथ्यविधानशोभो-दिता पुनरुक्तदोषाऽऽसीत् ॥ ९ ॥

वाच्यप० । येन तपस्विवेषक्रिययापि सुतरां प्रेक्षणीयेन तावद्बभूवे तस्य राजेंद्रनेपथ्यविधानशो-भयोदितया पुनरुक्तदोषयाऽभूयत ॥ ९ ॥

यो रामस्तपस्विवेषरचनयाप्यत्यन्तं दर्शनीय एव बभूव, तस्य राजवेषरचनयोदिता शोभा द्विगुणाऽ-सीदिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०–तबतक तपस्वियोंके वेशसी रचनामेंभी जो अति सुन्दर दर्शनीय थे, उनके राजेन्द्ररूपकी रचानासे उठी हुई शोभा पुनरुक्तदोषा (दूनी) हुई ॥ ९ ॥

स मौलरक्षोहरिभिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः ॥
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम् ॥ १० ॥

अन्वयः । सः ससैन्यः तूर्यस्वनानंदितपौरवर्गः (सन्) मौलरक्षोहरिभिः (सह) सौधोद्गत-लाजवर्षाम् उत्तोरणामन्वयराजधानीं विवेश ॥ १० ॥

वाच्यप० । तेन ससैन्येन तूर्यस्वनानंदितपौरवर्गेण (सता) मौलरक्षोहरिभिः (सह) सौधो-द्गतलाजवर्षा उत्तोरणान्वयराजधानी विविशे ॥ १० ॥

स रामः ससैन्यस्तूर्यशब्दैरानन्दितपौरवर्गः सन् मंत्रिवृद्धैः रक्षोभिर्हरिभिश्च सह सौधेभ्य-उद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीमयोध्यां प्रविष्टवानिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०–वह (राम) सेना सहित तुरहियोंके शब्दोंसे प्रजाको आनन्द देते हुए मंत्री राक्षस और वानरों सहित, मन्दिरोंसे खीलोंकी वर्षायुक्त ऊंची ध्वजावाली पुरुषाओंकी राजधानीमें प्रवेश करते हुए ॥ १० ॥

सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधूतवालव्यजनो रथस्थः ॥
धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायसंघात इव प्रवृद्धः ॥ ११ ॥

अन्वयः । सावरजेन सौमित्रिणा मंदमाधूतवालव्यजनो रथस्थः भरतेन धृतातपत्रः (स रामः) प्रवृद्धः साक्षादुपायसंघातः इव (अन्वयराजधानीं विवेश) ॥ ११ ॥

वाच्यप० । सावरजेन सौमित्रिणा मंदमाधूतवालव्यजनेन रथस्थेन भरतेन धृतातपत्रेण (तेन रामेण) प्रवृद्धेन साक्षादुपायसंघातेनेव (अन्वयराजधानी विविशे) ॥ ११ ॥

शत्रुघ्नयुक्तेन लक्ष्मणेन मन्दमाधूतचामरः रथस्थः भरतेन धृतच्छत्र एव चतुर्व्यूहो रामः प्रवृद्धः साक्षात्सामादीनां संघात इव विवेशेति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०–भाई शत्रुघ्न समेत लक्ष्मणद्वारा मन्दमन्द चमर चलाए जाते हुए, रथपर बैठे, भरतसे छत्र धराये, (वह राम) वृद्धिको प्राप्त हुए साक्षात् सामादि उपायोंके समूहके समान पुरुषाओंकी राजधानीमें प्रवेश करगये ॥ ११ ॥

प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना ॥
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे ॥ १२ ॥

अन्वयः । वायुवशेन भिन्ना प्रासादकालागुरुधूमराजिः वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन स्वयं मुक्ता तस्याः पुरः वेणिरिवाबभासे ॥ १२ ॥

वाच्यप० । वायुवशेन भिन्नया प्रासादकालागुरुधूमराज्या वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन स्वयं मुक्तया तस्याः पुरः वेण्या इवाबभासे ॥ १२ ॥

पवनवशाद्भिन्ना सौधकालागुरुधूमरेखा वनान्निवृत्तेन रामेण स्वयं मुक्ता तस्याः पुर्या वेणिरिवाबभासेति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०–वायुके चलनेसे भिन्न हुई महलोंके कालागुरुके धुएँकी रेखा वनसे लौटे हुए रामचंद्रके स्वयं खोली हुई उस पुरीकी वेणीकी समान शोभित हुई ॥ १२ ॥

श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम् ॥
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः ॥१३॥

अन्वयः । श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीं साकेतनार्यः प्रासादवातायनदृश्य- बंधैरंजलिभिः प्रणेमुः ॥ १३ ॥

वाच्यप० । श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषा कर्णीरथस्था रघुवीरपत्नी साकेतनारीभिः प्रासादवातायन- दृश्यबंधैरंजलिभिः प्रणेमे ॥ १३ ॥

श्वश्रूजनैः कृतसौम्यनेपथ्याम् कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीं सीतामयोध्यानार्यः प्रासादवातायनेषु लक्ष्यपुटैरञ्जलिभिः प्रणेमुरिति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०–सासुओंसे सुन्दर सिंगारी हुई कर्णीरथ (स्त्रियोंके योग्य छोटे रथ) में बैठी हुई रामचंद्रकी पत्नी (जानकी) को अयोध्याकी स्त्रियें महलोंके झरोखोंमें दीखती हुई अंजलीद्वारा प्रणाम करती हुईं ॥ १३ ॥

स्फुरत्प्रभामण्डलमानुसूयं सा बिभ्रती शाश्वतमङ्गरागम् ॥
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्यै संदर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा ॥१४॥

अन्वयः । स्फुरत्प्रभामंडलम् आनुसूयं शाश्वतमंगरागं बिभ्रती सा भर्त्रा स्वपुर्यै शुद्धेति संदर्शिता पुनः वह्निगते रराज ॥ १४ ॥

वाच्यप० । स्फुरत्प्रभामंडलम् आनुसूयं शाश्वतम् अंगरागं बिभ्रत्या तया भर्त्रा स्वपुर्य्यै शुद्धेति संदर्शितया वह्निगतयेव रेजे ॥ १४ ॥

स्फुरत्प्रभामण्डलमनुसूयया दत्तं सदातनमङ्गरागं बिभ्रती सा सीता रामेण स्वपुर्य्यै शुद्धेति संदर्शिता वह्निगतेव रराजेति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-स्फुरायमान प्रभामण्डलवाला, अनुसूयाका दिया हुआ, सदा रहने वाला अंगराग धारण करती हुई वह जानकी रामचंद्रसे अपने पुरवासियों को शुद्ध है इस प्रकार दिखाई हुई अग्निमें विराजमानकी समान शोभित हुई ॥ १४ ॥

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः ॥
वाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश ॥ १५ ॥

अन्वयः । सौहार्दनिधिः रामः सुहृद्भ्यः परिबर्हवन्ति वेश्मानि विश्राण्यालेख्यशेषस्य पितुः बलिमन्निकेतं वाष्पायमाणो विवेश ॥ १५ ॥

वाच्यप० । सौहार्दनिधिना रामेण सुहृद्भ्यः परिबर्हवन्ति वेश्मानि विश्राण्यालेख्यशेषस्य पितुः बलिमन्निकेतः विविशे ॥ १५ ॥

सौहार्दनिधी रामः सुग्रीवादिभ्य उपकरणवन्ति वेश्मानि दत्त्वा चित्रमात्रशेषस्य पितुर्बलिमत्पूजा-युक्तं गृहं वाष्पमुद्वमन्विवेशेति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-मित्रताके समुद्र रामचंद्रने मित्रोंके निमित्त सामग्री सहित स्थान देकर चित्रमात्र शेष रहे पिताके पूजामन्दिरमें आंसू त्यागते हुए प्रवेश किया ॥ १५ ॥

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब ! सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः ॥
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः ॥ १६ ॥

अन्वयः । तत्र कृतांजलिः (सन् रामः) (हे) अंब ! नः गुरुः स्वर्गफलात् सत्यान्नाभ्रश्यत इति यत्तच्चिन्त्यमानं तव सुकृतम् इति भरतस्य मातुः लज्जां जहार ॥ १६ ॥

वाच्यप० । तत्र कृतांजलिना (सता रामेण) हे अंब ! नः गुरुः स्वर्गफलात् सत्यान्नाभ्रश्यत इति यत्तत् चिन्त्यमानं तव सुकृतम् इति भरतस्य मातुः लज्जा जह्रे ॥ १६ ॥

तत्र निकेतने कृताञ्जलिः सन् रामः हे अम्ब नः पिता स्वर्गफलात्सत्यान्न भ्रष्टवानिति यदभ्रंशनं तद्विचार्यमाणं तव सुकृतमित्येवं प्रकारेण कैकेय्या लज्जामपानयदिति सरलार्थः ॥ १६ ॥

श्लो०-यो वरं वरदो दत्त्वा न करोति च तत्तथा ।
स याति नरकं घोरं सह पूर्वैर्न संशयः (वल्लभ०) ॥

भा०-वहां हाथ जोडे हुए रामने हे मातः हमारे पिता स्वर्गके फल देने वाले सत्यसे भ्रष्ट न हुए, यह विचारने योग्य तेराही पुण्य है, इस प्रकार भरतकी माता केकईकी लज्जा दूर की ॥ १६ ॥

तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः ॥
संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन ॥१७॥

अन्वयः । सुग्रीवविभीषणादीन् कृत्रिमसंविधाभिः तथैवोपाचरत् यथा संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते चेतसि विस्मयेन क्रांताः ॥ १७ ॥

वाच्यप० । सुग्रीवविभीषणादयः कृत्रिमसंविधाभिः तथैवोपाचर्यंत (रामेण) यथा संकल्पमात्रोदितसिद्धींस्तांश्चेतासि विस्मयः क्रांतवान् ॥ १७ ॥

सुग्रीवविभीषणादीन् कृत्रिमभोगवस्तुभिः तेन प्रकारेणैवोपाचरत् यथेच्छामात्रेणोदितसिद्धयस्ते सुग्रीवादयश्चेतसि विस्मयेनाक्रान्ता बभूवुरिति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—और सुग्रीव विभीषणादिकोंका आदर, कल्पना की हुई सामग्रियोंसे ऐसा किया कि इच्छित की हुई वस्तुके तत्काल प्राप्त होनेसे वे चित्तमें आश्चर्यसे दबगये१७

सभाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः ॥
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वविक्रमे गौरवमादधानम् ॥१८॥

अन्वयः । सः सभाजनायोपगतान् दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः प्रभवादि स्वविक्रमे गौरवमादधानं वृत्तं तेभ्यः शुश्राव ॥ १८ ॥

वाच्यप० । तेन सभाजनायोपगतान्दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः प्रभवादि स्वविक्रमे गौरवमादधानं वृत्तं तेभ्यः शुश्रुवे ॥ १८ ॥

स रामोभिवन्दनायोपगतान्दिव्यानगस्त्यादीन् मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रो रावणस्य जन्मादिकं स्वविक्रमे गौरवमादधानं वृत्तं तेभ्यः शुश्रावेति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—वह रामचंद्र सत्कारके निमित्त आये हुए ऋषियोंको आगे बैठाकर मारे हुये शत्रुका जन्मादि अपने पराक्रममें गौरव देने वाला वृत्तान्त उनसे सुनते हुए१८॥

प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्द्धमासान् ॥
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान्रक्षःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः ॥ १९॥

अन्वयः । तपोधनेषु प्रतिप्रयातेषु (सत्सु) सुखादविज्ञातगतार्धमासान् सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षःकपींद्रान् रामः विससर्ज ॥ १९ ॥

वाच्यप० । तपोधनेषु प्रतिप्रयातेषु (सत्सु) सुखादविज्ञातगतार्धमासाः सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजाः रक्षःकपीन्द्राः रामेण विससृजिरे ॥ १९ ॥

तपोधनेषु मुनिषु गतेषु सत्सु सुखादविज्ञातगतार्धमासान् सीतायाः स्वहस्तोपहृताग्र्यसत्कारान् रक्षःकपीन्द्रान् रामो विसृष्टवानिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—तपस्वियोंके चले जानेपर सुखसे आधा महीना बीतना न जाननेवाले सीताके और अपने हाथसे उत्तम सन्मान (भेंट) पाये हुए राक्षस और वानरोंके स्वामियों को रामने विदा किया ॥ १९ ॥

तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं हृतं सुरारेः सह जीवितेन ॥
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमंस्त ॥ २० ॥

अन्वयः । तच्चात्मचिंतासुलभं सुरारेः जीवितेन सह हृतं दिवः पुष्पं पुष्पकं विमानं भूयः कैलासनाथोद्वहनायान्वमंस्त ॥ २० ॥

वाच्यप० । तच्चात्मचिंतासुलभं सुरारेः जीवितेन सह हृतं दिवः पुष्पं पुष्पकं विमानं कैलासनाथोद्वहनायान्वमानि ॥ २० ॥

तत् स्वेच्छामात्रलभ्यं रावणस्य जीवितेन सह हृतं दिवः पुष्पवदाभरणभूतं पुष्पकं विमानं पुनरपि कुबेरस्योद्वहनायानुज्ञातवानिति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०-और अपनी अभिलाषासे तुरत प्राप्त होनेवाले रावणके प्राण सहित हरे हुए आकाशके पुष्प (शोभा) के समान पुष्पक विमानको फिर कुबेरके चढनेको (रामने) भेजा ॥ २० ॥

पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः ॥
धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम् ॥ २१ ॥

अन्वयः । रामः एवं पितुः नियोगाद्वनवासं निस्तीर्य प्रतिपन्नराज्यः (सन्) धर्मार्थकामेषु यथा तथैव अवरजेषु समां वृत्तिं प्रपेदे ॥ २१ ॥

वाच्यप० । रामेणैवं पितुः नियोगाद्वनवासं निस्तीर्य प्रतिपन्नराज्येन (सता) धर्मार्थकामेषु यथा तथैव अवरजेषु समा वृत्तिः प्रपेदे ॥ २१ ॥

रामः एवं पितुः शासनाद्वनवासं निस्तीर्य प्राप्तराज्यः सन् धर्मार्थकामेषु यथा तथैवानुजेष्ववैषम्येण व्यवहृतवानिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-रामचंद्र इस प्रकार पिताकी आज्ञासे वनवास को बिताकर राज्यको प्राप्त हो धर्म अर्थ कामके समान छोटे भाइयोंमेंभी समान व्यवहारसे वर्तते हुए ॥ २१ ॥

सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत् ॥
षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ॥ २२ ॥

अन्वयः । सः वत्सलत्वात्सर्वासु मातृष्वपि निर्विशेषप्रतिपत्तिः आसीत् (कथमिव) चमूनां नेता षडाननापीतपयोधरासु कृत्तिकास्विव ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तेन वत्सलत्वात्सर्वासु मातृष्वपि निर्विशेषप्रतिपत्तिना अभूयत (कथमिव) चमूनां नेत्रा षडाननापीतपयोधरासु कृत्तिकास्विव ॥ २२ ॥

स रामो स्निग्धत्वात्सर्वासु मातृष्वपि तुल्यसत्कार आसीत् यथा कुमारः षण्मुखैः पीतपयोधरासु कृत्तिकासु समवृत्तिर्बभूवेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-प्यारके कारण वह सब माताओंमें अत्यन्त और समान प्रीति करते हुए, जिस प्रकार सेनापति (कार्तिकेय) छः मुखोंसे दूध पीते हुए माताओंमें तुल्य सत्कार वाले थे ॥ २२ ॥

शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् ।
ममायमिति ताः सर्व्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचुक्रुशुः ॥ १ ॥
तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां भगवान् प्रभुः ।
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिवत्तदा ॥ २ ॥
तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्नाः देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥ ३ ॥ (महाभारते)

तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान् ॥
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री ॥ २३ ॥

अन्वयः । लोकः लोभपराङ्मुखेन तेनार्थवान्, विघ्नभयं घ्नता तेन क्रियावान्, विनेत्रा तेन पितृमान्, शोकापनुदेन तेन पुत्री आस ॥ २३ ॥

वाच्यप० । लोकेन लोभपराङ्मुखेन तेन अर्थवता विघ्नभयं घ्नता तेन क्रियावता, विनेत्रा तेन पितृमता, शोकापनुदेन तेन पुत्रिणाऽऽस (वा) बभूवे ॥ २३ ॥

लोको लोभपराङ्मुखेन वदान्येन तेन रामेण धनिको बभूव, विघ्नेभ्यो भयं नुदता तेनानुष्ठानवानास, नियामकेन तेन पितृमानास, दुःखस्य हर्त्रा तेन पुत्रवानासेति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—संसार लोभ रहित उनसे धनवान् और विघ्न भय दूर करनेके कारण क्रियावान् शिक्षा करनेसे पितावान् और शोक दूर करनेसे पुत्रवान् हुआ ॥ २३ ॥

स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा ॥
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या ॥ २४ ॥

अन्वयः । सः काले पौरकार्याणि समीक्ष्य विदेहाधिपतेः दुहित्रोपभोगोत्सुकया तदीयं चारु वपुः कृत्वा (स्थितया) लक्ष्म्या इव उपस्थितः (सन्) रेमे ॥ २४ ॥

वाच्यप० । तेन काले पौरकार्याणि समीक्ष्य विदेहाधिपतेः दुहित्रा उपभोगोत्सुकया तदीयं चारु वपुः कृत्वा (स्थितया) लक्ष्म्या इवोपस्थितेन (सता) रेमे ॥ २४ ॥

सः रामः समये पौराणां कार्याणि समीक्ष्य जनकस्य दुहित्रा सीतयोपभोगोत्सुकया तदीयं चारु वपुः कृत्वा स्थितया लक्ष्म्येव संगतः सन् रेम इति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—वह समयपर पुरवासियोंके कार्यको देखकर विदेहराजकुमारीके साथ भोगकी उत्कंठासे सीता सम्बन्धि सुन्दर शरीरधारी लक्ष्मीके समान रमण करते हुए ॥ २४ ॥

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु ॥
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन् २५

अन्वयः । चित्रवत्सु सद्मसु यथाप्रार्थितामिंद्रियार्थानासेदुषोः तयोर्दंडकेषु प्राप्तानि दुःखान्यपि संचिंत्यमानानि सुखानि अभूवन् ॥ २९ ॥

वाच्यप० । चित्रवत्सु सद्मसु यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः तयोर्दंडकेषु प्राप्तैः दुःखैरपि संचिन्त्यमानैः सुखैः अभावि ॥ २९ ॥

वनवासवृत्तान्तलेख्यवत्सु सद्मसु यथेष्टमिन्द्रियविषयान् शब्दादीनासेदुषोः प्राप्तवतोस्तयोः सीतारामयोः दण्डकारण्येषु प्राप्तानि दुःखान्यपि विरहविलापान्वेषणादीनि स्मर्यमाणानि सुखान्यभूवन्निति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०–चित्रवाले मन्दिरोंमें अभिलाषपूर्वक इन्द्रियोंका सुख भोगते हुए उन दोनोंको दंडकवनमें प्राप्त हुए दुःखोंका स्मरण भी सुख रूप हुआ (अर्थात् वहां वनगमनके चित्रथे जिस समय देखे तो वनकी सुध आई) ॥ २९ ॥

अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण ॥
आनन्दयित्री परिणेतुरासीदनक्षरव्यञ्जितदोहदेन ॥ २६ ॥

अन्वयः । अथ सीताऽधिकस्निग्धविलोचनेन शरपांडुरेणानक्षरव्यंजितदोहदेन मुखेन परिणेतुरानंदयित्री आसीत् ॥ २६ ॥

वाच्यप० । अथ सीतया + + + आनंदयित्र्याऽभूयत ॥ २६ ॥

अथ सीता अत्यन्तमसृणलोचनेन शरवत्पाण्डुरेणात एवावाग्व्यापारव्यञ्जितदोहदेन मुखेन पत्युरानन्दयित्र्यासीदिति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०–तब सीता अधिक शोभित नेत्रोंवाले (तथा) शर समान पीले (और) कहे विनाही गर्भ जनानेवाले मुखसे पतिको आनन्द देनेवाली हुई ॥ २६ ॥

तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम् ॥
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम् ॥२७॥

अन्वयः । प्रतीतः रमणः प्रियां कृशांगयष्टिं वर्णांतराक्रांतपयोधराग्रां विलज्जमानां तां रामां रहसि अंकम् आरोप्याभिलाषं पप्रच्छ ॥ २७ ॥

वाच्यप० । प्रतीतेन रमणेन प्रिया कृशांगयष्टिः वर्णांतराक्रांतपयोधराग्रा विलज्जमाना सा रामा रहसि अंकमारोप्याभिलाषं पप्रच्छे ॥ २७ ॥

गर्भज्ञानवान् रमणः कृशाङ्गयष्टिं प्रियां वर्णान्तरेण नीलिम्नाक्रान्तपयोधराग्रां विलज्जमानां तां सीतां रहस्यङ्कमारोप्य मनोरथं पप्रच्छेति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०–(गर्भको) जाने हुए रमण करने हारे रामचंद्र प्यारी, पतले अंगवाली, बदले हुए कुचाग्रोंके रंगवाली, लज्जावती उस रामा (मनोहारिणी) को एकान्तमें हृदयसे लगाकर मनोरथ पूछते हुए ॥ २७ ॥

सा दष्टनीवारबलीनि हिंस्रैः संबद्धवैखानसकन्यकानि ॥
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथीतीरतपोवनानि ॥ २८ ॥

अन्वयः । सा हिंस्रैः दष्टनीवारबलीनि संबद्धवैखानसकन्यकानि कुशवंति भागीरथीतीरतपोवनानि भूयः गंतुम् इयेष ॥ २८ ॥

वाच्यप० । तया + + + ईषे ॥ २८ ॥

सा सीता हिंस्रैर्दष्टनीवारबलीनि कृतसख्यवैखानसकन्यकानि दर्भवन्ति भागीरथीतटतपोवनानि पुनरपि गन्तुमभिलषेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-वह क्रूर पशुओंसे धानकी बलि खाये, वनवासियोंकी कन्याओंसे सखीपन जोडनेके स्थान कुशवाले गङ्गातटके तपोवनोंमें फिर जानेकी इच्छा करती हुई ॥ २८ ॥

तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः ॥
आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह ॥ २९ ॥

अन्वयः । रघुप्रवीरः तस्यै तदीप्सितं प्रतिश्रुत्य पार्श्वचरानुयातः (सन्) मुदितामयोध्याम् आलोकयिष्यन्नभ्रंलिहं प्रासादम् आरुरोह ॥ २९ ॥

वाच्यप० । रघुप्रवीरेण तस्यै तदीप्सितं प्रतिश्रुत्य पार्श्वचरानुयातेन (सता) मुदिताम् अयोध्याम् आलोकयिष्यताऽभ्रंलिहः प्रासादः आरुरुहे ॥ २९ ॥

रामः तस्यै सीतायै पूर्वोक्तमनोरथं प्रतिश्रुत्य तत्कालोचितैः सेवकैरनुयातः सन् प्रसन्नामयोध्यामालोकयिष्यन्नभ्रंकषं प्रासादमारुरोहेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०-रघुवीर जानकीके निमित्त इनके मनोरथकी प्रतिज्ञाकर सेवकों सहित, प्रसन्न हुई अयोध्यापुरीके देखनेको आकाशके छूने वाले महलपर चढे ॥ २९ ॥

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः ॥
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे ॥३०॥

अन्वयः । सः ऋद्धापणं राजपथं नौभिर्विगाह्यमानां सरयूं च पौरैर्विलासिभिः अध्युषितानि पुरोपकंठोपवनानि च पश्यन् रेमे ॥ ३० ॥

वाच्यप० । तेन + + + पश्यता रेमे ॥ ३० ॥

स रामः समृद्धापणयुक्तं राजपथं समुद्रवाहिनीभिर्नौभिः विगाह्यमानां सरयूं च विलासिभिः पौरैरध्युषितानि पुरोपकण्ठोपवनानि पश्यन् रेमे इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०-वह धनसे पूर्ण राजमार्ग और नाव चलती हुई सरयू और नगरके विलासियोंसे सेवित नगरके निकटके बगीचोंको देखकर मन प्रसन्न करते हुए ॥ ३० ॥

स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः ॥
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । वदतां पुरोगः विशुद्धवृत्तः सर्पाधिराजोरुभुजः विजितारिभद्रः सः स्ववृत्तमुद्दिश्य भद्रम् अपसर्पं किंवदंतीं पप्रच्छ ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । वदतां पुरोगेण विशुद्धवृत्तेन सर्पाधिराजोरुभुजेन विजितारिभद्रेण तेन स्ववृत्तमुद्दिश्य भद्रः अपसर्पः किंवदंतीं पप्रच्छे ॥ ३१ ॥

वाग्मिनां श्रेष्ठः विशुद्धवृत्तः शेषोरुभुजः विजितारिश्रेष्ठः स रामः स्ववृत्तमुद्दिश्य भद्रनामकचरं जनवादं पप्रच्छेति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०–बोलने वालोंमें अग्रणी, शुद्ध आचारयुक्त, शेषकी समान जंघा और भुजा वाले, शत्रुजित् श्रेष्ठ उस (राम) ने भद्रनामक दूतसे अपने चरित्रसम्बन्धी लोकचरचा पूछी ॥ ३१ ॥

निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम् ॥
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः ॥ ३२ ॥

अन्वयः । निर्बन्धपृष्टः सः जगाद हे मानवदेव ! रक्षोभवनोषितायाः देव्याः परिग्रहात् अन्यत्र त्वदीयं सर्वं चरितं पौराः स्तुवंति ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । निर्बन्धपृष्टेन तेन जगदे हे मानवदेव ! रक्षोभवनोषितायाः देव्याः परिग्रहादन्यत्र त्वदीयं सर्वं चरितं पौरैः स्तूयते ॥ ३२ ॥

आग्रहेण पृष्टः सोऽपसर्पो जगाद हे मानवदेव ! निशाचरभवन उषितायाः सीतायाः स्वीकारादितरांशे त्वदीयं सर्वं वृत्तं पौराः स्तुवन्तीति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०–बहुत पूछनेसे वह बोला हे नरराज ! राक्षसके घरमें रही हुई जानकीके ग्रहण करनेके विना और तुम्हारे सब चरित्रकी बड़ाई पुरवासी करते हैं ॥ ३२ ॥

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण ॥
अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे ॥ ३३ ॥

अन्वयः । एवं किल कलत्रनिंदागुरुणा कीर्तिविपर्ययेणाभ्याहतं वैदेहिबंधोः हृदयम् अयोघनेन अभ्याहतम् अभितप्तम् अय इव विदद्रे ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । + + अभ्याहतेन हृदयेन × + (अभ्याहतेन) अभितप्तेनायसेव विदद्रे ॥ ३३ ॥

एवं किल कलत्रनिन्दया गुर्व्यापकीर्त्याभ्याहतं वैदेहीवल्लभस्य हृदयं संतप्तमय इव विदीर्णमिति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–प्रगट है कि इस प्रकार स्त्रीकी निंदाके इस बडे कलंकसे जानकीके प्रियका हृदय, लोहेके घनसे चोटपाये हुए तप्त लोहेके समान विदीर्ण होगया ॥ ३३ ॥

किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि ॥
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ॥ ३४ ॥

अन्वयः । आत्मनिर्वादकथां किम् उपेक्षे उत अदोषां जायां संत्यजामि इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्सः दोलाचलचित्तवृत्तिरासीत् ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । आत्मनिर्वादकथा किम् उपेक्ष्यते उतादोषा जाया संत्यज्यते इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वा-तेन दोलाचलचित्तवृत्तिनाऽभूयत ॥ ३४ ॥

किमात्मनः अपवादकथामुपेक्षे उत निर्दोषां साध्वीं भार्यां त्यजामि इत्येकपक्षस्वीकारे अपरिच्छे-दत्वात्स रामो दोलाचलचित्तवृत्तिरासीदिति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—क्या अपयशकी कथाको न सुनूं अथवा निर्दोषभार्याको त्याग करूं इस प्रकार एक पक्षके आश्रय करनेमें व्याकुल हुए वह (राम) झूलेकी समान चंचल-चित्तवृत्तिवाले हुए ॥ ३४ ॥

निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत्॥
अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः॥३५॥

अन्वयः । (किं च) वाच्यम् अनन्यनिवृत्ति निश्चित्य पत्न्याः त्यागेन परिमार्ष्टुमैच्छत् (तथा) हि यशोधनानां स्वदेहादपि यशो गरीयः इन्द्रियार्थात्किमुत ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । (किं च) वाच्यम् अनन्यनिवृत्तिःनिश्चित्य पत्न्याः त्यागेन परिमार्ष्टुमैष्यत (तथा) हि यशोधनानां स्वदेहादपि यशसा गरीयसा (भूयते) इन्द्रियार्थात्किमुत ॥ ३५ ॥

किं चापवादमनन्यनिवृत्तिं निश्चित्य सीतात्यागेन परिहर्तुमैच्छत्तथाहि यशोधनानां पुरुषाणां स्वदे-हादपि यशो गुरुतरं किमुतेन्द्रियार्थादिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—(परन्तु) कलंकको दूसरे उपायसे मिटनेवाला न देखकर पत्नीके त्याग-सेही उसके मेटनेकी इच्छा की; कारण कि-यशोधनियोंको अपने देहसेभी यश प्यारा होता है इन्द्रियोंके विषयसे तो क्या ॥ ३५ ॥

स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् ॥
कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाचवाक्यम्॥३६॥

अन्वयः । हतौजाः सः तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षानवरजान्संनिपात्यात्माश्रयं कौलीनं तेभ्यः आच-चक्षे पुनरिदं वाक्यमुवाच च ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । हतौजसा तेन तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् अवरजान्संनिपात्यात्माश्रयं कौलीनं तेभ्य आचचक्षे पुनरिदं वाक्यम् ऊचे च ॥ ३६ ॥

निस्तेजस्कः स रामस्तस्य रामस्य विक्रियादर्शनेन लुप्तहर्षानवरजान्संगमय्य स्वविषयकां निन्दां तेभ्य आचचक्षे पुनरिदं वाक्यमुवाच चेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—तेजहीन रामने बिगडा रूप देखकर प्रसन्नतारहित हुए छोटे भाईयोंको इकट्ठाकर अपनेमें लगे हुए अपवादको उनसे कह कर फिर यह कहा ॥ ३६ ॥

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम् ॥
मत्तः सदाचारशुचेः कलंकः पयोदवातादिव दर्पणस्य ॥ ३७ ॥

अन्वयः । रविप्रसूतेः राजर्षिवंशस्य सदाचारशुचेः मत्तो दर्पणस्य पयोदवातादिव कीदृशः अयं कलङ्कः उपस्थितः पश्यत ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । × × + कीदृशेनानेन कलङ्केनोपस्थितं दृश्यताम् ॥ ३७ ॥

सूर्यात् प्रसूतिर्यस्य तस्य राजर्षिवंशस्य सद्वृत्ताच्छुद्धान्मत्सकाशात् दर्पणस्याम्भःकणादिव कीदृशोयं कलंकः प्राप्तः पश्यतेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

श्लो०—यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्लोकश्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम् ॥
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती स्याच्चेदस्मिन् हन्त धिङ् मामधन्यम् ॥ (भवभूतिः)

भा०—सूर्यसे उत्पन्न हुए राजर्षियोंके वंशको सदाचारसे पवित्र हुए मुझसे दर्पणको मेघकी पवनके समान कैसा यह कलंक उपस्थित हुआ सो देखो ॥ ३७ ॥

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम् ॥
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । सोहमपां तरंगेषु तैलबिंदुमिव पौरेषु बहूलीभवंतं तत्पूर्वम् अवर्णं द्विपेंद्रः आलानिकं स्थाणुमिव सोढुं नेशे ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । तेन मयापां तरंगेषु तैलबिंदुमिव पौरेषु बहुलीभवन्तं तत्पूर्वम् अवर्णं द्विपेंद्रेणालानिकं स्थाणुमिव सोढुं नेश्यते ॥ ३८ ॥

सोहं जलतरंगेषु तैलबिन्दुमिव पौरेषु प्रसरन्तं तत्पूर्वमपवादं द्विपेन्द्र आलानिकस्तंभमिव सोढुं न शक्नोमीति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—सो मैं जलकी तरंगोंमें तेलकी बूंदके समान फैले हुए इस प्रथम कलंकको हाथी बन्धनके खम्भके समान सहनेको समर्थ नहीं हूं ॥ ३८ ॥

तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः ॥
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव ॥ ३९ ॥

अन्वयः । तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः (सन् अहं) वैदेहसुतां पुरस्तात्पितुराज्ञया समुद्रनेमिमिव त्यक्ष्यामि ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तौ उपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षेण (सता मया) वैदेहसुता पुरस्तात्पितुराज्ञया समुद्रनेमिरिव त्यक्ष्यते ॥ ३९ ॥

तस्यापवादस्यापनोदायामत्योत्पत्तावुपस्थितायामपि निःस्पृहः सन् वैदेहसुतां सीतां पूर्वं पितुराज्ञया समुद्रनेमिमिव त्यक्ष्यामीति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-इसके दूर करनेको फल प्राप्तिके निकट (गर्भवती) प्राप्त हुईमेंभी इच्छारहित होकर (मैं) जनकसुताको आगे पिताकी आज्ञासे पृथ्वीकी समान त्यागूंगा ॥ ३९ ॥

अवैमि चैनामनघेति किं तु लोकापवादो बलवान्मतो मे ॥
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतःप्रजाभिः॥४०॥

अन्वयः । एनामनघेति अवैमि च किं तु मे लोकापवादः बलवान्मतः हि (यस्मात्) प्रजाभिः भूमेः छाया शुद्धिमतः शशिनः मलत्वेनारोपिता ॥ ४० ॥

वाच्यप० । एषानघेति अवेयते च (मया) किं त्वहं लोकापवादं बलवंतं मन्ये हि (यस्मात्) प्रजाः भूमेः छायां शुद्धिमतः शशिनः मलत्वेन आरोपितवत्यः ॥ ४० ॥

एनां सीतामदोषा साध्वीति चावैमि किन्तु मम लोकापवादो बलवान्मतः यस्मात् प्रजाभिः भूमेः प्रतिबिम्बं निर्मलस्य शशिनो मलत्वेनारोपितम् अतो लोकापवाद एव बलवानिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-इनको मैं शुद्ध जान्ता हूं परन्तु लोकापवाद (अपयश) मेरे मतमें प्रबल है, (क्योंकि) प्रजाने पृथ्वीकी छायाहीको शुद्ध चन्द्रमाका कलंक बताया है ॥ ४० ॥

रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः स वैरप्रतिमोचनाय ॥
अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥ ४१ ॥

अन्वयः । किं च रक्षोवधांतः मे प्रयासः व्यर्थो न (किं तु) स वैरप्रतिमोचनाय (तथाहि) अमर्षणः द्विजिह्वः पदा स्पृशंतं (पुरुषं) शोणितकांक्षया दशति किम्? ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । किं च रक्षोवधान्तेन मे प्रयासेन व्यर्थेन न (अभावि) (किं तु) तेन वैरप्रतिमोचनाय (अभावि) (तथाहि) अमर्षेणेन द्विजिह्वेन पदा स्पृशन् (पुरुषः) शोणितकांक्षया दश्यते किम् ? ॥ ४१ ॥

किं च मे रक्षोवधान्तः प्रयासो व्यर्थो न किन्तु स वैरशोधनाय तथाह्यसहनः सर्पः पादेन स्पृशन्तं पुरुषं शोणितकांक्षया दशति किं, न किन्तु वैरनिर्यातनायेति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-और राक्षस रावणके मारनेतक मेरा परिश्रम व्यर्थ न होगा किन्तु वह वैरके लेनेके लिये था क्योंकि क्रोधी सर्प पैरोंसे छूते हुए (पुरुष) को क्या रुधिर (पीने) की इच्छासे काटता है ? ॥ ४१ ॥

तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः ॥
यद्यर्थिता निर्हृतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । तदेष मे सर्गः करुणार्द्रचित्तैः भवद्भिः न प्रतिषेधनीयः मया निर्हृतवाच्यशल्यान्प्राणान् चिरं धारयितुं वः अर्थिता यदि ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । तदेतं मे सर्गं करुणार्द्रचित्ताः भवन्तः न प्रतिषेत्स्यंति वा प्रतिषेधेयुः निर्हृत-वाच्यशल्यान्प्राणान्मया चिरं धारयितुं वः अर्थितया यदि (भूयते) ॥ ४२ ॥

तस्मादेष मे सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्भवद्भिर्न प्रतिषेधनीयः, निर्गतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया चिरं धारणं कारयितुं युष्माकमिच्छा यद्यस्तीति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–सो यह मेरी इच्छा करुणासे गीले चित्तोंवाले तुम्हें विपरीत न करनी चाहिये, जो मेरे अपवादरूपी बाणसे वेधे हुए प्राणोंको कुछ दिन धारण करानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो ॥ ४२ ॥

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम् ॥
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा ॥ ४३ ॥

अन्वयः । इति उक्तवंतं जनकात्मजायां नितांतरूक्षाभिनिवेशम् ईशं तेषु भ्रातृषु मध्ये कश्चन निषेद्धुम् अनुमोदितुं वा शक्तः नासीत् ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । + + + केनचन + + शक्तेन नाभूयत ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवन्तं सीतायां विषयेऽतिक्रूराग्रहं स्वामिनं तेषु भ्रातृषु मध्ये कश्चनापि निवारयितुं प्रवर्तयितुं वा शक्तो नासीदिति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–इस प्रकार कहते हुए जानकीमें अत्यन्त निष्ठुरता ठानेहुए स्वामीको उन भाइयोंके मध्यमें कोईभी निषेध करनेको अथवा अनुमोदन करनेको समर्थ न हुआ ॥ ४३ ॥

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः ॥
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश ॥ ४४ ॥

अन्वयः । लोकत्रयगीतकीर्तिः यथार्थभाषी लक्ष्मणपूर्वजन्मा सः निदेशे स्थितं लक्ष्मणं विलोक्य (हे) सौम्य ! इत्याभाष्य च पृथक् आदिदेश ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । लोकत्रयगीतकीर्तिना यथार्थभाषिणा लक्ष्मणपूर्वजन्मना तेन निदेशे स्थितः लक्ष्मणः विलोक्य (हे) सौम्य ! इत्याभाष्य च पृथगादिदिशे ॥ ४४ ॥

लोकत्रयगीतकीर्तिर्यथार्थभाषी लक्ष्मणाग्रजः स रामः आज्ञाकारिणं लक्ष्मणमवलोक्य हे सुभग इत्याभाष्य च पृथक् भरतशत्रुघ्नाभ्यां विनाज्ञापयामासेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–त्रिलोकीमें विख्यात यशवाले, सत्यवक्ता, लक्ष्मणके बडे भ्राता वह (राम) आज्ञा करने हारे लक्ष्मणको देखकर हे सौम्य ऐसा कहकर पृथक् (अलग) आज्ञा देते हुए ॥ ४४ ॥

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव ॥
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः । दोहदशंसिनी ते प्रजावती तपोवनेषु स्पृहयालुरेव, सः त्वं रथी (सन्) तद्व्यपदेश-नेयाम् एनां वाल्मीकिपदं प्रापय्य त्यज ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । दोहदशंसिन्या ते प्रजावत्या तपोवनेषु स्पृहयाल्वा एव (अभावि) तेन त्वया रथिना (सता) तद्व्यपदेशनेया एषा वाल्मीकिपदं प्रापय्य त्यज्यताम् ॥ ४५ ॥

गर्भिणीमनोरथशंसिनी ते प्रजावती (भ्रातृजाया) तपोवनेषु स्पृहयालुरेव स त्वं रथी सन् दोहदमिषेण नेतव्यामेनां सीतां वाल्मीकेः स्थानं प्रापय्य त्यजेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–मनोरथ रखनेवाली तुम्हारी (भाभी) गर्भवती तपोवनके देखनेकी निश्चय इच्छा रखती है, सो तुम रथमें लेकर उसी बहानेसे इसको वाल्मीकिके आश्रमके निकट लेजाकर त्याग दो ॥ ४५ ॥

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत् ॥
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥ ४६ ॥

अन्वयः । पितुर्नियोगाद्भार्गवेण मातरि द्विषद्वत्प्रहृतं शुश्रुवान्सः तदग्रजशासनं प्रत्यग्रहीत् हि गुरूणामाज्ञाऽविचारणीया ॥ ४६ ॥

वाच्य२० । पितुर्नियोगाद्भार्गवेण मातरि द्विषद्वत्प्रहृतं शुश्रुवुषा तेन तदग्रजशासनं प्रत्यग्राहि हि गुरूणामाज्ञयाऽविचारणीयया (भूयते) ॥ ४६ ॥

पितुर्जमदग्नेः शासनाद्भार्गवस्य मातरि द्विषद्वत् प्रहारं श्रुतवान् स लक्ष्मणः तदग्रजशासनं प्रत्यग्रहीद्यस्माद्गुरूणामाज्ञाऽविचारणीयेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–पिताकी आज्ञासे परशुरामने मातामें वैरीके समान प्रहार कियाथा यह सुने हुए उन (लक्ष्मण) ने बड़े भाईकी आज्ञा ग्रहण की, कारण कि बडोंकी आज्ञा सोच विचारके योग्य नहीं होती है ॥ ४६ ॥

अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरङ्गैः ॥
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे ॥ ४७ ॥

अन्वयः । अथ (असौ) अनुकूलश्रवणप्रतीतां वैदेहसुताम् अत्रस्नुभिः तुरंगैर्युक्तधुरं सुमंत्रप्रतिपन्नरश्मिं रथम् आरोप्य प्रतस्थे ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । अथामुना × × × अन्यत्सर्वं समानम् ॥ ४७ ॥

अथासौ लक्ष्मण इष्टाकर्णनेन संतुष्टां सीतामत्रस्नुभिर्गर्भिणीवहनयोग्यैस्तुरंगैर्युक्तधुरं सुमंत्रेण गृहीतप्रग्रहं रथमारोप्य प्रतस्थ इति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–यह अभिलाषित बात सुननेसे प्रसन्न हुई जानकीको न डरनेवाले घोडे जुते सुमन्तके रास पकडे रथमें बैठालकर चले ॥ ४७ ॥

सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत् ॥
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः। सा रुचिरान्प्रदेशान्नीयमाना (सती) मे प्रियः प्रियंकरः, इत्यनंदत् तमात्मनि कल्पद्रुमतां विहायासिपत्रवृक्षं जातं नाबुद्ध ॥ ४८ ॥

वाच्यप०। तया रुचिरान्प्रदेशान्नीयमानया (सत्या) मे प्रियः प्रियंकरः इत्यनंद्यत स आत्मनि कल्पद्रुमतां विहायासिपत्रवृक्षो जातो नाबोधि ॥ ४८ ॥

सा सीता रुचिरान्प्रदेशान्प्राप्यमाणा सती मम प्रियः प्रियकारीत्यनन्दत्, तं प्रियमात्मनि विषये कल्पद्रुमतां विहायासिपत्रवृक्षं जातं नाज्ञासीदिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–वह मनोहर देशोंमें ले गई हुई मेरे प्यारे प्रिय करनेवाले हैं ऐसा जानकर प्रसन्न हुई (परन्तु) उनको अपनेमें कल्पवृक्षपन त्यागकर असिपत्र (तलवारके से पत्रवाला वृक्ष) पन लिया हुआ न जान्ती हुई ॥ ४८ ॥

जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा ॥
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन ॥ ४९ ॥

अन्वयः। पथि लक्ष्मणः तस्या यत् जुगूह गुरु भावि तद्दुःखम् अत्यंतलुप्तप्रियदर्शनेन स्फुरता सव्येतरेणाक्ष्णाऽस्यै आख्यातम् ॥ ४९ ॥

वाच्यप०। पथि लक्ष्मणेन तस्या यज्जुगूहे गुरु भावि तद्दुःखम् अत्यंतलुप्ताप्रियदर्शनं स्फुरत्सव्येतरदक्षि अस्यै आख्यातवत् ॥ ४९ ॥

पथि लक्ष्मणो यद्दुःखं तस्याः सीतायाः प्रतिसंहृतवांस्तद्गुरु भाविष्य दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्श स्फुरता दक्षिणेनाक्ष्णास्यै सीतायै आख्यातमिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०–मार्गमें लक्ष्मणने उससे जो छिपायाथा सो भारी होनहार वह दुःख, अत्यन्त खोये हुए प्यारेके दर्शनवाले, फडकते हुए उसके दाहिने नेत्रने इसको बता दिया ॥ ४९ ॥

सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा ॥
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरबाह्यैः ॥ ५० ॥

अन्वयः। सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविंदा (सती) सावरजस्य राज्ञः शिवं भूयात् इत्यबाह्यैः करणैराशशंसे ॥ ५० ॥

वाच्यप०। तया दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविंदया (सत्या) सावरजस्य राज्ञः शिवेन भाविषीष्ट (वा भविषीष्ट) इति अबाह्यैः करणैराशशंसे ॥ ५० ॥

सा सीता दक्षिणाक्षिस्फुरणरूपेण दुर्निमित्तेन प्राप्तदुःखात्सद्यः परिम्लानमुखारविंदा सती सानुजस्य रामस्य शिवं भूयादित्यबाह्यैरन्तःकरणैराशशंस इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०–वह बुरे शकुनके दर्शनसे दुःखी होनेके कारण शीघ्र मलीन मुख होकर भाइय सहित राजा (राम) की कुशल हो इस प्रकार अन्तःकरणसे कहती हुई ॥ ५० ॥

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन् ॥
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ॥ ५१ ॥

अन्वयः। गुरोर्नियोगात्साध्वीं वनितां वनांते विहास्यन्सुमित्रातनयः पुरस्तात् स्थितया जह्नोर्दुहित्रोत्थितवीचिहस्तैरवार्यतेव ॥ ५१ ॥

वाच्यप०। गुरोः नियोगात्साध्वीं वनितां वनांते विहास्यंतं सुमित्रातनयं पुरस्तात् स्थिता जह्नोः दुहितोत्थितवीचिहस्तैरवारयदिव ॥ ५१ ॥

रामस्य नियोगात् साध्वीं वनितां वनान्ते त्यक्ष्यन्सुमित्रातनयो लक्ष्मणः अग्रे स्थितया जाह्नव्या उत्थितैर्वीचिहस्तैरवार्यतेवाकार्यं मा कुर्विति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०–गुरु (राम) की आज्ञासे सुशीला (पतिव्रता) स्त्रीको वनान्तमें छोडते हुए सुमित्राकुमारके आगे स्थित हुई जह्नुकन्या (गंगा) तरंगरूपी भुजा उठाकर मानो निषेध करती हुई ॥ ५१ ॥

रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ॥
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः ॥ ५२ ॥

अन्वयः। सत्यसंधः स यंत्रा निगृहीतवाहाद्रथाद्भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य निषादाहृतनौविशेषः(सन्) गंगां संधामिव ततार ॥ ५२ ॥

वाच्यप०। सत्यसंधेन तेन यंत्रा निगृहीतवाहाद्रथाद् भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य निषादाहृतनौविशेषेण (सता) गंगा संधेव तेरे ॥ ५२ ॥

सत्यप्रतिज्ञः स लक्ष्मणः सारथिना रुद्धाश्वाद्रथाद्भ्रातृजायां सैकतेऽवतार्य निषादेनानीतदृढनौकः सन् भागीरथीं प्रतिज्ञामिव ततारेति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०–सत्यप्रतिज्ञावाले वह (लक्ष्मण) सारथीके रोके हुए घोडोंके रथसे भाईकी स्त्रीको किनारेपर उतारकर केवटद्वारा लाई हुई नावसे गंगाको अपनी प्रतिज्ञाकी समान उतर गये ॥ ५२ ॥

अथ व्यवस्थापितवाक्कथंचित्सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः ॥
औत्पातिकं मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार ॥ ५३ ॥

अन्वयः। अथ कथंचिद्व्यवस्थापितवाक् अंतर्गतबाष्पकंठः सौमित्रिः महीपतेः शासनम् औत्पातिको मेघः अश्मवर्षमिवोज्जगार ॥ ५३ ॥

वाच्यप०। अथ कथंचिद्व्यवस्थापितवाचाऽन्तर्गतबाष्पकंठेन सौमित्रिणा महीपतेः शासनम् औत्पातिकेन मेघेनाश्मवर्षमिवोज्जगरे ॥ ५३ ॥

अथ कथंचित्प्रकृत्यापादितवाकण्ठस्तम्भिताश्रुः लक्ष्मणः महीपते रामस्य शासनं मेघ औत्पातिकशिलावर्षमिवोद्गीर्णवानिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—फिर किसी प्रकार वाणीको संभालकर आंसुओंको कंठमें रोके हुए लक्ष्मणने रामचन्द्रकी आज्ञा (इस प्रकार कही) मानों उत्पाती मेघने पत्थरकी वर्षा उगली ॥ ५३ ॥

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ॥
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ॥५४॥

अन्वयः । ततोऽभिषंगानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना सीता लतेव सहसा स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं जगाम ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । ततः अभिषंगानिलविप्रविद्धया प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूनया सीतया लतयेव सहसा स्वमूर्तिलाभप्रकृतिर्धरित्री जग्मे ॥ ५४ ॥

ततः पराभवानिलेनाभिहता पतदाभरणपुष्पा सा सीता लतेव सहसा स्वोत्पत्तेः कारणं धरित्रीं जगामेति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—तब तिरस्कार रूपी लूसे दग्ध हुई टूटते हुये गहनेरूपी फूलवाली सीता लताकी समान अपनी मूर्तिके लाभकी कारण (माता) पृथ्वीपर गिरी ॥ ५४ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः ॥
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥५५॥

अन्वयः । इक्ष्वाकुवंशप्रभवः आर्यवृत्तः पतिः त्वाम् अकस्मात्कथं त्यजेदिति संशयितेव जननी क्षितिः तावत्तस्यै प्रवेशं न ददौ ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । इक्ष्वाकुवंशप्रभवेणार्यवृत्तेन पत्या त्वम् अकस्मात्कथं त्यज्येथाः इति संशयितयेव जनन्या क्षित्या तावत्तस्यै प्रवेशो न ददे ॥ ५५ ॥

इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः साधुचरितः भर्ता त्वामकारणात्कथं त्यजेदिति संदिहानेव तावज्जननी क्षितिस्तस्यै सीतायै प्रवेशं न ददाविति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ श्रेष्ठ आचरणवाला पति अकस्मात् तुझको क्यों त्याग करता इस प्रकार संशयको प्राप्त हुई माता धरतीने उसे उसी समय प्रवेश न दिया ॥ ५५ ॥

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ॥
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ॥५६॥

अन्वयः । लुप्तसंज्ञा सा दुःखं न विवेद प्रत्यागतासुः अंतः समतप्यत तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धः प्रबोधः मोहात्कष्टतरः अभूत् ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । लुप्तसंज्ञया तया दुःखं न विविदे प्रत्यागतासुमंतः (दुःखं) समतपत् तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धेन प्रबोधेन मोहात् कष्टतरेणाभावि ॥ ५६ ॥

मूर्च्छिता सा दुःखं न विवेद लब्धसंज्ञा सत्यन्तः समतप्यत तस्याः सीतायाः लक्ष्मणयत्नलब्ध-प्रबोधः मोहादतिदुःखदोऽभूदिति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०-मूर्छित हो जाने से वह दुःख न जान्ती हुई फिर संज्ञाको प्राप्त होकर मनमें अत्यन्त दुःखी हुई उसे सुमित्रापुत्र (लक्ष्मण) के उपायसे प्राप्त हुई चेतना मूर्च्छासे-भी अधिक कष्ट दायक होती हुई ॥ ५६ ॥

न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि ॥
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनःपुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द ॥५७॥

अन्वयः । आर्या (सा) वृजिनादृतेऽपि निराकरिष्णोः भर्तुः अवर्णं न चावदत् (किंतु) स्थिरदुःखभाजम् (अत एव) दुष्कृतिनमात्मानमेव पुनःपुनः निनिंद ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । आर्यया (तया) वृजिनादृतेपि निराकरिष्णोः भर्तुः अवर्णः न औद्यत (किं तु) स्थिरदुःखभाक् (अत एव) दुष्कृती आत्मा पुनःपुनः निनिंदे ॥ ५७ ॥

साध्वी सीतेनसो विनापि निरासक्तस्य भर्तुरपराधं नैवाब्रवीत् किन्तु स्थिरदुःखभाजमत एव दुष्कृतिनमात्मानं पुनःपुनर्निनिन्देति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०-उस सुशीलाने अपराधके विनाभी त्यागनेकी इच्छा करनेवाले पतिको दुर्वचन न कहे, परन्तु सदा दुःख पानेवाले दुष्कृती अपने आपहीकी बारंबार निन्दा की ॥ ५७ ॥

आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः ॥
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं देवि! क्षमस्वेति बभूव नम्रः ॥ ५८ ॥

अन्वयः । रामावरजः साध्वीं तामाश्वास्य आख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः (हे) देवि ! निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं क्षमस्व इति नम्रः बभूव ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । रामावरजेन साध्वीं तामाश्वास्याख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गेण (हे) देवि ! निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं क्षम्यतामिति नम्रेण बभूवे ॥ ५८ ॥

लक्ष्मणः साध्वीं तामाश्वास्य वाल्मीकेराश्रमस्य मार्गं कथयित्वा पराधीनस्य मे स्वाम्यनुज्ञया यत्पारुष्यं तद्धे देवि ! क्षमस्व इति प्रणतो बभूवेति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०-रामके छोटे (लक्ष्मण) उस सतीको समझाकर वाल्मीकिके स्थानका मार्ग दिखाकर हे देवी ! मुझ पराधीनका स्वामी की आज्ञासे किया हुआ कठोरपन क्षमाकरो ऐसा कहकर नम्र हुए ॥ ५८ ॥

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव॥
विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम्॥५९॥

अन्वयः । सीता तमुत्थाप्य वाक्यं जगाद (हे) सौम्य ! ते प्रीतास्मि चिराय जीव यद्विडौजसा विष्णुरिव त्वम् अग्रजेन भ्रात्रेत्थं परवानसि ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । सीतया स उत्थाप्य वाक्यं जगदे (हे)सौम्य ! ते प्रीतया भूयते (मया) चिराय जीव्यतां यद्विडौजसा विष्णुनेव त्वयाग्रजेन भ्रात्रेत्थं परवता भूयते ॥ ५९ ॥

सीता तं लक्ष्मणमुत्थाप्य वाक्यं जगाद हे साधो ! ते प्रीतास्मि चिरंजीव यस्मादिन्द्रेणोपेन्द्र इव ज्येष्ठेन भ्रात्रा त्वमित्थं परतन्त्रोऽसीति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०—सीता उनको उठाकर वचन बोली हे सौम्य ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं बहुत काल तक जीवो कारण कि जैसे विष्णु इन्द्रके ऐसे तुम वडे भाईके आधीन हो ॥ ५९ ॥

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः ॥
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति ॥ ६० ॥

अन्वयः । सर्वं श्वश्रूजनमनुक्रमेण प्रापितमत्प्रणामः (सन्) विज्ञापय मयि वर्तमानं सूनोः प्रजानिषेकं चेतसाऽनुध्यायत इति ॥ ६० ॥

वाच्यप० । सर्वः श्वश्रूजनः अनुक्रमेण प्रापितमत्प्रणामेन (सता) विज्ञाप्यतां मयि वर्तमानः सूनोः प्रजानिषेकः चेतसाऽनुध्यायतामिति ॥ ६० ॥

सर्वं श्वश्रूजनमनुक्रमेण प्रापितमत्प्रणामः सन् विज्ञापय मयि वर्तमानं तव पुत्रस्य गर्भं चेतसा शिवमस्त्विति चिन्तयतेति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—सब सासुओंको क्रमसे मेरा प्रणाम पहुंचा कर कहना कि तुम्हारे पुत्रका गर्भ मुझमें स्थित है, इसका कुशल हृदयसे ध्यान करो ॥ ६० ॥

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ॥
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥६१॥

अन्वयः । सः राजा त्वया मद्वचनाद्वाच्यः समक्षं वह्नौ विशुद्धामपि मां लोकवादश्रवणादहासीः इति यत्तत् श्रुतस्य कुलस्य सदृशं किम् ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तं राजानं त्वं मद्वचनाद्वक्ष्यसि समक्षं वह्नौ विशुद्धा अपि अहं लोकवादश्रवणाद्-हायिषि (त्वया) इति यत्तेन श्रुतस्य कुलस्य सदृशेन किम् (बभूवे) ॥ ६१ ॥

स राजा त्वया मद्वचनाद्वाच्यः अग्रे वह्नौ विशुद्धामपि मां मिथ्यापवादस्य श्रवणात्त्याक्षीरिति यत्तस्य प्रख्यातस्य कुलस्य सदृशं किं यद्वा शास्त्रस्य सदृशमिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—उन राजासे तुम मेरी ओरसे कहना नेत्रके सन्मुख अग्निमें शुद्ध हुई भी मुझको लोकापवाद श्रवण कर त्यागा, यह क्या (तुम्हारे) शास्त्राध्ययन वा विख्यात कुलके योग्य है ॥ ६१ ॥

कल्याणबुद्धेरथ वा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ॥
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥ ६२ ॥

अन्वयः । अथ वा कल्याणबुद्धेः तव मयि अयं (त्यागः) कामचारः न शंकनीयः (किं तु) ममैव जन्मान्तरपातकानाम् अप्रसह्यः विपाकविस्फूर्जथुः ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । अथ वा कल्याणबुद्धेः तव मयीमं (त्यागं) कामचारं न शंकेः (किं तु) ममैव जन्मांतरपातकानाम् अप्रसह्येन विपाकविस्फूर्जथुना (भूयते) ॥ ६२ ॥

अथ वा सुधियस्तव मयि विषयेऽयं त्यागः इच्छया करणं न शंकनीयः किन्तु ममैव जन्मान्तरपातकानामप्रसह्यः फलित एवाशनिनिर्घोष इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०–अथवा तुम अच्छी बुद्धिवालेका मेरा यह (त्याग) इच्छासे होना शंकाके योग्य नहीं है, किन्तु मेरे ही जन्मान्तरोंके पापोंका प्रबल उदय है ॥ ६२ ॥

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः ॥
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती॥६३॥

अन्वयः । पूर्वमुपस्थितां लक्ष्मीमपास्य मया सार्धं वनं प्रपन्नोसि, तत्तया अतिरोषात्त्वद्भवने आस्पदं प्राप्य वसंती (अहं) न सोढास्मि ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । पूर्वमुपस्थितां लक्ष्मीम् अपास्य मया सार्धं वनं प्रपन्नं तत्साऽतिरोषात्त्वद्भवने आस्पदं प्राप्य वसंतीं मां न सोढवती ॥ ६३ ॥

पूर्वं प्राप्तां लक्ष्मीमपास्य मया सार्धं वनं प्राप्तोसि तस्मात्तया लक्ष्म्यातिक्रोधात्त्वद्भवनं प्रतिष्ठां प्राप्य वसन्त्यहं सोढा नास्मीति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०–आगे प्राप्त हुई लक्ष्मीको त्यागकर तुम मेरे साथ वनको चलेगये सो उसीने बहुत क्रोधसे तुम्हारे घरमें प्रतिष्ठापूर्वक रहती हुई मुझको न सहा ॥ ६३ ॥

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ॥
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने॥६४॥

अन्वयः । निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् शरण्या भूत्वा (अद्य) त्वयि दीप्यमाने (सति) शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां भवतः प्रसादात् शरण्या भूत्वा (अद्य) त्वयि दीप्यमाने (सति) शरणार्थमन्यः कथं प्रपत्स्यते ॥ ६४ ॥

निशाचरैः पीडितभर्तृकाणां तासां तपस्विनीनां भवतोनुग्रहाच्छरणसमर्था भूत्वाद्य त्वयि प्रकाशमाने सत्येव शरणार्थमन्यं तपस्विनं कथं प्राप्स्यामीति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०–राक्षसोंके सताये हुए भर्तावाली तपस्विनियोंकी तुम्हारी कृपासे शरण देनेवाली होकर अब तुम्हारे रहते हुए मैं औरकी शरणमें कैसे प्राप्त हूंगी ॥ ६४ ॥

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ॥
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ ६५ ॥

अन्वयः । किं वा तवात्यंतवियोगमोघेऽस्मिन्हतजीविते उपेक्षां कुर्यां रक्षणीयमंतर्गतं त्वदीयं तेजः मे अंतरायो न स्याद्यदि ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । किं वा तवात्यंतवियोगमोघेऽस्मिन्हतजीविते उपेक्षा क्रियेत रक्षणीयेनांतर्गतेन त्वदीयेन तेजसा मे अंतरायेण न भूयेत यदि ॥ ६५ ॥

अथ वा तव पुनःप्राप्तिरहितेन वियोगेन निष्फलेऽस्मिन् तुच्छजीवित उपेक्षां कुर्यामेव, रक्षणार्हं कुक्षिस्थं त्वदीयं गर्भरूपं तेजः मम विघ्नो न स्याद्यदीति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०–अथवा तुम्हारे कठिनवियोगसे निष्फल और तुच्छ जीवनमें निःसंदेह इच्छा छोड देती, जो रक्षाके योग्य कोखमें रक्खा हुआ तुम्हारा गर्भ मुझको विघ्न न करता ॥ ६५ ॥

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ॥
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥ ६६ ॥

अन्वयः । सा अहं प्रसूतेरूर्ध्वं सूर्यनिविष्टदृष्टिः (सती तथा) तपः चरितुं यतिष्ये यथा भूयो मे जननांतरेपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । तया मया प्रसूतेरूर्ध्वं सूर्यनिविष्टदृष्टया (सत्या तथा) तपः चरितुं यतिष्यते यथा भूयो मे जननांतरेपि त्वयैव भर्त्रा (भूयेत) न च विप्रयोगेण (भूयेत) ॥ ६६ ॥

साहं प्रसूतेरनन्तरं सूर्यनिविष्टदृष्टिः सती तथाविधं तपश्चरितुं यतिष्ये यथा भूयस्तेन तपसा मे जन्मांतरेपि त्वमेव भर्ता स्याः विप्रयोगश्च न भवेदिति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०–सो मैं सन्तान होनेके उपरान्त सूर्यमें दृष्टि लगाकर तप करनेका यत्न करूंगी जिससे फिरभी जन्मान्तरमें तुही मेरे भर्ता हो और वियोग न पडे ॥ ६६ ॥

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ॥
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥ ६७ ॥

अन्वयः । वर्णाश्रमपालनं यत् सः एव नृपस्य धर्मः मनुना प्रणीतः अतः त्वयैवं निर्वासिताप्यहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । वर्णाश्रमपालनेन येन (भूयते) तमेव नृपस्य धर्मं मनुः प्रणीतवान् अतः त्वं निर्वासितामपि मां तपस्विसामान्यम् अवेक्षेथाः वाऽवेक्षिष्यसे ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणादीनां वर्णानां ब्रह्मचर्यादीनामाश्रमाणाञ्च पालनं नृपस्य धर्मो मनुप्रोक्तः अतः कारणादेव त्वया निष्कासिताप्यहं तपस्विभिः साधारणं यथा तथाऽवेक्षणीयेति सरलार्थः । (वर्णाश्रमदृष्टिर्जनकसुतायां कर्तव्येति भावार्थः) ॥ ६७ ॥

भा०–जो वर्णाश्रमकी रक्षा करना है यही राजोंका धर्म मनुजीने नियत किया है, इस कारण तुम्हारी त्याग की हुई भी मैं सामान्य तपस्वियोंकी नाईं देखनें योग्य हूं ॥ ६७ ॥

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते ॥
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः ॥६८॥

अन्वयः । तथेति तस्याः वाचं प्रतिगृह्य रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते (सति) सा व्यसनातिभारान्मुक्तकंठं विग्ना कुररीव भूयः चक्रंद ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । तथेति तस्याः वाचं प्रतिगृह्य रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते तया व्यसनातिभारान्मुक्तकण्ठं विग्नया कुर्या इव भूयः चक्रंदे ॥ ६८ ॥

तथेति सीतायाः वाचमङ्गीकृत्य लक्ष्मणे दृष्टिपथमतिक्रान्ते सति सा सीता दुःखातिरेकान्मुक्तकंठं यथा स्यात्तथा भीता कुररीव भूयः चुक्रोशेति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-'बहुत अच्छा' इस प्रकार तिस (जानकी) की वाणीको ग्रहण कर लक्ष्मणके दृष्टिपथसे बाहर होनेपर वह दुःखके महाभारसे कंठ खोलकर डरीहुई कुररीकी समान फिर विलाप करने लगी ॥ ६८ ॥

(कुररी कुंजपक्षीका नाम है)

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः ॥
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि ॥ ६९ ॥

अन्वयः । मयूराः नृत्यं, वृक्षाः कुसुमानि, हारिण्यः उपात्तान्दर्भान्विजहुः (इत्थं) तस्याः समदुःखभावं प्रपन्ने वनेपि अत्यंतं रुदितमासीत् ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । मयूरैः नृत्यं (विजहे) वृक्षैः, कुसुमानि हारिणीभिः, उपात्ताः दर्भाः विजहिरे (इत्थं) तस्याः समदुःखभावं प्रपन्ने वनेऽपि अत्यंतं रुदितेन अभूयत ॥ ६९ ॥

मयूराः नृत्यं त्यक्तवन्तः, वृक्षाः पुष्पाणि, हारिण्यः उपात्तान् कुशान्, इत्थं सीतायास्तुल्यदुःखत्वं प्राप्ते वनेऽत्यन्तं रुदितमासीदिति सरलार्थः । (रामगेहेपीत्यपिशब्दार्थस्य भावः) ॥ ६९ ॥

भा०-भौरोंने नृत्य, वृक्षोंने फूल और हरिणियोंने मुखमें लीहुई घास छोडदी, इस प्रकार उसके समान दुःखको प्राप्त होकर वनमें सभीको अधिक रोना पडा ॥ ६९ ॥

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः ॥
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥७०॥

अन्वयः । कुशेध्माहरणाय यातः कविः रुदितानुसारी (सन्) तामभ्यगच्छत, निषादविद्धांडजदर्शनोत्थः यस्य शोकः श्लोकत्वमापद्यत ॥ ७० ॥

वाच्यप० । कुशेध्माहरणाय यातेन कविना रुदितानुसारिणा (सता) साऽभ्यगम्यत, निषादविद्धांडजदर्शनोत्थेन यस्य शोकेन श्लोकत्वमापद्यत ॥ ७० ॥

कुशेध्माहरणाय यातः कविर्वाल्मीकी रुदितानुसारी संस्तां सीतामभ्यगच्छत्, व्याधेन विद्धाण्डजस्य क्रौञ्चस्य दर्शनेनोत्पन्नो यस्य शोकः श्लोकरूपेण प्रादुरासीदिति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-कुश और समिधाके लेनेको गये हुए कवि (वाल्मीकिजी) रोनेकी ओर चलते हुए उसके निकट प्राप्त हुए व्याधके वेधे हुए पक्षीके देखनेसे उठा हुआ जिनका शोक श्लोकताको प्राप्त हुआ था ॥ ७० ॥

(व्याधसे वाल्मीकिजी बोले थे वह श्लोकरूप छन्द था.)

तमश्रुनेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे ॥
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच ॥ ७१ ॥

अन्वयः । सीता विलापाद्विरता (सती) नेत्रावरणमश्रु प्रमृज्य तं ववंदे, दोहदलिंगदर्शी मुनिः तस्यै सुपुत्राशिषं दाश्वान् इति उवाच ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । सीतया विलापाद्विरतया (सत्या) नेत्रावरणमश्रु प्रमृज्य स ववंदे दोहदलिंगदर्शिना मुनिना तस्यै सुपुत्राशिषं दाशुषा इति ऊचे ॥ ७१ ॥

सीता विलापाद्विरता सती दृष्टिप्रतिबन्धकमश्रु प्रमृज्य तं मुनिं ववन्दे । गर्भचिह्नदर्शी मुनिस्तस्यै सीतायै सुपुत्राशिषं दत्त्वा वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाचेति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-सीता विलापको त्याग कर नेत्रोंके ढाकनेवाले आंसुओंको पोंछ उन्हे प्रणाम करती हुई, गर्भके लक्षण जाननेवाले मुनिने उसके निमित्त सुपुत्री हो यह आसीस देकर कहा ॥ ७१ ॥

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा ॥
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि ! पितुर्निकेतम् ७२

अन्वयः । त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा विसृष्टां प्रणिधानतः जाने, (हे) वैदेहि ! विषयांतरस्थं पितुः निकेतं प्राप्तासि तन्मा व्यथिष्ठाः ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । त्वं मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा विसृष्टा ज्ञायसे, हे वैदेहि ! विषयांतरस्थः पितुः निकेतः प्राप्तस्त्वया तन्मा व्याथि ॥ ७२ ॥

त्वां मिथ्यापवादेन क्षुभितेन भर्त्रा त्यक्तां समाधिदृष्ट्या जाने तस्मान्मा शोचीः, हे वैदेहि ! देशान्तरस्थं जनकस्यैव गृहं प्राप्तासीति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-तूं मिथ्या अपवादसे डरे हुए भर्तासे त्यागी हुई है, यह मैंने ध्यानसे जानलिया है, जानकी तूं पिताहीके दूर स्थित हुए घरमें प्राप्त हुई है इससे व्याकुल मत हो ॥ ७२ ॥

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेप्यविकत्थनेऽपि ॥
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ॥ ७३ ॥

अन्वयः । उत्खातलोकत्रयकंटकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽपि अविकत्थनेऽपि त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तौ भरताग्रजे मे मन्युरस्त्येव ॥ ७३ ॥

वाच्यपं० । + + + मन्युना भूयत एव ॥ ७३ ॥

रावणादिकण्टकोद्धरणेन सर्वलोकोपकारिण्यपि सत्यसन्धेऽनात्मश्लाघिन्यपि स्नेहपात्रेपि त्वां प्रत्यकस्माद्गर्हितव्यापारे रामे मे कोपोस्त्येवेति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०–त्रिलोकीके कंटक मिटानेवाले, सत्य प्रतिज्ञावाले, अपनी बडाई न करनेवाले होनेपरभी तेरे प्रति अकस्मात् अनर्थ करनेमें प्रवृत्त हुए रमचंद्रपर मेरा क्रोधही है ॥ ७३ ॥

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते ॥
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या ॥७४॥

अन्वयः । उरुकीर्तिः तव श्वशुरः मे सखा, पिता ते सतां भवोच्छेदकरः, त्वं पतिदेवतानां धुरि स्थिता, येन ममानुकंप्या नासि तत् किम् ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । उरुकीर्तिना तव श्वशुरेण मे सख्या (भूयते) पित्रा ते सतां भवोच्छेदकरेण (भूयते) त्वया पतिदेवतानां धुरि स्थितया (भूयते) येन ममानुकंप्यया न (भूयते) तेन केन (भूयते) ॥ ७४ ॥

विख्यातकीर्तिस्तव श्वशुरो दशरथो मे सखा, ते पिता जनको विदुषां ज्ञानोपदेशादिना संसारदुःखध्वंसकारी, त्वं पतिव्रतानामग्रे स्थिता, येन कारणेन ममानुग्राह्या नासि तत्किमिति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०–बडे कीर्तिमान् तुम्हारे श्वशुर मेरे सखा हैं, पिता तुम्हारे संतोंका जन्म मरण मेटने वाले हैं, तुम पतिव्रताओंमें अग्रणी हो फिर जिससे तुम मेरी कृपाके योग्य न हो सो क्या है ॥ ७४ ॥

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन् ॥
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते ॥ ७५ ॥

अन्वयः। तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे अस्मिन् तपोवने वीतभया वस, इतः अनघप्रसूतेः ते अपत्यसंस्कारमयः विधिः भविष्यति ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । × × वीतभययोष्यताम् + × अपत्यसंस्कारमयेन विधिना भविष्यते ॥ ७५ ॥

तपस्विसंसर्गेण शान्तजन्तुकेऽस्मिंस्तपोवने निर्भीका वस. अस्मिन् वने सुखसन्ततेस्ते जातकर्माद्यनुष्ठानं भविष्यतीति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०–तपस्वियोंकी संगतिसे सुशीलता सीखे हुए जीवोंवाले इस वनमें भयरहित हो वास कर, यहां तुझ सुखपूर्वक उत्पन्न करनेवालीकी सन्तानके संस्कार (जातकर्म आदि) होंगे ॥ ७५ ॥

अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोऽपहंत्रीं तमसां वगाह्य ॥
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥ ७६ ॥

अन्वयः। मुनिसंनिवेशैरशून्यतीरां तमोपहंत्रीं तमसां वगाह्य तत्सैकतोत्संगबालिक्रियाभिः ते मनसः प्रसादः संपत्स्यते ॥ ७६ ॥

वाच्यप०। + + + प्रसादेन + + ॥ ७६ ॥

मुनीनामुटजैः पूर्णतीरां पापस्यापहन्त्रीं तमसां नदीं वगाह्य (स्नात्वा) तत्सैकतोत्सङ्गेष्विष्टदेवतापूजाविधिभिस्ते मनसः प्रसादो भविष्यतीति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०–मुनियोंकी कुटियोंसे घिरी हुई तीरवाली, पाप दूर करनेवाली तमसामें स्नान कर उसके किनारे इष्ट देवताके पूजन करनेसे तेरे मनमें प्रसन्नता होगी ॥ ७६ ॥

पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि ॥
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम् ७७

अन्वयः। आर्तवं पुष्पं फलं च, अकृष्टरोहि बालेयं बीजं च आहरंत्यः उदारवाचः मुनिकन्यकाः नवाभिषंगां त्वां विनोदयिष्यंति ॥ ७७ ॥

वाच्यप०। + + + आहरंतीभिरुदारवाग्भिः मुनिकन्यकाभिः नवाभिषंगा त्वं विनोदयिष्यसे ॥ ७७ ॥

स्वकालप्राप्तं पुष्पं फलं चाकृष्टपच्यं पूजायोग्यं नीवारादि धान्यं चाहरन्त्यः प्रगल्भगिरो मुनिकन्यका नूतनदुःखां त्वामानन्दयिष्यन्तीति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०–ऋतुसम्बन्धी फूल और फल तथा बोये विना उपजे हुए पूजाके योग्य अन्न लाती हुई, उदार वचनवाली मुनिकी कन्यायें तुझ नवीन दुःखवालीको प्रसन्न करैंगी ॥ ७७ ॥

पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः ॥
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः। स्वबलानुरूपैः पयोघटैः आश्रमबालवृक्षान्संवर्धयंती त्वं तनयोपपत्तेः प्रागसंशयं स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि ॥ ७८ ॥

वाच्यप०। + + संवर्धयन्त्या त्वया + + + स्तनंधयप्रीतिरवाप्स्यते ॥ ७८ ॥

स्वबलानुसारिभिरम्भसां घटैराश्रमबालवृक्षान्सवर्द्धयन्ती त्वं संतानोत्पत्तेः पूर्वमसंशयं शिशुप्रीतिमवाप्स्यसीति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०–अपने बलके अनुसार जलके घडोंसे आश्रमके विरुओं (छोटेवृक्षों) को बढाती हुई तूं सन्तानउत्पत्तिसे पहलेही अवश्य दूध पीनेवाले (बालक) की प्रीतिको प्राप्त होगी ॥ ७८ ॥

अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः ॥
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय॥७९॥

अन्वयः । दयार्द्रचेताः वाल्मीकिः अनुग्रहप्रत्यभिनंदिनीं ताम् आदाय सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं शांतमृगं स्वमाश्रमं निनाय ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । दयार्द्रचेतसा वाल्मीकिनाऽनुग्रहप्रत्यभिनंदिनी सा + + + निन्ये ॥ ७९ ॥

करुणार्द्रचेता वाल्मीकिरनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां सीतामादाय सायं मृगैरधिष्ठितवेदिपार्श्वं शान्तमृगं स्वमाश्रमं निनायेति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—करुणायुक्त चित्तवाले वाल्मीकिने कृपाकी सराहना करती हुई तिसको लेकर सन्ध्या समय मृगोंके बैठनेसे घिरीहुई वेदीवाले और शान्त पशुवाले अपने आश्रममें प्राप्त किया ॥ ७९ ॥

तामर्पयामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु ॥
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु ॥ ८० ॥

अन्वयः । शोकदीनां तां तदागमप्रीतिषु तापसीषु पितृभिः निर्विष्टसारां हिमांशोरन्त्यां कलां दर्शः ओषधीषु इवार्पयामास च ॥ ८० ॥

वाच्यप० । शोकदीना सा तदागमप्रीतिषु तापसीषु पितृभिर्निर्विष्टसारा हिमांशोरन्त्या कला दर्शेन ओषधीषु इवार्पयामासे च ॥ ८० ॥

शोकदीनां तां सीतां तस्या आगमेन प्रीतासु तापसीष्वग्निष्वात्तादिभिः पितृभिर्भुक्तसारां चन्द्रस्यावशिष्टां कलामोषधीष्विवार्पयामासेति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—ऋषिने शोकसे दुःखी हुई उसको उसके आनेसे प्रसन्न हुई तपस्विनियोंमें मानों पितरोंसे सार खेंची हुई चन्द्रमाकी पिछली कलाको अमावसद्वारा औषधियोंमें सौंपा ॥ ८० ॥

ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः ॥
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः ॥ ८१ ॥

अन्वयः । ताः तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरिंगुदीस्नेहकृतप्रदीपमन्तः आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पमुटजं वितेरुः ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । ताभिः तस्यै सपर्यानुपदं दिनांते निवासहेतोः इंगुदीस्नेहकृतप्रदीपोन्तः आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पः उटजः वितेरे ॥ ८१ ॥

तास्तापस्यस्तस्यै सीतायै पूजानन्तरं सायंकाले निवासार्थम् इंगुदीस्नेहेन कृतप्रदीपामन्तरास्तीर्णशुद्धाजिनतल्पां पर्णशालां ददुरिति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—वे सब उसको पूजाके उपरान्त सन्ध्या समय रहनेके निमित्त हिंगोटके तेलसे उजाला की हुई (दीपकवालीहुई)मृगचर्मके बिछोने बिछी पर्णशाला देती हुईं॥८१॥

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः ॥
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासंततये बभार ॥ ८२ ॥

अन्वयः। तत्राभिषेकप्रयता वसंती विधिनाऽतिथिभ्यः प्रयुक्तपूजा वल्कलिनी सा पत्युः प्रजासंततये वन्येन शरीरं बभार॥ ८२॥

वाच्यप०। तत्राभिषेकप्रयतया वसंत्या विधिनाऽतिथिभ्यः प्रयुक्तपूजया वल्कलिन्या तया पत्युः प्रजासंततये शरीरं बभ्रे॥ ८२॥

तत्राश्रमे स्नानेन नियता वसन्ती शास्त्रेणातिथिभ्यः कृतसत्कारा वल्कलिनी सीता पत्युः सन्तानाविच्छेदाय हेतोः कन्दमूलादिना शरीरं पुपोषेति सरलार्थः॥ ८२॥

भा०–तहां स्नानके नियमसे रहती हुई, शास्त्र अनुसार अतिथियोंका पूजन करती छालके वस्त्र पहरे हुए वह (जानकी) पतिका वंश रखनेके निमित्त कन्दमूलसे शरीर पालनेलगी॥ ८२॥

अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता॥
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय॥ ८३॥

अन्वयः। प्रभुरधुना सानुशयः स्यादपि? इत्युत्सुकः शक्रजितो हंतापि सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय शशंस॥ ८३॥

वाच्यप०। प्रभुणाऽधुना सानुशयेन भूयेत अपि? इत्युत्सुकेन शक्रजितो हंत्रापि सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय शशंसे॥ ८३॥

राजाऽधुनापि सानुतापः स्यात्किम्? इत्युत्सुक इन्द्रजितो हन्ता लक्ष्मणोपि सीताविलापान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय शशंसेति सरलार्थः॥ ८३॥

भा०–स्वामी अबभी पछताते हैं कि नहीं, इसप्रकार उत्कंठा किये इन्द्रजीतके मारनेवाले (लक्ष्मण) ने भी सीताके विलाप पर्यंत आज्ञा पूरी करनेका वृत्तान्त बडे भ्रातासे कहा॥ ८३॥

बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः॥
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः॥ ८४॥

अन्वयः। सहसा सबाष्पः रामः तुषारवर्षी सहस्यचंद्र इव बभूव, कौलीनभीतेन तेन वैदेहसुता गृहान्निरस्ता न मनस्तः (निरस्ता)॥ ८४॥

वाच्यप०। सहसा सबाष्पेण रामेण तुषारवर्षिणा सहस्यचंद्रेणेव बभूवे, कौलीनभीतः स वैदेहसुतां गृहान्निरस्तवान् न मनस्तः॥ ८४॥

सपदि सबाष्पो रामः अत्यश्रुतया तुषारवर्षिणा पौषचन्द्रेण तुल्योऽभूत्। लोकापवादभीतेन तेन रामेण सीता गृहान्निरस्ता चित्तान्न निरस्तेति सरलार्थः॥ ८४॥

भा०–तत्काल आंसूभरे रामचन्द्र ओस वर्षानेवाले पूसके चन्द्रमाके समान हुए लोकापवादसे उन्होंने जानकीको घरसे बाहर किया था मनसे नहीं॥ ८४॥

निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः ॥
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास ॥८५॥

अन्वयः । धीमान् वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः रजोरिक्तमनाः सः स्वयमेव शोकं निगृह्य भ्रातृसाधारणभोगम् ऋद्धं राज्यं शशास ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । धीमता वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकेण रजोरिक्तमनसा तेन स्वयमेव शोकं निगृह्य भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं शशासे ॥ ८५ ॥

धीमान् वर्णाश्रमाणामनुसंधानेऽप्रमत्तः रजोगुणशून्यचेताः स रामः स्वयमेव शोकं निरुध्य भ्रातृभिः शरीरस्थितिमात्रोपयुक्तमृद्धं राज्यं शशासेति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०—बुद्धिमान्, वर्णाश्रमकी रक्षामें जागृत, रजोगुणरहित मनवाले वह (राम) स्वयंही शोकको रोककर भाइयों सहित शरीरस्थिति मात्र भोग भोगते हुये ऋद्धिमान् राज्यको पालन करते हुए ॥ ८५ ॥

तामेकभार्यां परिवादभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य॥
वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः॥ ८६ ॥

अन्वयः । परिवादभीरोरत एवैकभार्यामपि साध्वीं तां त्यक्तवतः नृपस्य वक्षसि असंघट्टसुखं वसंती लक्ष्मीः सपत्नीरहितेव रेजे ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । + + + वसंतया लक्ष्म्या सपत्नीरहितयेव रेजे ॥८६ ॥

निन्दाभीरोरत एव साध्वीमेकभार्यामपि तां सीतां त्यक्तवतो भूपस्य वक्षस्यसंमाव्यसुखं वसन्ती लक्ष्मीः सपत्नीरहितेव शुशुभ इति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—कलंकसे डरकर इकली एक पतिव्रता भार्याको भी त्यागनेवाले राजाके हृदयमें अतिसुखसे निवास करती हुई लक्ष्मी विना सौतकी समान शोभित हुई॥८६॥

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार ॥
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥ ८७ ॥

अन्वयः । दशमुखरिपुः सीतां हित्वाऽन्यां न उपयेमे इति यत्, तस्या एव प्रतिकृतिसखः क्रतूनाजहार, इति यत्, तेन श्रवणविषयप्रापिणा भर्तुः वृत्तांतेन सा दुर्वारं परित्यागदुःखं कथमपि विषेहे ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । दशमुखरिपुणा सीतां हित्वाऽन्या नोपयेमे इति यत, तस्या एव प्रतिकृतिसखेन क्रतवः आजह्रिरे इति यत, तेन श्रवणविषयप्रापिणा भर्तुः वृत्तांतेन तया दुर्वारं परित्यागदुःखं कथमपि विषेहे ॥ ८७ ॥

रावणशत्रू रामः जानकीं त्यक्त्वान्यां भार्यां न परिणीतवानिति यत्, तस्याः सीताया हिरण्मय्याः प्रतिमायाः सखा सन् यज्ञानाहृतवानिति यद्येन कर्णकुहरगामिना भर्तुर्वृत्तान्तेन हेतुना सा सीता दुस्सहं परित्यागदुःखं कथमपि विसोढवतीति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०–रावणके शत्रुने जानकीको त्यागकर दूसरा विवाह न किया और उसीकी मूर्तिको संगी बनाकर यज्ञ किये, इससे कानोंमें पहुंचे हुए पतिके इस वृत्तान्तसे वह (जानकी) महाकठिन परित्यागके दुःखको कीसी प्रकार सहती हुई ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः ।

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ॥
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥ १ ॥

अन्वयः । कृतसीतापरित्यागः सः पृथिवीपालः रत्नाकरमेखलां केवलां पृथिवीमेव बुभुजे ॥ १ ॥

वाच्यप० । कृतसीतापरित्यागेन तेन पृथिवीपालेन रत्नाकरमेखला केवला पृथिव्येव बुभुजे ॥ १ ॥

कृतसीतापरित्यागः सः पृथिवीपालो रामः सार्णवामेकां पृथिवीं भुक्तवान् न तु पार्थिवीमिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०–सीताका त्याग कर वह पृथ्वीके पालन करने वाले केवल समुद्ररूपी कोंधनीवाली पृथ्वीको ही भोगते हुए ॥ १ ॥

लवणेन विलुप्तेज्यास्तामिस्रेण तमभ्ययुः ॥
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः ॥ २ ॥

अन्वयः । लवणेन तामिस्रेण विलुप्तेज्याः शरणार्थिनः यमुनाभाजः मुनयः शरण्यं तमभ्ययुः ॥ २ ॥

वाच्यप० । लवणेन तामिस्रेण विलुप्तेज्यैः शरणार्थिभिः यमुनाभाग्भिः मुनिभिः शरण्यः सः अभ्ययायत ॥ २ ॥

लवणाख्येन निशाचरेण विलुप्तयागक्रिया रक्षणार्थिनो यमुनातीरवासिनो मुनयः रक्षणसमर्थं तं रामं प्राप्ता इति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०-लवणासुरसे यज्ञ मिटाये हुए, शरणकी इच्छा करनेवाले, यमुनातीरके मुनि उन शरण देनेवालेके निकट आये ॥ २ ॥

अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन्न प्रजह्रुः स्वतेजसा ॥
त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥ ३ ॥

अन्वयः । ते राममवेक्ष्य तस्मिन् स्वतेजसा न प्रजह्रुः, (तथा) हि त्राणाभावे शापास्त्राः सन्तः ते तपसः व्ययं कुर्वंति ॥ ३ ॥

वाच्यप० । तै राममवेक्ष्य तस्मिन्स्वतेजसा न प्रजह्रे, (तथा) हि त्राणाभावे शापास्त्रैः (सद्भिः) तैः तपसः व्ययः क्रियते ॥ ३ ॥

ते मुनयो रामं रक्षितारमवेक्ष्य तस्मिन्निशाचरे स्वतेजसा शापरूपेण न प्रजह्रुस्तथाहि रक्षकस्याभावे शापास्त्राः सन्तस्ते तपसो व्ययं कुर्वन्तीति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०-उन्होंने रामको (विद्यमान) देखकर उस राक्षसको अपने तेजसे भस्म नहीं किया, क्योंकि रक्षकके न होनेसे शापरूपी अस्त्रवाले वे तपका व्यय करते हैं ॥ ३ ॥

प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् ॥
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥ ४ ॥

अन्वयः । काकुत्स्थः तेभ्यः विघ्नप्रतिक्रियां प्रति शुश्राव, (तथाहि) भुवि शार्ङ्गिणः प्रवृत्तिः धर्मसंरक्षणार्थैव ॥ ४ ॥

वाच्यप० । काकुत्स्थेन तेभ्यः विघ्नप्रतिक्रिया प्रतिशुश्रुवे, (तथाहि) भुवि शार्ङ्गिणः प्रवृत्त्या धर्मसंरक्षणार्थयैव (भूयते) ॥ ४ ॥

रामस्तेभ्यो मुनिभ्यो लवणवधरूपां विघ्नप्रतिक्रियां प्रतिजज्ञे, तथाहि पृथिव्यां विष्णोः रामरूपेणावतरणं धर्मसंरक्षणार्थैवेति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०-रामचंद्र उनसे विघ्न दूर करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए, (कारण कि) विष्णुका अवतार धर्मकी रक्षाहीके निमित्त होता है ॥ ४ ॥

ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः ॥
दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति ॥ ५ ॥

अन्वयः । ते रामाय विबुधद्विषः वधोपायमाचख्युः लवणः शूली दुर्जयः विशूलः प्रार्थ्यतामिति ॥ ५ ॥

वाच्यप० । तैः रामाय विबुधद्विषः वधोपायः आचख्ये, लवणेन शूलिना दुर्जयेन (भूयते) विशूलं प्रार्थयस्वेति ॥ ५ ॥

ते मुनयो रामाय लवणस्य वधोपायमाचख्युः, स लवणः शूलवानक्षयः, किन्तु शूलरहितः अभिगम्यतामिति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०-वे रामचंद्रसे राक्षसके वधका उपाय कहतेहुए, लवणासुर त्रिशूलसहित तो जीतनेमें नहीं आता, विना शूलहो तब मारना ॥ ५ ॥

आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ॥
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ ६ ॥

अन्वयः । अथ तेषां क्षेमाय राघवः शत्रुघ्नम् आदिदेश अस्य नाम अरिनिग्रहाद्यथार्थं करिष्यन्निव ॥ ६ ॥

वाच्यप० । अथ तेषां क्षेमाय राघवेण शत्रुघ्नः आदिदिशे, अस्य नामारिनिग्रहाद्यथार्थं करिष्यतेव ॥ ६ ॥

अथ रामस्तेषां मुनीनां कल्याणाय शत्रुघ्नमादिदेश,अत्रोत्प्रेक्ष्यते-अस्य शत्रुघ्नस्य नाम शत्रुनिग्रहाद्यथार्थं करिष्यन्निवेति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०-तव उनकी रक्षाके लिये रामचंद्रने शत्रुघ्नको आज्ञा दी, मानों इसका नाम शत्रुके मारनेसे यथार्थ ही करतेहुए ॥ ६ ॥

यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परंतपः ॥
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्त्तयितुमीश्वरः ॥ ७ ॥

अन्वयः । हि (यस्मात्) परंतपः रघूणां यः कश्चन एकः अपवादः उत्सर्गमिव परं व्यावर्तयितुमीश्वरः ॥ ७ ॥

वाच्यप० । हि (यस्मात्) परंतपेन रघूणां येन केनचन एकेनापवादेनोत्सर्गमिव परं व्यावर्त्तयितुमीश्वरेण (भूयते) ॥ ७ ॥

यस्माच्छत्रुतापी रघूणां मध्ये कश्चनैकः विशेषशास्त्रमुत्सर्गं सामान्यशास्त्रमिव शत्रुं बाधितुं समर्थ इति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-क्यों कि शत्रुओं को तपाने वाला रघुवंशियों में कोई एक भी उत्सर्ग को अपवादके समान शत्रुको मारनेमें समर्थ है ॥ ७ ॥

(व्याकरणमें साधारण नियम का नाम उत्सर्ग और आदेशसे जव वह उत्सर्ग टूट जाता है तो वह आदेश अपवाद कहलाताहै)

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी ॥
ययौ वनस्थलीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः ॥ ८ ॥

अन्वयः । ततोऽग्रजेन प्रयुक्ताशीः रथी अभीः दाशरथिः पुष्पिताः सुरभीः वनस्थलीः पश्यन्ययौ ॥ ८ ॥

वाच्यप० । ततोऽग्रजेन प्रयुक्ताशिषा रथिना अभिया दाशरथिना पुष्पिताः सुरभीः वनस्थलीः पश्यता ययै ॥ ८ ॥

ततो रामेण कृताशीर्वादो रथी निर्भीको दाशरथिः कुसुमिता आमोदमाना वनस्थलीः पश्यन्ययाविति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-तब रामचन्द्रसे असीस दियेहुए, रथपर चढ, निडर, दशरथकुमार सुगन्धित पुष्पोंवाली वनभूमिको देखतेहुए गये ॥ ८ ॥

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये ॥
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत् ॥ ९ ॥

अन्वयः । रामादेशादनुगता सेना तस्य अध्ययनार्थस्य धातोः पश्चादधिरिवार्थसिद्धये अभवत् ॥ ९ ॥

वाच्यप० । रामादेशादनुगतया सेनया तस्याध्ययनार्थस्य धातोः पश्चादधिनेवार्थसिद्धयेऽभूयत ॥ ९ ॥

रामादेशादनुगता सेना तस्य शत्रुघ्नस्य प्रयोजनसाधनाय तथाभवत् यथाऽध्युपसर्गः स्वयमेवार्थसाधकस्य धातोः सन्निधिमात्रेणोपकरोतीति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-रामचंद्र की आज्ञासे पीछे गई सेना अध्ययन (पढने) के अर्थवाली (इङ्) धातुके पीछे अधि (उपसर्ग) की समान उनका प्रयोजन साधने वाली हुई ॥ ९ ॥ (जैसे इङ् धातुका अर्थ पढना स्वयं ही है, अधि उपसर्ग लगानेसे कोई विशेषता सिद्ध नहीं होती, परन्तु तो भी लगातेही हैं, ऐसेही शत्रुघ्नको यद्यपि सेनाकी आवश्यकता नहीं थी परन्तु उनके साथ रामने सेना भेजी)

आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छंस्तपतां वरः ॥
विरराज रथप्रष्ठैर्वालखिल्यैरिवांशुमान् ॥ १० ॥

अन्वयः । रथप्रष्ठैः मुनिभिः आदिष्टवर्त्मा गच्छन् तपतां वरः सः (रथप्रष्ठैः) वालखिल्यैः (आदिष्टवर्त्मा तपतां वरः गच्छन्) अंशुमानिव विरराज ॥ १० ॥

वाच्यप० । रथप्रष्ठैः मुनिभिरादिष्टवर्त्मना गच्छता तपतां वरेण तेन (रथप्रष्ठैः) वालखिल्यैः (आदिष्टवर्त्मना तपतां वरेण गच्छता) अंशुमतेव विरराजे ॥ १० ॥

रथाग्रगामिभिः मुनिभिः निर्दिष्टमार्गो गच्छन्देदीप्यमानानां मध्ये श्रेष्ठः स शत्रुघ्नः वालखिल्यैर्मुनिभिः सूर्य इव शुशुभ इति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०-रथके आगे जातेहुए मुनियोंसे मार्ग दिखाये हुए, गमन करते, तेजस्वियोंमें मुख्य वह (रथके आगे चलनेवाले) वालखिल्य ऋषियों द्वारा (मार्ग दिखाये हुए दीप्तिमानोंमें श्रेष्ठ जाते हुए) सूर्यके समान शोभित हुआ ॥ १० ॥

तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः ॥

रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने ॥ ११ ॥

अन्वयः । यतः तस्य मार्गवशात् रथस्वनोत्कंठमृगे वाल्मीकीये तपोवने एका वसतिर्बभूव ॥ ११ ॥

वाच्यप० । + + + एकया वसत्या बभूवे ॥ ११ ॥

गच्छतस्तस्य शत्रुघ्नस्य मार्गवशादुद्ग्रीवमृगे वाल्मीकीये तपोवन एका रात्रिर्बभूवेति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—जातेहुए तिनका मार्गवशसे रथकी ध्वनिसें ऊपर मुख किये मृगवाले वाल्मीकिके तपोवनमें एक रात ठहरना हुआ ॥ ११ ॥

तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम् ॥

तपःप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः ॥ १२ ॥

अन्वयः । क्लांतवाहनं तं कुमारम् ऋषिः तपःप्रभावसिद्धाभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः पूजयामास ॥ १२ ॥

वाच्यप० । क्लांतवाहनः सः कुमारः ऋषिणा तपःप्रभावसिद्धाभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः पूजयामासे ॥ १२ ॥

श्रान्तयुग्यं तं कुमारं शत्रुघ्नं वाल्मीकिस्तपसः प्रभावेण सिद्धाभिरुत्कृष्टसंभावनाभिः पूजयामासेति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—थके वाहनवाले कुमार का वाल्मीकि ऋषिने तपके प्रभावसे प्राप्त होनेवाली श्रेष्ठसामग्रियोंसे सत्कार किया ॥ १२ ॥

तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती ॥

सुतावसूत संपन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः ॥ १३ ॥

अन्वयः । तस्यामेव यामिन्याम् अस्य अन्तर्वत्नी प्रजावती क्षितिः संपन्नौ कोशदंडाविव सुतावसूत ॥ १३ ॥

वाच्यप० । + अंतर्वत्न्या प्रजावत्या क्षित्या संपन्नौ कोशदंडौ इव सुतौ असूयेताम् ॥ १३ ॥

तस्यामेव रात्रावस्य शत्रुघ्नस्य गार्भिणी भ्रातृजाया सीता क्षितिः समग्रौ कोशदण्डाविव पुत्रौ जनयामासेति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—उसही रात्रिमें इनकी गर्भवती भाभी पृथ्वीकी समान समग्र कोश और दंडकी नाई दो पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई ॥ १३ ॥

संतानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान् ॥

प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ ॥ १४ ॥

अन्वयः । भ्रातुः संतानश्रवणात्सौमनस्यवान्सौमित्रिः प्रातर्युक्तरथः प्रांजलिः (सन्) मुनिमामंत्र्य ययौ ॥ १४ ॥

वाच्यप० । भ्रातुः संतानश्रवणात्सौमनस्यवता सौमित्रिणा प्रातर्युक्तरथेन प्रांजलिना (सता) मुनिमामंत्र्य यये ॥ १४ ॥

रामस्य संतानश्रवणाद्धेतोः प्रीतिमाञ्छत्रुघ्नः प्रातः सज्जरथः सन् कृताञ्जलिर्मुनिमापृच्छ्य ययाविति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०-भाईकी सन्तान सुननेसे प्रसन्न हो शत्रुघ्नजीने प्रातःकाल रथमें बैठ मुनिसे आज्ञा ले गमन किया ॥ १४ ॥

स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः ॥
वनात्करमिवादाय सत्त्वराशिमुपस्थितः ॥ १५ ॥

अन्वयः । स च मधूपघ्नं प्राप, कुंभीनस्याः कुक्षिजश्च वनात्करमिव सत्त्वराशिमादायोपस्थितः ॥ ॥ १५ ॥ ॥

वाच्यप० । तेन च मधूपघ्नः प्रापे, कुंभीनस्याः कुक्षिजेन वनात्करमिव सत्त्वराशिमादायोपस्थितम् ॥ १५ ॥

सः शत्रुघ्नश्च मधूपघ्नं नाम लवणपुरं प्राप । रावणस्वसुः कुम्भीनस्याः पुत्रो लवणश्च वनाद्बलिमिव प्राणिनां राशिमादाय प्राप्त इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-वह मधूपघ्न (नाम नगर) में प्राप्त हुए और कुम्भीनसी (रावणकी बहन) का बेटा वनसे भेंटके समान पशुओंका समूह लिये उपस्थित हुआ ॥ १५ ॥

धूम्रधूम्रो वसागन्धी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः ॥
क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताग्निरिव जंगमः ॥ १६ ॥

अन्वयः । धूम्रधूम्रः वसागंधी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः क्रव्याद्गणपरीवारः (अत एव) जंगमः चिताग्निरिव (स्थितः) ॥ १६ ॥

वाच्यप० । धूम्रधूम्रेण वसागंधिना ज्वालाबभ्रुशिरोरुहेण क्रव्याद्गणपरीवारेण जंगमेन चिताग्निना इव स्थितम् ॥ १६ ॥

किंभूतो लवणः-कृष्णलोहितवर्णः हृन्मेदोगन्धी ज्वालावत्पिशङ्गशिरोरुहःनिशाचर (वा गृध्र-) गणपरीवारश्चारिष्णुश्चिताग्निरिव स्थित इति सरलार्थः ॥ ॥ १६ ॥

भा०-धूएँकी समान काला, चर्बीकी गन्धवाला, लपट समान लाल बालोंवाला, मांसाहारी पक्षियोंसे घिरा चलती हुई चिताकी अग्निके समान स्थित हुआ ॥ १६ ॥

अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुजः ॥
रुरोध संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ॥ १७ ॥

अन्वयः । लक्ष्मणानुजः अपशूलं तं (लवणम्) आसाद्य रुरोध हि (तथाहि) रंध्रप्रहारिणां जयः संमुखीनः ॥ १७ ॥

वाच्य० । लक्ष्मणानुजेनापशूलः सः (लवणः) आसाद्य रुरुधे (तथाहि) रंध्रप्रहारिणां जयेन संमुखीनेन (भूयते) ॥ १७ ॥

शत्रुघ्नः शूलरहितं तं लवणं रुरोध, तथाहि रन्ध्रप्रहरणशीलानां जयः संमुखीनो हीति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–लक्ष्मणके छोटे भ्राताने शूलरहित पाकर उसे रोका, कारण कि छिद्र देखकर प्रहार करनेवालोंके सन्मुख जय रहती है ॥ १७ ॥

नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम् ॥
दिष्ट्या त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः ॥ १८ ॥
इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया ॥
प्रांशुमुत्पाटयामास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम् ॥ १९ ॥

अन्वयः । राक्षसः ' अद्य मत्कुक्षेः भोजनं नातिपर्याप्तम् आलक्ष्य भीतेनेव धात्रा दिष्ट्या मे त्वम् उपपादितः ' इति शत्रुघ्नं संतर्ज्य तज्जिघांसया प्रांशुं द्रुमं मुस्तास्तंबमिव उत्पाटयामास ॥ १८ ॥ १९ ॥

वाच्य० । राक्षसेन ' अद्य मत्कुक्षेः भोजनं नातिपर्याप्तम् आलक्ष्य भीत इव धाता दिष्ट्या मे त्वामुपपादितवान् ' इति शत्रुघ्नं संतर्ज्य तज्जिघांसया प्रांशुः द्रुमः मुस्तास्तंब इवोत्पाटयामासे ॥ १८ ॥ १९ ॥

युग्मम् । लवणः अद्य मत्कुक्षेर्मृगादिकं भोज्यमपूर्णमालक्ष्य भीतेनेव धात्रा भाग्येन मे त्वं कल्पितोसीति शत्रुघ्नं संतर्ज्य तस्य हन्तुमिच्छयोन्नतं वृक्षं मुस्तास्तम्बमिवाक्लेशेनोत्पाटयामासेति सरलार्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥

भा०–राक्षसने " आज मेरे पेटको पूरा भोजन न देखकर डरे विधाताने प्रारब्धसे ही तुझे भेजा है " इस प्रकार शत्रुघ्नको भय दिखाकर मारनेके निमित्त ऊंचे वृक्षको मोथेके समान उखाड लिया ॥ १८ ॥ १९ ॥

सौमित्रेर्निशितैर्बाणैरन्तरा शकलीकृतः ॥
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः ॥ २० ॥

अन्वयः । नैर्ऋतेरितः शाखी अंतरा निशितैर्बाणैः शकलीकृतः (सन्) सौमित्रेः गात्रं न प्राप (किं तु) पुष्परजः (प्राप) ॥ २० ॥

वाच्य० । नैर्ऋतेरितेन शाखिनांतरा निशितैः बाणैः शकलीकृतेन (सता) सौमित्रेः गात्रं प्रापे (किन्तु) पुष्परजसा (प्रापे) ॥ २० ॥

रक्षःप्रेरितः शाखी मध्ये तीक्ष्णैर्बाणैः शकलीकृतः सन् शत्रुघ्नस्य शरीरं न प्राप, किन्तु कुसुमरजः प्रापेति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०–राक्षसका फेंका हुआ पेड बीचमें ही तीक्ष्णबाणोंसे काटाहुआ सुमित्राकुमारके शरीरको न प्राप्त हुआ, किन्तु फूलोंका रज प्राप्त हुआ (अर्थात् धूलिवत् होगया) ॥ २० ॥

विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम् ॥
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम् ॥ २१ ॥

अन्वयः । रक्षः तस्य वृक्षस्य विनाशात् महोपलं पृथक् स्थितं कृतांतस्य मुष्टिमिव तस्मै प्रजिघाय ॥ २१ ॥

वाच्यप० । रक्षसा तस्य वृक्षस्य विनाशान्महोपलः पृथक् स्थितः कृतांतस्य मुष्टिरिव तस्मै प्रजिघ्ये ॥ २१ ॥

लवणस्तस्य शत्रुघ्नस्य नाशाय महान्तं पाषाणं यमस्य मुष्टिमिव तस्मै शत्रुघ्नाय प्रहितवानिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०–राक्षसने उस वृक्षके नष्ट होनेसे महाशिलाको पृथक् रक्खी हुई यमराजकी मुट्ठीकी समान उसके ऊपर मारा ॥ २१ ॥

ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः ॥
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम् ॥ २२ ॥

अन्वयः । स शत्रुघ्नेन ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय ताडितः (सन्) सिकतात्वादपि परां परमाणुतां प्रपेदे ॥ २२ ॥

वाच्यप० । तेन शत्रुघ्नेनैन्द्रमस्त्रमुपादाय ताडितेन (सता) सिकतात्वादपि परा परमाणुता प्रपेदे ॥ २२ ॥

स महोपलः शत्रुघ्नेनैन्द्रमस्त्रमुपादायाभिहतः सन् सिकताभावादपि परां परमाणुतां प्रपेदे इति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०–वह शत्रुघ्नसे ऐन्द्रास्त्रद्वारा ताडित हुआ रेतेपनसेभी अधिक परमाणुताको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः ॥
एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः ॥ २३ ॥

अन्वयः । निशाचरः दक्षिणं दोरुद्यम्य एकताल उत्पातपवनप्रेरितः गिरिरिव तमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥

वाच्यप० । निशाचरेण दक्षिणं दोरुद्यम्यैकतालेनोत्पातपवनप्रेरितेन गिरिणेव स उपाद्रूयत ॥ २३ ॥

निशाचरः सव्येतरं बाहुमुद्यम्यैकताल उत्पातपवनेन प्रेरितो गिरिरिव तं शत्रुघ्नमभिद्रुतः इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—राक्षस दक्षिण भुजाको उठाये एकताल युक्त उत्पात पवनके प्रेरे हुए पर्वतके समान उनपर दौड़ा ॥ २३ ॥

कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन् ॥
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराऽऽश्रमवासिनाम् ॥ २४ ॥

अन्वयः । स शत्रुः कार्ष्णेन पत्रिणा भिन्नहृदयः पतन् भुवः कंपम् आनिनाय, आश्रमवासिनां (कंपं) जहार ॥ २४ ॥

वाच्यप० । तेन शत्रुणा कार्ष्णेन पत्रिणा भिन्नहृदयेन पतता भुवः कंप आनिन्ये, आश्रमवासिनां (कंपः) जह्रे ॥ २४ ॥

सः शत्रुर्लवणो वैष्णवेन शरेण विदीर्णहृदयः पतन्भुवः कम्पमानीतवानाश्रमवासिनां कम्पं जहारेति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—वह शत्रु (राक्षस) वैष्णवबाणसे विदीर्ण हृदय हो पृथ्वीको कंपित करता हुआ और आश्रमवासियोंका कंप (भय) दूर करता हुआ ॥ २४ ॥

(अर्थात् उसके मरनेसे ऋषिं भयरहित हुए.)

वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः ॥
तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ २५ ॥

अन्वयः । हतस्य विद्विषः (रक्षसः) उपरि वयसां पंक्तयः पेतुः, तत्प्रतिद्वंद्विनः मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः (पेतुः) ॥ २५ ॥

वाच्यप० । हतस्य विद्विषः (रक्षसः) उपरि वयसां पंक्तिभिः पेते, तत्प्रतिद्वंद्विनः मूर्ध्नि दिव्याभिः कुसुमवृष्टिभिः (पेते) ॥ २५ ॥

हतस्य तस्य राक्षसस्योपरि पक्षिणां पंक्तयः पेतुस्तत्प्रतिद्वंद्विनः शत्रुघ्नस्य शिरसि दिव्याः पुष्पवृष्टयः पेतुरिति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—मरेहुए राक्षसके ऊपर पक्षियोंकी पंक्ति गिरीं और उसके वैरीके शिरपर दिव्य पुष्पवर्षा हुई ॥ २५ ॥

स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः ॥
भ्रातुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रजिद्वधशोभिनः ॥ २६ ॥

अन्वयः । स वीरः लवणं हत्वा तदा आत्मानं महौजसः इन्द्रजिद्वधशोभिनः भ्रातुः सोदर्यं मेने ॥ २६ ॥

वाच्यप० । तेन वीरेण लवणं हत्वा तदा आत्मा महौजसः इन्द्रजिद्वधशोभिनः भ्रातुः सोदर्यः मेने ॥ २६ ॥

स वीरः शत्रुघ्नो लवणं हत्वा तदाऽऽत्मानं महाबलस्य मेघनादस्य वधेन शोभितो लक्ष्मणस्यैकोदरं मेन इति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—उस वीरने लवणको मार कर तब अपनेको महापराक्रमी इन्द्रजीतके वधसे शोभा पानेवाले भाई (लक्ष्मण) का सहोदर माना ॥ २६ ॥

तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः ॥
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः ॥ २७ ॥

अन्वयः । चरितार्थैस्तपस्विभिः संस्तूयमानस्य तस्य विक्रमोदग्रं व्रीडयाऽवनतं शिरः शुशुभे ॥ २७ ॥

वाच्यप० । + + + विक्रमोदग्रेण व्रीडयावनतेन शिरसा शुशुभे ॥ २७ ॥

कृतकार्यैस्तपस्विभिस्संस्तूयमानस्य तस्य शत्रुघ्नस्य विक्रमेणोन्नतं लज्जयावनत नम्रं शिरः शुशुभे इति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—कृतकृत्य हुए तपस्वियोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए उन (शत्रुघ्न) का प्रतापसे ऊंचा नम्रताके कारण नीचा हुआ शिर शोभित हुआ ॥ २७ ॥

उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः ॥
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मथुरां मधुराकृतिः ॥ २८ ॥

अन्वयः । पौरुषभूषणः अर्थेषु निर्ममः मधुराकृतिः सः कालिन्द्याः उपकूलं मथुरां (नाम) पुरीं निर्ममे ॥ २८ ॥

वाच्यप० । पौरुषभूषणेनार्थेषु निर्ममेण मधुराकृतिना तेन कालिन्द्या उपकूलं मथुरा (नाम) पुरी निर्ममे ॥ २८ ॥

पौरुषभूषणो विषयेषु निःस्पृहः सौम्यमूर्तिः स शत्रुघ्नः यमुनायाः कूले मथुरां नाम पुरीं निर्मितवानिति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—पुरुषार्थरूपी भूषणवाले, विषयोंमें इच्छा न रखनेवाले, शोभनमूर्ति उस (शत्रुघ्न) ने यमुनाके निकट मथुरा नाम पुरी बसाई ॥ २८ ॥

या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः ॥
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता ॥ २९ ॥

अन्वयः । या सौराज्यप्रकाशाभिः पौरविभूतिभिः स्वर्गाभिष्यंदवमनं कृत्वोपनिवेशितेव बभौ ॥ २९ ॥

वाच्यप० । यया सौराज्यप्रकाशाभिः पौरविभूतिभिः स्वर्गाभिष्यंदवमनं कृत्वोपनिवेशितयेव बभे ॥ २९ ॥

या पूः सौराज्यप्रकाशमानैः पौराणामैश्वर्यैः स्वर्गस्यातिरिक्तजनस्याहरणं कृत्वोपस्थापितेव बभाषेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०-जो (पुरी) श्रेष्ठ राज्यके कारण दीप्तिमान् पुरवासियोंके ऐश्वर्यसे स्वर्गमें न समानेवाले मनुष्य लाकर बसाई हुई सी शोभित हुई ॥ २९ ॥

तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम् ॥
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये ॥ ३० ॥

अन्वयः । तत्र सौधगतः (सः) चक्रवाकिनीं यमुनां हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पश्यन् पिप्रिये ॥ ३० ॥

वाच्यप० । तत्र सौधगतेन (तेन) ×× पश्यता ×× ॥ ३० ॥

तत्र मथुरायां हर्म्यारूढः सः चक्रवाकवतीं यमुनां सुवर्णरचनावतीं भूमेः वेणीमिव पश्यंप्रीत इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०-वहां महल पर बैठे हुए (वह) चकवा चकवीसे युक्त यमुनाको सुवर्णसे जडी हुई पृथ्वीकी वेणीकी नाईं देखते हुए प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥
(चकवा चकवीसे सुवर्ण और कृष्णवर्ण यमुनासे वेणीकी उपमा है)

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ॥
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि ॥ ३१ ॥

अन्वयः । दशरथस्य जनकस्य च सखा मंत्रकृत् (स वाल्मीकिः) अपि उभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि संचस्कार ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । दशरथस्य जनकस्य सख्या मंत्रकृता (तेन वाल्मीकिना) अपि उभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि संचस्क्राते ॥ ३१ ॥

दशरथस्य जनकस्य च सखा मन्त्रद्रष्टा वाल्मीकिरप्युभयोः नृपयोः स्नेहेन सीतापुत्रयोः यथाशास्त्रं जातकर्मादि कृतवानिति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०-दशरथ और जनकके मित्र मंत्रोंके देखनेवाले (वाल्मीकिने) भी दोनों (राजाओं) की प्रीतिसे जानकीके कुमारोंके विधिपूर्वक संस्कार किये ॥ ३१ ॥

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया ॥
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः ॥ ३२ ॥

अन्वयः । सः कविः कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तौ तदाख्यया नामतः कुशलवावेव चकार किल ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । तेन कविना ××× चक्राते ॥ ३२ ॥

स वाल्मीकिर्दर्भैर्गोपुच्छलोमभिरुन्मृष्टगर्भोपद्रवौ तौ मैथिलेयौ तेषां कुशानां लवानां च नाम्ना यथासंख्यं कुशलवावेव चकारेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०-प्रसिद्ध है कि उन कविने कुशाओं और गोपुच्छोंसे गर्भकी पीडा रहित हुए उन दोनोंका उन्हींके नामसे कुश और लव ही नामकरण किया ॥ ३२ ॥

साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ ॥
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः । किंचिदुत्क्रांतशैशवौ (तौ) सांगं च वेदमध्याप्य कविप्रथमपद्धतिं स्वकृतिं गापयामास ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । ++++गापयामासाते (कविना) ॥ ३३ ॥

किंचिदतिक्रान्तबाल्यौ तौ साङ्गं च वेदमध्याप्य कवीनां प्रथमपद्धतिं स्वकृतिं काव्यं रामायणाख्यं गापयामासेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०-ऋषिने कुछेक बालकपन विताये हुए उन दोनोंको सांग (अंगोंसहित) वेदको पढाकर कवियोंकी प्रथम पद्धति (बीज) अपनी कविता (रामायण) उनसे गवाई ॥ ३३ ॥

(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष यह वेदके अंग हैं)

रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः ॥
तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः सुतौ ॥ ३४ ॥

अन्वयः । (तौ) सुतौ रामस्य वृत्तं मातुरग्रतः मधुरं गायंतौ तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । (ताभ्यां) सुताभ्यां रामस्य वृत्तं मातुरग्रतः मधुरं गायद्भ्यां तद्वियोगव्यथा किंचिच्छिथिलीचक्रे ॥ ३४ ॥

तौ सुतौ रामस्य चरित्रं मातुरग्रतो मधुरं गायन्तौ रामविरहवेदनां किंचिच्छिथिलीचक्रतुरिति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-उन दोनों पुत्रोंने रामका चरित्र माताके आगे मधुरतासे गातेहुए उसके वियोगकी व्यथाको किंचित् घटाया ॥ ३४ ॥

इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः ॥
तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन्द्विसूनवः ॥ ३५ ॥

अन्वयः । रघोर्वंश्याः त्रेताग्नितेजसः इतरे त्रयोऽपि तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीषु द्विसूनवः आसन् ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । रघोर्वंश्यैः त्रेताग्नितेजोभिः इतरैः त्रिभिः तद्योगात्पतिवत्नीषु द्विसूनुभिः अभूयत ॥ ३५ ॥

रघुकुलोत्पन्नास्त्रेताग्नितेजस इतरे रामादन्ये त्रयो भरतादयोपि तेषां योगाद्धर्तृमतीषु पत्नीषु द्विसूनव आसन्निति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—तीन अग्नियोंके तेजके समान उन तीनो (भाइयोंने) भी अपने संयोगसे अपनी सौभाग्यवती स्त्रियोंमें दो दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३५ ॥

शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते ॥
मथुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः ॥ ३६ ॥

अन्वयः । पूर्वजोत्सुकः शत्रुघ्नः बहुश्रुते शत्रुघातिनि सुबाहौ च सून्वोः मथुराविदिशे निदधे ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । पूर्वजोत्सुकेन शत्रुघ्नेन बहुश्रुते शत्रुघातिनि सुबाहौ च सून्वोः मथुराविदिशे निदधाते ॥ ३६ ॥

ज्येष्ठप्रियः शत्रुघ्नः बहुश्रुते शत्रुघातिनि सुबाहौ च तन्नामकयोः पुत्रयोः मथुरां च विदिशां च नगर्यौ निधाय गत इति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—भाईमें उत्कंठावाले शत्रुघ्नने बहुत शास्त्र पढे शत्रुघाती और सुबाहु दोनों पुत्रोंको मथुरा और विदिशा नगरी सोंपदी ॥ ३६ ॥

भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात् ॥
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः । सः मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पंदमृगं वाल्मीकेराश्रमं भूयो तपोव्ययः मा भूत् इति अत्यगात् ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । तेन मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पंदमृगः वाल्मीकेराश्रमो भूयः तपोव्ययेन मा भावि इति अत्यगायि ॥ ३७ ॥

स रिपुघ्नः कुशलवयोरुद्गीतेन गीतप्रियतया निश्चलहरिणं वाल्मीकेस्तपोवनं पुनरपि संविधानकरणार्थं तपोहानिर्मा भूदित्यतिक्रम्य गत इति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—वह (शत्रुघ्न) जानकीके पुत्रोंके गीत श्रवणमें ध्यान लगाये मृगोंवाले वाल्मीकिके आश्रमको फिर (ऋषिके) तपमें हानि न हो इस कारण त्याग गये ॥ ३७ ॥

वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम् ॥
लवणस्य वधात्पौरैरीक्षितोऽत्यन्तगौरवम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः । वशी (सः) लवणस्य वधात्पौरैरत्यंतगौरवमीक्षितः (सन्) रथ्यासंस्कारशोभिनीमयोध्यां विवेश च ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । वशिना तेन लवणस्य वधात्पौरैरत्यंतगौरवमीक्षितेन (सता) रथ्यासंस्कारशोभिनी अयोध्या विविशे च ॥ ३८ ॥

वशी स लवणस्य वधाद्धेतोः नगरवासिभिरत्यन्तगौरवेण निरीक्षितः सन् तोरणादिभिः शोभिनीं तामयोध्यां विवेशेति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-उस वली ने लवणके मारनेसे पुरवासियोंसे अत्यन्त आदरपूर्वक देखे जाकर मार्गकी सजावटसे शोभायमान अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥

स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम् ॥
रामं सीतापरित्यागादसामान्यपतिं भुवः ॥ ३९ ॥

अन्वयः । सः सभामध्ये सभासद्भिः उपस्थितं सीतापरित्यागाद्भुवोऽसामान्यपतिं रामं ददर्श ३९॥

वाच्यप० । तेन सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितः सीतापरित्यागाद्भुवोऽसामान्यपती रामः ददृशे ॥ ३९ ॥

सः शत्रुघ्नः सभामध्ये सभ्यैः सेवितं मैथिलीपरित्यागात्पृथिव्या असाधारणपतिं रामं ददर्शेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-शत्रुघ्नने सभाके बीचमें सभासदों सहित सीताके त्यागनेसे पृथ्वीके असामान्य पति रामको देखा ॥ ३९ ॥

तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः ॥
कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम् ॥ ४० ॥

अन्वयः । अग्रजः लवणांतकं प्रणतं तं कालनेमिवधात्प्रीतः तुराषाट् शार्ङ्गिणमिवाभ्यनन्दत् ॥ ४० ॥

वाच्यप० । अग्रजेन लवणांतकः सः कालनेमिवधात्प्रीतेन तुरासाहा शार्ङ्गीवाभ्यनंद्यत ॥ ४० ॥

रामः लवणस्य हन्तारं प्रणतं तं शत्रुघ्नं कालनेमिवधात्प्रीत इन्द्रः उपेन्द्रमिवाभ्यनन्ददिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-रामचंद्रने लवणके मारनेवाले, प्रणाम करते हुए उनको कालनेमिके वधसे प्रसन्न हुए इन्द्रने विष्णुके समान सराहा ॥ ४० ॥
(अर्थात् जैसे इन्द्रने विष्णुकी बडाई की थी)

स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न संततिम् ॥
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात् ॥ ४१ ॥

अन्वयः । स पृष्टः (सन्) सर्वतो वार्त्तम् राज्ञे आख्यत् संततिं न (आख्यत् । कुतः) काले प्रत्यर्पयिष्यतः आद्यस्य कवेः शासनात् ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । तेन पृष्टेन (सता) राज्ञे सर्वतो वार्तम् आख्यायि, संततिर्न (आख्यायि । कुतः?) काले प्रत्यर्पयिष्यतः आद्यस्य कवेः शासनात् ॥ ४१ ॥

स शत्रुघ्नः पृष्टः सन् सर्वतो कुशलं रामायाख्यातवान्, समये प्रत्यर्पयिष्यतः वाल्मीकेः शासनात्कुशलवोत्पत्तिं नाख्यदिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—इसने पूछनेपर सम्पूर्ण कुशल रामचंद्रसे कही परन्तु किसी समय स्वयम् अर्पण करनेकी इच्छावाले आदिकविके निषेध करनेसे सन्तानकी वार्ता न कही ॥ ४१ ॥

अथ जानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम् ॥
अवतार्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । अथ जानपदः विप्रः अप्राप्तयौवनं शिशुं भूपतेः द्वारि अंकशय्यास्थमवतार्य चक्रन्द ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । अथ जानपदेन विप्रेण × × चक्रंदे ॥ ४२ ॥

अथ कश्चिज्जानपदो विप्रः अप्राप्तयौवनं मृतं बालकं रामस्य द्वार्यङ्कस्थत्वेनैवावरोप्य चुक्रोशेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—अनन्तर कोई, देशका ब्राह्मण यौवनअवस्थाको न प्राप्त हुए बालकको —जाके द्वारे गोदीसे उतारकर चिल्लाने लगा ॥ ४२ ॥

शोचनीयासि वसुधे ! या त्वं दशरथाच्युता ॥
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता ॥ ४३ ॥

अन्वयः । (हे) वसुधे ! दशरथाच्युता या त्वं रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात् कष्टतरं गता (सती) शोचनीयासि ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । (हे) वसुधे ! दशरथाच्युतया यया त्वया रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गतया (सत्या) शोचनीयया भूयते ॥ ४३ ॥

हे भूमे ! दशरथाच्युता या त्वं रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता सती शोचनीयासीति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०—हे पृथ्वी दशरथके हाथसे च्युत हो रामके हाथमें प्राप्त होकर तूं अधिकसे अधिक कष्टको प्राप्त हो शोच करनेके योग्य हुई ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः ॥
न ह्यकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत् ॥ ४४ ॥

अन्वयः । गोप्ता राघवः तस्य शुचो हेतुं श्रुत्वा जिह्राय, हि (यस्मात्) अकालभवः मृत्युः इक्ष्वाकुपदं न अस्पृशत् ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । गोप्त्रा राघवेण तस्य शुचो हेतुं श्रुत्वा जिह्रिये, हि (यस्मात्) अकालभवेन मृत्युना इक्ष्वाकुपदं नास्पृश्यत ॥ ४४ ॥

रक्षको राघवस्तस्य पुत्रमरणरूपं शोकस्य कारणं श्रुत्वा लज्जितः, यस्मादकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकूणां राज्यं नास्पृशदिति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०–रक्षाकरनेवाले रामचंद्रने उसके शोकका कारण सुनकर लज्जा मानी, कारण कि अकालमृत्युने इक्ष्वाकुवंशियोंके राज्यको नहीं छुआ था ॥ ४४ ॥

(ब्राह्मणका पुत्र मृतक होगया था.)

स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम् ॥
यानं सस्मार कौबेरं वैवस्वतजिगीषया ॥ ४५ ॥

अन्वयः । सः दुःखितं द्विजम् मुहूर्तं क्षमस्व इत्याश्वास्य वैवस्वतजिगीषया कौबेरं यानं सस्मार ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । तेन दुःखितं द्विजं मुहूर्तं क्षम्यताम् इति आश्वास्य वैवस्वतजिगीषया कौबेरं यानं सस्मरे ॥ ४५ ॥

स रामः शोकाकुलं विप्रं मुहूर्तं क्षमस्वेत्याश्वास्यान्तकमपि जेतुमिच्छया पुष्पकं सस्मारेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०–उस रामचन्द्रने दुःखी ब्राह्मणसे "एक मुहूर्ततक क्षमा करो" ऐसा समझाकर यमराजके जीतनेकी इच्छासे कुबेरके (पुष्पक) विमानको स्मरण किया ॥ ४५ ॥

आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः स रघूद्वहः ॥
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती ॥ ४६ ॥

अन्वयः । सः रघूद्वहः आत्तशस्त्रः (सन्) तत् अध्यास्य प्रस्थितः तस्य, पुरः गूढरूपा सरस्वती उच्चचार ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । तेन रघूद्वहेन आत्तशस्त्रेण) सता) तदध्यास्य प्रस्थितम् , तस्य पुरः गूढरूपया सरस्वत्या उच्चेरे ॥ ४६ ॥

स राम आत्तशस्त्रः सन् पुष्पकमध्यास्य प्रस्थितः, अथ तस्याग्रे गूढरूपाऽशरीरा वागुच्चचारेति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०–वह रघुवंशियोंके स्वामी शस्त्र बांधकर उसमें चढकर चले (तब) तिनके आगे गुप्तरूप सरस्वतीने कहा ॥ ४६ ॥

(आकाशवाणी)

राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ॥
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती ॥ ४७ ॥

अन्वयः । हे राजन् ! ते प्रजासु कश्चित् अपचारः प्रवर्तते तम् अन्विष्य प्रशमयेः ततः कृती भवितासि ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । हे राजन् ! ते प्रजासु केनचित् अपचारेण प्रवृत्यते, सः अन्विष्य प्रशम्येत ततः कृतिना भविता (त्वया) ॥ ४७ ॥

हे राजन् ! ते प्रजासु कश्चिद्वर्णधर्मव्यतिरेकः प्रवर्तते, तमपचारमन्विष्य प्रशमयेः ततः कृतकृत्यो भविष्यसीति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–हे राजन् ! तुम्हारी प्रजामें कुछ दुराचार हो रहा है, उसको ढूंढकर मिटा देनेसे कृतकृत्य होगे ॥ ४७ ॥

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम् ॥
दिशः पपात पत्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना ॥ ४८ ॥

अन्वयः । इति आप्तवचाद्रामः वर्णविक्रियां विनेष्यन् वेगनिष्कंपकेतुना पत्रेण दिशः पपात ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । इति आप्तवचनात् रामेण वर्णविक्रियां विनेष्यता वेगनिष्कंपकेतुना पत्रेण दिशः पेतिरे (अथ वा दिशः उद्दिश्य पेते) ॥ ४८ ॥

राम इत्याप्तवचनाद्वर्णापचारमपनेष्यन्वेगेन निष्कम्पकेतुना पुष्पकेण दिशः धावति स्मेति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–इस प्रकार आप्तवचनसे वर्णविकारको ढूंढते हुए रामचंद्र वेगसे कंपरहित ध्वजावाले वाहन पर चढ दिशाओंको गये ॥ ४८ ॥

अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम् ॥
ददर्श कंचिदैक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः । अथ ऐक्ष्वाकः धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलंबिनम् अधोमुखं तपस्यंतं कंचित् (पुरुषं) ददर्श ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । अथ ऐक्ष्वाकेण धूमाभिताम्राक्षः वृक्षशाखावलंबी अधोमुखः तपस्यन् कश्चित् (पुरुषः) ददृशे ॥ ४९ ॥

अथेक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः स रामः पीयमानेन धूमेनाभिताम्राक्षं तरुशाखावलम्बिनमधोमुखं तपश्चरन्तं कंचित्पुरुषं ददर्शेति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०–तब रामचंद्रने धुएँसे लाल नेत्र किये, वृक्षकी शाखामें लटकते, नीचेको मुख किये, तपस्या करते किसी पुरुषको देखा ॥ ४९ ॥

पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाऽऽचष्ट धूमपः ॥
आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । राज्ञा पृष्टनामान्वयः धूमपः सः (पुरुषः) आत्मानं सुरपदार्थिनं शंबुकं नाम शूद्रम् आचष्ट किल ॥ ५० ॥

अन्वयः । राज्ञा पृष्टनामामान्वयेन धूमपेन तेन (पुरुषेण) आत्मा सुरपदार्थी शंबुको नाम शूद्रः आख्यायत (वा आकथायत) ॥ ५० ॥

रामेण पृष्टनामकुलः स धूमपः आत्मानं स्वर्गार्थिनं शम्बुकं नाम शूद्रं कथयामासेति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—राजाके नाम और वंश पूछने पर धूआं पीनेवाले इस पुरुषने अपनेको स्वर्गकी इच्छावाला शम्बुकनामक शूद्र बताया ॥ ५० ॥

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम् ॥
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे ॥ ५१ ॥

अन्वयः । तपसि अनधिकारित्वात् प्रजानाम् अघावहं तं शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियंता (स रामः) शस्त्रम् आददे ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । + + नियंत्रा (तेन रामेण) ॥ ५१ ॥

तपस्यनाधिकारित्वात्प्रजानां दुःखावहं तं शूद्रं शीर्षच्छेद्यं निश्चित्य रक्षको रामः शस्त्रं जग्राहेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—तपमें अधिकार न होनेसे प्रजामें पाप पहुचानेवाले इस (शूद्र) को शिर काटने योग्य विचार कर शिक्षक (राम) ने खड्ग ग्रहण किया ॥ ५१ ॥

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिञ्जल्कमिव पङ्कजम् ॥
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत् ॥ ५२ ॥

अन्वयः । सः ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिंजल्कं पंकजमिव कंठनालादपातयत् ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । तेन + + + + अपात्यत ॥ ५२ ॥

स रामः स्फुलिङ्गैर्दग्धश्मश्रु तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टपंकजमिव कण्ठनालादपातयदिति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—इन्होंने अग्निकी चिनगारियोंसे झुलसी हुई डाढीवाले उसके मुखको बर्फसे मारे केसरयुक्त कमलकी नाई कंठरूपी नालसे गिरादिया ॥ ५२ ॥

कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम् ॥
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलङ्घिना ॥ ५३ ॥

अन्वयः । शूद्रः राज्ञा स्वयं कृतदंडः (सन्) सतां गतिं लेभे, दुश्चरेणापि स्वमार्गविलंघिना तपसा न (सतां गतिं लेभे) ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । शूद्रेण राज्ञा स्वयं कृतदंडेन सतां गतिर्लेभे + + + ॥ ५३ ॥

शंबुकः राज्ञा स्वयं कृतशिक्षः सन् सतां गतिं लेभे, या गतिः स्वमार्गविलङ्घिना दुश्चरेणापि तपसा न लेभ इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—शूद्र निज राजासे दंडित होकर सत्पुरुषोंकी गतिको प्राप्त हुआ, न कि अपने धर्मके उलंघन करनेवाले कठिन तपसे ॥ ५३ ॥

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना ॥
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना ॥ ५४ ॥

अन्वयः । रघुनाथोऽपि मार्गसंदर्शितात्मना महौजसा अगस्त्येन (मार्गसंदर्शितात्मना महौजसा) इंदुना शरत्कालः इव संयुयुजे ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । रघुनाथेनापि मार्गसंदर्शितात्मना महौजसा अगस्त्येन (मार्गसंदर्शितात्मना महौजसा) इन्दुना शरत्कालेनेव संयुयुजे ॥ ५४ ॥

रामोपि मार्गसंदर्शितात्मना महौजसा कुम्भजेन शशिना शरत्काल इव संगत इति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—रामचंद्र भी मार्गमें आप दर्शन देनेवाले महापराक्रमी अगस्त्यसे चंद्रमा शरत्कालके समान मिले ॥ ५४ ॥

कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम् ॥
ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः । कुंभयोनिः पीतेन समुद्रेण आत्मनिष्क्रियमिव दत्तं दिव्यपरिग्रहम् अलंकारं तस्मै ददौ ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । कुंभयोनिना पीतेन समुद्रेण आत्मनिष्क्रय इव दत्तः दिव्यपरिग्रहः अलंकारः तस्मै ददे ॥ ५५ ॥

अगस्त्यः पीतेन सागरेणात्ममोचनमूल्यमिव दत्तं दिव्यालंकारं तस्मै रामाय ददाविति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—अगस्त्यजीने पीये हुए समुद्रसे अपने मोलके समान दिया हुआ देवताओंके ग्रहण योग्य अलंकार (भूषण) रामचंद्रके निमित्त दिया ॥ ५५ ॥

(जब अगस्त्यजी सागरको पी गये थे तब उसने पेटसे निकलनेपर बदलेमें यह गहना दिया था.)

तं दधन्मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना ॥
पश्चान्निववृते रामः प्राक्परासुर्द्विजात्मजः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । मैथिलीकंठनिर्व्यापारेण बाहुना तम् (अलंकारं) दधत् रामः पश्चान्निववृते, प्राक्परासुः द्विजात्मजः (निववृते) ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । + + दधता रामेण × × गतासुना द्विजात्मजेन × × ॥ ५६ ॥

सीताकण्ठव्यापारवियुक्तेन बाहुना तमलंकारं दधद्रामः + निवृत्तः, मृतो द्विजपुत्रः रामात्पूर्वं निववृत इति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०-सीताके कंठके व्यापाररहित भुजामें उस अलंकारको धारण कर रामचंद्र पीछे लौटे और ब्राह्मणका मरा हुआ बालक पहले लौटा ॥ ५६ ॥

(अर्थात् वह प्रथम ही जीवित होगया)

तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः ॥
स्तुत्या निवर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि ॥ ५७ ॥

अन्वयः । पुत्रसमागतः द्विजः वैवस्वतादपि त्रातुः तस्य पूर्वोदितां निन्दां स्तुत्या निवर्तयामास ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । पुत्रसमागतेन द्विजेन वैवस्वतादपि त्रातुः तस्य पूर्वोदिता निंदा स्तुत्या निवर्तयामासे ॥ ५७ ॥

सुतेन संगतो विप्रो यमादपि रक्षकस्य तस्य रामस्य पूर्वोक्तां निन्दां स्तुत्या निर्वापयामासेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०-पुत्र प्राप्त हुए ब्राह्मणने यमराजसे भी रक्षा करनेवालेकी पूर्व कही निन्दाको स्तुतिसे निवारण किया ॥ ५७ ॥

तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः ॥
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः ॥ ५८ ॥

अन्वयः । अध्वराय मुक्ताश्वं तं (रामं) रक्षःकपिनरेश्वरा मेघाः अंभोभिः सस्यमिव उपायनैः अभ्यवर्षन् ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । अध्वराय मुक्ताश्वः सः (रामः) रक्षःकपिनरेश्वरैः मेघैरम्भोभिः सस्यमिव उपायनैरभ्यवृष्यत ॥ ५८ ॥

अथाश्वमेधाय मुक्ताश्वं तं रामं सुग्रीवविभीषणादयो राजनश्च मेघाः जलैः सस्यमिवोपायनैरभ्यवर्षन्निति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०-यज्ञके निमित्त घोडा त्यागे हुए उन रामचंद्रको राक्षस वानर और मनुष्योंके राजा जिस प्रकार मेघ जलोंसे नाजपर बरसे (इस प्रकार) भेटोंसे वरसा करते हुए ॥ ५८ ॥

दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः ॥
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि ॥ ५९ ॥

अन्वयः । निमंत्रिताः महर्षयश्च भौमानि धिष्ण्यानि एव न (किं तु) ज्योतिर्मयानि (धिष्ण्यानि) अपि हित्वा दिग्भ्यः एनम् अभिजग्मुः ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । निमंत्रितैः महर्षिभिश्च भौमानि धिष्ण्यानि एव न (किं तु) ज्योतिर्मयानि (धिष्ण्यानि) अपि हित्वा दिग्भ्यः एषः अभिजग्मे ॥ ५९ ॥

आहूताः महर्षयश्च भूम्याः सम्बन्धीनि स्थानान्येव न किन्तु नक्षत्ररूपाण्यपि स्थानानि हित्वा दिग्भ्य एनं राममभिजग्मुरिति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०-निमंत्रितहुए महर्षि पृथ्वीके स्थानोंहीको नहीं किन्तु ज्योतिर्मय (नक्षत्ररूपी) स्थानोंको भी त्यागकर (सब) दिशाओंसे उनके पास आये ॥ ५९ ॥

उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ ॥
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः ॥ ६० ॥

अन्वयः । चतुर्द्वारमुखी अयोध्या उपशल्यनिविष्टैस्तैः सद्यः सृष्टलोका पैतामही तनुरिव बभौ ॥ ६० ॥

वाच्यप० । चतुर्द्वारमुख्याऽयोध्ययोपशल्यनिविष्टैः तैः सद्यः सृष्टलोकया पैतामह्या तन्वा इव बभे ॥ ६० ॥

चतुर्द्वारमुख्ययोध्या ग्रामान्तेषु निविष्टैर्महर्षिभिः सद्यः सृष्टलोका पैतामही मूर्तिरिव बभाविति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०-चार द्वाररूपी मुखवाली अयोध्या उपशल्य (नगरके आसपासकी भूमि) में बैठे हुए उन (महर्षियों) से तत्काल लोक रचनेवाले ब्रह्माकी मूर्तिकी समान शोभित हुई ॥ ६० ॥

श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः ॥
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जाया हिरण्मयी ॥ ६१ ॥

अन्वयः । वैदेह्याः त्यागोऽपि श्लाघ्यः, यस्मात् प्राग्वंशवासिनः अनन्यजानेः पत्युः हिरण्मयी सैव जाया आसीत् ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । वैदेह्यास्त्यागेनापि श्लाघ्येन (भूयते), यस्मात् प्राग्वंशवासिनोऽनन्यजानेः पत्युः हिरण्मय्या तयैव जायया अभूत ॥ ६१ ॥

वैदेह्यास्त्यागोपि श्लाघ्यः, यस्माद्यज्ञशालावासिनः पत्यू रामस्य सौवर्णी सीतैव पत्न्यासीदिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०-जानकीका त्याग भी श्लाघनीय हुआ, जिस कारण कि यज्ञशालामें वास करनेवाले, दूसरी स्त्री न रखनेवाले पतिकी सुवर्णकी वही (सीता) स्त्री हुई ॥ ६१ ॥

विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः ॥
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः ॥ ६२ ॥

अन्वयः । ततः विधेः अधिकसंभारः मखः प्रववृते, यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः आसन् ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । ततः विधेरधिकसंभारेण मखेन प्रववृते, यत्र क्रियाविघ्नैः राक्षसैरेव रक्षिभिरभूयत ॥ ६२ ॥

ततः शास्त्रादतिरिच्यमानपरिकरो यज्ञः प्रवृत्तः यस्मिन्यज्ञे, अनुष्ठानविघातका राक्षसा एव रक्षका आसन्निति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०-तब विधानसे भी अधिक सामग्रीवाला यज्ञ प्रारंभ हुआ, जिसमें क्रियाके विघ्न करनेवाले राक्षस ही रक्षा करनेवाले थे ॥ ६२ ॥

अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः ॥
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ ॥ ६३ ॥

अन्वयः । अथ मैथिलेयौ कुशलवौ गुरुचोदितौ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः जगतुः ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । अथ मैथिलेयाभ्यां कुशलवाभ्यां गुरुचोदिताभ्यां (सद्भ्यां) प्राचेतसोपज्ञं रामायणम् इतस्ततः जगे ॥ ६३ ॥

अथ वाल्मीकिना प्रेरितौ सीतापुत्रौ कुशलवौ प्राचेतसेनादौ ज्ञातं रामायणम् इतस्ततो जगतुरिति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-इसके उपरान्त जानकीके कुमार कुश और लव गुरुकी प्रेरणासे वाल्मीकिकी बनाई हुई रामायण जहां तहां गाने लगे ॥ ६३ ॥

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ ॥
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः । रामस्य वृत्तं वाल्मीकेः कृतिः तौ किन्नरस्वनौ (अत एव) तत्किं येन तौ शृण्वतां मनः हर्तुं नालं स्याताम् ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । रामस्य वृत्तेन वाल्मीकेः कृत्या ताभ्यां किन्नरस्वनाभ्यां (भूयते) तेन केन (भूयते) येन ताभ्यां शृण्वतां मनः हर्तुम् अलं न भूयेत ॥ ६४ ॥

रामस्य चरितं वस्तु वाल्मीकेः गेयं काव्यं किन्नरकण्ठौ तौ कुशलवौ पुनर्गायकौ अत एव तत्किं येन निमित्तेन तौ शृण्वतां मनो हर्तुं शक्तौ न स्यातामिति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०-रामचन्द्रका चरित्र, वाल्मीकिकी कविता, किन्नरोंकेसे कंठवाले वे दोनों, फिर क्या था जिससे वे दोनों सुननेवालोंके मन हरण करनेको समर्थ न होते ॥ ६४ ॥

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम् ॥
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली ॥ ६५ ॥

अन्वयः । तज्ज्ञैः निवेदितं तयोः रूपे गीते च माधुर्यं सानुजो रामः कुतूहली (सन्) ददर्श शुश्राव च ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । + + + सानुजेन रामेण कुतूहलिना (सता) ददृशे शुश्रुवे च ॥ ६५ ॥

अभिज्ञैर्निवेदितं तयोः कुशलवयोराकारे गीते च रामणीयकं सानुजो रामः सानन्दः सन् यथासंख्यं ददर्श शुश्राव चेति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—जाननेवालोंसे निवेदन की हुई उनकी गीत और रूपकी मधुरता रामने प्रसन्न होकर देखी और सुनी भी ॥ ६५ ॥

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ॥
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ॥ ६६ ॥

अन्वयः । तद्गीतश्रवणैकाग्रा अश्रुमुखी संसद् प्रातः हिमनिष्यंदिनी निर्वाता वनस्थलीव बभौ ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । तद्गीतश्रवणैकाग्रया अश्रुमुख्या संसदा प्रातः हिमनिष्यंदिन्या निर्वातया वनस्थल्येव बभे ॥ ६६ ॥

तयोर्गीतश्रवणानंदादश्रुमुखी सभा प्रातर्हिमस्य निष्यन्दिनी वातरहिता वनस्थलीव शुशुभ इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०—उनके गान सुननेसे एकाग्रचित्त हो, आंसू गिराती हुई सभा ओसें टपकनेवाली पवनरहित प्रातःकालकी वनस्थलीकी नाई शोभित हुई ॥ ६६ ॥

वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ॥
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत ॥ ६७ ॥

अन्वय० । जनता वयोवेषविसंवादि तदा तयोः रामस्य च सादृश्यं प्रेक्ष्य नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । जनतया + + + व्यष्ठियत ॥ ६७ ॥

जनसमूहः वयोवेषाभ्यामेव विलक्षणं तयोः कुशलवयो रामस्य सादृश्यं प्रेक्ष्य नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठतेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०—सब मनुष्य, अवस्था और भेषके विना उस समय उनकी और रामकी एकता (सादृश्यता) देखकर आंख खोले (विस्मयसे) रहगये (अर्थात् आंखोंके पलक न लगे) ॥ ६७ ॥

उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये ॥
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा ॥ ६८ ॥

अन्वयः । लोकः उभयोः प्रावीण्ये तथा न विसिष्मिये, यथा नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया विसिष्मिये) ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । लोकेनोभयोः प्रावीण्येन तथा न विसिष्मिये ××× ॥ ६८ ॥

जनः उभयोः कुमारयोर्नैपुण्येन तथा न विसिष्मिये, यथा रामस्य प्रीतिदानेषु नैस्पृह्ये विसिष्मिय इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-लोग दोनोंकी चतुराईसे ऐसे मोहित नहीं हुए जैसे राजाके प्रसन्नतासे दिये दानमें उनकी इच्छा न देखकर विस्मित हुए ॥ ६८ ॥

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः ॥
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः । गेये को नु वां विनेता ? इयं च कस्य कवेः कृतिः इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम् ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । गेये केन नु वां विनेत्रा (भूयते स्म) अनया च कस्य कवेः कृत्या (भूयते स्म) इति राज्ञा स्वयं पृष्टाभ्यां ताभ्यां वाल्मीकिरशस्यत ॥ ६९ ॥

गीते को युवयोः शिक्षकः इयं च कस्य कवेः कृतिरिति रामेण स्वयं पृष्टौ तौ कुशलवौ विनेतारं कविं वाल्मीकिमुक्तवन्ताविति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-गानेमें कौन तुम्हारा शिक्षक है और यह किस कविकी रचना है, इस प्रकार राजासे स्वयं पूछनेपर उन्होंने वाल्मीकिको बताया ॥ ६९ ॥

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान् ॥
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत् ॥ ७० ॥

अन्वयः । अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान् (सन्) देहमात्मनः ऊरीकृत्य राज्यमस्मै न्यवेदयत ॥ ७० ॥

वाच्यप० । अथ सावरजेन रामेण प्राचेतसमुपेयुषा (सता) देहमात्मन ऊरीकृत्य राज्यमस्मै न्यवेद्यत ॥ ७० ॥

अथ सानुजो रामः वाल्मीकिं प्राप्तः सन्नात्मानं स्थापयित्वा राज्यमस्मै प्राचेतसाय समर्पितवानिति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-तब भाइयोंसहित रामने वाल्मीकिके निकट जाकर अपने देहको छोडकर राज्य इन (वाल्मीकि) को अर्पण किया ॥ ७० ॥

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ ॥
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः संपरिग्रहम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः । कारुणिकः सः रामाय तौ मैथिलेयौ तदात्मजौ आख्याय सीतायाः संपरिग्रहं वव्रे ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । कारुणिकेन तेन + + संपरिग्रहः वव्रे ॥ ७१ ॥

दयालुः स कवी रामाय तौ मैथिलेयौ तत्पुत्रावाख्याय सीतायाः स्वीकारं ययाच इति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-दया युक्त उस (ऋषि) ने रामचंद्रसे उन दोनों सीताके पुत्रोंको उन्हींका बताकर सीताके स्वीकार करनेके निमित्त कहा ॥ ७१ ॥

तात ! शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि ॥
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । हे तात ! ते स्नुषा नः समक्षं जातवेदसि शुद्धा तु (किं तु) रक्षसो दौरात्म्यात् अत्रत्याः प्रजाः तां न श्रद्दधुः ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । हे तात ! ते स्नुषया नः समक्षं जातवेदसि शुद्धया (बभूवे) तु (किं तु) रक्षसो दौरात्म्यादत्रत्याभिः प्रजाभिः सा न श्रद्दधे ॥ ७२ ॥

हे तात ! ते स्नुषा जानकी वह्नावस्माकमक्ष्णोः समक्षं शुद्धा किन्तु दशाननस्य दौरात्म्यादत्रत्याः प्रजास्तां न विशश्वसुरिति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-हे तात ! तुम्हारी वधू हमारे सामने अग्निमें पवित्र हो चुकी है, किन्तु राक्षसकी क्रूरताके कारण यहांकी प्रजाने उसमें श्रद्धा न की ॥ ७२ ॥

ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली ॥
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ॥ ७३ ॥

अन्वयः । मैथिली स्वचारित्रमुद्दिश्य ताः प्रत्याययतु, ततः पुत्रवतीमेनां त्वदाज्ञया प्रतिपत्स्ये ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । मैथिल्या स्वचारित्रमुद्दिश्य ताः प्रत्याय्यंताम्, ततः पुत्रवती एषा त्वदाज्ञया प्रतिपत्स्यते ॥ ७३ ॥

सीता स्वचारित्रमुद्दिश्य ताः प्रजाः विश्वासयतु, तदनन्तरं पुत्रवतीमेनां जानकीं त्वदाज्ञया स्वीकरिष्य इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-जानकी अपना चरित्र दिखाकर उनको विश्वास करावै तो पुत्रवती इस (जानकी) को तुम्हारी आज्ञासे मैं स्वीकार करूंगा ॥ ७३ ॥

इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः ॥
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव ॥ ७४ ॥

अन्वयः । राज्ञा इति प्रतिश्रुते (सति) मुनिः आश्रमात् जानकीं शिष्यैः स्वसिद्धिं नियमैरिव आनाययामास ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । राज्ञा इति प्रतिश्रुते (सति) मुनिना आश्रमात् जानकी शिष्यैः स्वसिद्धिः नियमैरिव आनाययामासे ॥ ७४ ॥

रामेणेति प्रतिज्ञाते सति वाल्मीकिराश्रमाज्जानकीं शिष्यैः स्वार्थसिद्धिं तपोभिरिवानाययामासेति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०-राजाके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर मुनिने आश्रमसे जानकीको शिष्यों-द्वारा अर्थसिद्धिको मानों तपोंसे बुलवाया ॥ ७४ ॥

अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौकसः ॥
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये ॥ ७५ ॥

अन्वयः । अथ काकुत्स्थः अन्येद्युः प्रस्तुतप्रतिपत्तये पुरौकसः संनिपात्य, कविमाह्वाययामास ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । अथ काकुत्स्थेनान्येद्युः प्रस्तुतप्रतिपत्तये पुरौकसः सन्निपात्य कविः आह्वाययामासे ॥ ७५ ॥

अथ रामः अन्यस्मिन्नहनि प्रकृतकार्यानुसंधानाय पौरान्मेलयित्वा वाल्मीकिमाकारयामासेति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-तब रामचंद्रने दूसरे दिन ऊपर कहे कार्यके निमित्त पुरवासियोंको इकट्ठा करके वाल्मीकिको बुलवाया ॥ ७५ ॥

स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया ॥
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः ॥ ७६ ॥

अन्वयः । अथ स्वरसंस्कारवत्या ऋचा उदर्चिषं सूर्यमिव पुत्राभ्याम् (उपलक्षितया) सीतया (उदर्चिषं) रामम् असौ मुनिः उपस्थितः ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । +++ उदर्चिः सूर्य इव + + (उदर्चिः) रामः अमुना मुनिनोपस्थितः ॥ ७६ ॥

अथ स्वरसंस्कारवत्या सावित्र्योदर्चिषं सूर्यमिव सुताभ्यामुपलक्षितया सीतया राममसौ मुनिरुप तस्थ इति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०-तब स्वरसंस्कारवाली गायत्री करके तेजस्वी सूर्यके समान पुत्रोंके सहित सीताके साथ (महातेजस्वी) रामके निकट यह मुनि उपस्थित हुए ॥ ७६ ॥

काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा ॥
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा ॥ ७७ ॥

अन्वयः । काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा शान्तेन वपुषैव सा शुद्धेति अन्वमीयत (लोकैः) ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । +++ तां शुद्धेति अन्वमुः (तत्रत्या लोकाः) ॥ ७७ ॥

काषायसंवृतेन स्वचरणार्पितचक्षुषा प्रसन्नेन वपुषैव सीता स्वाध्वीत्यनुमितेति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—गेरुए वस्त्रोंको पहरे अपने चरणोंमें दृष्टि लगाये, शान्त शरीरसेही वह शुद्ध है इस प्रकार जानी गई ॥ ७७ ॥

जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहृतचक्षुषः ॥
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्वे फलिता इव शालयः ॥७८॥

वाच्यप० । तदालोकपथात् प्रतिसंहृतचक्षुषः ते सर्वे जनाः फलिताः शालयः इवावाङ्मुखाः तस्थुः ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । तदालोकपथात् प्रतिसंहृतचक्षुर्भिः तैः सर्वैः जनैः फलितैः शालिभिरिवावाङ्मुखैः तस्थे ॥ ७८ ॥

तस्याः सीतायाः कर्मणः दर्शनमार्गात्प्रतिनिवर्तितदृष्टयः सर्वे जनाः फलिताः शालय इवावनतमुखास्तस्थुरिति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—उस समय उसकी ओरसे दृष्टि हटायेहुए वे सब मनुष्य पके धानके सदृश मुख झुकाये स्थित हुए ॥ ७८ ॥

तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः ॥
कुरु निःसंशयं वत्से ! स्ववृत्ते लोकमित्यशात् ॥ ७९ ॥

अन्वयः । आस्थितविष्टरो मुनिः हे वत्से ! भर्तुः दृष्टिविषये स्ववृत्ते लोकं निःसंशयं कुरु इति ताम् अशात् ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । आस्थितविष्टरेण मुनिना हे वत्से ! भर्तुः दृष्टिविषये स्ववृत्ते लोकः निःसंशयः क्रियताम् इति सा अशिष्यत ॥ ७९ ॥

अधिष्ठितासनो मुनिः हे वत्से ! भर्तुर्दृष्टिसमक्षं स्वविषये लोकं निःसंशयं कुरु इति तां सीतां शास्ति स्मेति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—आसन पर बैठकर मुनिने 'हे पुत्री पतिके सन्मुख अपने चरित्रमें लोकको शंकारहित कर' इस प्रकार उसे आज्ञा दी ॥ ७९ ॥

अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः ॥
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम् ॥ ८० ॥

अन्वयः । अथ वाल्मीकिशिष्येण आवर्जितं पुण्यं पयः आचम्य सीता सत्यां सरस्वतीमुदीरयामास ॥ ८० ॥

वाच्यप० । अथ वाल्मीकिशिष्येणावर्जितं पुण्यं पयः आचम्य सीतया सत्या सरस्वती उदीरयामासे ॥ ८० ॥

अथ वाल्मीकिच्छात्रेण दत्तं पवित्रं जलमाचम्य सीता सत्यां वाचमुच्चारयामासेति सरलार्थः॥८०॥

भा०-इसके उपरान्त वाल्मीकिके शिष्यद्वारा लायाहुआ पवित्र जल आचमन करके सीता सत्य वाणी बोली ॥ ८० ॥

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ॥
तथा विश्वंभरे देवि ! मामन्तर्धातुमर्हसि ॥ ८१ ॥

अन्वयः । वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ मे व्यभिचारो न यथा तथा हे विश्वंभरे देवि ! मामंतर्धातुमर्हसि ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ मे व्यभिचारेण न (भूयते) + + + अर्ह्यते ॥ ८१ ॥

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ विषये मे स्खालित्यं यदि नास्ति तर्हि हे विश्वम्भरे ! देवि ! मां गर्भे वासयितुमर्हसीति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

" यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवीदेवि विवरं दातुमर्हसि ॥ १ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवीदेवि विवरं दातुमर्हसि ॥ २ ॥
तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥ ४ ॥
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ ५ ॥
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥ ६ ॥" (रामायण.)

भा०-वाणी मन और कर्मसे जो पतिमें मेरा व्यभिचार (व्रतभंग) नहीं है, तो हे पृथ्वीदेवि ! तुम मुझे भीतर लेनेको योग्य हो ॥ ८१ ॥

एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद्भुवः ॥
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ ॥ ८२ ॥

अन्वयः । साध्व्या तया एवमुक्ते सति सद्योभवाद्भुवः रंध्राच्छातह्रदं ज्योतिरिव प्रभामंडलम् उदययौ ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । + + + शातह्रदेन ज्योतिषेव प्रभामंडलेन उदये ॥ ८२ ॥

पतिव्रतया तया सीतयैवमुक्ते सति सद्योभवाद्भुवो रन्ध्राद्वैद्युतं ज्योतिरिव प्रभामण्डलमुदयायिति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०—उस पतिव्रताके ऐसा कहते ही तत्काल पृथ्वीके नये विवरसे विजलीकी चमककी समान कान्तिमण्डल निकला ॥ ८२ ॥

तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी ॥
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुंधरा ॥ ८३ ॥

अन्वयः । तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी समुद्ररशना साक्षाद्वसुंधरा प्रादुरासीत् ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुष्या समुद्ररशनया साक्षाद्वसुंधरया प्रादुरभूयत ॥ ८३ ॥

तत्र प्रभामण्डले नागफणोत्क्षिप्ते सिंहासने आसीना समुद्रमेखला साक्षात्पृथिवी प्रादुरासीदिति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०—उसमें नागोंके फणोंपर रक्खेहुए सिंहासनपर बैठीहुई, समुद्रकी कोंधनीवाली साक्षात् पृथ्वी प्रादुर्भूत हुई ॥ ८३ ॥

सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ॥
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ॥ ८४ ॥

अन्वयः । सा भर्तृप्रणिहितेक्षणां सीताम् अंकमारोप्य तस्मिन्मामेति व्याहरत्येव पातालमभ्यगात् ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । तया भर्तृप्रणिहितेक्षणां सीतामंकमारोप्य तस्मिन्मामेति व्याहरत्येव पातालमभ्यगायि ॥ ८४ ॥

सा वसुंधरा रामे दत्तदृष्टिं सीतामङ्कमारोप्य तस्मिन्भर्तरि मामेति वदत्येव पातालमभ्यगादिति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०—वह पृथिवी स्वामीमें दृष्टि लगाये सीताको गोदीमें बैठाकर रामचंद्रके नहीं नहीं ऐसा कहते पातालको प्रवेश करगई ॥ ८४ ॥

धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः ॥
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः ॥ ८५ ॥

अन्वयः । सीताप्रत्यर्पणैषिणः धन्विनः तस्य धरायां संरंभं विधिबलापेक्षी गुरुः शमयामास ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । × × × संरंभः विधिबलापेक्षिणा गुरुणा शमयामासे ॥ ८५ ॥

सीताप्रत्यर्पणैषिणः धन्विनस्तस्य रामस्य पृथिव्यां विषये क्रोधं दैवशक्तिदर्शी ब्रह्मा शमयामासेति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

"वसुधे देवि ! भवति सीता निर्यात्यतां मम ।
कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात्तु मैथिली ॥ १ ॥
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ।
न मे दास्यति चेत्सीतां यथारूपं महीतले ॥ २ ॥
सपर्वतानां कृत्स्नानां व्यथयिष्यामि ते स्थितिम् ।
एवं ब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते ॥ ३ ॥
ब्रह्मा सुरगणैः सार्द्धमुवाच रघुनंदनम्" इत्यादि (रामायणे)

भा०—सीताको फेर लेनेकी इच्छावाले उस धनुषधारीका पृथ्वीपर क्रोध देवशक्तिके जाननेवाले गुरु (ब्रह्मा) ने शान्त किया ॥ ८५ ॥

ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान् ॥
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः ॥ ८६ ॥

अन्वयः । रामः यज्ञांते पुरस्कृतानृषीन्सुहृदश्च विसृज्य सीतागतं स्नेहं तदपत्ययोः निदधे ॥ ८६ ॥

वाच्यप० । रामेण यज्ञांते पुरस्कृतानृषीन्सुहृदश्च विसृज्य सीतागतः स्नेहः तदपत्ययोः निदधे ॥ ८६ ॥

रामो यज्ञान्ते पूजितानृषीन्सुहृदश्च विसृज्य सीतागतं स्नेहं कुशलवयोर्निदध इति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०—रामचंद्रने यज्ञान्तमें सत्कार किये हुए ऋषि और मित्रोंको विदाकर सीताका प्रेम उसके पुत्रोंमें स्थापित किया ॥ ८६ ॥

युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिन्धुनामकम् ॥
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः ॥ ८७ ॥

अन्वयः । (किं च) भृतप्रजः स युधाजितः सन्देशात्सिंधुनामकं देशं दत्तप्रभावाय भरताय ददौ च ॥ ८७ ॥

वाच्यप० । (किं च) भृतप्रजेन तेन युधाजितः सन्देशात्सिंधुनामकः देशः दत्तप्रभावाय भरताय ददे च ॥ ८७ ॥

भृतप्रजः स रामः भरतमातुलस्य संदेशात् सिंधुनामकं देशं दत्तैश्वर्याय भरताय ददाविति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०—और प्रजाके पालक उन (राम) ने युधाजित् भरतके मामाके कथनसे सिन्धु-नामक देश ऐश्वर्य्ययुक्त भरतको दिया ॥ ८७ ॥

भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम् ॥
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः। तत्र भरतः युधि गंधर्वान् निर्जित्य केवलम् आतोद्यं ग्राहयामास आयुधं समत्या-जयत् ॥ ८८ ॥

वाच्यप०। तत्र भरतेन युधि गंधर्वा निर्जित्य केवलम् अतोद्यं ग्राहयामासिरे, आयुधं समत्या-ज्यन्त ॥ ८८ ॥

तत्र सिन्धुदेशे भरतोपि युधि गन्धर्वान्निर्जित्य केवलं वीणां ग्राहयामासायुधं त्याजितवानिति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०–तहां भरतने युद्धमें गन्धर्वोंको जीतकर केवल (उन्हें) वीणा ग्रहण कराई और शस्त्र त्याग करादिये ॥ ८८ ॥

स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्योस्तदाख्ययोः ॥
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः ॥ ८९ ॥

अन्वयः। सः अभिषेकार्हौ तक्षपुष्कलौ (नाम) पुत्रौ तदाख्ययोः राजधान्योरभिषिच्य पुनः रामांतिकमगात् ॥ ८९ ॥

वाच्यप०। तेन + + + रामान्तिकः अगायि ॥ ८९ ॥

स भरतः अभिषेकार्हौ तक्षपुष्कलौ (नाम) पुत्रौ तक्षशिलापुष्कलावत्यो राजधान्योरभिषिच्य पुना रामान्तिकमगादिति सरलार्थः ॥ ८९ ॥

भा०–वह राज्यके उचित तक्ष और पुष्कल नाम दो पुत्रोंको तिन्हीके नामकी (तक्ष, पुष्कल) राजधानियोंमें अभिषेक करके फिर रामके निकट आये ॥ ८९ ॥

अङ्गदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ ॥
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ ॥ ९० ॥

अन्वयः। लक्ष्मणोऽपि रघुनाथस्य शासनादंगदं चंद्रकेतुं च (तदाख्यौ) आत्मसंभवौ कारापथेश्वरौ चक्रे ॥ ९० ॥

वाच्यप०। लक्ष्मणेनाऽपि रघुनाथस्य शासनादंगदः चंद्रकेतुश्च (तदाख्यौ) आत्मसंभवौ कारापथेश्वरौ चक्राते ॥ ९० ॥

लक्ष्मणोपि रामस्य शासनादङ्गदं चंद्रकेतुं चात्मसंभवौ पुत्रौ कारापथेश्वरौ चक्र इति सर-लार्थः ॥ ९० ॥

भा०–लक्ष्मणनेभी रामचंद्रकी आज्ञासे अंगद और चन्द्रकेतु नामवाले अपने दो पुत्रोंको कारापथ देशका राजा किया ॥ ९० ॥

इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः ॥
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात् ॥ ९१ ॥

अन्वयः । इत्यारोपितपुत्रास्ते जनेश्वराः भर्तृलोकप्रपन्नानां जननीनां क्रमात् निवापान् विदधुः ॥ ९१ ॥

वाच्यप० । इत्यारोपितपुत्रैस्तैः जनेश्वरैः भर्तृलोकप्रपन्नानां जननीनां क्रमात् निवापाः विदधिरे ॥ ९१ ॥

इत्यारोपितसुतास्ते रामादयः स्वामिलोकप्राप्तानां जननीनां क्रमाच्छ्राद्धादीश्चक्रुरिति सरलार्थः ॥ ९१ ॥

भा०—इस प्रकार पुत्रोंको राज्य दे उन जनेश्वरोंने भर्ताके लोकको प्राप्त हुई माताओंके क्रमसे श्राद्धादि कर्म किये ॥ ९१ ॥

उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम् ॥
रहःसंवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति ॥ ९२ ॥

अन्वयः । अथ कालः मुनिवेषः (सन्) उपेत्य राघवं प्रोवाच, रहःसंवादिनौ आवां यः पश्येत् (त्वं) तं त्यजेः इति ॥ ९२ ॥

वाच्यप० । अथ कालेन मुनिवेषेण (सता) उपेत्य रामः प्रोचे, रहःसंवादिनौ आवां येन दृश्येवहि (त्वया) स त्यज्येत इति ॥ ९२ ॥

अथ कालः मुनिवेषः सन्नुपेत्य राघवं प्रोवाच, किमित्याह एकान्ते संभाषिणावावां यः पश्येत् तं त्यजेरिति सरलार्थः ॥ ९२ ॥

भा०—उसके उपरान्त काल मुनिका वेषधारे आकर रामचन्द्रसे बोला एकान्तमें वार्ताकरते हुए हम दोनोंको जो देखे तुम उसे त्याग दो ॥ ९२ ॥

तथेति प्रतिपन्नाय विवृतात्मा नृपाय सः ॥
आचख्यौ दिवमध्यास्व शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ९३ ॥

अन्वयः । सः तथेति प्रतिपन्नाय नृपाय विवृतात्मा (सन्) परमेष्ठिनः शासनात् द्याम् अध्यास्वेति आचख्यौ ॥ ९३ ॥

वाच्यप० । तेन तथेति प्रतिपन्नाय नृपाय विवृतात्मना (सता) परमेष्ठिनः शासनात् द्यौः अध्यास्यतामिति आचख्ये ॥ ९३ ॥

सः कालः तथेति प्रतिपन्नाय रामाय प्रकाशितनिजरूपः सन् ब्रह्मणः शासनाद्दिवमध्यास्स्वेत्याचख्याविति सरलार्थः ॥ ९३ ॥

भा०—उनके 'बहुत अच्छा' इस प्रकार स्वीकार करनेपर रामचंद्रसे अपना रूप प्रकाशित कर ब्रह्माकी आज्ञासे स्वर्गमें वास करो, यह कहा ॥ ९३ ॥

विद्वानपि तयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत् ॥
भीतो दुर्वाससः शापाद्रामसंदर्शनार्थिनः ॥ ९४ ॥

अन्वयः । द्वाःस्थः लक्ष्मणः विद्वानपि रामसंदर्शनार्थिनः दुर्वाससः शापात् भीतः (सन्) तयोः समयमभिनत् ॥ ९४ ॥

वाच्यप० । द्वाःस्थेन लक्ष्मणेन विदुषाऽपि रामसंदर्शनार्थिनः दुर्वाससः शापाद्भीतेन (सता) तयोः समयः अभिद्यत ॥ ९४ ॥

द्वारि नियुक्तो लक्ष्मणो नियमं जानन्नपि रामसंदर्शनार्थिनो दुर्वाससो मुनेः शापाद्भीतः सन् तयोः संवादं निभेदेति सरलार्थः ॥ ९४ ॥

भा०—द्वारे बैठे हुए लक्ष्मणने (रामकी प्रतिज्ञा) जानकरभी रामचंद्रके दर्शनकी इच्छा करनेवाले दुर्वासाके शापसे डरकर उन दोनोंकी बातचीत भंग की ॥ ९४ ॥

(दुर्वासाने लक्ष्मणसे कहा यदि अभी रामचंद्रको नहीं समाचार दोगे तो मैं सबको शाप दे भस्म करदूंगा, लक्ष्मणने विचारा मेरा अनिष्ट हो तो हो और तो सब बचें यह समझ रामचंद्रके पास गये)

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित् ॥
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः ॥ ९५ ॥

अन्वयः । योगवित्सः सरयूतीरं गत्वा देहत्यागेन पूर्वजन्मनो भ्रातुः प्रतिज्ञाम् अवितथा चकार ॥ ९५ ॥

वाच्यप० । योगविदा तेन सरयूतीरं गत्वा देहत्यागेन पूर्वजन्मनो भ्रातुः प्रतिज्ञा अवितथा चक्रे ॥ ९५ ॥

योगमार्गज्ञाता स लक्ष्मणः रसयूतीरं गत्वा शरीरत्यागेन रामस्य प्रतिज्ञां सत्यां चकारेति सरलार्थः ॥ ९५ ॥

भा०—योग जाननेवाले उन (लक्ष्मण) ने सरयूके तीर जाकर देहके त्यागनेसे बडे भाईकी प्रतिज्ञाको सत्य किया ॥ ९५ ॥

तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि ॥
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव ॥ ९६ ॥

अन्वयः । आत्मचतुर्भागे तस्मिन्प्राक् नाकमधितस्थुषि (सति) राघवः भुवि त्रिपाद् धर्म इव शिथिलं तस्थौ ॥ ९६ ॥

वाच्यप० । × × × राघवेण भुवि त्रिपदा धर्मेण इव शिथिलं तस्थे ॥ ९६ ॥

आत्मचतुर्थे भागे तस्मिँल्लक्ष्मणे पूर्वं नाकं गते सति रामः भुवि त्रिपाद्धर्म इव शिथिलं तस्थाविति सरलार्थः ॥ ९६ ॥

अपने उस चतुर्थ भागके प्रथम स्वर्गमें जानेपर रामचंद्र पृथ्वीमें तीनपाद धर्मकी नाइ शिथिल स्थित हुए ॥ ९६ ॥

(तप शौच दया सत्य यह धर्मके चार पाद हैं)

स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुशं कुशम् ॥
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम् ॥ ९७ ॥
उदक्प्रतस्थे स्थिरधीः सानुजोऽग्निपुरःसरः ॥
अन्वितः पतिवात्सल्याद्गृहवर्जमयोध्यया ॥ ९८ ॥

अन्वयः । स्थिरधीः सः रिपुनागांकुशं कुशं कुशावत्यां सूक्तैः सतां जनिताश्रुलवं लवं शरावत्यां निवेश्य सानुजः अग्निपुरःसरः (सन्) पतिवात्सल्यात् गृहवर्जमयोध्ययाऽन्वित उदक्प्रतस्थे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

वाच्यप० । स्थिरधिया तेन × × × सानुजेन अग्निपुरःसरेण (सता) × × × अन्वितेन × × ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

युग्मम् । स्थिरधीः स रामः शत्रुगजांकुशं कुशं कुशावत्यां पुर्यां स्थापयित्वा समीचीनवचनैर्जनिताश्रुलवं लवाख्यं सुतं शरावत्यां पुर्यां निवेश्य सानुजोऽग्निपुरःसरः सन् भर्तर्यनुरागाद्गृहान्वर्जयित्वाऽयोध्ययान्वित उदक् प्रतस्थ इति सरलार्थः ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

भा०—स्थिर बुद्धिवाले वह (राम) शत्रुरूपी हाथियोंके अंकुशरूपी कुशको कुशल- (नगरी) में और मनोहर वचनोंसे सत्पुरुषोंके आंसू बहानेवाले लवको शरावतीमें स्थापितकर भाईसहित अग्निहोत्रको आगे कर राजाकी (अर्थात् अपनी) प्रीतिसे घरोंके विना अयोध्याको पीछे लिये उत्तर दिशाको चले ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

(अर्थात् अयोध्यामें केवल शून्य घर पडे रहे)

जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः ॥
कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः ॥ ९९ ॥

अन्वयः । चित्तज्ञाः हरिराक्षसाः कदंबमुकुलस्थूलैः प्रजाश्रुभिरभिवृष्टां तस्य पदवीं जगृहुः ॥ ९९ ॥

वाच्यप० । चित्तज्ञैः हरिराक्षसैः कदंबमुकुलस्थूलैः प्रजाश्रुभिरभिवृष्टा तस्य पदवी जगृहे ॥ ९९ ॥

हृदयज्ञाः कपिनिशाचराः कदम्बमुकुलस्थूलैः प्रजाश्रुभिरभिवृष्टं तस्य रामस्य मार्गं जगृहुरिति सरलार्थः ॥ ९९ ॥

भा०—मनको जाननेवाले राक्षस और वानरोंने कदम्बकलियोंके समान बडे प्रजाके आंसुओंसे सींचेहुए उनके मार्गको ग्रहण किया (अर्थात यहभी उनके पीछे गये) ॥ ९९ ॥

उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ॥
चक्रे त्रिदिवनिःश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम् ॥ १०० ॥

अन्वयः । उपस्थितविमानेन भक्तानुकंपिना तेन अनुयायिनां सरयूः त्रिदिवनिःश्रेणिः चक्रे ॥ १०० ॥

वाच्यप० । उपस्थितविमानः भक्तानुकंपी सः अनुयायिनां सरयूं त्रिदिवनिःश्रेणिं चकार ॥ १०० ॥

प्राप्तविमानेन भक्तवत्सलेन तेन रामेण सरयूः स्वर्गाधिरोहिणी निःश्रेणिश्चक्र इति सरलार्थः ॥ १०० ॥

भा०–प्राप्त विमानवाले, भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले उन (राम) ने पीछे चलनेवालोंको सरयू स्वर्गकी सीढी बना दी (अर्थात् सरयूमें स्नान करतेही प्रजा विमानमें चढ वैकुंठ जाने लगीं) ॥ १०० ॥

यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम् ॥
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे ॥ १०१ ॥

अन्वयः । यत् तत्र मज्जतां संमर्दः गोप्रतरकल्पोऽभूदतः तदाख्यया पावनं तीर्थं भुवि पप्रथे ॥ १०१ ॥

वाच्यप० । + + + संमर्देन गोप्रतरकल्पेनाभावि अतः तदाख्यया पावनेन तीर्थेन भुवि पप्रथे ॥ १०१ ॥

यस्मात्तत्र सरय्वां मज्जतां विमर्दः गोप्रतरतुल्योभूदतः गोप्रतराख्यया शोधकं तीर्थं पृथिव्यां पप्रथ इति सरलार्थः ॥ १०१ ॥

भा०–जो कि वहां स्नान करनेवालोंका मेला गोप्रतर (अर्थात् गौओंके उतारेके समान) हुआ, इस कारण उसी नामसे वह पवित्रतीर्थ पृथ्वीमें प्रसिद्ध हुआ॥१०१॥

स विभुर्विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु ॥
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

अन्वयः। विभुः सः विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु (सत्सु) त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गांतरमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

वाच्यप० । विभुना तेन + + अकल्प्यत ॥ १०२ ॥

प्रभुः स रामो देवानामंशेषु सुग्रीवादिषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु सत्सु देवत्वप्राप्तानां पौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयदिति सरलार्थः ॥ १०२ ॥

भा०–सर्वव्यापक (प्रभु) उन (राम) ने देवताओंके अंशवाले (वानरर्षिआदि) को अपनी अपनी मूर्तिको प्राप्त होनेपर देवपनको प्राप्त हुए अयोध्यानिवासियोंके निमित्त दूसरा स्वर्ग बनाया ॥ १०२ ॥

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्स्वर्गलोकप्रतिष्ठाम् ॥

लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा ॥
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च ॥ १०३ ॥

अन्वयः । विष्वक्सेनः एवं सुराणां दशमुखशिरश्छेदकार्यं निर्वर्त्य लंकानाथं पवनतनयं चोभयं कीर्तिस्तंभद्वयमिव दक्षिणे उत्तरे च गिरौ स्थापयित्वा सर्वलोकप्रतिष्ठां स्वतनूमविशत् ॥ १०३ ॥

वाच्यप० । विष्वक्सेनेन × × × सर्वलोकप्रतिष्ठा स्वतनुरविश्यत ॥ १०३ ॥

विष्णुरेवं देवानां रावणवधरूपकार्यं निष्पाद्य, लङ्कापतिं विभीषणं वायुपुत्रं हनुमन्तं चोभयं कीर्तिस्तम्भद्वयमिव दक्षिणे गिरौ त्रिकूटे उत्तरे पर्वते हिमवति च स्थापयित्वा सर्वलोकाश्रयभूतां स्वमूर्तिमविशदिति सरलार्थः ॥ १०३ ॥

भा०—विष्णु इस प्रकार देवताओंका दशाननवधरूपी कार्य संपादन करके लंकापति (विभीषण) और पवनतनय (महावीरजी) दोनोंको कीर्तिके दो स्तंभोंकी नाईं दक्षिण और उत्तरके पर्वतोंमें स्थापित करके सब लोकोंके धारण करनेवाली अपनी मूर्तिमें प्रवेश करगये ॥ १०३ ॥

दोहा—प्रजापाल श्रीरामसम, पतिव्रत धर्मती सीय ।
भयो न है कोइ होयगो, कीरति अतिकमनीय ॥
अर्थ धर्म कामादिदा, कथा सुमंगलमूल ।
पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, राम रहहिं अनुकूल ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ।

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ॥
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥ १ ॥

अन्वयः । अथ इतरे सप्त रघुप्रवीराः पुरोजन्मतया गुणैश्च ज्येष्ठं कुशं रत्नविशेषभाजं चक्रुः, हि सौभ्रात्रमेषां कुलानुसारि ॥ १ ॥

वाच्यप० । अथ सप्तभिः रघुप्रवीरैः पुरोजन्मतया गुणैश्च ज्येष्ठः कुशः रत्नविशेषभाक् चक्रे ॥ १ ॥

अथ रामनिर्वाणानन्तरमितरे लवादयः सप्त रघुप्रवीराः पूर्वजं गुणैश्च ज्येष्ठं कुशं श्रेष्ठवस्तुभागिनं चक्रुस्तथाहि सौभ्रात्रमेषां कुशलवादीनां कुलानुसारीति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०–इसके उपरान्त उन सातों वीर रघुवंशियोंने बडे पनके कारण और गुणोंके कारण कुशको भागमें सुन्दर वस्तु लेनेवाला किया कारण कि सुन्दर भाईपना उनके कुलकी रीतिही है ॥ १ ॥

ते सेतुवार्तागजबन्धमुख्यैरभ्युच्छ्रिताः कर्मभिरप्यवन्ध्यैः ॥
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः ॥ २॥

अन्वयः। सेतुवार्तागजबंधमुख्यैः अवन्ध्यैः कर्मभिः अभ्युच्छ्रिताः अपि ते अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः ॥ २ ॥

वाच्यप०। + तैः अन्योन्यदेशप्रविभागसीमा वेला समुद्रैरिव न व्यतीये ॥ २ ॥

जलबन्धकृषिगोरक्षगजग्रहणमुख्यैः सफलैः कर्मभिरतिसमर्थास्ते कुशादयः अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां सागरा इव नातिचक्रमुरिति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०–उन्होंने सेतु (पुल) बांधना, खेती, व्यापारकी रक्षा, हाथीका पकडना इन मुख्य गुणवाले सकल कार्योंमें कुशल होकरभी एक दूसरेकी विभाग की हुई सीमाको समुद्र वेलाके समान उल्लंघन न किया ॥ २ ॥

चतुर्भुजांशप्रभवः स तेषां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम् ॥
सुरद्विपानामिव सामयोनिर्भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः ॥ ३ ॥

अन्वयः। चतुर्भुजांशप्रभवः दानप्रवृत्तेरनुपारतानां तेषां सः वंशः सामयोनिः सुरद्विपा न (वंशः) इव अष्टधा भिन्नः (सन्) विप्रससार ॥ ३ ॥

वाच्यप०। वंशेन + + अष्टधा भिन्नेन विप्रसस्रे ॥ ३ ॥

विष्णोरंशप्रभवः दानप्रवृत्तेरनुपारतानां तेषां कुशलवादीनां सः वंशः सामवेदप्रभवो दानप्रवृत्तेरनुपारतानां दिग्गजानां वंश इवाष्टधा भिन्नः सन् विस्तृतोऽभूदिति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–विष्णुके अंश (रामादि) से उत्पन्न हुआ उन निरन्तर स्वाभाविक दान करनेवालोंका वह वंश साम (वेद) से उत्पन्न हुए देवगजोंके समान आठ प्रकार विभक्त होकर फैला ॥ ३ ॥

(हाथीकी उपमाका तात्पर्य यह है कि दानप्रवृत्तिके अर्थ मद बहना और दान देना दो हैं, जिसमें दान देनेका अर्थ कुशादिकोंमें घटता है)

अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः ॥
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत् ॥ ४ ॥

अन्वयः । अथ अर्द्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे सुप्तजने शय्यागृहे प्रबुद्धः कुशः प्रवासस्थकलत्र-वेषाम् अदृष्टपूर्वां वनिताम् अपश्यत् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । प्रबुद्धेन कुशेन वनिता अदृश्यत ॥ ४ ॥

अथ निशीथे स्तिमितप्रदीपे सुप्तजने शय्यागृहे प्रबुद्धः कुशः प्रोषितभर्तृकावेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यदिति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—इसके उपरान्त आधी रातमें दीपकोंके निश्चल होने और मनुष्योंके सोनेपर शय्यावाले घरमें जागते हुए कुशने परदेशपतिवाली स्त्रीका वेषधारे प्रथम न देखी-हुई स्त्रीको देखा ॥ ४ ॥

सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः ॥
जेतुः परेषां जयशब्दपूर्वं तस्याञ्जलिं वन्धुमतो ववन्ध ॥ ५ ॥

अन्वयः । सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः पुरुहूतभासः परेषां जेतुः बंधुमतः तस्य पुरस्तात् स्थित्वा जयशब्दपूर्वम् अंजलिं वबंध ॥ ५ ॥

वाच्यप० । तया * * * स्थितया जयशब्दपूर्वम् अञ्जलिः ववंधे ॥ ५ ॥

सा वनिता सज्जनसाधारणराजश्रिय इन्द्रतेजसः शत्रूणां जेतुर्बन्धुमतस्तस्य कुशस्याग्रे स्थित्वा जयशब्दपूर्वं यथा तथाञ्जलिं बवन्धेति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—वह (स्त्री) उस महात्मा साधारण राज्यलक्ष्मीवाले, इन्द्रके समान तेजस्वी शत्रुओंके जीतनेवाले, कुटुम्बी कुशके सन्मुख खडी होकर जय शब्द कहकर हाथ जोडती हुई ॥ ५ ॥

अथानपोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम् ॥
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूर्वार्धविसृष्टतल्पः ॥ ६ ॥

अन्वयः । अथ सविस्मयः पूर्वार्द्धविसृष्टतल्पः दाशरथेः तनूजः अनपोढार्गलमप्यगारम् आदर्शतलं छायामिव प्रविष्टां तां प्रोवाच ॥ ६ ॥

वाच्यप० । अथ सविस्मयेन पूर्वार्द्धविसृष्टतल्पेन दाशरथेस्तनूजेन + + सा प्रोचे ॥ ६ ॥

अथाश्चर्ययुक्तः शरीरपूर्वार्द्धभागेन त्यक्तशय्यः रामस्य पुत्रः कुशः अनुद्घाटितविष्कम्भमपि गृहमादर्शतलं छायामिव प्रविष्टां तां वनितामवददिति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—तब आश्चर्यसे अगले आधे शरीरको सेजसे उठाकर दशरथसुतके पुत्र (कुश) ने अर्गला लगे हुए मन्दिरमें आदर्श (दर्पण) में प्रविष्ट हुई छायाकी समान प्राप्त हुईसे कहा ॥ ६ ॥

लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ॥
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ ७ ॥

का त्वं शुभे ! कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ॥
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥ ८ ॥

अन्वयः । सावरणेऽपि गेहे लब्धान्तरा (त्वमसि) (मया) ते योगप्रभावश्च न लक्ष्यते मृणालिनी हैममुपरागमिव (त्वम्) अनिर्वृत्तानामाकारं च बिभर्षि । (हे) शुभे त्वं का (असि) वा कस्य परिग्रहः (असि) ते मदभ्यागमकारणम् वा किम् (अस्ति) (त्वम्) वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति मत्वा आचक्ष्व ॥ ७ ॥ ८ ॥

वाच्यप० । लब्धान्तरया (त्वया भूयते) (अहम्) योगप्रभावं च न लक्षये मृणालिन्या हैमः उपरागः इव (त्वया) आकारश्च ध्रियते त्वया कया (भूयते) वा कस्य परिग्रहेण (भूयते) मदभ्यागमकारणेन केन (भूयते) (त्वया) आख्यायताम् ॥ ७ ॥ ८ ॥

युग्मम् । सावरणेप्यगारे लब्धावकाशा ते योगप्रभावश्च न लक्ष्यते, कमलिनी हिमकृतमुपद्रवमिव त्वं दुःखितानामाकृतिं बिभर्षि च योगिनां दुःखं न भवति (७) किं च हे शुभे त्वं का कस्य वा भार्या तव मदभ्यागमे कारणं वा किम् जितेन्द्रियाणां रघूणां परस्त्रीषु विषये विमुखां प्रवृत्तिं मत्वा कथयेति सरलार्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०-गुप्तस्थानमें भी तूं प्रवेश कर आई है और तेरा माहात्म्य योगके समान नहीं है क्योंकि तूने दुःखियोंके समान रूप धारण किया है, जिस प्रकारसे शीतके विघ्नसे कमलिनी होती है ॥ ७ ॥ हे शोभने ! तूं कौन है किसकी स्त्री है और मेरे निकट आनेका तेरा कारण क्या है तूं जितेन्द्री रघुवंशियोंके मनको दूसरेकी स्त्रियोंके व्यवहारसे विमुख जानकर बता ॥ ८ ॥

तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन ॥
तस्याः पुरः संप्रति वीतनाथां जानीहि राजन्नधिदेवतां माम् ॥९॥

अन्वयः । सा तम् अब्रवीत् अनवद्या या (पूः) स्वपदोन्मुखेन गुरुणा नीतपौरा अभवत् (हे) राजन् ! मां संप्रति वीतनाथां तस्याः पुरः अधिदेवतां जानीहि ॥ ९ ॥

वाच्यप० । तया सः औच्यत (हे) राजन् अनवद्यया यया (पुरा) + नीतपौरया (अभूयत) (त्वया) अहं संप्रति वीतनाथा तस्याः पुरः अधिदेवता ज्ञायताम् ॥ ९ ॥

सा स्त्री तं कुशं प्रत्यब्रवीत् दोषरहिता या पूर्विष्णुपदोन्मुखेन रामेण नीतपौरा हे नृप ! मां संप्रत्यनाथां तस्या अयोध्याया अधिदेवतां जानीहीति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-वह उससे बोली, जिस दोषरहित पुरीके निवासियोंको अपने पुर जानेके उत्साही तुम्हारे पिता लेगये. हे राजन् ! मुझे इस समय अनाथ उस (अयोध्या) पुरीको अधिदेवता जानो ॥ ९ ॥

वस्वौकसारामभिभूय साहं सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या ॥
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ॥१०॥

अन्वयः । सा अहं सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या वस्वौकसारामभिभूय समग्रशक्तौ त्वयि सूर्य्यवंश्ये सति करुणाम् अवस्थां प्रपन्ना (अस्मि) ॥ १० ॥

वाच्यप० । तया मया × × प्रपन्नया (भूयते) ॥ १० ॥

साहं राजन्वत्तया हेतुना बद्धोत्सवया विभूत्यालकां वा पुरन्दरनगरीं तिरस्कृत्य समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यकुलोत्पन्ने जाते सति दीनां दशां प्राप्तेति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—सो मैं श्रेष्ठ राज्यके प्रभावसे नित्य उत्सवोंके ऐश्वर्यके द्वारा अलकापुरीको निरादर करके, सम्पूर्ण शक्तिमान् तुम सूर्यवंशीके विद्यमान रहते भी इस दीन दशाको प्राप्त हुई हूं ॥ १० ॥

विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे ॥
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम् ॥ ११ ॥

अन्वयः । विशीर्णतल्पाट्टशतः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे निवेशः अस्तनिमग्नसूर्यम् उग्रानिलभिन्नमेघम् दिनान्तं विडम्बयति ॥ ११ ॥

वाच्यप० । विशीर्णतल्पाट्टशतेन पर्यस्तशालेन × मे निवेशेन अस्तनिमग्नसूर्यः उग्रानिलभिन्नमेघः दिनान्तः विडम्ब्यते ॥ ११ ॥

भग्नतल्पाट्टशतः स्रस्तप्राकारः स्वामिनो विनैवं भूतो मे निवेशः अस्तगिरिलीनरविं पवनेन भिन्नमेघं दिनावसानमनुकरोतीति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—टूटे हुए सैकडों अटे अटारी, और टूटे परकोटेवाली, स्वामीके विना मेरी बस्ती अस्तमें निमग्न सूर्य और कठोर पवनके बखेरे हुए मेघोंवाली संध्याकी होड करती है ॥ ११ ॥

निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम् ॥
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः १२॥

अन्वयः । निशासु भास्वत्कलनूपुराणाम् अभिसारिकाणां यः संचारः अभूत, नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः शिवाभिः सः राजपथः वाह्यते ॥ १२ ॥

वाच्यप० । येन संचारेण अभावि, नदन्मुखोल्काविचितामिषाः शिवाः तं राजपथं वाहयन्ति ॥ १२ ॥

रात्रिषु दीप्तिमान्मधुरनूपुरयुक्तानामभिसारिकाणां यो राजमार्गः संचारसाधनमभूदधुना नदत्सु मुखेषूल्काभिरन्विष्टमांसाभिः शृगालीभिः स राजपथो गम्यत इति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—रात्रिमें प्रकाशमान मधुरशब्द करतेहुए नूपुरवाली अभिसारिकाओंके विचरनेका जो राजमार्ग था, अब चिल्लाते हुए मुखकी चिनगारियोंसे मांस ढूंढती-हुई शृगाली उस राजमार्गमें फिरती हैं ॥ १२ ॥

आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत् ॥
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृंगाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम् ॥१३॥

अन्वयः। यत् प्रमदाकराग्रैः आस्फालितं मृदंगधीरध्वनिमन्वगच्छत् तद्दीर्घिकाणाम् अंभः इदानीं वन्यैर्महिषैः शृंगाहतं (सत्) क्रोशति ॥ १३ ॥

वाच्यप०। येन × आस्फालितेन मृदंगधीरध्वनिः अन्वगम्यत तेन दीर्घिकाणाम् अम्भसा शृंगाहतेन (सता) क्रुश्यते ॥ १३ ॥

यज्जलं तरुणीकराग्रैस्ताडितं सत् मृदङ्गगम्भीरशब्दमन्वकरोत् तद्दीर्घिकाणामम्भ इदानीं वन्यैर्महिषैर्विषाणैराहतं सत्क्रोशतीति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—जो स्त्रियोंकी हथेलियोंसे ताडित होकर मृदंगकी गंभीरध्वनिकी होड करता था, वह बावडियोंका जल अब वनके भैंसोंके सींगोंसे झकोला हुआ कठोरशब्द करता है ॥ १३ ॥

वृक्षेशया यष्टिनिवासभंगान्मृदंगशब्दापगमादलास्याः ॥
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् ॥ १४ ॥

अन्वयः। यष्टिनिवासभंगात् वृक्षेशयाः मृदंगशब्दापगमात् अलास्याः दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूराः वनबर्हिणत्वं प्राप्ताः (सन्ति) ॥ १४ ॥

वाच्यप०। वृक्षेशयैः अलास्यैः (सद्भिः) दवोल्काहतशेषबर्हैः क्रीडामयूरैः प्राप्तैः (भूयते) ॥ १४ ॥

निवासस्थानस्य यष्टिभंगात्तरौशयाः मृदंगशब्दानामभावान्नृत्यशून्याः दावस्य स्फुलिंगैर्हतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनमयूरत्वं प्राप्ता इति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—बैठनेकी लकडीके टूटनेसे वृक्षोंपर रहनेवाले मृदंगशब्दके न होनेसे नृत्य त्यागे हुए दावाग्निकी चिनगारियोंसे जली पूंछवाले क्रीडाके मोर जंगली मोर होगये हैं ॥ १४ ॥

सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान् ॥
सद्यो हतन्यंकुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे ॥ १५ ॥

अन्वयः। किञ्च येषु सोपानमार्गेषु रामाः सरागान् चरणान् निक्षिप्तवत्यः तेषु मे सद्यो हतन्यकुंभिः व्याघ्रैः अस्रदिग्धं पदं निधीयते ॥ १५ ॥

वाच्यप०। रामाभिः सरागान् चरणान् निक्षिप्तवतीभिः (भूयते) तेषु हतन्यंकवः व्याघ्रा अस्रदिग्धं पदं निदधति ॥ १५ ॥

किं च येषु सोपानमार्गेषु स्त्रियः सरागाँल्लाक्षारसार्द्रांश्चरणान्निक्षिप्तवत्यः तेषु मम मार्गेषु सद्यो मारितमृगैर्व्याघ्रै रुधिरलिप्तं पदं निधीयत इति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०-जिन सीढियोंके मार्गमें रमणशीला युवती महावर लगे चरणोंको रखती थीं, उनमें तत्काल हिरण मारकर सिंह रुधिरभरे चरण धरते हैं ॥ १५ ॥

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः ॥
नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति ॥ १६ ॥

अन्वयः । पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभंगाः चित्रद्विपाः नखांकुशाघातविभिन्नकुंभाः (सन्तः) संरब्धसिंहप्रहृतम् वहन्ति ॥ १६ ॥

वाच्यप० । पद्मवनावतीर्णैः करेणुभिर्दत्तमृणालभंगैः चित्रद्विपैः नखांकुशाघातविभिन्नकुंभैः संरब्धसिंहप्रहृतम् उह्यते ॥ १६ ॥

कमलवनं प्रविष्टाश्चित्रगताभिः करिणीभिर्दत्तमृणालभङ्गा आलेख्यगजाः नखांकुशाघातैर्विदीर्णकुम्भाः सन्तः कुपितसिंहप्रहारं वहन्तीति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०-कमलके वनमें प्रवेश किये हथिनियोंसे मृणालके खण्ड लेते हुए चित्रके हाथी नखरूपी अंकुशके आघातसे मस्तक छिदे हुए रोषभरे सिंहोंका प्रहार सहते हैं ॥ १६ ॥

स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् ॥
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ॥१७॥

अन्वयः । उत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणां स्तंभेषु योषित्प्रतियातनानां फणिभिर्विमुक्ताः निर्मोकपट्टाः संगात् स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति ॥ १७ ॥

वाच्यप० । फणिभिर्विमुक्तैः निर्मोकपट्टैः ++ स्तनोत्तरीयैः भूयते ॥ १७ ॥

विशीर्णवर्णविन्यासधूसराणां स्तंभेषु स्त्रीप्रतिकृतीनां काष्टमयीनां फणिभिर्निर्मुक्ताः कंचुकखण्डाः सक्तत्वात् स्तनाच्छादनवस्त्राणि भवन्तीति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०-रंगका क्रम नष्ट हो जानेसे धूसरित खम्बोंमें स्त्रियोंकी मूर्तिको सर्पकी त्यागी हुई केंचली लिपट कर चोली बनती हैं ॥ १७ ॥

कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणांकुरेषु ॥
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्छन्ति न चन्द्रपादाः ॥ १८ ॥

अन्वयः । कालान्तरश्यामसुधेषु इतस्ततो रूढतृणांकुरेषु हर्म्येषु नक्तं मुक्तागुणशुद्धयोऽपि त एव चन्द्रपादाः न मूर्छन्ति ॥ १८ ॥

वाच्यप० । मुक्तागुणशुद्धिभिः तैरेव चन्द्रपादैः न मूर्छ्यते ॥ १८ ॥

कालभेदवशेन मलिनचूर्णेष्वितस्ततो रूढतृणांकुरेषु गृहेषु रात्रौ मुक्तागुणशुद्धिवत्स्वच्छा अपि ततः पूर्वं ये मूर्छन्ति स्म त एव चन्द्ररश्मयः न प्रतिफलन्तीति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—समयके फेरसे काले हुए चूनेवाले, इधर उधर वासके अंकुर जमेहुए मंदिरोंमें रात्रिमें मोतीमालाकी समान वे चन्द्रकिरण मकाश नहीं करती हैं ॥ १८॥

आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः ॥
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ॥ १९ ॥

अन्वयः । (किं च) विलासिनीभिः सदयं शाखा आवर्ज्य यासां पुष्पाणि उपात्तानि ताःमदीयाः उद्यानलताः वन्यैः पुलिन्दैः इव वानरैः क्लिश्यन्ते च ॥ १९ ॥

वाच्यप० । विलासिन्यः पुष्पाणि उपात्तवत्यः ताः वन्याः पुलिन्दाः इव वानराः क्लेशयन्ति ॥ १९ ॥

किं च विलासिनीभिः सदयं लतावयवानानमय्य यासां लतानां कुसुमानि गृहीतानि ता मदीया उद्यानलताः वन्यैर्म्लेच्छविशेषैरिव वानरैः क्लिश्यन्त इति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—विलासीनी स्त्रियोंने दयासे जिनकी शाखा झुकाकर फूल तोडे थे, मेरी उन बगीचोंकी वेलोंको पुलिन्दोंकी समान वनके बन्दर दुःख देते हैं ॥ १९ ॥

रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि ॥
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः ॥ २० ॥

अन्वयः । रात्रौ अनाविष्कृतदीपभासः दिवापि कान्तामुखश्रीवियुता विच्छिन्नधूमप्रसराः गवाक्षाः कृमितंतुजालैः तिरस्क्रियन्ते ॥ २० ॥

वाच्यप० । रात्रावनाविष्कृतदीपभासः दिवापि कान्तामुखश्रीवियुतान् विच्छिन्नधूमप्रसरान् गवाक्षान् कृमितन्तुजालाः तिरस्कुर्वन्ति ॥ २० ॥

रात्रौ दीपप्रभाशून्या दिवसेपि कान्तामुखानां लक्ष्म्या रहिता नष्टधूमप्रसरा गवाक्षाः लूतातन्तुवितानैराच्छाद्यन्ते इति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—रात्रिमें दीपकके मकाशसे रहित और दिनमें भी स्त्रियोंके मुखोंकी कान्तिसे शून्य, धुएँका निकलना मिटेहुए झरोखे, मकडियोंके जालोंसे ढक गये हैं ॥ २० ॥

वलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति ॥
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयूजलानि ॥ २१ ॥

अन्वयः । वलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति सरयूजलानि शून्यानि उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा दूये ॥ २१ ॥

वाच्यप० । + + + मया दूयते ॥ २१ ॥

पूजोपहारवर्जिततटानि स्नानीयचूर्णादिसम्बन्धमनाप्नुवन्ति सरयूसलिलानि शून्यान्युपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा परितप्ये इति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-पूजाकी क्रियासे शून्य घाट और स्नानके चूर्णका सत्संग प्राप्त न होनेवाले किनारोंपर नरसलोंकी शून्य झोपडियोंवाले सरयूके जलोंको देखकर मैं दुःख पाती हूं ॥ २१ ॥

तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपैतुं कुलराजधानीम् ॥
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां यथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम् ॥ २२ ॥

अन्वयः । तत् इमां वसतिं विसृज्य कुलराजधानीम् अभ्युपैतुम् अर्हसि (कथमिव) ते गुरुः तां कारणमानुषीं तनुं हित्वा परमात्ममूर्तिं यथा ॥ २२ ॥

वाच्यप० । त्वया × अर्ह्यते । ते गुरुणा + अर्ह्यते ॥ २२ ॥

तस्मादिमां कुशावतीं विसृज्य कुलराजधानीमयोध्यामभ्युपैतुमर्हसि कथमिव यथा ते पिता रामस्तां प्रसिद्धां कारणवशान्मानुषमूर्तिं हित्वा विष्णुमूर्तिमिवेति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-इस कारण इस कुशावतीको छोडकर कुलकी राजधानीमें चलनेको योग्य हो, जिस प्रकार तुम्हारे पिता उस कारण मात्र मनुष्य देहको त्याग कर विष्णुमूर्तिको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥

तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम् ॥
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरबन्धेन तिरोबभूव ॥ २३ ॥

अन्वयः । रघूणां प्राग्रहरः तस्याः प्रणयं प्रतीतः (सन्) तथा इति प्रत्यग्रहीत् पूः अपि अभिव्यक्तमुखप्रसादा (सती) शरीरबन्धेन तिरोबभूव ॥ २३ ॥

वाच्यप० । रघूणां प्राग्रहरेण तस्याः प्रणयः प्रतीतेन (सता) प्रत्यग्राहि पुरा अभिव्यक्तमुखप्रसादया (सत्या) × तिरोबभूवे ॥ २३ ॥

रघूणां श्रेष्ठः कुशस्तस्याः पुरः याच्ञां हृष्टः संस्तथेति स्वीकृतवान् पुराधिदेवतापीष्टलाभात्स्फुटमुखप्रसादा (सती) शरीरयोगेनांतर्दध इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ (कुश) ने उसकी इस प्रकार विनय सुन प्रसन्न हो " ऐसा ही होगा " (कहकर उसकी विनय) स्वीकार की और पुरीभी मुखसे प्रसन्नता प्रगट करती हुई अन्तर्धान हुई ॥ २३ ॥

तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस ॥
श्रुत्वा त एनं कुलराजधान्या साक्षात्पतित्वे वृतमभ्यनन्दन् ॥ २४ ॥

अन्वयः । नृपतिः तदद्भुतं रात्रिवृत्तं प्रातः संसदि द्विजेभ्यः शशंस ते श्रुत्वा एनं कुलराजधान्या साक्षात्पतित्वे वृतम् अभ्यनंदन् ॥ २४ ॥

वाच्यप० । नृपतिना × शशंसे । तैः × एषः वृतः अभ्यनन्द्यत ॥ २४ ॥

नृपतिः कुशस्तदद्भुतं रात्रिवृत्तान्तं प्रातः सभायां ब्राह्मणेभ्यः शशंस ते ब्राह्मणाः श्रुत्वैनं कुशं कुलराजधान्या साक्षात्स्वयमेव पतित्वे विषये वृतमभ्यनन्दन्निति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—राजाने वह अद्भुत रात्रिका वृत्तान्त प्रातःकाल सभामें ब्राह्मणोंसे कहा वे सुनकर साक्षात् कुलकी राजधानीका पति माना हुआ उसको सराहते हुए ॥ २४ ॥

कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः ॥
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे ॥ २५ ॥

अन्वयः । सः कुशावतीं श्रोत्रियसात्कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः (सन्) वायुरभ्रवृन्दैः इव सैन्यैरनुद्रुतः (सन्) अयोध्याभिमुखः प्रतस्थे ॥ २५ ॥

वाच्यप० । तेन + सावरोधेन (सता) सैन्यैरनुद्रुतेन (सता) अयोध्याभिमुखेन प्रतस्थे ॥ २५ ॥

सः कुशः कुशावतीं छान्दसेष्वधीनां कृत्वा यात्रानुकूले दिवसे सान्तःपुरः सन् पवनः मेघैरिव चलैरनुगतः सन्नयोध्याभिमुखः चचालेति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—वह कुशावतीको वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको दे यात्रानुकूल दिनमें रणवास सहित, बादल संग लिये पवनके समान सेनासहित अयोध्याको चला ॥ २५ ॥

सा केतुमालोपवना बृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः ॥
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे तस्याभवज्जंगमराजधानी ॥ २६ ॥

अन्वयः । केतुमालोपवना बृहद्भिः नागैः विहारशैलानुगता इव (स्थिता) रथोदारगृहा सा सेना तस्य प्रयाणे जंगमराजधानी अभवत् ॥ २६ ॥

वाच्यप० । केतुमालोपवनया + विहारशैलानुगतया इव (स्थितया) रथोदारगृहया तया सेनया + जंगमराजधान्या अभूयत ॥ २६ ॥

ध्वजमालोपवना बृहद्भिर्मातंगैः क्रीडापर्वतैरनुगतेव रथोदारागारा सा सेना तस्य कुशस्य गमने संचारिणी नगरीव बभूवेति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—ध्वजाओंकी मालारूपी उपवनोंवाली, बडे हाथीरूपी क्रीडापर्वतोंको पीछे लिये, रथरूपी ऊंचे मंदिरोंवाली वह सेना उसके चलनेपर चलती हुई राजधानीसी दीखी ॥ २६ ॥

तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम् ॥
बभौ बलौघः शशिनोदितेन वेलामुदन्वानिव नीयमानः ॥ २७ ॥

अन्वयः । आतपत्रामलमंडलेन तेन पूर्वनिवासभूमिम् प्रस्थापितः बलौघः उदितेन शशिना वेलां नीयमानः उदन्वानिव बभौ ॥ २७ ॥

वाच्यप० । प्रस्थापितेन बलौघेन + नीयमानेन + उदन्वता इव बभे ॥ २७ ॥

छत्रमंडलविम्बेन तेन कुशेन पूर्वनिवासभूमिमयोध्यां प्रति प्रस्थापितो बलसमूह उदितेन चन्द्रमसा वेलां प्राप्यमाणजलधिरिव बभाविति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०-निर्मल छत्र मण्डलवाले उसने पहली निवास भूमिकी ओर चलाई हुई सेना उदित हुए चन्द्रमासे तटकी ओर चलाये हुए समुद्रकी समान देखी ॥ २७ ॥

तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीव सोढुम् ॥
वसुंधरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यारुरोहेव रजश्छलेन ॥ २८ ॥

अन्वयः । प्रयातस्य तस्य वरूथिनीनां पीडां सोढुम् अपर्य्याप्तवतीव वसुंधरा रजश्छलेन द्वितीयं विष्णुपदम् अध्यारुरोहेव ॥ २८ ॥

वाच्यप० । अपर्य्याप्तवत्या इव वसुन्धरया × द्वितीयं विष्णुपदम् अध्यारुरुहे इव ॥ २८ ॥

प्रस्थितस्य तस्य कुशस्य बलानां पीडां सोढुमशक्तेव पृथिवी रजोमिषेण द्वितीयमाकाशमध्यारुरोहेवेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-प्रस्थान करते हुए उसकी सेनाओंका कष्ट सहनेको अशक्तसी होकर पृथ्वी मानों धूरके छलसे विष्णुके दूसरे पद आकाशको चढ़ी ॥ २८ ॥

उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती ॥
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार ॥ २९ ॥

अन्वयः । पश्चात् गमनाय पुरोनिवेशे उद्यच्छमाना पथि च व्रजन्ती नृपस्य सा सेना यत्र ददृशे तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार ॥ २९ ॥

वाच्यप० । उद्यच्छमानां पथि व्रजन्तीं नृपस्य तां सेनां यत्र ददृशुः तत्रैव (तया) सामग्र्यमतिः चक्रे ॥ २९ ॥

कुशावत्याः सकाशात्प्रयाणाग्रे निवेष्टुमुद्योगं कुर्वती मार्गे व्रजन्ती कुशस्य सा सेना यत्र पश्चात्पुरो मध्ये वा ददृशे तत्रैव कृत्स्नताबुद्धिं चकारेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०-पीछे जानेके निमित्त और आगे पडावमें उतरनेके निमित्त उद्योग करती मार्गमें जाती हुई राजाकी वह सेना जहां देखी गई वहांही समस्त दीखी ॥ २९ ॥

तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्खुराभिघाताच्च तुरंगमाणाम् ॥
रेणुः प्रपेदे पथि पङ्कभावं पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः ॥ ३० ॥

अन्वयः । तस्य नेतुः द्विपानां मदवारिसेकात् तुरंगमाणां खुराभिघातात् पथि रेणुः पंकभावं प्रपेदे पंकोपि रेणुत्वम् इयाय ॥ ३० ॥

वाच्यप० । + × रेणुना पंकभावः प्रपेदे पंकेनापि रेणुत्वम् ईये ॥ ३० ॥

शिक्षकस्य तस्य कुशस्य गजानां मदवारिभिः सेकादश्वानां खुराभिघाताच्च यथासंख्यं मार्गे धूलिः पङ्कतां प्रपेदे पङ्कोपि रेणुत्वमियायेति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०-उस नायकके हाथियोंके मदजलके छिडकानेसे घोडोंके खुरोंसे उठी हुई मार्गमें धूरि कीचपनको प्राप्त हुई और कीच धूरिपनको प्राप्त हुई ॥ ३० ॥

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना ॥
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि ॥ ३१ ॥

अन्वयः । वैन्ध्येषु मार्गैषिणी बहुधा विभिन्ना महाविरावा सा सेना रेवा इव गुहामुखानि बद्ध-प्रतिश्रुंति चकार ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । वैन्ध्येषु मार्गैषिण्या बहुधा विभिन्नया महाविरावया तया सेनया रेवया इव + चक्रे ॥ ३१ ॥

विन्ध्यसम्बन्धिषु नितम्बावकाशेषु मार्गावलोकिनी बहुधा विभिन्ना दीर्घशब्दा सा सेना नर्मदेव दरीमुखानि प्रतिध्वानवन्त्यकरोदिति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—विंध्यपर्वतकी तलैटीमें मार्ग खोजती हुई बहुत भागोंमें बटी हुई वह सेना रेवाकी समान गुहाओंके मुख गुंजार करती हुई ॥ ३१ ॥

स धातुभेदारुणयाननेमिः प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः ॥
व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ॥ ३२ ॥

अन्वयः । धातुभेदारुणयाननेमिः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः सः प्रभुः पुलिन्दैः उपपादितानि उपायनानि पश्यन् विन्ध्यं व्यलंघयत् ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । धातुभेदारुणयाननेमिना प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्येण तेन प्रभुणा + पश्यता (सता) विंध्यः व्यलंघ्यत ॥ ३२ ॥

गैरिकादीनां धातूनां भेदेनारुणरथचक्रान्तः प्रयाणध्वनियुक्ततूर्यः सः कुशः किरातैः समर्पितान्युपायनानि पश्यन्विन्ध्यमलंघयदिति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०—गेरुआदि धातुओंसे रथके लाल पहियेवाला, प्रस्थानकी ध्वनिसे मिले तुरईके शब्दवाला वह स्वामी, किरातोंकी लाई हुई भेंटोंको देखता हुआ विन्ध्याचलके पार हुआ ॥ ३२ ॥

तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम् ॥
अयत्नवालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः ॥ ३३ ॥

अन्वयः । तदीये तीर्थे गजसेतुबन्धात् प्रतीपगां गंगामुत्तरतः अस्य नभोलंघनलोलपक्षाः हंसाः अयत्नवालव्यजनीबभूवुः ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । नभोलंघनलोलपक्षैः हंसैः अयत्नवालव्यजनीबभूवे ॥ ३३ ॥

तदीये वैन्ध्येऽवतारे हस्तिसेतुबन्धात्पश्चिमवाहिनीं गङ्गामुत्तरतोस्य कुशस्य नभोलंघनेन चञ्चलपक्षा हंसा अयत्नचामराण्यभूवन्निति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०—उस (विन्ध्य) के घाटपर हाथियोंका सेतुबंधनेसे पश्चिमवाहिनी गंगाको उतरते हुए इसके आकाशकी ओर उडते हुए चलायमान पंखवाले हंस विनायत्न ही चमर बने ॥ ३३ ॥

स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद्भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् ॥
सुरालयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्रोतसं नौलुलितं ववन्दे ॥ ३४ ॥

अन्वयः । सः कपिलेन रोषात् भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् पूर्वजानां सुरालयप्राप्तिनिमित्तं नौलुलितं त्रैस्रोतसम् अंभः ववन्दे ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । तेन + अम्भः ववन्दे ॥ ३४ ॥

सः कुशः कपिलेन मुनिना क्रोधाद्भस्मावशेषीकृतदेहानां वृद्धानां सगरसुतानां स्वर्गप्राप्तौ निमित्तं नौभिः क्षुभितं गाङ्गमम्भो ववन्द इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०-वह कपिलदेवजीके रोषसे देहकी भस्म शेष रहे पुरुषोंको स्वर्ग प्राप्त करानेवाले नावोंसे हिलतेहुए तीन स्रोतवाली (गंगा) के जलको प्रणाम करता हुआ ॥ ३४ ॥

इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः ॥
वेदिप्रतिष्ठान्विततताध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । इति कैश्चिदहोभिरध्वनः अन्ते सरय्वाः कूलं समासाद्य वितताध्वराणां रघूणां वेदिप्रतिष्ठान् यूपान् शतशः अपश्यत् ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । तेन + वेदिप्रतिष्ठाः यूपाः शतशः अदृश्यन्त ॥ ३५ ॥

इति कैश्चिदहोभिरध्वनोऽवसाने कुशः सरय्वास्तटं प्राप्य विस्तृतयज्ञानां रघूणां वेदिप्रतिष्ठान्यज्ञस्तम्भाञ्छतशोऽपश्यदिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०-इस प्रकार कुछेक दिनोंमें मार्गके अन्तपर सरयूका तीर प्राप्त करके कुशने महायज्ञ करनेवाले रघुवंशियोंके वेदियोंमें खडेहुए स्तम्भोंके सैकडे देखे ॥ ३५ ॥

आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्ट्वा च शीतान्सरयूतरंगान् ॥
तं क्लान्तसैन्यं कुलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः ॥ ३६ ॥

अन्वयः । कुलराजधान्याः उपवनान्तवायुः कुसुमद्रुमाणां शाखा आधूय शीतान्सरयूतरंगान् च स्पृष्ट्वा क्लान्तसैन्यं तं प्रत्युज्जगाम ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । वायुना क्लान्तसैन्यः स प्रत्युज्जग्मे ॥ ३६ ॥

वंशराजधान्या उपवनान्तवायुः पुष्पवृक्षाणां शाखाः आधूय शीतान्सरयूतरंगान् स्पृष्ट्वा श्रमितसैन्यं तं कुशं प्रत्युजगामेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०-कुलराजधानीके बगीचोंकी पवन फूलवाले वृक्षोंकी शाखाको कंपाकर और शीतल सरयूकी तरंगोंको छूकर उस थकी हुई सेनावालेको आगे मिली ॥ ३६ ॥

अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा ॥
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयमास बली बलानि ॥ ३७ ॥

अन्वयः । अथ रिपुमग्नशल्यः पौरसखः कुलध्वजः बली स राजा चलध्वजानि बलानि तस्याः पुरः उपशल्ये निवेशयामास ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । रिपुमग्नशल्येन पौरसखेन कुलध्वजेन बलिना तेन राज्ञा + निवेशयाञ्चक्रिरे ॥३७॥

अथ शत्रुषु मग्नशरः प्रकृतीनां सखः कुलकेतुः बली स राजा चलध्वजानि सैन्यानि तस्याः पुरो ग्रामान्ते निवेशयामासेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-तब शत्रुओंमें बाण मारनेवाले, पुरवासियोंके सखा, कुलके ध्वजा, बली, उस राजाने चलायमान ध्वजावाली सेना उस पुरीके आसपासकी भूमिमें ठहराई ३७॥

तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां संभृतसाधनत्वात् ॥
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम् ॥३८ ॥

अन्वयः । प्रभुणा नियुक्ताः शिल्पिसंघाः संभृतसाधनत्वात् तथागतां तां मेघा अपां विसर्गात् निदाघग्लपिताम् उर्वीमिव पुरं नवीचक्रुः ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । प्रभुणा नियुक्तैः शिल्पिसंघैः तथागता सा मेघैः अपां विसर्गात् निदाघग्लपिता उर्वी इव पूः नवीचक्रे ॥ ३८ ॥

प्रभुणा नियुक्ताः तक्षादीनां समूहाः मिलितोपकरणत्वाच्छून्यामयोध्यां मेघाः जलसेकाद् ग्रीष्मतप्तां पृथिवीमिव परिपूरयांचक्रुरिति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०-स्वामीके नियुक्त किये कारीगरोंके समूहने सामग्री संग्रह करके उस दशाको प्राप्त हुई, मेघोंके जल वर्षानेसे गरमीकी तपाई हुई भूमिकी समान वह पुरी नई करदी ॥ ३८ ॥

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः ॥
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिर्निर्वर्तयामास रघुप्रवीरः ॥ ३९ ॥

अन्वयः । ततः रघुवीरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः पुरः उपोषितैः वास्तुविधानविद्भिः सपशूपहारां सपर्यां निर्वर्तयामास ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । ततः रघुप्रवीरेण × सपशूपहारा सपर्य्या निर्वर्तयाञ्चक्रे ॥ ३९ ॥

ततः कुशः प्रशस्तदेवतायतनायाः पुरः उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिः प्रयोज्यैः पशूपहारैः सहितां सपर्यां कारयामासेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०-तब रघुप्रवीर (कुश)ने महामोलकी मूर्तियुक्त मंदिरोंवाली पुरीका उपासे व्रतधारे वास्तुविधि (नये मन्दिरकी पूजा) जाननेवालोंसे पशुओंके बलिदानसहित पूजन कराया ॥ ३९ ॥

तस्याः स राजोपपदं निशान्तं, कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य ॥
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं संभावयामास यथाप्रधानम् ॥ ४० ॥

अन्वयः । सः तस्याः राजोपपदं निशान्तं कामी कान्ताहृदयम् इव प्रविश्य अन्यैरनुजीविलोकं यथाप्रधानं यथार्हं संभावयामास ॥ ४० ॥

वाच्यप० । तेन × संभावयाञ्चक्रे ॥ ४० ॥

स. कुशस्तस्याः पुरः राजभवनं कामी स्त्रीहृदयमिव प्रविश्यान्यैर्निशान्तैरमात्यादिकं मान्यानुसारेण यथोचितं संभावयामासेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०-उसने उस पुरीके राजभवनमें स्त्रीके मनमें कामीके समान प्रवेश करके दूसरे मंत्री आदिको योग्यताके अनुसार स्थान देकर सन्मान किया ॥ ४० ॥

सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः ॥
पूरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी ॥ ४१ ॥

अन्वयः । विपणिस्थपण्या सा पूः मंदुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तंभगतैः नागैः च सर्वांगनद्धाभरणा नारी इव आवभासे ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । विपणिस्थपण्यया तया पुरा × सर्वांगनद्धाभरणया नार्या इव आवभासे ॥ ४१ ॥

विपणिस्थपण्या सा अयोध्या तुरंगशालासंश्रयशीलैरश्वैः शालागृहेषु विधिस्थापितस्तम्भप्राप्तैः गजैः सर्वांगेषु नद्धभूषणा नारीव शुशुभ इति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०-बजारमें धरी हुई बेचनेकी वस्तुवाली वह पुरी, घुडसालमें बंधेहुए घोडों और हाथी शालामें विधिपूर्वक गडे स्तंभोंमें बंधे हाथियोंसे सर्वांगमें गहना पहरे स्त्रीकी समान शोभित हुई ॥ ४१ ॥

वसन्स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ॥
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥ ४२ ॥

अन्वयः । स मैथिलेयः पुराणशोभामधिरोपितायां तस्यां रघूणां वसतौ वसन् दिवो भर्त्रे न स्पृहयाम्बभूव अलकेश्वराय अपि न (स्पृहयांबभूव) ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । तेन मैथिलेयेन × वसता × न स्पृहयांबभूवे ॥ ४२ ॥

सः कुशः पूर्वशोभामधिरोपितायां रघूणां राजधान्यामयोध्यायां वसन् देवेन्द्राय तथा कुबेरायापि न स्पृहयांबभूवेति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-इस जानकीके पुत्रने पहली शोभाको प्राप्त की हुई रघुवंशियोंकी पुरीमें वास करते हुए स्वर्गका और अलका पुरीका स्वामी होना भी न चाहा ॥ ४२ ॥

अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् ॥
निःश्वासहार्यांशुकमाजगाम घर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः । अथ अस्य रत्नग्रथितोत्तरीयं एकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारं निःश्वासहार्यांशुकं प्रियावेषम् उपदेष्टुमिव घर्मः आजगाम ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । घर्मेण × आजग्मे ॥ ४३ ॥

अथास्य कुशस्य मुक्तामणिभिः ग्रथितोत्तरीयमत्यन्तं पाण्डोः स्तनयोर्लम्बहारमतिसूक्ष्मांशुकं प्रियायाः नेपथ्यमुपदेष्टुमिव ग्रीष्म आजगामेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०—तब इसको रत्नजडी ओढनीवाली, अधिक गौर स्तनोंपर लटकते हारों-वाली, स्वांससे चलायमान वस्त्रोंवाली मानों प्रियाका वेश दिखानेको ग्रीष्म ऋतु आई ॥ ४३ ॥

अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते ॥
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज ॥ ४४ ॥

अन्वयः । अगस्त्यचिह्नादयनात् भास्वति समीपं सन्निवृत्ते (सति) उत्तरा दिक् आनंदशीतां बाष्पवृष्टिमिव हैमवतीं हिमस्रुतिं ससर्ज ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । उत्तरया दिशा आनन्दशीता बाष्पवृष्टिरिव हैमवती हिमस्रुतिः ससृजे ॥ ४४ ॥

अगस्त्याचिह्नाद्दक्षिणायनात् सूर्ये समीपं सन्निवृत्ते सति उत्तरा दिक् आनन्दशीतबाष्पवृष्टिमिव, हिमवत्संबन्धिनीं हिमस्रुतिं निर्मितवानिति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०—अगस्त्यके चिह्नवाले (दक्षिण) अयनसे सूर्यके निकट लौटकर आनेसे उत्तर दिशाने आनन्दके शीतल आंसुओंकी वर्षाकी समान हिमालयकी शीतल धारा छोडी ॥ ४४ ॥

प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी ॥
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम् ४५

अन्वयः । अतिमात्रं प्रवृद्धतापः दिवसः अत्यर्थम् एव तन्वी क्षणदा च उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ सानुशयौ जायापती इव आस्ताम् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । अतिमात्रं प्रवृद्धतापेन दिवसेन अत्यर्थमेव तन्व्या क्षणदया च उभाभ्यां + जाया-पतिभ्याम् इव अभूयत ॥ ४५ ॥

अत्यंतवृद्धतापदिवसः अत्यन्तकृशा रात्रिश्चोभौ प्रणयकलहादिना विरोधाचरणेन विभिन्नौ सानु-तापौ दंपतीवास्तामिति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—अत्यन्त ताप बढा हुआ दिन और बहुतही क्षीण रात्रि यह दोनों विरुद्ध आचरणसे पश्चात्ताप करतेहुए स्त्री पुरुषके समान हुए ॥ ४५ ॥

दिनेदिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः ॥
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥ ४६ ॥

अन्वयः । दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात् सोपानपर्वाणि विमुंचत् (अत एव) उद्दण्डपद्मं गृहदी-र्घिकाणाम् अंभः नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । सोपानपर्वाणि विमुंचता + अम्भसा नारीनितम्बद्वयसेन बभूवे ॥ ४६ ॥

दिनेदिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदुद्दण्डकमलं गृहदीर्घिकाणां जलं स्त्रीनितम्बप्रमाण-मभूदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-दिन दिन शिवाल उपजी हुई नीचेकी सीढियोंको छोडता हुआ, खडी डंडीके कमलोंवाला, घरकी वावडियोंका जल स्त्रीकी कमरतक गहरा रहगया ॥ ४६ ॥

वनेषु सायंतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु ॥
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं सङ्ख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार ॥ ४७ ॥

अन्वयः । वनेषु विजृंभणोद्गंधिषु सायंतनमल्लिकानां कुड्मलेषु सशब्दं प्रत्येकनिक्षिप्तपदः भ्रमरः एषां संख्यामिव चकार ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । सशब्देन प्रत्येकनिक्षिप्तपदेन भ्रमरेण एषां संख्या इव चक्रे ॥ ४७ ॥

वनेषु विकासेनोत्कटसौरभेषु सायंतनमल्लिकानां कुड्मलेषु मकरन्दलोभात् सशब्दं यथा तथा निक्षिप्तपदः द्विरेफ एषां कुड्मलानां गणनां चकारेति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०-वनोंमें खिलनेके कारण महासुगन्धिवाली सन्ध्यासमयकी चमेलीकी कलियोंमें (मकरन्दके लोभसे) शब्दपूर्वक एक एकपर चरण रखते हुए भौंरेने मानों इनकी गिन्ती की ॥ ४७ ॥

स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले ॥
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात ॥ ४८ ॥

अन्वयः । स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षतांके कामिनीनां कपोले भूयिष्ठसंदष्टशिखम् (अत एव) कर्णात् च्युतमपि शिरीषपुष्पं सहसा न पपात ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । भूयिष्ठसंदष्टशिखेन कर्णात् च्युतेनापि शिरीषपुष्पेण सहसा न पेते ॥ ४८ ॥

स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताचिह्ने तरुणीनां कपोलेऽत्यर्थं विश्लिष्टकेसरं कर्णाच्च्युतमपि शिरीषकुसुमं सहसा न पपातेति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०-पसीनेसे भीजेहुए नवीन नखक्षत चिह्नवाले कामिनीके कपोलपर अत्यन्त केशर लिपटाहुआ कर्णसे गिरकर भी शिरसका फूल सहसा न गिरा ॥ ४८ ॥

यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान्रसेन धौतान्मलयोद्भवस्य ॥
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः ॥ ४९ ॥

अन्वयः । ऋद्धिमन्तः धारागृहेषु शिशिरैः यंत्रप्रवाहैः परीतान् मलयोद्भवस्य रसेन धौतान् शिलाविशेषान् अधिशय्य आतपं निन्युः ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । ऋद्धिमद्भिः + + + आतपः निन्ये ॥ ४९ ॥

धनिका यन्त्रधारागृहेषु शिशिरैर्यन्त्रसंचारितसलिलपूरैर्व्याप्तानि मलयोद्भवस्य चन्दनोदकेन क्षालितानि मणिमयासनान्यधिशय्यातपपरिहारं चक्रुरिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-धनी पुरुषोंने जलके मंदिरोंमें शीतलयन्त्रके प्रवाहोंसे छिडकी मलयगिरिके जलसे धोई, विशेष प्रकारकी शिलाओंमें सोकर दुपहरी विताई ॥ ४९ ॥

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु ॥
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । वसन्तात्ययमन्दवीर्यः कामः स्नानार्द्रमुक्तेषु अनुधूपवासं विन्यस्तसायन्तनमल्लिकेषु अंगनानां केशेषु बलं लेभे ॥ ५० ॥

वाच्यप० । वसन्तात्ययमन्दवीर्येण कामेन बलं + लेभे ॥ ५० ॥

वसन्तस्यातिक्रमेण दुर्बलः कामः स्नानार्द्रमुक्तेषु धूपवासानन्तरं सायंतनमल्लिकेषु तरुणीनां केशेषु बलं लेभ इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—वसन्तके बीतनेसे पराक्रमहीन कामने स्नानसे गीले स्नानके चूर्ण लगानेको खोले, संध्याकी चमेली रक्खे हुए स्त्रियोंके केशोंमें बल पाया ॥ ५० ॥

आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य ॥
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य ॥ ५१ ॥

अन्वयः । बद्धरजःकणत्वात् आपिंजरा उदारा अर्जुनस्य मंजरी देहं दग्ध्वापि रोषात् गिरिशेन खंडीकृता मनोभवस्य ज्या इव शुशुभे ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । + आपिंजरया उदारया अर्जुनस्य मंजर्या × खण्डीकृतया × ज्यया इव शुशुभे ॥ ५१ ॥

व्याप्तरजःकणत्वादापिञ्जरोदारा ककुभवृक्षस्य मञ्जरी देहं दग्ध्वापि शिवेन खण्डीकृता कामस्य मौर्वीव शुशुभ इति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—रजःकणके लगनेसे बडी, लाल अर्जुनवृक्षकी मंजरी, देह जलाकर भी क्रोधित शिवजीसे तोडीहुई कामदेवकी प्रत्यंचाकी समान शोभित हुई ॥ ५१ ॥

मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च ॥
संबध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः ॥ ५२ ॥

अन्वयः । मनोज्ञगंधं सहकारभंगं पुराणशीधुं नवपाटलं च संबध्नता निदाघावधिना कामिजनेषु सर्वे दोषाः प्रमृष्टाः ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । + संबध्नन् निदाघावधिः सर्वान् दोषान् प्रमृष्टवान् ॥ ५२ ॥

मनोहरगन्धि सहकारपल्लवखण्डम् वासितं मधु नवं पाटलायाः कुसुमं संघट्टयता ग्रीष्मकालेन कामिजनेषु विषये सर्वे तापादयः दोषाः परिहृता इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—मनोहर गंधयुक्त आमके पत्ते और पुरानी मदिरा और नये पाटलके फूल संचय करनेवाली ग्रीष्मने कामी पुरुषोंके सब दुःख दूर किये ॥ ५२ ॥

जनस्य तस्मिन्समये विगाढे बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ ॥
तापापनोदक्षमपादसेवौ स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च ॥ ५३ ॥

अन्वयः । तस्मिन् समये विगाढे (सति) जनस्य तापापनोदक्षमपादसेव्यौ उदयस्थौ द्वौ सविशेषकान्तौ बभूवतुः (कौ द्वौ) स च नृपतिः शशी च ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । तापापनोदक्षमपादसेव्याभ्याम् उदयस्थाभ्यां द्वाभ्यां सविशेषकान्ताभ्यां बभूवे (काभ्यां द्वाभ्यां) तेन नृपतिना शशिना च ॥ ५३ ॥

तस्मिन्काले कठिने ग्रीष्मे सति जनस्य द्वौ सातिशयं कान्तौ बभूवतुस्तापापनोदसमर्थचरणसेव्यावभ्युदयस्थौ नृपतिः शशी चेति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—उस कठिन समयमें प्रजाको दो ही अधिक प्यारे हुए, तापके मिटानेमें समर्थ, पादसेवासे उदयको प्राप्त होताहुआ वह राजा और चन्द्रमा ॥ ५३ ॥

अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः ॥
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव ॥ ५४ ॥

अन्वयः । अथ ऊर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे ग्रीष्मसुखे सरय्वाः अंभसि तस्य वनितासखस्य विहर्त्तुम् इच्छा बभूव ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । इच्छया बभूवे ॥ ५४ ॥

अथोर्मिषु तृष्णोन्मदराजहंसे रोधोलताकुसुमानां प्रापके घर्मेषु सुखकरे सरय्वाः पयसि तस्य कुशस्य वनिताभिः सह विहर्तुमिच्छा बभूवेति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०—तब तरंगोंके लोभी उन्मत्त राजहंसोंवाले, तटकी लताओंके फूल बहानेवाले, ग्रीष्मके सुखकारी, (उस) सरयूके जलमें उस स्त्रियोंके सखाकी विहार करनेकी इच्छा हुई ॥ ५४ ॥

स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिस्तामपकृष्टनक्राम् ॥
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः ॥ ५५ ॥

अन्वयः । चक्रधरप्रभावः सः तीरभूमौ विहितोपकार्याम् आनायिभिः अपकृष्टनक्राम् तां श्रीमहिमानुरूपं विगाहितुं प्रचक्रमे ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । चक्रधरप्रभावेण तेन तीरभूमौ विहितोपकार्या आनायिभिः अपकृष्टनक्रा सा श्रीमहिमानुरूपं विगाहितुं प्रचक्रमे ॥ ५५ ॥

विष्णुतेजाः स कुशस्तीरभूमौ विहितोपकार्यां जालिकैरपनीतग्राहां तां सरयूं संपत्प्रभावानुरूपं विगाहितुं प्रचक्रम इति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०—विष्णुके समान तेजस्वी वह डेरे तने तीरवाली, धीमरोंसे मगर निकालीहुई उस नदीको अपनी लक्ष्मी और महिमाके अनुसार अवगाहन करने लगा ॥ ५५॥

सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः ॥
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदंगनाभिः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । सा सरित् तीरसोपानपथावतारात् अन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः सनूपुरक्षोभपदाभि अङ्गनाभिः उद्विग्नहंसा आसीत् ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । तया सरिता अन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः सनूपुरक्षोभपदाभिः अंगनाभिः उद्विग्नहंसया अभूयत ॥ ५६ ॥

सा सरयूः तीरसोपानमार्गेणावतारात्संनद्धाङ्गदसंघट्टिनीभिः सनूपुरस्खलितचरणाभिरंगनाभिः भीतहंसाऽसीदिति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०–वह नदी किनारेके सीढियोंका मार्ग उतरनेमें एक दूसरेको भुजबन्धको रगडती हुई, बजते हुए नूपुरोंसे पैर रखती हुई स्त्रियोंसे भयव्याकुल हंसोंवाली हुई ॥ ५६ ॥

परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां नृपो मज्जनरागदर्शी ॥
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीमुपात्तवालव्यजनां बभाषे ॥५७ ॥

अन्वयः । नौसंश्रयः परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां मज्जनरागदर्शी नृपः पार्श्वगताम् उपात्तवालव्यजनां किरातीं बभाषे ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । नौसंश्रयेण मज्जनरागदर्शिना नृपेण पार्श्वगता उपात्तवालव्यजना किराती बभाषे ॥ ५७ ॥

नौसंश्रयः परस्परसेचन आसक्तानां स्त्रीणां मज्जनरागदर्शी स नृपः निकटवर्तिनीं चामरग्राहिणीं किरातीं बभाप इति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–नावपर बैठे हुए, उन परस्पर जल फेंकतीहुईयोंके स्नानकी शोभा देखनेवाले राजाने चमर हाथमें लिये निकट खडी हुई किरातीसे कहा ॥ ५७ ॥

पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः ॥
संध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः ॥ ५८ ॥

अन्वयः । गलितांगरागैः मदीयैः शतशोवरोधैः विगाह्यमान एष सरयूप्रवाहः साभ्रः संध्योदय इव अनेकं वर्णं पुष्यति पश्य ॥ ५८ ॥

वाच्यप० । विगाह्यमानेन अनेन सरयूप्रवाहेण साभ्रेण संध्योदयेन इव अनेकः वर्णः पुष्यते (त्वया) दृश्यताम् ॥ ५८ ॥

गलितांगरागैर्मदीयैः शतशोवरोधैर्विलोड्यमाना एष सरयूप्रवाहः समेघः संध्याविर्भाव इव नानाविधं रक्तपीतादिकं वर्णं पुष्यति त्वं पश्येति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–धुए अङ्गरागोंवाली मेरे रनवासकी सैकडों स्त्रियोंसे अवगाहन किया हुआ यह सरयूका प्रवाह, बादल सहित संध्याके उदयके समान अनेक रंग दिखाता है (सो तूं) देख ॥ ५८ ॥

विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः ॥
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः । नौलुलिताभिः अद्भिः अन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं विलुप्तं तद्विलोचनेषु मदरागशोभां बध्नतीभिः आसां प्रतिमुक्तम् ॥ ५९ ॥

वाच्यप० । नौलुलिताः आपः यदञ्जनं विलुप्तवत्यः × मदरागशोभां बध्नत्यः आसां प्रतिमुक्त-

था, वही उनके मदरागकी शोभाको दिखाते हुए (जलोंने) फिर दे दिया ॥ ५९ ॥

एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः ॥
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते ॥ ६० ॥

अन्वयः । गुरुश्रोणिपयोधरत्वात् आत्मानम् उद्वोढुमशक्नुवत्यः एताः बाला गाढांगदैः बाहुभिः क्लेशोत्तरं रागवशात् अप्सु प्लवन्ते ॥ ६० ॥

वाच्यप० । उद्वोढुमशक्नुवतीभिः एताभिः प्लूयते ॥ ६० ॥

दुर्वहश्रोणिपयोधरत्वादेहमुद्वोढुमशक्नुवत्य एता रमण्यः श्लिष्टांगदैर्भुजैः दुःखप्रायं यथा तथा क्रीडाभिनिवेशपारतन्त्र्यात्तरन्तीति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०—भारी नितम्ब और पयोधर होनेसे अपनेको लेचलनेमें असमर्थ यह स्त्री गाढे भुजबन्धवाली बाँहोंसे दुःख सहती हुई खेलके वश हो जलोंमें पैरती हैं ॥ ६० ॥

अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम् ॥
पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः शैवाललोलांश्छलयन्ति मीनान् ॥ ६१ ॥

अन्वयः । वारिविहारिणीनां प्रभ्रंशिनः निम्नगायाः स्रोतसि पारिप्लवा अमी शिरीषप्रसवावतंसाः शैवाललोलान् मीनान् छलयंति ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । वारिविहारिणीनां प्रभ्रंशिभिः निम्नगायाः स्रोतसि पारिप्लवैः अमीभिः शिरीषप्रसवावतंसैः शैवाललोलाः मीनाः छल्यंते ॥ ६१ ॥

जलविहारिणीनामासां भ्रष्टाः सरय्वाः स्रोतसि चञ्चला अमूः शिरीषप्रसवकर्णभूषाः जलनीलीप्रियान् मीनान्प्रादुर्भावयन्तीति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०—जलमें विहार करनेवालियोंके गिरे हुए नदीकी धारमें तैरते यह शिरसफूलके गहने शिवालकी लोभवाली मछलियोंको छलते हैं ॥ ६१ ॥

आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु ॥
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः ॥६२॥

अन्वयः । जलास्फालनतत्पराणाम् आसां मुक्ताफलस्पर्धिषु पयोधरोत्सर्पिषु शीकरेषु शीर्यमाणः हारः छिदुरोपि न संलक्ष्यते ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । शीर्यमाणेन हारेण छिदुरेणापि न संलक्ष्यते ॥ ६२ ॥

जलास्फालन आसक्तानां स्त्रीणां मौक्तिकानुकारिषु स्तनेषूत्पतत्सु शीकरेषु गलन्हारः स्वयं छिन्नोपि न संलक्ष्यत इति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०—जल झकोरनेमें तत्पर इन स्त्रियोंके मोतियोंकी लजानेवाली, स्तनोंपर गिरनेवाली बूंदोंमें, टूटेहुए हारभी स्वयं टूटे नहीं जाने जाते ॥ ६२ ॥

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम् ॥
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ॥६३॥

अन्वयः । विलासिनीनां रूपावयवोपमानानि अदूरवर्तीनि जातानि नतनाभिकान्तेः आवर्तशोभा भ्रुवां भंगः स्तनानां द्वंद्वचराः ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । रूपावयवोपमानैः अदूरवर्तिभिः जातैः (भूयते) आवर्तशोभया (भूयते) भ्रुवां भगेन स्तनानां द्वंद्वचरैः (भूयते) ॥ ६३ ॥

विलसनशीलानां तरुणीनां रूपावयवानां यानि लोकप्रसिद्धानि उपमानानि तान्यन्तिकगतानि जातानि कस्य किमुपमानमित्यत्राह—निम्ननाभिशोभया आवर्तशोभा भ्रुवां भङ्गुस्तरङ्गः स्तनानां द्वंद्वचराश्चक्रवाका इति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०—विलासनियोंके रूपके अवयवोंकी उपमा निकटही प्राप्त हैं, गहरी नाभिकी शोभाको भ्रमरकी शोभा, भौंको तरंग और स्तनोंको चकवा चकवीके जोडे ६३॥

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम् ॥
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः । उत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैः तीरस्थलीबर्हिभिः अभिनंद्यमानं रक्तं गीतानुगम् आसां वारिमृदङ्गवाद्यं श्रोत्रेषु संमूर्छति ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । अभिनन्द्यमानेन रक्तेन गीतानुगेन × वारिमृदङ्गवाद्येन × संमूर्च्छ्यते ॥ ६४ ॥

उच्चबर्हैः मधुरकेकैस्तीरस्थलीषु स्थितैर्मयूरैरभिनन्द्यमानः श्राव्यः गीतानुसार्यासां स्त्रीणां जलमृदङ्गस्य वाद्यध्वनिः श्रोत्रेषु व्याप्नोतीति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—उठाईहुई पूंछवाले मनोहर बोलनेवाले, तीरके स्थानोंमें बसनेवाले, मोरोंकी सराहना की हुई श्रवण योग्य इन स्त्रियोंके जलरूपी मृदंगकी ध्वनि कानोंमें पडती है ॥ ६४ ॥

संदष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः ॥
अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः ॥ ६५ ॥

अन्वयः । संदष्टवस्त्रेषु अवलानितंबेषु इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः अमी जलापूरितसूत्रमार्गाः रशनाकलापाः मौनं भजंते ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्यैः अमीभिः जलापूरितसूत्रमार्गैः रशनाकलपैः मौनं भज्यते ॥ ६५ ॥

संदष्टवस्त्रेषु जलसेकात्संश्लिष्टांशुकेषु तरुणीनां नितम्बेषु चन्द्रप्रकाशेनावृतनक्षत्रतुल्या अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मेखलाकलापा निःशब्दतां भजन्त इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—कपडा लपेटे, अवलाओंके नितम्बोंपर चांदनीसे ढके तारोंकी समान ये जल भरे छेदोंवाले कोंधनींके घूंघरू मौन साध रहे हैं ॥ ६५ ॥

एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः ॥
वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमंति ॥ ६६ ॥

अन्वयः । दर्पात् करोत्पीडितवारिधाराः सखीभिः वदनेषु सिक्ताः एताः तरुण्यः वक्रे तराग्रैः अलकैः चूर्णारुणान्वारिलवान्वमंति ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । दर्पात् करोत्पीडितवारिधाराभिः × वदनेषु सिक्ताभिः एताभिः तरुणीभिः चूर्णारुणाः वारिलवाः वम्यंते ॥ ६६ ॥

अहंकारात्सखीजनं प्रति हस्तोत्सारितजलधाराः पुनरपि सखीभिर्वदनेषु सिक्ता एता रमण्यः जलसेकादृज्वग्रैरलकैः कुंकुमादिभिररुणान् जलबिन्दून् वर्षन्तीति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०—अभिमानसे जलधाराको हाथसे उछालती हुई, सखियोंसे मुखोंपर भिजोई हुई यह स्त्री सीधी नोकवाली अलकोंसे कुमकुमके रंगवाली लाल बूंदोंको बरसाती हैं ॥ ६६ ॥

उद्बन्धकेशश्च्युतपत्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः ॥
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥ ६७ ॥

अन्वयः । उद्बन्धकेशच्युतपत्रलेखः विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः (एवम्) अंभोविहाराकुलितोपि प्रमदामुखानां वेषः मनोज्ञ एव ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । उद्बन्धकेशेन च्युतपत्रलेखेन विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टेन (एवम्) अंभोविहाराकुलितेनापि × वेषेण मनोज्ञेन एव भूयते ॥ ६७ ॥

उद्भ्रष्टकेशः क्षतपत्ररचनः विस्रंसिमुक्तामयताटङ्कोऽम्भोविहाराकुलितोपि स्त्रीमुखानां वेषः मनोज्ञ एवेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०—बालोंके छूटनेसे धुली अंग रचनावाला, खुले मोतियोंके कर्णफूलोंवाला, जलविहारसे व्याकुलभी स्त्रियोंका वेष मनोहरही है ॥ ६७ ॥

स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु ॥
स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः ॥ ६८ ॥

अन्वयः । सः नौविमानादवतीर्य विलोलहारः (सन्) ताभिः सह करेणुभिः (सह) स्कंधावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः वन्यद्विपेन्द्रः इव अप्सु रेमे ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । तेन + विलोलहारेण (सता) + स्कंधावलग्नोद्धृतपद्मिनीकेन वन्यद्विपेन्द्रेण इव अप्सु रेमे ॥ ६८ ॥

स कुशः नौविमानादवतीर्य चंचलहारः संस्ताभिः प्रमदाभिः सह करेणुभिः सह स्कंधावलग्नोत्पाटितनलिनीकः सन् वन्यद्विपेन्द्र इव जलेषु रेम इति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०—उस नावरूपी विमानसे उतरकर लटकते हुए हारवालेने उन (स्त्रियों) के साथ हथिनियोंके संग उखाडी कमलनियोंको कंधेपर डाले वनके हाथीके समान जलों: में विहार किया ॥ ६८ ॥

ततो नृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः ॥
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् ६९॥

अन्वयः । ततो भ्राजिष्णुना नृपेणानुगताः ताः स्त्रियः सातिशयं विरेजुः प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः उन्मयूखम् इन्द्रनीलं प्राप्य किमुत ॥ ६९ ॥

वाच्यप० ।। अनुगताभिः ताभिः स्त्रीभिः विरेजे मुक्ताभिः नयनाभिरामाभिः (भूयते) ॥६९॥

ततः प्रकाशनशीलेन नृपेण संगतास्ताः स्त्रियः सातिशयं यथा तथा विरेजुः । इन्द्रनीलयोगात्पूर्वमेव मुक्तामणयो नेत्राभिरामाः भवन्ति । उन्मयूखमिन्द्रनीलं प्राप्य किमुतेति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०—तब दीप्तिमान् राजाके संग वे स्त्रियें बहुतही शोभित हुईं, पहलेही मोती नेत्रोंको आनंददायक होते हैं, फिर दीप्तिमान् इन्द्रनीलमणिको प्राप्त होकर क्या कहना है ॥ ६९ ॥

वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन् ॥
तथागतः सोऽतितरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः ॥ ७० ॥

अन्वयः । तम् आयताक्ष्यः कांचनशृंगमुक्तैः वर्णोदकैः प्रणयादसिंचन् तथागतः सः सधातुनिष्यंदः अद्रिराज इव अतितरां बभासे ॥ ७० ॥

वाच्यप० । स आयताक्षीभिः + असिच्यत तथागतेन तेन + अद्रिराजेन इव अतितरां बभासे ॥ ७० ॥

तं कुशं दीर्घविलोचनाः काञ्चनशृंगमुक्तैः कुंकुमादिवर्णद्रव्यसहितोदकैः स्नेहादसिञ्चन् स कुशः गैरिकद्रव्ययुक्तो गिरिराज इवात्यर्थं चकास इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०-उसको विशाल नेत्रवाली सोनेकी पिचकारियोंसे छूटे हुए रंगीले जलोंसे प्रेमसहित भिजोती हुई, इस अवस्थामें वह गेरू आदि धातुके झरनोसहित गिरिराजके समान अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ७० ॥

तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरां ताम् ॥
आकाशगङ्गारतिरप्सरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः ॥ ७१ ॥

अन्वयः । अवरोधप्रमदासखेन तां सरिद्वरां विगाहमानेन तेन आकाशगंगारतिः अप्सरोभिः वृतः मरुत्वाननुय तलील: (अभूत्) ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । वृतेन मरुत्वता अनुयातलीलेन (अभावि) ॥ ७१ ॥

अन्तःपुरसुन्दरीसहचरेण तां सरिच्छ्रेष्ठां सरयूं विगाहमानेन तेन कुशेनाकाशगंगारतिरप्सरोभिरावृतो मघवाननुकृतलक्ष्मीरभूदिति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०-रनवासकी स्त्रियोंके सखा,उस श्रेष्ठ नदीमें अवगाहन करते हुए उसने आकाशगंगामें क्रीडा करनेवाले अप्सराओंके सखा इन्द्रकी बराबरी की ॥ ७१ ॥

यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश ॥
तदस्य जैत्राभरणं विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज ॥ ७२ ॥

अन्वयः । यत् (आभरणं) रामः कुंभयोनेः अधिगम्य कुशाय राज्येन समं दिदेश सलिले विहर्तुः अस्य तज्जैत्राभरणम् अज्ञातपातं (सत्) ममज्ज ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । यद्रामेण दिदिशे + तेन जैत्राभरणेन अज्ञातपातेन (सता) ममज्जे ॥ ७२ ॥

यदाभूषणं रामः अगस्त्यादधिगम्य कुशाय राज्येन समं ददौ जले क्रीडितुरस्य कुशस्य तज्जयशीलमाभरणमज्ञातपातं सन्ममज्जेति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०-जिस आभरणको रामने अगस्त्यजीसे पाकर कुशको राज्यके संग दियाथा, जलमें विहार करनेवाले इसका वह जयशील भूषण विना जाने जलमें डूब गया॥७२॥

स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्यां गतमात्र एव ॥
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श ॥ ७३ ॥

अन्वयः । असौ सदारः (सन्) यथाकामं स्नात्वा तीरोपकार्यां गतमात्र एव अपोढनेपथ्यविधिः दिव्येन वलयेन शून्यं बाहुं ददर्श ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । अमुना सदारेण (सता) + गतमात्रेण एव अपोढनेपथ्यविधिना + शून्यः बाहुः ददृशे ॥ ७३ ॥

असौ कुशः सदारः सन् यथेच्छं विगाह्य तीरोपकार्यां गत एवाकृतप्रसाधन एव दिव्येन वलयेन शून्यं भुजं ददर्शेति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०-इसने स्त्रीसहित इच्छापूर्वक स्नान करके तटके डेरेमें जातेही, कपडे विना बदले दिव्यभुजबन्दसे बाहु शून्य देखी ॥ ७३ ॥

जयश्रियः संवननं यतस्तदामुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात् ॥
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः ॥ ७४ ॥

अन्वयः । यतः तत् जयश्रियः संवननं यस्मात् च पूर्वं गुरुणा आमुक्तम् अतः अस्य भ्रंशं न सेहे लोभात् न हि सः धीरः तुल्यपुष्पाभरणः ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । तेन * संवननेन (अभूयत) गुरुणा आमुक्तेन (अभूयत) हि तेन धीरेण तुल्यपुष्पाभरणेन (अभावि) ॥ ७४ ॥

यतः तदाभरणं जयश्रियः वशीकरणं यस्माच्च पित्रा रामेण पूर्वं धृतमतो हेतोरस्याभरणस्य नाशं न सेहे, लोभान्न, यस्माद्विद्वान्सः कुशः पुष्पेष्वाभरणेषु धृतेषु निर्माल्यबुद्धिं करोतीति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०-जो कि वह जयलक्ष्मीका वशीकरण था, और इस कारण कि वह पहले पिताका पहरा हुआथा, इस निमित्त इसका खोजाना इसने न सहा, न कि लोभसे, कारण किं उस धीरको फूल और गहने तुल्य थे ॥ ७४ ॥

ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानायिनस्तद्विचये नदीष्णान् ॥
वन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः ॥ ७५ ॥

अन्वयः । ततः नदीष्णान् सर्वान् आनायिनः तद्विचये आशु समाज्ञापयत्, ते सरयूं विगाह्य वन्ध्यश्रमाः अम्लानमुखप्रसादाः तम् ऊचुः ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । (तेन) नदीष्णाः सर्वे आनायिनः + समाज्ञाप्यंत + तैः वन्ध्यश्रमैः अम्लानमुखप्रसादैः स ऊचे ॥ ७५ ॥

ततः नदीष्णान् सर्वान् जालिकांस्तस्याभूषणस्यान्वेषणे आश्वादिदेश त आनायिनः सरयूं विलोड्य विफलप्रयासास्तथापि तद्वार्तां ज्ञात्वा सश्रीकमुखाः सन्तः तं कुशमूचुरिति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०-तब नदीमें घुसनेवाले सब धीमरोंको उसके ढूंढनेकी शीघ्र आज्ञा दी, वे सरयूको ढंढोलकर वृथा श्रम होनेपरभी विना मुखकी मलिनताके हससे बोले ॥ ७५ ॥

कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते ॥
नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनमुपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत् ॥ ७६ ॥

अन्वयः । (हे) देव ! प्रयत्नः कृतः पयसि मग्नं ते आभरणोत्तमं न च लब्धम् अन्तर्ह्रदवासिना कुमुदेन नागेन लौल्यात् उपात्तं नूनम् ॥ ७६ ॥

वाच्यप० । (वयं) प्रयत्नं कृतवन्तः + न लब्धवन्तः अन्तर्ह्रदवासी कुमुदः नागः × उपात्तवान् नूनम् ॥ ७६ ॥

हे देव ! प्रयत्नः कृतः जले मग्नं ते आभरणोत्तमं न च प्राप्तम्, किन्तु तदाभरणमंतर्ह्रदवासिना कुमुदाख्येन पन्नगेन लोभाद्गृहीतं नूनमिति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०—हे देव ! यत्न कियागया परन्तु जलमें मग्न हुआ आपका आभूषण न पाया-भीतर ह्रदमें रहनेवाले कुमुद नागने लोभसे उसे अवश्य लेलिया है ॥ ७६ ॥

ततः स कृत्वा धनुराततज्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः ॥
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी भुजंगनाशाय समाददेऽस्त्रम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः । ततः सः धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः तरस्वी तीरगतः (सन्) धनुराततज्यं कृत्वा भुजंगनाशाय गारुत्मतम् अस्त्रं समाददे ॥ ७७ ॥

वाच्यप० । ततः तेन धनुर्धरेण कोपविलोहिताक्षेण तरस्विना तीरगतेन (सता) × गारुत्मतम् अस्त्रं समाददे ॥ ७७ ॥

ततो धनुर्धरः क्रोधविलोहितनेत्रः बलवान् स कुशस्तीरगतः सन् धनुरधिज्यं कृत्वा कुमुदस्य नाशाय गरुत्मद्देवताकमस्त्रं समादद इति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—तब उस धनुषधारी, क्रोधसे लाल नेत्रवाले, बलीने तीरपर जाकर धनुषपर ज्या चढाकर सर्पके नाश करनेको गारुडास्त्र लिया ॥ ७७ ॥

तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरंगहस्तः ॥
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ॥ ७८ ॥

अन्वयः । तस्मिन् संहितमात्र एव ह्रदः क्षोभात् समाविद्धतरंगहस्तः रोधांसि निघ्नन् अवपात, मग्नः वन्यः करी इव परुषं ररास ॥ ७८ ॥

वाच्यप० । ह्रदेन × समाविद्धतरंगहस्तेन रोधांसि निघ्नता (सता) अवपातमग्नेन वन्येन करिणा इव परुषं रेसे ॥ ७८ ॥

तस्मिन्नस्त्रे संहितमात्रे सत्येव ह्रदः क्षोभात्संघट्टिततरंगहस्तः रोधांसि पातयन् वन्यः करीव घोरं दध्वानेति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—उसके चढातेही भयसे तरंगरूपी हाथ जोडते हुए ह्रदने तटको गिराते हुए गढ्ढेमें पडेहुए वनके हाथीके समान कठोर शब्द किया ॥ ७८ ॥

तस्मात्समुद्रादिव मथ्यमानादुद्वृत्तनक्रात्सहसोन्ममज्ज ॥
लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृक्षः कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः ॥ ७९ ॥

अन्वयः । मथ्यमानात् समुद्रादिव उद्वृत्तनक्रात् तस्मात् लक्ष्म्या सार्द्धं सुरराजवृक्ष इव कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः सहसोन्ममज्ज ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । सुरराजवृक्षेण इव भुजंगराजेन उन्ममज्जे ॥ ७९ ॥

मथ्यमानात्समुद्रादिव क्षुभितग्राहात्तस्माद्ध्रदात् लक्ष्म्या सार्धमिन्द्रस्य पारिजात इव कन्यां पुरस्कृत्य सर्पराजः कुमुदः सहसोन्ममज्जेति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—मथतेहुए समुद्रके समान, डरेहुए नाकोंवाले, उससे लक्ष्मी साथ लिये कल्पवृक्षके समान कन्याको साथ लिये सहसा सर्पराज निकला ॥ ७९ ॥

विभूषणप्रत्युपहारहस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशांपतिस्तम् ॥
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः ॥ ८० ॥

अन्वयः । विशांपतिः विभूषणप्रत्युपहारहस्तम् उपस्थितं तं वीक्ष्य सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार हि सन्तः प्रह्वेषु अनिर्बंधरुषः ॥ ८० ॥

वाच्यप० । विशांपतिना सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजह्रे हि सद्भिः अनिर्बंधरुड्भिः भूयते ॥ ८० ॥

मनुजपतिः कुशः विभूषणप्रत्युपहारहस्तम् प्राप्तं तं कुमुदमवलोक्य गारुत्मतमस्त्रं प्रतिसंजहार तथा हि श्रेष्ठाः नम्रेष्वनियतकोपा भवंतीति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—राजाने गहनेकी भेंट हाथमे लियेहुएको सन्मुख आया हुआ देखकर गारुडास्त्रको उतार लिया, कारण कि महात्मा विनय करनेवालोंपर शान्तकोप होतेही हैं ॥ ८० ॥

त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विषामंकुशमस्त्रविद्वान् ॥
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना मूर्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे ॥ ८१ ॥

अन्वयः । अस्त्रविद्वान् कुमुदः त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात् द्विषाम् अंकुशं मूर्धाभिषिक्तं कुशं मानोन्नतेन अपि मूर्ध्ना अभिवन्द्य बभाषे ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । अस्त्रविदा कुमुदेन त्रैलोक्यनाथप्रभवः प्रभावात् द्विषाम् अंकुशः मूर्धाभिषिक्तः कुशः बभाषे ॥ ८१ ॥

गारुडास्त्रमहिमाभिज्ञः कुमुदः त्रैलोक्यनाथादुत्पन्नं प्रभावाच्छत्रुनिवारकं राजानं कुशं मानोन्नतेनापि मूर्ध्ना प्रणम्य बभाष इति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—अस्त्रज्ञानी कुमुदने त्रिलोकीनाथसे उत्पन्न हुए, शत्रुओंके अंकुश, अभिषेककियेहुए कुशको मानके कारण उठेहुए शिरसे प्रणाम करके कहा ॥ ८१ ॥

अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्यामपरां तनुं त्वाम् ॥
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीयस्य धृतेर्विघातम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः । त्वां कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्याम् अपरां तनुम् अवैमि सः अहम् आराधनीयस्य तव धृतेः विघातं कथं नाम आचरेयम् ॥ ८२ ॥

वाच्यप० । मया त्वं × विष्णोः सुताख्या अपरा तनुः अवेयसे तेन मया × विघातः कथं नाम आचर्य्येत ॥ ८२ ॥

त्वां कायान्तरमानुषस्य विष्णो रामस्य पुत्रसंज्ञामपरां मूर्तिमवैमि स जानन्नहमुपासनीयस्य तव प्रीतेः विघातं कथं नामाचरेयमिति सरलार्थः ॥ ८२ ॥

भा०—तुमको (मैं) कार्यके निमित्त मनुष्य तनु धारण करनेवाले विष्णुका दूसरा शरीर जानताहूं, सो मैं आराधना करने योग्यकी प्रीतिको तोडनेको कैसे आचरण करता ॥ ८२ ॥

कराभिघातोत्थितकन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन ॥
ह्रदात्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः । कराभिघातोत्थितकंदुका इय बाला अतिकुतूहलेन अन्तरिक्षात् ज्योतिरिव ह्रदात् पतत् त्वदीयं जैत्राभरणम् आलोक्य आदत्त ॥ ८३ ॥

वाच्यप० । कराभिघातोत्थितकंदुकया अनया बालया ज्योतिरिव + आदीयत ॥ ८३ ॥

कराभिघातेनोर्ध्वं गतं कंदुकमालोक्येयं बालात्यन्तकौतुकेनान्तरिक्षान्नक्षत्रमिव ह्रदात्पतत्त्वदीयं जैत्राभरणमालोक्यागृह्णादिति सरलार्थः ॥ ८३ ॥

भा०—हाथकी थपकी लगनेसे उठी हुई गेंद खेलनेवाली इस कन्याने अति कुतूहलपूर्वक आकाशसे तारेकी नाईं दहसे गिरताहुआ तुम्हारा जयशील भूषण देखकर ग्रहण किया ॥ ८३ ॥

तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन ॥
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन ॥ ८४ ॥

अन्वयः । तदेतत् आजानुविलम्बिना ज्याघातरेखाकिणलांछनेन भूमेः रक्षापरिघेण अंसलेन भुजेन पुनः योगम् उपैतु ॥ ८४ ॥

वाच्यप० । तत् एतेन आजानुविलम्बिना ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन भूमेः रक्षापरिघेण अंसलेन भुजेन पुनः योगः उपेयताम् ॥ ८४ ॥

तदेतदाभरणमाजानुविलम्बिना ज्याघातग्रंथिचिह्नलांछनेन भूमेः रक्षाया अर्गलेन बलवता ते भुजेन पुनर्योगमुपैत्विति सरलार्थः ॥ ८४ ॥

भा०—सो यह जंघापर्यन्त लम्बायमान प्रत्यश्चाके चिह्नसे भूषित, पृथ्वीकी रक्षामें मूशल समान, बलवान् भुजाको फिर प्राप्त हो ॥ ८४ ॥

इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम् ॥
आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुश्रूषया पार्थिव ! पादयोस्ते ॥ ८५ ॥

अन्वयः । हे पार्थिव ! ते पादयोः चिराय शुश्रूषया आत्मापराधं नुदतीम् इमां मे यवीयसीं स्वसारं कुमुद्वतीम् अनुमंतुं नार्हसि (इति) न ॥ ८५ ॥

वाच्यप० । त्वया न अर्ह्यते (इति) न ॥ ८५ ॥

हे राजन्! तव पादयोश्चिराय परिचर्ययाऽऽत्मापराधं परिजिहीर्षन्तीमिमां मे कनिष्ठां भगिनी-मनुमन्तुं न योग्योसीति नेति सरलार्थः ॥ ८५ ॥

भा०–और हे राजन्! आपके चरणोंकी चिरकाल शुश्रूषासे अपना अपराध मिटानेकी इच्छा करती हुई इस मेरी छोटी बहन कुमुद्वतीको तुम ग्रहण करनेको योग्य हो ॥ ८५ ॥

इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं
श्लाघ्यो भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम् ॥
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन ॥ ८६ ॥

अन्वयः। इति ऊचिवान् उपहृताभरणः कुमुदः भवान् श्लाघ्यः स्वजनः इति अनुभाषितारं क्षितीशं समेतबंधुः स कन्यामयेन कुलभूषणेन विधिवत् संयोजयामास ॥ ८६ ॥

वाच्यप०। ऊचुषा उपहृताभरणेन कुमुदेन भवता श्लाघ्येन (भूयते) इति अनुभाषिता क्षितीशः समेतबंधुना तेन संयोजयाञ्चक्रे ॥ ८६ ॥

इत्यूचिवान्प्रत्यर्पिताभरणः कुमुदः हे कुमुद भवाञ्श्लाघ्यः बन्धुरित्यनुवक्तारं कुशं युक्तबन्धुः सन् कन्यारूपेण कुलयोर्विभूषणेन विधिवत्संयोजयामास न केवलं तदीयमेव किं तु स्वकीयमपि भूषणं तस्मै दत्तवानिति सरलार्थः ॥ ८६ ॥

भा०–इस प्रकार कहते हुए भूषण देनेवाले कुमुदने " आप बडाईके योग्य सम्बन्धी हो " इस प्रकार कहतेहुए राजाको अपने कुटुम्बियों सहित कन्यारूपी कुलभूषण भेंट किया ॥ ८६ ॥

तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य ॥
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्ता-
न्गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः ॥ ८७ ॥

अन्वयः। मनुजपतिना साहचर्याय मांगल्योर्णावलयिनि तस्याः हस्ते उच्छिखस्य पावकस्य पुरः स्पृष्टे (सति) दिगन्तान् व्यश्नुवानः दिव्यस्तूर्यध्वनिः उदचरत् तदनु आश्चर्यमेघाः गन्धोदग्रं पुष्पं ववृषुः ॥ ८७ ॥

वाच्यप०। व्यश्नुवानेन दिव्येन तूर्यध्वनिना उदचर्य्यत तदनु आश्चर्यमेघैः पुष्पं ववृषे ॥८७॥

विशांपतिना कुशेन सहधर्माचरणाय माङ्गल्योर्णावलयवति तस्याः कुमुद्वत्याः कर उदर्चिषः पावकस्याग्रे गृहीते सति दिगन्तान् व्याप्नुवन् दिव्यस्तूर्यध्वनिरुत्थितः तदन्वद्भुता मेघा गन्धेनोत्कटं कुसुमं ववृषुरिति सरलार्थः ॥ ८७ ॥

भा०—राजाके धर्माचरणके निमित्त मंगलसम्बंधी ऊनी कंगनेवाला उसका हाथ जलती अग्निके सन्मुख पकडनेपर दिशाओंमें व्याप्त होतीहुई दिव्य तुहींकी ध्वनि उठी और इसके उपरान्त अद्भुत मेघोंने अच्छे सुगन्धित पुष्प बरसाये ॥ ८७ ॥

इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं ॥
लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पञ्चमं तक्षकस्य ॥
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेया-
च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास ॥ ८८ ॥

अन्वयः । इत्थं नागः त्रिभुवनगुरोः औरसं मैथिलेयं बंधुं लब्ध्वा कुशः अपि च तक्षकस्य पंचम तं (लब्ध्वा) एकः पितृवधरिपोः वैनतेयात् शंकाम् अत्यजत् अपरः शान्तव्यालाम् अवनिं पौरकान्तः (सन्) शशास ॥ ८८ ॥

वाच्यप० । इत्थं नागेन कुशेन अपि + एकेन वैनतेयात् शंका अत्यज्यत अपरेण शान्तव्याला अवनिः पौरकान्तेन (सता) शशासे ॥ ८८ ॥

इत्थं कुमुदस्त्रिभुवनपते रामस्य धर्मपत्नीजं पुत्रं कुशं बन्धुं लब्ध्वा कुशोऽपि च तक्षकस्य पंचमं पुत्रं कुमुदं बन्धुं लब्ध्वा तयोरेकः कुमुदः पितृवधेन रिपोर्गरुडात् भयमत्यजत् । अपरः कुशः कुमुदाज्ञया वीतसर्पभयां भूमिं पौरप्रियस्सन्नशशासेति सरलार्थः ॥ ८८ ॥

भा०—इस प्रकार नागने त्रिलोकीके गुरुके पुत्र जानकीकुमारको वन्धु पाकर और कुशनेभी तक्षकके उस पांचवें (पुत्र) को सम्बन्धि पाकर, एकने पिताके मारनेवाले शत्रु गरुडका भय त्यागा, दूसरेने शान्त सर्पोंवाला पृथ्वीपर प्रजाप्रिय हो राज्य किया ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ।

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती ॥
पश्चिमाद्यामिनी यामात्प्रसादमिव चेतना ॥ १ ॥

अन्वयः । कुमुद्वती काकुत्स्थात् अतिथिं नाम पुत्रं चेतना पश्चिमाद्यामिनी यामात् प्रसादमिव प्राप ॥ १ ॥

वाच्यप० । कुमुद्वत्या अतिथिर्नाम पुत्रः चेतनया × प्रसाद इव प्रापे ॥ १ ॥

कुमुद्वती कुशादतिथिं नाम सुतं बुद्धिरन्तिमाद्रात्रेः प्रहराद्वैशद्यमिव प्रापेति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०–कुमुद्वतीने काकुत्स्थ (कुश) से अतिथिनामक पुत्रको मानों बुद्धिने रातके पिछले पहरसे प्रकाशके समान पाया ॥ १ ॥

स पितुः पितृमान्वंशं मातुश्चानुपमद्युतिः ॥
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ॥ २ ॥

अन्वयः । पितृमान् अनुपमद्युतिः सः पितुः मातुश्च वंशम् सवितोत्तरदक्षिणौ उभौ मार्गौ इव अपुनात् ॥ २ ॥

वाच्यप० । पितृमता अनुपमद्युतिना तेन अपूयत ॥ २ ॥

सुशिक्षितोऽनुपमद्युतिः सोऽतिथिः पितुः कुशस्य मातुः कुमुद्वत्याश्च कुलं सूर्यस्योत्तरदक्षिणावुभौ मार्गाविव पवित्रीकृतवानिति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०–पितावाला, सुशिक्षित, अनुपम कान्तिमान वह पिता और माताके वंशको उत्तर और दक्षिणके दोनों मार्गोंको सूर्यके समान पवित्र करता हुआ ॥ २ ॥

तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदां वरः ॥
पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता ॥ ३ ॥

अन्वयः । अर्थविदां वरः तम् आदौ कुलविद्यानाम् अर्थम् अग्राहयत् पश्चात् पार्थिवकन्यानां पाणिम् (अग्राहयत्) ॥ ३ ॥

वाच्यप० । अर्थविदां वरेण तम् आदौ कुलविद्यानाम् अर्थः अग्राह्यत पश्चात् + पाणिः ॥ ३ ॥

धनस्य दानसंग्रहक्रियाप्रयोजनविदां वरः कुशस्तमतिथिं प्रथममान्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतीनां कुलविद्यानामभिधेयमबोधयत्पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिं स्वीकारितवानिति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–अर्थके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ पिताने उसको प्रथम कुलविद्याओंका अर्थ ग्रहण कराया पीछे राजकन्याओंका पाणिग्रहण कराया ॥ ३ ॥

जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः ॥
अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिना वशी ॥ ४ ॥

अन्वयः । जात्यः शूरः वशी कुशः अभिजातेन शौर्यवता वशिना तेन एकम् आत्मानम् अनेकम् अमन्यत ॥ ४ ॥

वाच्यप० । जात्येन शूरेण वशिना कुशेन + एकः आत्मा अनेकः अमानि ॥ ४ ॥

कुलीनो वशी कुशः कुलीनेन वशिना तेनातिथिनैकमात्मानमनेकममन्यत सर्वगुणसंपन्नं पुत्रमेवात्मनः रूपान्तरममंस्तेति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०–कुलीन शूर जितेन्द्रिय कुशने, कुलीन शूर और जितेन्द्रिय उस पुत्रसे एक आत्माको अनेक माना ॥ ४ ॥

स कुलोचितमिन्द्रस्य साहाय्यकमुपेयिवान् ॥
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि ॥ ५ ॥

अन्वयः । स कुलोचितम् इन्द्रस्य साहाय्यकम् उपेयिवान् (सन्) समरे दुर्जयं दैत्यं जघान तेन च अवधि ॥ ५ ॥

वाच्यप० । तेन कुलोचितं + साहाय्यकम् उपेयुषा (सता) समरे दुर्जयः दैत्यः जघ्ने सः (तम्) अवधीत् ॥ ५ ॥

स कुशः कुलयोग्यं शक्रस्य साहाय्यकं प्राप्तः सन् युद्धे दुर्जयं दैत्यमवधीत् तेनासुरेण हतश्चेति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—वह कुश कुलकी रीतिके अनुसार इन्द्रकी सहायताको जाकर समरमें दुर्जय दैत्यको मारकर उसीसे आपभी मरा ॥ ५ ॥

तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती ॥
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ॥ ६ ॥

अन्वयः । कुमुदस्य नागराजस्य स्वसा कुमुद्वती कुमुदानंदं शशांकं कौमुदी इव तम् अन्वगात् ॥ ६ ॥

वाच्यप० । कुमुद्वत्या कुमुदानंदः शशांकः कौमुद्या इव स अन्वगायि ॥ ६ ॥

कुमुदस्य नागराजस्य भगिनी कुशपत्नी कुमुद्वती शशाङ्कं ज्योत्स्नेव तं कुशमन्वगादिति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—कुमुद नागराजकी बहन कुमुद्वती कुमुदके आनन्द देनेवाले चन्द्रमाके पीछे चांदनीकी समान उसके पीछे गई ॥ ६ ॥

तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्धभाक् ॥
द्वितीयापि सखी शच्याः पारिजातांशभागिनी ॥ ७ ॥

अन्वयः । तयोः एकः दिवस्पतेः सिंहासनार्धभाक् आसीत्, द्वितीयापि शच्याः पारिजातांशभागिनी सखी (आसीत्) ॥ ७ ॥

वाच्यप० । एकेन सिंहासनार्धभाजा अभूयत, द्वितीययापि शच्याः पारिजातांशभागिन्या सख्या (अभूयत) ॥ ७ ॥

तयोः कुशकुमुद्वत्योर्मध्ये कुश इन्द्रस्य सिंहासनस्यैकदेशभागासीत्, द्वितीया कुमुद्वत्यपि शच्याः पारिजातांशग्राहिणी सख्यासीदिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—उन दोनोंमें एक तो इन्द्रके सिंहासनका अर्द्धभागी हुआ और दूसरी पारिजातकी अंशमें भाग लेनेवाली इन्द्राणीकी सखी हुई ॥ ७ ॥

तदात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः ॥
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः संग्रामयायिनः ॥ ८ ॥

अन्वयः । संग्रामयायिनः भर्तुः पश्चिमामाज्ञां स्मरन्तः मन्त्रिवृद्धाः तदात्मसंभवं राज्ये समादधुः ॥ ८ ॥

वाच्यप० । संग्रामयायिनः भर्तुः पश्चिमामाज्ञां स्मरद्भिः मन्त्रिवृद्धैः तदात्मसम्भवः राज्ये समादधे ॥ ८ ॥

युद्धं यास्यतः स्वामिनः कुशस्य 'विपर्यये पुत्रोभिषेक्तव्यः' इत्येवंरूपामन्तिमाज्ञां स्मरन्तो मन्त्रिवृद्धास्तस्य पुत्रमतिथिं राज्ये निदधुरिति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०–संग्राममें जानेवाले स्वामीकी पिछली आज्ञा स्मरण करतेहुए वृद्धमंत्री उसके पुत्रको राज्यपर बैठाते हुए ॥ ८ ॥

ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः ॥
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥

अन्वयः । ते तस्य अभिषेकाय शिल्पिभिः उद्वेदि चतुःस्तंभप्रतिष्ठितं नवं विमानं कल्पयामासुः ॥ ९ ॥

वाच्यप० । तैः × कल्पयाञ्चक्रे ॥ ९ ॥

ते अमात्यास्तस्यातिथेरभिषेकाय शिल्पिभिरुन्नतवेदिकं चतुर्षु स्तम्भेषु प्रतिष्ठितं नवं मण्डपं कारयामासुरिति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०–वे उसके अभिषेकके निमित्त कारीगरोंसे ऊँची वेदीवाला चारों ओर चार खम्भोंसहित नया मंडप वनवाते हुए ॥ ९ ॥

तत्रैनं हेमकुम्भेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः ॥
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् ॥ १० ॥

अन्वयः । तत्र भद्रपीठोपवेशितम् एनं हेमकुम्भेषु संभृतैः तीर्थवारिभिः प्रकृतयः उपतस्थुः ॥ १० ॥

वाच्यप० । तत्र भद्रपीठोपवेशितः असौ + प्रकृतिभिः उपतस्थे ॥ १० ॥

तत्र भद्रपीठ उपवेशितमेनमतिथिं सुवर्णकुम्भेषु संगृहीतैस्तीर्थजलैर्मन्त्रिण उपतस्थुरिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०–तहां उस भद्रपीठपर बैठेहुए इसके सोनेके कलशोंमें भरे हुए तीर्थजल लेले कर वृद्धमंत्री सन्मुख गये ॥ १० ॥

नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्यैराहतपुष्करैः ॥
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसंतति ॥ ११ ॥

अन्वयः । आहतपुष्करैः स्निग्धगम्भीरं नदद्भिः तूर्यैः तस्य (अतिथेः) अविच्छिन्नसंतति कल्याणम् अन्वमीयत ॥ ११ ॥

वाच्यप० । आहतपुष्करैः स्निग्धगम्भीरं नदद्भिः तूर्यैः तस्य अविच्छिन्नकल्याणम् अन्वमुः ॥ ११ ॥

आहतमुखैर्मधुरगम्भीरं नदद्भिस्तूर्यैस्तस्यातिथेरविच्छिन्नपारंपर्यं कल्याणं शुभमनुमितमिति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०-मुखोंद्वारा मधुर गम्भीर ध्वनिसे बजतीहुई तुरहियोंसे उस अतिथिका अखण्ड कल्याण समझागया ॥ ११ ॥

दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ॥
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन् ॥ १२ ॥

अन्वयः । सः दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान् नीराजनाविधीन् भेजे ॥ १२ ॥

वाच्यप० । तेन दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तराः ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्ताः नीराजनाविधयः भेजिरे ॥ १२ ॥

सोऽतिथिः दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्नबालपल्लवोत्तरान् ज्ञातिषु वृद्धैः प्रयुक्तान्नीराजनाविधीन्भेजे इति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०-दूब यवाङ्कुर बटकी छाल और महुएके पुष्प सहित जातिके वृद्धोंकी कीहुई आर्ती इसने पाई ॥ १२ ॥

पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः ॥
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः ॥ १३ ॥

अन्वयः । पुरोहितपुरोगाः द्विजातयः जिष्णुं तं जैत्रैः अथर्वभिः पूर्वम् अभिषेक्तुम् उपचक्रमिरे ॥ १३ ॥

वाच्यप० । पुरोहितपुरोगैः द्विजातिभिः जिष्णुः स + उपचक्रमे ॥ १३ ॥

पुरोहितप्रमुखा ब्राह्मणाः जयशीलं तमतिथिं जयशीलैरथर्वमन्त्रविशेषैः पूर्वमभिषेक्तुमुपचक्रमिर इति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०-पुरोहितको आगे लिये ब्राह्मणोंने जयशील उस राजाके जीतके स्वभाव वाले अथर्ववेदके मंत्रोंसे प्रथम अभिषेक करना आरंभ किया ॥ १३ ॥

तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत ॥
सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विषः ॥ १४ ॥

अन्वयः । तस्य मूर्ध्नि सशब्दं निपतन्ती ओघमहती अभिषेकश्रीः त्रिपुरद्विषः (मूर्ध्नि) गंगा इव व्यरोचत ॥ १४ ॥

वाच्यप० । निपतन्त्या ओघमहत्या अभिषेकश्रिया + गंगया इव व्यरुच्यत ॥ १४ ॥

तस्यातिथे शिरसि सशब्दं निपतन्ती महाप्रभाववत्यभिषेकजलश्रीः शिवस्य मूर्ध्नि निपतन्ती गंगेव व्यरोचतेति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—उसके शिरपर शब्दपूर्वक गिरती हुई अभिषेककी बडी धारा शिवजीके शिरपर गंगाकी नाई शोभित हुई ॥ १४ ॥

स्तूयमानः क्षणे तस्मिन्नलक्ष्यत स बन्दिभिः ॥
प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः ॥ १५ ॥

अन्वयः । तस्मिन् क्षणे वन्दिभिः स्तूयमानः सः प्रबुद्धः (अत एव) सारंगैः अभिनन्दितः पर्जन्यः इव अलक्ष्यत ॥ १५ ॥

वाच्यप० । वन्दिभिः स्तूयमानं तं प्रवृद्धम् अभिनन्दितं पर्जन्यम् इव अलक्षयन् (जनाः) १५

तस्मिन्नभिषेकसमये बन्दिभिः स्तूयमानः सोऽतिथिः प्रवृद्धवान् चातकैरभिनन्दितो मेघ इवालक्ष्यतेति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—उस समय वन्दियोंसे स्तुतिको प्राप्त होता हुआ वह प्रसन्न हो चातकोंके सराहना किये मेघकी समान दिखाई दिया ॥ १५ ॥

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः ॥
ववृधे वैद्युतस्याग्नेर्वृष्टिसेकादिव द्युतिः ॥ १६ ॥

अन्वयः । सन्मन्त्रपूताभिः अद्भिः स्नानं प्रतीच्छतः तस्य वृष्टिसेकात् वैद्युतस्याग्नेरिव द्युतिः ववृधे ॥ १६ ॥

वाच्यप० । द्युत्या + ववृधे ॥ १६ ॥

सन्मन्त्रैः शुद्धैर्जलैः स्नानं कुर्वतस्तस्य वृष्टिसेकाद्वैद्युतस्याग्नेरिव द्युतिर्ववृध इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—मंत्रोंसे पवित्र हुए जलोंसे स्नान करते हुए उसकी मेघके सींचनेसे विजलीकी अग्निकी समान कान्ति वढी ॥ १६ ॥

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ॥
यावतैषां समाप्येरन्यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ॥ १७ ॥

अन्वयः । सः अभिषेकान्ते स्नातकेभ्यः तावत् वसु ददौ, यावता एषां पर्य्याप्तदक्षिणाः यज्ञाः समाप्येरन् ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तेन + वसु ददे + पर्य्याप्तदक्षिणैः यज्ञैः समाप्येत ॥ १७ ॥

सोऽतिथिरभिषेकान्ते गृहस्थेभ्यस्तावत्परिमाणं धनं ददौ, यावता वसुनैषां स्नातकानां समग्रदक्षिणा यज्ञाः समाप्येरन्निति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—वह अभिषेकके अन्तमें यज्ञ करानेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंको इतना धन देता हुआ, जिससे उनकी पूरी दक्षिणावाले यज्ञ पूर्ण हुए ॥ १७ ॥

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन् ॥
सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैर्दूरं पश्चात्कृता फलैः ॥ १८ ॥

अन्वयः । प्रीतमनसः ते तस्मै यामाशिषमुदैरयन्, सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैः फलैः दूरं पश्चात् कृता ॥ १८ ॥

वाच्यप० । प्रीतमनोभिः या तैः आशीः उदैर्य्यत, तां + कर्मनिर्वृत्तानि फलानि दूरं पश्चात् कृतवन्ति ॥ १८ ॥

प्रीतमनसस्ते गृहस्थास्तस्मा अतिथये यामाशिषं व्याहरन्साऽऽशीस्तस्यातिथेः पूर्वपुण्यनिष्पन्नैः फलैः साम्राज्यादिभिर्दूरतः पश्चात्कृता, स्वफलदानस्य तदानीमनवकाशात्कालान्तरोद्वीक्षणं चकारेति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—प्रसन्न मनहो उन्होंने जो अशीश उनको दी, वह उसके कर्मोंसे प्राप्त किये यज्ञोंने बहुत पीछे करदी ॥ १८ ॥

बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणामवध्यताम् ॥
धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्गवाम् ॥ १९ ॥

अन्वयः । सः बद्धानां बंधच्छेदं, वधार्हाणाम् अवध्यताम्, धुर्याणां च धुरो मोक्षं, गवाम् अदोहं च आदिशत् ॥ १९ ॥

वाच्यप० । तेन बद्धानां बंधच्छेदः वधार्हाणाम् अवध्यता धुर्याणां च धुरो मोक्षः गवाम् अदोहः च आदिश्यत ॥ १९ ॥

सोऽतिथिर्बद्धानां बन्धच्छेदं वधार्हाणामवध्यतां भारवाहानां बलीवर्दादीनां धुरो मोक्षं वत्सानां पानार्थं गवां दोहननिवृत्तिमादिदेशेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—उसने बँधुओंके बन्धन काटनेको, वधयोग्योंके अवध्य करनेको और बोझ उठानेवालोंके बोझ छुडानेको और गैयोंका दूध न दूहनेको आज्ञा दी ॥ १९ ॥

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ॥
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन् ॥ २० ॥

अन्वयः। पंजरस्थाः शुकादयः अस्य क्रीडापत्रिणोपि तदादेशात् लब्धमोक्षाः (सन्तः) यथेष्टगतयः अभवन् ॥ २० ॥

वाच्यप०। पंजरस्थैः शुकादिभिः अस्य क्रीडापतत्रिभिः लब्धमोक्षैः (सद्भिः) यथेष्टगतिभिः अभूयत ॥ २० ॥

पञ्जरस्थाः कीरादयोऽस्यातिथेः क्रीडापक्षिणोपि तस्यातिथेः शासनाल्लब्धमोक्षाः सन्तः स्वेच्छाचारिणोऽभवन्निति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०-पिंजरोंके रहनेवाले तोते आदि इसके क्रीडापक्षीभी उसकी आज्ञासे मुक्ति पाकर यथेच्छ विचरण करने लगे ॥ २० ॥

ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचि ॥
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः ॥ २१ ॥

अन्वयः। ततः सः नेपथ्यग्रहणाय कक्ष्यान्तरन्यस्तं शुचि सोत्तरच्छदं गजदन्तासनम् अध्यास्त ॥ २१ ॥

वाच्यप०। ततः तेन + अध्यास्यत ॥ २१ ॥

ततः सोऽतिथिः प्रसाधनस्वीकाराय हर्म्याङ्गणस्थापितं निर्मलमास्तरणसहितं गजदन्तनिर्मितं पीठमध्यास्तेति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-तब वह वस्त्र आभूषण पहरनेको राजभवनमें धरे निर्मल और बिछौने बिछे हाथीदांतके सिंहासनपर बैठा ॥ २१ ॥

तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः ॥
आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः ॥ २२ ॥

अन्वयः। तोयनिर्णिक्तपाणयः प्रसाधकाः धूपाश्यानकेशांतं तं तैः तैः आकल्पसाधनैः उपसेदुः ॥ २२ ॥

वाच्यप०। तोयनिर्णिक्तपाणिभिः प्रसाधकैः धूपाश्यानकेशान्तः सः उपसेदे ॥ २२ ॥

जलेन क्षालितहस्ता अलंकर्तारो गन्धद्रव्यधूपेन शोषितकेशपाशान्तं तमतिथिं तैस्तैर्नेपथ्यसाधनैर्गन्धमाल्यादिभिरलंचक्रुरिति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-जलसे हाथ धोकर शृंगार करानेवालोंने धूपसे सुवासित केशवालेको भांति २ के सिंगारोंसे सज्जित किया ॥ २२ ॥

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्रजम् ॥
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना ॥ २३ ॥

अन्वयः। ते मुक्तागुणोन्नद्धम् अन्तर्गतस्रजम् अस्य मौलिं प्रभामंडलशोभिना पद्मरागेण प्रत्यूपुः ॥ २३ ॥

वाच्यप० । तैः मुक्तागुणोन्नद्धः अन्तर्गतस्रक् अस्य मौलिः प्रत्यूपे ॥ २३ ॥

ते प्रसाधका मौक्तिकसरेणोद्बद्धमन्तर्गतमाल्यमतिथेर्धम्मिल्लं ज्योतिर्मण्डलशोभिना पद्मरागेण माणिक्येन प्रत्युप्तं चक्रुरिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—उन्होंने मोतीमालासे खिचे फूलमालासे गुंथे इसके जूडेपर कान्तिमण्डलसे शोभित करनेवाले पद्मरागमणिको बांधा ॥ २३ ॥

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना ॥
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम् ॥ २४ ॥

अन्वयः । मृगनाभिसुगन्धिना चंदनेन अंगरागं च समापय्य ततः विन्यस्तरोचणनम् पत्रं चक्रुः ॥ २४ ॥

वाच्यप० । (तैः) + चक्रे ॥ २४ ॥

किं च कस्तूरिकया सुगन्धिना चन्दनेनाङ्गविलेपनं समाप्यानन्तरं पत्ररचनां चक्रुरिति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०—कस्तूरीकी गन्धवाले चन्दनसे अंगराग समाप्त कर पीछे गोरोचनसे पत्ररचना करते हुए ॥ २४ ॥

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् ॥
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः ॥ २५ ॥

अन्वयः । आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् राज्यश्रीवधूवरः सः अतिशयप्रेक्ष्यः आसीत् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । आमुक्ताभरणेन स्रग्विणा हंसचिह्नदुकूलवता राज्यश्रीवधूवरेण तेन अतिशयप्रेक्ष्येण अभूयत ॥ २५ ॥

आसञ्जिताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् राजलक्ष्मीवधूपतिः सोऽतिथिरतिशयेन दर्शनीय आसीदिति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—गहने पहरे माला धारे हंस चिह्नका दुपट्टा ओढे राजलक्ष्मीरूपी वधूका पति वह अत्यन्त दर्शनीय हुआ ॥ २५ ॥

नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये ॥
विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव ॥ २६ ॥

अन्वयः । हिरण्मये आदर्शे नेपथ्यदर्शिनः तस्य छाया उदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोः इव विरराज ॥ २६ ॥

वाच्यप० । छायया + विरेजे ॥ २६ ॥

सौवर्णे दर्पणे वेषं पश्यतस्तस्यातिथेः प्रतिबिम्बमुदिते सूर्ये मेरौ कल्पवृक्षस्य छायेव विरराजेति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०-सोनेके दर्पणमें सिंगार देखनेवाले उसकी छाया उदित होते हुए सूर्यके समय सुमेरुमें कल्पवृक्षकी समान शोभित हुई ॥ २६ ॥

स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः ॥
ययावुदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभाम् ॥ २७ ॥

अन्वयः । सः राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः उदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभां ययौ ॥ २७ ॥

वाच्यप० । तेन + पार्श्ववर्तिभिः उदीरितालोकेन सुधर्मानवमा सभा यये ॥ २७ ॥

सोतिथिः छत्रचामरेषु व्यग्रपाणिभिर्जनैरुच्चारितजयशब्दः देवसभाया अन्यूनामास्थानीं जगामेति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०-वह हाथोंमें राजचिह्न (छत्रचमर) धारण किये, निकटवर्ती सेवकोंसे जय जय उच्चारित होता हुआ देवताओंकी सभा समान सभामें गया ॥ २७ ॥

वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम् ॥
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम् ॥ २८ ॥

अन्वयः । तत्र वितानसहितं महीक्षितां चूडामणिभिः उद्घृष्टपादपीठं पैतृकम् आसनं भेजे ॥ २८ ॥

वाच्यप० । तेन + भेजे ॥ २८ ॥

तत्रोल्लोचेन सहितं नृपाणां शिरोरत्नैरुल्लिखितपादपीठं पैतृकं सिंहासनं भेज इति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०-तहां चंदोवायुक्त और राजोंके शिरकी मणियोंसे घिसीहुई चरणचौकीवाले पिता पितामहके सिंहासनपर बैठा ॥ २८ ॥

शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत् ॥
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव केशवम् ॥ २९ ॥

अन्वयः । तेन च आक्रान्तं श्रीवत्सलक्षणं महत् मङ्गलायतनं कौस्तुभेन (आक्रान्तं) केशवं वक्षः इव शुशुभे ॥ २९ ॥

वाच्यपरि० । आक्रान्तेन श्रीवत्सलक्षणेन महता मङ्गलायतनेन केशवेन वक्षसा इव शुशुभे ॥ २९ ॥

तेन च राज्ञा आक्रान्तं बृहत् मङ्गलस्थानं मङ्गलगृहसभारूपम् कौस्तुभमणिना श्रीवत्सलक्षणं केशवं वक्ष इव शुशुभे इति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—उस राजाके बैठनेसे वह बडे मंगलका स्थान सभागृह कौस्तुभमणिसे युक्त श्रीवत्सलक्षणवाले विष्णुके हृदयके समान शोभित हुआ ॥ २९ ॥

बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः ॥
रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः ॥ ३० ॥

अन्वयः । सः कुमारत्वात् भूयः आधिराज्यमवाप्य रेखाभावात् सामग्र्यमुपारूढः चन्द्रमाः इव बभौ ॥ ३० ॥

वाच्यप० । तेन + सामग्र्यमुपारूढेन चन्द्रमसा इव बभे ॥ ३० ॥

सोऽतिथिः बाल्याद्भूयो यौवराज्यमवाप्यैवानन्तरं महाराज्यमवाप्य रेखाभावादर्द्धेन्दुत्वमवाप्यैव पूर्णतां गतश्चन्द्रमा इव बभाविति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—कुमारपनके अनन्तर वह अधिराजताको प्राप्त होकर रेखापनसे पूर्णता पाकर चन्द्रमाके समान शोभित हुआ ॥ ३० ॥

प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ॥
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । प्रसन्नमुखरागं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् तम् अनुजीविनः मूर्तिमन्तम् विश्वासम् अमन्यन्त ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । प्रसन्नमुखरागः स्मितपूर्वाभिभाषी सः अनुजीविभिः मूर्तिमान् विश्वासः अमन्यत ॥ ३१ ॥

प्रसन्नमुखरागं स्मितपूर्वमाभाषणशीलं तमतिथिं सेवकाः विग्रहवन्तं विस्रम्भममन्यन्तेति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—उस उज्ज्वल कान्तिमान् मुखवाले, हास्य सहित बोलनेवालेको सेवकजन मूर्तिमान् विश्वासही मान्ते हुए ॥ ३१ ॥

स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम् ॥
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा ॥ ३२ ॥

अन्वयः । पुरुहूतश्रीः सः कल्पद्रुमनिभध्वजाम् पुरम् ऐरावतौजसा नागेन क्रममाणः (सन्) द्यां चकार ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । पुरुहूतश्रिया तेन कल्पद्रुमनिभध्वजा पूः + क्रममाणेन (सता) द्यौः चक्रे॥३२॥

पुरन्दरश्रीः सोऽतिथिः पारिजाततुल्यध्वजामयोध्यामैरावतौजसा कुञ्जरेण चरन् स्वर्गलोकसदृशीं चकारेति सरलार्थः ॥ ३२ ॥

भा०—इन्द्रकी समान लक्ष्मीवाला वह कल्पवृक्षकी समान ध्वजावाली पुरीको ऐरावतके समान बली हाथीपर चढकर स्वर्ग करता हुआ ॥ ३२ ॥

तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा ॥
पूर्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः । तस्य एकस्य मूर्ध्नि छत्रम् उच्छ्रितम्, अमलत्विषा तेन कृत्स्नस्य जगतः पूर्वराजवियोगौष्म्यं हृतम् ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । छत्रेण उच्छ्रितम्, अमलत्विट् तत् + हृतवत् ॥ ३३ ॥

तस्यैकस्य शिरसि छत्रमुन्नमितं, निर्मलकान्तिना तेन छत्रेण संपूर्णस्य जगतः कुशस्य वियोगसंतापो विनाशित इति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०—तिस एकहीके शिरपर लगे ऊंचे और निर्मलकान्तिवाले छत्रने फिरकर सम्पूर्ण जगत्की पहले राजाके वियोगरूपी ऊष्मा शान्त की ॥ ३३ ॥

धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः ॥
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः ॥ ३४ ॥

अन्वयः । अग्नेः धूमात् पश्चात् शिखाः रवेः उदयात् (पश्चात्) अंशवः (उत्तिष्ठन्ते) सः तेजसां वृत्तिम् अतीत्य गुणैः सममेव उत्थितः ३४ ॥

वाच्यप० । शिखाभिः + अंशुभिः (उत्थीयते) तेन उत्थितम् ॥ ३४ ॥

ज्वाला अग्नेर्धूमात्पश्चाद्भवंति रवेरुदयादनन्तरमंशव उत्तिष्ठन्ते सोतिथिस्तेजसाऽग्यादीनां स्वभावमतीत्य गुणैः सहैवोदित इति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—अग्निके धूमसे पीछे शिखा और सूर्यके उदय होनेसे पीछे किरण होती हैं, परन्तु वह तेजसे अग्न्यादिकोंकी वृत्तिको उल्लंघन कर गुणोंके साथही प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः ॥
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः । पौरयोषितः प्रीतिविशदैः नेत्रैः तम् विभावर्यः शरत्प्रसन्नैः ज्योतिर्भिः ध्रुवम् इव अन्वयुः ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । पौरयोषिद्भिः × सः विभावरीभिः × ध्रुवः इव अन्वयायत ॥ ३५ ॥

पौरयोषितः प्रसन्नैर्नेत्रैस्तमतिथिमनुजग्मुर्यथा शरदि प्रसन्नैर्नक्षत्रै रात्रयो ध्रुवमभिगच्छन्तीति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—नगरकी स्त्रियें प्रेमकी उज्ज्वल दृष्टिसे उसके पीछे गईं जिस प्रकार शरदमें निर्मल तारोंवाली रात्रि ध्रुवके पीछे जाती हैं ॥ ३५ ॥

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः ॥
अनुदध्युरनुध्येयं सांनिध्यैः प्रतिमागतैः ॥ ३६ ॥

अन्वयः । प्रशस्तायतनार्चिताः अयोध्यादेवताः च अनुध्येयम् एनं प्रतिमागतैः सांनिध्यैरनुदध्युः ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । प्रशस्तायतनार्चिताभिः अयोध्यादेवताभिः अनुध्येयः अयम् + अनुदध्ये ॥ ३६ ॥

प्रशस्तेष्वालयेष्वर्चिता अयोध्यादेवताश्चानुग्राह्यमेनमातिथिं प्रतिमागतैः संनिधानैरनुजगृह्वारिति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—श्रेष्ठ मंदिरोंमें पूजित हुए अयोध्याके देवता अनुग्रह करनेके योग्य इसपर प्रतिमामें प्राप्त होकर समीपतासे अनुग्रह करते हुए ॥ ३६ ॥

यावन्नाश्यायते वेदिरभिषेकजलाप्लुता ॥
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । अभिषेकजलाप्लुता वेदिः यावन्नाश्यायते तावदेव अस्य दुस्सहः प्रतापः वेलान्तं प्राप ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । अभिषेकजलाप्लुतया वेद्या यावत् न आश्यायते तावत् एव अस्य दुःसहेन प्रतापेन वेलान्तः प्रापे ॥ ३७ ॥

अभिषेकसलिलैः सिक्ताऽभिषेकवेदिर्यावन्न शुष्यति तावदेवास्य नृपस्य प्रतापो वेलापर्यन्तं प्रापेति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—अभिषेकके जलसे सींची हुई वेदी जबतक नहीं सूखती है, तबतक इसका दुस्सह प्रताप सागरके तटपर पहुंच गया ॥ ३७ ॥

वशिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः ॥
किं तत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः ॥ ३८ ॥

अन्वयः । गुरोः वशिष्ठस्य मंत्राः धन्विनः तस्य सायकाः, उभये संगताः (सन्तः) यत् साध्यं न साधयेयुः तत् किम् ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । मंत्रैः + तस्य सायकैः संगतैः (सद्भिः) यत् साध्यं न साध्येत तत्किम् ॥ ३८ ॥

गुरोर्वशिष्ठस्य मन्त्राः धन्विनस्तस्यातिथेर्बाणाः मिथः संगताः सन्तो यत्साध्यं न साधयेयुस्तादृक् साध्यं किमिति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—गुरु वशिष्ठके मंत्र और इस धनुषधारीके बाण यह दोनों मिलकर जिस साध्यको न सिद्ध करसकें वह क्या है ॥ ३८ ॥

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम् ॥
ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः ॥ ३९ ॥

अन्वयः। धर्मस्थसखः अतन्द्रितः सः शश्वत् अर्थिप्रत्यर्थिनां संशयच्छेद्यान् व्यवहारान् स्वयं ददर्श ॥ ३९ ॥

वाच्यप०। धर्मस्थसखेन अतन्द्रितेन तेन शश्वत् + संशयच्छेद्याः व्यवहाराः . स्वयं ददृशिरे ॥ ३९ ॥

धर्मस्थसखः अनलसः स नृपः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां संदिग्धत्वादवश्यनिर्णेयान् विवादान् स्वयमनुसंदधाविति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०–धर्मात्माओंके मित्र आलस्यरहित उसने सदैव अर्थी और प्रत्यर्थियोंके विचारके योग्य व्यवहारोंको स्वयं देखा ॥ ३९ ॥

ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः ॥
युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः ॥ ४० ॥

अन्वयः। ततः परं (सः) भृत्यान् अभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः पाकाभिमुखैः विज्ञापनाफलैः युयोज ॥ ४० ॥

वाच्यप०। ततः परं (तेन) भृत्याः + युयुजिरे ॥ ४० ॥

व्यवहारदर्शनानन्तरं सेवकान् मुखप्रसादादिचिह्नैः स्फुटीभूतसौमनस्यसूचितैः सिद्ध्युन्मुखैर्विज्ञप्तीनां फलैर्योजयामासेति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०–इसके उपरान्त (उसने) अनुचरोंको प्रगट प्रसन्नता जनानेसे पकनेके निकट प्राप्त हुए मन इच्छित फलोंसे मिलाया ॥ ४७ ॥

प्रजास्तद्गुरुणा नद्यो नभसेव विवर्धिताः ॥
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्ये ता इवाययुः ॥ ४१ ॥

अन्वयः। प्रजाः तद्गुरुणा नभसा नद्यः इव विवर्धिताः तस्मिन् तु नभस्ये ताः (नद्यः) इव भूयसीं वृद्धिम् आययुः ॥ ४१ ॥

वाच्यप०। प्रजाभिः + नदीभिः इव विवर्धिताभिः ताभिः भूयसी वृद्धिः आयये ॥ ४१ ॥

प्रकृतयस्तस्यातिथेर्गुरुणा कुशेन श्रावणमासेन नद्य इव विवर्धिताः तस्मिन्नतिथौ तु भाद्रपदे मासे नद्य इव भूयसीं वृद्धिमाययुरिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०–प्रजा उसके पितासे श्रावणकी नदियोंकी समान वढाई हुई भादोंकी नदियोंकी समान उसमे अधिकही वृद्धिको पहुंचीं ॥ ४१ ॥

यदुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत् ॥
सोऽभूद्भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन् ॥ ४२ ॥

अन्वयः। सः यदुवाच तत् न मिथ्या यत् ददौ तत् न जहार (किन्तु) शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन् भग्नव्रतः अभूत् ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । तेन यत् ऊचे तत् न मिथ्या, यत् ददे तत् न जहे (किन्तु) शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयता भग्नव्रतेन अभावि ॥ ४२ ॥

सोऽतिथिर्दानरक्षादिविषयं यद्वाक्यमुवाच तदनृतं नाभूत् यद्वस्तु ददौ तन्न पुनराददे किन्तु शत्रूनुत्खाय पुनः स्थापयन्भग्ननियमोऽभूदिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०-उसने जो कहा वह मिथ्या न हुआ, जो दिया वह फिर न लिया, किन्तु शत्रुओंको उखाडकर फिर आरोपण करनेमें वह भग्नव्रतवाला हुआ ॥ ४२ ॥

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ॥
तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः॥ ४३ ॥

अन्वयः । वयोरूपविभूतीनाम् एकैकं मदकारणं (भवति) तानि तस्मिन् समस्तानि (अभवन्) तस्य मनः न उत्सिषिचे ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । एकैकेन मदकारणेन (भूयते) भूपतेः तैः समस्तैः (अभूयत) तस्य मनसान उत्सिषिचे ॥ ४३ ॥

यौवनसौन्दर्यैश्वर्याणां मध्य एकैकं मदहेतुः तानि मदकारणानि तस्मिन् राज्ञि समस्तानि मिलितानि तथापि तस्य मनो न जगर्वेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०-अवस्था, रूप, ऐश्वर्य, यह एक एक मदके कारण हैं, उसमें ये सब थे तोभी उसका मन उन्मत्त न हुआ ॥ ४३ ॥

इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम् ॥
अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीद्दृढमूल इव द्रुमः ॥ ४४ ॥

अन्वयः । इत्थम् अनुवासरं प्रकृतिषु जनितरागासु (सतीषु) सः नवोपि दृढमूलः द्रुमः इव अक्षोभ्यः आसीत् ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । इत्थं तेन नवेनापि दृढमूलेन द्रुमेण इव अक्षोभ्येण अभूयत ॥ ४४ ॥

इत्थमन्वहं प्रजासु जनितरागासु सतीषु सः राजा नवोपि दृढमूलो वृक्ष इवाप्रधृष्य आसीदिति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०-इसप्रकार प्रतिदिन प्रजाके प्रेम बढनेपर वह नया राजा भी पक्की जडवाले वृक्षके समान स्थिर हुआ ॥ ४४ ॥

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः ॥
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान्षट्पूर्वमजयद्रिपून् ॥ ४५ ॥

अन्वयः । यतः बाह्याः शत्रवः अनित्याः ते विप्रकृष्टाश्च अतः सः अभ्यन्तरान् नित्यान् षट् रिपून् पूर्वम् अजयत् ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । बाह्यैः शत्रुभिः अनित्यैः विप्रकृष्टैश्च (भूयते) अतः तेन अभ्यन्तराः षड् रिपवः पूर्वम् अजयिन्त ॥ ४५ ॥

यस्माद्बाह्याः शत्रवः अनित्याः किं च ते दूरस्थाश्चातस्सोऽन्तर्वर्तिनो नित्यान्षड्रिपून् कामक्रोध-लोभादीन् पूर्वमजयदिति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०-जिसकारण कि बाह्य शत्रु अनित्य और दूर हैं, इसकारण उसने भीतर रह-नेवाले और नित्य छः शत्रुओंको प्रथम जीता ॥ ४५ ॥

प्रसादाभिमुखे तस्मिंश्चपलापि स्वभावतः ॥
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी ॥ ४६ ॥

अन्वयः । स्वभावतः चपलापि श्रीः प्रसादाभिमुखे तस्मिन् (नृपे) निकषे हेमरेखा इव अन-पायिनी आसीत् ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । स्वभावतः चपलयापि श्रिया हेमरेखया इव अनपायिन्या अभूयत ॥ ४६ ॥

स्वभावतश्चचलापि लक्ष्मीः प्रसादाभिमुखे तस्मिन्नृपे निकषोपले सुवर्णरेखेव स्थिराऽऽसीदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०-स्वभावसे चंचल भी लक्ष्मी प्रसन्नमुखवाले उस राजामें कसौटीमें सुवर्ण-रेखाकी समान अचल रही ॥ ४६ ॥

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ॥
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । केवला नीतिः कातर्यं (केवलं) शौर्यं श्वापदचेष्टितम्, अतः सः समेताभ्याम् उभाभ्यां सिद्धिम् अन्वियेष ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । केवलया नीत्या कातर्येण शौर्येण श्वापदचेष्टितेन (भूयते) अतः तेन + सिद्धिः अन्वीषे ॥ ४७ ॥

केवला शौर्यवर्जिता नीतिः भीरुत्वं केवलं नीतिरहितं शौर्यं श्वापदचेष्टितमतो हेतोः सोतिथिः संगताभ्यां नीतिशौर्याभ्यां जयप्राप्तिं गवेषितवानिति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०-केवल नीति कायरता है और केवल शूरता सिंहादिपशुओंका स्वभाव है, इस कारण उसने इन दोनोंके मेलसे सिद्धिको देखा ॥ ४७ ॥

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ॥
अदृष्टमभवत्किंचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥ ४८ ॥

अन्वयः । न्यस्तप्रणिधिदीधितेः तस्य राज्ञः व्यभ्रस्य विवस्वतः इव मंडले किंचित् अदृष्टम् न अभवत् ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । अदृष्टेन + + न अभूयत ॥ ४८ ॥

प्रहितचररश्मेस्तस्य राज्ञः मेघरहितस्य सूर्यस्येव स्वविषयेऽल्पमप्यज्ञातं नासीदिति सरलार्थः॥४६॥

भा०-चारोंओर दूतरूपी किरण भेजनेवाले इस राजाको मेघरहित सूर्यके समान मण्डलमें कुछभी अदृष्ट न रहा ॥ ४८ ॥

रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम् ॥
तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः ॥ ४९ ॥

अन्वयः । रात्रिंदिवविभागेषु महीक्षितां यदादिष्टं (भवति) तत् सः विकल्पपराङ्मुखः (सन्) नियोगेन सिषेवे ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । येन आदिष्टेन (भूयते) तत् तेन विकल्पपराङ्मुखेन (सता) सिषेवे ॥ ४९ ॥

रात्रिंदिवविभागेषु राज्ञां मन्वादिभिर्यदुपदिष्टं तत्स राजा संशयरहितः सन् निश्चयेनानुष्ठितवानिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-रात दिनके विभागोंमें राजाओंको जो कार्य कहा है, उसे वह संशयरहित होकर नियमपूर्वक करता हुआ ॥ ४९ ॥

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः ॥
स जातु सेव्यमानोऽपि गुप्तद्वारो न सूच्यते ॥ ५० ॥

अन्वयः । तस्य मंत्रः मंत्रिभिः सह प्रतिदिनं बभूव, सः गुप्तद्वारः (मंत्रः) सेव्यमानोपि जातु न सूच्यते ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तस्य मंत्रेण + प्रतिदिनं बभूवे, तम् गुप्तद्वारं सेव्यमानमपि जातु न सूचयंति ॥ ५० ॥

तस्य नृपस्य प्रतिदिनं मन्त्रिभिः सह विचारो बभूव स मन्त्रः अन्वहमावर्त्यमानोपि कदाचिदपि न प्रकाश्यत इति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०-उसकी सम्मति मंत्रियोंके साथ प्रतिदिन हुई, परन्तु वह गुप्तद्वारमंत्र प्रतिदिन होनेपरभी कभी प्रगट न हुआ ॥ ५० ॥

परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः ॥
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि ॥ ५१ ॥

अन्वयः । यथाकालं स्वपन्नपि सः परेषु स्वेषु च क्षिप्तैः अविज्ञातपरस्परैः अपसर्पैः जजागार ५१

वाच्यप० । यथाकालं स्वपता तेन जजागरे ॥ ५१ ॥

यथाकालं स्वपन्नपि सोऽतिथिः शत्रुषु स्वकीयेषु मन्त्र्यादितीर्थेषु प्रहितैरविज्ञातपरस्परैश्चरैर्बुद्धवानिति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०-यथा कालमें सोता हुआभी वह अपने और दूसरोंमें भेजे हुए परस्पर एक दूसरेसे न जाने हुए दूतोंसे जागताही था ॥ ५१ ॥

दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम् ॥
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः ॥ ५२ ॥

अन्वयः । द्विषां रोद्धुः अपि तस्य दुर्ग्रहाणि दुर्गाणि आसन्, गजास्कंदी सिंहः भयात् गिरिगुहाशयः न हि ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । तस्य दुर्ग्रहैः दुर्गैः अभूयत गजस्कंदिना सिंहेन भयात् गिरिगुहाशयेन न हि॥५२॥

द्विषां रोद्धुः तस्य राज्ञः परैर्दुर्घर्षाणि महीदुर्गाण्यासन् गजास्कंदी सिंहो भयाद्धेतोः गिरिगुहाशयो न हि किं तु स्वभावत एवेति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०-शत्रुओंके रोकनेवालेभी उसके दुस्तर कोट थे, कारण कि गजका मारनेवाला सिंह भयसेही पर्वतकी गुफामें शयन नहीं करता है ॥ ५२ ॥

भव्यमुख्याः समारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः ॥
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे ॥ ५३ ॥

अन्वयः । भव्यमुख्याः प्रत्यवेक्ष्याः निरत्ययाः गर्भशालिसधर्माणः तस्य समारंभाः गूढं विपेचिरे ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । भव्यमुख्यैः प्रत्यवेक्ष्यैः निरत्ययैः गर्भशालिसधर्मभिः तस्य समारम्भैः गूढं विपेचे ॥ ५३ ॥

कल्याणप्रधाना एतावत्कृतमेतावत्कर्तव्यमित्यनुसंधानेन विचारणीयाः निर्बाधा गर्भशालिसधर्माणः अतिनिगूढास्तस्य नृपस्य समारम्भाः अप्रकाशं फलिता इति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०-कल्याणयुक्त और बाधाहीन, विचार कर किये हुए, गर्भमें पकनेवाले धानकी प्रकृतिवाले उसके उद्योग गुप्तही पकते हुए ॥ ५३ ॥

अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः ॥
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥ ५४ ॥

अन्वय । सः उपचितोपि जातु अपथेन न प्रववृते (तथाहि) लवणांभसः वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं (भवति) ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । तेन उपचितेनापि जातु अपथेन न प्रववृते, (तथाहि) लवणांभसः वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानेन (भूयते) ॥ ५४ ॥

सोऽतिथिः वृद्धिं गतोपि सन् कदाचिदपि कुमार्गेण न प्रवृत्तः, तथाहि लवणसागरस्य पूरोत्पीडे सति नदीप्रवेशमार्गेणैव निःसरणं न त्वन्यथेति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०-वह वृद्धिको प्राप्त होकर भी कुमार्गमें प्रवृत्त न हुआ, कारण कि सागरका प्रस्थान वृद्धिमें नदीमुखसेही होता है ॥ ५४ ॥

कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः ॥
यस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥ ५५ ॥

अन्वयः । प्रकृतिवैराग्यं सद्यः कामं शमयितुं क्षमः सः यस्य प्रतीकारः कार्यः तत् नैव उदपादयत् ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । क्षमेण तेन यस्य प्रतीकारेण कार्येण (भूयते) तत् नैव उदपाद्यत ॥ ५५ ॥

दैवादुत्पन्नं प्रजाविरागं सम्यक् शमयितुं शक्तः स राजा यस्य प्रजाविरागस्य प्रतीकारः कर्तव्यस्तद्वैराग्यं नोदपादयदिति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०–प्रजाकी अरुचि वह तत्कालही मिटानेको समर्थ था, परन्तु जिस अरुचिका मिटना योग्य है वह उसने होनेही न दी ॥ ५५ ॥

शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः ॥
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । शक्तिमतः सतः तस्य शक्येषु एव यात्रा अभवत्, हि समीरणसहायोपि दवानलः अंभःप्रार्थी न ॥ ५६ ॥

वाच्यप० । यात्रया अभूयत, हि समीरणसहायेनापि दवानलेन अंभःप्रार्थिना न (भूयते) ॥ ५६ ॥

शक्तिसम्पन्नस्यापि तस्य राज्ञः शक्तिसम्पन्नेषु स्वस्माद्धीनबलेष्वेव दण्डयात्राऽभवत, तथाहि पवनसहायोपि दवानलो जलान्वेषी नेति सरलार्थः ॥ ५६ ॥

भा०–शक्तिमान् होनेपरभी उसकी समर्थपरही चढाई होती हुई, कारण कि पवन सहायक होनेपरभी दावाग्नि जलकी इच्छा नहीं करती ॥ ५६ ॥

(अर्थात् बलवान् होकरभी अग्नि जलको जलाने नहीं जाती)

न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ ॥
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥ ५७ ॥

अन्वयः । सः अर्थकामाभ्यां धर्मं न बबाधे, तेन (धर्मेण) च तौ न, अर्थं कामेन कामं वा अर्थेन न (बबाधे) (किन्तु) त्रिषु सदृशः (बभूव) ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । तेन × धर्मः न बबाधे, तेन तौ न, अर्थः कामेन कामो वा अर्थेन न (बबाधे) त्रिषु सदृशेन (बभूवे) ॥ ५७ ॥

स राजाऽर्थकामाभ्यां धर्मं न नाशितवान्, तेन धर्मेण तावर्थकामौ न, अर्थं कामेन कामं वार्थेन न बबाधे किन्तु धर्मार्थकामेषु तुल्यवृत्तिरभूदिति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०–उसने अर्थ और कामसे न धर्मको और न धर्मसे उन दोनोंको, न कामसे अर्थको, न अर्थसे कामको बाधा पहुंचाई, किन्तु तीनोंमें समान रहा ॥ ५७ ॥

हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते ॥
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ॥ ५८ ॥

अन्वयः। मित्राणि हीनानि अनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते (चेत्) अतः तेन मध्यमशक्तीनि स्थापितानि ॥ ५८ ॥

वाच्यप०। मित्रैः हीनैः अनुपकर्तृभिः (भूयते) प्रवृद्धैः विक्रियते (चेत्) अतः सः + स्थापितवान् ॥ ५८ ॥

मित्राण्यतिक्षीणानि चेदनुपकारीणि अतिसमृद्धानि चेद्विरुद्धं चेष्टन्ते अतः कारणात् तेन नृपेण मित्राणि नातिक्षीणोच्छ्रितानि यथा तथा स्थापितानीति सरलार्थः ॥ ५८ ॥

भा०–मित्र हीन हों तो अनुपकारी होते हैं और समृद्ध विघ्न करते हैं, इस कारण उसने मध्यम बलवाले सुहृद् बनाये ॥ ५८ ॥

परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम् ॥
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा ॥ ५९ ॥

अन्वयः। सः परात्मनोः शक्त्यादीनां बलाबलं परिच्छिद्य एभिः परस्मात् बलिष्ठश्चेत् ययौ अन्यथा आस्त ॥ ५९ ॥

वाच्यप०। तेन + बलिष्ठेन चेत् यये अन्यथा आस्यत ॥ ५९ ॥

सोऽतिथिः शत्रोरात्मनश्च शक्तिदेशकालादीनां न्यूनाधिक्यं निश्चित्यैभिः शक्त्यादिभिः स्वयमतिशयेन बलवांश्चेद्यात्रां चक्रेऽन्यथा न ययाविति सरलार्थः ॥ ५९ ॥

भा०–उसने शत्रु और अपनी शक्तिका बलाबल विचार कर जो इन बातोंमें अपनेको उससे बली पाया तो यात्रा की, नहीं तो बैठ रहा ॥ ५९ ॥

कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः ॥
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ॥ ६० ॥

अन्वयः। कोशेन आश्रयणीयत्वम् इति तस्य अर्थसंग्रहः (भवति) हि अम्बुगर्भः जीमूतः चातकैः अभिनन्द्यते ॥ ६० ॥

वाच्यप०। कोशेन श्रावणीयत्वम् इति अर्थसंग्रहेण (भूयते) हि अम्बुगर्भं जीमूतं चातका अभिनन्दन्ति ॥ ६० ॥

अर्थनिचयेन भजनीयत्वं भवति तस्मात्तस्य नृपस्यार्थसंग्रहः न तु लोभात् तथा ह्यम्बुगर्भो मेघश्चातकैः सेव्यत इति सरलार्थः ॥ ६० ॥

भा०–कोशसेही आश्रय होताहै, इसकारण उसनें धनसंग्रह किया, क्योंकि पानीभरे मेघोंकोही चातक सराहता है ॥ ६० ॥

परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ॥
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन्रिपून् ॥ ६१ ॥

अन्वयः । सः परकर्मापहः (सन्) स्वेषु कर्मसु उद्यतः अभूत् (किं च) रिपून् रन्ध्रेषु प्रहरन् आत्मनो रंध्रम् आवृणोत् ॥ ६१ ॥

वाच्यप० । तेन परकर्मापहेन (सता) + उद्यतेन अभावि, (किं च) रिपून् रन्ध्रेषु प्रहरता आत्मनो रंध्रम् आव्रियत ॥ ६१ ॥

स राजा शत्रूणां कर्मापहः सन् स्वेषु कर्मसूद्युक्तोऽभूत् किं च शत्रून् रन्ध्रेषु प्रहरन्नात्मनो रन्ध्रं व्यसनादिकं संवृतवानिति सरलार्थः ॥ ६१ ॥

भा०-वह शत्रुओंका उद्योग नष्ट करनेवाला होकरभी अपने कार्योंमें प्रवृत्त हुआ और शत्रुओंके छिद्र देखनेपर प्रहार करता हुआ, अपने छिद्रको छिपाता हुआ॥६१॥

पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतास्त्रः सांपरायिकः ॥
तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहान्न व्यशिष्यत ॥ ६२ ॥

अन्वयः । दण्डवतः तस्य पित्रा नित्यं संवर्धितः कृतास्त्रः सांपरायिकः दण्डः स्वदेहात् न व्यशिष्यत ॥ ६२ ॥

वाच्यप० । नित्यं सम्वर्धितेन कृतास्त्रेण सांपरायिकेण दण्डेन स्वदेहात् न व्यशिष्यत ॥ ६२ ॥

दण्डयुक्तस्य तस्य राज्ञः कुशेन नित्यं पुष्टः शिक्षितास्त्रसंग्रामः (सैन्यं) स्वदेहान्नाभिद्यतेति सरलार्थः ॥ ६२ ॥

भा०-उस सेनावालेकी पितासे नित्य बढाई हुई, अस्त्र सीखी हुई, युद्ध करनेमें समर्थ सेना उसके देहसे पृथक् न थी, (अर्थात् अपनी देहकी समान सेनाको रखता था) ॥ ६२ ॥

सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः ॥
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः । सर्पस्य शिरोरत्नम् इव अस्य शक्तित्रयं परः न चकर्ष सः (तु) परस्मात् तत् (शक्तित्रयम्) अयस्कान्त आयसम् इव (चकर्ष) ॥ ६३ ॥

वाच्यप० । + + परेण न चकृषे तेन (तु चकृषे) ॥ ६३ ॥

सर्पस्य शिरोरत्नमिवास्य राज्ञः शक्तित्रयं शत्रुर्न चकर्ष स तु शत्रोस्तच्छक्तित्रयमयस्कान्तो मणिर्लोहमिव चकर्षेति सरलार्थः ॥ ६३ ॥

भा०-सर्पके शिरोरत्नकी समान इसकी तीन शक्तियोंको शत्रु न खैंच सके किन्तु वह तौ शत्रुओंसे उस शक्तित्रयको लोहेको चुम्बकके समान खैंचता हुआ ॥ ६३ ॥
(प्रभावशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति, यह तीन शक्ति हैं)

वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव ॥
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु ॥ ६४ ॥

अन्वयः । स्रवन्तीषु वापीषु इव वनेषु उपवनेषु इव अद्रिषु स्वकीयेषु वेश्मसु इव सार्थाः स्वैरं चेरुः ॥ ६४ ॥

वाच्यप० । सार्थैः स्वैरं चेरे ॥ ६४ ॥

स्रवन्तीषु दीर्घिकास्विव वनेष्वारामेष्विव पर्वतेषु स्वकीयेषु वेश्मस्विव वणिक्प्रभृतयः स्वेच्छया विचरन्ति स्मेति सरलार्थः ॥ ६४ ॥

भा०—नदियोंमें बावडियोंकी नांई वनोंमें उपवनोंके समान, पहाडोंमें अपने घरोंके समान, वणिक् यथेच्छ विचरे ॥ ६४ ॥

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यश्च संपदः ॥
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक् ॥ ६५ ॥

अन्वयः । विघ्नेभ्यः तपो रक्षन् तस्करेभ्यः संपदः च (रक्षन्) सः आश्रमैः वर्णैरपि यथास्वम् षडंशभाक् चक्रे ॥ ६५ ॥

वाच्यप० । विघ्नेभ्यः तपो रक्षन्तरम् तस्करेभ्यः संपदः रक्षन्तं तम् आश्रमाः वर्णाः अपि + यथास्वं षडंशभाजं चक्रुः ॥ ६५ ॥

विघ्नेभ्यस्तपः तस्करेभ्यः संपदश्च रक्षन् स राजा ब्रह्मचर्यादिभिराश्रमैः ब्राह्मणादिभिर्वर्णैरपि यथास्वं षडंशभाक् चक्र इति सरलार्थः ॥ ६५ ॥

भा०—विघ्नोंसे तपको, चोरोंसे धनको रक्षा करतेहुए उसको आश्रमोंने और वर्णोंने चित्तके अनुसार छठा भाग पानेवाला किया ॥ ६५ ॥

(चार आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र.)

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान् ॥
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥ ६६ ॥

अन्वयः । भूः तस्मै रक्षासदृशं वेतनं दिदेश खनिभिः रत्नं सुषुवे क्षेत्रैः सस्यं वनैः गजान् (सुषुवे) ॥ ६६ ॥

वाच्यप० । भुवा तस्मै वेतनं दिदिशे खनयो रत्नं सुषुविरे क्षेत्राणि सस्यं वनानि गजान् (सुषुविरे) ॥ ६६ ॥

पृथिवी तस्मै राज्ञे रक्षणानुरूपमेव भृतिं ददौ कथम् आकरैर्माणिक्यादिकम् क्षेत्रैः सस्यम् वनैः हस्तिनः सुषुवे इति सरलार्थः ॥ ६६ ॥

भा०-पृथ्वीनेभी उसको रक्षाके समान धन दिया खानोंने रत्न, खेतोंने धान और वनोंने हाथी उत्पन्न कर दिये ॥ ६६ ॥

स गुणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः ॥
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु ॥ ६७ ॥

अन्वयः । षण्मुखविक्रमः सः षण्णां गुणानां बलानां च साधनीयेषु वस्तुषु विनियोगज्ञः बभूव ॥ ६७ ॥

वाच्यप० । षण्मुखविक्रमेण तेन × विनियोगज्ञेन बभूवे ॥ ६७ ॥

षण्मुखविक्रमः स नृपः षण्णां संधिविग्रहादीनां गुणानां मूलभृत्यादीनां बलानां च साध्येष्वर्थेषु विनियोगज्ञो बभूवेति सरलार्थः ॥ ६७ ॥

भा०-स्कंदके समान पराक्रमी वह छः गुण और बलों (भृत्यों) का सिद्ध होने-योग्य वस्तुओंमें वर्ताव जानता था ॥ ६७ ॥

इति क्रमात्प्रयुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम् ॥
आ तीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे ॥ ६८ ॥

अन्वयः । इति चतुर्विधां राजनीतिं क्रमात् प्रयुंजानः स आ तीर्थात् तस्याः फलम् अप्रतिघातम् आनशे ॥ ६८ ॥

वाच्यप० । प्रयुंजानेन तेन + आनशे ॥ ६८ ॥

इति सामाद्युपायैः क्रमादेव दण्डनीतिं प्रयुञ्जानः स राजा तीर्थात्तस्याः नीतेः फलमप्रतिबन्धं यथा तथा प्राप्तवानिति सरलार्थः ॥ ६८ ॥

भा०-इस प्रकार चार प्रकारकी राजनीतिका क्रमसे प्रयोग करते हुए उसने मंत्री आदिमें उसका फल विघ्नरहित पाया ॥ ६८ ॥

कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि ॥
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥ ६९ ॥

अन्वयः । कूटयुद्धविधिज्ञेपि सन्मार्गयोधिनि तस्मिन् वीरगामिनी जयश्रीः अभिसारिकावृत्तिं भेजे ॥ ६९ ॥

वाच्यप० । वीरगामिन्या जयश्रिया अभिसारिकावृत्तिः भेजे ॥ ६९ ॥

कपटयुद्धप्रकाराभिज्ञेपि धर्मयोद्धरि तस्मिन्नतिथौ वीरगामिनी जयलक्ष्मीरभिसारिकावृत्तिं भेज इति सरलार्थः ॥ ६९ ॥

भा०-कपट युद्धजानकरभी सत्मार्गसे युद्ध करनेवाले उस राजामें वीरोंमें जाने-वाली जयलक्ष्मीने अभिसारिकाकी रीति वर्ती ॥ ६९ ॥

(अभिसारिकावृत्ति यह है कि जो स्त्री संकेतसे स्वयं पतिके पास जाती है.)

प्रायः प्रतापभग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः ॥
रणो गंधद्विपस्येव गंधभिन्नान्यदन्तिनः ॥ ७० ॥

अन्वयः । अरीणां प्रतापभग्नत्वात् तस्य गंधभिन्नान्यदन्तिनः गंधद्विपस्य इव प्रायः रणः दुर्लभः (अभूत्) ॥ ७० ॥

वाच्यप० । प्रायेण रणेन दुर्लभेन (अभूयत) ॥ ७० ॥

सर्वेषामपि शत्रूणामतितेजसैव भग्नत्वात्तस्य राज्ञः मदगंधभग्नान्यदन्तिनः गंधद्विपस्येव प्रायेण रणो दुर्लभ इति सरलार्थः ॥ ७० ॥

भा०—शत्रुओंको प्रतापहीसे नष्ट होजानेके कारण मदकी गन्धिसे दूसरे गजोंको भगानेवाले मदगन्धिवाले हाथीकी समान उसको संग्राम दुर्लभ हो गया ॥ ७० ॥

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ॥
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी ॥ ७१ ॥

अन्वयः । प्रवृद्धौ (सत्यां) चन्द्रः हीयते, समुद्रः अपि तथाविधः, स तु तत्समवृद्धिश्चाभूत, तौ इव क्षयी न (अभूत्) ॥ ७१ ॥

वाच्यप० । चन्द्रेण हीयते, समुद्रेण अपि तथाविधेन (हीयते), तेन तु तत्समवृद्धिना अभावि, क्षयिणा न (अभावि) ॥ ७१ ॥

प्रवृद्धौ सत्यां चन्द्रो हीयते, सागरोऽपि चन्द्रवदेव प्रवृद्धौ हीयते, सोऽतिथिस्तु ताभ्यां चन्द्रसमुद्राभ्यां समवृद्धिश्चाभूत, तौ चन्द्रसमुद्राविव क्षयी नाभूदिति सरलार्थः ॥ ७१ ॥

भा०—वृद्धिको प्राप्त होकर चन्द्रमा क्षीण होता है, इसी प्रकार समुद्रभी, परन्तु वह उनकी समान बढा तो, पर उनकी समान क्षीण न हुआ ॥ ७१ ॥

सन्तस्तस्याभिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः ॥
उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः ॥ ७२ ॥

अन्वयः । अत्यर्थं कृशाः अत एव अर्थिनः संतः महतः तस्य अभिगमनात् उदधेः जीमूता इव दातृत्वं प्रापुः ॥ ७२ ॥

वाच्यप० । अत्यर्थं कृशैः अर्थिभिः सद्भिः + जीमूतैः इव दातृत्वं प्रापे ॥ ७२ ॥

अत्यर्थं कृशाः दरिद्रा अत एव याचनशीलाः सन्तो विद्वांसो महतस्तस्य नृपस्याभिगमनात्सागरस्याभिगमात् मेघा इव दातृत्वं प्रापुरिति सरलार्थः ॥ ७२ ॥

भा०—अतिदरिद्र मांगनेवाले विद्वान् उस ऐश्वर्यवान्के समीप जानेसे सागरके समीप मेघोंकी समान दाता होगये ॥ ७२ ॥

स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन् ॥
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः ॥ ७३ ॥

अन्वयः । सः स्तुत्यम् एव समाचरन् स्तूयमानः (सन्) जिह्राय, तथापि तत्कारिद्वेषिणः तस्य यशः ववृधे ॥ ७३ ॥

वाच्यप० । तेन स्तुत्यम् एव समाचरता स्तूयमानेन (सता) जिह्रिये, यशसा ववृधे ॥ ७३ ॥

स राजा स्तोत्रार्हमेव यत्तदेव समाचरन्नत एव स्तूयमानः सन् लज्ज, ह्रीणत्वेपि स्तोत्रकारिद्वेषिणस्तस्य राज्ञो यशो ववृध इति सरलार्थः ॥ ७३ ॥

भा०—स्तुति योग्यही काम करता हुआ वह प्रशंसाको प्राप्त हो लज्जित हुआ, तथापि स्तुति करनेवालोंके द्वेषी उस राजाकी कीर्ति बढी ॥ ७३ ॥

दुरितं दर्शनेन घ्नंस्तत्त्वार्थेन नुदंस्तमः ॥
प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः ॥ ७४॥

अन्वयः । सः उदितः सूर्य इव दर्शनेन दुरितं घ्नन्, तत्त्वार्थेन तमः नुदन्, शश्वत् प्रजाः स्वतंत्रयांचक्रे ॥ ७४ ॥

वाच्यप० । तेन उदितेन सूर्येण इव दर्शनेन दुरितं घ्नता, तमः नुदता, प्रजाः स्वतंत्रयाञ्चक्रिरे ॥ ७४ ॥

स नृप उदितसूर्य इव दर्शनेनाघं निवर्तयन्वस्तुतत्त्वस्य प्रकाशेन चाज्ञानं नुदञ्छश्वत्प्रजाः स्वाधीनाश्चकारेति सरलार्थः ॥ ७४ ॥

भा०—वह उदय होते हुए सूर्यकी समान दर्शनसे पापको, तत्त्वज्ञानसे अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करता हुआ निरन्तर प्रजाको अपने अधीन करता भया ॥७४॥

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंशवः ॥
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः । इन्दोः अंशवः पद्मेऽगतयः, सूर्यस्य अंशवः कुमुदेऽगतयः, गुणिनः तस्य गुणाः विपक्षेऽपि अन्तरं लेभिरे ॥ ७५ ॥

वाच्यप० । इन्दोः अंशुभिः पद्मे अगतिभिः (भूयते) सूर्यस्य अंशुभिः कुमुदे अगतिभिः (भूयते) + गुणैः अन्तरं लेभे ॥ ७५ ॥

इन्दोरंशवः सरोजे प्रवेशरहिता भवन्ति, सूर्यस्यांशवः कुमुदे प्रवेशरहिताः, गुणिनस्तस्य गुणास्तु शत्रावप्यवकाशं प्रापुरिति सरलार्थः ॥ ७५ ॥

भा०—चन्द्रमाकी किरणें कमलमें नहीं जातीं, सूर्यकी किरणें कुमुदमें नहीं जातीं परन्तु उस गुणीके गुणोंने शत्रुपक्षमेंभी स्थान पाया ॥ ७५ ॥

पराभिसंधानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम् ॥
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत् ॥ ७६ ॥

अन्वयः। अश्वमेधाय जिगीषोः अस्य विचेष्टितं यद्यपि पराभिसंधानपरं (तथापि) तत् धर्म्यम् एव बभूव ॥ ७६ ॥

वाच्यप०। अस्य विचेष्टितेन यद्यपि पराभिसंधानपरेण (तथापि) तेन धर्म्येण एव बभूवे ॥ ७६ ॥

अश्वमेधाय जिगीषोरस्य दिग्विजयरूपं विचेष्टितं यद्यपि शत्रुवञ्चनप्रधानं तथापि तद्धर्मादनपेतमेव बभूवेति सरलार्थः ॥ ७६ ॥

भा०—अश्वमेधके निमित्त जयकी इच्छा करनेवालेके कार्यमें यद्यपि शत्रुओंको वंचित करना मुख्य था तथापि वह कार्य धर्मपूर्वकही हुआ ॥ ७६ ॥

एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना ॥
वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः ॥ ७७ ॥

अन्वयः। एवं शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना प्रभावेण उद्यन् सः वृषा देवानां देव इव राज्ञां राजा बभूव ॥ ७७ ॥

वाच्यप०। एवम् उद्यता तेन वृष्णा देवानां देवेन इव राज्ञां राज्ञा बभूवे ॥ ७७ ॥

एवं शास्त्रोपदिष्टमार्गेण कोशदण्डजेन तेजसोद्युञ्जानः सः अतिथिः शक्रः देवानां देव इव राज्ञ राजा बभूवेति सरलार्थः ॥ ७७ ॥

भा०—इस प्रकार शास्त्रके दिखाये मार्गके प्रभावसे वृद्धिको प्राप्त हो वह देवताओंके देवता इन्द्रके समान राजोंका राजा हुआ ॥ ७७ ॥

पञ्चमं लोकपालानामूचुः साधर्म्ययोगतः ॥
भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः। (तं) साधर्म्ययोगतः लोकपालानां पंचमम् ऊचुः, महतां भूतानां षष्ठम् (ऊचुः,) कुलभूभृताम् अष्टमम् (ऊचुः) ॥ ७८ ॥

वाच्यप०। (सः) लोकपालानां पंचमः ऊचे महतां भूतानां षष्ठः कुलभूभृतामष्टमः (ऊचे) ॥ ७८ ॥

तं राजानं यथाक्रमं संसारसंरक्षणपरोपकारभूधारणरूपसमानधर्मत्वबलादिन्द्रादीनां लोकपालानां चतुर्णां पञ्चममूचुः, पृथिव्यादीनां पञ्चानां भूतानां षष्ठमूचुः, महेन्द्रमलयादीनां सप्तानामष्टममूचुरिति सरलार्थः ॥ ७८ ॥

भा०—उस राजाको समान धर्म होनेके कारण लोकपालोंका पांचवां महाभूतोंका छठा और पर्वतोंका अठवां कहते हैं ॥ ७८ ॥

(चार दिशाओंके लोकपाल इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यह पंच महाभूत हैं, महेन्द्र, मालय, सह्य, शुक्तिमत्, ऋक्ष, विन्ध्य, पारियात्र यह सात मुख्य पर्वत हैं)

दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम् ॥
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरंदरीमिव ॥ ७९ ॥

अन्वयः । भूपालाः शासनार्पितां तस्य आज्ञां देवाः पौरन्दरीमिव दूरापवर्जितच्छत्रैः शिरोभिः दधुः ॥ ७९ ॥

वाच्यप० । भूपालैः शासनार्पिता तस्य आज्ञा देवैः पौरन्दरी इव + शिरोभिः दधे ॥ ७९ ॥

नृपाः पत्रेष्वर्पितां तस्य राज्ञः आज्ञाम् देवा ऐन्द्रीमाज्ञामिव दूरात्परिहृतातपत्रैः शिरोभिर्दधुरिति सरलार्थः ॥ ७९ ॥

भा०—राजा मर्यादाके निमित्त दी हुई उसकी आज्ञाको मानों देवता इन्द्रकी (आज्ञाको) दूर किये हुए छत्रवाले शिरोंसे मान्ते हुए ॥ ७९ ॥

ऋत्विजः स तथानर्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ ॥
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ॥ ८० ॥

अन्वयः । सः महाक्रतौ ऋत्विजः दक्षिणाभिः तथा आनर्च यथा अस्य धनदस्य च नाम साधारणीभूतम् ॥ ८० ॥

वाच्यप० । तेन ऋत्विजः तथा आनर्चिरे यथा नाम्ना साधारणीभूतम् ॥ ८० ॥

स राजाऽश्वमेधे याजकान्दक्षिणाभिस्तथा पूजयामास यथास्य नृपस्य कुवेरस्य च नामैकीभूतमिति सरलार्थः ॥ ८० ॥

भा०—उसने अश्वमेधमें ऋत्विजोंका दक्षिणासे ऐसा सत्कार किया कि, उसका और कुवेरका नाम तुल्यही होगया (अर्थात् उसेभी कुवेर कहने लगे ॥ ८० ॥

इन्द्राद्वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभू-
द्यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचराणाम् ॥
पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोषवृद्धिं कुवेर-
स्तस्मिन्दण्डोपनतचरितं भेजिरे लोकपालाः ॥ ८१ ॥

अन्वय. । इन्द्रात् वृष्टिः अभूत् यमः नियमितगदोद्रेकवृत्तिः (अभूत्) यादोनाथः नौचराणां कर्मणे शिवजलपथः (अभूत्) तदनु पूर्वापेक्षी कुवेरः कोषवृद्धिं विदधे (इत्थं) लोकपालाः तस्मिन् दंडोपनतचरितं भेजिरे ॥ ८१ ॥

वाच्यप० । इन्द्रात् वृष्टया अभावि, यमेन नियमितगदोद्रेकवृत्तिना (अभावि,) यादोनाथेन + शिवजलपथेन (अभावि,) तदनु पूर्वापेक्षिणा कुवेरेण कोषवृद्धिः विदधे लोकपालैः + भेजे ॥ ८१ ॥

पुरन्दराद्वृष्टिरभूत् यमो निवारितरोगोद्रेकवृत्तिरभूत् वरुणो नाविकानां संचाराय सुचरजलमार्गोऽभूत् तदनु रघुरामादिमहिमाभिज्ञः कुवेरः कोषवृद्धिं विदधे इत्थं लोकपालास्तस्मिन् नृपे दण्डोपनतस्य शरणागतस्य वृत्तिं भेजिर इति सरलार्थः ॥ ८१ ॥

भा०—इन्द्रसे वर्षा हुई, यम रोगकी वृद्धिको रोकनेवाले हुए, वरुण नाव चलानेके कर्ममें जलका मार्ग सुगम करनेवाला हुआ, इसके पीछे पुरुषाओंका माहात्म्य जाननेवाले कुवेरने कोष बढाया, इस प्रकार लोकनाथोंने उसमें दण्डसे वशीभूत कियेहुओंकी रीति की ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ।

स नैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्धशत्रुः ॥
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव ॥ १ ॥

अन्वयः । निषिद्धशत्रुः सः नैषधस्य अर्थपतेः सुतायां निषधात् नगेन्द्रात् अनूनसारं पुत्रम् उत्पादयामास यं निषिधाख्यम् एव आहुः ॥ १ ॥

वाच्यप० । निषिद्धशत्रुणा तेन + अनूनसारः पुत्रः उत्पादयामासे यः निषधाख्यः उच्यते॥१॥

निवारितशत्रुः सोऽतिथिर्निषधदेशाधीश्वरस्यार्थपते राज्ञः कन्यायां निषधाख्यात्पर्वतादन्यूनबलं सुतमुत्पादयामास यं सुतं निषधनामकमेवाहुरिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—शत्रुओंको निवारण करनेवाले उसने निषधदेशके राजाकी पुत्रीमें पर्वतके समान बलवाले पुत्रको उत्पन्न किया, जिसको निषध नामवाला कहतेहैं ॥ १ ॥

तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना ॥
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन संपत्तिफलोन्मुखेन ॥ २ ॥

अन्वयः । उरुवीर्येण प्रजायै कल्पिष्यमाणेन यूना पिता सुवृष्टियोगात् सम्पत्तिफलोन्मुखेन सस्येन जीवलोक इव ननन्द ॥ २ ॥

वाच्यप० । पित्रा + जीवलोकेन इव ननन्दे ॥ २ ॥

अतिपराक्रमेण प्रजार्थे जगद्रक्षणार्थं कल्पिष्यमाणेन तेन निषधेन पिताऽतिथिः सुवृष्टिसंयोगात्पाकोन्मुखेन सस्येन जीवलोक इव जहर्षेति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०–बडे पराक्रमी लोक रक्षाके निमित्त युवराज पदवी पायेहुए उस युवासे पिता अच्छी वर्षाके योगसे पकनेको प्राप्त हुए धानसे प्रजाके समान प्रसन्न हुआ ॥ २ ॥

शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः ॥
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह ॥ ३ ॥

अन्वयः । कौमुद्वतेयः शब्दादिसुखं निर्विश्य चिराय तस्मिन् प्रतिष्ठापितराजशब्दः (सन्) कुमुदावदातैः कर्मभिः अर्जितां द्याम् आरुरोह ॥ ३ ॥

वाच्यप० । कौमुद्वतेयेन + तस्मिन् प्रतिष्ठापितराजशब्देन (सता) अर्जिता द्यौः आरुरुहे ॥ ३ ॥

अतिथिः शब्दस्पर्शादिसुखसाधनं विषयवर्गमुपभुज्य चिराय तस्मिन्निषधाख्ये दत्तराज्यः सन् निर्मलैरश्वमेधादिकर्मभिः संपादितं स्वर्गमारुरोहेति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०–कुमुद्वतीका पुत्र शब्दादि सुख बहुत कालतक भोगकर बडे उस कुमारमें राजशब्द स्थापित करके कुमुदकी तुल्य कर्मोंसे पायेहुए स्वर्गको गया ॥ ३ ॥

पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः ॥
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ॥ ४ ॥

अन्वयः । कुशेशयाक्षः सागरधीरचेताः एकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजः कुशस्य पौत्रः अपि ससागरां भुवं बुभोज ॥ ४ ॥

वाच्यप० । कुशेशयाक्षेण सागरधीरचेतसा एकवीरेण पुरार्गलादीर्घभुजेन कुशस्य पौत्रेणापि ससागरा भूः बुभुजे ॥ ४ ॥

कमललोचनः समुद्रगम्भीरचित्तः असहायशूरः पुरकपाटविष्कम्भदीर्घबाहुः कुशस्य पौत्रो निषधोपि ससागरामेकातपत्रां वसुधां पालयामासेति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०–कमलके समान नेत्रवाले, सागरके समान गंभीरचित्त, एकवीर, नगरकी अर्गलाकी समान दीर्घ भुजावाले कुशके पोतेनेभी सागरपर्यन्त पृथ्वी भोगी ॥ ४ ॥

तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः ॥
यो नड्वलानीव गजः परेषां बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः ॥ ५ ॥

अन्वयः । अनलौजाः नलाभिधानः तस्य अन्ते वंशश्रियं प्राप नलिनाभवक्त्रः यः गजः नड्वलानीव परेषां बलानि अमृद्नात् ॥ ५ ॥

वाच्यप० । अनलौजसा नलाभिधानेन तस्य अन्ते वंशश्रीः प्रापे नलिनाभवक्त्रेण येन गजेन नड्वलानीव परेषां बलानि अमृद्यंत ॥ ५ ॥

अनलौजा नलाख्यस्तस्य निषधस्य पुत्रः पितुरवसाने वंशलक्ष्मीं प्राप नवतामरसाननो यो हस्ती नडप्रायस्थलानीव शत्रूणां बलानि ममर्देति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—अग्निकी समान तेजस्वी नल नामक राजा उसके पीछे वंशकी लक्ष्मीको प्राप्त हुआ, जिस कमलकी शोभाके समान मुखवालेने मानों हाथीने नरसलकी समान शत्रुओंकी सेना तोडी ॥ ५ ॥

नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे नभस्तलश्यामतनुं तनूजम् ॥
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम् ॥६॥

अन्वयः। नभश्चरैः गीतयशाः सः नभस्तलश्यामतनुं नभःशब्दमयेन नाम्ना ख्यातं नभोमासमिव प्रजानां कान्तं तनूजं लेभे ॥ ६ ॥

वाच्यप०। नभश्चरैः गीतयशसा तेन नभस्तलश्यामतनुः नभःशब्दमयेन नाम्ना ख्यातः नभोमासः इव प्रजानां कान्तः तनूजः लेभे ॥ ६ ॥

गन्धर्वादिभिर्गीतयशाः स नलो नभस्तलश्यामशरीरं नभःशब्दसंज्ञकं श्रावणमासमिव प्रजानां प्रियं पुत्रं लेभ इति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—गन्धर्वोंके गायेहुए यशवाले उसने आकाशके समान श्यामशरीर, श्रावणमासके समान प्रजाओंका प्यारा नभ नामक पुत्र पाया ॥ ६ ॥

तस्मै विसृज्योत्तरकोसलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभवे प्रभुत्वम् ॥
मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध ॥ ७ ॥

अन्वयः। धर्मोत्तरः (सः) प्रभवे तस्मै तत् उत्तरकोसलानां प्रभुत्वं विसृज्य जरसोपदिष्टं मृगैरजर्यं पुनः अदेहबंधाय बबंध ॥ ७ ॥

वाच्यप०। धर्मोत्तरेण (तेन) + जरसोपदिष्टं मृगैरजर्यं पुनः अदेहबंधाय बबंधे ॥ ७ ॥

धर्मप्रधानः सः नलः समर्थाय तस्मै नभसे तदुत्तरकोसलानामाधिपत्यं दत्त्वा वार्द्धके चिकीर्षितं मृगैः सह संगतं पुनर्देहसम्बन्धनिवृत्तये बबन्धेति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०—धर्मवाले (नलने) उस समर्थ पुत्रके निमित्त उत्तरकोसल देशका राज्य देकर वृद्धावस्थाकी दिखाईहुई संगति फिर देहबंधन न होनेके निमित्त मृगोंसे बांधी ॥ ७ ॥

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः ॥
शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः ॥ ८ ॥

अन्वयः। तेन द्विपानां पुण्डरीक इव राज्ञामजय्यः पुण्डरीकः अजनि पितरि शान्ते आहृतपुण्डरीका श्रीः यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता ॥ ८ ॥

वाच्यप०। सः द्विपानां पुण्डरीकमिव राज्ञामजय्यं पुण्डरीकमजीजनत् आहृतपुण्डरीकया श्रिया यः पुण्डरीकाक्ष इव श्रितः ॥ ८ ॥

तेन नभसा गजानां पुण्डरीको दिग्गजविशेष इव राज्ञां जेतुमशक्यः पुण्डरीकाख्यः सुतः जनितः पितरि स्वर्गते सति गृहीतश्वेतपद्मा लक्ष्मीर्यं पुण्डरीकाख्यं नारायणमिव श्रिता इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०—उसने हाथियोंमें पुण्डरीकके समान राजाओंमें अजित पुण्डरीक नाम पुत्र उत्पन्न किया, पिताके शान्त होनेपर कमल हाथमें लिये लक्ष्मी जिसको पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) के समान सेवन करती हुई ॥ ८ ॥

स क्षेमधन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम् ॥
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार ॥ ९ ॥

अन्वयः । अमोघधन्वा सः प्रजाक्षेमविधानदक्षं क्षमयोपपन्नं क्षेमधन्वानं पुत्रं क्ष्मां लंभयित्वा क्षान्ततरः (सन्) वने तपः चचार ॥ ९ ॥

वाच्यप० । अमोघधन्वना तेन प्रजाक्षेमविधानदक्षं क्षमयोपपन्नं क्षेमधन्वानं पुत्रं क्ष्मां लंभयित्वा क्षान्ततरेण (सता) वने तपः चेरे ॥ ९ ॥

अमोघन्वा स पुण्डरीकः प्रजानां क्षेमविधानदक्षं क्षान्तियुक्तं क्षेमधन्वानं नाम पुत्रं पृथिवीं प्रापय्यात्यन्तसहिष्णुः सन् वने तपश्चचारेति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०—सफल धनुषधारी उसने प्रजाकी कुशल विधान करनेमें समर्थ, क्षान्तियुक्त, क्षेमधन्वा नाम पुत्रको पृथ्वी प्राप्त कराकर आप अधिक शान्त होकर वनमें तप आचरण किया ॥ ९ ॥

अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत् ॥
व्यश्रूयतानीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य ॥ १० ॥

अन्वयः । तस्य अपि समरे अनीकिनीनाम् अग्रयायी देवप्रतिमः सुतः अभूत्, यस्य अनीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेपि व्यश्रूयत ॥ १० ॥

वाच्यप० । अग्रयायिना देवप्रतिमेन सुतेन अभावि (देवाः) व्यश्रृण्वन् ॥ १० ॥

तस्य क्षेमधन्वनोपि युद्धे चमूनामग्रगामी इन्द्रादिकल्पः पुत्रोऽभूत्, अनीकशब्दान्तं देवशब्दपूर्वं यस्य नाम देवानीक इति स्वर्गेपि विश्रुतमिति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—उसके भी युद्धमें सेनाओंके आगे चलनेवाला, इन्द्रके समान पुत्र हुआ, जिसका अन्तमें अनीक पद आदिमें देव शब्द (देवानीक) वाला नाम स्वर्गमेंभी सुना गया है ॥ १० ॥

पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन ॥
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्बभूव ॥ ११ ॥

अन्वयः। सः समाराधनतत्परेण तेन पुत्रेण यथैव पुत्री बभूव तथैव सः पुत्रः आत्मजवत्सलेन तेन पित्रा पितृमान् बभूव ॥ ११ ॥

वाच्यप०। तेन तथैव पुत्रिणा बभूवे। तथैव तेन पुत्रेण + पितृमता बभूवे ॥ ११ ॥

स क्षेमधन्वा शुश्रूषापरेण तेन पुत्रेण यथैव पुत्री बभूव तथैव स पुत्रो देवानीकः सुतवत्सले तेन पित्रा पितृमान् बभूवेति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—वह शुश्रूषा करनेमें तत्पर जैसा उस पुत्रसे पुत्रवाला हुआ, वैसाही वह पुत्र भी उस पुत्रवत्सल पितासे पितावाला हुआ ॥ ११ ॥

पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य ॥
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम् ॥ १२ ॥

अन्वयः। गुणानाम् एकनिधिः यज्वा तयोः पूर्वः आत्मसमे आत्मोद्भवे चिरोढां वर्णचतुष्टयस्य धुरं निधाय यजमानलोकं जगाम ॥ १२ ॥

वाच्यप०। गुणानाम् एकनिधिना यज्वना + यजमानलोकः जग्मे ॥ १२ ॥

गुणानामेकनिधिर्विधिवदिष्टवांस्तयोः पितृपुत्रयोर्मध्ये पिता क्षेमधन्वा स्वतुल्ये पुत्रे देवानीके चिरधृतं वर्णचतुष्टस्य रक्षाभारं निधाय स्वर्गं जगामेति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—गुणोंका एक सागर यज्ञका करनेवाला उनमेंसे पहला अपने समान पुत्रमें बहुत कालसे धारण किया हुआ चारों वर्णोंका भार रख कर यजमान लोकको गया ॥ १२ ॥

(यज्ञ करनेवालोंका लोक स्वर्ग)

वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वेषामिवासीद्द्विषतामपीष्टः ॥
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान्ग्रहीतुम् ॥ १३ ॥

अन्वयः। तस्य वशी सुतः वशंवदत्वात् स्वेषामिव द्विषतामपि इष्टः आसीत्, तथाहि प्रयुक्तं माधुर्यं सकृद्विविग्नानपि हरिणान् ग्रहीतुम् ईष्टे ॥ १३ ॥

वाच्यप०। तस्य वशिना सुतेन + इष्टेन अभूयत, तथा हि प्रयुक्तेन माधुर्येण + ईश्यते ॥ १३ ॥

तस्य देवानीकस्य समर्थः पुत्रोऽहीनगुर्नाम मधुरवादित्वात्स्वेषामिव शत्रूणामपि प्रिय आसीत्, तथा ह्युच्चारितं माधुर्यमेकवारं भीतानपि हरिणान्वशीकर्तुं शक्नोतीति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—उसका वशी पुत्र मनोहर बोलनेके कारण शत्रुओंकोभी अपनोंकी नांई प्रिय हुआ, कारण कि मनोहर वचन एकार भयभीत हुए मृगोंकेभी पकडनेमें समर्थ होता है ॥ १३ ॥

अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनबाहुद्रविणः शशास ॥
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद्युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः ॥ १४ ॥

अन्वयः । अहीनबाहुद्रविणः हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वात् युवापि अनर्थैः व्यसनैः विहीनः अहीनगुर्नाम स समग्रां गां शशास ॥ १४ ॥

वाच्यप० । अहीनबाहुद्रविणेन + यूनापि अनर्थैः व्यसनैः विहीनेन अहीनगुनाम्ना तेन समग्रा गौः शशासे ॥ १४ ॥

समग्रबाहुपराक्रमः नीचसंसर्गविमुखत्वाद्युवापि कष्टकरैः पानद्यूतादिभिर्व्यसनै रहितोऽहीनगुर्नाम देवानीकपुत्रः संपूर्णां वसुमतीं शशासेति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—लम्बीभुजावाला पराक्रमी हीनसंसर्गरहित होनेसे युवा होकरभी अनर्थ करनेवाले व्यसनोंसे हीन हो अहीनगु नाम उस राजाने समस्त पृथ्वी पालन की॥ १४॥

गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः ॥
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव ॥ १५ ॥

अन्वयः । पुंसामन्तरज्ञः चतुरः सः गुरोः अन्तरम् अवतीर्णः आद्यः पुमान् इव अस्खलितैः चतुर्भिरुपक्रमैः चतुर्दिगीशः बभूव ॥ १५ ॥

वाच्यप० । पुंसामन्तरज्ञेन चतुरेण तेन + अवतीर्णेन आद्येन पुंसा इव चतुर्दिगीशेन बभूवे ॥ १५ ॥

विशेषज्ञः निपुणः सोऽहीनगुश्च पितुरनतरं भुवं प्राप्तो विष्णुरिवाप्रातिहतैः सामाद्युपायैश्चतसृणां दिशामीशो बभूवेति सरलार्थः ॥ १५ ॥

भा०—मनुष्योंके अन्तरकी जाननेवाला चतुर वह पिताके पीछे अवतार लिये आदिपुरुष विष्णुकी समान फलयुक्त चारों उपायोंसे चारों दिशाओंका स्वामी हुआ ॥ १५ ॥

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम् ॥
उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम् ॥१६॥

अन्वयः । अरीणां जेतरि तस्मिन् परलोकयात्रां प्रयाते सति उच्चैः शिरस्त्वात् जितपारियात्रं तदीयं तनयं पारियात्रं लक्ष्मीः सिषेवे किल ॥ १६ ॥

वाच्यप० । जितपारियात्रः तदीयः तनयः लक्ष्म्या सिषेवे किल ॥ १६ ॥

शत्रूणां जेतरि तस्मिन्नहीनगौ परलोकयात्रां प्राप्ते सत्युन्नतशिरस्कत्वाज्जितकुलशैलपारियात्राख्यं तदीयं पुत्रं पारियात्रं राजलक्ष्मीः सिषेवे किलेति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—शत्रुओंके जीतनेवाले उसके परलोक जानेपर ऊंचे शिरके कारण पारियात्र (पर्वत) को तिरस्कार करनेवाले उसके पुत्रको लक्ष्मी सेवन करती भई ॥ १६ ॥

तस्याभवत्सूनुरुदारशीलः शिलः शिलापट्टविशालवक्षाः ॥
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामव्रजदीड्यमानः ॥ १७ ॥

अन्वयः । तस्य उदारशीलः शिलापट्टविशालवक्षाः शिलः सूनुः अभवत्, यः शिलीमुखैः जितारिपक्षोपि ईड्यमानः सन् शालीनताम् अव्रजत् ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तस्य उदारशीलेन शिलापट्टविशालवक्षसा शिलेन सूनुना अभूयत, येन + जितारिपक्षेणापि ईड्यमानेन सता शालीनता अव्रज्यत ॥ १७ ॥

तस्य पारियात्रस्य महावृत्तः शिलापट्टविशालवक्षाः शिलाख्यः पुत्रोऽभवत्, यः बाणैः जितशत्रुपक्षोपि स्तूयमानः सन् लज्जामगच्छदिति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०–उसका उदारशील पत्थरकी शिलाकी समान चौडी छातीवाला शिल नाम पुत्र हुआ जो शिलीमुखों (बाणों) से शत्रुओंको जीत स्तुतिको प्राप्त होकरभी नम्रताको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

तमात्मसंपन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव ॥
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् ॥ १८ ॥

अन्वयः । अनिंदितात्मा सः आत्मसंपन्नं युवानं तं युवराजमेव कृत्वा सुखानि अभुंक्त, हि राज्ञां वृत्तं सुखोपरोधि उपरुद्धवृत्तम् ॥ १८ ॥

वाच्यप० । अनिन्दितात्मना तेन आत्मसम्पन्नं युवानं तं युवराजं कृत्वा सुखानि अभुज्यन्त, हि राज्ञां वृत्तेन सुखोपरोधिना उपरुद्धवृत्तेन (भूयते) ॥ १८ ॥

अगर्हितस्वभावः सः पारियात्रः बुद्धिमन्तं तरुणं तं शिलं युवराजं कृत्वैव सुखान्यभुङ्क्त, यस्मान्नृपाणां प्रजाभरणादिरूपं वृत्तं सुखप्रतिबन्धकमिति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०–अनिन्दितस्वभाववाला वह बुद्धिसम्पन्न युवा उस कुमारको युवराज कर सुख भोगता हुआ कारण कि राजाओंके कार्य कैदियोंके समान सुख रोकनेवाले होते हैं ॥ १८ ॥

तं रागबन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम् ॥
विलासिनीनामरतिक्षमापि जरा वृथा मत्सरिणी जहार ॥ १९ ॥

अन्वयः । रागबंधिषु भोगेषु अवितृप्तम् एव विलासिनीनां सौभाग्यविशेषभोग्यं तम् अरतिक्षमापि वृथा मत्सरिणी जरा जहार ॥ १९ ॥

वाच्यप० । रागबंधिषु भोगेषु वितृप्तः विलासिनीनां सौभाग्यविशेषभोग्यः स अरतिक्षमयापि वृथा मत्सरिण्या जरया (जरसा) जह्रे ॥ १९ ॥

रागप्रवर्तिषु भोगेषु विषयेष्वतृप्तमेव सन्तं भोक्त्रीणां सौन्दर्यातिशयेन भोगार्हं तं पारियात्रमरतिक्षमापि रतिक्षमासु विलासिनीषु वृथा मत्सरिणी जरा वशीचकारेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०-राग बांधनेवाले भोगोंमें विना तृप्त हुए ही स्त्रियोंके अधिक सुन्दरताके विशेष भोगवाले उस राजाको स्त्रीव्यवहारमें असमर्थ होकरभी वृथा मत्सर करनेवाली जराने हरा दिया ॥ १९ ॥

उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः ॥

सुतोऽभवत्पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य ॥ २० ॥

अन्वयः । तस्य उन्नाभ इति उद्गतनामधेयः अयथार्थः उन्नतनाभिरंध्रः पंकजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नृपमण्डलस्य नाभिः सुतः अभवत् ॥ २० ॥

वाच्यप० । तस्य उन्नाभ इति उद्गतनामधेयेनायथार्थेन उन्नतनाभिरंध्रेण पंकजनाभकल्पेन × नाभिना सुतेन अभूयत ॥ २० ॥

तस्य शिलाख्यस्योन्नाभ इति प्रसिद्धनामा गम्भीरनाभिर्विष्णुतुल्यः संपूर्णस्य नृपमण्डलस्य नाभिः सुतोऽभवदिति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०-उसका उन्नाभ प्रसिद्ध नामवाला पुत्र उन्नतसे विरुद्ध (गहरी) नाभिवाला कमलनाभकी समान सब नृपमण्डलकी नाभि हुआ ॥ २० ॥

ततः परं वज्रधरप्रभावस्तदात्मजः संयति वज्रघोषः ।

बभूव वज्राकरभूषणायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः ॥ २१ ॥

अन्वयः । ततः परं वज्रधरप्रभावः संयति वज्रघोषः वज्रणाभः तदात्मजः वज्राकरभूषणायाः पृथिव्याः पतिः बभूव ॥ २१ ॥

वाच्यप० । वज्रधरप्रभावेण संयति वज्रघोषेण वज्रणाभेन तदात्मजेन पत्या बभूवे ॥ २१ ॥

ततः परमिन्द्रतेजाः युद्धे वज्रतुल्यध्वनिर्वज्रणाभो नाम उन्नाभस्य पुत्रः वज्राकरभूषणायाः पृथिव्या पतिर्बभूवेति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०-इसके उपरान्त इन्द्रकी समान प्रभाववाला, संग्राममें वज्रकी समान शब्द वाला, वज्रनाभ नामवाला उसका बेटा हीरेकी खानरूपी आभरणवाली पृथ्वीका पति हुआ ॥ २१ ॥

तस्मिन्गते द्यां सुकृतोपलब्धां तत्संभवं शंखणमर्णवान्ता ॥

उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः ॥ २२ ॥

अन्वयः । तस्मिन् सुकृतोपलब्ध्वां द्यां गते सति उत्खातशत्रुं शंखणं तत्संभवम् अर्णवान्ता वसुधा खनिभ्यः उदितैः उपहारैः उपतस्थे ॥ २२ ॥

वाच्यप० । उत्खातशत्रुः शंखणः तत्संभवः अर्णवान्तया वसुधया × उपतस्थे ॥ २२ ॥

तस्मिन्वज्रणाभे सुधर्मार्जितं स्वर्गं गते सत्युद्धृतशत्रुं शंखणं नाम तत्पुत्रंसागरान्ता वसुधा आकरेभ्य उत्पन्नै रत्नोपहारैः सिषेव इति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०-उसके पुण्यसे प्राप्त हुए स्वर्गके जानेपर शत्रुओंके उखाडनेवाले शंखण नाम उसके पुत्रको सागरपर्यन्त पृथ्वी खानोंसे निकले हुए रत्नोंकी भेंटसे सेवन करती हुई ॥ २२ ॥

तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः ॥
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः ॥ २३ ॥

अन्वयः। तस्यावसाने हरिदश्वधामा अश्विरूपः (तत्पुत्रः) पित्र्यं पदं प्रपेदे, वेलातटेषूषित-सैनिकाश्वं यं पुराविदः व्युषिताश्वमाहुः ॥ २३ ॥

वाच्यप०। हरिदश्वधाम्ना अश्विरूपेण (तत्पुत्रेण) पित्र्यं पदं प्रपेदे, वेलातटेषूषितसैनिकाश्वः यः पुराविदैः व्युषिताश्वः उच्यते ॥ २३ ॥

तस्य शंखणस्यान्ते सूर्यतेजा अतिसुन्दरस्तत्पुत्रः पित्र्यं पदं प्रपेदे, वेलातटेषु स्थितसैनिकाश्वं यं वृद्धाः व्युषिताश्वमाहुरिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०-उसके अन्तमें सूर्य समान तेजस्वी, अश्विनीकुमारकी समान रूपवान् उसका पुत्र पिताकी पदवीको प्राप्त हुआ, जिस सागरतटपर वास करते हुए वीरों और घोडोंवालेका वृद्धोंने व्युषिताश्वनाम कहा है ॥ २३ ॥

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे ॥
पातुंसहो विश्वसखः समग्रां विश्वंभरामात्मजमूर्तिरात्मा ॥ २४ ॥

अन्वयः। तेन क्षितेः ईश्वरेण विश्वेश्वरम् आराध्य विश्वसहः विश्वसखः समग्रां विश्वंभरां पातुं-सहः आत्मजमूर्तिरात्मा विजज्ञे ॥ २४ ॥

वाच्यप०। × विश्वसहेन विश्वसखेन समग्रां विश्वंभरां पातुंसहेन आत्मजमूर्तिना आत्मना विजज्ञे ॥ २४ ॥

तेन व्युषिताश्वेन विश्वेश्वरं काशीपतिमुपास्य विश्वसहो नाम विश्वसखः संपूर्णां भुवं रक्षितुं क्षमः पुत्ररूप्यात्मा स्वयमेव सुपुव इति सरलार्थः॥ २४ ॥

भा०-उस पृथ्वीपतिने विश्वेश्वरकी आराधना करके विश्वके प्रिय सम्पूर्ण विश्व-म्भरा (पृथ्वी) की रक्षा करनेमें समर्थ विश्वसह नामक पुत्ररूपमें आप जन्म लिया ॥ २४ ॥

अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः ॥
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत् ॥ २५ ॥

अन्वयः। नयज्ञः सः हिरण्याक्षरिपोः अंशे हिरण्यनाभे तनये जाते सति तरूणां सानिलो हि-रण्यरेता इव द्विषाम् असह्यः अभूत् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । नयज्ञेन तेन × सानिलेन हिरण्यरेतसा इव द्विषाम् असह्येन अभावि ॥ २५ ॥

नीतिज्ञः स विश्वसहः विष्णोरंशे हिरण्यनाभे तनये जाते सति वृक्षाणां सानिलो हुतभुगिव शत्रूणां सुतरामसह्योऽभूदिति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०—नीतिका जाननेवाला वह हिरण्याक्षके शत्रू विष्णुके अंशसे हिरण्यनाभ पुत्र उत्पन्न होनेपर वृक्षोंको पवनका संग पाकर अग्निके समान शत्रुओंको असह्य हुआ ॥ २५ ॥

पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः ॥
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव ॥ २६ ॥

अन्वयः । पितॄणाम् अनृणः कृती अन्ते वयसि अनन्तानि सुखानि लिप्सुः आजानुविलंबिबाहुं तं (हिरण्यनाभं) राजानं कृत्वा वल्कलवान् बभूव ॥ २६ ॥

वाच्यप० । पितॄणामनृणेन कृतिना × सुखानि लिप्सुना आजानुविलम्बिबाहुं तं राजानं कृत्वा वल्कलवता बभूवे ॥ २६ ॥

निवृत्तपितृऋणः कृतकृत्यः पिता विश्वसहः वार्द्धकेऽनन्तान्यविनाशानि सुखानि लिप्सुः दीर्घबाहुं तं हिरण्यनाभं राजानं कृत्वा वल्कलवान्बभूवेति सरलार्थः ॥ २६ ॥

भा०—पितरोंसे अनृण कृतकृत्य पिता वृद्धावस्थामें अनन्त सुखोंकी इच्छा करनेवाला जंघापर्यन्त लम्बी बाहोंवाले हिरण्यनाभको राजा करके वृक्षोंकी छाल धारण करनेवाला हुआ ॥ २६ ॥

कौसल्य इत्युत्तरकोसलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य ॥
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः ॥ २७ ॥

अन्वयः । उत्तरकोसलानां पत्युः पतंगान्वयभूषणस्य सोमसुतः तस्य द्वितीयः सोम इव नेत्रोत्सवः कौसल्य इति औरसः सुतः अभूत् ॥ २७ ॥

वाच्यप० । द्वितीयेन सोमेन इव नेत्रोत्सवेन कौसल्य इति औरसेन सुतेन अभावि ॥ २७ ॥

उत्तरकोसलानां पत्युः सूर्यवंशाभरणस्य सोमं सुवतस्तस्य हिरण्यनाभस्य द्वितीयश्चन्द्र इव नयनानन्दकरः कौसल्य इति प्रसिद्ध औरसः सुतोऽभूदिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—उत्तरकोशलदेशोंके स्वामी, सूर्यकुलके भूषण, यज्ञ करनेवाले उस राजाको दूसरे चन्द्रमाकी समान नेत्रोंको आनंद देनेवाला कौशल्यनामवाला औरस पुत्र हुआ ॥ २७ ॥

यशोभिराब्रह्मसभं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम ॥
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम् ॥ २८ ॥

अन्वयः । सः आब्रह्मसभं यशोभिः प्रकाशः ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मिष्ठं स्वतनुप्रसूतं निजेधिकारे निधाय ब्रह्मभूयं गतिम् आजगाम ॥ २८ ॥

वाच्यप० । यशोभिः प्रकाशेन तेन ब्रह्मभूयं गतिः आजग्मे ॥ २८ ॥

ब्रह्मसदनपर्यन्तं यशोभिः प्रसिद्धः स कौसल्योतिशयेन ब्रह्मविदं ब्रह्मिष्ठाख्यं स्वात्मजमेव प्रजापालने निधाय ब्रह्मगतिं जगामेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०–वह ब्रह्मासभातक यशसे प्रकाशमान् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मिष्ठ नाम अपने पुत्रको अपने अधिकारपर स्थापित कर ब्रह्मगतिको गया ॥ २८ ॥

तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ् महीं शासति शासनाङ्काम् ॥
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः ॥ २९ ॥

अन्वयः । कुलापीडनिभे सुप्रजसि तस्मिन् प्रजेशे शासनांकां महीं विपीडं शासति सति आनन्दजलाविलाक्ष्यः प्रजाः चिरं ननन्दुः ॥ २९ ॥

वाच्यप० । आनन्दजलाविलाक्षीभिः प्रजाभिः चिरं ननन्दे ॥ २९ ॥

कुलशेखरतुल्ये सत्पुत्रवति तस्मिन्प्रजेश्वरे ब्रह्मिष्ठे शासनाचिह्नां वसुमतीं निर्बाधं शासति सत्यानन्दवाष्पाकुलनेत्राः प्रजाश्चिरं ननन्दुरिति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०–कुलके शिरोमणि प्रजावान् उस प्रजापतिसे शासनके चिह्नवाली पृथ्वीकी रक्षा विघ्नरहित भलीप्रकार होनेसे प्रसन्नताके आंसू भरे नेत्रवाली प्रजा बहुत कालतक प्रसन्न रही ॥ २९ ॥

पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्ररथेन्द्रकेतोः ॥
तं पुत्रिणां पुष्करपद्मनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम् ॥ ३० ॥

अन्वयः । गुरुसेवनेन पात्रीकृतात्मा पत्ररथेन्द्रकेतोः स्पष्टाकृतिः पुष्करपद्मनेत्रः पुत्रः तं पुत्रिणाम् अग्रसंख्यां समारोपयत् ॥ ३० ॥

वाच्यप० । गुरुसेवनेन पात्रीकृतात्मना पत्ररथेन्द्रकेतोः स्पष्टाकृतिना पुष्करपद्मनेत्रेण पुत्रेण सः पुत्रिणाम् अग्रसंख्या समारोप्यत ॥ ३० ॥

पित्रादिशुश्रूषया योग्यीकृतात्मा गरुडध्वजस्य स्पष्टवपुः पद्मपलाशाक्षः पुत्राख्यः पुत्रः तं ब्रह्मिष्ठं पुत्रिणामग्रसंख्यां समारोपयदिति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०–पितादिककी सेवासे योग्यता पाये हुए, गरुडध्वजकी समान रूपवाले, कमललोचन पुत्र नामक (पुत्र) ने उसको पुत्रवानोंकी संख्यामें अग्रणी किया ॥ ३० ॥

वंशस्थितिं वंशकरेण तेन संभाव्य भावी स सखा मघोनः ॥
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप ॥ ३१ ॥

अन्वयः । स्पर्शनिवृत्तलौल्यः मघोनः भावी सखा सः वंशकरेण तेन वंशस्थितिं संभाव्य त्रिपुष्करेषु उपस्पृशन् त्रिदशत्वमाप ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । स्पर्शनिवृत्तलौल्येन मघोनः भाविना सख्या तेन + उपस्पृशता त्रिदशत्वमापे ॥ ३१ ॥

विषयेभ्यः निवृत्ततृष्णः पुरन्दरस्य भविष्यन् सखा अश्विष्ठो वंशप्रवर्तकेन तेन सुतेन कुलप्रतिष्ठां संपाद्य तीर्थविशेषेषु त्रिषु पुष्करेषु स्नानं कुर्वन् देवभूयमापेति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०–विषयोंसे निवृत्त तृष्णावाला, इन्द्रका मित्र होनेवाला वह वंश प्रवृत्त करनेवालेसे वंशकी स्थिति जानकर त्रिपुष्करतीर्थमें स्नान कर स्वर्गको गया ॥ ३१ ॥

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी ॥
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये ॥३२॥

अन्वयः । तस्य पत्नी पौष्यां तिथौ प्रभानिर्जितपुष्परागं पुष्यम् असूत, द्वितीये पुष्ये इव तस्मिन् उदिते जनाः समग्रां पुष्टिम् अपुष्यन् ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । तस्य पत्न्या प्रभानिर्जितपुष्परागः पुष्यः असूयत + जनैः समग्रा पुष्टिः अपुष्यत ॥ ३२ ॥

तस्य पुत्राख्यस्य महिषी पुष्यनक्षत्रयुक्तायां पौर्णमास्यां तिथौ. प्रभया निर्जितपुष्परागं पुष्याख्यं पुत्रमसूत, द्वितीये पुष्यनक्षत्र इव तस्मिन्नुदिते सति जनाः समग्रां वृद्धिमपुष्यन्निति सरलार्थः ॥३२॥

भा०–उसकी स्त्री पूसकी पौर्णमासीकी तिथिमें कान्तिसे पद्मरागमणिके जीतनेवाली पुष्यनाम पुत्रको उत्पन्न करती हुई, दूसरे पुष्यकी समान उसके उदय होनेपर प्रजा सब प्रकार पुष्ट हुई ॥ ३२ ॥

महीं महेच्छः परिकीर्य सूनौ मनीषिणे जैमिनयेऽर्पितात्मा ॥
तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः ॥३३॥

अन्वयः । महेच्छः जन्मभीरुः सूनौ महीं परिकीर्य मनीषिणे जैमिनये अर्पितात्मा सयोगात् तस्मात् योगम् अधिगम्य अजन्मने अकल्पत ॥ ३३ ॥

वाच्यप० । महेच्छेन जन्मभीरुणा जैमिनये अर्पितात्मना (तेन) × अकल्प्यत ॥ ३३ ॥

संसारभीरुः स पुत्रः सूनौ पृथिवीं विसृज्य ब्रह्मविद्याविदुषे जैमिनयेऽर्पितात्मा सन्योगिनस्तस्माज्जैमिनेर्योगविद्यामधिगम्य मोक्षाय समपद्यतेति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–महाशय, संसारसे डरनेवाला, वह पुत्रको पृथ्वी सौंप विद्वान् जैमिनिका शिष्य हो उस योगीसे योग सीख मुक्त होगया ॥ ३३ ॥

ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसंधिरुर्वीम् ॥
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसंधे संधिर्ध्रुवः संनमतामरीणाम् ॥३४॥

अन्वयः । ततः परं तत्प्रभवः ध्रुवोपमेयः ध्रुवसंधिः उर्वीं प्रपेदे, ज्यायसि सत्यसंधे यस्मिन् संनमताम् अरीणाम् संधिः ध्रुवः अभूत् ॥ ३४ ॥

वाच्यप० । ततः परं तत्प्रभवेण ध्रुवोपमेयेन ध्रुवसंधिना उर्वी प्रपेदे + सन्धिना ध्रुवेण अभावि ॥ ३४ ॥

ततः परं पुष्यात्मजः ध्रुवतुल्यः ध्रुवसंधिर्महीं प्रपेदे, श्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञे यस्मिन् ध्रुवसंधौ संनमतां शत्रूणां संधिः स्थिरोभूदिति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०—इसके उपरान्त उससे उत्पन्न हुआ ध्रुवकी समान ध्रुवसन्धि नाम पुत्र पृथ्वीको प्राप्त हुआ, जिस अधिक सत्यवादीमें दवेहुए शत्रुओंकी संधि ध्रुव (दृढ) हुई ॥ ३४ ॥

सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः ॥
मृगायताक्षो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः ॥ ३५ ॥

अन्वयः । मृगायताक्षः नृसिंहः सः दर्शात्यये इन्दुप्रियदर्शने सुदर्शनाख्ये सुते शिशौ, मृगयाविहारी सन् सिंहात् विपदम् अवापत् ॥ ३५ ॥

वाच्यप० । मृगायताक्षेण नृसिंहेन तेन + मृगयाविहारिणा सता विपत् अवाप्यत ॥ ३५ ॥

मृगायताक्षः पुरुषसिंहः स ध्रुवसंधिः दर्शात्यये प्रतिपच्चन्द्रतुल्ये सुदर्शनाख्ये पुत्रे शिशौ सत्येव मृगयाविहारी सन् सिंहान्मरणमवापदिति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०—मृगकी समान नेत्रवाले पुरुषसिंह द्वितीयाके चन्द्रमाकी समान प्रियदर्शन सुदर्शन नामक पुत्रकी बालअवस्थामेंही, उसने मृगया विहार करते सिंहसे मृत्यु पाई ॥ ३५ ॥

स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम् ॥
अनाथदीनाः प्रकृतीरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिवच्चकार ॥ ३६ ॥

अन्वयः । स्वर्गामिनः तस्य अमात्यवर्गः अनाथदीनाः प्रकृतीः अवेक्ष्य कुलतन्तुम् एकं तम् ऐकमत्यात् विधिवत् साकेतनाथं चकार ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । आत्मवर्गेण + कुलतन्तुः एकः सः विधिवत् साकेतनाथः चक्रे ॥ ३६ ॥

स्वर्गतस्य तस्य ध्रुवसंधेः मन्त्रिवर्गः नाथहीनाः शोच्याः प्रजा अवेक्ष्य कुलावलम्बनमेकं तं सुदर्शनमैकमत्याद्विधिवदयोध्याधीश्वरं चकारेति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०—स्वर्गमें जानेवाले उस राजाके मंत्रीसमूह अनाथ होनेसे दीन प्रजाको देखकर कुलके इकले डोरे उस कुमारको एकमति कर अयोध्याका स्वामी करते हुए ॥ ३६ ॥

नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन ॥
रघोः कूलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत् ॥ ३७ ॥

अन्वयः । अप्रौढनरेन्द्रं तत् रघोः कुलं नवेन्दुना नभसा, शावैकसिंहेन काननेन च, कुड्मलपुष्करेण तोयेन च, उपमेयमासीत् ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । अप्रौढनरेन्द्रेण तेन रघोः कुलेन + उपमेयेन अभूयत ॥ ३७ ॥

अप्रौढनरेन्द्रं तद्रघोः कुलं बालचन्द्रेण व्योम्ना, शावैकसिंहेन वनेन च कुड्मलपङ्कजेन तोयेनोपमातुमर्हमासीदिति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०—बालक राजावाला वह रघुका कुल, नवीन चन्द्रमावाले आकाशके संग और बालक सिंहपुत्रवाले वनके साथ, तथा कमलकलीवाले जलके साथ उपमा-देने योग्य हुआ ॥ ३७ ॥

लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः संभावितो मौलिपरिग्रहात्सः ॥
दृष्टो हि वृण्वन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः ॥३८॥

अन्वयः । सः मौलिपरिग्रहात् पितुः तुल्यः एव भावी लोकेन संभावितः (तथाहि) कलभ-प्रमाणः मेघः पुरोवातम् अवाप्य आशाः वृण्वन् दृष्टः हि ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । तं पितुः तुल्यमेव भाविनं लोकः संभावितवान् (तथाहि) कलभप्रमाणेन मेघेन + आशा वृण्वता दृष्टेन (भूयते) ॥ ३८ ॥

स बालः किरीटस्वीकारात्पितृस्वरूप एव भविष्यतीति जनेन तर्कितः । तथाहि कलभ-मात्रोपि मेघः पुरोवातमवाप्य दिशो गच्छन् दृष्टो हीति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—उसे किरीट धारण करनेसे पिताकी तुल्य होनेवाला प्रजाने जाना, कारण कि हाथीके बच्चेके समानभी मेघ पूर्वकी वायु लगनेसे दिशाओंको घेरता देखा-गया है ॥ ३८ ॥

तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तमाधोरणालम्बितमग्र्यवेषम् ॥
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण ॥ ३९ ॥

अन्वयः । राजवीथ्याम् अधिहस्ति यान्तम् आधोरणालंबितमग्र्यवेषं षड्वर्षदेशीयं तं पौराः प्रभुत्वात् पितृगौरवेण प्रैक्षन्त ॥ ३९ ॥

वाच्यप० । राजवीथ्याम् अधिहस्ति यातः आधोरणालम्बितः अग्र्यवेषः षड्वर्षदेशीयः सः पौरैः प्रभुत्वात् गौरवेण प्रैक्ष्यत ॥ ३९ ॥

राजमार्गे हस्तिनि गच्छन्तं शिशुत्वात्सादिना गृहीतमुदारनेपथ्यं षड्वर्षदेशीयमपि बालं तं सुदर्शनं प्रजाः प्रभुत्वात्पितृगौरवेण प्रैक्षन्तेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०—राजमार्गमें हाथीपर स्थित हो जातेहुए महावतके थामेहुए सुन्दर वेषधारी छः वर्षके बालकको पुरवासी स्वामी होनेसे पिताके गौरवसे देखते भये ॥ ३९ ॥

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय ॥
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामीकरपिञ्जरेण ॥ ४० ॥

अन्वयः । सः पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय कामं न अकल्पत, चामीकरपिंजरेण तेजो-महिम्ना आवृतात्मा सन् तत् व्याप ॥ ४० ॥

वाच्यप० । तेन + कामं न अकल्प्यत + आवृतात्मना सता व्यापे ॥ ४० ॥

स सुदर्शनः पैतृकस्य सिंहासनस्य सम्यक् प्रतिपूरणाय नाकल्पत, कनकगौरेण तेजःसंपदा तु विस्तारितदेहः संस्तत्सिंहासनं व्याप्तवानिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०–वह पिताके सिंहासनको पूर्ण करने योग्य न था, तथापि सुवर्णकी समान निर्मल तेजके प्रभावसे बढेहुए शरीरवालेने वह पूर्ण कर दिया ॥ ४० ॥

तस्मादधः किंचिदिवावतीर्णावसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम् ॥
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ ॥ ४१ ॥

अन्वयः । तस्मात् अधः किंचित् इव अवतीर्णौ तपनीयपीठम् असंस्पृशंतौ सालक्तकौ अस्य पादौ भूपतयः प्रसिद्धैः मौलिभिः ववंदिरे ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । भूपतिभिः पादौ + ववंदाते ॥ ४१ ॥

तस्मात्सिंहासनादधोदेशं प्रतीषल्लम्बौ सुवर्णपीठमल्पत्वादव्याप्तौ लाक्षारसावसिक्तावस्य सुदर्शनस्य पादौ भूपतय उन्नतैर्मुकुटैः प्रणेमुरिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०–उस सिंहासनसे कुछेक लटकते हुए सुवर्णके पीठको न छूते हुए, महावर लगे हुए उसके चरणोंको राजाओंने प्रसिद्ध मुकुटोंसे वन्दित किया ॥ ४१ ॥

मणौ महानील इति प्रभावादल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या ॥
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्युयुजेऽर्भकेऽपि ॥४२॥

अन्वयः । अल्पप्रमाणेपि मणौ प्रभावात् महानील इति यथा मिथ्या न तथा अर्भकेपि तस्मिन् प्रतीतः महाराज इति शब्दः मिथ्या न युयुजे ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । महानील इति मिथ्या न (भूयते) + महाराज इति शब्देन + युयुजे ॥ ४२ ॥

लघुप्रमाणेपीन्द्रनीले प्रभावान्महानील इति शब्दो यथा निरर्थको न तथैव बालकेपि तस्मिन् सुदर्शने प्रसिद्धो महाराज इति शब्दो मिथ्या न युयुजे इति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०–थोडे प्रमाणवालीभी मणिमें प्रभावसे महानील यह नाम जैसे मिथ्या नहीं है, इसी प्रकार इस बालकमें प्राप्त हुआ महाराज शब्द योग्यही था ॥ ४२ ॥

पर्यन्तसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात् ॥
तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम् ॥४३॥

अन्वयः । पर्यंतसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात् तस्य आननात् उच्चरितः विवादः अर्णवानां वेलासु अपि न चस्खाल ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । उच्चरितेन विवादेन अर्णवानां वेलासु अपि न चस्खले ॥ ४३ ॥

पार्श्वयोः संचारितचामरस्य तस्य बालस्य कपोलयोश्चञ्चलोभयकाकपक्षान्मुखादुच्चरितं वचनं सागराणां वेलास्वपि न चस्खालेति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०–दोनोंओर डुलते हुए चामरवाले, कपोलोंपर चलायमान अलकोंवाले उसके मुखसे निकला हुआ वचन समुद्रके तटोंपरभी वृथा न गया ॥ ४३ ॥

निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः ॥
तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार ॥ ४४ ॥

अन्वयः । निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे ललाटे न्यस्तं तिलकं दधानः स्मेरमुखः सः अरिसुन्दरीणां मुखानि तेनैव शून्यानि चकार ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । तिलकं दधादेन स्मेरमुखेन तेन + शून्यानि चक्रिरे ॥ ४४ ॥

कृतकनकपट्टशोभे ललाटे तिलकं दधानः स्मितमुखः स राजा शत्रुनारीणां मुखानि तिलकेनैव शून्यानि चकारेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०—सुवर्णका पटका बंधे मस्तकमें तिलक लगाये हँसमुखवाले उसने शत्रुनारियोंके मुख उस (तिलक) से शून्य किये ॥ ४४ ॥

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन ॥
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद्धुरं धरित्र्या बिभरांबभूव ॥ ४५ ॥

अन्वयः । शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः (अत एव) भूषणेन अपि खेदं यायात् (एवम्भूतः) सः नितान्तगुर्वीमपि धरित्र्याः धुरम् अनुभावात् बिभरांबभूव ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्येण + खेदः यायेत । तेन नितान्तगुर्वी अपि धरित्र्या धूः अनुभावात् बिभरांबभूवे ॥ ४५ ॥

शिरीषकुसुमाधिककोमलाङ्गः स राजा भूषणेनापि श्रमं गच्छेदेवंभूतोपि सः नितान्तगुर्वीमपि पृथिव्याः धुरं सामर्थ्याद्बभारेति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—शिरसके फूलसे भी अधिक कोमलशरीरवाला वह भूषणसेभी खेदको प्राप्त होताथा, और वही अत्यन्त भारी पृथ्वीके भारकोभी प्रभावसे धारण करता भया ॥ ४५ ॥

न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपिं न यावत् ॥
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्फलान्युपायुङ्क्त स दण्डनीतेः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । अक्षरभूमिकायां न्यस्ताक्षरां लिपिं कार्त्स्न्येन यावत् न गृह्णाति सः तावत् श्रुतवृद्धयोगात् सर्वाणि दण्डनीतेः फलानि उपायुंक्त ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । न्यस्ताक्षरा लिपिः कार्त्स्न्येन यावत् न गृह्यते तेन, तावत् + फलानि उपयुज्यन्त ॥ ४६ ॥

अक्षरलेखनस्थले रचिताक्षरपंक्तिरेखान्यासां पञ्चाशद्वर्णात्मिकां मातृकां कार्त्स्न्येन यावन्न गृह्णाति, स सुदर्शनस्तावद्विद्यावृद्धसंसर्गात् सर्वाणि दण्डनीतेः शास्त्रस्य फलान्यन्वभूदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—लिखनेके स्थलमें पट्टीपर लिखे अक्षरोंको जबतक उसने पूर्ण न ग्रहण किया तबतक विद्यावृद्धोंकी संगतिसे वह सम्पूर्ण दंडनीतिके फलोंसे युक्त होगया ॥ ४६ ॥

उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा ॥
संजातलज्जेव तमातपत्रच्छायाछलेनोपजुगूह लक्ष्मीः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तम् उदीक्षमाणा लक्ष्मीः संजातलज्जा इव तम् आतपत्रच्छायाछलेन उपजुगूह ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । उरस्यपर्याप्तनिवेशभागया प्रौढीभविष्यन्तम् उदीक्षमाणया लक्ष्म्या संजातलज्जया इव सः + उपजुगूहे ॥ ४७ ॥

उरस्यपर्याप्तनिवासावकाशा प्रौढवपुष्मान् भविष्यतीति प्रतीक्षमाणा लक्ष्मीः साक्षादालिङ्गितुं लज्जितेव तं सुदर्शनमातपत्रच्छायाछलेनालिलिङ्गेति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०-हृदयपर निवासस्थान न पाई हुई, युवा होनेकी आशा करनेवाली लक्ष्मीने लाजवाली स्त्रीकी समान उसको छत्र छायाके व्याजसे आलिंगन किया ॥ ४७ ॥

अनश्नुवानेन युगोपमानमबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन ॥
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः ॥ ४८ ॥

अन्वयः । युगोपमानम् अनश्नुवानेन अबद्धमौर्वीकिणलांछनेन अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि तस्य भुजेन भूमिः रक्षावती आसीत् ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । भूम्या रक्षावत्या अभूयत ॥ ४८ ॥

युगसादृश्यमप्राप्नुवता अबद्धज्याघातग्रंथिलाञ्छनेन अस्पृष्टखड्गमुष्टिना तस्य सुदर्शनस्य भुजेन पृथिवी रक्षावत्यासीदिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०-जुएकी उपमाको न प्राप्त हुई, प्रत्यञ्चाके चिह्नसे रहित, तल्वारकी मूठ न छूई हुई उसकी भुजासे पृथ्वी रक्षावती हुई ॥ ४८ ॥

न केवलं गच्छति तस्य काले ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम् ॥
वंश्या गुणाः खल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माः प्रथिमानमापुः ४९

अन्वयः । काले गच्छति सति तस्य केवलं शरीरावयवा विवृद्धिं न ययुः, (किन्तु) वंश्याः लोककान्ताः प्रारंभसूक्ष्माः गुणाः अपि प्रथिमानमापुः खलु ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । शरीरावयवैः विवृद्धिः न यये (किन्तु) वंश्यैः लोककांतैः प्रारंभसूक्ष्मैः गुणैः अपि प्रथिमा आपे ॥ ४९ ॥

काले गच्छति सति तस्य केवलं शरीरावयवा एव प्रसारं न ययुः, किन्तु वंश्या जनप्रिया आदौ सूक्ष्मास्तस्य शौर्यादयो गुणा अपि पृथुत्वमापुरिति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०-समय बीतनेपर केवल उसके शरीरके अंगही वृद्धिको न प्राप्त हुए, किन्तु वंशके प्रजाके प्यारे आदिमें सूक्ष्म गुणभी पूर्ण हुए ॥ ४९ ॥

स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम् ॥
तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः ॥५०॥

अन्वयः । सः पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निव गुरूणामक्लेशकरः (सन्) त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं तिस्रः विद्याः पित्र्याः प्रकृतीश्च जग्राह ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तेन पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरता इव गुरूणामक्लेशकरेण (सता) त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं तिस्रः विद्याः पित्र्याः प्रकृतयश्च जगृहिरे ॥ ५० ॥

स सुदर्शनः पूर्वस्मिञ्जन्मान्तरे दृष्टपाराः स्मरन्निव गुरूणामक्लेशकरः सन् धर्मार्थकामानां प्राप्तेर्मूलं तिस्रो विद्याः पित्र्याः प्रजाश्च स्वायत्तीचकारेति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—वह प्रथम जन्ममें पार देखी हुईसी स्मृति करताहुआ गुरुजनोंको विना क्लेश दियेहुएही त्रिवर्गप्राप्तिका मूल तीनों विद्या और पिताकी प्रजाको भी ग्रहण करता भया ॥ ५० ॥

(त्रयी, वार्ता और दंडनीति यह तीन विद्या हैं तीन वेदोंका नाम त्रयी है, वार्ता खेती व्यापारादिको कहते हैं, दंडनीति न्याय करना और त्रिवर्ग धर्म अर्थ कामको कहते हैं.)

व्यूह्य स्थितः किंचिदिवोत्तरार्द्धमुन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः ॥
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः ॥ ५१ ॥

अन्वयः । अस्त्रेषु विनीयमानः उत्तरार्द्धं किंचित् व्यूह्य स्थितः उन्नद्धचूडः अंचितसव्यजानुः आकर्णम् आकृष्टसबाणधन्वा (सन्) व्यरोचत ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । अस्त्रेषु विनीयमानेन उत्तरार्द्धं किंचित् व्यूह्य स्थितेन उन्नद्धचूडेन अंचितसव्यजानुना आकर्णम् आकृष्टसबाणधन्वना (सता) तेन व्यरुच्यत ॥ ५१ ॥

धनुर्विद्यायां शिक्ष्यमाणः पूर्वकायं किंचिदिव विस्तार्य स्थितः ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य बद्धकेश आकुञ्चितसव्यजानुः आकर्णमाकृष्टसशरशरासनः सन्नशोभतेति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—अस्त्रोंसे शिक्षित अगले आधे शरीरको कुछ बढाकर स्थित होताहुआ, ऊंचे जडेवाला, झुकीहुई बाईं जांघवाला, कर्णपर्यन्त बाण चढे धनुषको खेंचे हुए वह शोभित हुआ ॥ ५१ ॥

अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं
मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम् ॥
अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं
विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे ॥ ५२ ॥

अन्वयः । अथ सः वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं मधु रागबंधप्रवालं मनसिजतरुपुष्पम् अकृतकविधि सर्वांगीणम् आकल्पजातम् आद्यं विलसितपदं यौवनं प्रपेदे ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । तेन × प्रपेदे ॥ ५२ ॥

अथ स सुदर्शनः स्त्रीणां नेत्रैः भोग्यं क्षौद्रं रागबन्धप्रवालं मदनवृक्षकुसुममकृत्रिमसंपादनं सर्वाङ्गव्याप्तमाभरणसमूहभूतमाद्यं विलासस्थानं यौवनं प्रपेद इति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०—इसके उपरान्त उसने स्त्रियोंके नेत्रोंका प्रिय मधु, अनुरागके बढानेका पल्लववाला कामरूपी वृक्षका फूल, विनाही निर्माण किया हुआ सब अंगोका भूषण, आनन्दके उत्तम साधनका स्थान यौवन प्राप्त किया ॥ ५२ ॥

प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः
समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैः ॥
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः
प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः ॥ ५३ ॥

अन्वयः । दूतिसंदर्शिताभ्यः प्रतिकृतिरचनाभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैः अमात्यैः आहृताः राजकन्याः यूनः तस्य प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ अधिविविदुः ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । समधिकतररूपाभिः + आहृताभिः राजकन्याभिः + अधिविविदाते ॥ ५३ ॥

कन्यापरीक्षणार्थं प्रेषिताभिः दूतीभिः संदर्शिताभ्यः तूलिकादिलिखितकन्याप्रतिमानां विन्यासेभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैरमात्यैरानीता राजकन्याः यूनस्तस्य सुदर्शनस्य प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवावधिविविदुरिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

भा०—दूतियोंकी दिखाई हुई चित्ररचनाओंसे अधिक रूपवान्, पवित्र सन्तानकी इच्छा करनेवाले मंत्रियोंसे लाईहुई राजकन्याओंने उस युवाकी पहले ग्रहण की हुई लक्ष्मी और पृथ्वी वडी सौत कीं ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचितभावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ।

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम् ॥
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ॥ १ ॥

अन्वयः । श्रुतवताम् अपश्चिमः वशी राघवः पश्चिमे वयसि स्वपदे अग्नितेजसं तनयम् अग्निवर्णम् अभिषिच्य नैमिषं शिश्रिये ॥ १ ॥

वाच्यप० । श्रुतवताम् अपश्चिमेन वशिना राघवेण + नैमिषं शिश्रिये ॥ १ ॥

श्रुतसंपन्नानां प्रथमो वशी सुदर्शनः वृद्धावस्थायां स्वे स्थानेऽग्नितेजसं पुत्रमग्निवर्णमभिषिच्य नैमिषारण्यं श्रितवानिति सरलार्थः ॥ १ ॥

भा०—शास्त्र जाननेवालोंमें मुख्य जितेन्द्रिय रघुवंशीने वृद्धावस्थामें अपने स्थानपर अग्निसमान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्णको अभिषेकितकर नैमिषारण्यमें वास किया ॥ १॥

तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ॥
सौधवासमुटजेन विस्मृतः संचिकाय फलनिःस्पृहस्तपः ॥ २ ॥

अन्वयः । तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकाः, अन्तरितभूमिभिः कुशैः तल्पम् उटजेन सौधवासं विस्मृतः सः फलनिःस्पृहः तपः संचिकाय ॥ २ ॥

वाच्यप० । सौधवासं विस्मृतेन तेन+ तपः संचिक्ये ॥ २ ॥

तत्र नैमिषे तीर्थजलेन विहारवापीरन्तरितभूमीभिः कुशैस्तल्पं पर्णशालया सौधवासं विस्मृतवान्सः स्वर्गादिफले निःस्पृहस्तपः संचितवानिति सरलार्थः ॥ २ ॥

भा०—वहां तीर्थके जलसे विहारकी बावडियोंको, पृथ्वीमें बिछाये कुशोंसे शय्याको पर्णकुटीसे महलोंको भुलाकर वह फलकी इच्छा त्यागकर तप संचय करने लगा ॥ २ ॥

लब्धपालनविधौ न तत्सुतः खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी ॥
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसादयितुमस्य कल्पिता ॥ ३ ॥

अन्वयः । तत्सुतः लब्धपालनविधौ खेदं न आप, हि भुजनिर्जितद्विषा गुरुणा मेदिनी अस्य भोक्तुमेव कल्पिता प्रसाधयितुं न ॥ ३ ॥

वाच्यप० । तत्सुतेन × खेदः न आपे, भुजनिर्जितद्विट् गुरुः मेदिनीम् अस्य भोक्तुमेव कल्पितवान् प्रसाधयितुं न ॥ ३ ॥

सुदर्शनपुत्रोऽग्निवर्णः प्राप्तराज्यस्य पालनकर्मणि श्रमं नाप, यस्माद्भुजनिर्जितद्विषा पित्रा वसुमत्यस्याग्निवर्णस्य भोक्तुमेव कल्पिता कंटकशोधनाय नेति सरलार्थः ॥ ३ ॥

भा०—उसके पुत्रने प्राप्त किये राज्यकी पालनविधिमें खेद न पाया, कारण कि बाहुसे शत्रु जीतनेवाले उसके पिताने पृथ्वी इसके भोगनेहीके निमित्त दी थी कंटक शोधनको नहीं ॥ ३ ॥

सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः ॥
संनिवेश्य सचिवेष्वतः परं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत् ॥ ४ ॥

अन्वयः । अभिकः सः कुलोचितम् अधिकारं काश्चन समाः स्वयम् अवर्तयत् अतः परं सचिवेषु संनिवेश्य स्त्रीविधेयनवयौवनः अभवत् ॥ ४ ॥

वाच्यप० । अभिकेन तेन कुलोचितः अधिकारः + अवृत्यत, स्त्रीविधेयनवयौवनेन अभूयत ॥ ४ ॥

कामुकः सोऽग्निवर्णः कुलोचितं प्रजापालनमधिकारं कतिचिद्वत्सरान्स्वयमकरोदतः परं मन्त्रिषु निधाय स्त्र्यधीननवयौवनोऽभवदिति सरलार्थः ॥ ४ ॥

भा०—वह कामी कुलयोग्य राज्यको कुछ दिनोंतक स्वयं पालन करके पीछे मंत्रियोंको सौंप स्त्रीके आधीन नवयौवनवाला हुआ ॥ ४ ॥

कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु ॥
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः ॥ ५ ॥

अन्वयः । कामिनीसहचरस्य कामिनः तस्य मृदंगनादिषु वेश्मसु अधिकर्द्धिः उत्तरः उत्सवः ऋद्धिमन्तं पूर्वमुत्सवम् अपोहत् ॥ ५ ॥

वाच्यप० । अधिकर्द्धिना उत्तरेण उत्सवेन ऋद्धिमान् पूर्वम् उत्सवः अपोह्यत ॥ ५ ॥

कामिनीसहचरस्य तस्य मृदङ्गनादवत्सु वेश्मसु पूर्वस्मादधिकोत्सवः साधनसंपन्नं पूर्वमुत्सवमपानुददिति सरलार्थः ॥ ५ ॥

भा०—स्त्रियोंके साथी कामी उसके मृदंगोंके शब्दवाले महलोंमें पहले बढे हुए उत्सवका पिछले बढे हुए उत्सवने तिरस्कार करदिया ॥ ५ ॥

इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम् ॥
अन्तरेव विहरन्दिवानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः ॥ ६ ॥

अन्वयः । इन्द्रियार्थपरिशून्यम् एकम् अपि क्षणान्तरं सोढुम् अक्षमः सः दिवानिशम् अन्तरेव विहरन् समुत्सुकाः प्रजाः न व्यपैक्षत ॥ ६ ॥

वाच्यप० । अक्षमेण तेन दिवानिशम् अन्तरेव विहरता न व्यपैक्ष्यंत ॥ ६ ॥

शब्दादिविषयरहितं क्षणभेदं सोढुमशक्तः सोऽग्निवर्णः दिवानिशमन्तरेव विहरन् दर्शनाकांक्षिणीः प्रजाः नापेक्षितवानिति सरलार्थः ॥ ६ ॥

भा०—इन्द्रियोंके विषयविना एक क्षणकाभी अन्तर सहनेको असमर्थ वह रातदिन महलोंमेंही विहार करता भया दर्शनकी इच्छा करनेवाली प्रजाकोभी न देखता हुआ ॥ ६ ॥

गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ ॥
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम् ॥ ७ ॥

अन्वयः । जातु मंत्रिणां गौरवात् प्रकृतिकांक्षितं यदपि दर्शनं ददौ, तत् (अपि) गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन काल्पितम् ॥ ७ ॥

वाच्यप० । प्रकृतिकांक्षितं दर्शनं ददे + + काल्पितम् ॥ ७ ॥

कदाचिन्मंत्रिणां गौरवात्प्रजाभिः कांक्षितं यदपि दर्शनं ददौ, तदपि गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणमात्रेण संपादितामिति सरलार्थः ॥ ७ ॥

भा०-कभी जो मंत्रियोंके गौरवसे प्रजाओंका इच्छा कियाहुआ दर्शन दिया, तो गवाक्षमें लटकते हुए केवल एक चरणसे ॥ ७ ॥

तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः कोमलात्मनखरागरूषितम् ॥
भेजिरे नवदिवाकरातपस्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम् ॥ ८ ॥

अन्वयः । कोमलात्मनखरागरूषितं नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुलाधिरोहणं तम् अनुजीविनः कृतप्रणतयः (सन्तः) भेजिरे ॥ ८ ॥

वाच्यप० । कोमलात्मनखरागरूषितः नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुलाधिरोहणः सः अनुजीविभिः कृतप्रणतिभिः भेजे ॥ ८ ॥

मृदुलेनात्मनखानामारुण्येन छुरितमत एव नवसूर्यातपव्यातपङ्कजतुल्याधिरोहणं तं चरणमनुजीविनः कृतनमस्काराः सन्तः सिषेविरे इति सरलार्थः ॥ ८ ॥

भा०-सुकुमार नखोंकी लालीसे युक्त, प्रभातके सूर्यकी धूप लगेहुए कमलकी उपमाको प्राप्त हुए उस (पद) को सेवकजन प्रणाम करके सेवन करते भये ॥ ८ ॥

यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः ॥
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः ॥ ९ ॥

अन्वयः । विगाढमन्मथः सः यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाः अम्बुभिः गूढमोहनगृहाः च दीर्घिकाः व्यगाहत ॥ ९ ॥

वाच्यप० । विगाढमन्मथेन तेन + व्यगाह्यत ॥ ९ ॥

प्रौढमदनः सोऽग्निवर्णः यौवनेनोन्नतानां विलासिनीस्तनानामाघातेन चञ्चलकमलाः तज्जलैः गूढसुरतगृहाः दीर्घिका व्यागहतेति सरलार्थः ॥ ९ ॥

भा०-महाकामी वह यौवनसे उन्नत हुए विलासिनियोंके स्तनोंके क्षोभसे चलायमान कमलवाली जलोंसे ढकेहुए क्रीडामंदिरवाली बावडियोंमें विहार करता भया ॥ ९ ॥

तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैर्धौतरागपरिपाटलाधरैः ॥
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः ॥ १० ॥

अन्वयः । तत्र अंगनाः सेकहृतलोचनांजनैः धौतरागपरिपाटलाधरैः आर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः तम् अधिकं व्यलोभयन् ॥ १० ॥

वाच्यप० । तत्र अंगनाभिः स अधिकं व्यलुभ्यत ॥ १० ॥

तत्र दीर्घिकास्वङ्गनाः सेकेन हृतनेत्रकज्जलैः धौतरागपरिपाटलाधरैरत एवाभिव्यञ्जितस्वाभाविकरागैर्मुखैस्तमग्निवर्णमधिकं प्रलोभितवत्य इति सरलार्थः ॥ १० ॥

भा०—तहां स्त्रियोंने स्नानसे अंजन मिटे हुए नेत्र, लाखकी लाली मिटेहुए होठवाले, स्वाभाविक शोभा पायेहुए मुखोंसे उसे अधिक लुभाया ॥ १० ॥

घ्राणकान्तमधगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः ॥
अभ्यपद्यत स वासितासखः पुष्पिताः कमलिनीरिव द्विपः॥११॥

अन्वयः । प्रियासखः सः घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः वासितासखः द्विपः पुष्पिताः कमलिनीरिव अभ्यपद्यत ॥ ११ ॥

वाच्यप० । प्रियासखेन तेन × घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिण्यः पानभूमिरचनाः वासितासखेन द्विपेन कमलिन्य इव अभ्यपद्यन्त ॥ ११ ॥

प्रियासखः सोऽग्निवर्णो घ्राणतर्पणेन मधुगन्धेन मनोहारिणीः पानभूमिरचनाः करिणीसहचरो द्विपः पुष्पिताः कमलिनीरिवाभिगत इति सरलार्थः ॥ ११ ॥

भा०—स्त्रियोंका सखा वह नासिकाकी प्रिय मदगन्धिसे (चित्त) खेंचनेहारी पानभूमिकी रचनामें हथिनियोंका सखा हाथी फूलीहुई कमलिनियोंमें मानों प्रवृत्त हुआ ॥ ११ ॥

सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः ॥
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं सोऽपिबद्बकुलतुल्यदोहदः ॥ १२ ॥

अन्वयः । अंगनाः रहः सातिरेकमदकारणं तेन दत्तं मुखासवम् अभिलेषुः, वकुलतुल्यदोहदः सोपि ताभिः उपहृतम् (मुखासवम) अपिबत् ॥ १२ ॥

वाच्यप० । अङ्गनाभिः रहः सातिरेकमदकारणं तेन दत्तः मुखासवः अभिलेषे, वकुलदोहदेन तेनापि उपहृतः (मुखासवः) अपीयत ॥ १२ ॥

अङ्गनाः रहसि सातिशयस्य मदस्य कारणं तेनाग्निवर्णेन्दत्तं मुखासवमभिलेषुः, वकुलेन तुल्याभिलाषः सोऽपि ताभिः स्त्रीभिर्दत्तं मुखासवमपिबदिति सरलार्थः ॥ १२ ॥

भा०—स्त्रियें एकान्तमें अत्यन्त मद करनेवाला उसका दिया हुआ मुखका आसव अभिलाषासे लेती हुई बकुलकी समान अभिलाषा करनेवाला वहभी उनका दिया हुआ मुखका आसव पीता हुआ ॥ १२ ॥

(मौलसरीका वृक्ष स्त्रियोंके मुखासवसे अधिक प्रफुल्लित होताहै; यह कविप्रसिद्धि है)।

अंकमंकपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे ॥
वल्लकी च हृदयंगमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना ॥ १३ ॥

अन्वयः। अंकपरिवर्तनोचिते उभे तस्य अंकम् अशून्यतां निन्यतुः हृदयंगमस्वना वल्लकी च वल्गुवागपि वामलोचना च ॥ १३ ॥

वाच्यप०। अङ्कपरिवर्तनोचिताभ्याम् उभाभ्यां तस्य अङ्कम् अशून्यता निन्ये, हृदयंगमस्वनया वल्लक्या च वल्गुवाचापि वामलोचनया च ॥ १३ ॥

उत्सङ्गविहारयोग्ये उभे तस्याग्निवर्णस्याङ्कं पूर्णतां निन्यतुः, के उभे—मनोहरध्वनिः वीणा, मधुरभाषिणी कामिन्यपि चेति सरलार्थः ॥ १३ ॥

भा०—गोदीमें बैठने योग्य दोनोंने उसकी गोदी पूर्णताको पहुंचाई, मनोहरशब्द-वाली वीणाने और मनोहर वचनवाली स्त्रीने ॥ १३ ॥

स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः ॥
नर्तकीरभिनयातिलंघिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥ १४ ॥

अन्वयः। कृती स्वयं प्रहतपुष्करः लोलमाल्यवलयः मनः हरन् सः अभिनयातिलंघिनीः नर्तकीः पार्श्ववर्तिषु गुरुषु अलज्जयत् ॥ १४ ॥

वाच्यप०। कृतिना स्वयं प्रहतपुष्करेण लोलमाल्यवलयेन मनो हरता तेन अभिनयातिलंघिन्यः नर्तक्यः अलज्यन्त ॥ १४ ॥

कुशलः स्वयं वादितवाद्यमुखः लोलमाल्यवलयः नर्तकीनां मनो हरन् सोऽग्निवर्णोऽभिनयेषु स्खलन्तीर्विलासिनीः नाट्याचार्येषु समीपस्थेषु सत्स्वेव लज्जामगमयदिति सरलार्थः ॥ १४ ॥

भा०—कृतकृत्य, स्वयं बाजा बजाते हुए, माला कंकण हिलते हुए मन हरतेहुए उसने गति भूली हुई नाचनेवालियोंको निकटवर्ती नाट्याचार्योंके सन्मुख लज्जित किया ॥ १४ ॥

चारु नृत्यनिगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात् ॥
प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ ॥ १५ ॥

अन्वयः। चारु नृत्यनिगमे परिश्रमात् स्वेदभिन्नतिलकं च तन्मुखं प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन् (सन्) अमरालकेश्वरौ अत्यजीवत् ॥ १५ ॥

वाच्यप०। स्वेदभिन्नतिलकं च तन्मुखं प्रेमदत्तवदनानिलेन पिबता (सता) + अत्यजीव्येताम् ॥ १५ ॥

किं च चारु लास्यावसाने नर्तनप्रयासात्स्वेदेन विशीर्णतिलकं नर्तकीमुखं प्रेम्णा प्रवर्तितमुखमारुतः पिबन्निंद्रकुबेरावतिक्रम्याजीवादिति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—सुन्दर नृत्यके अन्तमें परिश्रमके कारण पसीनेसे तिलक मिटेहुए नर्तकी मुखको प्रेमसे मुखकी पवनदे पीतेहुए उसने इन्द्र और कुबेरसे अपना जीवन श्रेष्ठ माना ॥ १९ ॥

तस्य सावरणदृष्टसंधयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः ॥
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः ॥ १६ ॥

अन्वयः । उपसृत्य नवेषु काम्यवस्तुषु संगिनः तस्य सावरणदृष्टसंधयः समागमाः वल्लभाभिः सामिभुक्तविषयाः चक्रिरे ॥ १६ ॥

वाच्यप० । वल्लभाः चक्रुः ॥ १६ ॥

अन्यत्र गत्वा नूतनेषु शब्दादिष्विन्द्रियार्थेष्वासक्तिमतस्तस्य प्रच्छन्नसंधयः संगमाः प्रेयसीभिरर्धोपभुक्तेन्द्रियार्थाश्चक्रिर इति सरलार्थः ॥ १६ ॥

भा०—अन्यत्र जा कर नवीन २ वस्तुओंमें आसक्त होनेवाले उसके समागमोंको प्रगट और गुप्त उपायोंसे हाथ आयेहुएको प्यारियें अधभोगा रखती हुईं ॥ १६ ॥

अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ॥
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ॥ १७ ॥

अन्वयः । स प्रणयिनीः वंचयन् अंगुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूभंगकुटिलं वीक्षितं च असकृत् मेखलाभिः बंधनञ्च अवाप ॥ १७ ॥

वाच्यप० । तेन प्रणयिनीः वञ्चयता अंगुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूभंगकुटितं वीक्षितं च असकृत् मेखलाभिः बन्धनञ्च अवापे ॥ १७ ॥

सोऽग्निवर्णः प्रेयसीर्वञ्चयन् किसलयाग्रभर्त्सनं, भ्रूभेदेन कुटिलं वीक्षणं चासकृन्मेखलाभिर्बन्धनं चावापेति सरलार्थः ॥ १७ ॥

भा०—वह प्यारियोंको ठगताहुआ उंगलियोंके पोरोंकी तर्जना और भांव भंगकर तिरछी चितवन और करधनसे वार वार बंधनको पाता हुआ ॥ १७ ॥

तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु ॥
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः ॥ १८ ॥

अन्वयः । सुरतवाररात्रिषु दूतिविदितं (यथा तथा) पृष्ठतः निषेदुषा तेन विप्रलम्भपरिशंकिनः प्रियजनस्य कातरं वचः शुश्रुवे ॥ १८ ॥

वाच्यप० । सः दूतिविदितं, पृष्ठतः निषेदिवान् वचः शुश्राव ॥ १८ ॥

सुरतस्य वासरः तस्य रात्रिषु दूतीनां विदितं प्रियजनस्य पश्चाद्भागे निषेदुषा तेनाग्निवर्णेन विरहशङ्किनो प्रियजनस्य दीनवचनं शुश्रुव इति सरलार्थः ॥ १८ ॥

भा०—उसने रतिके दिनकी रात्रियोंमें दूतियोंसे जानेहुए पीठ पीछे बैठकर विहरकी शंकासे प्यारियोंके कातरवचन सुने ॥ १८ ॥

लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहान्नर्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः ॥
वर्तते स्म स कथंचिदालिखन्नङ्गुलीक्षरणसन्नवर्तिकः ॥ १९ ॥

अन्वयः । गृहिणीपरिग्रहात् नर्तकीषु असुलभासु लौल्यमेत्य अंगुलीक्षरणसन्नवर्तिकः सः (राजा) तद्वपुः आलिखन् कथंचित् वर्तते स्म ॥ १९ ॥

वाच्यप० । अंगुलीक्षरणसन्नवर्तिकेन तेन + आलिखता वृत्यते स्म ॥ १९ ॥

राज्ञीभिः समागमान्नर्तकीषु वेश्यासु दुर्लभासु सतीष्वौत्सुक्यं प्राप्यांगुल्योः स्वेदनेन विगलितशलाकः सोऽग्निवर्णस्तासां नर्तकीनां तद्वपुरालिखन् कथंचिद्वर्तते स्मेति सरलार्थः ॥ १९ ॥

भा०—अपनी स्त्रियोंके समागमसे दुर्लभ नाचनेवालियोंमें आसक्त होकर अंगुली पसीजनेसे खिसकती हुई लेखनीवाला वह उनका चित्र (जैसे तैसे) बनाता हुआ किसीतौर काल विताया ॥ १९ ॥

प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम् ॥
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम् ॥२०॥

अन्वयः । प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरात् आयतात् मदनाच्च देव्य उज्झितरुषः महीक्षितम् उत्सवविधिच्छलेन कृतार्थताम् निन्युः ॥ २० ॥

वाच्यप० । देवीभिः उज्झितरुड्भिः महीक्षित् + कृतार्थतां निन्ये ॥ २० ॥

प्रियस्यानुरागेण गर्विते सपत्नजने वैरात्प्रवृद्धात्कामाच्च हेतोः राज्ञ्यस्त्यक्तक्रोधाः सत्यस्तमग्निवर्णं महोत्सवकर्मव्याजेन कृतार्थतां निन्युरिति सरलार्थः ॥ २० ॥

भा०—प्रेमसे गर्वित होनेके कारण सौतियाडाह और वृद्धिको प्राप्तहुए कामके कारण रानियोंने क्रोध छोडकर राजाको उत्सवके छलसे मनोरथ पूरा करनेवाला बनाया ॥ २० ॥

प्रातरेत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः ॥
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्सोऽदुनोत्प्रणयमन्थरः पुनः ॥२१॥

अन्वयः । सः प्रातः एत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखंडनव्यथाः प्रणयिनीः प्राञ्जलिः प्रसादयन् प्रणयमंथरः पुनः अदुनोत् ॥ २१ ॥

वाच्यप० । तेन + कृतखण्डनव्यथाः प्रणयिनीः प्रसादयता प्रणयमंथरेण पुनः अदूयंत ॥ २१ ॥

सोऽग्निवर्णः प्रातरागत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः प्रणयिनीः प्राञ्जलिः प्रसादयंस्तथापि नर्तकीगतेन शिथिलप्रयत्नः सन् पुनस्ताः पर्यतापयदिति सरलार्थः ॥ २१ ॥

भा०—वह प्रातःकाल आकर भोगसे शोभित दर्शनसे खण्डितापनका दुःख पाई-हुई प्रियाओंको हाथ जोडकर प्रसन्न करता हुआ, प्रेमसे अलसाकर फिर उनको दुःखी करता भया ॥ २१ ॥

(दूसरीमें मन लगनेके कारण आलस्य था,)

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम् ॥
प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः ॥ २२ ॥

अन्वयः । स्वप्नकीर्तितविपक्षं तम् अवदन्त्य एव अंगनाः प्रच्छदांतगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः प्रत्यभैत्सुः ॥ २२ ॥

वाच्यप० । स्वप्नकीर्तितविपक्षः सः अवदन्तीभिः एव अंगनाभिः प्रत्यभायि ॥ २२ ॥

अङ्गनाः स्वप्ने कीर्तितसपत्नीजनं तमग्निवर्णं त्वया गोत्रस्खलनं कृतमित्यनुपालम्भमाना एवास्तरणपटस्य मध्ये गलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधेन भग्नवलयैः विवर्तनैस्तिरश्चक्रुरिति सरलार्थः ॥ २२ ॥

भा०—स्त्रियें स्वप्नमें सपत्नीजनकी बडाई करते हुए उस राजाको बिना बोलेही बिछौनेपर आँसू गिरनेवाली क्रोधसे कंकन टूटनेवाली उलटी करवटोंसे तिरस्कार करती भई ॥ २२ ॥

क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः ॥
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम् ॥ २३ ॥

अन्वयः । सः दूतिकृतमार्गदर्शनः (सन्) क्लृप्तपुष्पशयनान् लतागृहान् एत्य अवरोधभयवेपथूत्तरं परिजनांगनारतम् अन्वभूत् ॥ २३ ॥

वाच्यप० । तेन दूतिकृतमार्गदर्शनेन (सता) अवरोधभयवेपथूत्तरं परिजनांगनारतम् अन्वभावि ॥ २३ ॥

सोऽग्निवर्णो दूती (ति) भिः कृतमार्गदर्शनः सन् क्लृप्तकुसुमशयनाल्लँतागृहानेत्यान्तःपुरजनाद्भयेन कम्पोत्तरं दासीरतमन्वभूदिति सरलार्थः ॥ २३ ॥

भा०—उस दूतियोंसे मार्ग दिखाये हुएने, (पुष्पशय्यालगे) लताकुंजोंमें आकर रानियोंके भयसे कम्पित होकर दासियोंसे रति की ॥ २३ ॥

नाम वल्लभजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते ॥
लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रविस्खलितमूचुरङ्गनाः ॥ २४ ॥

अन्वयः । मया ते वल्लभजनस्य नाम प्राप्य तस्य भाग्यमपि कांक्ष्यते, ननु मम मनः लोलुपम् इति गोत्रविस्खलितं तम् अंगनाः ऊचुः ॥ २४ ॥

वाच्यप० । अहं + काङ्क्षामि, मम मनसा लोलुपेन (भूयते) इति गोत्रविस्खलितः सः अंगनाभिः ऊचे ॥ २४ ॥

मया ते प्रियजनस्य नाम प्राप्य तस्य यद्भाग्यं तदपि कांक्ष्यते, ननु मम मनः गृध्न्वित्यनेनं प्रकारेण नाम्नि स्खलितवन्तं तमग्निवर्णं ललना ऊचुरिति सरलार्थः ॥ २४ ॥

भा०-मैं तेरी प्यारीका नाम जानकर उसके भगकीभी सराहना करती हूं, कारण किं मेरा मन लोभी है, इस प्रकार नाम लेतेमें बहकते हुए उससे स्त्रियोंने कहा ॥ २४ ॥

चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम् ॥
उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत् ॥ २५ ॥

अन्वयः। चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलम् अलक्तकांकितम् शयनम् उत्थितस्य विलासिनः तस्य विभ्रमरतानि अपावृणोत् ॥ २५ ॥

वाच्यप० । चूर्णबभ्रुणा लुलितस्रगाकुलेन छिन्नमेखलेन अलक्तकांकितेन शयनेन तस्य विभ्रमरतानि अपाव्रियन्त ॥ २५ ॥

चूर्णबभ्रु पतिताभिः स्रग्भिराकुलं भिन्नमेखलं लाक्षारागरूपितं शयनमुत्थितस्य विलासिनस्तस्य नृपस्य सुरतबन्धविशेषाणि स्फुटीचकारेति सरलार्थः ॥ २५ ॥

भा०-कुंकुमके सुनहरी रंगवाली, मलीहुई मालाओंसे भरी, टूटी कोंधनीवाली, महावरके चिह्नवाली शय्याने उठे हुए उस विलासीका विलास प्रगट किया ॥ २५ ॥

स स्वयं चरणरागमादधे योषितां न च तथा समाहितः ॥
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः ॥ २६ ॥

अन्वयः । सः स्वयं योषितां चरणरागम् आदधे (किं) च श्लथांशुकैः नितंबिभिः मेखलागुणपदैः लोभ्यमाननयनः (सन्) तथा समाहितः न आदधे ॥ २६ ॥

वाच्यप० । तेन स्वयं योषितां चरणरागः आदधे, + लोभ्यमाननयनेन (सता) तथा समाहितेन न आदधे ॥ २६ ॥

सोऽग्निवर्णः स्वयमेव योषितां चरणयोर्लाक्षारसमर्पयामास, किं च प्रियांगस्पर्शाच्छ्लथांशुकैर्नितम्बवद्भिर्जघनैराकृष्यमाणदृष्टिः सन् तथाऽवहितो नादधे, यथा सम्यग्रागरचना स्यादिति सरलार्थः॥२६॥

भा०-वह स्वयं स्त्रियोंके चरणोंमें महावर लगाता भया परन्तु ढीले वस्त्र पडी, नितम्ब सहित मेखलाके स्थान (जांघों) के लुभाये हुए नेत्र वालेने यथार्थ मन देकर नहीं लगाया ॥ २६ ॥

चुम्बने विपरिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने ॥
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥२७॥

अन्वयः । चुम्बने विपरिवर्तिताधरं रशनाविघट्टने हस्तरोधि सर्वतः विघ्नितेच्छम् अपि वधूरतं तस्य मन्मथेन्धनम् अभूत् ॥ २७ ॥

वाच्यप० । चुम्बने विपरिवर्तिताधरेण रशनाविघट्टने हस्तरोधिना सर्वतः विघ्नितेच्छेन अपि वधूरतेन तस्य मन्मथेन्धनेन अभावि ॥ २७ ॥

चुम्बने प्रवृत्ते परिहृतोष्ठं, ग्रन्थिविस्रंसने प्रसक्ते सति हस्तरोधि इत्थं सर्वत्र प्रतिहतमनोरथमपि विलासिनीनां रतं तस्याग्निवर्णस्य मदनोद्दीपनमभूदिति सरलार्थः ॥ २७ ॥

भा०—चुम्बनके समय होठ हटानेवाला, नीवी खोलनेमें रोके हुए हाथोंवाला सब स्थानमें अभिलाष भंग किया हुआ, प्रियाका विलासभी उसको काम बढानेवाला हुआ ॥ २७ ॥

दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः ॥
छायया स्मितमनोज्ञया वधूर्ह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः ॥ २८ ॥

अन्वयः । सः दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीः वधूः नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः (सन्) स्मितमनोज्ञया छायया ह्रीनिमीलितमुखीः चकार ॥ २८ ॥

वाच्यप० । तेन दर्पणेषु परिभोगदर्शिन्यः वध्वः नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितेन (सता) + ह्रीनिमीलितमुख्यः चक्रिरे ॥ २८ ॥

सोऽग्निवर्णः दर्पणेषु संभोगचिह्नदर्शिनीः वधूः परिहासपूर्वं तासां पृष्ठभागे संस्थितः सन् दर्पणगतेन स्वप्रतिबिम्बेन लज्जावनतमुखीश्चकारेति सरलार्थः ॥ २८ ॥

भा०—वह दर्पणमें संभोगके चिह्न देखती हुई वधुओंके हास्यके निमित्त पीछे बैठकर मनोहर मुस्क्यानकी छायासे लज्जासे नीचे मुखवाली करता भया ॥ २८ ॥

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः ॥
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशात्ययविसर्गचुम्बनम् ॥२९॥

अन्वयः । प्रियाः शयनोत्थितं तं कंठसक्तमृदुबाहुबंधनम् अग्रपादयोः न्यस्तपादतलं निशात्ययविसर्गचुम्बनं प्रार्थयंत ॥ २९ ॥

वाच्यप० । प्रियाभिः शयनोत्थितः सः कंठसक्तमृदुबाहुबंधनम् अग्रपादयोः न्यस्तपादतलम् निशात्ययविसर्गचुम्बनं प्रार्थ्यत ॥ २९ ॥

प्रियाः शयनादुत्थितं तमग्निवर्णं कंठार्पितमृदुभुजबन्धनमग्रपादयोर्न्यस्तपादतलं निशात्यये विसृज्यगमनचुम्बनं प्रार्थयन्तेति सरलार्थः ॥ २९ ॥

भा०—प्यारी शयनसे उठे हुए, कंठमें कोमल बाहुबंधन डाले, आगेके पैरपर पैरके तलुए धरेहुएसे रात्रि बीतनेपर बिछुडनेका चुम्बन मांगती हुई ॥ २९ ॥

प्रक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेषमतिशक्रशोभिनम् ॥
पिप्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम् ॥३०॥

अन्वयः । सः युवा अतिशक्रशोभिनं दर्पणतलस्थम् आत्मनः राजवेषं प्रेक्ष्य तथा न पिप्रिये, यथा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमंडनं (प्रेक्ष्य पिप्रिये) ॥ ३० ॥

वाच्यप० । तेन यूना तथा न पिप्रिये ॥ ३० ॥

युवा सोऽग्निवर्णोऽतिशक्रशोभिनं दर्पणसंक्रान्तमात्मनो राजवेषं दृष्ट्वा तथा न तुतोष, यथा प्रकट-चिह्नं परिभोगमण्डनं प्रेक्ष्य पिप्रिय इति सरलार्थः ॥ ३० ॥

भा०—वह युवा इन्द्रसेभी अधिक शोभायमान दर्पणमें अपना राजवेष देख ऐसा प्रसन्न न हुआ, जैसा प्रगट चिह्नवाली परिभोगकी शोभाको देख आनन्दित हुआ ॥ ३० ॥

मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः ॥
विद्महे शठ पलायनच्छलान्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः ॥ ३१ ॥

अन्वयः । मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितम् अनवस्थितं तं प्रियाः हे शठ! पलायनच्छलानि अंजसा विद्म इति कचग्रहैः रुरुधुः ॥ ३१ ॥

वाच्यप० । पार्श्वतः प्रस्थितः अनवस्थितः सः प्रियाभिः हे शठ ! (अस्माभिः) पलायनच्छ-लानि विद्यन्ते इति कचग्रहैः रुरुधे ॥ ३१ ॥

सुहृत्कार्यं व्याजीकृत्यान्यतो गन्तुमुद्युक्तमवस्थातुमक्षमं तमग्निवर्णं प्रियाः, हे गूढविप्रियकारिन् तव पलायनस्य छलानि तत्त्वतः जानीम इत्युक्त्वा केशाकर्षणे रुरुधुरिति सरलार्थः ॥ ३१ ॥

भा०—मित्रके कार्यका बहाना करके चलते हुए व्याकुल उस (नृप) को स्त्रियें हे शठ भागनेके छल हम भलीभांति जानती हैं, ऐसे कह बाल पकड रोकती हुईं ३१

तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः ॥
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः । निर्दयरतिश्रमालसाः योषितः कण्ठसूत्रमपदिश्य पीवरस्तनविलुप्तचन्दनं तस्य बृहद्भु-जान्तरम् अध्यशेरत ॥ ३२ ॥

वाच्यप० । निर्दयरतिश्रमालसाभिः योषिद्भिः पीवरस्तनविलुप्तचन्दनं तस्य बृहद्भुजान्तरं अध्य-शय्यत ॥ ३२ ॥

निर्दयरतिश्रमेण निश्चेष्टा योषितः कण्ठसूत्रं व्याजीकृत्य पीवरस्तनाभ्यां प्रमृष्टाङ्गरागे तस्याग्निवर्णस्य वक्षःस्थले शेरते स्मेति सरलार्थः ॥ ३२

भा०—निर्दयरतिके श्रमसे अलसाईहुईं स्त्रियां कंठसूत्र आलिंगनके बहानेसे बृहत् स्तनोंसे घिसे चन्दनवाले उसके बडे वक्षःस्थलमें सो गईं ॥ ३२ ॥

संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः ॥
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चकृषुस्तमङ्गनाः ॥३३॥

अन्वयः। संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं तम् अंगनाः पुरोगताः हे कामुक तमोवृतः (सन्) कुतः वंचयिष्यसि इति चकृषुः ॥ ३३ ॥

वाच्यप०। संगमाय निशि गूढचारी चारदूतिकथितः सः अंगनाभिः पुरोगताभिः हे कामुक त्वया तमोवृतेन (सता) कुतः वञ्चयिष्यते इति चकृषे ॥ ३३ ॥

सुरतार्थं रात्रावज्ञातम् इष्टगृहं प्रति चारिणं चारदूतिभिः कथितं तमग्निवर्णं पुरोगता अङ्गना अवरुद्धमार्गाः सत्यः हे कामुक गूढः सन् कुतो वञ्चयिष्यसीति चकृषुरिति सरलार्थः ॥ ३३ ॥

भा०–संगमके निमित्त रात्रिमें गुप्त फिरनेवाले दूतियोंके दिखाये हुएको स्त्रियें आगे आकर हे कामी ! छिपकर कहां जाता है, ऐसा कहकर पकड लाईं ॥ ३३ ॥

योषितामुडुपतेरिवार्चिषां स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन् ॥
आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः ॥ ३४ ॥

अन्वयः। उडुपतेरर्चिषामिव योषितां स्पर्शनिर्वृतिम् अवाप्नुवन् (किं च) रात्रिजागरपरः दिवाशयः असौ कुमुदाकरोपमाम् आरुरोह ॥ ३४ ॥

वाच्यप०। उडुपतेरर्चिषामिव योषितां स्पर्शनिर्वृतिम् अवाप्नुवता (किं च) रात्रिजागरपरेण दिवाशयेन अनेन कुमुदाकरोपमा आरुरुहे ॥ ३४ ॥

इन्दोः भासामिव योषितां स्पर्शसुखमवाप्नुवन् निशासु जागरणशीलः दिवाशयोऽसावग्निवर्णः कुमुदाकरस्य साम्यं प्रापेति सरलार्थः ॥ ३४ ॥

भा०–चन्द्रकिरणोंकी समान स्त्रियोंके स्पर्शसे तृप्ति पाता हुआ, रातमें जागने और दिनमें सोनेवाला यह कुमुदवनकी उपमाको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥

वेणुना दशनपीडिताधरा वीणया नखपदाङ्कितोरवः ॥
शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्मनयना व्यलोभयन् ॥३५॥

अन्वयः। दशनपीडिताधराः नखपदाङ्कितोरवः (तथापि) वेणुना वीणया उभयेन वेजिताः शिल्पकार्यः तं जिह्मनयनाः सत्यः व्यलोभयन् ॥ ३५ ॥

वाच्यप०। दशनपीडिताधराभिः नखपदांकितोरुभिः वेणुना वीणया उभयेन वेजिताभिः शिल्पकारीभिः सः विजिह्मनयनाभिः व्यलोभ्यत ॥ ३५ ॥

दष्टोष्ठाः नखक्षतैश्चिह्नितोरुसङ्गास्तथापि वेणुना वीणया चेत्युभयेन पीडिताः गायिकास्तं कुटिलदृष्टयः सत्यः व्यलोभयन्निति सरलार्थः ॥ ३५ ॥

भा०-दांतोंसे पीडित अधरवाली नख चिह्नोंसे अंकित जंघावाली, वेणु और वीणा दोनोंसे पीडित गानेवाली उसको तिरछी चितवनसे रिझाती हुई ॥ ३५ ॥
(बांसुरी वजानेसे मुख, और, वीणा गोदमें रखनेसे जंघा दुखती थीं)

अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन् ॥
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसंनिधौ ॥ ३६ ॥

अन्वयः । अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं नृत्यं मिथः स्त्रीषु उपधाय दर्शयन् सः मित्रसन्निधौ प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः सह संजघर्ष ॥ ३६ ॥

वाच्यप० । दर्शयता तेन × संजघृषे ॥ ३६ ॥

आङ्गिकसात्त्विकवाचिकरूपेण त्रिविधमभिनयमेकान्ते नर्तकीषु निधाय दर्शयन् सः सहचरसमक्षमभिनये निपुणैर्नाटयाचार्यैः सह संघर्षं कृतवानिति सरलार्थः ॥ ३६ ॥

भा०-अङ्ग मन और वाणीसे निर्मित नाच एकान्तमें अङ्गनाओंको सिखाकर मित्रोंके निकट दिखाते हुए उसने नाटचमें निपुण नाटचाचार्य्योंके जयकी इच्छा की ॥ ३६ ॥

अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः ॥
प्रावृषि प्रमदबर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः ॥ ३७ ॥

अन्वयः । प्रावृषि अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजः नीपरजसांगरागिणः तस्य प्रमदबर्हिणेषु कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः अभूत् ॥ ३७ ॥

वाच्यप० । विहारविभ्रमैः अभावि ॥ ३७ ॥

वर्षायामंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजः कदम्बकुसुमानामंगरागवतस्तस्याग्निवर्णस्योन्मत्तमयूरेषु कृत्रिमनगेषु विहार एव विलासोऽभवदिति सरलार्थः ॥ ३७ ॥

भा०-वर्षाकालमें कन्धेमें लम्बायमान कुटज और अर्जुनकी माला धारे कदमके परागसे अंगराग कियेहुए उसका मदयुक्त मोरोंवाले बनायेहुए पर्वतोंमें विहारका विलास हुआ ॥ ३७ ॥

विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीर्नानुनेतुमबलाः स तत्वरे ॥
आचकाङ्क्ष घनशब्दविक्लवास्ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः । स विग्रहात् शयने पराङ्मुखीः अबलाः अनुनेतुं न तत्वरे (किन्तु) घनशब्दविक्लवाः (अत एव) विवृत्य भुजान्तरं विशतीः ताः आचकांक्ष ॥ ३८ ॥

वाच्यप० । तेन × विशत्यः आचकांक्षिरे ॥ ३८ ॥

सोऽग्निवर्णः प्रणयकलहाच्छयने पराङ्मुखीरबला अनुनेतुं न त्वारितवान्, किन्तु घनगर्जितेन चकिताः स्वयमेवाभिमुखीभूय भुजान्तरं प्रविशन्तीस्ताः अबलाः आचकांक्षेति सरलार्थः ॥ ३८ ॥

भा०—उसने रतिकलहके कारण पीठ देकर सोती हुई अबलाओंको प्रसन्न करनेकी शीघ्रता न की किन्तु मेघोंके शब्दसे व्याकुल (हो) सीधीकरवट लेकर अपने वक्षःस्थलमें उनके आनेकी आकांक्षा की ॥ ३८ ॥

कार्तिकीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनासखः ॥
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः। कार्तिकीषु यामिनीषु सवितानहर्म्यभाक् ललिताङ्गनासखः सः सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां चन्द्रिकाम् अन्वभुंक्त ॥ ३९ ॥

वाच्यप०। सवितानहर्म्यभाजा ललितांगनासखेन तेन सुरतश्रमापहा मेघमुक्तविशदा चन्द्रिका अन्वभुज्यत ॥ ३९ ॥

कार्तिकीषु रात्रिषूपरिवस्त्रावृतहर्म्यभाक् ललितांगनासखः सोऽग्निवर्णः सुरतखेदापहां मेघमुक्तां निर्मलां चन्द्रिकामन्वभुंक्तेति सरलार्थः ॥ ३९ ॥

भा०—कार्तिककी रात्रियोंमें शामियाने तने मन्दिरके रहनेवाले श्रेष्ठ स्त्रियोंके सखा उसने सुरतका खेद मिटानेवाली मेघोंके न होनेसे निर्मल चांदनी सेवन की ॥ ३९ ॥

सैकतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलम् ॥
स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैर्व्यलोकयत् ॥ ४० ॥

अन्वयः। (सः) हंसमेखलं सैकतं श्रोणिबिम्बमिव विवृण्वतीम् (अत एव) स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सरयूं सौधजालविवरैः व्यलोकयत ॥ ४० ॥

वाच्यप०। (तेन) हंसमेखलं सैकतं श्रोणिबिम्बमिव विवृण्वती स्वप्रियाविलसितानुकारिणी सरयूः व्यलोक्यत ॥ ४० ॥

हंसमेखलं पुलिनं श्रोणिबिम्बमिव विवृण्वतीं स्वप्रियाविभ्रमानुकारिणीं सरयूं सौधस्य गवाक्षविवरैर्व्यलोकयदिति सरलार्थः ॥ ४० ॥

भा०—हंसरूपी कौंधनीवाले किनारे, नितम्बकी नाईं दिखाती हुई अपनी प्यारियोंके विलासका अनुकरण करनेवाली सरयूको महलोंके झरोखोंमेंसे देखता भया ॥ ४० ॥

मर्मरैरगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः ॥
जह्ररुग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः ४१ ॥

अन्वयः । मर्मरैः अगुरुधूपगंधिभिः व्यक्तहेमरशनैः हैमनैः निवसनैः सुमध्यमाः एकतः आग्रथनमोक्षलोलुलं तं जह्रुः ॥ ४१ ॥

वाच्यप० । सुमध्यमाभिः एकतः आग्रथनमोक्षलोलुपः सः जह्रे ॥ ४१ ॥

मर्मरैरगुरुधूपगान्धिभिर्व्यक्तसुवर्णमेखलैः हैमनैरंशुकैः स्त्रियः नितम्बैकदेशे नीवीबन्धविस्रंसनयोर्लोलुपं तं चक्रुषुरिति सरलार्थः ॥ ४१ ॥

भा०—मर्मरशब्दवाले, अगर और धूपकी गंधयुक्त, प्रगट सुवर्णकी कौंधनीवाले जाडोंके वस्त्रोंसें पतली कमरवाली स्त्री नितम्बके एकतरफ नीवी बांधने और खोलनेके लोभी उस (राजा) को लुभाती हुई ॥ ४१ ॥

अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयो गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु॥
तस्य सर्वसुरतान्तरक्षमाः साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः ॥ ४२ ॥

अन्वयः । निवातकुक्षिषु गर्भवेश्मसु आर्पितस्मितदीपदृष्टयः सर्वसुरतान्तरक्षमाः शिशिररात्रयः तस्य साक्षितां ययुः ॥ ४२ ॥

वाच्यप० । अर्पितास्मितदीपदृष्टिभिः सर्वसुरतान्तरक्षमाभिः शिशिररात्रिभिः तस्य साक्षिता यये ॥ ४२ ॥

पवनरहिता अन्तर्गृहेष्वार्पितनिश्चलदीपदृष्टयः सर्वेषां सुरतभेदानां क्रियार्हाः शिशिररात्रयस्तस्याग्निवर्णस्य साक्षितां ययुरिति सरलार्थः ॥ ४२ ॥

भा०—वायुरहित भीतरके कोठोंमें रक्खेहुए निश्चल लोयवाले दीपककी समान दृष्टिवाली सब प्रकार विहारमें समर्थ जाडेकी रात्रि उसकी साक्षिताको प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥

(अर्थात् उसके विहारको रात ही देखती थीं.)

दक्षिणेन पवनेन संभृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम् ॥
अन्वनैषुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः ॥ ४३॥

अन्वयः । अंगनाः दक्षिणेन पवनेन संभृतं सपल्लवं चूतकुसुमं प्रेक्ष्य, अवधूतविग्रहाः दुरुत्सहवियोगं तम् अन्वनैषुः ॥ ४३ ॥

वाच्यप० । अंगनाभिः अवधूतविग्रहाभिः दुरुत्सहवियोगः सः अन्वनायि ॥ ४३ ॥

स्त्रियः मलयानिलेन जनितं सपल्लवाम्रपुष्पं प्रेक्ष्य त्यक्तविरोधाः सत्यो दुःसहविरहं तमन्वनैषुरिति सरलार्थः ॥ ४३ ॥

भा०—स्त्रियोंने दक्षिणपवनकी उत्पन्न की हुई आमकी कोंपल सहित मंजरीको देखकर विरोध त्याग दुस्सहविरहवाले उस (राजा) को मनाया ॥ ४३ ॥

ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया प्रेङ्खयन्परिजनापविद्धया॥
मुक्तरज्जु निबिडं भयच्छलात्कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः॥ ४४ ॥

अन्वयः । (सः) ताः स्वमंकम् अधिरोप्य परिजनापविद्धया दोलया मुक्तरज्जु प्रेङ्खयन् भयच्छलात् बाहुभिः निबिडं कंठबंधनम् अवाप ॥ ४४ ॥

वाच्यप० । तेन × प्रेङ्खयता × निबिडं कण्ठबन्धनम् अपावे ॥ ४४ ॥

सः ताः अङ्गनाः स्वकीयमुत्सङ्गमधिरोप्य परिजनेन संप्रेषितया दोलया त्यक्तदोलासूत्रं यथा तथा चालयन् पतनभयमिषाद्भुजैर्निबिडं कण्ठबंधनमवापेति सरलार्थः ॥ ४४ ॥

भा०—उनको अपनी गोदीमें बैठाकर दासियोंके झोंटा दियेहुए झूलेमें झूलते हुएने रज्जुके छुटनेके डरके वहानेवाला भुजाओंका दृढ आलिंगन पाया ॥ ४४ ॥

तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः ॥
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः॥४५॥

अन्वयः । प्रियाः पयोधरनिषिक्तचन्दनैः मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः श्रोणिलंबमणिमेखलैः ग्रीष्मवेषविधिभिः तं सिषेविरे ॥ ४५ ॥

वाच्यप० । प्रियाभिः + सः सिषेवे ॥ ४५ ॥

अङ्गनाः पयोधरेषूक्षितचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः श्रोणिलम्बिमरकतादियुक्तकटिसूत्रैरुष्णकालोचितनेपथ्यविधानैस्तमाग्निवर्णं सिषेविर इति सरलार्थः ॥ ४५ ॥

भा०—वे प्यारी स्त्रियें स्तनोंमें लगेहुए चन्दनवाले मोती जडेहुए सुन्दर भूषणोंवाले नितम्बोंपर लम्बायमान मणिमेखलावाले ग्रीष्मके शृंगारोंसे उसे सेवन करती हुईं ४५॥

यत्स लग्नसहकारमासवं रक्तपाटलसमागमं पपौ ॥
तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नवः ॥ ४६ ॥

अन्वयः । सः लग्नसहकारं रक्तपाटलसमागमम् आसवं यत् पपौ, तेन मधुनिर्गमात् कृशः तस्य चित्तयोनिः पुनर्नवः अभवत् ॥ ४६ ॥

वाच्यप० । तेन लग्नसहकारः रक्तपाटलसमागमः आसवः यत् पपे, तेन चित्तयोनिना पुनर्नवेन अभूयत ॥ ४६ ॥

सोऽग्निवर्णः लग्नाम्रं रक्तपाटलकुसुमसमागमं मद्यं यत्पपौ, तेनासवपानेन वसन्तापगमान्मन्दवीर्यः मदनः पुनः प्रबलोऽभवदिति सरलार्थः ॥ ४६ ॥

भा०—उसने आमका पल्लव लगा हुआ, लाल पाटलका समागमवाला आसव जो पिया, इससे वसन्तके वीतनेसे क्षीणताको प्राप्त हुआ भी उसका मन्मथ फिर नवीन होगया ॥ ४६ ॥

एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः ॥
आत्मलक्षणनिवेदितानृतूनत्यवाहयदनङ्गवाहितः ॥ ४७ ॥

अन्वयः । एवम् अनङ्गवाहितः अन्यकार्यविमुखः सः पार्थिवः इन्द्रियसुखानि निर्विशन् आत्मलक्षणनिवेदितान् ऋतून् अत्यवाहयत् ॥ ४७ ॥

वाच्यप० । अनङ्गवाहितेन अन्यकार्यविमुखेन तेन पार्थिवेण इन्द्रियसुखानि निर्विशता आत्मलक्षणनिवेदिता ऋतवः अत्यवाह्यन्त ॥ ४७ ॥

एवं मदनप्रेरितो विस्मृतान्यकार्यः सोऽग्निवर्णः इन्द्रियाणां सुखकराणि शब्दादीन्यनुभवन्कुटजस्रग्धारणादिचिह्नैर्निवेदितान्वर्षादीनृतूनगमयदिति सरलार्थः ॥ ४७ ॥

भा०–इस प्रकार कामसे प्रेरित दूसरे कार्यसे विमुख उस राजाने इन्द्रियसुख भोगते हुए अपने २ लक्षण दिखानेवाली ऋतु बिताई ॥ ४७ ॥

तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः ॥
आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत् ॥ ४८ ॥

अन्वयः । प्रमत्तम् अपि तं प्रभावतः अन्यप्रार्थिवाः आक्रमितुं न शेकुः रतिरागसंभवः आमयः तु दक्षशापः चन्द्रम् इव अक्षिणोत् ॥ ४८ ॥

वाच्यप० । प्रमत्तः अपि सः प्रभावतः अन्यपार्थिवैः आक्रमितुं न शेके, रतिरागसंभवेन आमयेन तु दक्षशापेन चन्द्रः इव अक्षीयत ॥ ४८ ॥

व्यसनासक्तमपि तं नृपं प्रभावादन्यनृपा अभिभवितुं न शक्ताः, रतिरागसंभवो व्याधिस्तु दक्षप्रजापतेः शापश्चंद्रमिवाकर्षयदिति सरलार्थः ॥ ४८ ॥

भा०–प्रमत्त हुएभी उसको प्रभावसे दूसरे राजा जय करनेको समर्थ न हुए, परन्तु अधिक रतिसे उत्पन्न हुआ रोग तो दक्षका शाप चंद्रमाकी समान क्षीण करता हुआ ॥ ४८ ॥

(चन्द्रमाकी २७ भार्या हैं, यह सब दक्षकी कन्या हैं, परन्तु चन्द्रमाका रोहिणी पर अधिक प्यार था औरोंपर नहीं, इससे दक्षने शाप दिया कि तुझे क्षयी रोग होगा.)

दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः ॥
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते ॥ ४९ ॥

अन्वयः । भिषजामनाश्रवः सः दृष्टदोषमपि तत् संगवस्तु न अत्यजत् (तथाहि) (जनेन) इन्द्रियगणः स्वादुभिः विषयैः हृतस्तु दुःखं निवार्यते ॥ ४९ ॥

वाच्यप० । भिषजामनाश्रवेण तेन × न अत्यज्यत, (तथाहि) (जनः) इन्द्रियगणं स्वादुभिः विषयैः हृतं तु दुःखं निवारयति ॥ ४९ ॥

वैद्यानां वचसि न स्थितः सः दृष्टदोषमपि स्त्रीमद्यादिकं संगजनकं वस्तु नात्यजत्, तथाहीन्द्रियगणः स्वादुभिर्विषयैर्हृतश्चेत्ततस्तेभ्यो विषयेभ्यो कृच्छ्रेण निवार्यत इति सरलार्थः ॥ ४९ ॥

भा०—वैद्योंका वचन न माननेवाले उसने दोष देखकरभी कामोद्दीपक वस्तुओंको न त्यागा कारण कि इन्द्रियगण स्वादिष्ट विषयोंसे हरे जानेसे फिर कठिनतासे निवृत्त किए जाते हैं ॥ ४९ ॥

तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ॥
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ॥ ५० ॥

अन्वयः । तस्य पाण्डुवदना अल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना राजयक्ष्मपरिहानिः कामयानसमवस्थया तुलाम् आययौ ॥ ५० ॥

वाच्यप० । तस्य पाण्डुवदनया अल्पभूषणया सावलम्बगमनया मृदुस्वनया राजयक्ष्मपरिहान्या + कामयानसमवस्थया तुला आयये ॥ ५० ॥

तस्याग्निवर्णस्य पाण्डुवदना परिमिताभरणा दासहस्तावलम्बगमना हीनस्वरा क्षयरोगेण क्षीणावस्था कामुकावस्थया साम्यं प्रापेति सरलार्थः ॥ ५० ॥

भा०—उसकी पीलेमुखवाली, थोडे गहनेवाली, दूसरेके सहारेसे चलने और क्षीण शब्दवाली, क्षयीरोगकी क्षीणता कामियोंकी दशाकी समानताको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥

व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम् ॥
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः । राज्ञि क्षयातुरे सति तत्कुलं पश्चिमकलास्थितेन्दु व्योम इव वा पङ्कशेषघर्मपल्वलम् इव वामनार्चिः दीपभाजनम् इव अभूत् ॥ ५१ ॥

वाच्यप० । तेन कुलेन पश्चिमकलास्थितेन्दुना व्योम्ना इव वा पङ्कशेषेण घर्मपल्वलेन इव वामनार्चिषा दीपभाजनेन इव अभावि ॥ ५१ ॥

अग्निवर्णे क्षयातुरे सति रघुकुलं पश्चिमकलायां स्थितेन्दुर्व्योमेवपङ्कशेपं . घर्मपल्वलमिवाल्पशिखं दीपपात्रमिवाभूदिति सरलार्थः ॥ ५१ ॥

भा०—राजाके क्षयरोगसे व्याकुल होनेपर वह कुल पिछली कलाको प्राप्त हुए चन्द्रमावाले आकाश, तथा कीच शेष रहे कुंड और सूक्ष्मलोय रहे दीपककी समान हुआ ॥ ५१ ॥

बाढमेष दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने ॥
इत्यदर्शितरुजोस्य मन्त्रिणः शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजाः ॥ ५२ ॥

अन्वयः । वाढम् एषः पार्थिवः दिवसेषु पुत्रजन्मने कर्म साधयति, इति अदर्शितरुजः अस्य मंत्रिणः अघशंकिनीः प्रजाः शश्वदूचुः ॥ ५२ ॥

वाच्यप० । अनेन पार्थिवेन + कर्म साध्यते, इति अदर्शितरुग्भिः अस्य मंत्रिभिः अघशङ्किन्यः प्रजाः शश्वदूचिरे ॥ ५२ ॥

सत्यमेव पार्थिवो दिवसेषु पुत्रोत्पत्त्यर्थं जपादि कर्म साधयत्येवं निगूहितरोगाः सन्तोऽस्याग्निवर्णस्य मन्त्रिणो व्यसनशङ्किनीः प्रजाः शश्वदूचुरिति सरलार्थः ॥ ५२ ॥

भा०-सत्य है, यह राजा इन दिनों पुत्रजन्मके कर्मोंमें लगा है, इस प्रकार रोग छिपाते हुए इसके मंत्रियोंने उपद्रवकी शंका करनेवाली प्रजाओंसे नित्य कहा ॥५२॥

स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य संततिम् ॥
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ॥ ५३ ॥

अन्वयः । सः तु अनेकवनितासखः सन्नपि पावनीं संततिम् अनवलोक्य वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं प्रदीपः वायुं इव न अत्यगात् ॥ ५३ ॥

वाच्यप० । तेन अनेकवनितासखेन सता अपि + वैद्ययत्नपरिभावी गदः प्रदीपेन वायुः इव न अत्यगायि ॥ ५३ ॥

स त्वग्निवर्णोऽनेकवनितासखः सन्नपि पितृऋणमोचनीं सन्ततिमदृष्ट्वा वैद्ययत्नपरिभाविनं रोगं प्रदीपो वायुमिव नात्यक्रमीदिति सरलार्थः ॥ ५३ ॥

वह अनेक स्त्रियोंके सखा होनेपरभी पवित्र सन्तानको न देखकर वैद्योंके यत्नको तिरस्कार करनेवाले रोगको पवनको दीपककी समान न जीत सका ॥ ५३ ॥
(अर्थात् मृत्युको प्राप्त हुआ)

तं गृहोपवन एव संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ॥
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः संभृते शिखिनि गूढमादधुः ॥५४॥

अन्वयः । पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा संगताः मंत्रिणः गृहोपवने एव रोगशांतिमपदिश्य तं संभृते शिखिनि गूढमादधुः ॥ ५४ ॥

वाच्यप० । सङ्गतैः मन्त्रिभिः + सः संभृते शिखिनि गूढम् आदधे ॥ ५४ ॥

अन्त्येष्टिविधिज्ञेन पुरोधसा संगता मन्त्रिणो गृहाराम एव शान्तिकर्म व्यपदिश्य तमग्निवर्णं समिद्धे वह्नावप्रकाशं निदधुरिति सरलार्थः ॥ ५४ ॥

भा०-अन्त्येष्टिविधिके जाननेवाले पुरोहितके संग मिलकर मंत्रियोंने जनाने घरके उपवनमें ही रोग शान्तिके बहानेसे उसको जलती हुई अग्निमें चुपचाप रख दिया ॥ ५४ ॥

तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी ॥
साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः । आशु कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः तैः साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा तस्य सहधर्मचारिणी नराधिपश्रियं प्रत्यपद्यत ॥ ५५ ॥

वाच्यप० । आशु कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः तैः साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणया तस्य सहधर्मचारिण्या नराधिपश्रीः प्रत्यपद्यत ॥ ५५ ॥

शीघ्रं कृतपौरजनप्रधानसंग्रहैर्मन्त्रिभिः परीक्षितशुभगर्भचिह्ना तस्याग्निवर्णस्य राज्ञी राजलक्ष्मीं प्रापेति सरलार्थः ॥ ५५ ॥

भा०–तत्काल प्रजाओंके मुख्यजनोंको संग्रह करके उन मंत्रियोंने अच्छी प्रकार गर्भके शुभलक्षण देखी हुई उसकी धर्मपत्नीको राज्यलक्ष्मीपर स्थित किया ॥५५॥

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका-
दुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः ॥
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः ॥ ५६ ॥

अन्वयः । तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोकात् उष्णैः विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः तस्याः गर्भः कनककुंभमुखोज्झितेन शिशिरेण वंशाभिषेकविधिना निर्वापितः ॥ ५६ ॥

वाच्यप०–प्रथमाभितप्तं गर्भं कनककुंभमुखोज्झितः शिशिरः वंशाभिषेकविधिः निर्वापितवान् ॥ ५२ ॥

तथाविधनृपमरणदुःखादुष्णैर्नेत्रवारिभिः प्रथमाभितप्तः तस्याः गर्भः सुवर्णकुम्भमुखनिर्गतेन शीतलेनाभिषेकजलेनाप्यायित इति सरलार्थः ५६ ॥

भा०–इस प्रकार राजाके दुःखके कारण नेत्रोंके गरमजलसे प्रथम तपा हुआ उसका गर्भ सुवर्णके कलशोंके मुखसे छूटेहुए ठंडे वंशके अभिषेकविधिवाले जलने सींचा ॥ ५६ ॥

तं भावार्थं प्रसवसमयाकांक्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना ॥
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हैमसिंहासनस्था
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा ॥ ५७ ॥

अन्वयः । प्रसवसमयाकांक्षिणीनां प्रजानां भावार्थं क्षितिरन्तर्गूढं नभोबीजमुष्टिमिव (गर्भं) दधाना हेमसिंहासनस्था अव्याहताज्ञा राज्ञी मौलैः स्थविरसचिवैः सार्धं भर्तू राज्यं विधिवत् अशिषत् ॥ ५७ ॥

वाच्यप० । दधानया हेमसिंहासनस्थया अव्याहताज्ञया राज्ञ्या + राज्यं विधिवत् अशासि ॥ ५७ ॥

गर्भमोचनसमयाकांक्षिणीनां प्रजानां भूतये क्षितिरंतर्गूढं नभोबीजमुष्टिमिवान्तर्गतं तं गर्भं दधाना सुवर्णसिंहासनस्था अव्याहताज्ञा महिष्यादिः वृद्धामात्यैः सार्द्धं स्वामिनो राज्यं यथाशास्त्रं शासति स्मेति सरलार्थः ॥ ५७ ॥

भा०-पुत्र उत्पन्न होनेके समयकी आकांक्षा करती हुई प्रजाओंके ऐश्वर्यके निमित्त पृथ्वीमें अन्तर्गूढ श्रावणके बीजाङ्कुरकी समान कोखमें गर्भको धारण करती हुई सुवर्णके सिंहासन पर बैठी हुई, बेरोक आज्ञावाली वह रानी प्राचीन मंत्री तथा वृद्ध अधिकारियोंके सहित स्वामीका राज्य विधिपूर्वक पालन करती रही ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासविरचिते रघुवंशे महाकाव्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रविरचित-
भावार्थदीपिकाभाषाटीकासमन्विते एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

व्योमबाणांकचन्द्रेऽब्दे सतस्यामसिते मधौ ॥
बुधवारे शिवं ध्यात्वा व्याख्यापूर्तिः कृता मया ॥ १ ॥
लोकेशो देवदेवेशः पार्वतीवल्लभः शिवः ॥
भक्तानामभयं दाता शं तनोतु दिवानिशम् ॥ २ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-मुम्बई.